ऋग्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

भाग १

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

चतुर्थ खण्ड

संशोधित एवं परिवर्धित

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य-मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति १५००	सं० २०१४ सन् १९५८ ई०	मूल्य ७)

प्रकाशकः—
आर्य्य सहित्य मण्डल लि०,
अजमेर

मुद्रकः—
श्री शिरीशचन्द्र शिवहरे, एम० ए०,
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद विषय सूची

चतुर्थेऽष्टके । पञ्चमे मण्डले

(सप्तचत्वारिंशत्सूक्तादारभ्य)

अथ तृतीयोऽध्यायः (पृ० १–७७)

सू० [४७]—विश्वेदेवाः । माता के कर्त्तव्य । माता का नवयुवति कन्या को उपदेश । (२) पुत्र पुत्रियों को माता का उपदेश । (४) जीव की उत्पत्ति का रहस्य । (५) शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । (६) सन्तान बनाने में माता के उत्तम संकल्पों की आवश्यकता । (७) वर वधू माता पिताओं को उपदेश । (पृ० १–५)

सू० [४८]—विश्वेदेवाः । राजसभा और सेना का योग्य नायक वरने का कर्त्तव्य । (२–५) नायक के कर्त्तव्य । (पृ० ५–७)

सू० [४९]—विश्वेदेवाः । (१–३) पितावत् शासकों के कर्त्तव्य । (४–५) अहिंसक दयाशील राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (पृ० ७–९)

सू० [५०]—विश्वेदेवाः । उत्तम मित्र और धनैश्वर्य प्राप्ति का उपदेश । (२) समवाय बनाने का उपदेश । (३) अतिथियों, स्त्रियों और शिष्टों को आदर करने का उपदेश । (४–५) रथाध्यक्ष, सेनाध्यक्षों से शान्ति सुख की आशा (पृ० १०–११)

सू० [५१]—विश्वेदेवाः । राजा वा शासक का पुत्रवत् प्रजा के पालन का कर्त्तव्य । (२–३) धर्मात्माओं को प्रजापालन में योग देने

का उपदेश। (४) प्रजा के पुत्रवत् पालक शासक के अभिषेक का प्रस्ताव। (५) उसका मधुपर्कादि से आदर। (६) विद्वान् बलवान्, जनों को आमन्त्रण। (७) शासकों, शिष्यों के कर्त्तव्य। अन्न के गुण। (८–१०) राजा प्रजा का गुरु शिष्यवत् कर्त्तव्य। (११–१५) विद्वानों शिल्पियों, तथा भौतिक शक्तियों से भी कल्याण-याचना। (पृ० ११–१६)

सू० [५२]—मरुतः। (१–१०) राजा, अधिनायक के कर्त्तव्य। (११) वायुवत् वीर विद्वान् वैश्यों के कर्त्तव्य। (१२) कूपवत् राजा वा प्रभु का आश्रय। (१३–१६) वीरों का आदर। (१७) नियन्त्रित सेना बल से शक्ति और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। (पृ० १७–२३)

सू० [५३]—मरुतः। वायुओं, प्राणों, विद्वानों और मनुष्यों की उत्पत्ति का रहस्य। उनका नियोक्ता कौन ? (२) रथी वीरों का प्रयाण, (३–४) उत्तम वीर तेजस्वी पुरुषों से उपदेश की प्रार्थना। (६) नायकों के बिजली मेघादिवत् गुण। (७) जलप्रवाह, अश्व, नदी, वायु आदि दृष्टान्त से वैश्यों के कर्त्तव्य। (९) परिहारयोग्य स्थान। (१०) वीरों के पीछे अनुगमन। (११–१४) उन्नति के निमित्त उपदेश। (१५–१६) तेजस्वी होने आदि की प्रार्थना। (पृ० २३–३०)

सू० [५४]—मरुतः। (१–१०) विद्वानों के कर्त्तव्य, चोरी का निषेध, कृषि व्यापारादि की आज्ञा। (११) वीरों की पोशाक उनका तेजः स्वरूप। (१२–१३) चमकते मेघोंवत् शत्रु पर वीरों के आक्रमण की आज्ञा। (१४) साम उपाय का उपदेश। (पृ० ३०–३८)

सू० [५५]—मरुतः। वीरों का वर्णन उनके कर्त्तव्य। (३८–४३)

सू० [५६]—मरुतः। वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। (१) वीरों का स्वर्णपदकों से सजना। (२) उनको उत्साहित करना। (३) मेघमालावत् प्रजा, सेना और सूर्य वा ऋक्ष के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य। (४–९) वीरों का वर्णन, योग्य पुरुषों की नियुक्ति। उनके कर्त्तव्य और योग्य आदर। (पृ० ४३–४७)

सू० [५७]—मरुतः । वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य । श्रेष्ठ रथों का उपभोग । (२) उत्तम वीरों को उपदेश । 'पृश्नि मातरों' का रहस्य । (३–८) मेघमालाओं और वायुओं के दृष्टान्त से उनका वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ४७–५१)

सू० [५८]—मरुतः । (१–४) वीरों, विद्वानों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य । (५) अरों के दृष्टान्त से उनको उपदेश । (६) वर्षते मेघों की तुल्यता से वर्णन । (७) वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० ५१–५५)

सू० [५९]—मरुतः । (१–७) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । शोभा और ऐश्वर्य के निमित्त बल धारण का उपदेश । वीरों को सुव्यवस्थित होकर युद्ध करने का उपदेश । (८) राजा, सेनाओं और स्त्रियों के कर्त्तव्य । (पृ० ५५–६०)

सू० [६०]—मरुतः अग्निः । (१–३) वीरों, विद्वानों का वर्णन । प्रजा की उत्तम अभिलाषा । (४) विवाहित वरों के तुल्य सुदृढ़, सुन्दर होने का उपदेश । (५) भ्रातृवत् समान रूप से उनको रहने का उपदेश । (६) सन्तोष का उपदेश । (७) ऐश्वर्य दान का उपदेश । (८) राजा को विद्वान् होने का उपदेश । (पृ० ६०–६४)

सू० [६१]—मरुतः । (१–४) परस्पर कुशलप्रश्न व्यवहार का उपदेश । अध्यात्म में—प्राणों का वर्णन । (५–८) शशीयसी महिषी-स्त्री को वीर, जितेन्द्रिय पुरुष के वरण का उपदेश । (९–१०) दाम्पत्य के लिये प्रेमपूर्वक वरण का उपदेश । (११–१६) मरुतः । विद्वान् यशस्वी सफल गृहस्थ । (१७–१८) दाल्भ्यः । दूत का कार्य । विद्युत् यन्त्रों से दूर देश में व्याख्यानों को पहुँचाने और यानों द्वारा मेल–सर्विस का उपदेश । (पृ० ६४–७१)

सू० [६२]—मित्र और वरुण । (१–३) सूर्यवत् राजा-प्रजा वर्गों को सत्य व्यवहार का उपदेश । (४–५) श्रेष्ठ पुरुषों का न्यायासन पर

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ७७–१६२)

सू० [७१]—मित्र वरुण। ज्ञानी और सर्वप्रिय जनों का ज्ञान और लोकोपयोगी कर्मों के बढ़ाने का उपदेश। (पृ० ९६)

सू० [७२]—मित्र वरुण। उक्त अध्यक्षों को माता पितावत् प्रजा पालन का उपदेश। (पृ० ९७–९८)

सू० [७३]—अश्विनौ। रथी सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) उनके आदर का उपदेश। (३) उनको परस्पर बंधने और गृहस्थ चलाने का उपदेश। गृहस्थ का उच्च आदर्श। (५–७) उत्तम काम का उपदेश। (८) दोनों को व्यापार, यात्रादि का उपदेश। (९–१०) स्त्री पुरुष को उपदेश। (पृ० ९८-१०२)

सू० [७४]—अश्विनौ। (१–३) गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उपदेश। (४) राष्ट्र में उनकी उत्तम पदों पर नियुक्ति। (५) बूढ़ों को पृथक् कर समर्थ युवकों की नियुक्ति। (६–८) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (९–१०) सभा सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० १०२–१०६)

सू० [७५]—अश्विनौ। विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० १०६–१११)

सू० [७६]—अश्विनौ। रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के परस्पर के कर्त्तव्य। (पृ० १११–११३)

सू० [७७]—अश्विनौ। प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ११३–११६)

सू० [७८]—अश्विनौ। (१–४) सत्याचरण का उपदेश। दो हंसों और हरिणों के दृष्टान्त से उनके कर्त्तव्यों का वर्णन। (५) वनस्पति, आचार्य के कर्त्तव्य। (७–९) गर्भस्त्रावणी उपनिषत्॥ गर्भविज्ञान, उत्तम प्रसवविज्ञान॥ (पृ० ११६–१२०)

सू० [७९]—उषा। प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्री के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) 'दिवः दुहिता' का रहस्य। (२) पति पत्नी दोनों के पक्षों में समान योजना। (८) उत्तम माता के कर्त्तव्य। दान का उपदेश। (पृ० १२०–१२५)

सू० [८०]—उषा। उत्तम विदुषी गुणवती स्त्री का वर्णन। (२) जीवन मार्ग को सुखी बनाने वाली सहायक स्त्री। (३) गृत्तम गृहिणी। (४) पतिव्रता का कर्त्तव्य। (५) वरवर्णिनी का आदर। (६) उसके कर्त्तव्य। (पृ० १२६—१२९)

सू० [८१]—सविता। परमात्मा का वर्णन। (१) सर्वोपरि स्तुत्य। (२) जगद्-उत्पादक, जगत्पालक, सर्वसम्राट्, पापनाशक। (३) जगन्निर्माता, सर्वाग्रणी, सर्वनेता। (४) सबका आद्यन्त। सर्वमित्र। (५) एक अद्वितीय, सर्वपोषक, विराट्। (पृ० १२९—१३२)

सू० [८२]—सविता। परमेश्वर का वर्णन। (२) अविनाशी सामर्थ्यवान् प्रभु। (३) उससे ऐश्वर्य की याचना। (४) दुःस्वप्न-नाशन की प्रार्थना, (५) भद्र-कल्याण की प्रार्थना। (६) निष्पाप होकर ऐश्वर्य धारण की प्रार्थना। (७) सर्वपाल सविता प्रभु का वरण। (८) सर्वोपास्य सर्वसाक्षी प्रभु। (९) सर्वगुरु प्रभु। (पृ० १३२—१३५)

सू० [८३]—पर्जन्य। (१—३) मेघवत् राष्ट्रपालक का वर्णन। (४) बरसते मेघ के साथ युद्ध का विशिष्ट वर्णन। (५) सर्वपोषक राजा और मेघ। (६) धारावान् मेघ और सेनाध्यक्ष। (७) उत्तम न्याय व्यवस्था का आदर्श। (८) मेघवत् कोश वृद्धि और सद् व्यय का उपदेश। (९) मेघवत् उदार सर्वप्रिय राजा। (१०) मेघवत् परविजयी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १३५—१४२)

सू० [८४]—पृथिवी। माता का वर्णन। (२) उसका पति के प्रति कर्त्तव्य। (३) उसका भूमिवत् राजशक्ति के तुल्य वर्णन। (पृ० १४२—१४३)

सू० [८५]—वरुण। सर्वश्रेष्ठ प्रभु। (२) राजा के राष्ट्रोपयोगी कर्त्तव्य। (३) प्रजा का कष्टवारक सम्राट्, वरुण। (४) राजा के भूमि सेचन के कर्त्तव्य। (५—६) महान् असुर की माया का वर्णन। (७—८) पापमोचन की प्रार्थना। (पृ० १४३—१४८)

सू० [८६]—इन्द्र अग्नि । (१-२) विद्युत् अग्निवत् नायक, अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (३-४) उनका स्वरूप राजा और विद्वान् । (५) दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । (पृ० १४८-१५०)

सू० [८७]—मरुद् गण । (१-४) मरुत्वान् प्रभु का वर्णन । उत्तमों का आदर, सत्संग और गुरु जनों से ज्ञान प्राप्ति का उपदेश । (५-९) अग्निवत्, वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० १५०-१५५)

इति पञ्चमं मण्डलम्

अथ षष्ठं मण्डलम्

सू० [१]—अग्निः । (१-५) अग्निवत् तेजस्वी वीर विद्वान् के कर्त्तव्य । (६) उपासना का प्रकार । (७) नायक के कर्त्तव्य, प्रजा का चित्तरञ्जन । (८) 'विश्पति' राजा और ईश्वर । उसकी उपासना । (९) ईश्वर भक्त को सत्फल । (१०) अग्निहोत्र की सत्कार से तुलना । (११-१३) ईश्वर से ज्ञानों, ऐश्वर्यों की याचना । इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ (पृ० १५६-१६२)

अथ पञ्चमोऽध्यायः (पृ० १७९-२६१)

सू० [२]—अग्निः । (१-४) तेजस्वी पुरुष और पक्षान्तर में ईश्वर का वर्णन । (५-११) यज्ञ और उपासना । अग्नि और ईश्वर का औपम्य । (१२) संसार से तरने के लिये ज्ञान की याचना । (पृ० १६२-१६७)

सू० [३]—अग्निः । विद्वान्, राजा, प्रभु इनका समान रूप से वर्णन । (२) अग्निहोत्र वा यज्ञ का सत्फल । (३) सूर्यवत् ज्ञानवान् प्रभु । (४) विद्वान् राजा का परशु, आज्य, नियारिया और अग्निवत् कर्त्तव्य । (५) उसको असंग होकर धनुर्धर वा श्येन पक्षीवत् कर्त्तव्य-

(४-६) तमोनिवारक सूर्यवत् राजा तथा गुरु का कार्य। (७) 'शत हिमा:' सौ बरस जीने की प्रार्थना। (पृ० १९३-१९७)

सू० [११]—अग्निः। प्रमुख नायक के कर्त्तव्य। (२) देह की गृहस्थ से तुलना। (३) स्वयंवरण का प्रचार। (४) अग्नि तुल्य वर का रूप। (५-६) गृहस्थ यज्ञ। (पृ० १९७-२०१)

सू० [१२]—अग्निः। राजा और विद्वान् गृहपति का वर्णन। (२) उसको यज्ञ का उपदेश। (३) घोड़ों पर चाबुक के समान राजा वा नायक की स्थिति। (४) नायक के अग्नि, अश्व, पिता के समान कर्त्तव्य। उसे वनस्पति भोजी 'द्रवन्न' होने का उपदेश। (५) द्रवत् विद्युत् का वर्णन, उसके सदृश प्रजानुरंजक राजा के कर्त्तव्य। (६) 'शत हिमा:' सौ बरस जीने की प्रार्थना। (पृ० २०१-२०५)

सू० [१३]—अग्निः। (१३) वृक्ष से शाखावत् सूर्य से वृष्टियों के समान राजा से राज-सभाओं का विकास। (२) अग्नि से प्रकाश और जाठराग्नि से प्राणों के तुल्य राजा से न्याय की उत्पत्ति। (३-६) सूर्य से जल, मेघ, अन्नवत् राजा से राज्यों की वृद्धि। (पृ० २०५-२०८)

सू० [१४]—अग्निः। (१-३) विद्वान् अग्नि का स्वरूप। वह यथार्थ ज्ञान प्रकाश करने से 'अग्नि' है। (४) क्षत्राग्नि तेजस्वी नायक का शत्रुभयकारी बल है। (५) ज्ञानबल से निन्दकों पर विजय लाभ। (६) प्रभु से पापों और शत्रुओं को पार करने की याचना। (पृ० २०८-२१०)

सू० [१५]—अग्निः। 'उषर्बुध' प्रातः जागने का रहस्य। जीवन के प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश। (२) 'वनस्पति' रूप आचार्याग्नि के कर्त्तव्य। (३) 'वीतहव्य' का रहस्य। (४-७) अग्नि-परिचार्यवत् प्रभु परिचर्या का वर्णन। (८) अमृत, विश्पति विभु की उपासना। (९) तिमंजिले भवन के समान त्रिविध तापवारक प्रभु। (१०-१२) ज्ञानी प्रभु की गुरुवद् उपासना। (१३) 'जातवेदा'

अग्नि का लक्षण, उसके 'होता', 'गृहपति' आदि अन्वर्थ नाम। (१४) परमेश्वर, राजा का यज्ञकर्त्ता और अग्नि के तुल्य वर्णन। (१५–१६) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव। (१७–२०) मथ कर उत्पादित विद्युत् या अग्नि के तुल्य परस्पर विवादसंघर्ष द्वारा विद्वान् नायक की उत्पत्ति। (२१०–२२१)

सू० [१६]—अग्निः। (१–३) ज्ञानमय जगदीश्वर की स्तुति। विद्वान् की जनता में स्थिति। (४) उसकी 'द्विता', सगुण निर्गुण, उपासना के प्रकार। (५) पात्रप्रद विवेकी प्रभु। (६) 'दूत' प्रभु। (७) 'स्वाध्य', स्तुत्य, अनुकरणीय प्रभु। (९) मनु, वह्नि, अग्नि, सर्वाश्रय, ज्ञानी प्रभु। (१०) ज्ञान की पुकार। (११) ज्ञानाग्नि का यज्ञाग्निवत् प्रज्वालन। (१२) प्रकाशवत् ज्ञानवितरण। (१३) 'पुष्कर' मेघस्थ अग्निवत् शिरोमणि विद्वान् की स्थिति। (१४) अथवा 'दध्यङ्' ऋषि के अग्नि मथन का रहस्योद्भेद। (१४) 'पाथ्य' 'वृषा', मेघवत्-प्राण का वर्णन। (१६) उपदेष्टा की चन्द्रवत् वृद्धि। (१७) उत्तम बल प्राप्ति का उपदेश। (१८) समर्थ राजा का लक्षण। (१९) 'दिवोदास' का रहस्य। (२०) 'अवात' अनबूत अग्नि राजा। (२१) राजा को राज्य विस्तार का उपदेश। (२२) अग्रणी के गुण स्तवन, उपदेश। (२३) विद्युत्वत् विद्वान् अध्यक्ष, उसकी दीर्घायु। (२४) राजा का कर्त्तव्य गृहस्थों का बसाना। (२५) राजा विद्वान् और प्रभु का सम्यग् दर्शन सर्वलोक-हितार्थ है। उसका कर्त्तव्य पापों से प्रजा की रक्षा। (२६) आत्मसमर्पक की ब्रह्म प्राप्ति। (२७) प्रभु, स्वामी के सच्चे सैनिक। (२८) प्रजाभक्षकों का नाश, राजा का कर्त्तव्य। (२९) 'रक्ष' दुष्टों का उत्पीडन। (३०) पापों और पापियों से प्रजा का पालन। (२१) दुष्टों का मूलोच्छेदन। (३२) हमारे विरोधी दुष्ट पुरुष को वचन द्वारा दण्डित करना या वाक्छेदन करने का दण्ड। (३३–३४) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (३५) माता के गर्भ

में बालकवत् राज्य गर्भ में राजा की स्थिति। (३६) धन, ज्ञानप्रद जातवेदा का स्वरूप। (३७) सम्यग् दृष्टि वाले ज्ञानी के पास से ज्ञानोपार्जन। (३८) धूप में तप्त की छायावत् प्रभु शरण प्राप्ति। (३९) बलवान् राजा का शत्रु पुर भेदन। (४०) प्रजा का राजा के प्रति मातृतुल्य स्नेह। (४१-४६) योग्य की योग्य पद आदर प्राप्ति। (४७) राजा के अधीन जनों के गुण। (४८) अग्रासन योग्य जन के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति, दुष्ट नाश। (पृ० २२१-२२७) इति पञ्चमोऽध्यायः॥

अथ षष्ठोऽध्यायः (२३७-२९८)

सू० [१७]—इन्द्रः। 'वज्रहस्त'। राजा को शत्रु दमन के साथ राष्ट्र में कृषि की वृद्धि का उपदेश। (२-३) 'गोत्रभिद्'। राजा के सद्‌गुण व उसके कर्त्तव्य। (४) उसका अभिषेक। (५) उषावत् सूर्य के तुल्य राजा प्रजा का अभ्युदय। (६-८) प्रजा की वृद्धि के नाना द्वार खोलने का उपदेश। (९) राजा के दो भय, उनसे विनीत प्रजा। (१०) राजा के बल के ५ गुण, भयकारी, सर्वनाश में समर्थ, तीक्ष्ण, सुखद, सर्वाश्रय योग्य। (११-१२) सूर्यवत् राजा के दो कार्य १. अन्नवत् शत्रुपाक, २. मेघवत् सरोवरपूरक। (१३) ऐसे राजा का वरण। ज्ञान (१४-१५) ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना। (पृ० २३७-२४४)

सू० [१८]—इन्द्रः। (१-५) एक ईश्वर की स्तुति। उसका वेदोपदेश। (६) राजा के अनेक उत्तम कर्त्तव्य। (७) सर्वोपरि राजा के गुण। (८) प्रजा के सुखार्थ प्रजा के भक्षकों का दमन। (९) महारथी होने का उपदेश। उसको कर्त्तव्य का उपदेश। (१०) बिजलीवत् शत्रुओं का नाश। (११) दुष्टों को धनापहार का दण्ड। (१२) अद्वितीय बलशाली प्रभु और राजा का वर्णन। (१३-१५) राजा को उपदेश। शासन, दान, उन्नयन, शक्तिवर्धन। (पृ० २४४-२५१)

सू० [१९]—इन्द्रः। (१-३) शरीर में प्राणवत् राजा की स्थिति। उसके कर्त्तव्य। (४) सदाचारी प्रजा होने के उद्देश्य से राजा की

स्थापना। (५) राजा के उत्तम गुण। (६–९) उसके कर्त्तव्य। प्रजा का शक्तिवर्धन। (१०–१३) अभ्युदयादि। प्रजा की नाना कामनाएं। (पृ० २५१–२५६)

सू० [२०]—इन्द्रः। (१–३) राजा के गुण। (४–६) दशावरा परिषत्पति का बलशाली पद। 'नमुचि' के शिरोमथन का रहस्य। 'शुष्ण' के वध का रहस्य। (७) 'पिप्रु' शत्रु का रूप। उसका दमन। अहार्य धन का दान। (८) शासनार्थ उत्तम उपकरण, दशावरा, हस्ती यान, सैन्य बल, आदि का ग्रहण। (९) न्यायासन पर विराजे अधिकारी के कर्त्तव्य। (१०) उत्तम सैन्यशिक्षा। (११) राजा के पितातुल्य कर्त्तव्य। (१२) जलधारावत् प्रजाओं का सन्मार्ग में प्रवर्त्तन। राजा का आदर। 'धुनि', 'चुमुरि' हनन का रहस्य। (पृ० २५७–२६२)

सू० [२१]—इन्द्रः। प्रभु का महान् ऐश्वर्य। (३) प्रभु के अनुग्रहेच्छुओं का अहिंसा महाव्रत। (४) प्रभु का सर्वश्रेष्ठ रूप। (५) वह सर्वज्ञ है। (६) उसके प्राप्त्यर्थ दीक्षा, स्तुति आदि। ईश्वर का सर्वातिशायी बल। (८) इन्द्र, राजा को उपदेश। (९) उसके कर्त्तव्य। (१०) बहु शक्तिशाली प्रभु का वर्णन। उसके प्रति प्रार्थना। (पृ० २६३–२६८)

सू० [२२]—इन्द्रः। इन्द्र की अर्चना। (२) उसके सत्संगी। उसके पितृगण। (३–४) राजा के अधिकार का निरूपण। (५) उसको अधिकार दान। कर्त्तव्य शिक्षण। (७) सर्वधारक प्रभु। (८–११) पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य। (पृ० २६८–२७३)

सू० [२३]—इन्द्रः। (१–७) इन्द्र राजा व उसके कर्त्तव्य। (९) सभा सदस्यों द्वारा राजा का अभिषेक। (१०) अभिषिक्त के कर्त्तव्य। (पृ० २७३–२७७)

सू० [२४]—इन्द्रः। राजा के कर्त्तव्य। (२) उसकी शक्तियों की शाखावत् वृद्धि। (३–४) गौओं और बछड़ों के तुल्य और प्रभु राजा की शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं की स्थिति। (५) राजा का सर्वप्रिय रूप। (६) नदीवत् प्रजाओं के स्वभाव। (७) उस प्रभु की महती शक्ति। (८) मेघवत् शस्त्रवर्षी बल। (९) पितावत् राजा के कर्त्तव्य। (पृ० २७७–२८३)

सू० [२५]—इन्द्रः। 'वृत्रहत्या'; रक्षक स्वामी के कर्त्तव्य। (२) प्रजा की संकटों में रक्षा। (३) पीड़ाकारियों का नाश। (४) उत्तम न्यायकारी का पद इन्द्र। (५) इन्द्र के समान कोई शूर या योद्धा नहीं। (६) न्यायानुसार विभाजक इन्द्र पद। (७) त्राता दुष्ट-संहारक। (२८३–२८६)

सू० [२६]—इन्द्रः। (१–८) प्रजा सेवकादिभक्त राजा। उसका दुष्टदमन का कर्त्तव्य। (पृ० २८७–२९०)

सू० [२७]—इन्द्रः। राज्यैश्वर्य की रक्षा और दुष्ट दमन के उपायों का उपदेश। (२) न्याय का उपदेश। (३) इन्द्र का अज्ञेय ऐश्वर्य। (४) उसका सर्वभयकारी बल। (५) राजा का भयानक शासन। 'हरियूपीया' का रहस्य। (६) राजा की ३००० सेना और सैन्यों के कर्त्तव्य। (७) राजा की शत्रु-उच्छेदक नीति। (८) 'दक्षिणा' नाम की राजसभा के २० सदस्यों का विधान। (पृ० २९१–२९४)

सू० [२८]—गावः। (१–८) 'गोसूक्त'। गौओं के दृष्टान्त से वेदवाणियों का वर्णन। (२) राजा का प्रजाजन को खजाने के समान रक्षा करने का कर्त्तव्य। (३) अचौर्य धन। (४) ज्ञानी इन्द्र की अहिंस्य गौएं, वाणियें हैं। (५) इन्द्र, राजा, गृहपति, विद्वान् से भूमि, गौ, वाणी दान करने की याचना। (६–८) गौओं और वाणियों के उत्तम गुणों की तुलना। (पृ० २९५–२९८) इति षष्ठोऽध्यायः॥

अथ सप्तमोऽध्यायः (पृ० २९९-३७५)

सू० [२९]—इन्द्रः। महत्वाकांक्षियों को इन्द्र, गुरु आदि की शरण। (२) प्रधान पुरुष की योग्यता। (३) उसकी सूर्यवत् स्थिति। (४) राजा के उत्तम गुण, 'सोम', 'धाना', 'पक्ति' 'ब्रह्मकार' आदि का स्पष्टीकरण। (५) सर्वरक्षक महाप्रभु। (६) अनुपम बलशाली इन्द्र। (पृ० २९९-३०१)

सू० [३०]—इन्द्रः। सूर्य पृथिवीवत् राजा भूमि का प्रकाश्य-प्रकाशक भाव। (२-५) इन्द्र का महान्, अविनाशी, दर्शनीय सामर्थ्य। शत्रु विजय, सेना-उत्पादन का उपदेश। (पृ० ३०२-३०४)

सू० [३१]—इन्द्रः। 'रयिपति' इन्द्र। उसका प्रस्ताव अनुमोदन, वादविवाद द्वारा निर्वाचन। (२) उसके सद्गुण। विद्युत्वद् भयकारी बल। (३) इन्द्र कृषक का वर्णन। (४) राजचक्र प्रवर्त्तन। दुष्टनाश 'शम्बर' का वध, 'दिवोदास' 'भरद्वाज' आदि का स्पष्टीकरण। (५) इन्द्र से रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ३०४-३०७)

सू० [३२]—इन्द्रः। महान् इन्द्र का उपस्तवन। (२) उसके सूर्यवत् कर्त्तव्य। (३) वीरों को सभ्यता, शिष्टाचार का उपदेश। उनको एक साथ काम करने की शिक्षा। (४) पंक्तिबद्ध पुरुवीर सेनाओं का उपदेश। (५) सेनापति और अध्यक्ष के सेनाओं को नदी-सागर दृष्टान्त से प्राप्त होने का उपदेश। (पृ० ३०७-३१०)

सू० [३३]—इन्द्रः। (१-३) उत्तम, उदार, बलवान् राजा का कर्त्तव्य। (४-५) उसको प्रजा का रक्षार्थ आह्वान। उसका प्रजा के प्रति उचित भाव। (पृ० ३१०-३१२)

सू० [३४]—इन्द्रः। समस्त वाणियों, स्तुतियों, प्रवचनों का एक मात्र पात्र प्रभु 'इन्द्र'। (२) वह रथवत् सर्वाश्रय, उपास्य है। (३) सर्वस्तुत्य शान्तिदायक प्रभु। (४) अमावस्या में सूर्य चन्द्रवत्

सू० [४४]—इन्द्रः । अभिषेक योग्य सोम स्वधापति । उसके कर्त्तव्य । (४-९) इन्द्र पद के योग्य पुरुष के लक्षण और आवश्यक गुण । उसके कर्त्तव्य । (१०-१३) सर्वोपरि बन्धु प्रभु । (१४-१६) सूर्य मेघवत् राजा का शत्रु नाश और प्रजापालन का कार्य । (१७-२०) शत्रु दमन का उपदेश । (२१) संगठनकारी राजा । (२२) शत्रुबल का स्तम्भन धारण । (२३) उत्तम सेनाओं का बनाना । (२४) सूर्यवत् उभय लोक का शासन । (पृ० ३३५-३४५)

सू० [४५]—इन्द्रः । (१-९) सखा ईश्वर स्वामी । उत्तम राजा की स्तुति, उसके कर्त्तव्य । (१०-१६) 'वाजपति' गुरु का राजावत् वर्णन । उसके कर्त्तव्य । प्रजा के वचन श्रवण, शत्रु के बल का विजय, राष्ट्र की उन्नति करे । (१७) शिवः सखा । (२०) एक, अद्वितीय । (२१-२४) तीनों वर्णों के राजा के प्रति कर्त्तव्य । (२५-२८) प्रजाओं को वत्सों के प्रति गोवत्, राजा के प्रति वात्सल्य भाव । (२९-३०) संशयच्छेता विद्वान् का आदर । (३१-३३) बृबुः तक्षा । उच्च तटवत् ज्ञानी व शिल्पी की स्थिति । (पृ० ३४५-३५४)

सू० [४६]—इन्द्रः । (१-१२) प्रभु 'सत्पति' का आह्वान । उसके कर्त्तव्य, प्रजा रक्षण । (१३) श्येनों के समान वीरों का पलायन । (पृ० ३५५-३६०)

सू० [४७]—सोमः । (१-५) स्वादु, मधुमान्, रसवान् 'सोम' । उसका अप्रतिम बल । (२) शत्रु के ९९ प्रकार के बलों के नाशक । (३) सोम से उत्तम वाणी तथा मति की प्राप्ति । (४-५) अमृत सोमतत्त्व । (६-३१) इन्द्र । इन्द्र का सोमपान । (७-१०) दीर्घ जीवन, बुद्धि, वाणी की प्रार्थना । (११) 'त्रातारमिन्द्रम्०', इन्द्र के लक्षण । (१२-१४) सर्वस्तुत्य प्रभु । (१५-१६) राजा का उन्नति पद की ओर बढ़ने का प्रकार । (१८) 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव' राजा और जीवात्मा का वर्णन । (१९) इन्द्र का उद्बासन । २०) मार्ग

अथ अष्टमोऽध्यायः (पृ० ३७६–४४६)

और रश्मियों के गुण। (१३) 'सत्पति', उसके कर्त्तव्य। (१४–१५) राजाधीन वीरों के कर्त्तव्य । (१६) परम पन्था प्रभु । (पृ० ३९९–४०७)

सू० [५२]—विश्वेदेवाः। उत्तम यज्ञशील का अभ्युदय। (२–६) दुष्ट पुरुषों के प्रति राजा का कर्त्तव्य। (७–१७) विद्वानों की अर्चना। उनसे निवेदन। (पृ० ४०७–४१४)

सू० [५३]—पथस्पति पूषा। (१–६) विद्वान् राजा। उसके कर्त्तव्य। दुष्टों का दकन। (७–८) व्यवहार पत्र लेखनादि का उपदेश। (९–१०) चाबुकवत् वाणी का प्रयोग। (पृ० ४१५–४१८)

सू० [५४]—पूषा। (१–७) विद्वान् आचार्य। पूषा राजा के कर्त्तव्य। (८–९) उससे न्याय की याचना। (१०) खोया धन भी प्राप्त हो। (पृ० ४१८–४२०)

सू० [५५]—पूषा। (१–३) ऐश्वर्यवान्, मित्र आदेष्टा। (४–५) सूर्यवत् प्रकाशक। 'स्वसुर्जार', 'मातुर्दिधिषु' का रहस्य। (६) रथ के अश्वों के समान अमात्यों के कर्त्तव्य। (पृ० ४२०–४२२)

सू० [५६]—पूषा। अयाचित दाता प्रभु। (२) सत्पति इन्द्र। आत्मा। (३) रथीतम। उसके नाना कर्त्तव्य। (४–६) प्रजा के निवेदन। (पृ० ४२३–४२४)

सू० [५७]—इन्द्र पूषा। (१–२) इन्द्र कृषक जन, पृथिवीपति पूषा। व्यापारी वर्ग इन्द्र और कृषक वर्ग पूषा। (३–४) इन्द्र राजवर्ग, प्रजा पूषा। (६) दोनों की भिन्न व्यवस्था। (पृ० ४२४–४२७)

सू० [५८]—पूषा। रात्रि-दिनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२–३) गृहपति पूषा। (४) 'इळस्पति' पूषा। (पृ० ४२७–४२९)

सू० [५९]—इन्द्र अग्नि। (१–४) सूर्य अग्निवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) उसका विद्युत् अग्निवत् वर्णन। (६) उत्तम स्त्री।

इति चतुर्थोऽष्टकः

पञ्चमोऽष्टकः

सू० [६६]—मरुतः। (१-२) विद्वानों मरुतों के कर्त्तव्य। (३) उत्तम सन्तानोत्पादक का उपदेश। (५-६) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य रक्षा आदि। (७) वायुओं द्वारा विना अश्वादि के रथ के समान जीवन का निष्पाप मार्ग। (८) वीरों से रक्षित नायक का अनुपम बल। (९-११) वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ४६५-४७१)

सू० [६७]—मित्र वरुण। स्नेही दुःखवारक प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (२-११) मित्र-वरुण वरवधू के कर्त्तव्य। उनको गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेक उपदेश। (पृ० ४७१-४७६)

सू० [६८]—इन्द्र वरुण। (१-४) युगल प्रमुख पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) इन्द्र वरुण की व्याख्या। (६-११) इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुषों का वर्णन। (पृ० ४७६-४८१)

सू० [६९]—इन्द्र विष्णु। (१-६) सूर्य विद्युत्वत् राजा प्रजा वर्गों के परस्पर कर्त्तव्य। (७) ऐश्वर्य की वृद्धि और उत्पत्ति का उपदेश। उक्त सबको अन्न ऐश्वर्य से पेट भरने का उपदेश। (८) अपरिमित ज्ञान, बल ऐश्वर्य प्रकट करने की प्रेरणा। (पृ० ४८१-४८४)

सू० [७०]—द्यावा पृथिवी। भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू वा स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वे सूर्य भूमि वा जल-अन्न सम्पन्न, शुद्धाचार, दानी, उत्तम सन्तति के माता पिता हों। (३) दोनों में आदर्श पुरुष का वर्णन। (४-६) दोनों का आदर्श पारस्परिक कर्त्तव्य। (पृ० ४८५-४८८)

सू० [७१]—सविता। 'हिरण्यबाहू', उत्तम निपुण राजा के कर्त्तव्य। (२) वह प्रजा के प्राणों की रक्षा करे। (३) 'हिरण्यजिह्वः', मधुरभाषी तथा (४) 'हिरण्यपाणिः', धन को वश में रखने वाला। (५) सुप्रसन्न रहे। (६) प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करे। (पृ० ४८८-४९१)

सू० [७२]—इन्द्र सोम। सूर्य चन्द्रवत् स्त्री पुरुषों, गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (२) युवा-युवति को बसावें। माता भूमि का आदर करें। (३) आचार्य-शिष्य और विद्युत्-पवनवत् परस्पर सहायक। (४) परिपक्व वीर्य से सन्तान उत्पन्न करें। (५) धनादि उपार्जन करें। (पृ० ४९१–४९४)

सू० [७३]—बृहस्पति। परमेश्वर पिता और राष्ट्रपालक राजा। (२) वीर राजा। (३) बड़े राष्ट्र का स्वामी। (पृ० ४९४–४९५)

सू० [७४]—सोम रुद्र। (१–२) चन्द्र और वैद्य वा औषधि और वैद्यवत् शत्रु-रोगनाशक राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) जल और अग्नि के तुल्य वैद्यों को आरोग्यरक्षार्थ औषध संग्रह का उपदेश। (४) वरुण के 'पाश' अर्थात् प्रबल रोग से हमें छुड़ावे। (पृ० ४९४–४९७)

सू० [७५]—'संग्राम सूक्त'। युद्धोपकरण, कवच, धनुध, धनुष की डोरी, धनुष कोटि, तरकस, सारथी, रासें, अश्व, रथ, रक्षक, बाण, कशा, हाथ का रक्षक चर्म आदि २ पदार्थों के वर्णन तथा उनके महत्त्व। (१) 'वर्म', कवच की महिमा—शरीर पर घाव न लगे। (२) 'धनुष' के बल से समस्त दिशाओं को विजय करें। (३) प्रिय स्त्रीवत् 'ज्या' धनुष डोरी का वर्णन। संग्राम पार करने की सहायक डोरी। (४) माता पिता के समान 'आर्त्नी', धनुष कोटियों और पार्श्ववर्त्ती सेनाओं का वर्णन। (५) बहुपुत्र पितावत् 'इषुधिः' तरकस का वर्णन। संग्राम विजय में उसके साथ पीठ पीछे लगे वीर की तुलना। (६) 'रश्मयः' रासों का महत्व, अध्यात्म में आत्मा रथी का वर्णन। (७) 'अश्व' घोड़े और घुड़सवार वीरों का वर्णन। (८) युद्ध 'रथ'। (९) सेनाध्यक्ष 'पितरों' या रक्षकों का वर्णन। (१०) विद्वान् ब्राह्मण पितरों का वर्णन। बाणों का वर्णन। पक्षान्तर में भूमि और भूमिपालों का महत्व पूर्ण वर्णन। (११–१२) बाणवत् सरल पुरुष का वर्णन। (१३) अश्व चालक

'कशा' का वर्णन। (१४) 'हस्तघ्न' हस्तत्राण और वीर पुरुष का वर्णन। (१५) विष से बुझे बाण तथा सुन्दर स्त्री का वर्णन। (१६) छोड़े हुए बाणवत् सेना का वर्णन। (१७-१९) युद्ध में आशीर्वाद। (पृ० ४९७-५०६)

इति षष्ठं मण्डलम्

अथ सप्तमं मण्डलम्

सू० [१]—अग्निः। अरणी मथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निवत् परस्पर विचार विवाद द्वारा प्रधान नायक का निर्णय। (२) ऐसे दूरदर्शी पुरुष को चुनने के प्रयोजनों का कर्त्तव्य। (३-१४) नायक के गुण। उसके कर्त्तव्य, वह परुषभाषी को दण्ड दे। सेना, दण्ड को तीक्ष्ण करे। (१५) उत्तम रक्षक अग्नि, नायक। (१६) उसकी यज्ञाग्नि से तुलना। (१७-१८) उससे अग्निहोत्रवत् व्यवहार। (१९-२७) नायक से प्रार्थना व प्रजा के आवश्यक निवेदन। (पृ० ५०७-५१८)

अथ द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ५१९-५९०)

सू० [२]—आप्रम्। (१-३) यज्ञाग्निवत् शासक नायक का वर्णन। (४) अग्निहोत्र का वर्णन। (५-७) विद्वानों के वीरों के तुल्य कर्त्तव्य। (८) तीन देवी—भारती, इडा, सरस्वती। (९) 'देवकामः' प्रजा काम गृहस्थी को उपदेश। (१०-११) सूर्य वनस्पतिवत् राजा के कर्त्तव्य। पाचकवत् नायक के कर्त्तव्य। शमिता अग्नि का स्वरूप। (पृ० ५१८-५२३)

सू० [३]—अग्निः। 'घृतान्न पावक' अग्निवत् प्रमुख पुरुष के कर्त्तव्य। (२) प्रयाणशील राजा की 'अश्व' या अग्नि और सैन्य की प्रबल बात से तुलना। (३) अग्नि की लपटों के तुल्य राजा के अन्य वीरों का वर्णन। (४) जठराग्निवत् राजा का राष्ट्र शासन का कर्त्तव्य।

सू० [११]—अग्निः । जीवों का सुखप्रद स्वामी राजा । (२-३) शत्रुनाशक दूतवत् शासक । (३) 'हव्यवाह' अग्नि । (पृ० ५५५-५५७)

सू० [१२]—अग्निः । विद्युत् अग्नि का वर्णन । (२) उसके तुल्य प्रभु स्वामी के कर्त्तव्य । (३) वही वरुण, मित्र है । (पृ० ५५७-५५८)

सू० [१३]—वैश्वानरः । सर्वहितैषी वैश्वानर प्रभु की स्तुति । (२) उससे मुक्ति की याचना । (३) ज्ञान की याचना । (पृ० ५५८-५६०)

सू० [१४]—अग्निः । ज्ञानी की अर्चना । (पृ० ५६०-५६१)

सू० [१५]—अग्निः । (१-५) यज्ञवत् विद्वान् की परिचर्या । उससे उत्तम २ प्रार्थनाएं । (पृ० ५६१-५६६)

सू० [१७]—अग्निः । तेजस्वी बलवान् का आदर सत्कार का उपदेश । (२) सुब्रह्मा, वेदज्ञ का आदर । (३-४) उसका तेजस्वी सूर्य और अग्निवत् स्वरूप । (५) 'गृहपति' 'होता' 'पोता' अग्नि । (६-१०) उससे नाना प्रार्थनाएं । (११) 'द्रविणोदा' ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (१२) दानशील को बल वीर्य देता है । (पृ० ५६६-५७१)

सू० [१७]—अग्निः । विद्वान् शासक के कर्त्तव्य । (पृ० ५७१-५७३)

सू० [१८]—इन्द्रः । (१-३) राजा और विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (४) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । राजा 'गोपति' (५) निन्दित लोगों को दण्ड दे । (६) श्रमिक द्रव्य की व्यवस्था का उत्तम फल । श्रमिकों की मत्स्यों से उपमा । (७) 'आर्य' उत्तम राजपुरुषों का आकार प्रकार । (८) दुर्बुद्धि और कुकर्मी के लक्षण । (९) वशी राजा के सत्फल । (१०) गोपाल और गौओं के तुल्य प्रभु और जीव-गण । (११) राज समिति के २१ सदस्य । (१२--१३) शत्रु साधन । (१४) ६०६६ की सेना । (१५-१९) इन्द्र पदस्थ राजा के कर्त्तव्य । (२०) शम्बर का वध । (२१) पराशर 'वसिष्ठ' राजा ।

दान स्तुति। (२२–२५) सुदास पंजवन की दान स्तुति। 'सुदास', 'दिवोदास' आदि का रहस्य। (पृ० ५७३–५८५)

सू० [१९]—इन्द्रः। 'तिग्मशृंग' तीक्ष्णशृंग वृषभ के समान इन्द्र-पदस्थ उत्तम शासक का वर्णन। (२–४) राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य। कुत्स, शुष्ण, कुयव, वीतहव्य, सुदास, पौरुकुत्सि, वृत्र, चुमुरि, धुनि आदि का स्पष्टीकरण। (५) इन्द्र का ९९ पुरी भेदन और नमुचिवध का रहस्य। (६–११) इन्द्र से प्रार्थना। (पृ० ५८५–५९०)

इति द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः (पृ० ५९०–६५६)

सू० [२०]—इन्द्रः। (१–४) उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य। (५) 'सेनानी' इन्द्र। (६) इन्द्र से प्रार्थना का फल। (७) बड़ों का छोटों को शिक्षा देने का उपदेश। (८–१०) करप्रद प्रजा की रक्षा का कर्त्तव्य। (पृ० ५९०–५९४)

सू० [२१]—इन्द्रः। भूमि से अन्न उत्पन्न करने का उपदेश करने का राजा का कर्त्तव्य। (२–८) वह शत्रु और दुष्टों के कार्यों को गुप्त रूप से पता लगाकर दण्डित करे। दुष्ट जन यज्ञादि में विघ्न न करें। (९) रक्षक उत्तम सखा (१०) प्रजा को अभय प्राप्त हो। (पृ० ५९४–५९८)

सू० [२२]—इन्द्रः। इन्द्र का सोमपान, राष्ट्रपालन। (२) वृत्रहनन, शत्रुनाश। (३) अन्नोत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान, धन प्राप्ति। (४) मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन। (५) राजा की वाणियों की अवहेलना न कर उसकी कीर्त्ति कहना। (६–८) स्तुत्य राजा। (९) पूर्व और नूतन 'ऋषि', विद्वान् जन, वेदार्थ का प्रकाश करें। (पृ० ५९८–६०१)

सू० [२३]—इन्द्रः। (१–६) 'वसिष्ठ', विद्वान् और राजा का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ६०२–६०५)

सू० [२४]—इन्द्रः। (१–४) उत्तम गृहपतिवत् राष्ट्रपति का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (५) अभिषेक का प्रयोजन। सूर्यवत् शासक पद। (६) उसका कर्त्तव्य प्रजा को समृद्ध करना। (पृ० ६०५–६०७)

सू० [२५]—इन्द्रः। दशरक्षार्थ सेनाओं का युद्ध, शस्त्रसञ्चालन और शस्त्र का उद्यम। (२) दुर्ग में बैठकर शत्रुओं का नाश करने का उपदेश। (३) हिंसक दुष्ट का नाश और विजेता को प्रशंसा प्राप्त हो। (४) राजा का प्रजा को आश्रय। (५) राजा का समवाय बनाना। (६) सब शस्त्रादि बल शासन की वृद्धि के लिये हों। (पृ० ६०८–६१०)

सू० [२६]—इन्द्रः। (१–२) 'असुत सोम इन्द्र को हर्ष नहीं देता', उसकी व्याख्या। सोम प्रजाजन, ऐश्वर्य, ओषधि रस आदि; इन्द्र राजा, आत्मा, गुरु आदि। (३) अभिषिक्त शास्ता के कर्त्तव्य। (४) इन्द्र का सर्वोपरि पद। उसके न्यायशासन कर्त्तव्य। (५) कृषिवृद्ध्यर्थं मेघवत् प्रजावृद्ध्यर्थं राजा की स्तुति। (पृ० ६१०–६१३)

सू० [२७]—इन्द्रः। राजा की आवश्यकता। प्रभु का स्मरण और प्रार्थना। (२) वह हमारे लिये धन और ज्ञान के द्वार खोले। (३) राजा के अधिकार। (४) राजा का धन, बल दोनों पर नियन्त्रण ही प्रजा को सुख दे सकता है। (५) प्रजा का सेवक राजा। (पृ० ६१३–६१५)

सू० [२८]—इन्द्रः। उत्तम विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य। वे प्रजा की बात सुनें। (२) राजा का घोर वज्र और वह स्वयं असह्य हो। (३) शासकों का शासन करे, कर न देने वालों को दण्ड दे। (४) न्याय का उत्तम दाता हो। (५) वही उत्तम रक्षक 'इन्द्र' पद योग्य है। (पृ० ६१५–६१७)

सू० [२९]—इन्द्रः। उत्तम ऐश्वर्य का दाता राजा। (२) चतुर्वेदज्ञ शासक पद के योग्य है। (३) विद्या का अलंकार, विद्वान्

से विनय । (४) गुरुस्वीकरण । (५) वही गुरु 'इन्द्र' पद योग्य है । (पृ० ६१७-६१९)

सू० [३०]—'इन्द्रः' । ऐश्वर्य का स्वामी और बलशाली । (२) सेनापति होने योग्य पुरुष । (१-५) ज्ञान, बल आदि के लिये प्रार्थना । (पृ० ६१९-६२१)

सू० [३१]—इन्द्रः । (१-३) ब्रह्मचारी, मुमुक्षु, ऐश्वर्यपालक राजा सब 'सोमपाठन' हैं उनका गुण वर्णन करो । (४) 'वसु', इन्द्र से विनय । (५) वह दुष्ट के निमित्त प्रजा को पीड़ित न करे । (६) प्रजा के कवचवत् राजा । (७) सूर्याधीन आकाश पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों को सम्बद्ध रखने वाला राजा । 'स्वधावरी रोदसी' की व्याख्या । (८-११) राजा सदा सबका आदरणीय हो । (१२) सेनाओं और वाणियों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२१-६२५)

सू० [३२]—इन्द्रः । राजा विषयविलास में रत न होकर प्रजा के सुखों में सुखी रहे । (२) विद्वानों का मधुमक्खी के समान मधुव्रत । (३) पुत्रवत् पिता तुल्य प्रभु का स्मरण । (४) राष्ट्र धारणार्थ शासक को राजा नियुक्त करे । (५) वह राजा की प्रजा के कष्टों को सुने । (६) राजा के गम्भीर शासनों के पालक की वृद्धि । (७) राजा के विविध धन का भोग प्रजा को प्राप्त हो । (८) इन्द्रार्थ सोम-सवन अर्थात् राष्ट्रपति पद पर वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक । उसका समारम्भ । (९-१२) वीर्यवान् पुरुषों को उपदेश । (१३-१६) उत्तम मन्त्र, रक्षा का उपदेश । प्रभुभक्त को ही धर्मबन्धन तराते हैं । (१७-२१) धन का स्वामी विद्वानों का पालन करे । (२२-२४) ईश्वर के प्रति वात्सल्य प्रेम । (२५) शत्रुओं को दूर करने की प्रार्थना । (२६) पालक गुरु से ज्ञानप्रकाश की याचना । (२७) कर्म बन्धनों कोनदियों के समान पार करे । (पृ० ६२६-६३५)

सू० [३३]—वसिष्ठ व वसिष्ठ पुत्रों का संवाद। (१–९) मार्गदर्शी विद्वानों से उत्तम २ प्रार्थनाएं। उनका संप्रेरक दण्डवत् कर्त्तव्य। (१०) जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य। विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप। (११) 'मैत्रावरुण', 'वसिष्ठ' और 'उर्वशी' का रहस्य। उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, मित्र-वरुण प्राण-अपान। (१२) माता आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना। (१३) लड़का लड़की दोनों का गुरुगृहवास और व्रत-स्नान। (१४) उत्तम आचार्य वसिष्ठ। उसका शिक्षण। (पृ० ६३५–६४४)

सू० [३४]—विश्वेदेवाः। (१) विदुषी स्त्री। (२) आप्त स्त्रियों के कर्त्तव्य। (३) आप्त प्रजाजनों का कृषि आदि कार्य। (४) नायक का कर्त्तव्य। (५) सन्मार्ग पर बढ़ने का उपदेश। (६) ध्वजावत् वीर का स्थापन। (७) पृथिवीवत् स्त्री के कर्त्तव्य। (८–९) विद्वानों से प्रार्थना। (१०–१५) सूर्यवत् शासक का कर्म। (१६) अहिः। सूर्य। उनकी स्तुति। (१७) अहिर्बुध्न्यः, मेघवत् सर्वाधार पुरुष। (१८–२१) शत्रुतापन। (२२–२५) सूर्य भूमिवत् सैन्य और सेनापति आदि के कर्त्तव्य। (पृ० ६४४–६५०)

सू० [३५]—विश्वेदेवाः। 'शान्तिसूक्त'। (१–१५) समस्त भौतिक तत्वों से शान्ति प्राप्त करने की प्रार्थना। (पृ० ६५०–६५६)

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ६५७–७३०)

सू० [३६]—विश्वेदेवाः। गुरुगृह में ज्ञानोपार्जन। (२–५) मित्र वरुण, प्राण उदान, माता पितावत् सभा-सेनाध्यक्ष और प्रभु और जीव। (६) 'सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता' वाणी का वर्णन। (७–९) विद्वानों की प्रतिष्ठा। प्रभु से प्रार्थना। (पृ० ६५७–६६१)

सू० [३७]—विश्वेदेवाः। (१–४) तेजस्वी पुरुष अक्ष ज्ञान से सबको पूर्ण करें। (५) इन्द्र से नाना प्रश्न। हमें धन कब प्रदान करेगा? (६) हमारे वचनों को कब सुनेगा? (७) चतुराश्रमी का दीर्घजीवन।

सू० [४८]—ऋभवः। (१-४) ऋभु, विभु और वाजस्। यान, रथ, युद्धशस्त्र यन्त्र आदि निर्माण। (पृ० ६८९-६९१)

सू० [४९]—आपः। दिव्य, खनित्रिम, स्वयज तथा समुद्रार्थ। (१-२) आपः द्वारा सैनापत्य अभिषेक। (३) सत्यानृत विवेकी वरुण का आश्रय। (४) वरुण, सोम, वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाले जल मेरी रक्षा करें। (पृ० ६९१-६९३)

सू० [५०]—मित्र वरुण। (१-३) विष चिकित्सा। नाना विषों की गुप्त प्रकृति और उनका प्रतिकार। नद्यः। (४) प्रवत, निवत, उद्वत, उदन्वती, अनुदक नदियें। (पृ० ६९३-६९६)

सू० [५१-५२]—आदित्याः। अदिति। ईश्वर के उपासकों के ज्ञान का सत्संग। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ६९७-६९९)

सू० [५३]—द्यावापृथिवी। भूमि सूर्यवत् विद्वान् माता पिताओं का कर्त्तव्य। (पृ० ६९९-७००)

सू० [५४-५५]—वास्तोष्पतिः। राष्ट्रपति, गृहपति, परमेश्वर। उस कर्त्तव्य। उसका तारकवत् वर्णन, उससे प्रार्थना। (पृ० ७००-७०४)

सू० [५६-५८]—मरुतः। (१-२५) रुद्र सेनापति के वीरजन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ७०४-७१४)

सू० [५९]—मरुतः। (१-११) वीरों के कर्त्तव्य। (२-५) उनसे प्रार्थना। (६-८) मधुवत् करसंग्रह, भिक्षासंग्रह; न्यायोपार्जित धन ग्रहण का उपदेश। (९-१०) 'सान्तपन अग्नि' विद्वान् ब्राह्मण का वर्णन। रुद्रः। (१२) 'मृत्युंजय मंत्र'। त्र्यम्बक का रहस्य। (पृ० ७२०-७२४)

सू० [६०]—सूर्य। (१) न्याय शास्ता के प्रति प्रार्थना। मित्र वरुण। (२-१२) सर्वश्रेष्ठ मित्र वरुण आदि का वर्णन। (पृ० ७२५-७३०)

इति पञ्चमेऽष्टके चतुर्थोऽध्यायः

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता

अथ चतुर्थेऽष्टके तृतीयोऽध्यायः

(पञ्चमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके)

[४७]

प्रतिरथ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ७ त्रिष्टुप् ॥ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १ ॥

भा०—माता के कर्त्तव्य ! (मही माता) पूज्य माता (प्र-युञ्जती) उत्तम क्रियात्मक प्रयोग और उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई (दिवः) कामना योग्य पति के लिये (दुहितुः) दूर में विवाह करने योग्य कन्या को (ब्रुवाणा) उपदेश करती हुई (दिवः) सूर्य से उत्पन्न उषा के समान उसे (बोधयन्ती) अज्ञान निद्रा से जगाती, ज्ञानवान् बनाती हुई (एति) प्राप्त हो। वह (युवतिः) यौवन को प्राप्त होकर (आ-विवासन्ती) नाना गुणों का प्रकाश करती हुई (मनीषा) अपनी बुद्धि से (पितृभ्यः) चाचा, मामा, श्वशुर आदि पालक पुरुषों के (सदने) गृह में भी (आ जोहुवाना) सादर बुलाई जाकर ही (एति) प्राप्त हो। वहां भी वह मान बनाये रक्खे।

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२॥

भा०—(अजिरासः) कभी न नाश होने वाले वा वेगवान् (तद् अपः ईयमानः) उस परमेश्वर के उपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए और (अमृतस्य) अमृत, मोक्षस्वरूप प्रभु वा सन्तति के (नाभिम्) बांधने वाले प्रेम पर (आ-तस्थिवांसः) स्थित (अनन्तासः) अनन्त (उरवः) और बड़े २ (पन्थाः) मार्ग (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध में (विश्वतः परियन्ति) सब तरफ जा रहे हैं। हे पुत्रि वा पुत्र! तू उनको जान।

उ॒क्षा स॑मु॒द्रो अ॑रु॒षः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरा वि॑वेश।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑ ॥३॥

भा०—हे पुत्रि! मनुष्य (उक्षा) वीर्य सेचन एवं गृहस्थ धारण करने में समर्थ हो। वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, समान भाव से स्त्री को प्रमोद, रति सुख आदि करने में समर्थ, (अरुषः) तेजस्वी और स्त्री पर रोष न करने हारा हो। वह (सुपर्णः) उत्तम पालन करने वाला (पूर्वस्य पितुः) पूर्व पिता के (योनिम्) गृह को (आविवेश) प्रविष्ट हो अर्थात् पुरुष अपने पिता के गृह का स्वामी हुआ करता है। (दिवः मध्ये निहितः पृश्निः) जिस प्रकार आकाश के बीच में सूर्य (अश्मा) व्यापक होकर (वि चक्रमे) विविध कार्य करता और (रजसः अन्तौ पाति) समस्त संसार के छोरों का पालन करता है इसी प्रकार पुरुष भी (दिवः मध्ये) पृथिवी के बीच, व्यवहार में वा कामना योग्य स्त्री के हृदय में (निहितः) स्थिर होकर (पृश्निः) मेघवत् रस वर्षण, वीर्य निषेक में समर्थ और (अश्मा) शिला के समान दृढ़ एवं भोक्ता वा मेघवत् दानशील होकर (वि चक्रमे) आगे कदम बढ़ावे और (रजसः अन्तौ) रजोभाव की दोनों सीमाओं की (पाति) रक्षा करे। अर्थात् यौवन के आदि और अन्त वा गर्भ काल के आदि अन्त दोनों सीमाओं के बीच काल में अपने और अपने पत्नी के जीवन, बल वीर्य की रक्षा करे।

च॒त्वार॑ ईं बिभ्रति क्षेम॒यन्तो॒ दश॒ गर्भं॑ च॒रसे॑ धापयन्ते ।
त्रि॒धात॑वः पर॒मा अ॑स्य॒ गावो॑ दि॒वश्च॑रन्ति॒ परि॑ स॒द्यो अन्ता॑न् ॥४॥

भा०—जीव की उत्पत्ति का रहस्य । जिस प्रकार (चत्वारः) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि चारों तत्व (क्षेमयन्तः) कुशल क्षेम करते हुए (ईं गर्भं) इस अन्तरिक्षगत मेघ को (बिभ्रति) पुष्ट करते और (दश) दशों दिशाएं (चरसे) उसको विचरण के लिये (धापयन्ते) धारण करती हैं और (अस्य) इस सूर्य के (परमा) उत्कृष्ट (त्रि-धातवः) तीनों लोकों का धारण पोषण करने वाले (गावः) किरण (सद्यः) शीघ्र ही (दिवः अन्तान् परि चरन्ति) पृथ्वी वा आकाश के दूर २ की सीमाओं तक फैलते हैं उसी प्रकार (ईम् गर्भम्) इस गर्भ गत जीव की (क्षेमयन्तः) क्षेम, रक्षा, कुशल चाहते हुए, चारों वर्ण वा चारों आश्रम (बिभ्रति) पुष्ट करते हैं और (चरसे) कर्म फल भोग के लिये (दश धापयन्ते) दशों प्राण उसको पुष्ट करते हैं (अस्य) इस जीवात्मा की (परया) सर्वोत्कृष्ट (गावः) इन्द्रियें (त्रि-धातवः) उस आत्मा को गर्भ, जीवन और मरणोत्तर, तीनों कालों में धारण करती हैं । वे (सद्यः) सब दिनों (दिवः अन्तान्) प्रकाशमय मोक्ष या कामना योग्य भोगक्षेत्र की समस्त सीमाओं तक (परिचरन्ति) उस आत्मा की सेवा करती, उसको सुख दुःख का ज्ञान कराती हैं ।

इ॒दं वपु॑र्नि॒वच॑नं जनास॒श्चर॑न्ति॒ यन्न॒द्य॑स्त॒स्थुराप॑ः ।
द्वे यदीं॑ बिभृ॒तो मा॒तुर॒न्ये इ॒हेह॑ जा॒ते य॒म्या॒३॒॑ सब॑न्धू ॥ ५ ॥

भा०—शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । हे (जनासः) मनुष्यो ! (इदं) यह (वपुः) बीज द्वारा वपन करने योग्य शरीर (निवचनम्) निश्चय से प्रवचन और श्रवण करने योग्य है । (यत्) जिसमें (आपः) जलमय रुधिर की नाड़ियां (नद्यः) नदियों के तुल्य (चरन्ति) गति कर रही हैं । (यत्) जो (द्वे) दो (ईम्) इस शरीर को (मातुः) माता के गर्भाशय में (बिभृतः) धारण करते हैं वे दोनों (अन्ये) भिन्न भिन्न प्रकृतियां हैं और

वे दोनों (इह इह जाते) इस पुरुष वा स्त्री-शरीरों में उत्पन्न होते और वे दोनों (यम्या) एक दूसरे को बांधने वाले वा रात्रि दिनवत् (स-बन्धू) एक दूसरे के साथ बंधने वाले होते हैं। मातृ-गर्भ में वीर्य कीट और डिम्बकोश दोनों मिलकर शरीर बनाते हैं।

वि त॑न्वते धियो॑ अस्मा अपां॑सि वस्त्रा॑ पु॒त्राय॑ मा॒तरो॑ वयन्ति ।
उ॒प॒प्र॒क्षे वृष॑णो मोद॑माना दि॒वस्प॒था व॒ध्वो॑ य॒न्त्यच्छ॑ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मातरः) माताएं (पुत्राय) अपने पुत्र को पहनाने के लिये (वस्त्रा वयन्ति) वस्त्र बुनती हैं उसी प्रकार वे (अस्मै) इस पुत्र के लिये (धियः) संकल्प विकल्प तथा (अपांसि) नाना प्रकार के उत्तम कर्म (वि तन्वते) किया करें। माताओं के उत्तम कर्म, संकल्प ही सन्तान की रक्षा, पालन करते और उनको सद्गुणों से शोभित करते हैं। (वध्वः) उत्तम वधुएं (अस्मै) इस पुत्र के लाभ के लिये ही (वृषणः उप प्रक्षे) बलवान्, वीर्यवान् पुरुषों के समीप आलिंगन करने के लिये (दिवः पथा) पुत्र कामना के आनन्दप्रद मार्ग से (मोदमानाः) प्रसन्नता अनुभव करती हुई (अच्छ यन्ति) उन्हें प्राप्त होती हैं। पुत्राभिलाषा सर्वत्र विद्यमान है, हे माताओ ! उसको उत्तम बनाने के लिये सदा उत्तम कर्म और संकल्प करो।

तद॑स्तु मित्रावरुणा तद॑ग्ने शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु श॒स्तम् ।
अ॒शी॒महि॑ गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय ॥७॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) एक दूसरे को स्नेह और वरण करने वाले परस्पर के मित्र वर वधू ! माता पिता जनो ! (अग्ने) विद्वन् ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इदम्) यह ऐसा उपदेश (शस्तम्) आप बराबर किया करो और (तत्) वह (शं योः अस्तु) शान्तिकारक और दुःखनाशक हो (उत) और हम लोग (गाधम् अशीमहि) मनचाहा ऐश्वर्य भोगें (उत) और (प्रतिष्ठाम् अशीमहि) प्रतिष्ठा, वंश की स्थिरता और कीर्त्ति

प्राप्त करें। (दिवे) ज्ञान और तेज प्राप्त करने के लिये (बृहते) बड़े भारी (सादने) उद्देश्य पूर्त्ति के लिये (नमः अशीमहि) विनय, बल, तेज प्राप्त करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

[४८]

प्रतिभानुरात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१

भा०—(वयं) हम लोग (कत् उ) कब (प्रियाय) प्रिय, (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने, (महे) बड़े (स्व-क्षत्राय) अपने बल और (स्व-यशसे) यश से युक्त राज्य वा राजा की वृद्धि के लिये (मनामहे) ज्ञान प्राप्त करें। (यत् अभ्रे आ वृणाना मायिनी अपः आ वितनोति) जिस प्रकार शक्ति-शालिनी विद्युत् मेघ में व्याप कर जलों को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार (मायिनी) बुद्धि वा शत्रुनाशक शक्ति से युक्त राजसभा वा सेना (आ-मेन्यस्य) चारों ओर से माप लेने योग्य (रजसः) लोक समूह या राष्ट्र के बीच (अभ्रे) मेघ तुल्य उदार नायक के अधीन (आ वृणाना) शासकों का वरण करती हुई (अपः) राज्य कार्य को (वि तनोति) विविध रूप से करे। अर्थात् राजा का अभ्युदय तभी है जब वह राजसभा राष्ट्र में शासकों का चुनाव करके राज्य करने को उद्यत हो।

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥

भा०—(देवयुः जनः) विद्वान्, व्यवहारज्ञ और तेजस्वी विजयशील पुरुषों को कामना करने वाला, वा उनका स्वामी जिन (पूर्वाभिः) समृद्ध एवं पूर्व विद्यमान प्रजाओं से (प्रतिरते) स्वयं बढ़ता है, (अपाचीः) दूर विद्यमान (अपराः) अन्य शत्रु-सेनाओं को (अपो, अप एजते) वह दूर से

दूर भगा देता है और जिनसे वह (वीरवक्षणम्) वीर पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य या वीरों के धारण करने के (वयुनं) कर्म वा विज्ञान को (समान्या वृतया) समान रूप से मान करने योग्य एवं जीवनसंगिनी स्त्री के तुल्य प्रजा द्वारा चुनी गयी राजसभा द्वारा (विश्वं रजः) समस्त लोक समूह को (आतिरते) अधीन कर उसकी वृद्धि करता है (ताः) उन शक्ति-शालिनी प्रजाओं, सेनाओं या समृद्धियों को (अवत) प्राप्त करो ।

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य की किरणें सहस्रों (अहा संवर्तयन्तः प्रच-रन् वि वर्तयन्) होकर भी दिन को प्रकट करते और विविध रूप दर्शाते हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस राष्ट्रपति के (स्वे दमे) अपने गृह तुल्य शत्रु-दमनकारी शासन में (शतं वा प्र-चरन्) सैकड़ों पुरुष गमनागमन करते हैं और (अहा) उत्तम, स्थिर कार्यों को (संवर्तयन्तः) अच्छी प्रकार करते हुए (वि वर्तयन् च) विविध आजीविकादि व्यवहार करते हैं वह राजा नायक (मायिनी) कुटिल मायावी पुरुष के निमित्त (अहन्येभिः अक्तुभिः) दिन और रात दोनों कालों में पृथक् २ रूप से नियुक्त (ग्रावभिः) दृढ़ शक्तियों से अपने (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, शत्रु के वारण में समर्थ (वज्रम्) शस्त्र-बल को (आ जिघर्त्ति) प्रदीप्त रक्खे ।

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥

भा०—(अस्य वर्पसः) इस, नाना रूप के प्राणियों से युक्त, सुन्दर राष्ट्र के (भुजे) भोग करने और पालन करने के लिये मैं (अस्य) इस राजा के (अनीकं) सैन्य बल को, (परशोः रीतिम् इव प्रति अख्यम्) कुल्हाड़े की धार के समान ही देखता हूँ । (यदि) क्योंकि वह (विशे) प्रजा पालन के लिये उस सैन्य को (सचा) सदा अपने साथ (पितुमन्तं

रत्नं क्षयम् इव) अन्न से समृद्ध सुन्दर गृह अन्नादि समृद्धि सम्पन्न रत्न सम्पदा के समान (दधाति) धारण करता है और (भर-हूतये) संग्राम में शत्रु को ललकारने के लिये उस सैन्य को (पितुमन्तं) पालक जनों से युक्त (क्षयं) शत्रु का नाश करने वाले सैन्य को (रत्नं इव) रत्नादि आभूषण वत् (सचा) सदा अपने साथ समवाय बनाकर (दधाति) रखता और उसको पालता है। कुल्हाड़ी से भी मनुष्य शत्रु के नाश, रक्षा और अन्न फलादि प्राप्त करता है उसी प्रकार राजा की सेना है।

स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ५॥२

भा०—(सः वरुणः) वह प्रजा के दुःखों को वारण करने में समर्थ और प्रजा द्वारा सर्वश्रेष्ठ, वरण किया हुआ राजा (चारु वसानः) सुन्दर वस्त्र धारण करता हुआ, (अरिं यतन्) शत्रु को वश करता हुआ (जिह्वया) अपनी वाणी या आज्ञा से ही (चतुरनीकः सन्) चतुर्मुख एवं चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त होकर (ऋञ्जते) कार्य करता है। हम (तस्य) उसके (पुरुषत्वता न विद्म) पुरुषार्थ को नहीं जान सकते (यतः) जिससे वह (भगः) सबसे अधिक सेवनीय, ऐश्वर्यवान्, (सविता) सबका प्रेरक और उत्पादक पिता के तुल्य होकर (वार्यम् दाति) ऐश्वर्य दान करता वा शत्रु का नाश करता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

[४९]

प्रतिप्रभ आत्रेय (५ तृणपाणिः) ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, २, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१॥

भा०—(अद्य) आज हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों के बीच (देवं) दानशील, तेजस्वी, (सवितारं) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, पितावत् पूज्य

(भगं) ऐश्वर्य युक्त और (आयोः) मनुष्यमात्र को (रत्नं विभजन्तं) उत्तम बल, ऐश्वर्य न्यायानुसार बांटते हुए को (आ ईषे) आदर पूर्वक प्राप्त होऊं और मैं (सखीयन्) मित्र के समान आचरण करता हुआ (दिवे दिवे) दिनों दिन (अश्विना चित्) दिन वा रात्रि या सूर्य चन्द्र के तुल्य (पुरुभुजा) बहुतों के पालन करने वाले (नरा) उत्तम नेता स्वरूप (वाम्) आप दोनों राजा रानी, पति पत्नी वा राजा सचिव, दोनों को (आ ववृत्याम्) उत्तम व्यवहार में नियुक्त करूं।

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (असुरस्य) सबको जीवन देने वाले मेघ के (प्रयाणं प्रति) आगमन को प्रत्यक्ष रूप से (विद्वान्) जानता हुआ (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (सवितारं) जिस प्रकार उसके उत्पादक (देवं) तेजस्वी सूर्य की महिमा का वर्णन करता है उसी प्रकार (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले सैन्य बल के (प्रयाणं प्रति विद्वान्) प्रयाण को प्रत्यक्ष रूप से जान कर तू उसके (सवितारं) प्रेरक (देवं) विजिगीषु राजा वा सेनापति का (सूक्तैः) उत्तम आदर युक्त वचनों से (दुवस्व) सत्कार कर। (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम् नमसा विजानन् उपब्रुवीत) जिस प्रकार मनुष्य मात्र को सर्वोत्तम सुख या तेज प्रदान करने वाले सूर्य से अन्न आदि पाकर मनुष्य सूर्य के गुण वर्णन करता है उसी प्रकार मनुष्य के न्यायानुकूल उत्तमोत्तम रत्न, धनादि का विभाग करते हुए राजा को भी मनुष्य विशेष जान कर उसके प्रति आवेदनादि करे।

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३॥

भा०—(पूषा) सबका पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान् ! (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्ता पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होकर, (अदत्रया वार्याणि) खाने

योग्य अन्नों को और धनों को (दयते) दान करे और रक्षा करे। वह (उस्त्रः) किरणों के तुल्य सहायकों को (वस्ते) अपने अधीन सुरक्षित रक्खे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्य वाला, (वरुणः) उत्तम वरण योग्य और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (दस्माः) ये सब दुःखों का नाश करने हारे होकर (भद्रा अहानि) सुखकारी दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करें।

तन्नो॑ अन॒र्वा स॑वि॒ता वरू॑थं॒ तत्सिन्ध॑व इ॒षय॑न्तो॒ अनु॑ ग्मन् ।
उप॒ यद्वोचे॑ अध्व॒रस्य॒ होता॑ रा॒यः स्या॑म॒ पत॑यो॒ वाज॑रत्नाः ॥४॥

भा०—(सविता) सूर्य (अनर्वा) अहिंसक रूप होकर (नः वरूथं) हमारे गृह को प्राप्त हो, इसी प्रकार अहिंसक, तेजस्वी पुरुष हमारे राष्ट्र को प्राप्त हो, (सिन्धवः) नदियें, जल-धाराओं के तुल्य वेग से बहती हुईं (तत् अनुग्मन्) उसके पीछे आवें। तेजस्वी सेनापति के पीछे २ (इषयन्तः) बाणादि साधते हुए (सिन्धवः) वेगवान् सैन्य प्रवाह चलें। (यत्) जैसा कि (अध्वरस्य) अहिंसनीय, राष्ट्र या राज्य-कार्य का (होता) धारक राजा (उपवोचे) आज्ञा करे उसी प्रकार हम प्रजा गण (वाज-रत्नाः) अन्न और उत्तम रत्नों के स्वामी और (रायः पतयः) धन पति (स्याम) हों।

प्र ये वसु॑भ्य॒ ईव॒दा नमो॒ दुर्ये मि॒त्रे वरु॑णे सू॒क्तवा॑चः ।
अवै॒त्वभ्वं॑ कृणु॒ता वरी॑यो दि॒वस्पृ॑थि॒व्योरव॑सा मदेम ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (सूक्तवाचः) उत्तम वाणी बोलने वाले, लोग (मित्रे वरुणे) स्नेही, श्रेष्ठ पुरुष के अधीन (वसुभ्यः) बसने वाले पुरुषों को (ईवत् नमः अदुः) ज्ञान और रक्षा सहित अन्न, वीर्य और विनय की शिक्षा प्रदान करते हैं वे आप्त विद्वान् पुरुष ही (दिवः पृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (वरीयः) उत्तम २ (अभ्वं) बड़े भारी धन और तेज को (कृणुत) उत्पन्न करें और वह (अवैतु) हमें प्राप्त हो और (अवसा) रक्षा और ज्ञान से हम (मदेम) सदा आनन्दित हों। इति तृतीयो वर्गः।

[५०]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक् । २ निचृदुष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक् । ४, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॑ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! वीर पुरुषो ! (विश्वः मर्त्तः) सब मनुष्य (नेतुः देवस्य) नायक, तेजस्वी विद्वान्, विजिगीषु, दानशील, व्यवहारज्ञ राजा की (सख्यम्) मित्रता (वुरीत) चाहें । (विश्वः) सभी (राये) धन की (इषुध्यति) इच्छा करें, या धन प्राप्ति के लिये धनुष वाण आदि धारण करें, (पुष्यसे) पुष्ट होने के लिये सभी लोग (द्युम्नं) धन को (वृणीत) प्राप्त करो।

ते ते॑ देव नेत॒र्ये चे॒माँ अ॑नु॒शसे॑ ।
ते रा॒या ते ह्या३ पृ॒चे सचे॑महि सच॒थ्यैः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) विजिगीषो ! विद्वन् ! राजन् ! हे (नेतः) नायक ! (ते ते) वे तेरे ही अधीन हों (ये च) जो भी (इमान्) इन समस्त तेजों को (अनुशसे) तेरे अनुगामी होकर शासन करने के लिये नियुक्त हों। (हि) क्योंकि और (ते) वे लोग (राया) धन द्वारा वेतनादि से तेरे साथ सम्बद्ध हों और (ते हि) वे (आपृचे) परस्पर के बद्ध रहने के लिये भी समवाय बनावें । उसी प्रकार हम प्रजा वर्ग भी (सचथ्यैः) समवायों के उत्तम नेताओं से मिलकर (सचेमहि) दृढ़ समवाय बना कर रहें ।

अतो॑ न॒ आ नॄनति॑थी॒नतः॒ पत्नी॑र्दशस्यत ।
आ॒रे विश्वं॑ पथे॒ष्ठां द्वि॒षो यु॑योतु॒ यूयु॑विः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अतः) इस कारण हे राजन् ! (नः) हमारे (नॄन्) नेता पुरुषों, (अतिथीन्) मान्य परिव्राजक, अतिथियों और (नः पत्नीः) हमारी स्त्रियों और सेनाओं को, (दशस्यत) उत्तम सत्कार करो और (आरे) समीप (पथेष्ठां) सन्मार्ग में स्थित (विश्वं) सबका आदर

सत्कार करो और (यू युविः) शत्रुओं को दूर करने हारा और विवेकी पुरुष (द्विषः) शत्रुओं को (युयोतु) दूर करे।

यत्र॒ वह्नि॑र॒भिहि॑तो दु॒द्रव॒द् द्रोण्यः॑ प॒शुः।

नृ॒मणा॑ वी॒रप॒स्त्योऽर्णा॒ धीरे॑व॒ सनि॑ता ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र में, (द्रोण्यः पशुः) शीघ्रगामी जन्तुओं में सर्वश्रेष्ठ पशु के समान वेग से आगे बढ़ने वाला, एवं (द्रोण्यः) राष्ट्र में उत्तम (पशुः) स्वयं व्यवहारों का द्रष्टा और अन्यों को उत्तम मार्ग दिखाने वाला (वह्निः) कार्य भार उठाने में समर्थ नेता, (अभि-हितः) अभिषिक्त होकर (दुद्रवत्) मार्ग पर चलता और राष्ट्र का संचालन करता है वहां वह स्वयं (नृमणाः) मनुष्यों के मन के अनुकूल और (वीर-पस्त्यः) वीर पुरुषों का, गृह वा प्रजाओं के तुल्य और पुत्रों के तुल्य प्रजाओं का पालक हो, वह (धीरा इव) बुद्धिमती माता के समान (अर्णा सनिता) धनों और अन्नों का देने और न्यायपूर्वक विभाग करने वाला हो।

ए॒ष ते॑ देव ने॒ता र॑थ॒स्पति॒ः शं र॒यिः।

शं रा॒ये शं स्व॒स्तय॑ इष॒ःस्तुतो॑ मनामहे दे॒वस्तुतो॑ मनामहे ॥५॥४॥

भा०—हे (देव) दानशील पुरुष! तेजस्विन्! राजन्! (ते) तेरा (एषः) यह (रथस्पतिः) रथों का स्वामी, महारथी नेता (शं) शान्ति कराने वाला और तेरा (रयिः) ऐश्वर्य का स्वामी भी (शं) शान्ति सुख देने और (राये) और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हो, (स्वस्तये) वह सब राष्ट्र के सुख समृद्धि और कल्याण के लिये हों। हम लोग (इषः-स्तुतः) सेनाओं, आज्ञाओं और उत्तम इच्छाओं द्वारा प्रशंसित और (देव-स्तुतः) विद्वानों में स्तुति योग्य तेरे से (मनामहे) यही प्रार्थना करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः॥

[५१]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१ गायत्री। २, ३, ४ निचृद्गायत्री। ५, ८, ९, १० निचृदुष्णिक्। ६ उष्णिक्। ७ विराडुष्णिक्।

११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् । १३ पंक्तिः । १४, १५ अनुष्टुप् ॥

पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॑ सु॒तस्य॑ पी॒तये॒ विश्वै॒रूमे॑भि॒रा ग॑हि ।
दे॒वेभि॑र्ह॒व्यदा॑तये ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक अग्निवत् तेजस्विन्! राजन्! तू (विश्वेभिः) समस्त (ऊमैः) रक्षा-साधनों और रक्षकों सहित (सुतस्य पीतये) ओषधि के रस के समान राष्ट्र से प्राप्त ऐश्वर्य, एवं पद के उपयोग और उत्पन्न किये निज पुत्रवत् प्रजावर्ग के पालन करने के लिये और (हव्य-दातये) देने योग्य अन्न, धन, अधिकार आदि देने के लिये (देवेभिः) उत्तम व्यवहारकुशल विद्वान् पुरुषों सहित (आ गहि) प्राप्त हो।

ऋ॒तधी॑तय॒ आ ग॑त॒ सत्य॑धर्माणो अध्व॒रम् ।
अ॒ग्नेः पि॑बत जि॒ह्वया॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्यधर्माणः) सत्य न्याय को धर्म जानकर धारण और पालन करने वाले जनो! आप लोग (ऋत-धीतये) ऐश्वर्य, सत्य ज्ञान और न्याय के धारण, पालन के लिये (अध्वरम्) हिंसा और विनाश से रहित, प्रजा पालन के कार्य में (आ गत) आओ और योग दो और (अग्नेः जिह्वया) अग्रणी, तेजस्वी नायक की वाणी से (पिबत) राष्ट्र का उपयोग वा पालन करो।

विप्रे॑भिर्विप्र सन्त्य प्रात॒र्याव॑भि॒रा ग॑हि ।
दे॒वेभि॒ः सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (विप्र) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों से स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने हारे! हे (सन्त्य) विवेक, प्रीतिपूर्वक विभाग, दान और वर्तमान व्यवहार में कुशल! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य को पालन और उपभोग के लिये (प्रातः-यावभिः विप्रेभिः) प्रातः, सबसे पूर्व उद्देश्य पर पहुँचने वाले, धनादि पूरक, उत्तम मतिमान् पुरुषों सहित (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

अयं सोमश्चमूसुतोऽमत्रे परि षिच्यते ।
प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त वृद्धि और (वायवे) वायु के तुल्य शत्रु को उखाड़ने में समर्थ पद के लिये (प्रियः) प्रिय, उत्सुक, (अयं सोमः) यह अभिषेक योग्य पुरुष (चमू-सुतः) सेनाओं पर अभिषिक्त और सेनाओं का पुत्रवत् पालक है। उसका (अमत्रे) दुःख से त्राण करने वाले रक्षक पद पर (परि षिच्यते) अभिषेक किया जाना उचित है।

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! ज्ञान और बल की कामना करने हारे विद्वन्! बलवन्! तू (वीतये) प्रजा की रक्षा, कान्ति और तृप्ति के लिये और (हव्य-दातये) दान योग्य उत्तम पदार्थ देने के लिये भी (आ याहि) आ, (प्रयः) उत्तम जल और अन्न दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थ और (सुतस्य अन्धसः अभि पिब) उत्तम रीति से बनाये अन्न का उपभोग कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन्! विद्वन्! और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष! आप दोनों (सुतानां) उत्तम रीति से बने पदार्थों और अधीन अभिषिक्त पदाधिकारियों वा सामन्तों का (पीतिम्) पान, उपभोग और पालन (अर्हथः) करने योग्य हैं। आप दोनों (अरेपसौ) निष्पाप होकर (प्रयः अभि) उत्तम अन्न प्राप्त कर (तान् जुषेथां) उन उत्तम ऐश्वर्य युक्त पदार्थों का भी सेवन करो।

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

भा०—(सुताः) उत्पन्न हुए पुत्रवत् पालित और अभिषेक द्वारा सत्कृत, (दध्याशिरः) पद को धारण करने के विशेष सामर्थ्य, बल पराक्रम से युक्त, (सोमासः) सौम्य शासक जन (इन्द्राय वायवे) ऐश्वर्यवान्, बलवान् नायक के (प्रयः अभि) अति प्रिय कार्य को लक्ष्य करके (निम्नं सिन्धवः न) बहते जल जैसे नीचे को जाते हैं वैसे ही वेग से (यन्ति) जावें, (२) सोम और शिष्य पुत्र गण, इन्द्र पिता और वायु गुरु दोनों के प्रिय कार्य के निमित्त दौड़ कर जावें और करें।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत्वत् व्यापक और तीव्र सामर्थ्य वाले शब्द और प्रकाश के समान ज्ञान-तेज का प्रकाश करने वाले विद्वन्! राजन्! तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों से (सजूः) समानभाव से प्रीति युक्त होकर और (अश्विभ्याम्) अश्वों वा अपने इन्द्रिय गणों के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों से (सजूः) समान प्रीतियुक्त होकर, (आ याहि) आ और (अत्रिवत्) त्रिविध दोषों, पापों और तापों से रहित पुरुष के समान होकर (सुते) पुत्रतुल्य प्रजा वा शिष्यगण के निमित्त (रण) ज्ञान का उपदेश कर ॥ ८ ॥ (मित्रावरुणाभ्यां सजूः) स्नेहवान मित्र और उत्तम पुरुषों के साथ (सोमेन) ऐश्वर्य युक्त (विष्णुना) व्यापक सामर्थ्यवान् नायक से मिलकर हे विद्वन् तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) यहां ही विद्यमान प्रत्यक्ष गुरु के तुल्य हमें उपदेश कर ॥ ९ ॥ (आदित्यैः वसुभिः सजूः) सूर्यवत् तेजस्वी ४८ और २५ वर्ष तक गुरु के अधीन

रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले विद्वानों के साथ और (इन्द्रेण वायुना) ऐश्वर्यवान्, पुरुषों के साथ प्रीति युक्त होकर (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) उत्तम ऐश्वर्य भोक्ता के तुल्य प्रसुवत् हमको ऐश्वर्य के निमित्त उपदेश कर ॥ १० ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ११

भा०—(अश्विना) अध्यापक और उपदेशक, स्त्री और पुरुष, दिन और रात, सूर्य और चन्द्र, प्राण और अपान वे दो दो, (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमें सुख दें। (भगः स्वस्ति) ऐश्वर्य और उसका स्वामी और सेवन करने योग्य वायु हमें सुख दे। (देवी अदितिः) सूर्य, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और अखण्ड शासक राजा (अनर्वणः) अप्रतिम होकर (स्वस्ति) हमारा कल्याण करें। (पूषा असुरः) पुष्टिकारक प्राण, जीवन देने वाला अन्न और मेघ (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे। (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी, पिता और माता दोनों (सुचेतुना) उत्तम प्रकाश चेतना और ज्ञान से हमारा (स्वस्ति) कल्याण करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥

भा०—हम लोग (स्वस्तये) सुख सौभाग्य, कल्याण की वृद्धि के लिये (वायुम्) वायु के समान बलवान्, ज्ञान के अभिलाषुक, (सोमं) अभिषेक योग्य राजा, शिष्य और ज्ञानवान् पुरुष के (उप ब्रवामहै) समीप जाकर प्रार्थना, प्रवचन और स्तुति करें। (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त विश्व का पालक है वह हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। (सर्वगणं बृहस्पतिं) सब गणों के स्वामी बृहस्पति बड़े भारी राष्ट्र और वेदवाणी के पालक विद्वान् की (स्वस्तये) हम कल्याण के लिये स्तुति करें। (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी तथा १२ मास (नः) हमारे (स्वस्तये भवन्तु) कल्याण के लिये हों।

विश्वे॑ दे॒वा नो॑ अ॒द्या स्व॒स्तये॑ वैश्वान॒रो वसु॑र॒ग्निः स्व॒स्तये॑ ।
दे॒वा अ॑वन्त्वृ॒भवः॑ स्व॒स्तये॑ स्व॒स्ति नो॑ रु॒द्रः पा॒त्वंह॑सः ॥ १३ ॥

भा०—(विश्वेदेवाः) समस्त तेजस्वी पदार्थ, सूर्य के किरण, विद्वान् गण और हमारे इन्द्रिय गण (अद्य) वर्त्तमान में (नः स्वस्तये भवन्तु) हमारे कल्याण के लिये हों। (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी, सब का नेता, (वसुः) सबमें बसने वा सबको बसाने वाला (अग्निः) अग्नि, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष और परमात्मा (नः स्वस्तये) हमारे सुख-कल्याण के लिये हो। (ऋभवः) सत्य तेज से प्रकाशमान, एवं शिल्पी जन (देवाः) व्यवहारकुशल, (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों। (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, ज्ञान का उपदेश करने वाला (स्वस्ति) सुखपूर्वक (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे।

स्व॒स्ति मि॑त्रावरुणा स्व॒स्ति प॑थ्ये रेवति ।
स्व॒स्ति न॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ स्व॒स्ति नो॑ अदिते कृधि ॥ १४ ॥

भा०—हे (पथ्ये, रेवति) जीवन-मार्ग में सुखकारिणी! हे धनैश्वर्यवति! तू (मित्रावरुणौ) प्राण अपान के तुल्य (स्वस्ति) सुख कल्याण (कृधि) कर। (इन्द्रः च अग्निः च) विद्युत् और अग्निवत् ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् पुरुष दोनों (स्वस्ति) कल्याण करें। हे (अदिते) अखण्डित चरित्र आदि से युक्त तू (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कर।

स्व॒स्ति पन्था॒मनु॑ चरेम सूर्याचन्द्र॒मसा॑विव ।
पुन॒र्दद॒ताघ्न॑ता जान॒ता सं ग॑मेमहि ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (पन्थाम्) उत्तम मार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (अनुचरेम) एक दूसरे के पीछे चलें और (सूर्या-चन्द्रमसौ-इव) हम स्त्री पुरुष, सूर्य और चन्द्र के समान उत्तम आचरण का अनुष्ठान करें। (पुनः) वार २ हम लोग (ददता) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले और (अघ्नता) व्यर्थ ताड़न, हिंसा और कठोर दण्ड न देने वाले (जानता) ज्ञानवान् पुरुष से (संगमेमहि) सत्संग किया करें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[५२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१,४,५,१५ विराडनुष्टुप् । २, ७, १० निचृदनुष्टुप् । ६ पंक्तिः । ३, ९, ११ विराडुष्णिक् । ८, १२, १३ अनुष्टुप् । १४, १७ बृहती । १६ निचृद्बृहती ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

भा०—हे (श्यावाश्व) श्यामकर्ण, शिखा से सज्जित अश्वों के स्वामिन्! (ये) जो (अद्रोघम्) द्रोह से रहित, (अनु-स्वधम्) अपनी २ धारण शक्ति या अन्न, वेतनादि के अनुसार रहकर (यज्ञियाः) यज्ञ, परस्पर मिलकर रहने और कर वेतनादि के दान के योग्य होकर (श्रवः) अन्न, ज्ञान और ख्याति लाभ कर (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं उन (ऋक्वभिः मरुद्भिः) सत्कार करने वाले और सत्कार योग्य वायुवत् बलवान् और व्यवहार-कुशल पुरुषों से (धृष्णुया) दृढ़ता पूर्वक (प्र अर्च) खूब तेजस्वी बन ।

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

भा०—(ते हि) और वे (धृष्णुया) दृढ़, शत्रुओं का घर्षण करने वाले वीर पुरुष (स्थिरस्य) स्थायी (शवसः) बल के (सखायः) मित्र होकर (सन्ति) रहते हैं । (ते) वे (यामन्) प्रयाण काल में ही (धृषद्विनः) शत्रु का धर्षण करने वाले, बल से युक्त होकर (शश्वतः) बहुत से प्रजा गण की (त्मना) विस्तृत बल और धन से (आ पान्ति) रक्षा करते हैं ।

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे वीर पुरुष (स्पन्द्रासः) कुछ शनैः २ आगे बढ़ने हारे (उक्षणः) सेचन समर्थ, मेघों और सूर्य की किरणों के समान (शर्वरीः)

रात्रिवत् अपने पक्ष का नाश करने वाली शत्रु सेनाओं को (अति स्कन्दन्ति) अति क्रमण कर जाते हैं। (अध) और हम (मरुताम्) उन वीर पुरुषों की (दिवि) व्यवहार, तेज और विजयेच्छा में (महः क्षमा च) बड़े सामर्थ्य और सहनशीलता को (मन्महे) स्वीकार करें।

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजागण ! (ये) जो (विश्वे) समस्त जन (रिषः) हिंसा से (मानुषा युगा पान्ति) मनुष्यों के जोड़ों अर्थात् समस्त स्त्री पुरुषों की रक्षा करते हैं। (वः) उन आप लोगों के बीच (मरुत्सु) वायुवत् तीव्रगामी, शत्रुओं के नाशक वीर, विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर ही (वः) आप लोगों के (धृष्णुया) शत्रु को पराजय करने वाला और दृढ़ (स्तोमं) बल, वीर्य, ज्ञान और (यज्ञं च) परस्पर संगति और मैत्रीभाव (दधीमहि) धारण करें।

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) नायक पुरुष (अर्हन्तः) योग्य पदों के योग्य, (सु-दानवः) उत्तम दानशील और शत्रुओं को खण्डित करने वाले, (असामि-शवसः) पूर्ण बलशाली हैं उन (यज्ञियेभ्यः) यज्ञ, परस्पर दान, सत्संग के योग्य (मरुद्भ्यः) उत्तम विद्वानों और वीर पुरुषों के ज्ञान-प्रकाश, तथा व्यवहार के (यज्ञं) देन लेन, प्रार्थना और सत्संग को (प्र अर्च) अच्छी प्रकार करो। इति इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ रुक्मैरायुधा नरं ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६॥

भा०—(एनान् मरुतः अनु जज्झतीरिव विद्युतः) जिस प्रकार तीव्र वेग वाले वायुगण के पीछे २ शब्द करने वाली और गर्जना वाली जल-

धाराएं और बिजुलियां उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार (एनान् मरुतः) इन वेगवान् सैनिकों के पीछे २ (विद्युतः) विशेष दीप्तियुक्त और (जज्झतीः) गर्जना करने वाली तोपें और शक्तिमान् विद्युदस्त्र चलें। (ऋष्वाः नरः) बड़े २ नायक गण (रुक्मैः) कान्तियुक्त अस्त्रों और (युधा) युद्ध या शत्रु पर प्रहार करने वाले बल से युक्त, (ऋष्टीः) अपनी २ सेनाओं को (आ-असृक्षत) आगे २ ले चलें। इस प्रकार विजिगीषु राजा (भानुः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (दिवः) किरणों के तुल्य कामना योग्य विजयों को (त्मना अर्त्त) अपने सामर्थ्य से प्राप्त करे।

ये वा॑वृधन्त॒ पार्थि॑वा॒ य उ॒रावन्तरि॑क्ष॒ आ।
वृ॒जने॑ वा न॒दीनां॑ स॒धस्थे॑ वा म॒हो दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (पार्थिवाः) पृथिवी के हितकारी वायुगण के तुल्य बलवान् राजागण पृथिवी पर हैं (ये उरौ अन्तरिक्षे) और जो विशाल अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के भीतर (आ ववृधन्त) सब प्रकार से वृद्धि प्राप्त करते हैं वे ही (नदीनां वृजने) समृद्ध प्रजाओं के कार्य व्यवहार में और (महः दिवः सधस्थे) बड़े तेजस्वी सूर्यवत् सर्वोच्च पद पर भी (वावृधन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शर्धो॒ मारु॑त॒मुच्छं॑स स॒त्यश॑वस॒मृभ्व॑सम्।
उ॒त स्म॒ ते शु॒भे नरः॒ प्र स्प॒न्द्रा युं॑जत॒ त्मना॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! तू (सत्य-शवसम्) सत्य ज्ञान और बल से युक्त (ऋभ्वसम्) सत्य से या बड़े तेज से प्रकाशित और सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त (मारुतं शर्धः) वायु के तुल्य उत्तम वीर पुरुषों के बल को (उत् शंस) उत्तम रीति से बतला, उसके लाभ और गुणों का वर्णन कर। (ते) वे (नरः) नायक पुरुष (शुभे) राष्ट्र की शोभा के लिये (स्पन्द्राः) शनैः २ आगे बढ़ने हारे होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (प्र युजत स्म) उत्तम २ कार्य एवं प्रयोग करते हैं।

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

भा०—(उत स्म) और (ते) वे वीर पुरुष (परुष्ण्याम्) पालक साधनों से युक्त, तेजस्विनी, अति गहन राष्ट्र रक्षा या राजनीति में (ऊर्णाः) अच्छी प्रकार कवचों से अच्छादित होकर या युद्ध की विषम गति में भी (शुन्ध्यवः) शुद्ध आचारवान् होकर (वसत) रहें। (उत) और (रथानां पव्या) रथों की चक्र-धारा के तुल्य महारथियों की वज्र शक्ति से वे (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (अद्रिं भिन्दन्ति) मेघ को सूर्य या विद्युत् के तुल्य पर्वतवत् अचल शत्रु को भी भेद दें।

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—(विस्तारः) विविध प्रकार से विस्तृत देश तथा उसमें रहने वाले प्रजावर्ग (मह्यं) (एतेभिः नामभिः) इन २ नामों या रूपों से (यज्ञम् ओहते) यज्ञ, अर्थात् सुप्रबन्ध को धारण करें। वे (आपथयः) सब ओर जाने वाले मार्गों से युक्त, (वि-पथयः) विशेष मार्ग वाले (अन्तः-पथाः) भीतर, भूगर्भ के बीच २ में से जाने योग्य मार्ग वाले और (अनु-पथाः) बड़े २ मार्गों में आ मिलने वाले गौण मार्गों के भी स्वामी हों। इति नवमो वर्गः ॥

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

भा०—(अध) और (नियुतः नरः) नाना पदों पर नियुक्त वा लक्षों की संख्या में नायक गण (नि ओहते) नियत पद को धारण करते हैं। वे (अध) भी (पारावताः) दूर २ देशों तक जाकर भी (चित्रा) अद्भुत, (दर्श्या) दर्शनीय, (रूपाणि) रूपों वा पदार्थों को (ओहते) धारण करते हैं और स्वयं भी देश से देशान्तरों में व्यापारी होकर नाना पदार्थ ले जाते हैं।

छन्दस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥ १२ ॥

भा०—(ये) जो मेरे राष्ट्र में जिस प्रकार (कुभन्यवः) जल के इच्छुक जन (उत्सम् आ नृतुः) कूप को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (छन्दस्तुभः) वेद मन्त्रों का उपदेश करने वाले (कीरिणः) स्तुतिकर्त्ता जन भी (उत्सम् आ) उत्तम पद के भोक्ता राजा वा प्रभु को प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त करें। (ते) वे (चित्) कोई भी हों तो भी वे (तायवः न) चोरों के समान न होकर (दृशि त्विषे च) यथार्थ दर्शन करने और तेज की वृद्धि के लिये (ऊमाः) उत्तम रक्षक हों।

ये ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (ऋष्वाः) महान् उदार हृदय, (ऋष्टि-विद्युतः) शस्त्रों से विशेष रूप से चमकने वाले, शस्त्रों में विद्युत् का प्रयोग करने वाले विशेष ज्ञानी, (कवयः) क्रान्तदर्शी, (वेधसः) नाना पदार्थों को शिल्प द्वारा निर्माण करने में कुशल, विद्वान् हैं हे (ऋषे) वेदार्थ को जानने के उत्सुक शिष्य ! एवं साक्षात् ज्ञाता पुरुष ! (तं मारुतं गणं) उन वायुस्वरूप, बलशाली, अप्रमादी और ज्ञानी जनों को (गिरा) उत्तम वेदवाणी और न्याययुक्त वचन से (नमस्य) आदर कर और (रमय) आनन्दित कर।

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

भा०—(योषणा मित्रं न) जिस प्रकार स्त्री स्नेह करने वाले पति के अभिमुख होती है उसी प्रकार हे (ऋषे) विद्वन् ! तू (दाना) आदर सत्कार पूर्वक अन्न वस्त्र आदि नाना दान देने योग्य पदार्थों सहित (मारुतं गणं) उत्तम विद्वान् वा वीर जनों के समूह को भी (अच्छ) आदर से प्राप्त कर। हे (धृष्णवः) बल बुद्धि से प्रतिस्पर्धी का धर्षण करने हारे (वा) और

(दिवः) विजय के उत्सुक एवं धनादि की कामना करने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (धीभिः) उत्तम स्तुतियों, ज्ञानों और कर्मों द्वारा (स्तुताः) प्रशंसित, उपदिष्ट वा शिक्षित होकर (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (दाना इषण्यत) दान दिये गये धनों को प्राप्त किया करो।

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

भा०—(वक्षणा न) नदी जिस प्रकार (दाना सचते) जलों को प्राप्त करती हैं और (वक्षणा न दाना) विवाह योग्य वधू नाना धनों को वा (देवान्) काम्य वरों को अभिमुख प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (एषां) इन वीर और राष्ट्र में बसे प्रजाजनों के बीच (मन्वानः) मननशील पुरुष ही (देवान्) श्रेष्ठ, वीर, व्यवहारप्रिय पुरुषों को (अच्छा) अभिमुख होकर प्राप्त करें। (याम-श्रुतेभिः) प्रति प्रहर श्रवण करने वाले, वा यम नियमों के पालन करते हुए वेदादि का गुरुमुख से श्रवण कर चुकने वाले, (अञ्जिभिः) गुणों का प्रकाश करने वाले, तेजस्वी (सूरिभिः) विद्वानों सहित (दाना सचेत) नाना दान योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त और प्रदान भी करे।

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम्।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

भा०—(ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (मे) मुझे (बन्ध्वेषे) बन्धुवत् चाहते हुए (गां वोचन्त) वाणी का उपदेश करते हैं वे (पृश्निम्) पालन करने वाले विद्वान् आचार्य और भूमि को (मातरम् वोचन्त) माता बतलाते हैं (अध) और वे (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष (इष्मिणम्) बलवान् और ज्ञानवान् (रुद्रम्) शत्रुओं को रुलाने वाले राजा और ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु को (पितरं वोचन्त) 'पिता' नाम से कहते हैं। (२) (सूरयः) सूर्य की किरण वा शक्तियें जीवों के परम बन्धु 'इष्' वृष्टि और अन्न को उत्पन्न करने के लिये (गां) भूमि और (पृश्नि) सूर्य को (मातरं वोचन्त)

सबकी माता बतलाते हैं (अध) और (इष्मिणं) अन्न सम्पदा से सम्पन्न (रुद्रं) पशु पालक कृषक जन और वृष्टियुक्त मेघ को (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष एवं प्रबल वायु भी (पितरं) सब प्रजाओं का पिता (वोचन्त) बतलाते हैं ।

सप्त मे॑ सप्त शाकिन॒ एक॑मेका श॒ता द॑दुः ।
य॒मुना॑या॒मधि॑ श्रु॒तमुद्राधो॒ गव्यं॑ मृजे॒ नि राधो॒ अश्व्यं॑ मृजे १७।१०

भा०—(मे) मेरे (सप्त सप्त) सात सात (शाकिनः) शक्तिशाली नायक गण (एकम्-एका) एक एक से मिलकर (शता) सैकड़ों ऐश्वर्य (मे ददुः) मुझे प्रदान करें। (यमुनायाम् अधि) नियन्त्रण करने वाली सेना वा राष्ट्र नीति पर अधिकार करके मैं (श्रुतम्) प्रसिद्ध, कीर्त्तिजनक (गव्यं राधः) श्रवण योग्य, वाणी द्वारा प्राप्त करने योग्य, वाङ्मय ज्ञान सम्पदा के तुल्य भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य को (उत् मृजे) उत्तम रीति से प्राप्त करूं और (अश्व्यं राधः नि मृजे) अश्व अर्थात् राष्ट्रसम्बन्धी सैन्य बल को स्वच्छ, शत्रुहीन, निष्कण्टक करूं। इति दशमो वर्गः ॥

[५३]

श्यावाश्व आत्रेयः ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री । ८, १२ गायत्री । २ निचृद्बृहती । ९ स्वराड्बृहती । १४ बृहती । ३ अनुष्टुप् । ४, ५ उष्णिक् । १०, १५ विराडुष्णिक् । ११ निचृदुष्णिक् । ६, १६ पंक्तिः ७, १३ निचृत्पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

को वे॑द॒ जान॑मेषां॒ को वा॑ पु॒रा सु॒म्नेष्वा॑स म॒रुता॑म् ।
यद्यु॑यु॒ज्रे कि॑ला॒स्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—(कः) कौन (एषां मरुताम्) इन वायुओं, प्राणों और मनुष्यों के (जानम्) उत्पत्ति के रहस्य को (वेद) जानता है (वा) और (कः) कौन इनके (सुम्नेषु) समस्त सुखों के बीच भोक्ता रूप से (आस) स्थिर रूप से विद्यमान रहता है ? [उत्तर] (पुरा यत्) जो इन सबसे पूर्व, इन सबके

बीच (किलास्यः) निश्चित रूप से प्रमुख वा स्थिर वाणी वाला होकर इन को (युयुज्रे) कार्य में नियुक्त करता, वा जो उनको (किलास्यः) अश्वों के समान देह में प्राणों को, राष्ट्र में अधीन भृत्यों को युद्ध में, सैनिकों को वा यन्त्रों में वायुओं को प्रयोग करता है वही इनके (जातं वेद) उत्पत्ति के रहस्य को जानता है।

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥

भा०—(रथेषु तस्थुषः) रथों पर विराजमान (एतान्) इन वीर विजिगीषु, वायुवत् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ पुरुषों को (कः शुश्राव) कौन अपनी आज्ञा सुनाता है? और वे (कथा) किस प्रकार (ययुः) प्रयाण करें? (कस्मै अनु सस्रुः) वे किसके अभ्युदय के लिये आगे बढ़ें? [उत्तर] (आपयः) बन्धु के तुल्य प्राप्त होकर (सुदासे) उत्तम दानशील वृत्तिदाता स्वामी के लिये वा उत्तम भृत्यों के स्वामी के अधीन रहकर (इडाभिः सह) अन्नों सहित (वृष्टयः इव) जल वृष्टियों के तुल्य रथों पर युद्ध में स्वामी के लिये शर-वर्षण, शत्रूच्छेदन करते हुए आगे बढ़ें। वृष्टिः व्रश्चतेश्छेदनकर्मणः॥

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) उत्तम नायक, (मर्याः) मरणधर्मा, (अरेपसः) निष्पाप, निर्लेप, निष्काम, होकर (द्युभिः) तेजों और (विभिः) कान्तिमय, ज्ञानयुक्त रथों या अश्वों से (उप आययुः) हमारे समीप आवें (ते) वे (मे) मुझे (आहुः) उपदेश करें। (इमान् पश्यन्) उन उत्तम पुरुषों को देखकर हे मनुष्य! तू (इति) इसी प्रकार से (स्तुहि) स्तुति वचन और प्रार्थना किया कर।

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो पुरुष (अञ्जिषु) अपने द्योतक विशेष चिह्नों, प्रकट पोशाकों वा उत्तम गुणों में (स्वः भानवः) स्वयं अपनी कान्ति से युक्त हैं (ये वाशीषु स्व-भानवः) जो अपनी वाणियों में और शस्त्र प्रयोगों में अपने बल और कौशल से चमकने वाले हैं और जो (स्रक्षु) मालाओं, मणियों, (रुक्मेषु) स्वर्ण के आभूषणों में और (खादिषु) उत्तम भोजनों के प्राप्त होने पर वा शास्त्रों में भी (स्व-भानवः) स्वयं अपने तेज से तेजस्वी हैं, जो रूप, वस्त्र, शस्त्र, माला, स्वर्णाभरणादि बाह्य साधनों के होते हुए भी स्वतः तेजस्वी हैं और जो (रथेषु) रथों, महारथियों और (धन्वसु) धनुर्धारियों में भी (श्रायाः) सिंहनाद सुनाने वाले वा गुणों द्वारा प्रसिद्ध वा स्थिरता से सबके आधारभूत हैं (ते मे आहुः) वे मुझे उत्तम उपदेश करें।

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यतीः द्यावः अनु वृष्टीः इव) जिस प्रकार चलती हुई बिजुलियां या सूर्य प्रकाशों के पश्चात् जल वृष्टियों को जीवगण अपने हर्ष-प्रमोद के लिये प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषो! हे (जीर-दानवः) प्राणियों या प्रजाजनों को जीवन प्रदान करने वाले उत्तम परोपकारी रक्षक पुरुषो! मैं (युष्माकं रथान् अनु) आप लोगों के रथों को अपने अनुकूल (मुदे) सबके सुख के लिये (अनु दधे) धारण करूं।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सु-दानवः) उत्तम रीति से जल देने में कुशल वायु गण (दिवः कोशम् अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष से जल-गर्भित मेघ को बरसाते हैं, (पर्जन्यं वि सृजन्ति) मेघ को रचते या विविध मार्गों से ले

जाते हैं और (धन्वना वृष्टयः अनु यन्ति) तब जल सहित, अन्तरिक्ष मार्ग से जल वृष्टियां आती हैं उसी प्रकार (यं) जिस (कोशम्) सुवर्णादि के कोश को (सु दानवः) उत्तम दानशील (नरः) पुरुष (दिवः) अपने व्यापार, युद्धादि विजय से (अचुच्यवुः) सब ओर से प्राप्त करते हैं और (पर्जन्यं) मेघवत् धनार्जन करने वाले पुरुष को (वि सृजन्ति) विविध प्रकार से देते उसे उन्नत करते, (यं अनु) जिसके पश्चात् वर्षाओं के तुल्य शूरवीर होकर (धन्वना यन्ति) धनुष, शस्त्राद्य लेकर चलते हैं वह पुरुष उनका नायक होने योग्य है ।

तृतृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

भा०—(यथा क्षोदसा रजः ततृदानाः सिन्धवः रजः प्रसस्रुः) जिस प्रकार जल से करारों की मट्टी तोड़ते हुए जल-प्रवाह बहते हैं और (यथा धेनवः क्षोदसा रजः ततृतानाः प्रसस्रुः) जिस प्रकार गौएं भूमिमय प्रदेश में धूलि उड़ाती हुई आगे बढ़ती हैं और जिस प्रकार (विमोचने) खुला स्वच्छन्द छोड़ देने पर (अश्वा इव) घोड़े मार्गों में (स्यन्नाः) वेगवान् होकर धूल उड़ाते हुए आगे बढ़ते हैं और जिस प्रकार (एन्यः) नदियां धूल या मट्टी काटती हुईं (वि वर्त्तन्ते) विविध मार्गों से जाती हैं उसी प्रकार वायुगण (क्षोदसा रजः ततृदानाः प्र सस्रुः) जल सहित अन्तरिक्ष चीरते हुए वेग से चलते और (विवर्त्तन्ते) विविध रूप से बहते हैं, उसी प्रकार व्यापारी और वीर जन भी (क्षोदसा) जल मार्ग से (रजः ततृदानाः) भूलोक को पार करते हुए (प्र सस्रुः) दूर देशों में जाते और (विवर्त्तन्ते) विविध वार्त्ता, व्यापारादि करें और वीर पुरुष (क्षोदसा रजः ततृदानाः) वेग से शत्रु जन को काटते हुए आगे बढ़ें और (वि-मोचने) भाग छूटने पर (विवर्त्तन्ते) विविध मार्गों पर गमन करें ।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) प्रजाजनो ! हे व्यापारी जनो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग वायुवत् (दिवः) भूमि और (आन्तरिक्षात्) आकाश से (उत) और (अमात्) गृह और (परावतः) दूर २ के देश से भी (आ यात) आया जाया करो। (मा अवस्थात) किसी स्थान पर रुककर मत पड़े रहो।

मा वो॑ र॒सानि॑तभा कुभा क्रुमु॒र्मा व॒: सिन्धु॒र्नि री॑रमत् ।
मा व॒: परि॑ ष्ठात्स॒रयु॒: पुरी॒षिण्य॒स्मे इत्सु॒म्नम॑स्तु वः ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! व्यापारियो और वीर पुरुषो ! (अनितभा) जिस भूमि या गहरी नदी आदि जलमयी खाई में सूर्य की कान्ति न जाती हो, (कुभा) वा कान्ति या दीप्ति बुरी, न्यून, अति कष्टदायी रूप से पड़े ऐसी (रसा) भूमि वा नदी (वः) आप लोगों को (मा नीरीरमत्) कभी निरन्तर विहार के योग्य न हो। इसी प्रकार (क्रुमुः सिन्धुः) ऊंची तरङ्गें फेंकने वाला महानद वा सागर भी (मा निरीरमत) निरन्तर निवास के लिये न हो। (पुरीषिणी सरयुः) जल वाली नदी या नहर (मा वः परिस्थात्) आप लोगों के आगे बाधक रूप से न आये। (अस्मे इत् वः) हम और आप सब लोगों को सदा (सुम्नम् अस्तु) सुख प्राप्त हो।

तं व॒: शर्धं॒ रथा॑नां त्वे॒षं ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनाम् ।
अनु॒ प्र य॑न्ति वृ॒ष्टय॑: ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों में से (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह और वायुवत् वेग से शत्रुओं का मूलोच्छेद करने वाले पुरुषों का और उनके (नव्यसीनां रथानां) नये से नये रथों का (गणं) गण और (वः शर्धं) आप लोगों के बड़े भारी बल या शरीरादि धारण करने वाले सैन्य बल के (अनु) पीछे (वृष्टयः अनु प्रयन्ति) वायु गण के साथ २ आने वाली जल वृष्टियों के समान अच्छी प्रकार आया जाया करे।

शर्ध॑शर्धं व एषां॒ व्रातं॑व्रातं ग॒णङ्ग॑णं सुश॒स्तिभि॑: ।
अनु॑ क्रामेम धी॒तिभि॑: ॥ ११ ॥

भा०—(वः एषां) इन आप लोगों के (शर्धं शर्धं) बल २ को (व्रातं व्रातं) समूह २ को और (गणं गणं) गण गण को हम लोग (सु-शस्तिभिः) उत्तम २ नाम, प्रशंसा वचनों, शासनों और (धीतिभिः) उत्तम उत्तम कर्मों से (अनु क्रमेम) अनुक्रमण करें, अर्थात् आपके बल कार्यों व्रतों कार्यों और संघों का हम अनुकरण करें।

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

भा०—(मरुतः) उत्तम मनुष्य (अद्य) आज (सुजाताय) उत्तम विद्या आदि गुणों से सुसम्पन्न (रातहव्याय) दातव्य गुरु दक्षिणा देने वाले दानशील (कस्मै) किस उत्तम पुरुष के दर्शन वा पूजा सत्कार के लिये (एना यामेन) इस मार्ग से, (प्र ययुः) जाते हैं ? [उत्तर] उस (कस्मै) सुखरूप (सु-जाताय) उत्तम, सर्वपूज्य रूप से प्रसिद्ध, सब ज्ञानादि के दाता परमेश्वर की उपासना के लिये (मरुतः) विद्वान् गण और अध्यात्म में प्राण गण (एना यामेन) इस पूर्वोपदिष्ट याम अर्थात् नियत, व्यवस्थित विधि से (प्र ययुः) आगे उन्नति मार्ग पर बढ़ें।

येन तोकाय तनयाय धान्यं१ बीजं वहध्वे अक्षितम्।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (येन) जिस प्रकार से आप लोग (तोकाय) उत्तम पुत्र और (तनयाय) अगली संतति, पौत्र आदि की प्राप्ति और पोषण के लिये (धान्यं) आधान योग्य, अन्नवत् (अक्षितम्) अक्षय, अमोघ, (बीजं) बीज को (वहध्वे) धारण करते हो (तत्) उसको (अस्मभ्यम्) हम प्रजाजनों के कल्याण के लिये (धत्तन) धारण करो और हमें धारण कराओ। जिस (राधः) ऐश्वर्य की हम (वः) आप लोगों से (ईमहे) याचना करते हैं वह (विश्वायु) जीवन पर्यन्त (सौभगम्) उत्तम सेवन करने योग्य, सुखजनक हो।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (निदः) निन्दा करने वाले पुरुषों को (अति इयाम) अतिक्रमण करें। निन्दकों की परवाह न करके आगे बढ़ें। (स्वस्तिभिः) सुख कल्याणकारी उपायों से (अवद्यम्) निन्दनीय कार्य को (हित्वा) छोड़ कर (अरातीः) शत्रुओं को (तिरः अति इयाम) तिरस्कार कर उनसे आगे बढ़ें, उन पर विजय करें। (आपः वृष्ट्वी) जलों को वर्षा कर (शं) शान्तिकारक, सुखजनक (योः) दुःख वारक (उस्रि भेषजम्) गौ से उत्पन्न दुग्ध सहित अन्न औषध प्राप्त करें और (सह स्याम) सदा अपने लोगों के साथ सुख से बने रहें।

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

भा०—हे (समह) पूजा, सत्कार योग्य जन ! और हे (नरः) नायक (मरुतः) वीर पुरुषो ! (यं त्रायध्वे) आप लोग जिसकी रक्षा करते हो (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) उत्तम विद्वान्, तेजस्वी दानशील, व्यवहारकुशल (असति) हो। (ते) वैसे ही वे, हम भी, विद्वान्, दानी, तेजस्वी (स्याम) हों।

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥१३॥

भा०—हे विद्वान् शासक ! तू (स्तुवतः) उत्तम स्तुति करने और उपदेश करने वाले (भोजान्) प्रजा के पालक पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर, उनको उत्तम वचन कह। वे प्रजाजन (अस्य यामनि) इसके उत्तम शासन में (यवसे गावः न) अन्नादि उपभोग वा आजीविका के लिये गौओं के समान सुशील होकर (रणन्) आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। (यतः) जिस कारण से (पूर्वान् इव सखीन्) पूर्वकाल के मित्रों के समान

प्रेम से वर्त्ताव करने वालों को ही (अनु ह्वये) आदर से बुलाया जाता है। उसी प्रकार हे राजन्! विद्वन्! तू (कामिनः) उत्तम विद्या, धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुषों को भी (गृणीहि) अपने पास बुला और उनको सत् उपदेश कर।

[५४]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ३, ७, १२ जगती। २ विराड्जगती। ६ भुरिग्जगती। ११, १५ निचृज्जगती। ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (मारुताय) वायु के समान प्रबल, शत्रुनाशक पुरुषों के (स्व-भानवे) स्वयं देदीप्यमान (पर्वत-च्युते) मेघ या पर्वत के समान प्रबल शत्रु को छिन्न भिन्न करने वा उखाड़ देने में समर्थ, (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये (इमां) इस (वाचं) वेदवाणी का (मारुताय) मनुष्यों के समूह को (अनज) उपदेश करो। (दिवः घर्म-स्तुभे) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के तेज को स्तुति या उपासना करने वाले, (पृष्ठ-यज्वने) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को भी ज्ञान का दान करने, वा पीठ पीछे भी गुरुजनों का आदर करने वाले (द्युम्न-श्रवसे) यश, धन और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न पुरुष को (महि नृम्णम्) मनुष्यों से पुनः अभ्यास करने योग्य बड़े भारी ज्ञान और मनुष्यों के मनोभिलषित धन राशि का (अर्चत) आदर पूर्वक दान करो।

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो! (वः) आप लोगों में से जो (उदन्यवः) वायुओं के तुल्य जलवत् उत्तम ज्ञान को ग्रहण करने के इच्छुक,

(तविषाः) बलवान्, (वयोवृधः) ज्ञान, बल, आयु की वृद्धि करने वाले, (अश्व-युजः) प्रबल अश्वों को रथ में लगाने वाले, एवं योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगाने तथा इन्द्रिय गण को अपने वश में करने वाले, (परि-ज्रयः) सर्वत्र, सब ओर जाने में समर्थ हों और जो (विद्युता) बिजुली से, (सं दधति) यन्त्रों का संधान करते, अथवा विशेष कान्ति वा ज्ञान दीप्ति से युक्त विद्वान् पुरुष के साथ (सं दधति) प्रेम से मिलकर ज्ञान धारण करते हैं, जो (त्रितः) तीनों से (वाशति) ज्ञानोपदेश ग्रहण करते, मन्त्रों का पाठ करते, (स्वरन्ति) और स्वर सहित गान करते हैं वे (आपः) आप्त पुरुष (अवना) भूमि पर (परिज्रयः) जल-धाराओं के समान सर्वत्र गमन करें और शान्ति प्रदान करें।

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः विद्युन्म-हसः) वायुगण बिजुली की कान्ति से चमकने वाले, (अश्म-दिद्यवः) मेघ को प्रकाशित करने वाले, (वात-त्विषः) प्रबल वायु से चमकने वाले, (पर्वत-च्युतः) मेघों को डुलाने वाले होते हैं और वे (अब्दया मुहः ह्रादुनीवृतः) जल देने वाली मेघमाला से युक्त, गर्जती बिजुली को उत्पन्न करने वाले और (स्तनयद् अमाः) गर्जते मेघ के साथ रहते हैं उसी प्रकार (नरः) उत्तम नायक, विद्वान् पुरुष (विद्युत्-महसः) विशेष कान्ति से चमकने वाले हों, वे (अश्म-दिद्यवः) व्यापक प्रभु वा आत्मा में चमकने वाले और 'अश्म' अर्थात् शत्रुनाशक आयुधों से चमकने वाले, (वात-त्विषः) सूर्य की कान्ति को प्राप्त, (पर्वत-च्युतः) बड़े २ पर्वतवत् अचल शत्रु को भी रणच्युत करने वाले हों। वे (अब्दया) आप्त जनों की दानशील क्रिया से युक्त, (ह्रादुनीवृतः) आह्लादकारिणी वाणी से वर्त्तने वाले और (स्तनयद्-अमाः) गृहों को उत्तम घोषों, वाद्यादि के शब्दों से गुंजाते हुए, (रभसाः) वेग से आक्रमण करने वाले, (उद्-ओजसः) उत्तम बल पराक्रमशाली होवें।

व्य॑क्तून्रुद्रा व्यहा॑नि शिक्वसो व्य॑न्तरिक्षं वि रजाँसि धूतयः।
वि यदज्राँ अज॑थ नाव॑ ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह॑ रिष्यथ ॥४

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायुगण (शिक्वसः धूतयः भवन्ति) शक्तिशाली और वृक्षादि सब पदार्थों को कंपाने वाले होते हैं, वे सब रातें, सब दिनों (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष में (रजांसि) समस्त लोकों को वा धूलियों को और (अज्रान्) मेघों को (वि-अजथ) विविध प्रकार से उड़ाते हैं, उसी प्रकार आप लोग (अक्तून् अहानि वि अजथ) सब दिनों, सब रातों और विविध रूप से जाते हो और आप लोग (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने हारे (शिक्वसः) शक्तिशाली और (धूतयः) सब शत्रुओं को कंपाते हुए (अन्तरिक्षं) मध्य में विद्यमान देश को और (रजांसि वि) समस्त प्रजाजनों को और (अज्रान् वि अजथ) बड़े २ योद्धाओं को विविध उपायों से उखाड़ फेंक दिया करें और (यथा नावः ईं) नौकाओं को वायुगण चलाते हैं उसी प्रकार आप लोग (दुर्गाणि वि अजथ) दुःख से गमन करने योग्य विषमताओं को दूर करो और (अह) तिस पर भी (न रिष्यथ) स्वयं नष्ट नहीं होवो।

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योज॑नम्।
एता न याम अगृ॑भीतशोचिषोऽन॑श्वदां यन्न्यया॑तना गिरिम् ५।१४

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् प्रजा जनो ! हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह अलौकिक (वीर्यं) बल पराक्रम (महित्वनम्) बड़ा भारी है। जिस प्रकार (सूर्यः न) सूर्य भी (योजनम्) सब तक पहुँचने वाले (दीर्घं ततान) प्रकाश को दूर २ तक विस्तृत करता है और जिस प्रकार (एताः) वेग से जाने वाले अश्व (यामे) मार्ग में (योजनं) योजन भर दूरी निकल जाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (योजनम्) अपने २ प्रयोजन तथा उद्योग धन्धों के साथ अपना लगाव बनाते रहें और (अगृभीत-शोचिषः) अग्नि की ज्वाला के समान असह्य तेज वाले

होकर (यामे) राज्यादि के नियन्त्रण में अपना (योजनं) लगाव बनाये रक्खो और (अनश्वदां गिरिम्) किरणों को बाहर न जाने देने वाले मेघ को जिस प्रकार सूर्य छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अनश्वदाम् गिरिम्) अश्व सैन्य को मार्ग न देने वाले पर्वत के समान अचलवत् दृढ़ शत्रु को आक्रमण करते हुए (नि अयातन) सर्वथा पीड़ित करो ।

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६

भा०—हे (मरुतः) वायु के तुल्य बलपूर्वक शत्रुओं के कंपा देने वाले कर्मनिष्ठ वीर, एवं विद्वान् जनो ! (यत्) जिस प्रकार जब (शर्धः) सूर्य का तेज (अभ्राजि) खूब तपता है तब वायुगण का बल भी (अर्णसं मोषथ) जल को हर लेता है उसी प्रकार जब राजा या सेनापति का (शर्धः) शरादि शस्त्रों का धारक शत्रुहिंसक बल (अभ्राजि) शत्रु को परितप्त करता है और चमकता है तब वह बल, सैन्य (अर्णसं मोषथ) धनैश्वर्य से युक्त शत्रु का ऐश्वर्य अनायास हर लेता है । (कपना इव वृक्षम्) जिस प्रकार कंपा देने वाले शत्रु के झोंके वृक्ष को गिरा देते हैं वा जिस प्रकार कृमिगण वृक्ष को भीतर २ खोखला कर देते हैं उसी प्रकार हे वीरो ! आप (वेधसः) कार्यकर्त्ता मतिमान् लोग भी (कपनाः) शत्रु को कंपाते हुए (वृक्षं) काट गिराने योग्य शत्रु को (मोषथा) उसका धनैश्वर्य सर्वस्व हर कर खोखला कर दो और आप लोग परस्पर (सजोषसः) समान प्रीति से युक्त होकर (चक्षुः इव) मार्गदर्शक आंख के समान (सुगं यन्तम्) सुखप्रद मार्ग पर जाने वाले (अरमतिम्) अति ज्ञानवान् पुरुष को (अनु) अनुकूल रूप से (नेषथ) सत् मार्ग पर ले जाओ ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! विद्वान् जनो ! (यं वा) जिस (ऋषिं) सर्वद्रष्टा, वेदार्थज्ञानी विद्वान् पुरुष वा (राजानम्) तेजस्वी, पुरुष को (सु-सूदथ) तुम लोग सुख वा आदरपूर्वक प्राप्त होते हो, जिसका सत्संग करते हो, (सः) वह (न जीयते) पराजित नहीं होता, (न हन्यते) मारा नहीं जाता, (न स्रेधति) न नाश को प्राप्त होता है, (न व्यथते) न पीड़ित होता है, (न रिष्यति) न दुःख पाता है। (अस्य रायः) उसके धनादि ऐश्वर्य (न उप दस्यन्ति) नाश को प्राप्त नहीं होते और (न ऊतयः उप दस्यन्ति) न उसके रक्षा साधन ही नष्ट होते हैं।

नि॒युत्व॑न्तो ग्राम॒जितो॒ यथा॒ नरो॑ऽर्य॒मणो॒ न म॒रुतः॑ कब॒न्धिनः॑।
पिन्व॒न्त्युत्सं॒ यदि॒नासो॒ अस्व॑र॒न्व्यु॑न्दन्ति पृथि॒वीं मध्वो॒ अन्ध॑सा ॥८

भा०—जिस प्रकार जब (इनासः अस्वरन्) सूर्य के किरण अतितापयुक्त होते हैं (कबन्धिनः मरुतः उत्सं पिन्वन्ति) जल से भरे वायुगण मेघ आदि जलाशय को जल से पूर्ण करते हैं और (पृथिवीं मध्वः अन्धसा वि उन्दन्ति) पृथिवी को मधुर जल और अन्न से तर करते हैं। उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के मनुष्यो ! वीर पुरुषो ! आप लोग (नियुत्वन्तः) अश्वों और अधीन नियुक्त पुरुषों तथा लक्षों सहायक पुरुषों के स्वामी होकर (ग्रामजितः) जन समूहों, ग्रामों, देशों को जीतने वाले होवें। (अर्यमणः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं शत्रुओं को नियन्त्रण करने में समर्थ, न्यायकारी (नरः) नायक और (कबन्धिनः) उत्तम हृष्टपुष्ट देह वाले होकर (यत् इनासः अस्वरन्) जब स्वामीगण अपना स्वर ऊंचा करें, आज्ञा प्रदान करें तब (उत्सं पिन्वन्ति) उत्तम पद के धारक नायक को पुष्ट करें, उसके साथ सहोद्योगी हों और (पृथिवीं) भूमि को (मध्वः अन्धसः) अन्न जल के उत्तम अंश से (वि उन्दन्ति) सम्पन्न करें, उत्तम कृषि, व्यापार आदि से ऐश्वर्य वृद्धि करें।

प्र॒वत्व॑ती॒यं पृ॑थि॒वी म॒रुद्भ्यः॑ प्र॒वत्व॑ती॒ द्यौर्भ॑वति प्र॒यद्भ्यः॑।
प्र॒वत्व॑तीः प॒थ्या॑ अ॒न्तरि॑क्ष्याः प्र॒वत्व॑न्तः॒ पर्व॑ता जी॒रदा॑नवः ॥९॥

भा०—(प्र-यद्भ्यः) प्रयत्नशील (मरुद्भ्यः) बलशाली वीर पुरुषों के लाभ के लिये (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (प्र-वत्वती) उत्तम फलों से युक्त है, एवं उनके आगे झुकती है। उनके लिये ही (द्यौः प्रवत्वती) यह विशाल आकाश वा सूर्य भी उत्तम सुखदायक होकर झुकता है। (अन्तरिक्ष्याः पथ्याः) मध्य आकाश के मार्ग भी उनके लिये (प्रवत्वती) उत्तम फलदायक और उनके समक्ष निम्न हो जाते हैं उनके लिये (पर्वताः) पर्वत भी (प्रवत्वन्तः) अपने सिर झुका लेने वाले एवं (जीरदानवः) जीवनोपयोगी जल ओषधि अन्न आदि देने वाले हो जाते हैं।

यन्म॑रुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य॒ उदि॑ते॒ मद॑था दिवो नरः। न
वोऽश्वाः॑ श्रथय॒न्ताह॒ सिस्र॑तः स॒द्यो अ॒स्याध्व॑नः पा॒रम॑श्नुथ॥१०॥१५

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजा जनो ! हे व्यापारियो ! (यत्) जब आप लोग (स-भरसः) एक समान रूप से पालन पोषण करते हुए, वा समान होकर युद्धादि करते हुए, (स्वः-नरः) सबके सुख, तेज वा पराक्रम में आगे जाने वाले और (दिवः नरः) ज्ञान प्रकाश के नायक वा स्वयं धनादि की कामनाशील होकर (सूर्ये उदिते) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (मदथ) प्रसन्न होते हो उस समय भी (अह) निश्चय से (वः अश्वाः) आप लोगों के घोड़े (सिस्रतः) चलते २ भी (न श्रथयन्त) शिथिल न हों और आप लोग (अस्य अध्वनः) इस बड़े भारी मार्ग के (पारम् अश्नुथ) पार पहुँचें।

अंसे॑षु व ऋ॒ष्टयः॑ प॒त्सु खा॒दयो॒ वक्षः॑सु रु॒क्मा म॑रुतो॒ रथे॒ शुभः॑।
अ॒ग्निभ्रा॑जसो वि॒द्युतो॒ गभ॑स्त्योः॒ शिप्राः॑ शी॒र्षसु॒ वित॑ता हिर॒ण्ययीः॥११

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप लोगों के (अंसेषु) कन्धों पर (ऋष्टयः) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र सजें, (पत्सु) पैरों में (खादयः) नाना भोग्य पदार्थ ऐश्वर्य हों, वा स्थिरता युक्त जूते आदि हों (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) सुवर्ण के आभूषण हों। वे (रथे शुभः) रथों पर सुशोभित हों,

(अग्नि-भ्राजसः) अग्नि के समान कान्ति और प्रताप से युक्त होकर (गभस्त्योः) उनके बाहुओं में (विद्युतः) विशेष चमक वाले शस्त्र अस्त्र हों और (शीर्षसु) सिरों पर (वि-तताः) विविध प्रकार से मढ़ी वा बुनी हुई (हिरण्ययीः) सुवर्ण वा लोह की बनी (शिप्राः) पगड़ियां हों।

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ।
समच्यन्त वृजनाऽतित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः १२

भा०—जिस प्रकार (मरुतः पिप्पलं वि धुन्वन्ति) वायु गण मेघस्थ जल को कंपाते हैं, (अगृभीत-शोचिषं नाकं वि-धुन्वन्ति) जिसके तेज को कोई पकड़ न सके ऐसे विद्युन्मय मेघ को भी कंपा देते हैं तब (वृजना सम् अच्यन्त) जल एकत्र हो जाते हैं और (वृजना अतित्विषन्त) आकाश के भाग खूब चमक उठते हैं, (ऋतायवः घोषं स्वरन्ति) जलयुक्त मेघ गर्जन करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के वीर, व्यापारी एवं विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अर्यः) स्वामी, राजा के तुल्य ही (तं) उस (अगृभीत शोचिषं) अग्निवत् असह्य तेज को धारण करने वाले (नाकम्) सुखमय, (रुशत्) चमचमाते, (पिप्पलं) ऐश्वर्यवान् शत्रु को भी (वि धूनुथ) विशेष रूप से कंपावें। (ऋतायवः) अन्न, ज्ञान और धन के इच्छुक लोग (सम् अच्यन्त) अच्छी प्रकार सत्संग किया करें, (वृजना) अपने गमनयोग्य मार्गों को (अतित्विषन्त) खूब प्रकाशित करें और स्वयं प्रकाशित हों और (ऋतायवः) सत्य, ज्ञान, धन के इच्छुक पुरुष भी (यत् विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) जिसके उपदेश आज्ञावचन को प्राप्त करते हैं उसको प्रसन्न वा प्राप्त करो।

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् देश से देशान्तर को जाने वाले वैश्य

प्रजा जनो ! हे (विचेतसः) विविध प्रकार के ज्ञान वाले पुरुषो ! हे (रथ्यः) महारथियो ! रथ के स्वामी जनो ! हम लोग (युष्मा दत्तस्य) आप लोगों के दिये (वयस्वतः) अन्न, जीवन और बल से युक्त (रायः) धनैश्वर्य के स्वामी (स्याम) हों। हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् प्रजा जनो ! (अस्मे) हमारे बीच में (यः) जो पुरुष (तिष्यः यथा) सूर्य के समान (न युच्छति) प्रमाद नहीं करता, उस (सहस्रियं) सहस्रों वीरों, धनों और सेनाओं के स्वामी पुरुष को तुम लोग सदा (दिवः) कामना करते हुए (रारन्त) अच्छी प्रकार प्रसन्न करते रहो।

यूयं र॒यिं म॑रुतः स्पा॒र्हवी॑रं यू॒यमृषि॑मवथ॒ साम॑विप्रम्।
यू॒यमर्व॑न्तं भर॒ताय॒ वाजं॑ यू॒यं ध॑त्थ॒ राजा॑नं श्रु॒ष्टिम॑न्तम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) पुरुषार्थी, व्यवहारज्ञ एवं वीर पुरुषो ! आप लोग (स्पार्ह-वीरं) वीर पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को और (साम-विप्रम्) सामों को जानने वाले विद्वान् एवं 'साम' उपाय द्वारा राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने में समर्थ, (ऋषिम्) मन्त्रार्थ वेत्ता, द्रष्टा पुरुष को (अवथ) सुरक्षित रक्खो, उसको प्राप्त एवं सुप्रसन्न करो और (भरताय) राष्ट्र के प्रजाजनों को भरण पोषण करने के लिये (अर्वन्तं) शत्रु का नाश करने वाले पुरुष एवं (वाजं) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्य को भी (यूयं धत्थ) आप लोग धारण करो और (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने वाले अन्न सम्पत्ति के स्वामी (राजानं) तेजस्वी पुरुष को (धत्थ) पुष्ट करो।

तद्वो॑ यामि॒ द्रवि॑णं सद्यऊतयो॒ येना॒ स्व१॒॑र्ण त॒तना॑म॒ नॄँर॒भि।
इ॒दं सु मे॑ मरुतो हर्यता॒ वचो॒ यस्य॒ तरे॑म॒ तर॑सा श॒तं हिमाः॑ १५।१६

भा०—हे (सद्य-ऊतयः) शीघ्र रक्षा, ज्ञान, गमन, प्राप्ति करने में कुशल, (मरुतः) पुरुषार्थी लोगो ! मैं (वः) तुम्हारा (तत्) उस प्रकार का (द्रविणं) धनैश्वर्य (यामि) चाहता हूँ (येन) जिससे हम (नॄन् अभि)

सब मनुष्यों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान जल, वा प्रकाशवत् (ततनाम) फैला दें, (यस्य तरसा) जिसके बल पर हम (शतं हिमाः) सौ वर्ष जीवन (तरेम) पार कर लें। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मे) मेरे (इदं वचः) इस वचन को (सु हर्यत) अच्छी प्रकार ग्रहण करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५५]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ५ जगती । २, ४, ७, ८ निचृज्जगती । ९ विराड् जगती । स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

भा०—(प्र-यज्यवः) उत्तम ज्ञान के प्रदान करने वाले, उत्तम सत्संग, मैत्री, सौहार्द, मान, सत्कार, उत्तम पदार्थ की याचना के योग्य, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते अस्त्रों, एवं अति प्रकाशयुक्त मति वाले, (रुक्म-वक्षसः) सुवर्ण के आभूषणों को छाती पर धारण करने वाले, एवं रुचिकर कान्ति तेज धारने वाले, विद्वान्, वीर पुरुष (बृहत् वयः दधिरे) बड़ा बल, ज्ञान और आयु धारण करें। (सु-यमेभिः अश्वैः) उत्तम रीति से काबू किये अश्वों के समान, उत्तम नियमों के पालन द्वारा वश किये गये (आशुभिः अश्वैः) शीघ्रगामी, अप्रमादी इन्द्रियों और पुरुषों द्वारा भली प्रकार उद्देश्य को (ईयन्ते) प्राप्त होते हैं। (शुभं याताम्) शुभ, धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वालों के (अनु) पीछे (रथाः) उत्तम रथ व आनन्द प्राप्ति के समस्त साधन भी (अवृत्सत) स्वयं प्राप्त हो जाते हैं।

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार से (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (विद)

प्राप्त कर सको और जिस प्रकार से बड़े ज्ञान को प्राप्त कर सको उस प्रकार से आप लोग (स्वयं) अपने आप, (तविषीं) बड़ी सेना व शक्ति को (दधिध्वे) धारण करो और आप लोग (महान्तः) बड़े सामर्थ्यवान् होकर (उर्विया) बहुत अधिक (विराजथ) सुशोभित होवो। (ओजसा) बल पराक्रम से आप लोग (अन्तरिक्षं) वायुओं के समान आकाश वा राष्ट्र के समस्त भीतरी भाग को (वि ममिरे) विविध प्रकार से मापो, उसको वश करो और (अन्तरिक्षं वि ममिरे) अन्तरिक्ष भाग को विमान द्वारा प्राप्त होओ, इस प्रकार (शुभं याताम्) शुभ, मार्ग पर जाने वालों के (रथाः) रथ, विमान वा देहादि सत् साधन भी (अनु अवृत्सत) अनुकूल रहें और वृद्धि को प्राप्त हों।

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥

भा०—(साकं जाताः) एक साथ उत्पन्न वा प्रसिद्ध, (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, उत्तम भूमियों के स्वामी, (साकम् उक्षिताः) एक साथ अभिषेक को प्राप्त हुए, (नरः) सेना नायक जन (श्रिये चित्) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (प्रतरं) अच्छी प्रकार (आ ववृधुः) सब ओर वृद्धि को प्राप्त हों। वे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्य की किरणों के समान (विरोकिणः) विविध रुचि, कान्ति एवं विविध प्रवृत्तियों वाले (प्रतरं वावृधुः) खूब बढ़ें, उन्नति करें। (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ और रमण योग्य आत्मा, निरन्तर अनुकूल होकर रहते और वृद्धि को प्राप्त करते हैं। (२) अध्यात्म में—प्राणगण के विषय में देखो अथर्ववेद (कां० ९। १४। १६) में आये 'साकंजों' का वर्णन।

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों का (महित्वनं)

महान् सामर्थ्य (आ भूषेण्यम्) आभूषण के तुल्य शोभाजनक, एवं सर्वत्र, सब ओर कार्य करने में सामर्थ्यप्रद हो और (वः चक्षणं) आप लोगों का वचन और ज्ञान दर्शन भी (दिदृक्षेण्यम्) दर्शनीय और सत्य ज्ञान का दर्शाने वाला, (सूर्यस्य इव चक्षणं) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य हो। (उतो) और आप लोग प्राणों के समान प्रिय होकर (अस्मान्) हमें (अमृतत्वे) अमृत, नाशरहित, दीर्घायु युक्त परम जीवन एवं मोक्ष सुख में (दधातन) स्थापित करो। (शुभं यातामु) सन्मार्ग पर जाने वाले आप लोगों के (रथाः) रमणीय रथ के तुल्य, रस रूप आनन्दमय आत्मा (अनु अवृत्सत) निरन्तर सुखपूर्वक रहें और उन्नति की ओर बढ़ें।

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ५।१७

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! जिस प्रकार (मरुतः पुरीषिणः समुद्रतः वृष्टिं उत् ईरयन्ति) वायुगण जल सम्पन्न होकर समुद्र से वृष्टि को उठा लाते और वर्षाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (पुरीषिणः) ऐश्वर्य सम्पन्न होकर (समुद्रतः) समुद्र से (वृष्टिम्) ऐश्वर्य की वृष्टि को (उत् ईरयथ) उठाकर लाओ। समुद्र से खूब व्यापार द्वारा रत्न मुक्ता आदि ऐश्वर्य प्राप्त करो और (वर्षयथ) प्रजाजनों पर बरसा दो, निष्पक्षपात होकर विभक्त करो। (वः) आप लोगों की (दस्राः) दुःखों के नाश करने वाली (धेनवः) गौएं वा वाणियें (न उपदस्यन्ति) नाश को प्राप्त न होवें। (शुभं यातामु) धर्म के सत्य पथ पर चलने वाले आप लोगों के रथ (अनु अवृत्सत) प्रति दिन आगे बढ़ें और वृद्धि प्राप्त करें वा सन्मार्ग पर जाने वाले के पीछे चलें।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

भा०—(यत्) जब आप लोग हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (धूर्षु) रथों को धारण करने वाले धुरों में (अश्वान्) शीघ्रगामी अश्वों एवं

(पृषती:) शस्त्रवर्षणशील सेनाओं की (अयुग्ध्वम्) योजना करो और (हिरण्ययान् अत्कान्) सुवर्ण वा लोह आदि धातु के बने कवचों को (प्रति अमुग्ध्वम्) धारण करो तब तुम (विश्वा: इत् स्पृध:) समस्त स्पर्धाशील शत्रुओं को (वि अस्यथ) विशेष रूप से उखाड़ डालो और (शुभं याताम् रथा: अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ें।

न पर्व॑ता न न॒द्यो॑ वरन्त वो॒ यत्राचि॑ध्वं मरुतो॒ गच्छ॒थेदु॒ तत् ।
उ॒त द्यावा॑ पृथि॒वी या॑थना॒ परि॑ शु॒भं या॒ताम॒नु रथा॑ अवृत्सत ॥७॥

भा०—हे (मरुत:) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्र) जहां (अचिध्वं) पूजा सत्कार प्राप्त करो वा जहां तक जा सको, (तत्) उस स्थान तक (गच्छथ इत् उ) अवश्य जाओ । (व:) आप लोगों को (पर्वता: न वरन्त) पहाड़ भी न रोकें और (न नद्य: वरन्त) न नदियें रोकें, बाधक न हों । (उत) और आप लोग (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों स्थानों पर (परि याथन) परिभ्रमण करो । (शुभं याताम्) उत्तम रीति से जाने वाले आप लोगों के (रथा: अनु अवृत्सत) रथ यान विमान आदि अनुकूल रूप से चलें ।

यत्पू॒र्व्यं म॑रुतो॒ यच्च॒ नूत॑नं॒ यदु॒द्यते॑ वसवो॒ यच्च॑ श॒स्यते॑ ।
विश्व॑स्य॒ तस्य॑ भवथा॒ नवे॑दसः शु॒भं या॒ताम॒नु रथा॑ अवृत्सत ॥८॥

भा०—हे (वसव:) राष्ट्र में रहने एवं गृहस्थ में जाने हारे विद्वानो ! हे आचार्य के अधीन बसने वाले विद्यार्थी जनो ! एवं राष्ट्र में बसने हारे वीर पुरुषो ! हे (मरुत:) बलवान् पुरुषो ! (यत् पूर्व्यम्) जो पूर्व के विद्वानों और पुरुषों से अभ्यस्त ज्ञान और संचित धन है, (यत् च नूतनं) जो नया प्राप्त ज्ञान वा धन है और (यत् उच्यते) जिसका उपदेश किया जाता है, (यत् शस्यते) जो अन्य विद्वानों द्वारा शास्त्र रूप में अनुशासन किया जाता है, हे (न-वेदस:) न जानने और न प्राप्त करने हारे धनहीन:

और ज्ञानहीन पुरुषो ! आप लोग (तस्य विश्वस्य) उस सब ज्ञान वा धन के स्वामी (भवथ) होवो। (शुभं याताम्) शुभ उद्देश्य को लक्ष्य करके जाने वाले पुरुषों के पीछे २ आप लोगों के (रथाः) रथवत् शरीर और आत्मा (अनु अवृत्सत) अनुगमन करें।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति ॥ मनु० ॥

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (मृळत) सुखी करो। (मा वधिष्टन) हमारा बध मत करो, हमें पीड़ित मत करो। (अस्मभ्यं) हमारे लिये (बहुलं शर्म) बहुत सुख, गृह शरण आदि (वि यन्तन) विविध प्रकारों से दिया करो। (स्तोत्रस्य सख्यस्य) उत्तम प्रशंसनीय मैत्रीभाव का (अधि गातन) सर्वोपरि उपदेश करो। (शुभं याताम् अनु) शुभ मार्ग वा उद्देश्य पर जाने वालों के (अनु) पीछे २ (रथाः) उत्तम रथों के समान सन्मार्ग पर (अवृत्सत) सदा चला करो।

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् १०॥१८

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (अस्मान् वस्यः अच्छ नयत) हमें उत्तम धन प्राप्त कराओ, वा उत्तम ऐश्वर्य तक हमें पहुँचाओ वा (वस्यः अस्मान्) हम उत्तम ब्रह्मचारियों वा राष्ट्र के उत्तम बसने वाले वा उत्तम धन सम्पन्न हम लोगों को (अच्छ नयत) आदर पूर्वक उत्तम मार्ग में ले चलो और (गृणानाः) उत्तम उपदेश करते हुए आप लोग हमें (अंहतिभ्यः) पापों से (निः नयत) बचा कर लेते चलो। (यजत्राः) दान देने और मान आदर सत्संग आदि करने योग्य पूज्य पुरुषो ! (नः) हमारे (हव्यदातिम्) आदर पूर्वक देने योग्य अन्न

वस्त्र आदि के दान को (जुषध्वम्) प्रेम से सेवन करो और हम (रथीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बने रहें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृद्बृहती । ४ विराड्बृहती । ८, ९ बृहती । ३ विराट् पंक्तिः । ६, ७ निचृत्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (दिवः चित् रोचनात्) कान्तिमान् सूर्य से अधिक, वा (मरुतां गणम्) वायुओं के समान (रोचनात्) सबको रुचिकर और सबको प्रसन्न करने वाले, सर्वप्रिय, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (अधि) अधिकृत, उसके अधीन (शर्धन्तम्) बलवान्, सैन्यवत् शूरवीर, (अंजिभिः) अपने २ वर्गों को अभिव्यक्त करने वाले (रुक्मेभिः) रुचिकर स्वर्णमय पदकों, पदसूचक चिह्नों से (पिष्टं) सुशोभित (मरुताम् गणम्) मनुष्यों, विद्वानों, सैनिक एवं वैश्य प्रजाजनों के गण तथा (विशः गणम्) प्रजा के समूह को (अद्य) आज, विशेष २ अवसर पर (अव ह्वये) विनयपूर्वक बुलाता हूँ ।

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक पुरुष ! तू (हृदा) अन्तःकरण से (यथा चित् मन्यसे) जैसे भी उत्तम जाने (तत् इत्) वे ही (आशसः) उत्तम स्तुति योग्य, शासन करने वाले वा (मे आशसः) मेरे अधीन शासन करने और मुझे चाहने वाले हैं वे (मे जग्मुः) मुझे प्राप्त हों और हे नायक ! नेतः ! (ये) जो (ते नेदिष्ठं) तेरे अति समीप (हवनानि) देने योग्य कर आदि और लेने योग्य वेतनादि (आ गमन्) प्राप्त कराते और

लेते हैं (तान्) उन (भीम-सं-दृशः) भयंकर रूप से दीखने वाले, विशाल आकार के प्रचण्ड पुरुषों को भी (वर्ध) बढ़ा, प्रोत्साहित कर और उनकी पद की वृद्धि कर। राजा अपने अधीन, उत्तम शासकों और प्रचण्ड सैनिकों को रक्खे, उन्हें वेतन दे, उनसे करादि संग्रह करे और शासन करे।

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥

भा०—(मीढुष्मती पराहता, मदन्ती) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर सबको हर्ष देती हुई आती है उसी प्रकार (मीढुष्मती) शस्त्रास्त्रों और ऐश्वर्यों की वर्षा करने में समर्थ, योग्य, बलवान्, प्रजापोषक स्वामी की (पृथिवी) पृथिवी वासिनी प्रजा (परा-हता) शत्रु सेना से ताड़ित होकर भी (मदन्ती) हर्षयुक्त होती हुई (अस्मत्) हम शासक जनों को (आ एति) प्राप्त होती है। हे (मरुतः) प्रजाजनो, विद्वानो, वीर पुरुषो ! (वः) आप लोग (अमः) सहायक, शरण, योग्य, गृह के समान आश्रय दाता पुरुष वा (अमः) शत्रु से न मारे जाने वाला, शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, अप्रतिम, ऐश्वर्य वा बलशाली, (ऋक्षः न) सूर्यवत् तेजस्वी, सदा अर्चनीय, वेदाज्ञाओं का पालक, वा ऋक्ष अर्थात् रीछ के समान भयंकर, बलशाली, (शिमीवान्) कर्मण्य, (दुध्रः) शत्रु से अजेय, (गौः इव) महा वृषभ के समान (भीमयुः) भयप्रद होकर प्रयाण करने हारा। वा (गौः न भीमयुः) गमनशील अश्व के समान प्रचण्ड वेग से जाने हारा हो।

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (गावः न) अश्वों या बैलों के समान (दुर्धरः) कठिनता से वश आने वाले, प्रचण्ड होकर (ओजसा) पराक्रम से (वृथा) अनायास ही (नि रिणन्ति) शत्रुओं को नाश करते हैं। वे

(यामभिः) अपने प्रयाणों, या चढ़ाइयों द्वारा (स्वयं अश्मानं) गर्जते मेघ के समान और (पर्वतं) पर्वत के समान अचल, उन्नत (गिरिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले या गर्जते शत्रु को भी (प्र च्यावयन्ति) अस्थिर कर देते हैं।

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तू (एषाम्) इन (समुक्षितानाम्) अच्छी प्रकार से अभिषिक्त, (मरुतां) वायुवत् बलवान् पुरुषों के (स्तोमैः) उत्तम बलवीर्यों द्वारा (नूनम्) निश्चय से (उत् तिष्ठ) उच्च पद पर विराज। मैं तुझको (गवां सर्गम् इव) गौओं के बीच में सृष्टि उत्पादक वृषभ के समान वा (गवां सर्गम्) समस्त वाणियों, आज्ञाओं के दाता, एवं समस्त भूमिवासी प्रजाओं के बीच, विधाता, शासक और (पुरुतमम्) सब प्रजाओं में श्रेष्ठ, (अपूर्व्यम्) अपूर्व, सर्वोत्कृष्ट पद के योग्य (ह्वये) कहता हूँ। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान्, वीर, शिल्पी जनो ! आप लोग (रथे) रथ में (अरुषीः) लाल वर्ण की घोड़ियों के समान (रथे) रमण करने योग्य गृहस्थ आदि उत्तम कार्यों में (अरुषीः) दीप्तियुक्त, तेजस्विनी, रोषरहित प्रजाओं को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो। (रथेषु रोहितः) रथों में लाल घोड़ों के तुल्य उत्तम २ कार्य में (रोहितः) तेजस्वी पुरुषों को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो। (वोढवे धुरि) वहन करने अर्थात् काम का भार अपने ऊपर उठाकर चलने वाले पुरुष के मुख्य पद पर (धुरि हरी) रथ के धुरा में दो अश्वों के समान दो उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो, उनमें एक मुख्य और एक सचिव हो। इसी प्रकार (वोढवे धुरि वहिष्ठा)

वहन या कार्य सञ्चालन करने वाले के स्थान पर दोनों योग्य पुरुष (वहिष्ठा) कार्य को आगे बढ़ाने और ले चलने में समर्थ उत्तम होने चाहियें।

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (अरुषः) तेजस्वी, रोष से रहित, अक्रोधी, (तुवि-स्वनिः) बहुत उच्च ध्वनि करने में समर्थ, (दर्शतः) दर्शनीय रूप और गुणों वाला (स्यः वाजी) वह ज्ञान, शक्ति तथा ऐश्वर्य का स्वामी राजा बलवान् अश्व के समान समर्थ पुरुष (इह धायि स्म) इस कार्य में स्थापित किया जाय। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! हे वैश्य जनो! (वः) जो आप लोगों के (यामेषु) आने जाने के मार्गों और प्रजा के नियन्त्रण के कार्यों में कोई नियुक्त पुरुष एवं रथ में जुता अश्वादि भी (चिरं मा करत्) विलम्ब न किया करे। (रथेषु) रथों में लगे अश्व के समान आप लोग (तं) उसको (रथेषु) रमण योग्य, एवं शीघ्रता से करने योग्य कार्यों में (प्र चोदत) अच्छी प्रकार से प्रेरित करो।

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मारुतं) वायु के बल वा वेग से चलने वाले (श्रवस्युम् रथं) यशोजनक, वा श्रवण योग्य शब्द वा विशेष ध्वनि से युक्त (रथम्) रथ को (आ हुवामहे) उत्तरोत्तर उन्नत रूप में बनाना चाहें। (यस्मिन्) जिसमें (सुरणानि) उत्तम रमण, आनन्द-विनोद एवं उत्तम युद्ध क्रीड़ा आदि (बिभ्रती) करते हुए (रोदसी) दुष्ट को रुलाने वाले पालक सूर्य पृथिवीवत् राज प्रजा वर्ग (सचा) एक साथ (मरुत्सु) मनुष्यों के बीच (तस्थौ) विराजें।

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ।९।२०।४

भा०—हे प्रजाजनो ! वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (रथे शुभं) रथ में शोभा पाने वाले, (त्वेषम्) अति दीप्ति युक्त (पनस्युं) स्तुत्य, (शर्धम्) बल, सैन्य को मैं (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूँ। (यस्मिन्) जिसमें (सुजाता) उत्तम, कार्यों से प्रसिद्ध (मीढुषी) शत्रु पर शर आदि बरसाने वाली सेना (मरुत्सु मीढुषी) वायुओं पर आश्रित बरसती घटा के तुल्य (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य (महीयते) मान आदर प्राप्त करती है। इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५७]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती । २, ६ विराड्जगती। निचृज्जगती। ७ विराट् त्रिष्टुप्। ८ निचृत् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले, शत्रुओं को रोकने वाले और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता नायक को अपना स्वामी बनाकर, (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त, समान अधिकारों और ऐश्वर्यों का भोग करते हुए (हिरण्यरथाः) सुवर्ण लोह आदि धातुओं के बने रथों पर स्थित होकर (सुविताय = सु-इताय) सुख से जाने, वा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ गन्तन) आया जाया करो। (इमं) यह (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत्) हमसे और (दिवः) हमारी शुभ कामनाएं (वः) आप लोगों को (प्रति हर्यते) निरन्तर ऐसे प्राप्त हों जैसे (उदन्यवे तृष्णजे) जल के इच्छुक, पियासे पुरुष के लिये (उत्साः) कूप की जलधाराएं वा (दिवः उत्साः) आकाश से जलधाराएं प्राप्त हों।

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् २

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो, शिल्पी जनो, वीर पुरुषो ! आप लोग (वाशीमन्तः) उत्तम वाणियों, शिल्प साधनों से युक्त, (ऋष्टिमन्तः) ज्ञान और युद्धोपयोगी शक्तियों से युक्त, (मनीषिणः) मन को यथेष्ट विषय में प्रेरने वाले, जितेन्द्रिय, मनस्वी, ज्ञान के इच्छुक, (सु-धन्वानः) उत्तम धनुर्धर, (इषु-मन्तः) वाणों से सम्पन्न, (नि-षङ्गिणः) तर्कस और खाण्डे वाले, (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वारोही, (सु-रथाः) उत्तम रथारोही, (सु-आयुधाः) उत्तम हथियारों से सजे और (पृश्निमातरः) आदित्य के समान तेजस्वी, वेद, गुरु वा राजा, अन्तरिक्ष के समान आश्रयदाता और भूमि के समान अन्नप्रद स्वामी को माता के समान मानने वाले होवो। आप लोग (शुभं) शुभ, शोभाजनक, उत्तम मार्ग को या युद्धकर्म को लक्ष्य करके (याथन) प्रयाण करो। पक्षान्तर में—वायुगण (पृश्नि-मातरः) सेचक मेघों के उत्पादक हैं। वे (शुभं याथन) सर्वत्र जल प्राप्त करावें।

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (पृश्निमातरः) पृथिवी, माता वा तेजस्वी ज्ञानी वा वीर पुरुष को मातृ समान जानने वाले वीर पुरुषो ! विद्वानो ! आप लोग (यद्) जब (उग्राः) उग्र, बलवान् होकर (पृषतीः) चित्र विचित्र, जल वर्षाने वाली मेघ घटाओं के समान अश्वों और सेनाओं को (शुभे) जल प्रदान के तुल्य उत्तम कर्म, शरवर्षण के निमित्त (अयुङ्ग्ध्वम्) रथ, युद्धादि कार्यों में लगाते हो तब (द्याम्) कामना योग्य तेजस्वी नायक पुरुष को (धूनुथ) प्राप्त होते हो, (द्यां धूनुथ) पृथिवी वा अन्तरिक्ष और विजिगीषु शत्रु को और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़, अचल शत्रु जनों को भी (धूनुथ) कंपा देते हो। हे (यामनः) यान करने हारो ! (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना) वायुओं से वनों के समान (वना) शत्रु के वन-वत् सैन्य समूह (नि जिहते) पराजित होकर कांपते, एवं रण छोड़कर

भागते हैं। आप लोग (पृथिवी) समस्त भूमण्डल को (कोपयथ) विक्षुब्ध करने में समर्थ होते रहें।

वार्तत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ४

भा०—(वात-त्विषः) वायु वा प्राण के समान विद्युत् वा उत्तम तीक्ष्ण कान्ति को धारण करने वाले, (वर्ष-निर्णिजः) वर्षों तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने हारे जलों द्वारा पदाभिषिक्त (यमाः इव) संयम के पालक तपस्वियों के समान, इन्द्रियों के नियन्ता (सु-सदृशः) उत्तम रीति से सबको एक समान देखने वाले, (सु-पेशसः) उत्तम रूपवान्, (पिशङ्गाश्वाः) पीले घोड़ों वाले, (अरुणाश्वाः) और लाल घोड़ों वाले, (प्र-त्वक्षसः) अच्छी प्रकार शत्रुओं का छेदन भेदन करने में समर्थ और (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (द्यौः इव) सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी वा नायक के तुल्य (उरवः) महान् पराक्रमी हों।

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे५।२१

भा०—पूर्वमन्त्र में कहे वीर पुरुष (पुरु-द्रप्साः) वायुओं के समान अपने में जलवत् बहुत प्रकार के बलों, वीर्यों को धारण करने वाले, (अञ्जिमन्तः) नाना कामनाओं और अभिव्यञ्जक चिह्नों को धारण करने वाले (सु-दानवः) उत्तम जलवत् धनैश्वर्यों के दान करने और शत्रु खण्डन और प्रजाओं का पालन करने वाले, (त्वेषः सन्दृशः) कान्ति वा तेज से समान रूप से दर्शनीय, (अनवभ्र-राधसः) धनैश्वर्यों को नाश न होने देने वाले, सदा सम्पन्न, (जनुषा) जन्म से ही, स्वभावतः (सुजातासः) माता और गुरु जनों और विद्या से जन्म प्राप्त कर उत्पन्न वा प्रसिद्ध हुए, (रुक्म-वक्षसः) छाती पर सुवर्ण के आभूषण धारण करते हुए, (दिवः-अर्काः) सूर्य के किरणों के तुल्य, तेजस्वी, पूज्य, होकर (अमृतं नाम) अमृत,

अविनाशी मार्गों को (वि भेजिरे) धारण करें। (२) वायु गण (वर्ष-निर्णिजः) वर्षा द्वारा जगत् को धोने वाले, (पुरु-द्रप्साः) बहुत जलों वाले, (त्वेष-संदृशः) विद्युत् दीप्ति से ज्ञात होने वाले, (अमृतं) जल, प्राण जीवन को धारण करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋष्टयो॑ वो मरुतो॒ अंस॑यो॒रधि॒ सह॒ ओजो॑ बा॒ह्वोर्वो॒ बलं॑ हि॒तम्।
नृ॒म्णा शी॒र्षस्वायु॑धा॒ रथे॑षु वो॒ विश्वा॑ वः॒ श्रीरधि॑ त॒नूषु॑ पिपिशे ॥६

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् वीर पुरुषो! (वः अंसयोः अधि) आप लोगों के कंधों पर (ऋष्टयः) शत्रुनाशक हथियार हों और (वः बाह्वोः) आप लोगों की बाहुओं में (सहः) शत्रु को पराजय करने में समर्थ (ओजः बलम्) पराक्रम और बल (हितम्) विद्यमान हों और (शीर्षसु) आप लोगों के शिरों पर (नृम्णा) मनुष्यों को अच्छा लगाने वाले मुकुट, पगड़ी आदि हों और (वः रथेषु) आप लोगों के रथों पर (आयुधानि) शस्त्र अस्त्र, हों और (वः तनूषु अधि) आप लोगों के शरीरों पर (विश्वा श्रीः पिपिशे) समस्त प्रकार की लक्ष्मी, सुशोभित हों।

गोम॒दश्वा॑व॒द्रथ॑वत्सु॒वीरं॑ च॒न्द्रव॒द्राधो॑ मरुतो ददा नः।
प्रश॑स्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षी॒य वोऽव॑सो॒ दैव्य॑स्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो, विद्वानो! आप लोग (गोमत्) गौओं, (अश्वावत्) अश्वों और (रथवत्) रथों से सम्पन्न और (चन्द्रवत्) सुवर्णादि से युक्त (सुवीरं) उत्तम पुत्रों और वीरों से सेवित, (राधः) ऐश्वर्य (नः दद) हमें प्राप्त कराओ। हे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले 'रुद्र' सेनापति के हितैषी जनो! (नः प्रशस्तिं कृणुत) आप लोग हमारा शासन वा उपदेश उत्तम रीति से करो। हम लोग (वः) आप लोगों के (दैव्यस्य) देव, तेजस्वी राजा के द्वारा अनुशासित (अवसः) रक्षा आदि प्रबन्ध का (भक्षीय) अच्छी प्रकार भोग करें।

ह॒ये नरो॒ मरु॑तो मृ॒ळता॑ नस्तुवीमघासो॒ अमृ॑ता॒ ऋत॑ज्ञाः।
सत्य॑श्रुतः॒ कव॑यो॒ युवा॑नो॒ बृह॑द्गिरयो बृ॒हदु॒क्षमा॑णाः ॥८॥२२॥

भा०—(हये नरः) हे नायक, नेता पुरुषो ! हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् शत्रुओं को मारने और शरीर से युद्धादि जीवन संकटों में स्वयं भी मरने वाले ! वीरो ! विद्वानो ! आप लोग (तुवि-मघासः) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी, (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतज्ञाः) सत्य ज्ञान को जानने वाले, (सत्यश्रुतः) सत्य ज्ञान को श्रवण करने वाले, (कवयः) दूरदर्शी, मेधावी, (युवानः) जवान, (बृहद्-गिरयः) बड़े उपदेष्टा और (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान और ऐश्वर्य को (उक्षमाणाः) वहन करने वाले होकर (नः मृडत) हमें सुखी बनाओ। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५८]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत्-त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

तमु॒ नू॒नं तवि॑षीमन्तमेषां स्तु॒षे ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनाम् ।
य आ॒श्व॑श्वा॒ अम॑व॒द्वह॑न्त उ॒तेशि॑रे अ॒मृत॑स्य स्व॒राजः॑ ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसीनां) नयी, नयी, सदा नवीन, प्रजाओं में विद्यमान (एषां) इन मनुष्यों के (तविषीमन्तं) बल से युक्त (मारुतं गणं) शत्रुओं को मारने वाले प्रबल गण के विषय में (स्तुषे) मैं उपदेश करता हूँ (ये) जो (आशु-अश्वाः) तीव्र वेगवान् अश्वों अश्वारोहियों के स्वामी हों और जो (स्व-राजः) स्वयं तेज से देदीप्यमान होकर (अमवत्) बलवीर्य के तुल्य (अमृतस्य) दीर्घ आयु को (वहन्त) धारण करते हुए (ईशिरे) ऐश्वर्य प्राप्त करते और शासन करते हैं।

त्वे॒षं ग॒णं त॒वसं॒ खादि॑हस्तं॒ धुनि॑व्रतं मा॒यिनं॒ दाति॑वारम् ।
म॒यो॒भुवो॒ ये अमि॑ता महि॒त्वा वन्द॑स्व विप्र तुवि॒राध॑सो॒ नॄन् ॥२॥

भा०—हे (विप्र) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे राजन् विद्वन् ! मेधाविन् ! तू (त्वेषं) दीप्तिमान्, (तवसं) बलवान्, (खादिहस्तं) हाथों में कटक आदि आभूषण तथा वज्र, तलवार आदि लिये, सशस्त्र,

(धुनि-व्रतं) शत्रुओं को कंपाने का कार्य करने वाले, अथवा जल प्रवाह के समान एक समान रूप से जाने वाले, (मायिनम्) उत्तम बुद्धियों से सम्पन्न, (दातिवारम्) दान को प्रेम और श्रद्धा से स्वीकार करने वाले, (गणं) गण्य, मान्य पुरुषों को (वन्दस्व) अभिवादन कर, उनकी प्रशंसा कर और (ये) जो लोग राष्ट्र में (मयोभुवः) सुख शान्ति उत्पन्न करने हारे (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (अमिताः) अनन्त पराक्रम और ज्ञान से सम्पन्न हों उनको और जो (तुवि-राधसः नॄन्) बहुत आराधना करने वाले या बहुत ऐश्वर्य वाले नायक पुरुष हों उनको भी (वन्दस्व) आदर पूर्वक नमस्कार कर ।

आ वो॑ यन्तूदवा॒हासो॑ अ॒द्य वृ॒ष्टिं ये विश्वे॑ म॒रुतो॑ जु॒नन्ति॑ ।
अ॒यं यो अ॒ग्निर्म॑रुतः॒ समि॑द्ध ए॒तं जु॑षध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (ये) जो (विश्वे मरुतः) सब मनुष्य वायु गण के समान (वृष्टिं) वर्षा के तुल्य ऐश्वर्य, धन, सम्पदा का वर्षण (जुनन्ति) करते हैं वे (उद-वाहासः) जलों को नाना स्थानों पर पहुँचाने वाले जल-विद्यावित्, जल, नहर, कूप आदि के शिल्पीजन (वः) तुम लोगों को (आ यन्तु) प्राप्त हों । हे (मरुतः) विज्ञानवान् पुरुषो ! (यः अयं) यह जो (सम्-इद्धः) खूब तेजस्वी (अग्निः) अग्नि के तुल्य, अग्रणी, ज्ञानप्रकाशक और प्रताप से युक्त वीर और विद्वान् पुरुष है आप (कवयः) विद्वान् बुद्धिमान् (युवानः) युवा पुरुषो ! (एतं जुषध्वम्) उसका नित्य सेवन किया करो ।

यू॒यं राजा॑न॒मिर्यं॒ जना॑य विभ्वत॒ष्टं ज॑नयथा यजत्राः ।
यु॒ष्मदे॑ति मुष्टि॒हा बा॒हुजू॑तो यु॒ष्मत्सद॑श्वो मरुतः सु॒वीरः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (यजत्राः) यज्ञशील, परस्पर संगत, मैत्री और संघ बना-कर रहने वाले प्रजाजनो ! (यूयम्) आप लोग, (इर्यं) शत्रुओं को कपाने और भृत्यों व अधीनों को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विभ्वतष्टं)

मेधावी ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा उपदेश, ताड़ना, शिक्षा द्वारा तैयार किये पुरुष को (जनाय) प्रजाजन के हित के लिये (राजानम्) तेजस्वी (जनयथाः) बनाओ। ऐसे को अपना रक्षक बनाओ। हे (मरुतः) मनुष्यो ! (बाहु-जूतः) बाहुबलशाली, (मुष्टि-हा) मुक्कों से ही शत्रु को मार देने वाला, वा राष्ट्र में से मुष्टि अर्थात् चोरी आदि का नाश कर देने वाला, वा (मुष्टिहा) मुट्ठी के समान संघ बना कर शत्रु को दण्डित करने वाला पुरुष (युष्मत् एति) तुम लोगों के बीच में से ही आता, प्रकट होता है और (सद्-अश्वः) उत्तम अश्वों का स्वामी, जितेन्द्रिय (सु-वीरः) उत्तम वीर्यवान्, वीर सैन्य पुरुष भी (युष्मत्-एति) तुम में से ही उत्पन्न होता है।

अ॒रा इ॒वेद॑च॒रमा॒ अहे॑व॒ प्रप्र॑ जायन्ते॒ अक॑वा॒ महो॑भिः।
पृश्नेः॑ पु॒त्रा उ॑प॒मासो॒ रभि॑ष्ठाः॒ स्वया॑ म॒त्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः अचरमाः) वायु गण अनन्त, (अकवाः) अकुत्सित, विमल जल वाले, (पृश्नेः पुत्राः) सूर्य के पुत्र और पृथिवी के पुरुषों के पालक, (स्वया मत्या) अपनी शक्ति से (संमिमिक्षुः) खूब वर्षा करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! आप लोग (अराः इव) चक्र में लगे अरों या दण्डों के समान (अचरमाः) एक दूसरे के ऐसे पीछे रहो कि कोई अन्तिम, अरक्षित न हो अर्थात् चक्रव्यूह बना कर रहो और आप लोग (महोभिः) तेजों और महान् सामर्थ्यों से (अहा इव) दिनों के समान प्रकाशित होकर (अकवाः) परस्पर कुत्सित वचन न कहते हुए, अनल्प सामर्थ्यवान् होकर (प्र प्र जायन्ते) एक दूसरे के पीछे आते जाया करो। ऐसे आप लोग (पृश्नेः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा और अन्नदात्री भूमि और मेघवत् निष्पक्षपात गुरु और सेक्ता पिता के (पुत्राः) पुत्र होकर (उपमासः) सभी एक दूसरे के तुल्य एवं अन्यों के आगे उपमा या उत्तम दृष्टान्त होने योग्य, सर्वानुकरणीय, (रभिष्ठाः) अति अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, वेगवान्, बलवान् होकर (स्वया मत्या) अपनी बुद्धि और शक्ति से (सं मिमिक्षुः) परस्पर मिल कर शत्रु

पर शरवर्षण, गृहस्थ में निषेक, राष्ट्र में राज्याभिषेक और प्रजावर्ग में क्षेत्रादि सेचन और परस्पर की वृद्धि करो।

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥

भा०—(मरुतः पृषतीभिः) वायु गण जिस प्रकार जल सेचन करने वाली मेघ-घटाओं से और (वीडु-पविभिः) बलवान् वज्रघातों से प्रहार करते हैं, तब (आपः क्षोदन्ते) जल बून्द २ में फट २ कर आते हैं और (वनानि रिणते) वृक्ष-वनों को आघात करते हैं और (उस्त्रियः वृषभः) किरणों का स्वामी वर्षणशील (द्यौः) सूर्य और (उस्त्रियः) पृथिवी का हितैषी मेघ रूप से गर्जता है। उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुषो! (यत्) जब आप लोग (पृषतीभिः) शत्रु पर शरवर्षण करने वाली सैन्य घटाओं और मद सेचन करने वाली गज घटाओं तथा (अश्वैः) वेगवान् अश्वों से और (वीडु-पविभिः) दृढ़ चक्र धार वाले (रथेभिः) रथों से (प्रायासिष्ट) प्रयाण करते और नेता भी प्रयाण करता है, तब (आपः) आप्त, प्रजा गण (क्षोदन्ते) धनैश्वर्यादि से बरसते हैं और (वनानि रिणते) सैन्य जन और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और (उस्त्रियः) भूमि का हितैषी, वा किरणों से तेजस्वी, (द्यौः) सूर्य के समान प्रकाशमान वीर पुरुष (अव क्रन्दतु) गर्जना करे।

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः।
वातान्ह्यश्वान्धुर्या युयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

भा०—(एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट) वायुओं के चलने के निमित्त जिस प्रकार पृथिवी अति विस्तृत क्षेत्र है उसी प्रकार (एषां यामन्) इन वीर पुरुषों के शासन और प्रयाण करने के काल में (पृथिवी) यह भूमि (प्रथिष्ट) अति विस्तृत हो। (भर्त्ता यथा स्वं शवः गर्भं दधाति) पति जिस प्रकार अपने वीर्य को गर्भ रूप से धारण कराता है उस प्रकार वायु गण

भी (स्वं शवः) अपने जल रूप (गर्भं) गृहीत अंश को अन्तरिक्ष में धारण कराते हैं, वीर पुरुष भी (भर्त्ता इव) पालक राजा के समान ही (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य (स्वम् इत् शवः) धन और बल को (धुः) धारण करें। जिस प्रकार (धुर्याः) धारक वायु गण (वातान् युयुज्रे) वायु के झकोरे लगाते हैं उसी प्रकार (धुर्याः) सैन्यों और राष्ट्र के धारण करने में समर्थ, कुशल पुरुष (वातान् अश्वान्) वायुवत् तीव्रगामी अश्वों को (युयुज्रे) रथ में जोड़ें और (रुद्रियासः) दुष्टों को रुलाने वाले ये वीरजन (वर्षं) वर्षा के तुल्य ही (स्वेदं चक्रिरे) प्रस्वेद को उत्पन्न करें अर्थात् श्रम-पूर्वक धनोपार्जन और विजय करें।

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२३॥

भा०—(हये) हे (मरुतः नरः) वायुवत् बलवान्, प्राणवत् प्रिय, नायक पुरुषो ! आप लोग (तुवि-मघासः) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी (अमृताः) दीर्घायु और (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले होकर (नः मृडत) हमें सुखी करो। आप लोग (सत्य-श्रुतः) सत्य ज्ञान का श्रवण करने वाले, (कवयः) क्रान्तदर्शी, (युवानः) सदा जवान, शक्तिमान्, (बृहद्-गिरयः) गुणों में बड़े, पर्वत वा मेघ के तुल्य सुखों की धारा बहाने वाले और (उक्षमाणाः) क्षेत्र में जल, वीर्यादि सेचन करते हुए (बृहत्) बहुत सा धन धान्य, प्रजा, ऐश्वर्य प्राप्त करो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[५९]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती। २, ३, ६ निचृज्जगती। ५ जगती। ७ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥

प्र वः स्पळक्रन्त्सुवितायं दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! जो वीर पुरुष एवं प्रजा के लोग (सुविताय)

उत्तम मार्ग में सुखपूर्वक जाने और सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये और (दावने दिवे) दानशील तेजस्वी पुरुष, राजा के लिये और (पृथिव्यै) और पृथिवी वा उसके वासी जनों और अज्ञानी आश्रित जनों के (भरे) भरण पोषण वा संग्रामादि के लिये (ऋतम् प्र अक्रन्) जल, अन्न उत्पन्न करते और सत्य न्याय की व्यवस्था वा प्रयाण करते हैं, हे राजन् ! तू (स्पट्) सर्वद्रष्टा, सर्वाध्यक्ष होकर उनका (प्र अर्च) आदर-सत्कार किया कर। इसी प्रकार जो वीर, प्रजा जन (अश्वान् उक्षन्ते) अश्वों को सेचते या अश्व सैन्यों को सञ्चालित करते हैं, उनका भरण पोषण, वर्धन आदि का भार अपने ऊपर लेते हैं और जो (रजः) समस्त लोक को (तरुषन्त) व्यापते, दुनियां भर में जाते आते रहते हैं और जो (अर्णवैः) जल भरे समुद्रों वा नदियों द्वारा (अनु) निरन्तर (स्वं भानुं) अपने तेज वा देदीप्यमान धनैश्वर्य को (श्रथयन्ते) सञ्चित करते हैं उन व्यापारी और यान-कुशल लोगों का तू (प्र अर्च) आदर कर। ये वायुगण (दिवे पृथिव्यै ऋतम् अक्रन्) आकाश से जल और पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करते हैं (अश्वान्) मेघों वा सूर्य किरणों को धारते, उन द्वारा वृष्टि कराते, (रजः) अन्तरिक्ष में वेग से जाते, जलों सहित जाते, (भानुं) सूर्य प्रकाश को (श्रथयन्ते) शिथिल, सह्य कर देते हैं।

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन वायुवत् बलवान् पुरुषों के (भियसा) भय से (भूमिः) भूमि (नौः न) नाव के समान (एजति) कांपती है और (अमात् यती) घर से निकलती हुई (व्यथिः) दुःखों से पीड़ित हुई स्त्री के तुल्य यह (पूर्णा) जल से पूर्ण, या सर्वपालक अन्तरिक्ष परराष्ट्र की भूमि भी (क्षरति) अश्रुवत् जल वर्षण करती है। (ये) जो विद्वान् वीर पुरुष (दूरेदृशः) दूरवीक्षणादि यन्त्रों से दूर देखने में समर्थ एवं बुद्धिपूर्वक दूर, भविष्य को देख लेने वाले हैं वे (एमभिः) ज्ञानों से, मार्गों से और अपने

गमन, आचरणादि से (चितयन्त) अन्यों को सचेत करें और (नरः) वे नायक जन (अन्तः महे विदथे) भीतरी, बड़े भारी ज्ञान और यज्ञ संग्रामादि में भी (येतिरे) यत्नशील हों।

गवा॑मिव श्रि॒यसे॒ शृङ्ग॑मुत्त॒मं सूर्यो॒ न चक्षू॒ रज॑सो वि॒सर्ज॑ने।
अत्या॑ इव सु॒भ्व॒श्चार॑वः स्थन॒ मर्या॑ इव श्रि॒यसे॑ चेतथा नरः ॥३॥

भा०—हे (नरः) उत्तम नायको! हे विद्वान् पुरुषो! (गवाम्-इव शृङ्गम् उत्तमम्) जिस प्रकार गौवों का सींग सबसे ऊंचा तथा (श्रियसे) उसके शरीर की शोभा के लिये भी होता है उसी प्रकार आप लोगों का (उत्तमम्) सबसे उत्तम (शृङ्गम्) शत्रु को मारने वाला शस्त्रास्त्र बल भी (श्रियसे) प्रजा को आश्रय देने और शोभा लक्ष्मी की वृद्धि के लिये हो। (रजसः विसर्जने सूर्यम् चक्षुः) प्रकाश और जल देने के लिये जिस प्रकार सूर्य सर्वप्रकाशक है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! (रजसः विसर्जने) राजस भावों को त्याग और अन्य लोगों के विविध मार्गों में चलाने के लिये आप लोगों का (चक्षुः) सत्य तत्वदर्शी दर्शन ही सूर्यवत् प्रकाशक हो और आप लोग (अत्याः इव) वेगवान् अश्वों के समान (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, उत्तम भूमियों के स्वामी और (चारवः) उत्तम मार्ग में चलने वाले (स्थन) होवो और आप लोग (श्रियसे) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (मर्याः इव) सामान्य मनुष्यों के समान होवो, (चेतथ) सदा सावधान रहो, पदाधिकार के मद में अपव्ययी और उपेक्षाकारी मत होवो।

को वो॑ म॒हान्ति॑ मह॒ताम॒ुद॑श्नव॒त्कस्काव्या॑ मरुतः॒ को ह॒ पौंस्या॑।
यू॒यं ह॒ भूमिं॑ कि॒रणं॒ न रे॑जथ॒ प्र यद्भर॑ध्वे सुवि॒ताय॑ दा॒वने॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो! (महतां वः) बड़े सामर्थ्यवान् आप लोगों के (महान्ति) बड़े २ विज्ञान आदि सामर्थ्यों को (कः) कौन (उद् अश्नवत्) पा सकता है? आप लोगों के (काव्या) विद्वानों द्वारा कहे कार्यों, विद्वान् पुरुषों द्वारा बनाये शस्त्रों का भी पार (कः) कौन पा

सकता है, (पौंस्या) और आप लोगों के पौरुष, पराक्रमों को भी (कः ह) कौन मुक़ाबला कर सकता है ? (यूयं ह) आप लोग (भूमिं) भूमि को (किरणं न) सूर्य के किरण के समान (प्र रेजथ) उत्पन्न और विचलित कर सकते हो, (यत्) जो आप लोग (सुविताय) ऐश्वर्यवान् दाता, स्वामी की वृद्धि के लिये (प्र भरध्वे) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण, तथा शत्रु पर प्रहार करते हो। वे भरण पोषण द्वारा प्रजा को उन्नत और प्रहारों द्वारा शत्रु को विचलित करते हैं।

अश्वा॑ इ॒वेद॑रु॒षास॑ः सब॑न्धव॒ः शूरा॑ इव प्र॒युध॒ः प्रोत यु॑युधुः ।
मर्या॑ इव सु॒वृधो॑ वावृधु॒र्नर॒ः सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒ः प्र मि॑नन्ति वृ॒ष्टिभि॑ः ५

भा०—वे वीर और विद्वान् पुरुष (अश्वाः इव) वेगवान् घोड़ों वा घुड़सवारों के समान (अरुषासः) लाल वर्णों की पोषाकों वाले, वा तेजस्वी, अथवा रोषरहित, (स-बन्धवः) समान रूप से परस्पर बन्धुवत्, एक ही नायक के अधीन, समान रूप से बंधे हुए, (शूराः इव) शूरवीर योद्धाओं के समान (प्र-युधः) अच्छी प्रकार प्रहार करने में समर्थ होकर (युयुधुः) युद्ध करें। वे (नरः) नायक पुरुष (मर्याः इव) मनुष्यों के समान (सु-वृधः) प्रजाओं की वृद्धि करते हुए स्वयं भी (वव्रुधुः) बढ़ें। (वृष्टिभिः) वर्षाओं से जिस प्रकार वायुगण (सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति) सूर्यादि के प्रकाशक तेज को नष्ट करती हैं उसी प्रकार वे भी (वृष्टिभिः) शस्त्रास्त्र वर्षाओं द्वारा संग्राम में (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी शत्रु जन के (चक्षुः) आंखों को (प्र मिनन्ति) अच्छी प्रकार नाश करें।

ते अ॑ज्ये॒ष्ठा अक॑निष्ठास उ॒द्भिदो॑ऽमध्यमासो॒ मह॑सा॒ वि वा॑वृधुः ।
सु॒जा॒तासो॑ ज॒नुषा॒ पृश्नि॑मातरो दि॒वो मर्या॒ आ नो॒ अच्छा॑ जिगातन६

भा०—(ते) वे (अज्येष्ठाः) ज्येष्ठ, अपने से बड़े पुरुष से पृथक् (अकनिष्ठासः) बहुत छोटे व्यक्तियों से पृथक् और (अमध्यमासः) मध्यम, समान व्यक्तियों से पृथक्, निर्मम (उद्भिदः) पृथ्वी को फोड़ कर उत्पन्न

होने वाले वृक्षों के समान, सदा ऊंचे लक्ष्य को भेदने वाले, अथवा उत्तम फल उत्पन्न करने वाले, उत्तम मनुष्य (महसा) महान् सामर्थ्य से (वि ववृधुः) विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त करते हैं। वे (सु-जातासः) उत्तम ऐश्वर्य आदि गुणों में प्रसिद्ध (जनुषा) जन्म से, स्वभावतः (पृश्नि-मातरः) सूर्य से उत्पन्न किरणों के समान सर्वपोषक, भूमि-माता के पुत्र, एवं ज्ञान, पोषक आचार्य के पुत्र तुल्य वीर जन (दिवः) नाना कामनाओं को करने वाले (मर्याः) मनुष्य (नः) हमें (अच्छ जिगातन) उत्तम रीति से प्राप्त हों।

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७॥

भा०—जो वायुवत् बलवान् वीर सैनिक गण (वयः) पक्षियों वा सूर्य की किरणों के समान (श्रेणीः) श्रेणियां या पंक्तियें बनाकर (पप्तुः) प्रयाण करते और (ओजसा) बल पराक्रम से (बृहतः दिवः) बड़े २ व्यवहारों वा बड़ी कामनाओं को और (सानुनः परि) शिखर-वत् भोगने योग्य उत्तम पद के ऊपर भी प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार वायु गण (पर्वतस्य नभनून् अचुच्यवुः) मेघ की गर्जती जल-धारों और वज्रों को चलाते वा गिराते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इनके (उभये) दोनों प्रकार के (अश्वासः) अश्वारोही जन (यथा विदुः) जैसा भी जानते और ऐश्वर्यादि प्राप्त करते हैं तदनुसार, (पर्वतस्य) अपने परिपालक राजा वा सेनापति के (नभनून्) आज्ञा वचनों को (प्र अचुच्युवुः) अच्छी प्रकार पालन करते हैं। पूर्वार्ध में कहे अश्वों को दो प्रकार हैं एक जो पंक्तिबद्ध होकर चलें, दूसरे जो मुख्य पद पर स्थित हों वा स्वयं व्यवहार व्यापार एवं नाना कार्यों में नियुक्त होकर पृथक् २ जावें। नभन्वः इति नदी नाम।

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥२४॥

भा०—(द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (वीतये) ज्ञान से

प्रकाशित करने और पालन के लिये (नः मिमातु) हमें प्राप्त हो और (अदितिः) पृथिवी जिस प्रकार (वीतये) खाने के लिये अन्न को पैदा करती है उसी प्रकार अखण्ड शासक राजा वा माता और पिता (नः वीतये) हमारे तेज और भोजनादि के लिये उपाय करे। (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान कान्तिमती स्त्रियें, (दानुचित्राः) नाना देने योग्य आभूषणों से चित्र विचित्र, मनोहर होकर (सं यतन्ताम्) पुरुषों के साथ उद्योग करें। अथवा—(उषसः) शत्रु दग्ध करने वाली तेजस्विनी सेनाएं (दानु-चित्राः) छेदन भेदन करने वाले हथियारों से अद्भुत त्राणदाता होकर (सं यतन्ताम्) मिल कर विजय का उद्योग किया करें। हे (ऋषे) द्रष्टः! सर्वाध्यक्ष! (एते) ये (गृणानाः मरुतः) स्तुति योग्य एवं अन्यों का उपदेश करने वाले वीर और विद्वान् पुरुष, (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले सेनापति तथा सर्वोपदेष्टा आचार्य के (दिव्यं कोशम्) दिव्य खड्ग तथा दिव्य ज्ञानमय कोश को (अचुच्युवुः) प्रयोग में लावें। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[६०]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो वाग्निश्च देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ८ जगती॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

ईळे॑ अ॒ग्निं स्वव॑सं॒ नमो॑भिरि॒ह प्र॑स॒त्तो वि च॑यत्कृ॒तं नः॑।
रथै॑रिव॒ प्र भ॑रे वाज॒यद्भिः॑ प्रदक्षि॒णिन्म॒रुतां॒ स्तोम॑मृध्याम्॥१॥

भा०—मैं प्रजाजन (सु-अवसं) उत्तम रक्षा करने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को (नमोभिः) आदर सत्कारों से (ईडे) अधिकारी बनाता हूँ जो (प्र-सत्तः) उत्कृष्ट पद पर विराज कर (नः) हमारे (कृतं) किये कामों का (वि चयत्) अच्छी प्रकार विवेक करे और (वाजयद्भिः रथैः) संग्राम करने वाले रथों से जिस प्रकार (मरुतां स्तोमम् भरे) शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों का गण संग्राम में समृद्ध होता है, उसी प्रकार मैं

प्रजाजन (भरे) पालन पोषण के निमित्त (वाजयद्भिः रथैः) अन्न ऐश्वर्यादि के लिये गमन करने वाले रथों, यानों से (प्र-दक्षिणित्) खूब पृथिवी भर के देशों का चक्कर लगाता हुआ (मरुतां स्तोमम्) राष्ट्रवासी मनुष्यों के समूह को (प्र ऋध्याम्) अच्छी प्रकार समृद्ध करूं। अथवा—(वाजयद्भिः रथैः इव प्र भरे) संग्रामकारी यानों से जिस प्रकार शत्रुओं पर प्रहार करूं उसी प्रकार धनैश्वर्यादि से लदी गाड़ियों से मैं खूब (प्र भरे) अपनों को पुष्ट करूं वा खूब समृद्धि अपने देश में लाऊं।

आ ये त॒स्थुः पृष॑तीषु श्रु॒तासु॑ सु॒खेषु॑ रु॒द्रा म॒रुतो॒ रथे॑षु ।
वना॑ चिदुग्रा जिहते॒ नि वो॑ भि॒या पृ॑थि॒वी चि॑द्रेजते॒ पर्व॑तश्चित् ॥२

भा०—(ये) जो (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने और सबको उपदेश करने वाले, वीरजन, विद्वान् जब (सुखेषु रथेषु) सुखजनक रथों में और (श्रुतासु पृषतीषु) चित्र विचित्र अश्वों और हृदय, अन्तःकरण में ज्ञान का रस वर्षाने वाली, श्रवण योग्य विद्याओं में (आतस्थुः) विराजते हैं उन (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना चित्) सूर्य की किरणों के समान तीक्ष्ण, (उग्राः) वेग से चलने वाले वायु के समान शत्रुगण भी (नि जिहते) नीचे, विनीत हो जाते हैं। (पृथिवी चित् रेजते) पृथिवी, उसमें निवासिनी प्रजा भी कांपती है, उसका आतङ्क मानती है, (पर्वतः चित् रेजते) पर्वत या मेघ के तुल्य ऊंचा राजा घोर योद्धा शत्रु भी कांपता, विचलित हो जाता है।

पर्व॑तश्चिन्महि॑ वृ॒द्धो बि॑भाय दि॒वश्चि॒त्सानु॑ रेजत स्व॒ने वः॑ ।
यत्क्रीळ॑थ मरुत ऋष्टिमन्त॒ आप॑ इव स॒ध्र्य॑ञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर, विद्वान् पुरुषो ! (वः स्वने) आपका गर्जन और उपदेश होने पर (पर्वतः चित्) मेघ वा पर्वत के तुल्य (वृद्धः) बल शक्ति में बढ़ा हुआ शत्रु भी (महि बिभाय) बहुत अधिक भयभीत होता है। (दिवः चित् सानु) आकाश के उच्च भाग के समान तेजस्वी, धनार्थी पुरुष का भी शिखर, शिर आदि कांप जाता है, वह भी अस्थिर बुद्धि हो जाता

है। हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जब आप लोग (ऋष्टि-मन्तः) शस्त्रों और उत्तम ज्ञानों से सम्पन्न होकर (क्रीडथ) विहार, विनोद करते हो तब जिस प्रकार वायु वेगों से जलधाराएं मेघ से एक साथ नीचे आ उतरती हैं उसी प्रकार आप लोग भी (आपः) जल-धाराओं के समान, आप्त, (सध्र्यञ्चः) एक साथ गमन करते हुए (धवध्वे) शत्रुगण को कंपाओ और आगे बढ़ो।

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वरा इव रैवतासः) जिस प्रकार विवाह योग्य वर लोग धन सम्पन्न होकर (तन्वः) शरीरों को (हिरण्यैः) सुवर्ण के आभूषणों से और (स्वधाभिः) अन्नों से (पिपिश्रे) अपने को सजाते और अंग २ को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (रैवतासः) धन-धान्य और पशु सम्पत्ति से सम्पन्न होकर (हिरण्यैः स्वधाभिः) हित और रमणीय गुणों, सुवर्णादि आभूषणों और देह धारक शक्ति और अन्नों से (तन्वः पिपिश्रे) शरीर के प्रत्येक अंग को सुन्दर और दृढ़ करो और आप लोग (श्रेयांसः) अति श्रेष्ठ और (तवसः) बलशाली होकर (रथेषु) रथों पर आरूढ़ होकर और (तनूषु) अपने देहों में सुशोभित रहकर (श्रिये) धन समृद्धि और शोभा की वृद्धि के लिये (महांसि सत्रा) बड़े २ युद्ध और बड़े २ यज्ञ, अधिवेशन आदि (चक्रिरे) करें।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥

भा०—(एते) ये मनुष्य, समस्त विद्वान् और वीरगण, (अज्येष्ठासः) परस्पर न एक दूसरे से बड़े और (अकनिष्ठासः) न एक दूसरे से छोटे, एक समान, मान-आदर, पदाधिकार से युक्त होकर (भ्रातरः) भाइयों के समान एक दूसरे को पुष्ट करते हुए (सौभगाय) सौभाग्य, अर्थात् उत्तम

ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ववृधुः) खूब बढ़ें। (एषां) इनका (पिता) पालन करने वाला (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, उनको दूर करने में समर्थ, एवं उत्तम उपदेष्टा और (युवा) सदा बलशाली, (सु-अपाः) उत्तम सुखजनक कर्मों का करने वाला वा (स्व-पाः) अपने बन्धुवत् परिजनों वा ऐश्वर्य की रक्षा करने हारा है। (मरुद्भ्यः) इन वायुवत् बलवान् और कर्मण्य प्रजावर्गों के लिये (पृश्निः) सूर्य, आकाश और पृथिवी (सु-दुघा) गौ के समान सुखद पदार्थ देने वाली, जलवर्षी और अन्नदात्री हों और (सुदिना) सूर्य उत्तम दिन प्रकट करने हारा हो। (२) इसी प्रकार 'वायु' अर्थात् ज्ञान की कामना करने वाले शिष्यगण 'मरुत्' हैं वे समान रूप से भ्रातृवत् रहें, उनका पिता आचार्य और विद्वान् वेदवित्, उत्तम ज्ञान-रस देने हारा हो।

यदु॑त्त॒मे म॑रुतो मध्य॒मे वा॒ यद्वा॑व॒मे सु॑भगासो दि॒वि ष्ठ।
अतो॑ नो रुद्रा उ॒त वा॒ न्व१॒॑स्याग्ने॑ वि॒त्ताद्ध॒विषो॒ यद्यजा॑म ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, वीर, ज्ञानी पुरुषो! आप लोग (यत् उत्तमे यत् मध्यमे यत् वा अवमे) जो उत्तम, मध्यम और निष्कृष्ट (दिवि) व्यवहार वा काम्य कर्मों में, या पदों या स्थानों पर (स्थ) रहते हो वहां भी आप लोग (सु-भगासः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर रहो। (हे रुद्राः उत वा हे अग्ने) हे दुष्टों को रुलाने वालो! और हे अग्नि के समान तेजस्विन्! नायक! हम लोग (यत् यजाम) जो कुछ दें वा आप लोगों का आदर सत्कार करें आप लोग (अस्य हविषः) इस देने योग्य अन्न आदि को (नु) सदा (नः वित्तात्) हमारा आदर पूर्वक स्वीकार कर।

अ॒ग्निश्च॒ यन्म॑रुतो विश्ववेदसो दि॒वो वह॑ध्व॒ उत्त॑रा॒दधि॒ ष्णुभिः॑।
ते म॑न्दसा॒ना धुन॑यो रिशादसो वा॒मं ध॑त्त॒ यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो! आप (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के धनों के स्वामी (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष आप (दिवः)

ज्ञान, प्रकाश, तेज की कामना करते हुए (उत्तरात्) अपने से उत्कृष्ट (दिवः) ज्ञानयुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (स्नुभिः) अन्य उत्तम इच्छावान् पुरुषों सहित वा ज्ञान के उपदेशों द्वारा (यत् अधि वहध्वे) जो अधिकार वा ज्ञान प्राप्त करते हों, (ते) वे आप लोग (मन्दसानाः) आनन्द प्रसन्न (धुनयः) बाह्य और भीतरी शत्रुओं को कंपाते हुए (रिशादसः) हिंसक प्राणियों का नाश करते हुए (यजमानाय) ज्ञान आदि का दान, उत्तम गुणों की याचना और सत्संग आदि करने वाले तथा (सुन्वते) अन्न ऐश्वर्यादि देने वाले पुरुष की वृद्धि के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य (धत्त) प्रदान करो।

अग्ने॑ म॒रुद्भिः॑ शु॒भय॑द्भि॒र्ऋक्व॑भि॒ः सोमं॑ पिब मन्दसा॒नो ग॑ण॒श्रिभिः॑।
पा॒व॒केभि॑र्वि॒श्वमि॑न्वेभि॒रा॒युभि॒र्वैश्वा॑नर प्र॒दिवा॑ के॒तुना॑ स॒जूः ॥८॥२५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितैषिन्! सबके नायक! हे विद्वान् आचार्य! तू (शुभयद्भिः) शोभायुक्त, शुभ मार्ग से जाने वाले, (ऋक्वभिः) वेदज्ञ, (गणश्रिभिः) गण की शोभा धारण करने वाले पुरुषों से (मन्दसानः) आनन्दित होता हुआ (सोमं पिब) ऐश्वर्य का उपभोग कर और (पावकेभिः) पवित्र करने वाले, अग्नि के समान कण्टकशोधक, (विश्वमिन्वेभिः) विश्व को प्रसन्न करने वाले, वीर विद्वान् (आयुभिः) पुरुषों सहित तू (प्रदिवा केतुना) अति तेजस्वी ध्वजा, वा उत्तम व्यवहार युक्त अति पुरातन सर्वज्ञापक, ज्ञानमय वेद से (सजूः) समान रूप से सुशोभित होकर तू (सोमं पिब) सौम्य शिष्यगण एवं राजगण का पालन कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[६१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ १—४, ११—१६ मरुतः। ५—८ शशीयसी तरन्तमहिषी। ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः। १० तरन्तो वैददश्विः। १७—१९ रथवीतिर्दार्ल्भ्यो देवताः॥ छन्दः—१—४, ६—८, १०—१९ गायत्री। ५ अनुष्टुप्। ९ सतोबृहती॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम्॥

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय।
परमस्याः परावतः॥ १ ॥

भा०—मनुष्यों को परस्पर कुशल प्रश्न आदि व्यवहार का उपदेश करते हैं। हे (नरः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (के स्थ) कौन हैं? (ये) जो (श्रेष्ठतमाः) अति श्रेष्ठ हैं वे (एकः एकः) आप एक एक करके (परमस्याः) परम, सर्वोत्तम, बहुत ही (परावतः) दूर की सीमा से (आयय) आया करते हैं? दूर २ देश से आने वाले व्यक्ति का भी आतिथ्य करना और नाम आदि पूछना चाहिये।

क्व१ वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः॥ २ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (वः) आप लोगों के (अश्वाः क्व) अश्व कहां हैं? (अभीशवः क्व) बाग डोरें कहां हैं? (कथं शेक) किस प्रकार आप शीघ्र गमन करने में समर्थ होते हैं? (कथा यय) किस प्रकार से गमन करते हो? (पृष्ठे सदः) पीठ पर किस प्रकार बैठने का साज है! (नसोर्यमः) नासिकाओं में नाथ के समान पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथी कहां है? अध्यात्म में—(१) ये मरुत गण लोग जीव हैं, श्रेयो मार्ग में स्थित होने से श्रेष्ठतम हैं, अकेला जीव संसार में जन्मता है, परम धाम से आता है सही, पर वह जीव क्या है? (२) उनके 'अश्व' प्राणादि अभीशु वासनादि कहां रहते हैं, किस प्रकार वे शरीर धारण में समर्थ होते हैं, किस प्रकार वे गति करते हैं? इन प्राणगण की पृष्ठ देश में किस प्रकार से स्थिति है, नासिका छिद्रों में किस प्रकार उनका नियन्त्रण है, अर्थात् जीवों और प्राणों का इस देह में जीवन, प्राण-ग्रहण आदि का क्या रहस्य है, यह ज्ञातव्य है।

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः।
पुत्रकृथे न जनयः॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अश्वों के (जघने चोदः) जघन अर्थात् चूतड़ भाग पर कशा का प्रहार होता है उसी प्रकार (एषां) इन मनुष्यों और वीर पुरुषों के (जघने) निरन्तर गमन कार्य और हनन कार्य में भी (चोदः) प्रेरक पुरुष नियुक्त हो। वे लोग इस अवसर पर (सक्थानि वि यमुः) अपने घुटने से टखने तक की टांगों को विशेष प्रकार से बांध लिया करें और (पुत्र-कृथे न) जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न करने के लिये (नरः) पुरुष लोग (जनयः) स्त्रियों को (वि यमुः) विशेष रूप से नियमपूर्वक परस्पर प्रतिज्ञा-बद्ध होकर विवाहित हो जाते हैं उसी प्रकार ये मनुष्य भी (पुत्र-कृथे) पुत्रादि के लिये, (सक्थानि वि यमुः) प्राप्त करने योग्य साधन पदार्थों को प्राप्त करने के लिये विशेष २ नियमों से बद्ध हों।

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः।
अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वीरासः) वीर पुरुषो ! हे (मर्यासः) शत्रुओं को मारने वाले सैनिक जनो ! जिस प्रकार (भद्र-जानयः) सुखकारी स्त्री को प्राप्त करने वाले पुरुष दूर २ देश तक जाते और विवाह करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भद्र-जानयः) सुखकारी पदार्थों को जानने और पैदा करने हारे होकर (परा एतन) दूर देशों तक जाया करो और (यथा) जिस प्रकार लोग (अग्नि-तपः) पूर्ववयस में अग्नि अर्थात् आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्यादि तप करके रहते हैं उसी प्रकार आप लोग भी अग्रणी पुरुष के आधीन प्रतापी एवं अग्निवत् शत्रु को तपाने वाले (असथ) बनो।

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्।
श्यावाश्वस्तुताय यो दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (श्यावाश्व-स्तुताय) श्यामकर्ण या लाल, काले, तैलिये रंग के अश्वों द्वारा प्रशंसित अथवा जितेन्द्रिय होने से प्रशंसित (वीराय) वीर्यवान् पुरुष को (दोः) अपनी भुजा (उप बर्बृहत्) सिरहाने

के समान प्रेम से देती है, वह स्त्री वीर पुरुष से विवाह करके (अश्व्यं) अश्वों (गव्यं) गौओं से युक्त (पशुम्) नाना पशु सम्पदा और (शतावयम्) सैकड़ों भेड़ों के धन को भी (सनत्) निरन्तर भोग करती है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।
अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥

भा०—(त्वा) वह स्त्री जो (वस्यसी) उत्तम धन सम्पन्न वा उत्तम बसने वाली है वह (पुंसः शशीयसी भवति) पुरुष को समस्त संकटों से पार करने हारी, प्रशंसनीय है। वह स्त्री (अदेवत्रात्) जो मनुष्य अपने भीतर उत्तम उज्वल गुणों और विद्वान् पुरुषों की रक्षा नहीं करता और जो (अराधसः) आराधना नहीं करता वा धन हीन है उससे पृथक् रहे।

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (जसुरिं) पीड़ा देने वाले, (तृष्यन्तं) तृष्णातुर और (कामिनं) कामी पुरुष को (वि, वि जानाति) विपरीत भाव से जान लेती है वह अपने (मनः) मन को (देवत्रा कृणुते) देव, दानशील, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों में लगा दे और वह पीडक, तृष्णातुर, लोभी, विषयासक्त पुरुष को न वर कर उत्तम पुरुषों में पति वरण करे।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥ ८ ॥

भा०—(उत घ) और जो (पुमान्) पुरुष (नेमः) गृहस्थ में स्त्री का अर्धाङ्ग होकर भी (अस्तुतः) अप्रशस्त, गुणहीन है और दूसरा वह जो (पणिः) प्रशंसनीय, विद्यादि गुणों से युक्त है वह भी (वैरदेये) परस्पर वैर वा वीरता के कार्य में, अथवा (वैर-देये) वीर्य द्वारा पुत्र दान के कार्य में (समः इत्) समान हैं (इति ब्रुवे) मैं ऐसा कहता हूँ। कलह उत्पन्न

हो जाने पर मूर्ख पण्डित दोनों समान रूप से अप्रिय हैं, इसी प्रकार पुत्र प्राप्ति के लिये भी मूर्ख और विद्वान्, गुणहीन और गुणाढ्य प्रेम भाव बने रहने पर पुत्र लाभ के कार्य में समान ही हैं।

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥

भा०—(युवतिः) जवान स्त्री (ममन्दुषी) इष्ट, प्रसन्न चित्त होकर (रोहिता) लोहित वर्ण के उत्तम वैवाहिक वस्त्र धारण करती हुई, अनुरागवती होकर (पुरुमीढाय) बहुत से पुत्रों का निषेक करने में समर्थ, (श्यावाय) स्वयं भी रक्तवर्ण, अश्व के समान दृढ़, हृष्ट पुष्ट, उज्ज्वल वर्ण (विप्राय) विद्वान् (दीर्घयशसे) महा यशस्वी (मे) मेरे लिये (वर्त्तनिम्) अपने मार्ग वा व्यवहार को (अरपत्) अलाप द्वारा कहे, तब दोनों स्त्री पुरुष (रोहिता) रक्त वर्ण के, परस्परानुरक्त होकर (वि येमतुः) विशेष रूप से दाम्पत्य सम्बन्ध में बंध जाते हैं।

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत्।
तरन्त इव मंहना ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (मंहना) बड़े भारी नाव द्वारा (तरन्तः इव) समुद्र के पार उतार देने वाले नाविक के समान अपने महान् सामर्थ्य या दानशीलता से संसार के सागर से पार उतारने हारा होकर (वैददश्विः) अश्वों, इन्द्रियों को अपने वश करता है वह पुरुष ही (मे) मुझे (धेनूनां शतं) मानो सैकड़ों दुधार गौवें तथा उत्तम २ वाणियां देता है।

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (अत्र) इस लोक में (श्रवांसि) श्रवण करने योग्य ज्ञानों, अन्नों और कीर्तियों को (दधिरे) धारण करते हैं और (मदिरं) हर्षजनक (मधु) अन्न और ज्ञान का (पिबन्तः) पान करते हैं वे (आशुभिः)

शीघ्रगामी अश्वों से रथ के समान वेग से जाने वाले दृढ़ अंगों द्वारा (ईं) इस गृहस्थ रूप रथ को (वहन्ते) धारण करते हैं।

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥ १२ ॥

भा०—(दिवि उपरि रुक्मः इव) आकाश में, ऊपर जिस प्रकार अति तेजस्वी सूर्य प्रकाशमान होता है और उसकी (श्रिया रोदसी) कान्ति से आकाश और पृथिवी दोनों प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (येषां श्रिया) जिनकी लक्ष्मी और कान्ति से (रोदसी) ये समस्त स्त्री और पुरुष (अधि) अधिक शोभा पाते हैं वे ही (रथेषु) रथों और रमण योग्य गृहस्थ कार्यों में भी (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकते हैं।

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः।
शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण (त्वेष-रथः) दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा वेग से जाने हारा होता है तथा (अप्रतिष्कुतः) किसी से उसकी शक्ति बाधित नहीं होती और वह (शुभं यावा) जल वृष्टि प्राप्त कराता है उसी प्रकार (युवा मारुतः गणः) युवावस्था में मनुष्य गण (सः) वह भी (त्वेष-रथः) अति चमकीले रथ में चढ़कर (अनेद्यः) अनिन्दनीय, भव्य वेश, उत्तम आचारवान् सज्जन हों। एवं (शुभं-यावा) शोभा युक्त होकर शुभ धर्मयुक्त मार्ग पर चलें। एवं (अप्रति-ष्कुतः) अन्यों से स्पर्द्धा में अपराजित, सुदृढ़ हों। (२) अध्यात्म में—प्राणों का गण (त्वेष-रथः) तेजोमय आत्मा में गति करता है।

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः।
ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥

भा०—वायु गण के समान जो (धूतयः) वृक्षों के तुल्य शत्रुओं को कंपाने वाले (ऋत-जाताः) सत्य न्याय, व्यवहार, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान

के लिये प्रसिद्ध और (अरेपसः) निष्पाप पुरुष (यत्र) जिस विशेष कार्य में (मदन्ति) प्रसन्न रहते हैं उसको (नूनम्) निश्चय पूर्वक (किः वेद) कौन जान सकता है ? (२) अध्यात्म में—प्राण शरीर को संचालित करने से 'धूतयः' और अन्न जल से उत्पन्न वा प्रादुर्भूत होने से 'ऋतजात' हैं ।

यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतारं इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वि-पन्यवः) विशेष मेधावी और विविध स्तुत्य व्यवहारवान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (मर्तम्) मनुष्य को (प्र-णेतारः) उत्तम मार्गों में चलाने हारे (याम-हूतिषु) नियन्त्रण करने वाले सेनापति की आज्ञाओं को (श्रोतारः) सुनने हारे हैं, वे आप लोग (इत्था धिया) इसी प्रकार की उत्तम बुद्धि से विचार कर ठीक २ कार्य सम्पादन करें । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

भा०—हे (यज्ञियासः) दानशील, यज्ञ कर्म करने हारे, सत्संग योग्य, (रिशादसः) हिंसकों के नाशक, (पुरु-चन्द्राः) बहुत सी धन सम्पदाओं के स्वामियो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमारे लिये (काम्या वसूनि) नाना कामना करने योग्य ऐश्वर्यों को (आ ववृत्तन) पुनः पुनः प्राप्त करो और उनको व्यवहार में लाओ ।

एतं मे स्तोमसूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥

भा०—हे (ऊर्म्यै) रात्रि के समान सुखदायिनी, उत्तम ऊंचे, दूर से शब्द बोलने हारी ! हे (देवि) तेजस्विनि ! विद्युत् ! (रथीः इव) रथी जिस प्रकार (स्तोमं वहति गिरश्च परा वहति) नाना धान्य आदि पदार्थों को और दूसरों के वचनों या संदेशों को भी देशान्तर तक ले जाता है उसी

प्रकार तू भी (दार्भ्याय) 'दर्भ' अर्थात् शत्रुओं को विदारण करने में कुशल वा शत्रु हिंसकों में श्रेष्ठ नायक के लिये (मे एतं स्तोमं) मेरे इस स्तुति-वचन और (गिरः) उत्तम वाणियों को (परा वह) दूर तक प्राप्त करा। यान, रथ, गाड़ी आदि जैसे सामान ढोने तथा चिट्ठी पत्री ले जाने अर्थात् 'मेल सर्विस्' के भी काम आते हैं उसी प्रकार विद्युत् के यन्त्र भी लम्बे संदेशों को एक देश से दूर दूर देश तक पहुँचाते हैं।

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ।
न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥

भा०—(सुत-सोमे) जिसने ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान प्राप्त किया और (रथवीतौ) रथ के द्वारा आदरपूर्वक गृहों पर प्राप्त हों ऐसे आदरणीय पुरुष के प्रति प्रार्थना करें कि हे विद्वन्! (मे इति वोचतात्) मुझ श्रोताजन को ऐसा सत्योपदेश कीजिये कि (मे कामः) मेरी श्रवण करने की अभिलाषा (न अप वेति) कभी दूर नहीं हो।

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥ २९ ॥

भा०—(एषः) यह (रथवीतिः) रथों से प्राप्त होने वाला (मघवा) उत्तम धनधान्य सम्पन्न पुरुष (गोमतीः अनु) उत्तम भूमियों और वाणियों से युक्त सम्पत्तियों व भूमियों को प्राप्त कर (अनुक्षेति) धर्मानुकूल होकर रहे और (पर्वतेषु) पर्वतों वा मेघों के तुल्य उत्तम उत्तम, ऊंचे और आकाश व्यापी भवनों और यानों में (अप-श्रितः) स्थित एवं दूर देशों तक जाने हारा हो। एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६२]

श्रुतिविदात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ६ निचृत्-त्रिष्टुप्। ७, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतम्) सत्यस्वरूप सूर्य का मण्डल (ऋतेन अपहितं) सत्यमय तेज आच्छादित है, (यत्र) जिस सूर्य के आश्रित रह कर नाना ग्रह, उपग्रह आदि (सूर्यस्य) सूर्य के ही (दश शता अश्वान् विमुचन्ति) हजारों किरणों को विविध रूप से धारण करते और प्रतिक्षिप्त करते हैं और जिस सूर्य के आश्रय ही वे (सह तस्थुः) एक साथ मिलकर स्थित हैं (तत्) वह (एकं) एक (देवानां) तेजो युक्त, (वपुषां श्रेष्ठं) पिण्डों में सर्वश्रेष्ठ, (ध्रुवं) स्थिर, निश्चल सूर्य है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजावर्गों ! (वां) आप दोनों वर्गों का (ध्रुवं) स्थिर (ऋतम्) सत्य व्यवहार भी (ऋतेन) सत्य वेद, ज्ञान से (अपिहितम्) आच्छादित, तन्मय हो। (यत्र) जिस प्रधान नायक के आश्रय पर (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के (दश शता अश्वान् वि मुचन्ति) हजारों घुड़सवार दौड़ रहे हैं और (सह तस्थुः) सब एक साथ विद्यमान रहते हैं (तत् एकं) उस एक को (वपुषां देवानां) देहधारी मनुष्यों के बीच (श्रेष्ठं) सर्व श्रेष्ठ रूप से (अपश्यम्) देखता हूँ । वही (ऋतम् ध्रुवं) सत्य परमैश्वर्य, न्यायरूप है ।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त्त ॥२॥

भा०—जिस प्रकार दिन और रात्रि, मित्र और वरुण इन दोनों का (तत् महित्वम्) यही महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) सूर्य (अहभिः तस्थुषीः दुदुह्रे) तेजों द्वारा समस्त स्थावरों, शरीरों का रस प्रदान करता है दिन रात्रि दोनों (विश्वाः स्वसरस्य धेनाः पिन्वथ) सूर्य की सब रश्मियों को प्राप्त करते हैं उन दोनों का (एकः पविः अनु आ ववर्त्त) एक ही प्रकार का क्रम प्रतिदिन चक्र-धारा के समान पुनः २ आता है। उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) 'मित्र' एक दूसरे के स्नेही, रक्षक और हे 'वरुण' एक दूसरे को वरण करने हारे स्त्री पुरुषो ! शिष्य अध्यापको ! राजा-प्रजा वर्गों ! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (सु-महित्वम्) यही सर्वश्रेष्ठ

महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) बाहुवत् बलवान् पुरुष ही (तस्थुषीः) स्थिर प्रजाओं को (अहभिः) अविनाशी बलों से (दुदुह्रे) ऐश्वर्य पूर्ण करने में समर्थ होता है और आप दोनों (स्वसरस्य) अपने ही सामर्थ्य से आगे बढ़ने वाले नायक को (विश्वाः धेनाः पिन्वथः) समस्त वाणियों को प्रेमपूर्वक प्राप्त करें और (वाम्) तुम दोनों का (एकः पविः) एक ही पवित्र मार्ग, एक ही वाणी, एक ही बल (अनु आववर्त) प्रति दिन रहे, कभी भेदभाव न हो।

अधा॑रयतं पृथि॒वीमु॒त द्यां मित्र॑राजाना वरुणा॒ महो॑भिः ।
व॒र्धय॑त॒मोष॑धीः॒ पिन्व॑तं॒ गा अव॑ वृ॒ष्टिं सृ॑जतं जीरदानू ॥ ३ ॥

भा०—(मित्र-राजाना) मित्र बने हुए दो राजाओं, वा राजा रानी के समान विराजने वालो ! एवं (वरुणा) परस्पर एक दूसरे को वरण करने वालो ! (पृथिवीम् उत द्यां) भूमि और सूर्य को जिस प्रकार अग्नि और जल धारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (पृथिवीम्) प्रजोत्पादक भूमि, स्त्री (उत् द्याम्) और कामनायुक्त व्यवहारज्ञ, तेजस्वी पुरुष दोनों को (महोभिः) बड़े उत्तम शुभ विचारों से (अधारयतम्) धारण करो अर्थात् तुम दोनों स्त्री-पुरुष परस्पर अपने को बीज वपनार्थ भूमि और तेजस्वी, बीजप्रद जानकर धारण करें। आप दोनों (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों तथा 'ओष' अर्थात् दाहकारी अग्नि को धारण करने वाले तेजस्वी, वीर पुरुषों और विद्वानों को (वर्धयतम्) बढ़ावें, (गाः पिन्वतम्) भूमियों को सेचें, वाणियों को प्रयोग करें, गौओं को पुष्ट करें और दोनों (जीर-दानू) जगत् को जीवन देने हारे होकर (वृष्टिं अव सृजतम्) मेघ वा सूर्य के तुल्य सुखों की वर्षा करें।

आ वा॒मश्वा॑सः सु॒युजो॑ वहन्तु य॒तर॑श्मय॒ उप॑ यन्त्व॒र्वाक् ।
घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिग॑नु॒ वर्त॑ते वा॒मुप॒ सिन्ध॑वः प्र॒दिवि॑ क्षरन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों को (सु-युजः)

उत्तम रीति से जुते हुए (अश्वासः) घोड़े, उनके समान (सु-युजः अश्वासः) उत्तम रीति से नियुक्त विद्या आदि शुभ गुणों में व्याप्त जन (वां) आप दोनों को (आ वहन्तु) आदर पूर्वक सर्वत्र ले जावें और (यतरश्मयः) वे कसी लगामों को वश करने वाले सारथि लोग और उनके समान अपने अधीनस्थों तथा शक्तियों को संयम करने वाले पुरुष भी (अर्वाक् उपयन्तु) आप दोनों के समीप प्राप्त हों (वां) आप दोनों को (घृतस्य) घी के बने शोधक उबटन के समान तेज वा ज्ञान का (निर्णिग्) शुद्ध रूप (वाम् अनु वर्तते) आप दोनों को प्राप्त हो और (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञानप्रकाश के निमित्त (सिन्धवः) ज्ञान के समुद्र जन (वाम् उप क्षरन्ति) मेघों के समान आपको सेचें आप लोगों के प्रति ज्ञान जलों से वर्षा करें।

अनु श्रुतामुमतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥३०॥

भा०—हे (मित्र वरुण) परस्पर स्नेही और वरण करने हारे, हे जगत् को मरण से बचाने वाले, श्रेष्ठ पुरुषो ! आप दोनों (श्रुताम् अनु) श्रवण की गई ज्ञानपद्धति के अनुरूप (अमतिम् वर्धत्) अपने उत्तम रूप को बढ़ाते हुए, (यजुषा बर्हिः इव) यजुर्वेद से यज्ञ के समान (यजुषा) परस्पर की संगति, दान, सत्कार, संघबल से (बर्हिः इव) बसे लोकों के समान (उर्वीं रक्षमाणा) विशाल पृथिवी की रक्षा करते हुए (नमस्वन्ता) एक दूसरे का आदर करने वाले वा अन्नों के स्वामी और (धृत-दक्षा) बलवान् होकर (गर्ते अधि) रथ में और सभा के न्यायासन पर (इडासु अन्तः) वाणियों और अपने अधीन भूमियों के बीच (आसाथे) विराजें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥

भा०—हे (वरुणा) श्रेष्ठ और दुःखों को वारण करने वाले सभा के

स्वामियो, राजा, अमात्यो ! स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अक्रवि-हस्ता) अहिंसक, अकृपण, दयालु, दानशील हाथ वाले होकर (सुकृते) उत्तम पुण्यकार्य की वृद्धि के लिये (परस्पा) एक दूसरे की रक्षा करते हुए (इडासु अन्तः) भूमियों, वाणियों और आदर सत्कार की क्रियाओं के बीच (यं त्रासाथे) जिसकी रक्षा करते वा जिसको भय दिलाते हो, हे (राजाना) तेजस्वी राजपद पर विराजने वालो ! उस शत्रु तथा (क्षत्रम्) बलशाली सैन्य को (अहृणीयमाना) क्रोधरहित होकर (सह द्वौ) दोनों साथ मिलकर (सहस्र-स्थूणं) सहस्रों वा दृढ़ स्तम्भों से युक्त विशाल भवन के समान महान् राष्ट्र को भी (बिभृथः) निरन्तर पुष्ट करो।

हिर॑ण्यनिर्णिगयो॑ अस्य॒ स्थूणा॒ वि भ्रा॑जते दि॒व्य१॒॑श्वाज॑नीव ।
भ॒द्रे क्षेत्रे॒ निमि॑ता॒ तिल्वि॑ले वा स॒नेम॒ मध्वो॒ अधि॑गर्त्यस्य ॥ ७॥

भा०—(अस्य) इस राष्ट्र वा क्षात्रबल का स्वरूप (हिरण्यनिर्णिग्) सुवर्ण के समान कान्तिमान् एवं राष्ट्र के लिये हितकारी और सुन्दर रमणीय हो। (अस्य) इस क्षात्रबल का (अयः) प्राप्त करने और चलाने वाला प्रधान पुरुष ही (स्थूणा) मुख्य कीलक वा प्रधान स्तम्भ के समान है। (अश्वाजनी इव) घोड़े को हांकने वाली चाबुक के समान वह प्रधान नायक ही (दिवि) विजय के निमित्त (अश्वा-जनी) अश्वों से बने सैन्य और राष्ट्र की संचालन करने वाली सेना के तुल्य (विभ्राजते) विविध रूपों में चमकता है। जिस प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) कल्याणकारी क्षेत्र में अथवा (तिल्विले) स्नेहयुक्त चिकनी मिट्टी वाले भूमि में (निमिता) बनी शाला सुखप्रद होती है उसी प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) सुखप्रद क्षेत्र और स्नेहयुक्त वाणी से युक्त व्यवहार के आश्रय पर (निमिता) वश की हुई सेना भी हो। इस प्रकार हम लोग (अधिगर्त्यस्य मध्वः) घर में रक्खे अन्न के समान अश्व रक्षादि सैन्य से प्राप्त बल और ऐश्वर्य का (सनेम) भोग करें।

हिर॑ण्यरूपमु॒षसो॒ व्यु॑ष्टा॒वयः॒ स्थूण॒मुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
आ रो॑हथो वरुण मित्र॒ गर्त॒मत॑श्चक्षाथे॒ अदि॑ति॒ दिति॑ं च ॥ ८ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) शरीर में प्राण उदान के समान, राष्ट्र में शत्रु का वारण करने और प्रजा के प्रति स्नेह करने वाले आप दोनों राजा अमात्य! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय हो जाने पर और (उषसः) उषा के (व्युष्टौ) अच्छी प्रकार निकल जाने पर जिस प्रकार स्त्री पुरुष (अयः-स्थूणा) सुवर्ण या लोह के बने कील या स्तम्भ से युक्त (हिरण्य-रूपम्) हित और रमणीय एवं स्वर्णमय (गर्त्तम्) गृह के तुल्य रथ पर (आरोहथः) चढ़ते और (दितिम् अदितिम् च चक्षाथे) 'अदिति' माता, पिता, पुत्र आदि और 'दिति' देने और रक्षा करने योग्य भृत्यादि सबको देखते हैं। उसी प्रकार आप दोनों भी (सूर्यस्य उदिता) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय होने पर और (उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सर्व वशकारिणी सेनाबल के प्रकट होने पर, तुम दोनों, सभा, सेना के अध्यक्ष जनो! (हिरण्य-रूपं) सुवर्णादि से रूपवान् ऐश्वर्य युक्त (अयः-स्थूणं) सुवर्ण धन के प्रबल स्तम्भ पर आश्रित तथा हितकारी, रमणीय, लोहखण्डादि पर अवलम्बित कान्तिमय, (गर्त्तम्) सभास्थल तथा युद्ध रथ पर (आरोहथः) आरोहण करो और वहां न्यायकारी सभापति तथा सेना नायक के पद पर विराजो और (अतः) तदनन्तर (अदितिम्) अखण्डनीय सत्य तथा (दितिम्) खण्डनीय असत्य पक्ष को तथा (अदितिं) अखण्डनीय, प्रबल मित्र, वा शत्रु और (दितिम्) खण्डनीय शत्रु वा पालनीय मित्र को (चक्षाथे) देखो, उनका विवेकपूर्वक निर्णय करो।

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेन नो मित्रावरुणाविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम।९।३१।३॥

भा०—हे (गोपा) राष्ट्र की रक्षा करने हारे, (मित्रा वरुणा) स्नेह युक्त, प्रजा को मरने से बचाने वाले, श्रेष्ठ, शत्रुवारक सभापति सेनापति, राजा अमात्य जनो! (यत्) जो बहुत बड़ा, (अच्छिद्रं) छिद्र, मर्मादि से रहित, (शर्म) शरणदायक दुर्ग आदि स्थान हो (अतिविधे न) जिसे अतिक्रमण करके शत्रु प्रजा को पीड़ित न कर सके, हे (सुदानू) उत्तम

दानशील, तथा शत्रुनाशक जनो ! (तेन) वैसे गृह दुर्ग आदि उपाय से (नः अविष्टम्) हमारी रक्षा करो। हम लोग (जिगीवांसः) विजय करते हुए (सिषासन्तः) ऐश्वर्यों का परस्पर विभाग करते हुए (स्याम) सुख से रहें। इति एकत्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[६३]

अर्चनाना आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ७ निचृज्जगती। ३, ५, ६ जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य व्यवहार, सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और तेज के (गोपौ) रक्षक, (सत्य-धर्माणा) सत्य धर्म का पालन करने वाले (परमे व्योमनि) सर्वोत्कृष्ट रक्षक, आकाशवत् व्यापक, परमेश्वर पर आश्रित वा सर्वोच्च पद पर स्थित होकर (रथम् अधि तिष्ठथः) रथवत् राष्ट्र का शासन करने के लिये अध्यक्ष पद पर विराजें और उसका सञ्चालन रथी सारथिवत् करें। हे (मित्रावरुणा) शरीर में प्राण उदानवत् एवं गृह में पती-पत्नीवत् एक दूसरे के स्नेह और एक दूसरे को स्व-स्वामिभाव से वरण करने वाले होकर (युवं) आप दोनों (अत्र) इस राष्ट्र में (सम् अवथः) जिस प्रजाजन की रक्षा करते हो (तस्मै) उसको (दिवः) आकाश या अन्तरिक्ष से (मधुमत् वृष्टिः) जलमय वृष्टि के समान (दिवः) तेजस्वी क्षात्रवर्ग और ज्ञानमय ब्राह्मण वर्ग और कामना योग्य व्यवहारवित् वैश्य वर्ग से (मधुमत् वृष्टिः) ज्ञान, बल और अन्नमय वर्षा (पिन्वते) प्रजाजन की पुष्टि और वृद्धि करे।

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः २

भा०—हे (मित्रा वरुणा) वायु सूर्य के समान राजन् ! अमात्य ! प्रजा को मृत्यु से बचाने और दुष्टों का वारण करने वाले आप दोनों (अस्य भुवनस्य) इस जगत् को (सम्राजौ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करने वाले (विदथे) ज्ञान, व्यवहार और धनैश्वर्य लाभ में (स्वर्दृशा) उत्तम सुख, उत्तम प्रकाश को देखने वाले होकर (राजथः) विराजते हो । हम लोग (वां) आप दोनों से (वृष्टिम्) उत्तम वृष्टि और (राधः) धन ऐश्वर्य और (अमृतत्वं च) अमृतत्व, दीर्घ जीवन, रक्षा की (ईमहे) याचना करते हैं, आप दोनों के (तन्यवः) किरणों के समान विस्तृत शक्तिमान् लोग (द्यावा पृथिवी वि चरन्ति) आकाश और पृथिवी में विचरते हैं ।

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) प्रजाओं के स्नेही और उनके द्वारा वरण करने योग्य पुरुषो ! आप वायु सूर्य दोनों के समान (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, (उग्रा) बलवान्, (वृषभा) जलों के समान प्रजा पर काम्य सुखों की वर्षा करने वाले, (दिवः पृथिव्याः पती) आकाशवत् विस्तृत पृथिवी के भी पालक (वि-चर्षणी) विविध प्रजा के विविध व्यवहारों को देखने वाले, अध्यक्ष, होकर (चित्रेभिः) नाना, अद्भुत (अभ्रैः) मेघों के तुल्य आप्त प्रजाओं की रक्षा करने वाले नायकों सहित (उप तिष्ठथः) विराजते हो और (रवं द्यां) गर्जन, आज्ञा वचन और बिजुली के प्रकाश के समान तेज प्रकट करते हो और (असुरस्य मायया) मेघ के तुल्य बलवान क्षात्र सैन्य की शक्ति और बुद्धि से (वर्षयथः) सुखों की प्रजा पर वृष्टि करते हो।

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् । तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) देह में प्राण और उदानवत, राष्ट्र में राजा और सचिव ! प्रजा के स्नेही और श्रेष्ठ पद पर वरने योग्य ! जिस प्रकार (दिवि सूर्यः ज्योतिः) आकाश में सूर्य और विद्युत् और (चित्रम् आयुधम्) विचित्र, धनुषकार होता है और (अभ्रेण वृष्ट्या तं गूहथः) मेघ और वृष्टि द्वारा उसको आच्छादित करते हैं और (मधुमन्तः द्रप्साः ईरते) जलमय रस बहते हैं उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) राजा और अमात्य, सभा-सेनापतियो ! (वां) आप दोनों की (दिवि) विद्वानों की राजपरिषत् और संग्राम में विजय कार्य, वा राज-प्रजा व्यवहार में (माया श्रिता) बुद्धि संलग्न तथा स्थिर रहे। आप लोगों का (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप तथा (चित्रम्) आश्चर्य करने वाला (आयुधम्) शस्त्रबल (दिवि चरति) पृथिवी पर विचरे। (तम्) उस प्रताप को आप लोग (अभ्रेण वृष्ट्या) मेघवत् प्रजा के पोषक रूप से तथा प्रजा पर नाना सुखों के वर्षण द्वारा (गूहथः) संवृत रक्खो। हे (पर्जन्य) प्रजाओं के ऐश्वर्य देने हारे ! मेघवत् उदार जन ! राजन् ! तेरे (मधुमन्तः) अन्नादि समृद्धि से सम्पन्न (द्रप्साः) अन्यों को मोह में डाल देने वाले आप्त जन, जल स्रोतों के समान (दिवि ईरते) पृथिवी पर सर्वत्र विचरें।

रथं॑ युञ्जते म॒रुतः॑ शु॒भे सु॒खं शूरो॒ न मि॑त्रावरुणा॒ गवि॑ष्टिषु ।
रजां॑सि चि॒त्रा वि च॑रन्ति त॒न्यवो॑ दि॒वः स॑म्राजा॒ पय॑सा न उक्षतम् ॥५॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सूर्य पवन के समान मित्र, सबको प्रिय, जीवनदाता और सर्वश्रेष्ठ, दुःखवारक पुरुषो ! (मरुतः) विद्वान् लोग (शुभे) कल्याण के लिये (सुखं) सुखप्रद (रथं) रथ को (शूरः न) शूरवीर के समान (युञ्जते) जोड़ते और (गविष्टिषु) किरणों के प्राप्त होने पर जिस प्रकार (चित्रा रजांसि) विविध, अद्भुत लोक और (तन्यवः) नाना विद्युतें (वि चरन्ति) विविध दिशा में चलती हैं, उसी प्रकार राष्ट्र में (गविष्टिषु) भूमियों को प्राप्त करने के लिये शूरवीर (चित्रा रजांसि) विविध और

अद्भुत शूरवीर लोग और (तन्यवः) गर्जनशील विद्युत् अस्त्र (वि चरन्ति) चलते हैं। हे (सम्राजा) सेना व सभा के स्वामी जनो! (नः दिवः) ऐश्वर्यादि की कामना करने वाले हमको (पयसा) मेघवत्, पोषणकारी जल, अन्नादि से (उक्षतम्) सींचो, पुष्ट करो।

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और एक दूसरे को वरण करने हारे गुरु शिष्यजनो! (पर्जन्यः यथा त्विषीमतीं इरावतीं चित्रां वाचं वदति) मेघ जिस प्रकार विद्युत् और जल से युक्त अद्भुत गर्जना करता है उसी प्रकार लोकोपकारार्थ (पर्जन्यः) पिता के समान उत्पादक, ज्ञान से तृप्त करने वाला आचार्य, (चित्राम्) आश्चर्यजनक, ज्ञान देने वाली (त्विषीमतीम्) उत्तम विद्या-प्रकाश से युक्त, (इरावतीम्) जलवत् स्नेहयुक्त (वाचं वदति) वाणी का उपदेश करे। हे (मरुतः) वायुओं के समान आलस्य रहित शिष्यजनो! आप लोग (मायया) बुद्धि से (अभ्रा) मेघों के समान ज्ञानजल से पूर्ण होकर (सु वसत) सुख पूर्वक रहो। (अरुणाम्) अरुण, तेजस्विनी, (अरेपसम्) अपराध, पापादि से रहित, (द्याम्) कामना, ज्ञान प्रकाश की (वर्षयतम्) आप दोनों एक दूसरे के प्रति सेचन करो, उसकी वृद्धि करो। 'पर्जन्यः'—पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपर्ययस्य, तर्पयिता जन्यः। परो जेता वा जनयिता वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्। इति यास्कः॥ निरु० अ० १०। १। १०॥ इसी प्रकार राष्ट्र में—सभा, सेनापति 'मित्रावरुण' हैं। उनमें (पर्जन्यः = परोजेता) 'पर्जन्य' उत्कृष्ट विजेता, नायक है। वह अद्भुत ओजस्विनी वाणी बोले, (मरुतः) सैन्यगण मेघों के समान शरवर्षी होकर रणाकाश को घेरें, विजय करें।

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ७।१

भा०—हे (विपश्चिता मित्रा वरुणा) विद्वान् सर्वस्नेही एवं सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश, सेनापति जनो ! आप दोनों (असुरस्य मायया) प्राणों के देने वाले मेघ वा सूर्य के समान जीवनप्रद, बलवान् पुरुष की कार्यकर्त्री शक्ति और ज्ञानवती बुद्धि से और (धर्मणा) धारण करने में समर्थ बल से (व्रता) समस्त उत्तम कर्मों, सत्य भाषण आदि नियमों को (रक्षेथे) पालन किया करो। (ऋतेन) सत्य ज्ञान और धनैश्वर्य और तेज से (विश्वं भुवनं) समस्त लोक को प्रदीप्त करो। (दिवि सूर्यम्) आकाश में सूर्य के समान, भूमि में भी तेजस्वी (चित्र्यं) अद्भुत शक्तियों से युक्त (रथं) विमान, रथ आदि गमनागमन के साधन को (आ धत्थः) धारण करो। (२) हे गुरु शिष्यो ! विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (दिवि) ज्ञानप्रकाश के निमित्त (चित्र्यं रथं सूर्यम्) ज्ञानप्रद, आनन्दप्रद, स्थिर, तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करो। इति प्रथमो वर्गः ॥

[६४]

अर्चनाना ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ विराडनुष्टुप्। ६ निचृदनुष्टुप्। ३, ५ भुरिगुष्णिक्। ४ उष्णिक्। ७ निचृत् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के बीच में (वरुणं) शत्रुओं के वारक, सबमें से वरण करने योग्य, (मित्रं) सर्वस्नेही, प्रजा को नाश होने से बचाने वाले और (व्रजा-इव) ज्ञानपूर्वक विचरण करने वाले विद्वान् संन्यासी के समान (बाह्वोः) बाहुओं के बल से (परिजगन्वांसा) सर्वत्र गमन करने वाले सभा व सेना के अध्यक्षो ! तथा (स्वःनरम्) प्रतापयुक्त सैन्यबल के नायक, सुखप्रद नेता को भी (ऋचा हवामहे) उत्तम स्तुति तथा आदरपूर्वक बुलावें, स्वीकार करें।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही एवं श्रेष्ठ, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्गों के पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मै) इस (अर्चते) स्तुति करने हारे प्रजाजन को (बाहवा) शत्रु-बाधक बाहुबल और अज्ञान-बाधक (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से (जार्यं) स्तुति करने योग्य, दुःखों को जीर्ण करने वाला (शेवं) सुख (प्र यन्तम्) प्रदान करो और मैं विद्वान् प्रजाजन (वां) आप दोनों के (जार्यं) स्तुत्य कार्य की (विश्वासु क्षासु) इन समस्त भूमियों में (जोगुवे) प्रशंसा वा उपदेश करूं ।

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (प्रियस्य) सर्वप्रिय (अहिंसानस्य) अहिंसक (मित्रस्य) सर्वस्नेही पुरुष के (शर्मणि) शरण में, (यत् गतिम्) जिस उत्तम ज्ञान वा सद्गति का सज्जन लोग (सश्चिरे) लाभ करते हैं, (नूनम्) निश्चय से मैं भी उस (गतिं) ज्ञान और सद्गति को (अश्याम्) प्राप्त करूं और मैं (मित्रस्य पथा) उस स्नेहवान्, परम मित्र के सन्मार्ग से (यायाम्) गमन करूं ।

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र, वरुण ! हे सर्वस्नेही ! हे सर्व श्रेष्ठ जनो ! (मघोनां) धन सम्पन्न, धनदानी और (स्तोतॄणां च) ज्ञान सम्पन्न उपदेष्टा लोगों के (क्षये) गृह में (यत् ह स्पूर्धसे) जो स्पर्धा करने योग्य उत्तम धन और ज्ञान (उपमं) सर्वोपमायोग्य हो, उसे मैं (युवाभ्याम्) आप दोनों की सहायता से, (धेयाम्) प्रदान और पुष्ट करूं और स्वयं धारण करूं ।

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहवान् पुरुष ! हे (वरुणः च) श्रेष्ठ जन ! आप दोनों, (सधस्थे) समान निवास स्थान में रहकर (मघोनां) उत्तम ऐश्वर्यवान् और (सखीनां) मित्र रूप हम लोगों को (वृधसे) बढ़ाने के लिये (नः) हमारे (स्वे क्षये) अपने गृह में आकर (सुदीतिभिः) उत्तम दीप्तियुक्त सम्पत्तियों तथा उत्तम दानशील क्रियाओं सहित हमें (आ) प्राप्त होवो।

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त ! हे (वरुण) दुःखों के वारण करने हारे ! (युवं) आप दोनों (नः) हमारे (क्षत्रं) बल और (बृहत्) महान् राष्ट्र को (बिभृथः) धारण और परिपुष्ट करते हो और (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि (स्वस्तये) कल्याण के लिये और (वाजसातये) धनैश्वर्य, ज्ञान और संग्राम-कारी बल को प्राप्त करने के लिये (उरु कृतम्) बहुत प्रयत्न करो। अथवा—(नः उरुकृतं बिभृथः) हमारे बड़े भारी किये यत्न को भी धारण वा पुष्ट करो।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ७।२

भा०—हे (मित्रावरुणौ) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (रुशद्-गवि) प्रदीप्त किरणों से युक्त (देव-क्षत्रे) प्रकाश के धनी सूर्य के आश्रय से जिस प्रकार उषा प्रकट होता है उसी प्रकार (रुशद्-गवि) दीप्तियुक्त अरुण अश्वों, पके धान की कान्ति से युक्त भूमियों के स्वामी एवं (देवक्षत्रे) योद्धागण के बल से सम्पन्न सेनापति के अधीन सेना के (उच्छ-न्त्यां) प्रकट हो जाने पर, हे (नरा) उत्तम सभा वा सेना के नायक पुरुषो ! तुम दोनों भी (अर्चनानसं) श्रेष्ठ नासिका से युक्त सुमुख उत्तम प्राणवान्,

बलवान्, (सुतं सोमं) अभिषिक्त ज्ञापक पुरुष को (बिभ्रतौ) परिपुष्ट करते हुए (हस्तिभिः न) हस्तवान् कार्यकुशल पुरुषों के तुल्य (पड्भिः) शीघ्र जाने वाले पदातियों वा रथों से (धावतं) वेग से आगे बढ़ो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६५]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३ स्वराडुष्णिक्। भुरिगुष्णिक्। ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥

भा०—(यः चिकेत) जो ज्ञानवान् है, (सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म करने हारा हो। (सः) वह (नः) हम (देवत्रा) विद्या के अभिलाषी जनों को (ब्रवीतु) उपदेश करे। (यस्य) जिसका (मित्रः) स्नेहवान् शिष्य हो वह (वरुणः) वरण करने योग्य (दर्शतः) दर्शनीय आदर्श श्रेष्ठ विद्वान (वा) ही हमें (गिरः वनते) उत्तम ज्ञान वाणियें प्रदान करे।

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (श्रेष्ट-वर्चसा) उत्तम तेज, अध्ययन, व्रतादि से सम्पन्न (राजाना) राजाओं के समान तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) दीर्घकाल तक गुरूपदेश श्रवण करने, कराने हारे अति विद्वान् हों। (ता) वे दोनों (सत्-पती) सज्जनों, सद्गुणों, सद्व्रतों और सत्पदार्थों के पालक, (ऋता-वृधा) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले और (जने जने) प्रत्येक जन समूह में (ऋतावाना) सत्योपदेश को प्रदान करने और सत्य ज्ञान को धारण करने वाले हों।

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥ ३ ॥

भा०—(स्वश्वासः दानवे वाजान् अभि) जिस प्रकार उत्तम अश्वारोही गण आजीविका देने वाले स्वामी के लिये संग्रामों को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार (सु-चेतुना) उत्तम ज्ञानसहित (स्वश्वासः) उत्तम इन्द्रियों वाले, जितेन्द्रिय, लोग (दावने) ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजन के यशोवृद्धि के लिये (वाजान् अभि) ज्ञानों को उद्देश्य करके आगे बढ़ें। जिस प्रकार राष्ट्रवासी जन सैन्य और नायक दोनों (अवसे उपब्रूते) रक्षा की प्रार्थना करता है उसी प्रकार (इयानः) प्राप्त होने वाला नव शिष्य मैं (ता वाम्) उन दोनों (पूर्वा) पूर्व विद्यमान आप मान्य जनों को (अवसे) ज्ञान देने और रक्षा के निमित्त (सचा) एक साथ, (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ।

मि॒त्रो अं॒होश्चि॒दादु॒रु क्षया॑य गा॒तुं व॑नते।
मि॒त्रस्य॒ हि प्र॒तूर्व॑तः सुम॒तिरस्ति॑ विध॒तः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् मित्र वही है जो (अंहोः चित् क्षयाय) पाप मात्र से पृथक् रहने अथवा पाप और पापाचारी के नाश के लिये (गातुं) वाणी का (उरु) खूब (वनते) प्रदान करता है। राष्ट्र में वही मित्र है जो परस्पर हत्या, कलह आदि पाप से रहित होकर निवास करने के लिये (गातुं वनते) पृथिवी का न्याय पूर्वक विभाग कर देता है। (मित्रस्य) सबसे स्नेह करने वाले (प्रतूर्वतः) अति शीघ्र कार्य करने में कुशल और (विधतः) विशेष विधान अर्थात् धर्म मर्यादा स्थिर करने वाले पुरुष की (हि) निश्चय से (सु-मतिः अस्ति) सदा शुभ मति हो।

व॒यं मि॒त्रस्याव॑सि स्याम॒ स॒प्रथ॑स्तमे।
अ॒ने॒हस॒स्त्वोत॑यः स॒त्रा वरु॑णशेषसः ॥ ५ ॥

भा०—(वयम्) हम सब लोग (मित्रस्य) स्नेहवान् एवं अज्ञान रूप मृत्यु के गढ़े से बचाने वाले गुरु के (सप्रथस्तमे) अति विस्तार युक्त (अवसि) ज्ञान और रक्षा में (सत्रा) सदा, (अनेहसः) अहिंसक, पाप-

रहित (वरुण-शेषसः) श्रेष्ठ दुःखवारक पुरुष के पुत्र के समान, एवं श्रेष्ठ पुत्रों वाले (त्वा ऊतयः) तुझ द्वारा रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने हारे (स्याम) हों।

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः। मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा) स्नेह करने वाले उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा अध्यापक उपदेशक जनो ! आप लोग (युवं) दोनों (इमं जनं) इस शिष्य-जन को (यतथः) यत्नपूर्वक प्रेरणा करो और (सं नयथः च) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में ले जाओ ! (अस्माकं) हमारे बीच में (मघोनः) दान योग्य उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (ऋषीणां गो-पीथेन) वेदार्थ विज्ञ, विद्वान् ऋषि पुरुषों की वाणियों के पान करने के कार्य से (मा परि ख्यतम्) कभी वञ्चित न करो।

[६६]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराडनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३, ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

भा०—हे (चिकितान) ज्ञानयुक्त विद्वान् पुरुष ! हे (मर्त्त) मनुष्य ! तू (सु-क्रतू) कर्म करने वाले, उत्तम प्रज्ञायुक्त (रिशादसा) दुष्टों के नाश करने वाले, (देवौ) दो ज्ञान प्रकाशक पुरुषों को (वरुणाय) श्रेष्ठ, (ऋत-पेशसे) सत्य ज्ञान के धनी (प्रयसे) प्रयत्नवान् (महे) बड़े पुरुष के उपकार के लिये (आ दधीत) आदरपूर्वक स्थापित कर। एक ज्ञान दान करे, एक आचार सुधारे। एक सन्मार्ग में प्रेम से प्रवृत्त करे, एक ताड़ना से दुष्ट मार्ग से वारण करे।

ता हि क्षत्रमविहुतं सम्यगसुर्य॑माशाते।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (अविह्रुतं) कुटिलता से रहित (असुर्यं) प्राणवान् जन्तुओं के हितकारक (क्षत्रम्) बल को (सम्यक्) अच्छी प्रकार (आशाते) वश करने में समर्थ होते हैं (अध) और उन द्वारा ही (व्रता इव) कर्त्तव्य कर्म के समान (दर्शतम्) दर्शनीय आदर्श (मानुषं) मनुष्यों का (स्वः न) परम सुखकारी स्वर्गवत् राष्ट्र (धायि) धारण किया जाता है।

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम्।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥

भा०—(एषाम् रथानाम्) इन उत्तम, वेगवान् रथों के (ऊर्वीं गव्यूतिम्) बड़े मार्ग को (एषे) चलने के लिये (ता वाम्) उन आप दोनों को ही अग्नि जलवत् मुख्य प्रवर्त्तक (मनामहे) स्वीकार करते हैं और (रात-हव्यस्य) अन्न आदि भोज्य पदार्थ देने वाले स्वामी की (सुस्तुतिं दधृक्) उत्तम स्तुति, को भी धारण करने वाले आप दोनों को ही (स्तोमैः मनामहे) उत्तम स्तुत्य वचनों द्वारा स्वीकार करते हैं। अग्नि, जल दोनों तत्व जिस प्रकार रथों के दीर्घ मार्ग चलने में कारण होते हैं राष्ट्र में प्रजाओं के भी दीर्घ काल तक निभने में मुख्य दो बल न्याय और शासन-विभाग कारण हैं। वे प्रधान राजा की उत्तम कीर्त्ति को धारते हैं। अध्यात्म में—प्राण, अपान दीर्घ जीवन के कारण हैं वे आत्मा की स्तुत्य शक्ति के धारक हैं। इन जीवों के लिये बड़ी (गव्यूति) ज्ञान वाणियों की प्राप्ति में गुरु-शिष्यपरम्परा ही मुख्य कारण है।

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—(अध हि) और (पूत-दक्षसा) पवित्र बल को धारण करने वाले (युवं) आप दोनों (दक्षस्य) बल के (पूर्भिः) पूर्ण करने वाले शिष्यों सहित (अद्भुता) अद्भुत (काव्या) विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों द्वारा ज्ञान करने

योग्य ज्ञानों का (जनानां) मनुष्यों के हितार्थ (केतुना) ज्ञापक शास्त्र द्वारा (नि चिकेथे) निरन्तर ज्ञान करो, उसका बराबर अभ्यास किया करो।

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।

ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी के समान ज्ञान को विस्तार करने हारी विदुषी स्त्री ! (श्रवः) पृथिवी पर अन्न के समान जीवन देने वाला (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों का (तत्) वह (ऋतं) सत्यमय (बृहत्) बड़ा भारी (श्रवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान है जिसको मेघों के समान विद्वान् जन (यामभिः) आठों प्रहर (पृथु) बड़े विस्तृत रूप में (अति) खूब (क्षरन्ति) बरसाते हैं। हे (ज्रयसानौ) ज्ञानमार्ग से जाने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों उसको अन्नवत् (अरं) खूब प्राप्त करो और उसका उपयोग करो।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्रा वयं च सूरयः ।

व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्र) परस्पर स्नेहवान् स्त्री पुरुषो ! हे (ईय-चक्षसा) ज्ञान करने योग्य दर्शन वा कथन करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धुजन हैं वे और (वयं च) हम भी (सूरयः) समस्त विद्वान् जन मिलकर (व्यचिष्टे) अति विस्तृत (बहुपाय्ये) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के निमित्त (आ यतेमहि) सब प्रकार से यत्नवान् रहें। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६७]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।

वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) दानशील, तेजस्वी, हे (आदित्य) भूमि के पुत्रवत्

हितकारी, हे (वरुण मित्र अर्यमन्) दुष्टों के वारक, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले, स्नेहयुक्त ! शत्रुओं और प्रजाजनों का नियन्त्रण करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (बृहत्) बड़े भारी (क्षत्रं) बल सैन्य को (यजतं) प्राप्त करो और (वर्षिष्ठं) उत्तम ऐश्वर्यदायक, शत्रु पर अस्त्र वर्षी तथा राज्य का उत्तम प्रबन्ध करने में समर्थ (क्षत्रं) बल सम्पत्ति को (आशाथे) प्राप्त करो।

आ यद्योनिं हिर॒ण्यय॒ं वरु॑ण॒ मित्र॒ सद॑थः ।
ध॒र्तारा॑ चर्षणी॒नां य॒न्तं सु॒म्नं रि॑शादसा ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ, शत्रुवारक, प्रजा से मुख्य पद पर वरण करने योग्य, हे स्नेहयुक्त जनो ! आप दोनों (यत्) जब (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय तथा सुवर्णादि के बने, तेजोयुक्त गृह, पदासन तथा कारण को (आ सदथः) सब प्रकार से विराजते और वश करते हो तब आप (चर्षणीनां धर्त्तारा) प्रकाशक किरणों को धारण करने वाले सूर्य, विद्युत् के समान (चर्षणीनां धर्त्तारा) समस्त विद्वान् मनुष्यों को धारण करने वाले और (रिशादसा) दुष्टों को नाश करने में समर्थ होकर (चर्षणीनां सुम्नं यन्तम्) मनुष्यों को सुख प्रदान करो।

विश्वे॒ हि वि॒श्ववे॑दसो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।
व्र॒ता प॒देव॑ सश्चिरे॒ पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य उत्तम धनों, ज्ञानों वेतनादि का विभाग करने वाला सर्वश्रेष्ठ राजा, (मित्रः) सर्व स्नेही और (अर्यमा) न्यायाधीश, (विश्वे) समस्त (विश्व-वेदसः) समस्त धनों, ज्ञानों को जानने वाले विद्वान् पुरुष (व्रता) कर्त्तव्यों, कर्मों को (पदा इव) अवश्य रखने योग्य पदों, कदमों या ज्ञान साधनों वा अर्थबोधक पदों के समान (सश्चिरे) करते हैं। वे (मर्त्यं) मनुष्यमात्र को (रिषः) हिंसक, दुष्ट पुरुष से वा नाश होने से (पान्ति) बचाते हैं।

ते हि सत्या ऋतस्पृशः ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

भा०—(ते हि) और वे निश्चय से (सत्याः) सत्याचरणशील, (ऋत-स्पृशः) तेजस्वी, (ऋतावानः) ऐश्वर्यवान् (सु-नीथाः) उत्तम वेद वाणी के बोलने हारे, (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (जने जने) सब पुरुषों के प्रति (अंहोः चित्) पाप से भी मुक्त होकर (उरु-चक्रयः) बहुत बड़े २ उपकार कार्य करने वाले हों ।

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त प्रजा को मरण से बचाने हारे ! हे (वरुण) दुखनाशक, वरणीय जनो ! (वाम्) तुम दोनों को (तनूनां) देह धारियों में से (कः) कौन जन (अस्तुतः) अप्रशंसित, अनुपदिष्ट, मूर्ख पुरुष (एषते) प्राप्त हो सकता है। जो (मतिः) मननशील पुरुष (अत्रिभ्यः) तीनों प्रकार के दोषों और दुःखों से रहित विद्वानों से (एषते) ज्ञान प्राप्त करता है वही मतिमान् (वाम् एषते) तुम दोनों के पद को प्राप्त करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६८]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने (मित्राय) स्नेही और (वरुणाय) दुःखों के वारण करने वाले, (महि क्षत्रौ) बड़े बलशाली, (विपा) विविध प्रकारों से पालन करने वाले, (बृहत् ऋतं) बड़े भारी सत्यमय न्याय और ऐश्वर्य को देने वाले या उनकी रक्षा करने वाले दोनों को (गिरा) वाणी द्वारा (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो ।

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृत-योनी) जल और स्निग्ध पदार्थ से उत्पन्न वैद्युत् और भौम अग्नि दोनों (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकते हैं और (देवेषु प्रशस्ता) प्रकाशमान् पदार्थों में उत्तम हैं उसी प्रकार (या) जो दोनों (घृत-योनी) तेज या दीप्ति के आश्रय पर रहने वाले (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, तेजस्वी (मित्रा वरुणः च) स्नेही, सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ सभा व सेना के (उभा) दोनों अध्यक्ष हैं वे (देवा) दानशील दोनों पुरुष (देवेषु) उपस्थित विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों में (प्रशस्ता) उत्तम प्रशंसनीय हों ।

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों सभा व सेना के अध्यक्ष जनो ! (नः) हमारे (महः) बड़े भारी (पार्थिवस्य) पृथिवी और (दिव्यस्य) न्याय व्यवहार, वार्त्ता आदि व्यापारों से प्राप्त (रायः) धन के ऊपर (शक्तम्) शक्तिमान् बनो । (वां) आप दोनों का (देवेषु) दानशील, व्यवहारकुशल और तेजस्वी पुरुषों में (महि क्षत्रं) बड़ा भारी बल है ।

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों (अद्रुहा) परस्पर कभी द्रोह न करते हुए (देवा) तेजस्वी, दानशील, एक दूसरे की सत्कामना करते हुए (ऋतम् ऋतेन सपन्ता) ऐश्वर्य को सत्य व्यवहार और न्याय से प्राप्त करते हुए (इषिरम् दक्षम्) इच्छानुकूल सबको शासन करने वाले, सर्व प्रेरक बल और ज्ञान को (आशाते) प्राप्त करो और (वर्धेते) बढ़ो, वृद्धि को प्राप्त होओ ।

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत् (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि और दीप्ति से युक्त और (रीत्यापा) जल प्रवाह कराने वाले होकर (दानुमत्याः इषः पती) भूमि के पालक होकर (बृहन्तं गर्त्तम् आशाते) बड़े भारी सूर्य वा मेघ को व्यापते हैं उसी प्रकार 'मित्र' और वरुण न्यायाधीश और सेनापति, दोनों (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि के समान तेजस्वी (रीत्यापा) ज्ञान और गति तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले, होकर (दानु-मत्याः) देने योग्य ऐश्वर्यों की स्वामिनी, राज्यशक्ति वा पृथिवी के (इषः पती) अन्नादि के स्वामी, शासक, बल के पालन करने वाले होकर (बृहन्तं गर्त्तम्) बड़े सभापति के पद तथा महान् रथ को (आशाते) प्राप्त करते हैं। 'गर्तः' सभास्थाणुः, रथश्च । इति षष्ठो वर्गः ॥

[६९]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्री रो॑च॒ना व॑रुण॒ त्रीँरु॒त द्यून्त्रीणि॑ मित्र धारयथो॒ रजां॑सि ।
वा॒वृ॒धा॒नाव॒मतिं॑ क्ष॒त्रि॒य॒स्यानु॑ व्र॒तं रक्ष॑माणावजु॒र्यम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) दुष्टों के वारण करने वाले ! हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय, सर्वस्नेही न्यायकारिन् ! आप दोनों (त्री रोचना) अग्नि, सूर्य और विद्युत् तीनों दीप्तिमान् पदार्थों के तुल्य सर्वप्रकाशक तीनों वेदों के ज्ञानों को (उत्) और (त्रीन्) तीन (द्यून्) प्रकाशों के समान तीनों प्रकारों के व्यवहारों को और (त्रीणि रजांसि) तीनों वर्णों के लोगों को (धारयथः) धारण करते हो। आप दोनों (क्षत्रियस्य) बलवान् क्षत्रिय के (अमतिम्) रूप को (वावृधानौ) बढ़ाते हुए और (अजुर्यम्) कभी नाश न होने वाले, स्थिर (व्रतं) कार्य व्रत की (अनु रक्षमाणौ) सबके अनुकूल, प्रतिदिन रक्षा करते हुए सबों को धारण करते हो।

इरा॑वतीर्वरुण धे॒नवो॑ वां॒ मधु॑मद्वां॒ सिन्ध॑वो मित्र दुह्रे ।
त्रय॑स्तस्थुर्वृ॒ष॒भास॑स्तिसृ॒णां धि॒षणा॑नां रेतो॒धा वि द्यु॒मन्तः॑ ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (इरावतीः धेनवः) दूध वाली गौवें (मधुमद् दुह्रे) मधुर रसयुक्त दूध देती हैं और जिस प्रकार (इरावतीः सिन्धवः मधुमत् दुह्रे) जल से पूर्ण नदियें अन्न से युक्त जल-राशि वा जल से युक्त अन्न प्रदान करती हैं उसी प्रकार हे (मित्र वरुण) सर्वप्रिय न्यायाधीश, सभापते ! हे दुष्टों के वारक, सेनापते ! (वाम्) आप दोनों की (धेनवः) वाणियां (इरावतीः) रस से युक्त और अपने अधीन पुरुषों को प्रेरणा करने वाली होकर (मधुमत्) ज्ञान और बल से युक्त ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें और (वां सिन्धवः) आप लोगों की प्रेरणा शक्ति वाली, वेग से जाने वाली और प्रजागण को उत्तम प्रबन्ध में बांधने वाली आज्ञाएं और सेनाएं (मधुमत् दुह्रे) मधुर फल एवं बलयुक्त राष्ट्र को प्रदान करती हैं। जिस प्रकार (तिसृणाम् धिषणनाम्) सूर्य, आकाश और पृथिवी तीन लोकों के बीच में (त्रयः वृषभासः रेतो-धाः द्युमन्तः वि तस्थुः) तीन बलवान् वर्षणशील, जल, वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी सूर्य, विद्युत् और अग्नि वा अग्नि, वायु और जल तीनों विशेष रूप से विराजते हैं उसी प्रकार (तिसृणां) तीन (धिषणानाम्) अध्यक्ष होकर आज्ञा प्रदान करने वाली राष्ट्रधारक, तीन सभाओं के ऊपर (त्रयः) तीन (वृषभाः) बलवान्, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, धर्मानुकूल शासन से चमकने वाले (रेतोधाः) बल वीर्य को धारण करने वाले, (द्युमन्तः) तेजस्वी, व्यवहार कुशल, प्रधान पुरुष (वि तस्थुः) विशेष रूप से स्थित हों।

प्रातर्दे॒वीमदि॑तिं जोहवीमि म॒ध्यन्दि॑न॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
रा॒ये मि॑त्रावरुणा स॒र्वता॒तेळे॑ तो॒काय॒ तन॑याय॒ शं योः ॥ ३ ॥

भा०—मैं (प्रातः) प्रभात काल में और जीवन के प्रभात काल अर्थात् प्रथम चतुर्थांश जीवनकाल २५ वर्ष की आयु तक (देवीम् अदितिम्) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश देने वाली और भूमि के समान अन्न और ज्ञान देने वाली माता और आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी को (जोहवीमि) निश्चयपूर्वक ग्रहण करूं। उसको मैं (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदयकाल में

और (मध्यन्दिने) मध्याह्नकाल में भी प्राप्त करूं। इसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय व मध्याह्नकाल में भी भूमि अर्थात् उसमें बसी प्रजा को ही आदर पूर्वक देखूं। मैं (राये) दान देने योग्य ज्ञान एवं धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (मित्रा वरुणा) स्नेही और वरण करने योग्य आचार्य, उपदेष्टा और प्रजा के स्नेही, न्यायाधीश और दुष्टवारक, सेनापति को माता पिता के सदृश जानकर (सर्वताता) सबके हितार्थ, तथा (तोकाय तनयाय शंयोः) पुत्र पौत्र के तुल्य पालनीय, सैन्यगण और सामान्य प्रजागण के सुख-कल्याण और दुःख निवारण के लिये हम उनको (ईडे) चाहें, उनकी स्तुति करें और स्वीकार करें।

या धर्तारा रजसो रोचनास्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ४।७

भा०—हे (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठजनो! (या) जो आप दोनों (रोचनस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञान प्रकाश से युक्त, सर्वप्रिय एवं (पार्थिवस्य) पृथिवी पर रहने वाले समस्त (रजसः) लोकों को (धर्त्तारा) धारण करने वाले, (दिव्या) ज्ञान प्रकाश में और विजिगीषा, व्यवहार आदि में प्रौढ, (आदित्या) ज्ञान और कर आदि लेने और देने में तथा भूमि और सरस्वती के वश करने में चतुर हो उन (वां) आप दोनों के (अमृता) कभी नाश न होने वाले (ध्रुवाणि व्रतानि) स्थिर व्रतों, कर्मों को (देवाः) ज्ञानाभिलाषी शिष्य और ऐश्वर्याभिलाषी प्रजाजन (न आमिनन्त) कभी खण्डित नहीं करते। इति सप्तमो वर्गः॥

[७०]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ गायत्री छन्दः॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
मित्र वंसि वां सुमतिम्॥ १॥

भा०—हे (मित्र वरुण) स्नेहवान्! हे श्रेष्ठ पुरुषो! (नूनं) निश्चय ही (वां अवः) आप दोनों का ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य, प्रेम और बल (पुरु-

उरुणा अस्ति चित् हि) बहुत प्रकार का महान् और उत्तम है। मैं (वां) आप दोनों के (सु-मतिम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान को (वंसि) प्राप्त करूं।

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

भा०—(ते वयम्) वे हम लोग (अद्रुह्वाणा) कभी द्रोह न करने वाले, (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले और दुःख से बचाने वाले वा रोते हुए दुःखी आदमियों द्वारा शरण रूप लेने योग्य (ता वां) उन आप दोनों के (इषम्) शासन को हम अपने (धायसे) पोषण और रक्षा के लिये अन्नवत् (अश्याम) उपभोग करें।

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने और पीड़ितों को शरण देने वाले मित्र और वरुण ! सभा सेना के अध्यक्षो ! आप दोनों (नः) हम प्रजाओं को (पायुभिः) नाना रक्षा साधनों से (उत) तथा (सुत्रात्रा) उत्तम पालक दण्ड विधान से (पातं) पालन करो और (त्रायेथाम्) संकटों से बचाओ। हम स्वयं (तनूभिः) शरीरों तथा पुत्र पौत्रों तथा विस्तृत सैन्यादि से (दस्यून् तुर्याम) दुष्ट, हिंसक पुरुषों का नाश करें।

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अद्भुत-क्रतू) आश्चर्यजनक बुद्धि, कर्म से सम्पन्न स्नेही और वरणीय उत्तम पुरुषो ! हम (कस्य) किसी का भी (यक्षं) दान दिया धन आदि (तनूभिः) अपने शरीरों से (मा भुजेम) कभी भोग न करें और (शेपसा मा) अपने पुत्र से प्राप्त धन का भी भोग न करें, (मा तनसा) पौत्र का दिया धन भी भोग न करें। वे भी स्वबाहूपार्जित धन पर जीवन व्यतीत करें। इत्यष्टमो वर्गः।

[७१]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा ।

उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥

भा०—वे (वरुण मित्र) शत्रुओं के वारण और प्रजाओं को प्रेम करने हारो ! आप दोनों (रिशादसा) दुष्टों का नाश करने वाले और (बर्हणा) प्रजाओं की ऐश्वर्य, रक्षा, पालन आदि से वृद्धि करने वाले हो, आप दोनों (नः) हमारे (इमं) इस (चारुम्) उत्तम (अध्वरम्) हिंसारहित, प्रजा के पालक, यज्ञ और राष्ट्र को (आ उप गन्तम्) आदर पूर्वक प्राप्त होवो ।

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।

ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ पदार्थों, ज्ञानों और गुणों के प्रदान करने वाले, हे स्नेहवान्, मृत्यु आदि से बचाने वाले, (प्र-चेतसा) प्रकृष्ट ज्ञान से सम्पन्न पुरुषो ! हे (ईशाना) सामर्थ्यवान् जनो ! आप लोग (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र के (हि) निश्चय से (राजथः) राजा के तुल्य विराजते हो। आप दोनों (धियः) समस्त कर्मों और ज्ञानों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ, पुष्ट करो ।

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ और स्नेहवान् जनो ! स्त्री पुरुषो ! आप लोग (दाशुषः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य के देने वाले (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालन और उपभोग के लिये (नः) हमारे (सुतम्) बनाये इस यज्ञ, राष्ट्र वा अभिषिक्त नृपति आदि को (उप आ गतम्) प्राप्त होवो । इति नवमो वर्गः ॥

[७२]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ उष्णिक् छन्दः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।

नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—(वयं) हम लोग (मित्रे वरुणे) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ पुरुष के अधीन रहकर (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (अत्रिवत्) तीनों दुःखों से रहित, यहां की ही प्रजा के समान (जुहुमः) यज्ञ आदि कार्यों में त्याग, वा कर प्रदान करें तथा उत्तम ऐश्वर्य का भोग करें। हे स्नेहयुक्त एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (सोम-पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और राजा के पुत्रवत् पालन करने के लिये (बर्हिषु) आसन और वृद्धिशील प्रजा के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) स्थिर होकर विराजो।

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।

नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेहयुक्त, प्रेम और आदर से एक दूसरे को योग्य कार्य के लिये वरण करने वाले और वरण करने योग्य एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (धर्मणा व्रतेन) धर्मानुकूल व्रताचरण से (ध्रुव-क्षेमा) स्थिर रक्षण और कल्याण युक्त तथा (यातयत्-जना) मनुष्यों को सन्मार्ग पर यत्नशील बनाते हुए (सोम-पीतये) अन्न जल आदि ऐश्वर्य के भोग एवं पालन के लिये (बर्हिषि) आसन एवं वृद्धिशील राष्ट्र-प्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) नियमपूर्वक विराजो।

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।

नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—(मित्रः च) स्नेहवान्, प्रिय एवं (वरुणः च) वरण करने योग्य उक्त दोनों प्रकार के वर्ग (इष्टये) अभीष्ट कल्याण एवं सुख प्राप्ति के लिये (नः) हमारे (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म, यज्ञ, संगति, याचना, प्रार्थना आदि

को (जुषेताम्) प्रेम पूर्वक सेवन वा स्वीकार करें और (सोम-पीतये) अन्न, ओषधिरस आदि के सेवन के लिये (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतां) विराजो। इसी प्रकार (सोमपीतये बर्हिः नि सदताम्) ऐश्वर्यादि उपभोग वा प्रजापालन के लिये वृद्धिशील प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराजो। इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[७३]

पौर आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप् । १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यद॒द्य स्थः प॑रा॒वति॒ यद॑र्वा॒वत्य॑श्विना ।
यद्वा॑ पु॒रू पु॑रुभु॒जा यद॒न्तरि॑क्ष॒ आ ग॑तम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारिथी के समान एक ही गृहस्थ रथ पर विराजने वाले वा आशु अर्थात् शीघ्र गमन करनेवाले साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (परावति स्थः) कभी दूसरे देश में रहो, (यत् अर्वावति स्थः) और जो कभी निकट देश में भी रहते हो (यत् वा) वा (पुरुभुजा) बहुत से जनों के पालक एवं बहुत ऐश्वर्यों के भोक्ता होकर (पुरू स्थः) बहुत से प्रदेशों में रहे हो (यत् अन्तरिक्षः स्थ) और जो कभी आप दो अन्तरिक्ष में विमानादि द्वारा विचरे हों वे २ आप लोग दूर निकट, एवं नाना देशों और अन्तरिक्षादि में विचरने वाले स्त्री पुरुषो ! आप सब लोग (अद्य आयातम्) आज हमें प्राप्त होवो।

इ॒ह त्या पु॑रु॒भूत॑मा पु॒रू दंसां॑सि॒ बिभ्र॑ता ।
व॒र॒स्या या॒म्यध्रि॑गू हु॒वे तु॑वि॒ष्ट॑मा भु॒जे ॥ २ ॥

भा०—(पुरु-भू-तमा) बहुत से प्रजाजनों में उत्तम सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्य, पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले, बहुतों के उत्तम आश्रय और (पुरू दंसासि) नाना कर्मों को (बिभ्रता) धारण करने वाले (वरस्या) अति श्रेष्ठ, परस्पर को वरण करने वाले (त्या) उन आप दोनों को मैं (इह) इस अवसर

में (यामि) प्राप्त होता हूँ और (अध्रिगू) भूमि पर, अधिकारवान् एवं मार्ग में दूर २ देशों तक जाने वाले (तुविः-तमा) अति बलवान्, प्रचुर धन के स्वामी आप दोनों को मैं (हुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूँ।

ई॒र्मान्यद्वपु॑षे॒ वपु॑श्च॒क्रं रथ॑स्य येमथुः।

पर्य॒न्या नाहु॑षा यु॒गा म॒ह्ना रजां॑सि दीयथः ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (ईर्मा) संसार मार्ग पर जानेवाले युगल स्त्री पुरुष (रथस्य चक्रम्) रथ के चक्र के तुल्य (वपुषे) एक शरीर के सहारे के लिये (अन्यत् वपुः) उससे भिन्न दूसरे शरीर को जानकर परस्पर को (येमथुः) नियन्त्रित करते, नियम में और विवाह बन्धन में बांधते हो। उसी प्रकार अन्य भिन्न २ प्रकार के (नाहुषायुगा) परस्पर बन्धन में बंधने वाले मनुष्यों के जोड़ों को (परिदीयथः) चलाते और (मह्ना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (परि दीयथः) बसाते और संचालित कर रहे हो अर्थात् सर्वत्र जीव संसार में रथ चक्रवत् एक स्त्री शरीर दूसरे पुरुष शरीर का संगी होकर नर मादा संसार चला रहे हैं।

तदू षु वा॑मे॒ना कृ॒तं विश्वा॒ यद्वा॒मनु॒ष्टवे॑।

नाना॑ जा॒तावरे॒पसा॒ सम॒स्मे बन्धु॒मेय॑थुः ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो (यत्) जो काम (वाम्) आप दोनों के (अनु स्तवे) अनुकूल रूप से स्तुति योग्य है, मैं आपको उपदेश करता हूँ (तत् विश्वा) वे समस्त काम आप दोनों (एना) इस विधि से (कृतम्) करो और दोनों (अरेपसा) पापरहित होकर (नानाजातौ) भिन्न २ वंश में उत्पन्न स्त्री पुरुष, अपने २ गुणों में प्रसिद्ध होकर भी (अस्मे) हमारे वृद्धि के लिये (बन्धुम्) बन्धन को (सम् आ ईयथुः) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

आ यद्वां॑ सू॒र्या रथं॒ तिष्ठ॑द्रघु॒ष्यदं॒ सदा॑।

परि॑ वामरु॒षा वयो॑ घृ॒णा व॑रन्त आ॒तपः॑ ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (वा) आप वर वधू दोनों में से (सूर्या) उषा के

समान कान्तिमती, सूर्यवत् तेजस्विनी, उत्तम ऐश्वर्यवती, सन्तान उत्पादन करने में समर्थ स्त्री सदा (रघु-स्यदं) वेग से जाने वाले (रथम्) रथवत् रमण करने योग्य गृहस्थ आश्रम को (अतिष्ठत्) धारण करती है, तब हे वर वधू! (वाम् परि) आप दोनों के ऊपर (अरुषाः) दीप्ति युक्त (घृणाः) जल सेचन करने वाले (आतपः) खूब तपने वाले सूर्य किरण जिस प्रकार (आवरन्त) आवरण करते या पड़ते हैं उसी प्रकार गृहस्थ में आप दोनों के ऊपर (अरुषाः) रोष रहित, सौम्य (घृणाः) ज्ञान, स्नेह, दया का प्रवाह बहाने वाले, (आतपः) उत्तम तपस्वी जन (आ वरन्त) तुमको आवृत करें, तुम्हारी रक्षा करें, तुम्हें प्राप्त हों। इत्येकादशो वर्गः ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥

भा०—हे (नरा) दोनों स्त्री पुरुषो! हे (नासत्या) असत्य आचरण न करने वालो! (यत्) जो (वाम्) आप दोनों के (घर्मं) सेचने योग्य वा तेजोयुक्त (अरेपसं) पापरहित कर्म को (आस्ना) मुख द्वारा (भुरण्यति) उपदेश करता है, वह (अत्रिः) तीनों तापों और तीनों दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (सुम्नेन चेतसा) उत्तम मननशील, शुभ चित्त से ही (युवोः चिकेतति) आप दोनों को ज्ञान का उपदेश करे।

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्वर्तति ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! हे (अश्विना) शीघ्र चलने वाले अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुषो! (यत् अत्रिः) जो भोक्ता, एवं इस लोक में विद्यमान पुरुष (दंसोभिः) नाना कार्यों से (आ ववर्त्तति) आजीविका सम्पादन करता है वह (उग्रः) बलवान् पुरुष (वां) आप दोनों में से (ककुहः) श्रेष्ठ, (सन्तनिः) वंश का विस्तार करने वाला और (यामेषु) समस्त मार्गों पर (ययिः) जाने में स्वतन्त्र (शृण्वे) सुना जाय, प्रसिद्ध

हो। या जो (अत्रिः) विद्वान् आप दोनों को कर्मों के उपदेशों से युक्त करता है वह महान् उग्र, आचार्य (यामेषु यथिः) नियमादि पालन कार्यों में स्वयं चलने और अन्यों को ले जाने वाला हो।

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी।

यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मधूयुवा) मधुर पदार्थों को परस्पर मिलाने वाले, जल, तेज और अन्न के मिश्रण और विश्लेषण करने वाले हे (रुद्रा) दुष्ट पुरुषों को रुलाने वाले उत्तम स्त्री पुरुषो! (यत्) जब (रुद्रा) गर्जन पूर्वक द्रवण होने वाली (पिप्युषी) अन्नादि को बढ़ाने वाली जल वृष्टि (मध्वः सिषक्ति) अन्नों को सींचती हैं, इधर आप दोनों (समुद्रा) अन्तरिक्षों और समुद्रों को भी (अति पर्षथः) पार कर लिया करो और (पक्वाः पृक्षः) पके सुमधुर अन्न (वाम् भरन्त) तुम दोनों को पालन पोषण करें। देश में जल वृष्टि से अन्न बढ़े, स्त्री पुरुष समुद्रों पार व्यापार करें। उत्तम खेती पकें, लोग उन अन्नों से पुष्ट होवें।

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा।

ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों को उत्तम स्वामियों के समान रथी सारथिवत् इन्द्रियों को दमन करने हारे उत्तम स्त्री पुरुषो! (सत्यम् इत् वा) निश्चय से (वां) आप दोनों को लोग जो (मयः-भुवा आहुः) सुख उत्पन्न करने वाले बतलाते हैं सो (सत्यम् इत् उ) ठीक ही है। (ता) वे आप दोनों (यामन्) संयम और परस्पर के विवाह आदि बन्धन पूर्वक एक दूसरे को कर्त्तव्य में बांधने के निमित्त (याम-हूतमा) संयमशील पुरुषों को आदरपूर्वक गुरु रूप से स्वीकार करने वालों में श्रेष्ठ होकर विवाह करो और (यामनि) उस संयम युक्त विवाह बन्धन में दोनों (आ मृडयत्-तमा) एक दूसरे को प्राप्त होकर अति अधिक सुखी करने वाले बनो।

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(या) जिन (ब्रह्माणि) इन धनों, ज्ञानों और उत्तम अन्नों को हम (रथान् इव) रथों और नाना रम्य पदार्थों के समान (तक्षाम) उत्पन्न करते और बनाते हैं (इमा) वे (अश्विभ्यां) जितेन्द्रिय रथी सारथिवत् राजा रानी, गृहपति पत्नी आदि स्त्री पुरुषों को (वर्धना) बढ़ाने वाले होकर (शन्तमा) अत्यन्त शान्तिदायक (सन्तु) हों। हम आप दोनों को (बृहत् नमः) बड़ा उत्तम आदरसूचक नमस्कार का वचन (अवोचाम) कहा करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[७४]

आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, १० विराडनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४, ५, ६, ९ निचृदनुष्टुप् । ७ विराडुष्णिक् । ८ निचृदुष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवौ) दानशील, सत्य वचन को प्रकाशित करने वाले, एक दूसरे की कामना करने वाले होकर (कू-स्थः) भूमि पर विराजते हो। आप दोनों (दिवः) उत्तम व्यवहार, ज्ञान प्रकाश और उत्तम कामना के (मनावसू) मनन और ज्ञान को वसु अर्थात् धन रूप से रखने वाले और (दिवः मनावसू) तेजोमय प्रभु के ज्ञान के धनी हो। हे (वृषण्वसू) हे वृषन् ! हे वसु ! हे वीर्यसेचक पुरुष, एवं पुरुष को अपने आश्रय बसाने वाली स्त्री ! तुम दोनों (तत्) उस ज्ञानोपदेश का सदा (श्रवथः) श्रवण किया करो जिसको (अत्रिः) त्रिविध दुःखों से पारंगत और गृहस्थ वा तीन आश्रमों से ऊपर चतुर्थाश्रमी विद्वान् (वाम्) आप दोनों को (आ विवासति) आदर पूर्वक उपदेश करे ।

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

भा०—परस्पर प्रश्न करने की रीति। हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! (त्या कुह आयतथः) वे आप दोनों किस स्थान में यत्नवान् होकर रहते हो। (कुह) किस गुरु-आश्रम में (नु) भला आप दोनों (दिवि) ज्ञान शाखा में (श्रुतौ) विद्योपदेश श्रवण किये हो ? हे (देवा) परस्पर की कामना से युक्त, एवं दोनों तेजस्वी पुरुषो ! आप अब (कस्मिन् जने) किस जन समूह में (आ यतथः) विद्या प्रचार आदि का यत्न करते हो। (वां) आप दोनों की (नदीनाम्) समृद्ध वाणियों और सम्पत्तियों का (कः) कौन (सचा) सहयोगी है ?

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (कं याथः) किसको लक्ष्यकर जाते हो। (कं ह गच्छथः) किसके पास जाते हो। (कम् अच्छ) किसके प्रति (रथम् युञ्जाथे) जाने के लिये उत्तम यान जोड़ते हो। वा किस (रथम्) उद्देश्य वा लक्ष्य को रखकर योगाभ्यास किया करते हो। (कस्य) किस सम्बन्ध के (ब्रह्माणि) वेद-वचनों, धनों और अन्नों का (रण्यथः) प्रसन्नता पूर्वक उपभोग करते हो। (वयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों को (इष्टये) यज्ञ एवं स्व-अभिलाषा के लिये (उश्मसि) चाहते हैं। १. "कं। ह। जग्मथः।" इति पदपाठगतः पाठः।

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

भा०—हे (पौर) पुर के निवासी वा हे मनुष्य की सन्तान स्त्री पुरुष जनो ! आप लोग (पौराय) पुर के निवासी जनों के हित के लिये (उदप्रुतं) जल से अभिषिक्त, (पौरम्) 'पुर' अर्थात् नगर निवासी जनों के

हितैषी, (ईम्) इस (सिंहम् इव) सिंह के समान तेजस्वी पुरुष को (गृभीत-तातये) हाथ में लिये राष्ट्र के कल्याण के लिये और (द्रुहः) शत्रु से द्रोह अर्थात् संग्राम, लड़ाई-झगड़े के (पदे) कार्य पर वा मुख्य नायक पद पर (जिन्वथः) अभिषिक्त करो, स्थापित करो।

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे उत्तम पुरुषो! वा सेना, सभा के अध्यक्ष जनो! आप लोग (जुजुरुषः) जरावस्था को प्राप्त (च्यवानात्) निरन्तर क्षीण होते जाने वाले पुरुष से (वव्रिम्) वरण करने योग्य पद वा अधिकार को (अत्कं न) रूप या कवच के समान (प्र मुञ्चथः) परित्याग करा दो और (पुनः) फिर उस स्थान पर (युवा) जवान पुरुष जिस प्रकार (वध्वः कामम्) वधू की कामना वा सुन्दर रूप को (ऋण्वे) प्राप्त करता है उसी प्रकार (यदि युवा) जवान बलवान् पुरुष (वध्वः) 'वधू' अर्थात् कार्य भार वहन करने की शक्ति के (कामं) कान्तियुक्त पद को (ऋण्वे) प्राप्त करे, तो उसी को आप दोनों (पुनः वव्रिम् कृथः) पुनः उस वरण करने योग्य नायक पद पर नियुक्त करें। जैसे बूढ़े असमर्थ आदमी से सेना में कवच ले लिया जाता है और जो कवच को उठा सके उसको दिया जाता है इसी प्रकार नायक पद भी असमर्थ बूढ़े से लेकर (युवा यदि वध्वः कामं ऋण्वे) जवान यदि कार्य-भार को वहन करने की इच्छा करे तो उसको (कृथः) उस पद पर नियत करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

भा०—हे सभा वा सेना के अध्यक्ष जनो (वाम्) आप दोनों को (स्तोता) उत्तम उपदेश करने और आज्ञा करने वाला भी (इह) इस राष्ट्र में (अस्ति हि) हो और हम (वां) आप दोनों की (श्रिये) शोभा, सम्पत्ति

वृद्धि व आश्रय प्राप्ति के लिये, आपके (संदृशि) उत्तम दर्शन, अध्यक्षता वा शासन में (स्मसि) रहें। आप दोनों (मे नु श्रुतम्) हमारे वचन सुनिये। हे (वाजिनी-वसू) संग्रामकारिणी सेना और अन्नादि ऐश्वर्य और ज्ञान-वान् पुरुषों से युक्त राजसभा के बीच स्वयं विराजने, उसको बसाने वा उसको पालने वाले अध्यक्ष जनो! आप लोग (अवोभिः) उत्तम रक्षा साधनों सहित (आ गतम्) आइये।

को वा॑म॒द्य पु॑रू॒णामा व॑व्ने॒ मर्त्या॑नाम्।
को विप्रो॑ विप्रवाहसा॒ को य॒ज्ञैर्वा॑जिनीवसू ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्र-वाहसा) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओं से अपने को पूर्ण करने वाले, शिष्यों को धारण करने वाले! एवं (वाजिनी-वसु) ऐश्वर्य, संग्राम, बल और ज्ञान से युक्त सेना और वाणी को बसाने, उनको द्रव्य-वत् पालने वाले सेनापति, राजा और आचार्य जनो! (अद्य) आज (पुरूणाम् मर्त्यानाम्) मरणशील वा शत्रुओं को मारने वाले बहुत मनुष्यों में से (कः वाम् वन्वे) कौन आप दोनों की सेवा करता है, (कः विप्रः) कौन विद्वान् और कौन पुरुष (यज्ञैः) आदर सत्कारों, दानों, प्रार्थना वचनों और सत्संग आदि से (वां वन्वे) तुम दोनों से वर्त्ताव, प्रार्थनादि करता है, इसका विचार रक्खो।

आ वां॒ रथो॒ रथा॑नां॒ येष्ठो॑ यात्वश्विना।
पु॒रू चि॑दस्म॒युस्ति॒र आ॑ङ्गू॒षो मर्त्ये॒ष्वा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! अश्वादि सैन्यों के स्वामि जनो! (रथानां येष्ठः) अन्य रथों में चलने में सबसे उत्तम (वां रथः) आप दोनों का रथ (आ यातु) आवे। (मर्त्येषु) मनुष्यों में (पुरु चित् तिरः) बहुत से ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाला आप दोनों का (अस्मयुः) हमें प्राप्त होने वाला (आङ्गूषः) उत्तम उपदेश भी (आ यातु) हमें प्राप्त हो।

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥

भा०—(मधु-युवा) मधुर जल, अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने योग्य, परस्पर मिलने वाले आदरणीय स्त्री पुरुषो ! (अस्माकं) हमारी (चर्कृतिः) सत्कार क्रिया (वाम् शम् उ सु अस्तु) आप दोनों को शान्तिदायक हो। आप (विचेतसा) विशेष ज्ञानयुक्त होकर (श्येना इव) बाजों के समान (विभिः) आकाशगामी रथों से (अर्वाचीना) हमारे सन्मुख (दीयतम्) आवो और जावो ।

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अश्वों वा विद्वानों के स्वामियो ! रथी सारथिवत् राष्ट्र के अध्यक्ष सभा-सेनाध्यक्षो ! आप दोनों (यत् कर्हि चित्) जिस किसी प्रकार भी (इमं) इस (हवम्) ग्रहण करने और देने योग्य वेद के सत्य ज्ञानमय वचन को (शुश्रूयातम्) सुनते और सुनाते रहो। (वां) आप दोनों को (वस्वीः) अध्यापक उपदेशक के अधीन बसने वाली शिष्य मण्डलियों के समान राष्ट्र में बसने वाली प्रजाएं (भुजः) पालन करने वाली वा राष्ट्र का भोग करने वाली होकर (सु पृञ्चन्ति) आप दोनों से भली प्रकार सम्बद्ध होती हैं। वे (वां) आप दोनों के साथ (उ सु) उत्तम रीति से (पृचः) सदा सम्पर्क बनाये रक्खें। इसी प्रकार गुरु शिष्य ज्ञान को सुनते सुनाते रहें और उनका सत्संग करते रहें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७५]

अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ पंक्तिः । २, ४, ६, ७, ८ निचृत्पंक्तिः । ५ स्वराट्पंक्तिः । ९ विराट्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।

स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्वादि साधनों के स्वामी, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (ऋषिः = ऋं गतिं सिनाति यः) गति अर्थात् क्रिया और ज्ञान को बांधने में समर्थ विद्वान् पुरुष, (वृषणं) अति बलवान्, सुखप्रद और सुप्रबन्ध से युक्त, (वसु-वाहनम्) धन को उस पर बैठने वालों को उठाकर दूर ले जाने में समर्थ (प्रियतमं रथं) अति प्रिय रथ, एवं रमण करने योग्य रसरूप वा देने योग्य ज्ञान वचन को (स्तोमेन) उपदेश योग्य ज्ञानरहस्य के साथ ही (वाम् प्रति भूषति) आप दोनों को प्रत्यक्ष रूप में देता और आपको अलंकृत करता है, हे (माध्वी) मधुर वचन बोलने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा ग्रहण योग्य, अध्ययनादि वचन श्रवण करो।

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् २

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! एवं अश्वादि वेगयुक्त साधनों से सम्पन्न जनो ! (अहं) मैं (सना) सनातन से प्राप्त (विश्वा) समस्त (तिरः) सर्वतः श्रेष्ठ, विद्यमान ज्ञान को प्राप्त करता हूँ। आप दोनों (दस्रा) दुःखों के नाश करने में समर्थ (हिरण्य-वर्तनी) हित और रमणीय स्वर्गीय मार्ग पर चलते हुए, (सु-सुम्ना) उत्तम सुख से युक्त (सिन्धु-वाहसा) प्रवाह से बहने वाली नदी द्वारा नौका ले जाने वाले केवट के समान सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञान देने वाले गुरु को प्राप्त होकर (माध्वी) मधुर ज्ञान को मधुकरों के समान सेवन करते हुए (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण योग्य और दातव्य ज्ञानों का (श्रुतम्) श्रवण करो।

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों, इन्द्रियों और आशुगामी साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो! (युवम्) आप दोनों (रत्नानि) रमणीय, सुन्दर गुण, रत्नों को (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (नः आ गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, पीड़ा को दूर करने वाले (हिरण्य-वर्तनी) हित रमणीय मार्ग से जाने वाले, (वाजिनी-वसू) ज्ञानयुक्त वाणी के निमित्त गुरु के अधीन व्रतपूर्वक बसने वाले आप दोनों (जुषाणा) प्रेम-पूर्वक सेवन करते हुए (माध्वी) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर (मम हवं) मेरे ज्ञानोपदेश को (श्रुतम्) श्रवण करो।

सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ४

भा०—हे (वृषण्वसू) मेघवत् ज्ञान वर्षण करने वाले आचार्य के अधीन व्रत पालनार्थ अन्तेवासी होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो! (सु-स्तुभः) उत्तम उपदेष्टा की (वाणीची) वाणी (वां रथे) आप दोनों के रमणीय आत्मा में (आ-हिता) अच्छी प्रकार धारण की जावे। (उत) और (ककुहः) महान् (मृगः) आत्मा, आचरणादि का शोधन करने वाला गुरु (वापुषः) शरीर देने वाले पिता के समान (वां) आप दोनों का (पृक्षः) सम्पर्क जोड़ने वाले अन्नवत् ज्ञान का (कृणोति) उपदेश करता है। हे आप दोनों (माध्वी) मधु, अन्नवत् ज्ञान संग्रही होकर (मम हवं श्रुतम्) मेरा वचनोपदेश श्रवण करो।

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता। विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(रथ्या अश्विनौ इषिरा विभिः च्यवानम् यातः) जिस प्रकार महारथी सारथि दोनों अश्वों को प्रेरणा करते हुए वेग से जाने वाले अश्वों द्वारा प्रयाण करते हैं उसी प्रकार उत्साह युक्त, जितेन्द्रिय हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों (बोधिन्मनसा) ज्ञानयुक्त चित्त वाले, (हवन-श्रुता) ग्राह्य उपदेश

श्रवण करने वाले, (रथ्या) उत्तम देह और आत्मा से युक्त, (इषिरा) प्रबल, उत्तम इच्छावान् होकर (च्यवानम्) ज्ञानवृद्ध (अद्वयाविनम्) दो भाव अर्थात् बाहर कुछ और भीतर कुछ इससे रहित, निष्कपट, निष्पक्षपात गुरु को (विभिः) कान्ति और गति से युक्त अवयवों सहित (नि याथः) नम्रतापूर्वक प्राप्त होवो। (माध्वी) मधुसंग्रही भ्रमरों के समान ज्ञान संग्रह करते हुए (मम हवं श्रुतम्) मेरा ग्राह्य उपदेश श्रवण करो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ वां नरा मनो युजोऽश्वासः प्रुषित-प्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

भा०—हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! (अश्वासः प्रुषित-प्सवः वयः सुम्नेभिः वां वहन्ति) जिस प्रकार अन्नादि खाने वाले, नाना रूप एवं इन्धन, तैल, जल, कोयला आदि को दग्ध करने वाले, वेगवान् अश्व, रथ यन्त्रादि वेगवान् होकर सुखों सहित तुम दोनों को दूर पहुँचा देते हैं उसी प्रकार (मनः-युजः) मन रूप रासों से जुते (अश्वासः) ये इन्द्रिय, प्राण गण (वयः) स्वयं कान्ति वा दीप्ति से युक्त होकर (वां) आप दोनों को (वीतये) सुख भोगने के निमित्त (सुम्नेभिः) सुखों सहित (वहन्तु) धारण करें अथवा, (माध्वी) अन्न, मधु आदिवत् ज्ञान संग्रही आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा उपदेश श्रवण करो।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

भा०—(अश्विनौ) हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इह) इस लोक में (आ गच्छतम्) आदर पूर्वक आइये। हे (नासत्या) परस्पर कभी असत्याचरण न करने वाले ! आप दोनों (मा वि वेनतम्) कभी विरुद्ध कामना न करो। आप दोनों (अर्यमा) स्वामी होकर (तिरः चित् वर्त्तिः) प्राप्त आजीविका के कार्य मार्ग को वा गृह को (अदाभ्या) अहिंसित,

अपीड़ित होकर (परि यातम्) जाओ। (मम हवम्) मेरे उपदेश को (माध्वी श्रुतम्) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर श्रवण करो।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

भा०—हे (शुभस्पती अश्विना) कल्याणकारी व्यवहार के पालन करने वाले जितेन्द्रिय, उत्तम अश्व रथ के स्वामी स्त्री पुरुषो! (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संगति द्वारा करने योग्य यज्ञ में (अदाभ्या) कभी पीड़ित न होकर (युवं) तुम दोनों (जरितारं) उत्तम उपदेष्टा (अवस्युं) ज्ञान और रक्षा करने वाले (गृणन्तं) उपदेश करते हुए विद्वान् के (उप) समीप (भूषथः) प्राप्त होवो। (माध्वी मम हवम् श्रुतं) मधुवत् अन्न और ज्ञान के संग्रही होकर मेरे वचन श्रवण करो।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ९।१६

भा०—गृहस्थ-रथ। (उषा रुशत्-पशुः अभूत्) जिस प्रकार उषा चमकते जगत् का रूप दिखाने वाले किरणों से युक्त होती है और (अग्निः अधायि) विद्वानों द्वारा अग्नि आधान किया जाता है उसी प्रकार जब (उषा) कान्तिमती, कामना करने वाली स्त्री, (रुशत्-पशुः) दीप्ति युक्त, तेजस्वी, उत्तम पशुसम्पदा से युक्त, अथवा उत्तम अंगों वाली होती है और (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, नायक पुरुष (रुशत्-पशुः) तेजस्वी अंगों वाला हो तब वह (ऋत्वियः) ऋतु काल में गमन करता (अधायि) गर्भ रूप से स्थित हो। हे (वृषण्वसु) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष एवं उसके अधीन रहने वाली स्त्री (वां) तुम दोनों का (रथः) सुख-पूर्वक रमण अर्थात् उपभोग करने योग्य गृहस्थ रूप रथ (अमर्त्यः) कभी न नाश होने योग्य रूप से (अयोजि) रथवत् ही जुता रहे। हे (दस्रौ) दर्शनीय, हे कर्म करने वाले, हे परस्पर दुःख नाशक। आप दोनों (माध्वी

मम हव ुतम्) उत्तम अन्न, मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर मेरे उपदेश श्रवण करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[७६]

अत्रिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः उषसाम् अनीकम्) अग्निमय सूर्य उषाओं के मुखवत् प्रकाशित होता है और (विप्राणाम्) विद्वान् पुरुषों की (देवयाः) ईश्वर को लक्ष्य कर निकलने वाली (वाचः) वाणियां (उत् अस्थुः) उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत् एक गृहस्थ रथ पर स्थित स्त्री पुरुषो ! (उषासम्) शत्रुओं के दल को दग्ध करने और राष्ट्र को वश करने वाली सेनाओं के (अनीकम्) समूह को प्राप्त कर उनका प्रमुख (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (आ भाति) सूर्यवत् प्रकाशित होता है। उस समय (विप्राणां) विद्वानों की (देवयाः वाचः) तेजस्वी, दानशील, विजिगीषु को लक्ष्य करके निकलने वाली वाणियां (उद् अस्थुः) उठती हैं। अतः हे स्त्री पुरुषो ! (नूनं) निश्चय से (रथ्या) रथ पर स्थित महारथियों के समान आप दोनों (अर्वाञ्चा) अश्व के बल से जाने वाले होकर (इह) इसी राष्ट्र में (पीपिवांसम्) अच्छी प्रकार बढ़ने, अन्यों को बढ़ाने वाले (घर्मम्) तेजस्वी, सुखों को सेचन करने में समर्थ, मेघ वा सूर्यवत् निष्पक्ष, दानशील विद्वान् पुरुष वा गृह्य यज्ञ, प्रभु वा राजा को (अच्छ यातम्) प्राप्त होवो।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥

भा०—(अश्विना) नाना उत्तम पदार्थों के भोक्ता जनो ! इन्द्रियों के

स्वामियो ! रथि सारिथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (संस्कृतं) उत्तम रीति से किये कार्य को (न प्र-मिमीत:) नहीं विनाश करते। वा, आप दोनों उत्तम संस्कार युक्त पुत्रादि को (न प्रमिमीत:) क्यों नहीं उत्पन्न करते ? (नूनम्) निश्चय से आप लोग (इह) इस लोक में (अन्ति) एक दूसरे के अति समीप (गमिष्ठा) प्राप्त होकर (उपस्तुता) प्रशंसित होते हो। (दिवा) दिन के समय (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (अवसा) उत्तम रक्षा, ज्ञान और प्रीति के साथ (आ-गमिष्ठा) एक दूसरे के पास आने वाले होवो और (दाशुषे) दानशील विद्वान् के उपकार के लिये (अवर्तिं प्रति) अन्न, आजीविका और मार्गादि से रहित बेचारे पुरुष के प्रति (शम्भविष्ठा) कल्याण करने में समर्थ होवो।

उता यांतं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (संगवे) गौवों के दोहन काल में एकत्र आ जाने वा किरणों के प्राप्त होने के सायं समय में और (अह्नः प्रातः) दिन के प्रातः समय में वा (मध्यन्दिने) दिन के मध्य काल, दोपहर में वा (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के ऊपर आ जाने पर अर्थात् (दिवा-नक्तम्) दिन और रात्रि सब समय (शं-तमेन) अत्यन्त शान्तिदायक (अवसा) ज्ञान, प्रेम और रक्षासाधन सहित (आ यातम्) आया जाया करो। (इदानीम्) अभी भी (पीतिः) पान, अन्नादि का उपभोग वा रक्षासाधन (न ततान) नहीं हुआ है। अर्थात् सदा ही उत्तम रक्षा साधन से युक्त रहो, कभी भी रक्षा का भरोसा करके बेपरवाह मत होवो।

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्व रथादि के स्वामी स्त्री पुरुषो !

(वां) आप दोनों का (हि) निश्चय से (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञान और प्रकाश में वा उत्तम भूमि में रहने का (स्थानम्) स्थान और उसमें ही (ओकः) तुम्हारा रहना हो, (इमे गृहाः) ये गृहस्थाश्रम को धारण करने वाले पुरुष स्त्रियें भी उत्तम ज्ञान, प्रकाश वाले भूभाग में रहें। (इदं दुरोणम्) और यह गृह (प्रदिवि) उत्तम, ऊंची भूमि और उत्तम प्रकाश में ही दुर्गवत् हो। आप दोनों (बृहतः दिवः) बड़े भारी आकाश से (इषम्) वृष्टि को और (बृहतः दिवः इषम्) बड़े तेजस्वी सूर्य से प्रेरक बल, जीवन को और (बृहतः पर्वतात्) बड़े भारी मेघ से (इषम्) वृष्टि को और (अद्भयः इषम् ऊर्जं) अन्तरिक्ष और जलों से अन्न और बल पुष्टि को (वहन्ता) प्राप्त करते और कराते हुए (नः आयातम्) हमें प्राप्त होवो।

सम॒श्विनो॒रव॑सा नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒राना विश्वा॑न्यमृता॒ सौभ॑गानि ॥५।१७॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) विद्याओं को जानने वाले, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के (नूतनेन) सदा नवीन, रमणीय (मयोभुवा) सुखप्रद (अवसा) ज्ञान, रक्षा वा प्रेम से और (सु-प्र-णीती) उत्तम, प्रेम व्यवहार और नीति से (सं गमेम) संगति लाभ करें। वे दोनों (नः) हमें (रयिम्) ऐश्वर्य, (उत वीरान्) वीर पुत्रों, (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) उत्तम जलों, अन्नों, अविनाशी, दीर्घ जीवनों और न नष्ट होने वाले (सौभगानि) उत्तम ऐश्वर्यों को (आ वहतम्) प्राप्त करें, करावें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७७]

अत्रिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रा॒त॒र्यावा॑णा प्रथ॒मा य॑जध्वं पु॒रा गृध्रा॒दर॑रुषः पिबातः।
प्रा॒तर्हि य॒ज्ञम॒श्विना॑ द॒धाते॒ प्र शं॑सन्ति क॒वयः॑ पूर्व॒भाजः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! विद्वान् पुरुषो! जो सभा-सेना के अध्यक्ष जन (अररुषः) अदानशील वा अति क्रोधी और (गृध्रात्) लोभी पुरुष

राष्ट्र की (पिबातः) रक्षा करते हैं वे उन (प्रातर्यावाणा) प्रातः काल, कार्य के प्रारम्भ में ही उपस्थित होने वाले (प्रथमा) सर्व प्रथम प्रधान दो पुरुषों को (यजध्वम्) आदर भाव से प्राप्त होवो। (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी वा जितेन्द्रिय दोनों (प्रातः यज्ञं) प्रातः काल में नित्यकर्म रूप यज्ञ के समान ही सबसे पूर्व प्रजापालन वा सुप्रबन्ध रूप यज्ञ को (हि) ही (दधाते) धारण करते और पालते हैं। यज्ञशील स्त्री पुरुषों के तुल्य ही उन दोनों की (पूर्वभाजः) पूर्व पुरुषाओं से उपार्जित ज्ञान को प्राप्त करने वाले (कवयः) विद्वान् पुरुष (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते और उनको उत्तम २ उपदेश करते हैं। उसी प्रकार जो स्त्री पुरुष (अररुषः गृध्रात्) अति क्रोधी और लोभी पुरुष से पृथक् रहकर (पुरा) जीवन के पूर्व काल में (पिबातः) ज्ञान का पान और व्रत का पालन करते हैं उन (प्रातर्यावाणा) जीवन की प्रभात वेला में गुरु के समीप जाने वाले स्त्री पुरुषों का सत्संग और आदर करो। वे दोनों प्रातः यज्ञ करते हैं, पूर्व ज्ञानरूप वेद के विद्वान् उनकी प्रशंसा करते हैं।

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम्।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

भा०—हे प्रजा जनो! (अश्विना) अश्वादि के नायकों और उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषों का (प्रातः) दिन के पूर्व काल में (सायम्) और सायं समय में भी (यजध्वम्) सत्संग करो और उनको (हिनोत) प्रसन्न, तृप्त करो, बढ़ाया करो। (देवयाः) विद्वान् पुरुषों के आदर योग्य पदार्थ (अजुष्टम् न अस्ति) प्रीति से सेवने के अयोग्य (न) नहीं होता, प्रत्युत देवजन आदर से दिये को सदा प्रेम से स्वीकार करते हैं (उत) और जो (अस्मत्) हमसे (अन्यः) दूसरा कोई भी (यजते) उत्तम ज्ञान दान करता है और (वि अवः च) विशेष रूप से हमें प्रेम पूर्वक अन्नादि देता या तृप्त करता है वह भी (पूर्वः पूर्वः) हमसे पूर्व २ अर्थात् वयस् और

विद्या में वृद्ध पुरुष भी (यजमानः) दान सत्संग यज्ञादि करने वाला (वनीयान्) अति उत्तम रीति से सेवा और आदर करने योग्य है ।

हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (हिरण्य-त्वङ्) सुवर्ण या लोह के आवरण से युक्त, दृढ़ (मधुवर्णः) मधु के समान चिकने, सुन्दर रंग वाले (घृतस्नुः) तेल आदि स्निग्ध पदार्थ से शुद्ध, नित्य स्वच्छ, (पृक्षः वृहत्) अन्न आदि पदार्थों को ले जाने वाला, बड़ा (रथः) रथ (वा वर्त्तते) आप दोनों के प्रयोग में आवे । उसमें (मनोजवाः) मन के संकल्प-मात्र से वेग से जाने वाले, स्वल्प प्रयास से ही अति शीघ्र चलने वाले (वातरंहाः) वायु के वेग से युक्त अश्व, यन्त्रादि हों । (येन) जिस रथ से आप दोनों (विश्वा) समस्त (दुरितानि) दुर्गम स्थानों और कष्टों को (अति याथः) पार करने में समर्थ होवो ।

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष, (नासत्याभ्याम्) कभी असत्य व्यवहार न रखने वाले स्त्री पुरुषों के लिये (भूयिष्ठं) बहुत अधिक और (चनिष्ठं) उत्तमोत्तम अन्न (विवेष) प्रदान करता है और (वि-भागे) विविध प्रकार से विभक्त करने के निमित्त (पित्वः) अन्न का (ररते) दान करता है (सः) वह (शमीभिः) अपने शान्तिजनक कर्मों से (अस्य) इस राष्ट्र के (तोकम्) पुत्र के समान प्रजाजन का (पीपरत्) पालन करता है और (अनूर्ध्वभासः) ऊपर को उठने वाली दीप्तियों व अग्नि आदि से रहित, अथवा अतेजस्वी, अल्पदीप्ति अग्निवत् स्वल्प शक्ति वाले दीन जन वा राष्ट्र के (सदम्) प्राप्त दुःख वा नाशकारी कष्ट को (इत्) ही (तुतुर्यात्) नाश किया करे ।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सूक्त ७६ का ५ वां मन्त्र। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७८]

सप्तव भ्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते। ७, ९ गर्भस्राविणी उपनिषत् ॥ छन्दः—१, २, ३ उष्णिक्। ४ निचृत्-त्रिष्टुप्। ५, ६ अनुष्टुप्। ७, ८, ९ निचृदनुष्टुप् ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (इह) इस गृहस्थाश्रम में रथी और सारथि के समान (आगच्छतम्) आया करो। हे (नासत्या) कभी असत्याचरण और अधर्म युक्त कार्य न करते हुए, (मा वि वेनतम्) एक दूसरे के विपरीत कभी इच्छा मत करो। प्रत्युत (सुतान् उप) अपने उत्पन्न पुत्रों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हंसौ इव) हंस हंसिनी युगल के समान (आ पततम्) आया करो।

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथि वा दो अश्वारोहियों के समान एक साथ मार्ग चलने वाले वर वधू, स्त्री पुरुषो! जिस प्रकार (यवसम्) घास, यव आदि धान्य को लक्ष्य करके (हरिणौ इव गौरौ इव) दो हरिण और दो गौर मृग जाते हैं और जिस प्रकार जलों की ओर (हंसौ इव) दो हंस जाते हैं उसी प्रकार (सुतान् उप आ पततम्) पुत्रों ऐश्वर्यों एवं ओषधिरसों को लक्ष्य कर आप दोनों भी जाया आया करो।

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे

(वाजिनीवसू) ज्ञान-ऐश्वर्य बल आदि से युक्त कर्म करने में निष्ठ आप दोनों (इष्टये) देवपूजन, दान, सत्संग मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सौहार्द, सत्संग आदि का (जुषेथाम्) सेवन करो। (सुतान् उप हंसौ इव आ पततम्) उत्पन्न पुत्रों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये दो हंसों के समान सहयोगी होकर एक साथ मार्ग पर जाया करो।

अत्रिर्यद्वांमवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥१९॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (यत्) जो (अत्रिः) तीनों प्रकार के दुःखों वा दोषों से रहित, वा (अत्रिः) इसी राष्ट्र या आश्रम का वासी जन वा शिष्य (नाधमाना इव योषा) याचना, आशा वा कामना करती हुई, स्त्री के समान अति विनीत और तन्मय होकर (ऋबीसम् अवरोहन्) तेजो रहित, सरल रूप से झुककर, विनम्र होकर (वाम् अजोहवीत्) आप दोनों को बुलावे, तब आप दोनों (श्येनस्य चित्) बाज के से (जवसा) वेग से (नूतनेन) नूतन (शं-तमेन) अति शान्तिदायक रूप से (आ गच्छतम्) प्राप्त होइये। (ऋबीसम्) अपगतभासम् अपहृतभासम्, अन्तर्हितभासं, गतभासं वा ॥ निरु० ६। ६। ७॥ स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे स्त्री पुरुषो! (वाम्) आप दोनों में से जो (अत्रिः) भोक्ता पुरुष है वह (ऋबीसं) दीपक से प्रकाशित गृह को प्राप्त हो और (योषा) स्त्री भी (नाधमाना इव) ऐश्वर्य या पुत्रादि की कामना करती हुई (अजोहवीत्) पति को स्वीकार करे। वे दोनों (श्येनस्य चित् जवसा) शान्तियुक्त नये प्रेम से गृह में आकर मिलें। एकोनविंशो वर्गः ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य जलों, शिष्यों के स्वामी, मेघ वा सूर्यवत् ऐश्वर्यों के स्वामिन्! हे महावृक्षवत् आश्रित याचक, से क

जन को पालन करने वाले ! (सूष्यन्त्याः इव) प्रसव करने वाली स्त्री का (योनिः) योनि जिस प्रकार प्रसव-काल में विवृत होकर सुरूप बालक को जन्म देता है, हे आचार्य ! आप भी इसी प्रकार (वि जिहीष्व) विवृत होवो और शिष्य रूप पुत्र को आप विद्या-गर्भ में रखकर गुरुगृह से जन्म देते हो। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् आचार्य उपदेशक जनो ! (मे) मुझे (हवं) उत्तम देने योग्य ज्ञानोपदेश (श्रुतं) श्रवण कराओ और (सप्त-वध्रिम्) सातों ज्ञान मार्गों में बंधे हुए अर्थात् आंख, नाक, मुख, कान, इन सातों द्वारों को वश करने वाले मुझको (वि मुञ्चतम्) बन्धन से मुक्त करो वा उपनयन द्वारा स्वीकार करें। जो विद्यार्थी उक्त सातों इन्द्रियों पर वश करे अथवा वह आंख, नाक, कान, त्वचा वाणी और मन इन सातों इन्द्रियों पर वश करके उनको 'वध्रि' अर्थात् उद्वेगरहित करके विद्याभ्यास करे, वह 'सप्त-वध्रि' है। जिस प्रकार वधिया बैल निर्मद शान्त, सरल होकर विनय से रहता है उसी प्रकार शिष्य भी इन सातों इन्द्रियों को दमन करके विनीत रहे। गर्भ में आने वाले जीव के सातों प्राण निर्बल, प्रसुप्त रूप से होते हैं, ऐसे बीज रूप जीव को स्त्री-पुरुष धारण करें।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में व्याप्त चित्त वालो अथवा विद्या में व्याप्त होने वाले शिष्य जनों के स्वामी, पालक, अध्यापक, आचार्य जनो ! (भीताय) संसार के संकटों से भयभीत हुए, (नाधमानाय) शरण की याचना करते हुए, (सप्त-वध्रये) सातों उच्छृंखल इन्द्रियों को वधिया बैल के समान शान्त, विनीत रखने वाले, (ऋषये) ज्ञान को जानने के लिये उत्सुक विद्यार्थी के उपकार के लिये (युवं) आप दोनों (मायाभिः) बुद्धियों तथा उपदेशमय, शब्दमय वाणियों से (वृक्षम्) उच्छेद करने योग्य अज्ञान को (सम् च) अच्छी प्रकार से और (वि च) विविध प्रकार से (अचथः) दूर करो। अथवा (वृक्षं) वृक्षवत् स्थिर भूमि पर बैठे हुए मुझको

(सम् अचथः) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और (वि अचथः) विशेष रूप से ग्रहण करो। (२) जन्मान्तराकांक्षी जीव को उत्पन्न करने के लिये स्त्री पुरुष दोनों नाना स्नेहयुक्त क्रियाओं से गृहस्थ आश्रम को प्रेमपूर्वक लता जैसे वृक्ष को प्राप्त हो वैसे परस्पर मिलें। (इस सूक्त के १, २, ३ मन्त्रों में पुत्रों को लक्ष्य कर वर वधू दोनों को मिलकर ज्ञान का उपदेश है, आचार्य के प्रसवकारिणी माता के समान बालक शिष्य को उत्पन्न करने का वर्णन पूर्व मन्त्र में कहा है। अब बालक और शिष्य की उत्पत्ति दर्शाते हैं।)

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥ ७॥

भा०—७-९ गर्भस्राविणी उपनिषत्। (यथा) जिस प्रकार से (वातः) वायु (सर्वतः) सब ओर से (पुष्करिणीं) पोखरिणी वा कमलिनी को (समिङ्गयति) अच्छी प्रकार कंपाता है उसी प्रकार शरीर का अपान वायु गर्भस्थ बालक को (पुष्करिणीं) पुष्ट करने वाली जल भरी थैली वा आंवल को कम्पित करता है। (एव) इसी प्रकार से (गर्भः) गर्भगत बालक (एजतु) कांपे, शनैः २ स्पन्दन करे और इसी प्रकार (दशमास्यः) वह दश मास में पूर्ण होकर (निः एतु) बाहर निकल आवे। आचार्य 'वात' है, पोषक वाणी पुष्करिणी माता है, गृहीत शिष्य गर्भ है। दश मास तक पुष्ट बालकवत् दशों प्राणों वा ज्ञानमय सांग चारों वेद में पूर्ण, सर्वाङ्ग बालक 'दशमास्य' है।

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा॥ ८॥

भा०—(यथा वातः) जिस प्रकार वायु (एजति) वेग से चलता है, (यथा वनं) और जैसे 'वन' स्वयं वायु के झोकों से कांपता है वा जिस प्रकार (समुद्रः एजति) समुद्र कांपता है, (एव) उसी प्रकार हे (दश-मास्य) दश मास में परिपक्व होने वाले गर्भ! तू (जरायुणा सह) जेर के

साथ (अव इहि) नीचे आजा। गर्भ में अपान का बल, जल तथा बालक होते हैं, उनके तीन उपमान हैं—समुद्र, वन और वात।

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।

निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—(कुमारः) बालक (मातरि अधि) माता के भीतर अर्थात् माता के शरीर पर अपना विशेष प्रभाव रखता हुआ (दशमासान् शशयानः) दस मास तक सुखपूर्वक प्रसुप्त रूप से रहता हुआ (जीवः) जीवित रूप में (अक्षतः) किसी प्रकार की चोट, आघात, अंग-भंग को प्राप्त न होकर (जीवः) जीव (जीवन्त्याः अधि) जीती हुई माता से (निर आ एतु) बाहर आ जावे। इति विंशो वर्गः ॥

[७९]

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री। २, ३, ७ भुरिग्बृहती। १० स्वराड् बृहती। ४,५,८ पंक्तिः। ६, ९ निचृत्-पंक्तिः ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।

यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, पति और पुत्रों की प्रेम से कामना करने हारी! विदुषी स्त्री! (अद्य) आज, सदा तू (दिवित्मती) दीप्तियुक्त, ज्ञान, उत्तम व्यवहार और कान्ति, उत्तम पदार्थों की कामना से युक्त होकर (नः) हमें (महे राये) बड़े भारी ऐश्वर्य और प्राप्त करने योग्य उद्देश्य के लिये (बोधयः) जगाया कर। हे (अश्व-सूनृते) भोक्ता पति वा हृदय में व्यापक पुरुष के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी, 'अश्व' अर्थात् भोजन करने वालों को 'सूनृत' अर्थात् अन्न देने वाली वा 'अश्व' व्याप्त, हृदयंगम, महत्वयुक्त वाणी, अन्न आदि की स्वामिनी! हे (सुजाते) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध! माता पिता के उत्तम गुणों से युक्त! हे (वाय्ये) तन्तु सन्तान रूप से उत्तम सन्ततियों को

उत्पन्न करने हारी ! तु (सत्य-श्रवसि) सत्य अर्थात् सात्विक अन्न, सत्य-श्रवण योग्य ज्ञान और सत्य कीर्त्ति के निमित्त (यथाचित्) जैसे भी हो उस रीति से (नः अबोधयः) हमें सचेत कर । यह कान्त संमित उपदेश करने का वर्णन है । वाणी पक्ष में—(अश्वसूनृते) विद्या के मार्ग में वेग से जाने वाले विद्वान् की वाणी ! तू (नः) हमारे (सुजाते) उत्तम रीति से बाह्य आदि संस्कार में उत्पन्न पुत्र रूप (वाय्ये) शिष्य रूप से सन्ततिवत् उत्पन्न सत्य प्रतिज्ञ बालक में जैसे हो तू मातृवत् ज्ञान प्रदान कर ।

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषा के तुल्य एवं (दिवः दुहितः) कामनावान् पति की कामनाओं को पूर्ण करने वाली वा दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! वा दूर देशों में सेवादि द्वारा पति का हित करणी ! (या) जो तू (शौचद्रथे) कान्ति युक्त रथ वाले सूर्य व तेजस्वी एवं शुद्ध आत्मा वाले, शुद्ध कान्तियुक्त, रमणीय, (सुनीथे) उत्तम वाणी युक्त और उत्तम न्यायाचरण करने वाले पुरुष के अधीन (वि औच्छः) अपने गुणों को विविध प्रकार से प्रकट कर । हे (सहीयसि) अति सहनशीले ! हे (सत्यश्रवसि) सात्विक अन्न, सात्विक सत्य ज्ञान और यश से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु रूप से सन्तान उत्पन्न करने हारी ! हे (सु-जाते) उत्तम गुणों सहित उत्पन्न ! हे (अश्व-सूनृते) अश्ववत् बलवान् गृहस्थ रथ के सञ्चालक पति के प्रति उत्तम वाणी और अन्न प्रस्तुत करने वाली ! हे (सुनीथे) उत्तम वाणी और नीति व्यवहार तथा उत्तम मार्ग पर चलने हारी ! हे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त रमणीय सुन्दर रूप से युक्त, उत्तम रथ पर चढ़ने हारी वधू ! तू अपने अनुकूल (सुनीथे) उत्तम वाणी, व्यवहार और मार्ग पर चलने हारे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त देह वाले, तेजस्वी, उत्तम रथ पर स्थित, उत्तम रमणीय भव्य व्यवहारवान् (सहीयसि) अति सहनशील, बलवान् दृढ़, (सत्य-

श्रवसि) सत्यप्रतिज्ञ, सत्य ज्ञानवान्, कीर्त्तिमान् (वाज्ये) सन्तान उत्पादन करने में समर्थ (सुजाते) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध, अपने माता पिता के उत्तम पुत्र, (अश्वसूनृते) विद्याओं में पारंगत, विद्वानों तथा अश्ववत् भोक्ता राजा के समान उत्तम वाणी बोलने हारे पुरुष के अधीन रहकर और उसी के निमित्त (वि उच्छ) विविध प्रकार से अपने गुणों और कामनाओं को प्रकट कर।

(इस मन्त्र में 'सुनिथे शौचद्रथे, सहीयसि, सत्यश्रवसि, वाज्ये, अश्वसूनृते' ये सब विशेषण पद विभक्ति श्लेष द्वारा दीपकालंकार से संबोधन रूप से स्त्री के प्रति तथा और आश्रय निमित्त रूप से पति के प्रति लगते हैं। इस प्रकार योग्य स्त्री को तदनुरूप पति प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। यही रीति समस्त सूक्त में समझनी चाहिये।)

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) कामनावान्, तेजस्वी पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा सूर्यवत् उत्तम विद्वान् की कन्ये! तू (भरद्-वसुः) धन सम्पदा को गृह में लाने हारी वा पितृगृह से ले जाने (भरद्-वसुः) बसाने वाले पति आदि का मातृवत् भरण पोषण करने हारी होकर (नः) हमारे आगे (सा) वह तू (वि उच्छ) उषावत् अपने गुणों का प्रकाश कर। (यः उ) जो (सहीयसि) सत्यश्रवसि, वाय्ये, सुजाते, अश्वसूनृते (वि औच्छः) हे सहनशील, सत्यप्रतिज्ञे, उत्तम सन्तानोत्पादक! हे सुपुत्रि! हे शुभवाणि! तू बलवान् सत्य प्रतिज्ञ, उत्तम सन्ततिजनक, शुभगुणवान् और विद्वान् पुरुष के अधीन रहकर (वि औच्छः) विशेष रूप से गुणों को प्रकट कर। अर्थात् उत्तम कन्या को अपने गुणों की परीक्षा देना आवश्यक है।

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

भा०—हे (विभावरि) विशेष कान्ति से युक्त! उषावत् सुन्दरि! (सुजाते) उत्तम कन्ये! हे (अश्वसूनृते) उत्तम वाणी बोलने हारी! अश्ववत् दृढ़ पुरुष के प्रति सुख से गमन करने हारी (ये) जो (बह्नयः) अग्निवत् तेजस्वी, गृहस्थ को वहन करने में समर्थ पुरुष (स्तोमैः) उत्तम प्रशंसनीय वचनों से (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर (गृणन्ति) बात करते हैं। हे (मघोनि) उत्तम धनों की स्वामिनि! वे भी तुझे प्राप्त कर (मघैः) ऐश्वर्यों से (सुश्रियः) उत्तम शोभा, लक्ष्मीयुक्त और (दामन्वन्तः) दानशील तथा (सुरातयः) उत्तम मित्र, पुत्र और अभिलषित पदार्थ, द्रव्य आदि शुभ दान की इच्छा से युक्त हों। 'रातिः' मित्रमिति कपर्दी। पुत्र इत्येके अभिलषितार्थ इति सायणः।

यच्चिद्धि ते गुणा इमे छदयन्ति मघत्तये।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥२१॥

भा०—हे (सुजाते) सुपुत्रि! हे (अश्व-सूनृते) विद्वान् के तुल्य उत्तम वाणी बोलने हारी विदुषी! (यत् चित् हि) जो भी (ते गणाः) तेरे सेवक-जन (वष्टयः) नाना धनों की अभिलाषा करने वाले हैं (इमे) वे भी (अह्रयं राधः) लज्जा वा संकोच से रहित प्राप्त करने योग्य उत्तम धन (ददतः) देने वाले पुरुषों को (मघत्तये) उत्तम धन देने के लिये ही (परि च्छदयन्ति चित्) उनको आच्छादित करें, और उनकी (परिदधुः) सेवा, रक्षा वा पोषण करें। इत्येकविंशो वर्गः॥

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से युक्त उत्तम पुत्रि! (अश्वसूनृते) बलवान्, विद्वान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी! (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति! हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, सौभाग्यवति! (ये) जो (मघवानः) स्वयं सम्पन्न होकर (नः) हमें (अह्रया)

बिना लज्जा वा संकोच के प्राप्त करने योग्य (राधांसि) ज्ञान आदि धनों को (अरासत) दान करते हैं (एषु) उन (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में रहकर तू (वीरवत्) उत्तम पुत्रादि से युक्त (यशः) कीर्त्ति, अन्न, धन आदि को (आधाः) धारण कर ।

तेभ्यो॑ द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॒ उषो॑ मघो॒न्या व॑ह ।
ये नो॒ राधां॒स्यश्व्या॑ ग॒व्या भज॑न्त सू॒रयः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥७॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से प्रसिद्ध ! हे (अश्वसूनृते) विद्वानों के प्रति शुभ ज्ञानयुक्त वाणी बोलने और उनसे ग्रहण करने तथा उनको उत्तम अन्न देने हारी उत्तम विदुषि ! (ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (अश्व्या) अश्वों से युक्त और (गव्याः) गौओं से युक्त या अश्वों गौओं के हितकारी (राधांसि) धनों को (भजन्त) सेवन करते, उनको अपने व्यवहार में लाते हैं । हे (मघोनि) सौभाग्य लक्ष्मी वाली ! (उषः) हे कान्तियुक्त ! तू (तेभ्यः) उनको (बृहत्) बड़ा (द्युम्नं) धन और (यशः आ वह) यश प्राप्त करा ।

उ॒त नो॒ गोम॑ती॒रिष॒ आ व॑हा दुहितर्दिवः ।
सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ शु॒क्रैः शोच॑द्भिर॒र्चिभिः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ८

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणों से युक्त ! उत्तम पुत्रों की माता ! (अश्व-सूनृते) उत्तम पुरुषों के प्रति उत्तम वचन बोलने हारी ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् प्रिय पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी ज्ञानी पिता वा आचार्य की पुत्रि ! तू (सूर्यस्य) सूर्य की (शुक्रैः) शुद्ध (शोचद्भिः) कान्ति वाली, प्रकाशयुक्त (अर्चिभिः) कान्तियों और (रश्मिभिः) किरणों के साथ २ (शुक्रैः, शोचद्भिः, अर्चिभिः) शुद्ध कान्ति युक्त अग्नि ज्वालाओं से और पवित्र करने वाले सत्कारोचित जलों से (नः) हमारी (गोमतीः इषः) उत्तम दुग्ध आदि से युक्त अन्न और शुभ वाणी से युक्त उत्तम अभिलाषाओं को (आ वह) प्राप्त कर और करा ।

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ९

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणवती पुत्रि ! (अश्व-सूनृते) विद्वानों को उत्तम वाणी से सत्कार करने हारी ! हे (दिवः दुहितः) अन्नादि की कामना वाले याचकादि के मनोरथों को पूर्ण करने वाली वा गृहस्थ व्यवहार के लिये दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! तू (वि उच्छ) अपने गुणों को प्रकट कर और (अपः) गृह के आवश्यक कार्यों को (चिरं मा तनुथाः) देर लगाकर मत किया कर । (स्तेनं रिपुं) चौर शत्रु को (यथा) जिस प्रकार (सूरः तपाति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष सन्ताप देता है उसी प्रकार (त्वा इत्) तुझे भी (सूरः) तेजस्वी पुरुष (अर्चिषा) क्रोध आदि से (न तपाति) न पीड़ित करे ।

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि । या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (वि-भावरि) विशेष कान्ति से प्रकाशित ! (सु-जाते) शुभ गुणों से युक्त ! शुभ सन्तान वाली ! (अश्व-सूनृते) विद्वान् बलवान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी, अन्न देनेहारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती ! पापों को दग्ध कर देने हारी ! तू क्या (एतावद् वा इत् दातुम् अर्हसि) केवल इतना ही देने योग्य है ? (वा) अथवा (भूयः दातुम् अर्हसि) तू अधिक भी देने में समर्थ है । इसका विचार रख । (या) जो तू (उच्छन्ती) अपने सद्गुणों का प्रकाश करती हुई (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टाओं के लिये (न प्र-मीयसे) कभी मृत्यु वा विषाद को प्राप्त न हो । अर्थात् शक्ति से अधिक देने पर स्वयं पीड़ित न हो प्रत्युत शक्ति को देखकर ही दान आदि करे जिससे आगे भी दे सके । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[८०]

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् ॥
२ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेनं ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (विप्रासः द्युत-द्यामानं अरुणप्सुं स्वः आहवन्तीं देवीम् उषसं मतिभिः जरन्ते) विद्वान् पुरुष आकाश को चमकाने वाली, रंग लिये, प्रकाश को लाने वाली, तेजोयुक्त उषा, प्रभात वेला को प्राप्त कर (प्रति) प्रतिदिन स्तुतियों से भगवान् की स्तुति करते हैं उसी प्रकार (द्युत-द्यामानम्) कामनावान्, व्यवहारवित् तेजस्वी पति को अथवा इस पृथिवी को अपने गुणों से चमका देने वाली, (ऋतेन) सत्य ज्ञान, तेज और धनैश्वर्य से (बृहतीम्) बड़ी, सबको बढ़ाने वाली, (ऋतावरीम्) अन्न धनादि से सम्पन्न, (अरुणप्सुम्) लाल, तेजोयुक्त रूपवती (विभातीम्) विशेष गुणों से सबके मन को अच्छी लगने हारी, (देवीम्) विदुषी, दानशील, (स्वः आवहन्तीम्) ग्राह्य सुखों को प्राप्त कराने वाली, (उषसं) कान्तियुक्त, कमनीय, एवं पति आदि सम्बन्धियों को हृदय से चाहने वाली, स्त्री के प्रति (विप्रासः) विद्वान् लोग सदा ही (मतिभिः) स्तुतियों से (जरन्ते) प्रत्येक बात में उसकी प्रशंसा करते हैं ।

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥

भा०—(एषा उषा) यह प्रभात वेला जिस प्रकार (दर्शता) देखने योग्य होकर, (जनं बोधयन्ती) जन्तु मात्र को जगाती हुई (पथः सुगान् कृण्वती) मार्गों को सुगम, सुखदायक करती हुई (अग्रे) आगे २ बढ़ती जाती है उसी प्रकार (एषा) यह (उषा) कान्तिमती, कमनीय गुणों वाली, पति की कामना करने वाली उत्तम स्त्री भी (दर्शता) दर्शनीय रूप, गुणों से युक्त होकर (जनं बोधयन्ती) समस्त मनुष्यों को सन्मार्ग और

धर्म कर्मों का बोध कराती हुई मनुष्य या वृत पति के (पथः) जीवन के भावी मार्गों को (सुगान्) सुख पूर्वक गमन करने योग्य (कृण्वती) बनाती हुई (अग्रे याति) आगे २ चलती है। विवाह के अवसर पर स्त्री परिक्रमा में जो आगे २ जाती है वह भी पति के संकट मार्गों को मानो सुगम कर देने के लिये स्वयं उन पर प्रथम चलने का अभिनय करती है और जिस प्रकार उषा (बृहद्रथा) बड़े भारी रमणीय प्रकाश से युक्त, (बृहती) स्वयं बड़ी विस्तृत, (विश्व-मिन्वा) विश्व भर में व्याप्त होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (ज्योतिर्यच्छति) सबको प्रकाश देती है उसी प्रकार वह स्त्री भी (बृहद्-रथा) बड़े रथ पर चढ़कर पतिलोक को जाने वाली, वा (बृहद्-रथा) बड़े रमणीय, सुन्दर रूप और कर्म करने वाली, (बृहती) कुल को बढ़ाने वाली होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में मध्याह्न के पूर्व ही (ज्योतिः यच्छति) उत्तम अन्न प्रदान करे।

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे।
पथो रदन्ती सुवितार्य देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार उषा (अरुणेभिः गोभिः) लाल किरणों से (युजाना) संयोग करती हुई (रयिम् अप्रायु चक्रे) प्रकाश को स्थायी कर देती है और (सुविताय) सुख से जाने के लिये (पथः रदन्ती) मार्गों को चमकाती हुई (विश्ववारा विभाति) सबसे वरण योग्य होकर चमकती है उसी प्रकार (एषा देवी) यह विदुषी स्त्री भी (अरुणेभिः गोभिः) अपनी अनुराग युक्त वाणियों से (युजाना) सबका समाधान करती हुई, (रयिम्) गृह के ऐश्वर्य को (अप्रायु) कभी नष्ट न होने वाला (चक्रे) बनावे। वह (सुविताय) सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये (पथः) स्वयं उत्तम २ मार्गों को (रदन्ती) बनाती हुई (पुरु-स्तुता) बहुतों से प्रशंसित होकर (विश्व-वारा) सबसे वरण करने योग्य, सर्वप्रिय, सब संकटों का वारण करने और सबको अन्नादि विभाग करने वाली होकर (वि भाति) विविध प्रकार से सबको अच्छी लगे।

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (वि एनी भवति) विशेष रूप से श्वेत प्रकाश वाली होती है और वह (द्वि-बर्हा) रात्रि दिन दोनों से बढ़ने वाली, (पुरस्तात् तन्वं आविः कृण्वानः) आगे अपने विस्तृत प्रकाश को प्रकट करती हुई (ऋतस्य पन्थाम् अनु एति) तेज या सूर्य के मार्ग का प्रति दिन अनुगमन करती है और (न दिशः मिनाति) मानो दिशाओं को मापती सी है अथवा दिशाओं का भी नाश नहीं करती, उसी प्रकार (एषा) यह विदुषी स्त्री भी (वि-एनी) विशेष रूप से गुणों में शुभ्र (भवति) हो। वह (द्वि-बर्हाः) दोनों कुलों को बढ़ाने वाली हो। वह (पुरस्तात्) पति के आगे (तन्वम्) अपनी देह को (आविः-कृण्वाना) प्रकट करती हुई, पति के आगे २ चलती हुई (ऋतस्य) सत्याचरण एवं वेद के उपदिष्ट सत्य के (पन्थाम्) मार्ग का (अनु एति) अनुगमन करे। वह (साधु) भली प्रकार (दिशः प्र जानती इव) दिशाओं, कर्त्तव्यों को सभी प्रकार जानती हुई (ऋतस्य पन्थाम् न मिनाति) कर्म के मार्ग का नाश नहीं करे।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार प्रभात वेला (शुभ्रा) कान्ति में शुभ्र वर्ण की (नः दृशये ऊर्ध्वा अस्थात्) हमें दिखाने के लिये ऊंचे विराजती है और (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् तेज को दोहने और दूर तक फैलाने वाली (तमांसि अप बाधमाना) अन्धकारों को दूर करती हुई (ज्योतिषा आगात्) ज्योतिर्मय सूर्य के साथ आती है उसी प्रकार (एषा) यह (दिवः दुहिता) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ पिता की पुत्री एवं पति, भाई, पिता आदि की उत्तम कामनाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली और दूर देश में विवाहने योग्य, (उषा) कान्तिमती, कमनीय कन्या, (शुभ्रा)

सुशोभित रूपवाली होकर (तन्वः विदाना) अंगों को भली प्रकार साधती हुई (स्नाती) स्नान कर शुद्ध होती हुई (नः दृशये) हमारी दृष्टि को प्रसन्न करने के लिये (ऊर्ध्वा इव अस्थात्) उत्तम पद पर सदा आदर योग्य बनी रहे। वह (द्वेषः) द्वेष भावों तथा (तमांसि) दुःखकर शोकादि को भी (अप बाधमाना) दूर करती हुई दीपक के समान अन्धकारों को हटाती हुई (ज्योतिषा) विद्या और गुणों के प्रकाश सहित (आ अगात्) आवे।

एषा प्र॒तीची॑ दुहि॒ता दि॒वो नॄन्योषे॑व भ॒द्रा नि रि॑णीते॒ अप्सः॑।
व्यू॒र्ण्व॒ती दा॒शुषे॒ वार्या॑णि॒ पुन॒र्ज्योति॑र्युव॒तिः पू॒र्वथा॑कः ॥६॥२३॥

भा०—(दिवः दुहिता) प्रकाशों से जगत् को पूर्ण करने वाली, सूर्य की पुत्री के तुल्य उषा, (प्रतीची) अभिमुख आती हुई, (भद्रा) सुखप्रद, (अप्सः निरणीते) रूप को प्रकट करती है (वार्याणि वि ऊर्ण्वती) उत्तम प्रकाशों को धारे हुए, (पूर्वथा) पूर्व दिशा में (पुनः) बार २ (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है। उसी प्रकार (एषा) यह (दुहिता) कन्या वा पति आदि के प्रति प्रेम प्रकट करने वाली, जीवन में दूर तक हिताचरण करने वाली, दूर देश में विवाहित कन्या, (नॄन् प्रति योषा इव) मनुष्यों के प्रति युवती स्त्री के समान ही (अप्सः) उत्तम रूप को (नि रिणीते) प्रकट करे। वह (दाशुषे) अन्न, वस्त्र, हृदयादि देने वाले पति के लिये (वार्याणि) उत्तम पहनने योग्य वस्त्रों को (वि ऊर्ण्वती) विशेष रूप से धारण करती हुई अथवा (वार्याणि) वरण करने योग्य गुणों, वचनों को प्रकाशित करती हुई (युवतिः) नव युवति (पूर्वथा) प्रथम (पुनः ज्योतिः अकः) बार २ अग्नि, प्रकाश को प्रदीप्त करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[८१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ५ जगती। २ विराड् जगती। ४ निचृज्जगती। ३ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यु॒ञ्ज॒ते मन॑ उ॒त यु॑ञ्जते॒ धियो॒ विप्रा॒ विप्र॑स्य बृह॒तो वि॑प॒श्चितः॑।
वि होत्रा॑ दधे वयुना॒विदेक॒ इन्म॒ही दे॒वस्य॑ सवि॒तुः परि॑ष्टुतिः ॥१॥

भा०—परमात्मा का वर्णन। (विप्राः) विद्वान् लोग (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) स्तुत्य, ज्ञानवान्, अनन्त विद्या के सागर (विप्रस्य) विशेष रूप से जगत् में पूर्ण, परमेश्वर में (मनः युञ्जते) मन को योग द्वारा लगाते हैं और वे (धियः) अपने बुद्धियों, कर्मों को भी उसीसे (युञ्जते) जोड़ते हैं। वह (एकः इत्) अकेला ही (वयुनवित्) समस्त ज्ञानों, लोकों को जानने और धारण करने वाला, (होत्राः विदधे) समस्त वाणियों को धारण करता, वेद वाणियों का प्रकाश करता, तथा जगत् की धारक शक्तियों को विशेष रूप से धारण करता है। (देवस्य) उस सर्वप्रकाशक (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर की (मही) बड़ी भारी (परिस्तुतिः) स्तुति, महिमा है।

अथवा—['होत्राः' इति 'विप्राः' इत्यस्य विशेषणम्।] ज्ञानादि के देने और लेने वाले विद्वान् भी मन, ज्ञान और कर्मों का सम्बन्ध उसी प्रभु से करते हैं। उसीके निमित्त संकल्प विकल्प, तर्क करते, ज्ञान प्राप्त करते, यज्ञ, दानादि करते हैं। अथवा—[होत्रा, इति वाङ्नाम।] वे विद्वान् उस प्रभु के वर्णन में ही (होत्राः युञ्जते) अपनी वाणियों का प्रयोग करते हैं। अथवा—[विप्राः विपश्चितः बृहतः विप्रस्य मनः युञ्जते, धियः युञ्जते होताश्च युञ्जते। एक इत् वयुनवित् मनो विदधे, धियो विदधे, होत्राः विदधे] विद्वान् लोग उस महान् ज्ञानवान् प्रभु के ज्ञानमय मन के साथ अपना मन, उसकी धारणावती बुद्धियों के साथ अपनी बुद्धियों और उसके अनुकरणीय महान् कर्मों के साथ अपने कर्मों का योग करें, परस्पर अनुकूल करें। वही समस्त ज्ञानों, बुद्धियों, वाणियों और कर्मों का विधान करता है। उस सर्वोत्पादक की ही बड़ी महिमा वा उपदेश है।

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑ मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्योऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥२॥

भा०—(कविः) परमज्ञानवान् परमेश्वर (विश्वा रूपाणि) समस्त

रूपवान् पदार्थों को (प्रतिमुञ्चते) प्रतिक्षण धारण करता है। वह ही (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् समस्त जीवों के हित के लिये (भद्रं) सुखजनक, कल्याणमय जगत् को (प्र असावीत्) उत्पन्न करता है। वह ही (सविता) समस्त जगत् का उत्पादक पिता (नाकम् वि अख्यत्) दुःख से रहित सुख वा सूर्य को प्रकट करता है, वह (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ, वरने योग्य, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा (उषसः प्र-याणम् अनु) उषाकाल के गमन के पश्चात् उगने वाले सूर्य के समान और (उषसः) शत्रु को दग्ध करने वाली सेना के प्रयाण के पीछे सेनापति वा सिंहासन पर विराजने वाले सम्राट् के समान (उषसः) पापों को भस्म कर देने वाली विशेष प्रज्ञा के उत्तम रीति से प्राप्त होने के अनन्तर उत्तरोत्तर (विराजति) हृदय में प्रकाशित होता है।

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा।
यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता महि॒त्व॒ना ३

भा०—(यस्य) जिस (देवस्य) सर्वप्रकाशक, तेजस्वी, सब सुखों के देने वाले परमेश्वर के (प्र-याणम्) उत्तम प्राप्तव्य और सबके संचालक (महिमानम्) महान् पराक्रम का (अन्ये देवाः) और समस्त विद्वान् एवं नाना दिव्य पदार्थ एवं कामना करने वाले मनुष्य (ओजसा) बल पराक्रम से (अनु ययुः) अनुगमन करते हैं (यः) जो (एतशः) शुभ्र, शुक्ल वर्ण वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापक (देवः) सर्वप्रकाशक, (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (महित्वना) महान् सामर्थ्य से (पार्थिवानि) पृथिवी के समस्त पदार्थों और (रजांसि) अन्तरिक्ष और आकाश के समस्त लोकों को (वि-ममे) जानता और बनाता है। (सः एतशः) वही सर्वव्यापक, तेजोमय, उपासना योग्य है। (२) जिस सेनापति वा मुख्य नायक राजा के पयान अनन्तर अन्य विजिगीषु सैनिक वा सामन्त चलते हैं जो समस्त पार्थिव ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है वह सामर्थ्य से ही देव, सूर्यवत् तेजस्वी (एतशः) महारथी, वा शुक्ल वर्णवान्, शुभकर्मा, सर्वगुण भूषित है।

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

भा०—(उत) और हे (सवितः) जगत् के उत्पन्न करने हारे प्रभो! तू (त्रीणि रोचना) तीनों, प्रकाशमान् सूर्य, विद्युत, अग्नि इनमें (यासि) व्याप्त है, तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ भी (सम् उच्यसि) विद्यमान है। (उत) और तू ही सूर्यवत् (रात्री) महाप्रलय रात्रि को (उभयतः परीयसे) दोनों ओर से व्यापता है, उसके आदि और अन्त में अर्थात् जगत् का उत्पादक और संहारक भी तू ही है। (उत) और तू ही हे (देव) सर्वप्रकाशक! सर्वदातः! (धर्मभिः) जगत् के धारक बलों, कानूनों और नियमों से राजा के तुल्य (मित्रः भवसि) सबका स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने हारा है।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः। उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ५।२४

भा०—हे (देव) देव! सर्व सुखों के देने हारे! तेजोमय! सर्व प्रकाशक! (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही (प्र-सवस्य) इस संसार को उत्पन्न करने के लिये (ईशिषे) पूर्ण समर्थ है। (उत) और (त्वम् एकः इत् यामभिः पूषा भवसि) तू अकेला ही, सब नियमों द्वारा सबका पोषक हो रहा है। (उत) और (इदं) इस समस्त (भुवनम्) लोक को (विराजसि) प्रकाशित करता है, विविध रूप से उस पर राजा के तुल्य शासक है। हे (सवितः) सबके उत्पादक प्रभो! (श्याव-अश्वः) ज्ञानवान् आत्मा वाला, अथवा प्रदीप्त किरणों वाला सूर्य भी (ते) तेरे (स्तोमम् आनशे) स्तुति योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[८२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ सविता देवता॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्। २, ४, ९ निचृद्गायत्री। ३, ५, ६, ७ गायत्री। ८ विराड्गायत्री॥ नवर्चं सूक्तम्॥

तत्स॑वि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम् ।
श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं॒ तुरं॒ भग॑स्य धीमहि ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम (सवितः) सबके उत्पादक (देवस्य) सर्व-प्रकाशक, सर्वप्रद, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, परमेश्वर के (तत्) उस सर्वोत्तम (भोजनम्) पालन और भोग्य ऐश्वर्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें और (भगस्य) सकल ऐश्वर्य युक्त, सर्व सेवनीय उस प्रभु के (श्रेष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (सर्वधातमम्) सबसे अधिक धारक पोषक (तुरं) अविद्यादि दोषनाशक बल को (धीमहि) धारण करें ।

अस्य॒ हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम् ।
न मि॒नन्ति स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य सवितुः) इस सर्वैश्वर्यवान्, सर्वजनक प्रभु के (स्वयशः-तरम्) अपने ही सर्वोत्कृष्ट यश और वीर्य वाले (प्रियम्) अतिप्रिय (स्वराज्यं) राज्य के समान अपने तेज को (कत् चन) कोई भी, कभी भी (न मिनन्ति) नहीं नाश कर सकते हैं ।

स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ।
तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—जो (सविता) सर्वोत्पादक (भगः सन्) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु है वह (दाशुषे) दानशील दाता पुरुष के हितार्थ (रत्नानि) नाना रमण करने योग्य ऐश्वर्यों को (सुवाति) प्रदान करता है (तं) उस (भागं) सेवा करने योग्य, भजनीय एवं भग अर्थात् ऐश्वर्यों के स्वामी (चित्रम्) अद्भुत आश्चर्यकारी को लक्ष्य करके हम (ईमहे) याचना करते हैं ।

अ॒द्या नो॑ देव सवितः प्र॒जाव॑त्सावीः॒ सौभ॑गम् ।
परा॑ दु॒ष्वप्न्यं॑ सुव ॥ ४ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (देव) ज्योतिर्मय ! (नः) हमें (सौभगम्) उत्तम समृद्धि, (प्रजावत्) प्रजा के समान (सावीः) प्रदान कर, हे

(सवितः) सर्वोत्पादक ! (नः) हमारे (दुः-स्वप्न्यं) बुरे स्वप्न आने के कारण को (परा सुव) दूर कर।

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो ! हे (देव) सर्व सुखों के दातः ! परमेश्वर ! (विश्वानि दुरितानि) सब दुःखों को (परा सुव) दूर करो और (यद् भद्रं) जो कल्याणकारक सुखजनक, हो (तत् नः आ सुव) वह हमें प्रदान करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अना॑गसो अदि॑तये दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे।
विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (देवस्य सवितुः) दानशील, सर्वप्रकाशक, तेजस्वी (सवितुः) सूर्यवत् सर्वोत्पादक प्रभु के (सवे) परमैश्वर्यरूप शासन में रहकर (अदितये) माता, पिता, पुत्र, बन्धु आदि सम्बन्धी जन तथा भूमि आदि के हितार्थ (अनागसः) अपराध एवं पापाचरण से रहित होकर (विश्वा वामानि) सब प्राप्त करने, विभाग करने और दान करने योग्य ऐश्वर्यों को (धीमहि) धारण करें।

आ वि॒श्वदे॑वं॒ सत्प॑तिं सू॒क्तैर॒द्या वृ॑णीमहे।
स॒त्यस॑वं सवि॒तार॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (विश्वदेवं) विश्व के प्रकाशक, सबके दाता, सर्वोपास्य, समस्त शुभ गुण धारक, सर्वकाम्य, सर्वविजयी, (सत्पतिं) समस्त सज्जनों, सत्पदार्थों के पालक (सत्यसवं) सत्यैश्वर्य युक्त, (सवितारम्) सर्वोत्पादक पिता परमेश्वर की (आ वृणीमहे) सब प्रकार से भक्ति करें।

य इ॒मे उ॒भे अह॑नी पु॒र एत्यप्र॑युच्छन्।
स्वा॒धीर्दे॒वः स॑वि॒ता ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता उभे अहनी अप्रयुच्छन् पुरः एति) सूर्य दिन रात्रि दोनों के पूर्व प्रमादरहित होकर आता है उसी प्रकार (सविता)

सर्वोत्पादक परमेश्वर (देवः) सर्वप्रकाशक, सर्वसुखदाता (सु-आधीः) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति में, मातृगर्भ में पिता के समान अव्यय बीज का आधान करने वाला प्रभु (इमे) इन (अहनी) कभी नाश न होने वाले जीव और प्रकृति (उभे) दोनों अनादि पदार्थों के (पुरः) पूर्व ही (अप्रयुच्छन्) प्रमाद-रहित सर्व साक्षी होकर (एति) व्याप्त रहता है। वही परमेश्वर उपासना योग्य है।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (इमा) इन (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए स्थावर और जंगम जीवों को (श्लोकेन) विद्वान् उपदेष्टा के समान, वेद वाणी द्वारा (आ श्रावयति) ज्ञानोपदेश करता है और (प्र सुवाति) उत्तम रीति से आचार्यवत् उनको उत्तम जन्म देता है वही (सविता) 'सविता', उत्पादक, पिता कहाने योग्य है। इति षडविंशो वर्गः ॥

[८३]

अत्रिर्ऋषिः । पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती । ५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १० भुरिक् पंक्तिः । ९ निचृदनुष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (तवसं) बलवान् (पर्जन्यं) शत्रुओं को पराजय करने और मेघ के तुल्य प्रजाओं को समृद्धि सुखों से तृप्त और जनों का हित करने वाले पुरुष के (स्तुहि) गुणों का वर्णन कर और (अच्छ वद) उसका उपदेश कर जो मेघ के समान संसार को (नमसा) अन्न से और शासन दण्ड से (विवास) विविध प्रकार से बसाता है, जो (वृषभः) बैल, सांड के समान बलवान्, वर्षण-

शील मेघ के तुल्य (कनिक्रदत्) गर्जता और (जीरदानुः) जलवत् जीवनसाधन प्रदान करता हुआ (ओषधीषु) वृक्षों और लताओं के तुल्य, शत्रुसंतापक बल को धारण करने वाली सेनाओं में (रेतः) जलवत् बल (दधाति) धारण कराता है और (गर्भम् दधाति) उनके ही बल पर गृहीत राष्ट्र का पालन करता है। मेघ वनस्पतियों पर जल बरसाता और उनमें फल प्रसवार्थ एवं पृथिवी पर नाना ओषधियों के उत्पादनार्थ गर्भ धारण कराता है।

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति) मेघ गर्जता हुआ दुःखदायी, अकाल, दुर्भिक्ष आदि का नाश करता है और जो (भुवनं हन्ति) जल को आघात कर बरसाता है, (वृष्ण्यवतः ईषते) बरसाने वाले मेघ खण्डों को प्रेरता है उसी प्रकार (यत्) जो (पर्जन्यः) शत्रुओं का पराजय और प्रजाओं को सुख समृद्धि से तृप्त करने वाला, मेघ तुल्य उदार राजा, विद्वान् पुरुष, (स्तनयन्) गर्जता हुआ, उपदेश करता हुआ (दुः-कृतः) दुष्टाचारी, प्रजाओं को दुःख देने वाले दुष्टों और बुरे कर्मों का भी (हन्ति) नाश करता है वह (वृक्षान्) काट कर उखाड़ देने योग्य, वा भूमि पर कब्जा करने वाले, उच्छेद्य शत्रुओं को (वि हन्ति) विविध उपायों से नाश करे, (उत) और (रक्षसः वि हन्ति) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और भावों का विघात करे और उनको भी नाश करे जिनके (महावधात्) बड़े नाशकारी हत्याकाण्ड वा हिंसाकारी घोर शस्त्रास्त्र बल से (विश्वं भुवनं बिभाय) समस्त संसार डरता है, (उत) और वह (अनागाः) दोष, अपराध आदि से रहित होकर (वृष्ण्यवतः) शस्त्रवर्षी, बलवान् शत्रुओं को भी (ईषते) नाश करता और प्रकम्पित करता है।

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः नभः वर्ष्यं कुरुते) मेघ अन्तरिक्ष को वृष्टि करने वाला बना देता है, (वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते) वर्षा के दूत सदृश शीतल वायुओं को प्रकट करता है, (सिंहस्य स्तनथाः उत् ईरते) सिंहवत् गर्जनाएं होती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (पर्जन्यः) शत्रु पराजयकारी, प्रजा को समृद्ध करने वाला राजा (वर्ष्यम्) वृष अर्थात् बलवान् शस्त्रवर्षी वीर भटों से बने सैन्य को (नभः) सुप्रबद्ध (कृणुते) करता है और (रथी इव) जिस प्रकार कोचवान् (कशया) चाबुक से (अश्वान् अभिक्षिपति) घोड़ों को हांकता है और मेघ जिस प्रकार (कशया अश्वान् अभिक्षिपन्) दीप्ति युक्त विद्युल्लता से मेघ एवं वेग युक्त वायुओं को ताड़ता है उसी प्रकार (रथी) वह महारथी, (कशया) अपनी वाणी से ही (अश्वान्) वेग से जाने वाले अपने अश्व सैन्यों को (अभिक्षिपन्) सब ओर शीघ्र भेजता हुआ और (वर्ष्यान्) वर्षों में वृद्ध, अनुभवी (दूतान्) शत्रुसंतापक एवं उत्तम कुशल पुरुषों को अपना दूत (आविः कृणुते) बनाता है। उसी समय (सिंहस्य) सिंह के समान पराक्रमशाली वीरजनों के (स्तनथाः) गर्जन शब्द (दूरात्) दूर से (उत् ईरते) उठते, सुनाई देते हैं।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

भा०—(यत्) जब (पर्जन्यः) समस्त विश्व को जल और अन्न से तृप्त और समस्त जन्तुओं का हित करने वाला मेघ (रेतसा पृथिवीं अवति) जल से भूमि को खूब तृप्त कर देता है, उस समय, (वाताः प्र वान्ति) वायुगण खूब बहते हैं, (विद्युतः पतयन्ति) बिजलियें गिरती हैं, (ओषधीः उत् जिहते) ओषधि-वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, (स्वः पिन्वते) अन्तरिक्ष से जल झरता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त संसार के लिये (इरा जायते) अन्न उत्पन्न होता है। इसी प्रकार (पर्जन्यः) शत्रुविजयी राजा जब (रेतसा) अपने बल, वीर्य, पराक्रम तथा जल की नहरों से (पृथिवीम् अवति) राष्ट्र

भूमि की रक्षा करता और उसे सींचता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायु के समान बलवान् सेनापतिगण वेग से जाते हैं, (विद्युतः) विशेष दीप्ति युक्त अस्त्रादि (पतयन्ति) चलते हैं और (वाता प्र वान्ति) वायु वेग से जाने वाले रथ, व्योमयान आदि एवं व्यापारी जन वेग से जाते आते हैं और (विद्युतः) विशेष दीप्तियुक्त समृद्धियें (पतयन्ति) राष्ट्र के ऐश्वर्य को बढ़ाती हैं, (विद्युतः पतयन्ति) विशेष द्युतियुक्त स्त्रियें पति की कामना करती हैं, विवाहित हो गृहस्थ बसाती हैं। (ओषधीः उत् जिहते) तेज धारण करने वाली सेनाएं ओषधिवत् ही उठ खड़ी होती हैं और प्रजाएं उन्नति के मार्ग पर गमन करती हैं। (स्वः पिन्वते) राष्ट्र समस्त सुखों को प्रकट करता है और आकाश यथासमय जल वर्षाता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त प्रजाजन के लिये (इरा जायते) अन्न पर्याप्त उत्पन्न होता है।

यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः॒ स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ ॥५।२७

भा०—जिस प्रकार मेघ के वृष्टि कर्म होने पर (पृथिवी नंनमीति) पृथिवी के रजोरेणु नीचे आ जाते हैं और (शफवत् जर्भुरीति) खुरों वाले गौ आदि पशु पुष्ट होते हैं और (विश्वरूपाः ओषधीः) सब प्रकार की ओषधि वनस्पतिएं पुष्ट होती हैं और (महि शर्म यच्छति) मेघ प्रजाओं को भारी सुख देता है उसी प्रकार हे (पर्जन्य) शत्रु-विजयकारिन्! हे प्रजाओं के पोषक! (यस्य) जिस तेरे (व्रते) प्रजापालन रूप कर्म के अधीन (पृथिवी) समस्त भूमण्डल (नन्नमीति) विनय से झुकता है और (यस्य व्रते) जिसके व्रत अर्थात् प्रजापालन करने पर (शफवत्) खुरों वाले पशुगण भी (जर्भुरीति) खूब पालित पोषित होते हैं और (विश्वरूपाः ओषधीः) सब उत्तम, रूप सम्पन्न तेज वा वीर्य को धारण करने वाली स्त्रियें भी (जर्भुरीति) उचित रीति से पालित पोषित होती हैं। (सः) वह तू हे राजन्! (नः) हम प्रजाजनों को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छ) प्रदान कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धाराः॑ ।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुनेह्य॒पो नि॑षि॒ञ्चन्नसु॑रः पि॒ता नः॑ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः दिवः वृष्टिं रान्ति) वायुगण अन्तरिक्ष से वृष्टियें प्रदान करते हैं और (वृष्णः धाराः प्र पिन्वत) बरसने वाले मेघ की जल धाराओं को बरसाते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे लिये (दिवः) व्यापार, व्यवहार से (वृष्टिं) ऐश्वर्य की समृद्धि, पुष्टि, (ररीध्वम्) प्रदान किया करो और (वृष्णः) राष्ट्र का प्रबन्ध करने में कुशल (अश्वस्य) अश्ववत् हृष्ट पुष्ट और राष्ट्र के भोक्ता राजा के (धाराः) आज्ञा वाणियों को और अश्व सैन्य की 'धारा' नाम विशेष चालों को (प्र पिन्वत) खूब परिपुष्ट करो (स्तनयित्नुना असुरः निषिञ्चन् अर्वाङ् एति) जिस प्रकार मेघ वर्षता हुआ गर्जनशील विद्युत् के साथ आता है उसी प्रकार (नः पिता) हमारा पितावत् पालन करने वाला राजा (अपः) राज्यकर्म को और आप्त प्रजाजनों को (नि सिञ्चन्) सर्व प्रकार से पुष्ट करता हुआ (स्तनयित्नुना) उपदेश करने वाले विद्वान् वा गर्जनशील योद्धाजन वा अस्त्र समूह के साथ (अर्वाङ् एति) हमें प्राप्त हो ।

अ॒भि क्र॑न्द स्त॒नय॒ गर्भ॒मा धा॑ उद॒न्वता॒ परि॑ दी॒या रथे॑न ।
दृतिं॒ सु क॑र्ष॒ विषि॑तं॒ न्य॑ञ्चं स॒मा भ॑वन्तू॒द्वतो॑ निपा॒दाः ॥ ७ ॥

भा०—मेघ (यथा क्रन्दति, गर्भम् आधत्ते, उदन्वता रथेन परिदीयति, विषितं न्यञ्चं दृतिं सु कर्षति, उद्वतः निपादाः समा भवन्ति तथा) जिस प्रकार गर्जता है, विद्युत् चमकाता है, जल को भीतर रखता है, जलमय रम्य रूप से आकाश में व्यापता है, नीचे हुए मशक के समान अपने 'दृति' अर्थात् जल पूर्ण भाग को बन्धन रहित कर खोल देता है और ऊंचे और नीचे खड्डों वाले सब प्रदेश जलमय होकर एक समान हो जाते हैं, उसी प्रकार हे राजन् ! प्रजापालक पुरुष ! तू (अभि क्रन्द) स्वयं गर्जना कर, घोषणाएं दे, (स्तनय) घोर नाद कर, अथवा स्तन जिस प्रकार

संतति-पालनार्थं दूध से भरता वा पुष्ट हो जाता है उसी प्रकार मेघ प्रजा-पोषणार्थं जल से भर कर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे राजन्! तू भी प्रजापालनार्थं (स्तनय) स्तनवत् उत्तम पोषक अन्न आदि देने में समर्थ, समृद्ध हो। तू (गर्भम् आधाः) गृहीत राष्ट्र का पालन पोषण कर, राष्ट्र को अपने गर्भ अर्थात् वश में सुरक्षित रख। (उदन्वता रथेन परिदीयाः) बलशाली रथ सैन्य से राष्ट्र की सब ओर से रक्षा कर, वा उस प्रकार के सैन्यसहित राष्ट्र में बस और राष्ट्र को बसा, वा शत्रु का नाश कर। (न्यञ्चं) नीचे विनय से झुकने वाले (वि-षितं) बन्धनादि से मुक्त वा विशेष रूप के नियम-प्रबन्धादि से प्रबद्ध, (दृतिं) शत्रु बल को विदारण करने में समर्थ सैन्य बल को (सुकर्ष) अच्छी प्रकार सञ्चालित कर और विनीत बन्धन युक्त, (दृतिं) भयप्रद शत्रु बल को (सुकर्ष) खूब निर्बल कर, जिससे (उद्न्वतः) उत्कृष्ट बल वाले, उच्च स्थिति के और (नि-पादाः) निम्न स्थान पर स्थित, निम्न कोटि के सभी प्रजाजन (समाः भवन्तु) न्याय दृष्टि से समान हों। उत्तम पदस्थ निम्नों को न सता सकें। 'सुकर्ष'—'स कर्षन् महतीं सेनां ॥ रघु० ॥ यश्च सेनां विकर्षति ॥ महाभा० इत्यादि कृषधातोः सैन्यस्य सञ्चालनार्थे प्रयोगोऽतिप्राचीनः।

म॒हान्तं॒ कोश॒मुद॑चा॒ नि षि॑ञ्च॒ स्यन्द॑न्तां कु॒ल्या विषि॑ताः पु॒रस्ता॑त्।
घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी व्यु॑न्धि सुप्रपा॒णं भ॑वत्व॒घ्न्याभ्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ (महान्तं कोशम् उत् अञ्चति) बड़ी भारी जल राशि को अपने भीतर उठाता है, (वि सिञ्चति) उसे बरसाता है, (कुल्याः विषिताः स्यन्दन्ति) बहुतसी धाराएं निर्बन्ध होकर छूट बहती हैं और मेघ आकाश और भूमि दोनों को (घृतेन व्युनत्ति) जल से आर्द्र कर देता है (अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवति) गौ आदि पशुओं के पीने के लिये बहुत जल हो जाता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी (महान्तं कोशम्) बड़े भारी कोश, खजाने को (उद्अच) उन्नत कर और बहुत बलवान् (कोशं) खड्ग अर्थात् शस्त्र बल तथा धन को उत्पन्न कर, (नि सिञ्च) उस

कोश को प्रजागण पर और शस्त्र बल और शत्रु पर बरसा दे, जिससे (पुरस्तात्) आगे (वि-सिताः) कटी (कुल्याः) राष्ट्र में जल की और रण में रक्त की नहरें (स्यन्दन्ताम्) बह जावें और (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (घृतेन) स्नेह से (वि-उन्धि) आर्द्र कर, वे दोनों प्रेम से एक दूसरे पर कृपालु और अनुरक्त रहें। (अघ्न्याभ्यः) गौओं के समान अहिंसनीय प्रजाओं के लिये (सुप्रपाणं) उत्तम सुखजनक, पालन की व्यवस्था (भवतु) हो।

यत्प॑र्जन्य॒ कनि॑क्रदत्स्त॒नय॒न् हंसि॑ दु॒ष्कृतः॑।
प्रती॒दं विश्वं॑ मोदते॒ यत्किं च॑ पृथि॒व्यामधि॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (पर्जन्य) शत्रुओं के विजेता और प्रजाओं को समृद्धि से तृप्त करने हारे ! (यत्) जब तू मेघ के समान (कनिक्रदत्) गर्जता और (स्तनयन्) विद्युत् के समान गर्जता हुआ (दुष्कृतः हन्ति) दुष्टाचारियों का नाश करता है तब (इदं विश्वं) यह विश्व (यत् किं च) जो कुछ भी (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी पर स्थावर जंगम सृष्टि है वह (प्रति मोदते) तुझे देख प्रसन्न होता है।

अव॑र्षीर्व॒र्षमुदु॒ षू गृ॑भा॒याक॒र्धन्वा॒न्यत्ये॑त॒वा उ॑।
अजी॑जन॒ ओष॑धी॒र्भोज॑नाय॒ कमु॒त प्र॒जाभ्यो॑ऽविदो मनी॒षाम् १०।२८

भा०—जिस प्रकार (वर्षम् अवर्षीः) मेघ बरसता है (धन्वानि वर्षम् अकः) मरुस्थलों और अन्तरिक्ष प्रदेशों को अतिक्रमण करता हुआ भी वृष्टि को धारण करता है, (ओषधीः भोजनाय अजीजनः) ओषधियों को सब जन्तुओं के भोजन के निमित्त उत्पन्न करता है (प्रजाभ्यः मनीषां विदः) प्रजाओं से प्रशंसा प्राप्त करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अति एतवा उ) अपने शत्रुगण को अतिक्रमण करने और उनसे बढ़ जाने के लिये (धन्वनि) धनुषों को (गृभाय) ग्रहण कर और (वर्षम् अकः) शर वृष्टि करें। (अवर्षीः) प्रजाओं पर सुखों की वृष्टि कर और (भोजनाय)

प्रजाओं के भोग और भोजन के निमित्त (ओषधीः) अन्न शाक आदि वनस्पतियां (अजीजनः) राष्ट्र में उत्पन्न कर और (भोजनाय) स्वयं राष्ट्र को भोगने और पालन करने के लिये (ओषधीः जनय) शत्रुदाहक पराक्रम को धारण करने वाली सेनाओं को प्रकट कर। (उत कम्) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं की भी (मनीषाम्) उत्तम सम्मति को (अविदः) प्राप्त कर। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८४]

अत्रिर्ऋषिः। पृथिवी देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप् ॥

तृचं सूक्तम् ॥

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (पर्वतानां मह्ना) पर्वतों और मेघों के महान् सामर्थ्य से (खिद्रं बिभर्त्ति, भूमिं च जिनोति) दीन प्रजा को पालती और भूमि को जल धाराओं और नदियों से सींचती है उसी प्रकार हे (पृथिवी) पृथिवी के समान विशाल हृदय वाली! हे (प्रवत्वति) उत्तम गुणों वाली! हे (महिनि) पूज्ये! दानशीले महान् सामर्थ्य वाली! (या) जो तू (पर्वतानां मह्ना) मेघ या पर्वतों के तुल्य उदार और पालन सामर्थ्यों से युक्त पुरुषों का (बिभर्षि) पालन कर और अपनी (भूमिं) अन्न-सस्योत्पादक भूमि और सन्तत्युत्पादक अंग को भी (प्र जिनोषि) उत्तम रीति से पुष्ट कर और उत्तम प्रजा उत्पन्न कर।

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

भा०—हे (विचारिणि) विचार करने वाली स्त्रि! वा राजसभे! (स्तोमासः) उत्तम विद्वान् पुरुष (अक्तुभिः) सब दिनों (त्वा प्रति स्तोभन्ति) तेरी स्तुति, प्रशंसा करें। (या) जो तू पृथिवी के समान हे (अर्जुनि) उषा के तुल्य कमनीये! शुद्धाचरण वाली! एवं प्रकाशवत् अर्थ

सञ्चय करने हारी ! तू (द्वेषन्तं वाजं न) हिनहिनाते अश्व के समान गर्जते (पेरुं) मेघ को पृथिवी के समान, पालक पुरुष, सुप्रसन्न अपने पूरक पति को (अस्यसि) सन्मार्ग में प्रेरित करती, ऊपर उठाती है, उसके अभ्युदय और यश का कारण होती है।

दृळ्हा चि॒द्या वन॒स्पती॑न्क्ष्म॒या दर्ध॑र्ष्योज॑सा।
यत्ते॑ अ॒भ्रस्य॑ वि॒द्युतो॑ दि॒वो वर्ष॑न्ति वृ॒ष्टयः॑ ॥ ३ ॥ २९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (दृढा चित्) दृढ़ होकर (क्ष्मया) सामर्थ्य से (ओजसा) और बल से (वनस्पतीन् दर्धर्त्ति) बड़े २ वृक्षों को धारे रहती है उसी प्रकार हे स्त्री वा राजशक्ति ! (या) जो तू (दृढा) दृढ़ रहकर (वनस्पतीन्) ऐश्वर्यों के पालक महावृक्षवत् आश्रयदाता पुरुषों को (ओजसा) पराक्रम, तेज से और (क्ष्मया) क्षमाशीलता से वा भूमि के बल से (दर्धर्षि) धारण कर रही है और (यत्) जो (ते) तेरे (अभ्रस्य) मेघवत् सुखप्रद धन की (विद्युतः) विशेष कान्ति वाली (वृष्टयः) सुखों की वृष्टियें (दिवः) आकाश से मेघ की बिजुली युक्त वर्षाओं के समान तेरी कामना और सद्व्यवहार से (वर्षन्ति) बरसती हैं इससे तू अतिपूज्य है। इति एकोनविंशो वर्गः ॥

[८५]

अत्रिर्ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् पंक्तिः । ७ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र स॒म्राजे॑ बृ॒हद॑र्चा गभी॒रं ब्रह्म॑ प्रि॒यं वरु॑णाय श्रु॒ताय॑।
वि यो ज॒घान॑ शमि॒तेव॒ चर्मो॑प॒स्तिरे॑ पृथि॒वीं सूर्या॑य ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो सेनापति (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी राष्ट्रपति पद की प्राप्ति के लिये (शमिता इव) विघ्न शमन करने वाले के समान (वि जघान) विघ्नों का नाश करता है और (चर्म) बिछाने योग्य मृग छाला के समान (पृथिवीम्) पृथिवी को (शमिता इव) शमसाधक योगाभ्यासी के

समान ही (उपस्तिरे) विस्तृत कर अपना आश्रय बनाता है उस पर विजय करता है। उस (सम्राजे) सम्राट् (वरुणाय) दुष्टों और उपद्रवों के निवारण करने में समर्थ श्रेष्ठ जनों के रक्षक, गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य शास्त्रों में निष्णात एवं जगत् प्रसिद्ध पुरुष के लिये (बृहत् अर्च) बहुत बड़ा सत्कार कर और (गभीरं) गम्भीर अर्थ वाला, (प्रियं) प्रिय, मनोहर (ब्रह्म) ज्ञान वर्धक, सर्वोत्तम ज्ञान का उसे उपदेश कर।

वनेषु व्य१॒न्तरिक्षं ततान॒ वाज॒मर्वत्सु पय॑ उ॒स्रिया॑सु ।
हृ॒त्सु क्रतुं॒ वरु॑णो अ॒प्स्व१॒ग्निं दि॒वि सूर्य॑मदधा॒त्सोम॒मद्रौ॑ ॥ २ ॥

भा०—वह (वरुणः) उत्तम पद के लिये वरण करने योग्य राजा (वनेषु) सूर्यवत् भोग्य पदार्थों वा वन, उपवनों में (अन्तरिक्षं) जल को (वितनान) विविध उपायों से प्रसारित करे। (अर्वत्सु वाजम्) अश्वों में वेग और अश्व सैन्यों के आधार पर संग्राम की (अदधात्) तैयारी या योजना करे। (उस्रियासु पयः) गौओं में पुष्टिकारक दूध, भूमियों में जल और अन्न को (अदधात्) पुष्ट करे और जो (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुं) ज्ञान को (अदधात्) स्थापित करे, (अप्सु अग्निम्) जलों में अग्निवत् प्रजाओं में ज्ञानवान् और तेजस्वी नेता को (अदधात्) नियत करे। वह (दिवि सूर्यम् अदधात्) आकाश में सूर्य के समान पृथिवी में तेजस्वी पुरुष को और ज्ञान रक्षा में सर्वप्रकाशक विद्वान् को प्रधान पद पर स्थापित करे और (अद्रौ सोमम् अदधात्) मेघ में जल और पर्वत पर ओषधिवत् शस्त्र बल पर ऐश्वर्य को पुष्ट वा धारण करे। (२) परमेश्वर ने सूक्ष्म जलों में या वृक्षों के ऊपर भी आकाश ताना है, अश्वों में वेग, गौओं में दूध, भूमियों में जल, अन्न, हृदय में कर्म और ज्ञान सामर्थ्य, समुद्रों में बड़वानल, वा रसों में विद्युत्, आकाश में सूर्य, मेघों में जल, पर्वतों पर सोम आदि ओषधि वर्ग बनाया है। वह 'वरुण' सर्वोपास्य है।

नी॒चीन॑बारं॒ वरु॑णः॒ कव॑न्धं॒ प्र स॑सर्ज॒ रोद॑सी अ॒न्तरि॑क्षम् ।
तेन॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॒ यवं॒ न वृ॒ष्टिर्व्यु॑नत्ति॒ भूम॑ ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) प्रजा के कष्टों का वारण करने वाला सम्राट् राजा (कबन्धं) जल को (नीचीनवारं) नीचे के स्थानों में नाना धाराओं में विभक्त होकर (प्र ससर्ज) बहने वाला करे। अर्थात् पर्वत आदि उच्च स्थलों में स्थित जल को नीचे के प्रदेशों में नहरों या नलों द्वारा बहाकर सेचन आदि का प्रबन्ध करे। वह (रोदसी) आकाश और भूमि, शासक और शास्य वर्ग दोनों के बीच (अन्तरिक्षम्) अन्तःकरण में बसने वाला, जल-वत् पारस्परिक स्नेह (प्र ससर्ज) उत्पन्न करे। (तेन) उससे (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त 'भुवन' भूगोल का राजा (वृष्टिः भूम यवं न) बड़े और बहुत से यव के खेतों को वृष्टि के समान सुखदायक होकर (भूम) बहुत से प्रजाजनों को (वि-उनत्ति) विविध उपायों से स्नेहार्द्र करे। (२) परमेश्वर मेघ जल आदि बनाता, विश्व का राजा होकर सबके हृदयों को दयार्द्र करता, करुणा जलों से सेंचता है।

उ॒नत्ति॒ भूमि॑ पृथि॒वीमु॒त द्यां य॒दा दु॒ग्धं वरु॑णो॒ वष्ट्यादित् ।
सम॒भ्रेण॑ वसत॒ पर्व॑तासस्तविषी॒यन्तः॑ श्रथयन्त वी॒राः ॥ ४ ॥

भा०—(यदा) जिस समय (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा के उपद्रवों और कष्टों का वारक राजा (दुग्धं) गौ से दूध के समान पृथिवी से अन्न (वष्टि) प्राप्त करना चाहे (आत्-इत्) तब वह (पृथिवीम्) अति विस्तृत भूमि को (उत) और (द्याम्) आकाश को (अभ्रेण) जल देने वाले साधन, मेघ से (उनत्ति) जलों द्वारा गीला करे। अर्थात् यज्ञ और वर्षा के उपायों से आकाश में मेघों को उत्पन्न करे और नहरों व मेघों से भूमि सेचने का प्रबन्ध करे। हे (वीराः) वीर पुरुषो ! आप लोग (तविषीयन्तः) सेनाएं बनाते हुए (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के समान शर वर्षी होकर (वसत) रहो और दुष्टों को (श्रथयन्त) शिथिल करते रहो जिससे प्रजा सुख से रहे। (२) वरुण, परमेश्वर भूमि के वृष्टि और आकाश को जल से गीला करता है, जब चाहता है अन्नादि से पूर्ण करता

है । मेघ और वायु बलयुक्त और विद्युत्युक्त होकर आकाश को आच्छादित करते हैं ।

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

भा०—मैं (असुरस्य) मेघ के व्रत को पालन करने वाले (श्रुतस्य) जगत् प्रसिद्ध, वेदों के विद्वान्, बहुश्रुत (वरुणस्य) प्रजा के दुखों को वारण करने वाले, सर्वश्रेष्ठ पुरुष की (इमाम् महीं मायां) इस बड़ी आदरणीय बुद्धि का (सु-प्रवोचम्) उत्तम रीति से उपदेश करूं । (यः) जो राजा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (तस्थिवान्) स्थित वायु के समान स्वयं बलवान् और निर्बल वा नदी प्रतिवादियों के बीच न्यायासन पर विराज कर (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी रूप, प्रभाव या न्याय-प्रकाश से (मानेन इव पृथिवी) मापने के दण्ड से जैसे भूमि को मापा जाता है उसी प्रकार जो (मानेन) सर्वमान्य न्यायदण्ड से (पृथिवीं ममे) भूमि का शासन करता है । (२) परमेश्वर सर्वप्राणप्रद होने से 'असुर' है, उसकी बड़ी भारी 'मान' अर्थात् निर्माण शक्ति है, अन्तरिक्ष में सूर्य के साथ पृथिवी को भी (मानेन) निर्माण कौशल से स्वयं मापता, व्यापता और बनाता है । अर्थात् वही माता और वही पिता है ।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६॥

भा०—(कवि-तमस्य) समस्त क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच सर्वश्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, सर्वविजयी, तेजस्वी राजा और प्रभु की (इमाम् उ नु महीं मायाम्) इस बड़ी बुद्धि और निर्माण-चातुरी का (नकिः आ दधर्ष) कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, (यत् एनीः अवनयः) जिस प्रकार सदा बहती नदियें (आ सिञ्चन्तीः) सब ओर से जल सेंचती हुई (समुद्रं उद्ना न पृणन्ति) समुद्र को जल से नहीं भर पातीं उसी प्रकार (एनीः) सब

ओर से प्राप्त, (अवनयः) ये भूमिवासिनी प्रजाएं या भूमियें भी (एकं समुद्रं) एक समुद्र के समान अथाह बलशाली राजा को (आ सिचन्तीः) सब प्रकार से सेंचती हुई, अभिषेक करती हुई भी (न पृणन्ति) ऐश्वर्य से पूर्ण नहीं कर पातीं।

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥

भा०—हे (वरुण) सम्राट्, राजन्! सर्वश्रेष्ठ प्रभो! हम (अर्यम्यं) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को बंधन में बाधने वाले, पोलीस वा न्यायकारी, न्यायाधीश, (मित्र्यं) सर्वस्नेही ब्राह्मणगण, (सखायं वा) समान नाम पद वाले मित्रवर्ग, (सदम्) साथ बैठने वाले (भ्रातरं वा) भाई के प्रति (वा) अथवा (वेशं) सबके प्रवेश योग्य सभास्थान, गृह वा राष्ट्र में अन्य देशों से आने जाने वाले वैश्य वर्ग या निकटवर्त्ती पड़ोसी और (अरणं वा) जो अपने से रण नहीं करते, उनके प्रति (यत् सीम् आगः चकृम) जो कभी अपराध करें हे राजन्! तू (तत्) उसको और उसी समय (नित्यं शिश्रथः) शिथिल करता रह, अपराध पर नियन्त्रण कर। (२) परमेश्वर भी हमें उन सब पापों से बचावे।

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ८।३१

भा०—(दीवि न कितवासः) द्यूत कार्य में जूआखोर लोग जिस प्रकार निराधार छल कपट से एक दूसरे पर दोष आरोप करते हैं उसी प्रकार जो (कितवासः) तेरा क्या है, इस प्रकार डरा धमका कर अन्यों का माल झपट लेने वाले छली लोग (यत् रिरिपुः) जो हम पर चोरी आदि का मिथ्या दोषारोप करें (यद् वा घ सत्यम्) और जो सचमुच हमारा कसूर हो, (उत) और (यत् न विद्म) जिस अपराध को हम नहीं जानते और कर बैठते हैं (ता सर्वा) उन सब अपराधों को हे (देव) दण्ड देने हारे!

हे (वरुण) दुष्टवारक ! तू (शिथिरा इव) ढीला सा (वि स्य) करके हमसे छुड़ा। राष्ट्र के पाप की प्रवृत्तियों को सदा दबाते रहने से वे ढीली पड़कर प्रजा में से आप से आप, डाल से फल के समान छूट जाती हैं। (अध) और (ते) तेरे हम (प्रियासः स्याम) प्रिय हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[८६]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ४, ५ स्वराडुष्णिक् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ६ विराट् पूर्वानुष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ यमव॑थ उ॒भा वाजे॑षु॒ मर्त्य॑म् ।
दृ॒ळ्हा चि॒त्स प्र भे॑दति द्यु॒म्ना वाणी॑रिव त्रि॒तः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! ज्ञान को साक्षात् दिखाने, अज्ञान को भेदने वा दूर भगा देने वाले ! हे अग्ने, पाप को दग्ध करने वाले अग्रणी नायक ! आप दोनों (वाजेषु) संग्रामों में विद्युत् और अग्नि, वा सेनापति और नायक के तुल्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के अवसरों में (यम् मर्त्यम् अवथ) जिस मनुष्य को रक्षा करते, तृप्त करते और पालते हो (सः) वह (दृढा चित्) बड़े २ दृढ़ शत्रु सैन्यों को वीर पुरुष के समान, दृढ़, जटिल अवसरों को (प्र भेदति) ऐसे भेदकर पार हो जाता है, जैसे (त्रितः) तीनों वेद विद्याओं में पारंगत पुरुष (द्युम्नाः वाणीः प्र भेदति) यशोजनक, उत्तम ज्ञानप्रकाशक व वेदवाणियों के मर्मों को भेदकर, भली प्रकार जानकर, अज्ञान-सागर से पार उतर जाता है।

या पृत॑नासु दु॒ष्टरा॒ या वाजे॑षु श्र॒वाय्या॑ ।
या पञ्च॑ चर्ष॒णीर॒भीन्द्रा॒ग्नी ता ह॑वामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (पृतनासु दुस्तरा) सेनाओं के बीच सेनापति और नायक के समान मनुष्यों के बीच रहते हुए, मान-आदर, शक्ति और ज्ञान में लांघे नहीं जा सकते, (या) और जो दोनों (श्रवाय्या) प्रशंसनीय हैं (या च) और जो दोनों (पञ्च) पांचों

प्रकार की (चर्षणीः अभि) ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर मन और आत्मा के तुल्य पांचों प्रकार की प्रजाओं के ऊपर राजा और महा सचिववत् हैं (ता इन्द्राग्नी) उन दोनों ऐश्वर्य युक्त और अग्निवत् तेजस्वी समस्त पुरुषों को हम (हवामहे) आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं।

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥

भा०—इन्द्र-अग्नि का स्वरूप दर्शाते हैं। (तयोः) उन दोनों का (शवः) बल और ज्ञान (अमवत्) गृह के समान शरण देने वाला और उन दोनों (मघोनोः) दान योग्य धन और ज्ञान के स्वामियों की (तिग्मा दिद्युत्) तीक्ष्ण शस्त्र और ज्ञान वाणी होती है, (गभस्त्योः) बाहुओं के समान राष्ट्र वा अधीन शिष्य को ग्रहण करने हारे राजा आचार्य दोनों का (शवः) शक्ति, वाणी रूप बल (द्रुणा) रथ तथा वेग से (गवां वृत्रघ्ने) वाणियों और भूमियों के बाधक शत्रु और अज्ञान के नाश करने वाले के (प्रति आ ईषते) बाधक कारणों का नाश करता है। विद्वान् का ज्ञान और बलवान् राजा का बल दोनों राष्ट्र की दो बाहु हैं वह दोनों का बल शत्रु और अज्ञान का एक द्रुतगामी ज्ञान से, वा द्रुतगामी रथ या धनुष आदि साधन से नाश करता है।

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुविदारक राजन् ! और हे अग्ने ! ज्ञान से विद्याओं का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुष ! हम लोग (वाम्) आप दोनों के (रथानाम्) रथों और रमणीय ज्ञान-रस के (एषे) प्राप्त करने के लिये आप दोनों को (हवामहे) हम बुलाते हैं। आप दोनों (तुरस्य) शत्रुनाशक, अज्ञानविघातक सैन्य और ज्ञान के (पती) पालक हैं और (विद्वांसा) ब्रह्मवेत्ता और राष्ट्र लाभ करने वाले, (गिर्वणस्तमा) उत्तम वाणियों का सेवन करने वाले हो।

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥

भा०—आप (अनु द्यून्) सब दिनों (वृधन्तौ) बढ़ते हुए (देवौ) दानशील तथा तेजस्वी, (अदभा) अहिंसनीय हैं, (अर्हन्ता) स्वयं पूज्य और अन्यों का सत्कार करने वाले, (ता) उन आप दोनों (देवौ) ज्ञान और धनादि सुख के दाताओं को (मर्ताय) मनुष्यों के हित के लिये मैं (अंशा इव) एक ही पदार्थ के दो पूरक भागों के समान (पुरः दधे) अपने समक्ष रखता हूँ ।

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ६।३२

भा०—(इन्द्राग्निभ्याम्) उन दोनों ऐश्वर्यवान् शत्रुविदारक इन्द्र और अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक क्षत्र और ब्रह्म दोनों से (एव) ही (अद्रिभिः पूतं घृतं न) मेघों से प्राप्त जल तथा (अद्रिभिः पूतं घृतं न) प्रस्तर खण्डों से कुटे छने द्रवित हुए ओषधि रस के समान (हव्यं) खाने योग्य (शूष्यं) बलकारक अन्नवत् ज्ञान और बल प्राप्त होते हैं । (ता) वे दोनों (गृणत्सु सूरिषु) उपदेश करने वाले विद्वानों में (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी श्रवण करने योग्य ज्ञान, यश और अन्न (बृहत् रयिम्) बड़ा भारी धन (दिधृतम्) धारण करें और वे (गृणत्सु इषं दिधृतम्) उपदेष्टा जनों के निमित्त (इषं) प्रबल इच्छा, प्रेरणा या शासन बल, अन्न और सैन्य को भी (दिधृतम्) धारण करें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[८७]

एवयामरुदात्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ अति जगती । २, ८ स्वराड् जगती । ३, ६, ७ भुरिग् जगती । ४ निचृज्जगती । ५, ९ विराड् जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।

प्र शर्धाय॒ प्रय॑ज्यवे सुखा॒दये॑ त॒वसे॒ भ॒न्दिदि॑ष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से ॥ १ ॥

भा०—जो (गिरिजाः) वाणी में प्रसिद्ध और (एवया-मरुत्) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों पर जाने और पहुँचाने वाला और वायु के समान बलवान् ज्ञानी पुरुष है उस (महे) महान् (मरुत्वते) मनुष्यों के स्वामी, (विष्णवे) विविध विद्याओं के प्रवाह बहाने वाले, व्यापक सामर्थ्यवान् प्रभु पुरुष के आदर के लिये, उसको प्राप्त करने के लिये (वः मतयः) आप लोगों की बुद्धियां और आप लोगों में जो मननशील ज्ञानी पुरुष हैं वे भी उक्त स्वामी के प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ें, प्रयत्नवान् हों और वे (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये, (प्र-यज्यवे) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य (सु-खादये) उत्तम रीति से ऐश्वर्यों के भोक्ता, (तवसे) सर्वशक्तिमान् (भन्ददिष्टये) कल्याणकारी दान, सत्संगादि से युक्त, (धुनि-व्रताय) दुष्टों को कंपा देने वाले कर्म करने में समर्थ है उसके आदरार्थ आप लोगों की बुद्धियां, वा आप में से बुद्धिमान् जन (प्र यन्तु) आगे बढ़ें। (२) परमेश्वर सब जीवों का स्वामी होने से 'मरुत्वान्' है । वेद में प्रसिद्ध होने से 'गिरिजाः', ज्ञान मार्ग पर जाने वाले जीवों का स्वामी वा प्राणों का प्राण होने से 'एवयामरुत्' है। बलमय होने से 'शर्धः', सर्वैश्वर्य दाता होने से 'प्रभुज्यु' सर्व जगत् का संहारक होने से 'सुखादि', सब जगत् को अपने कर्म से सञ्चालक होने से 'धुनिव्रत' है। उसकी (शवसे) ज्ञान बलादि प्राप्ति के लिये उपासना करो।

प्र ये जा॒ता म॑हि॒ना ये च॒ नु स्व॒यं प्र वि॒द्मना॑ ब्रु॒वत॑ एव॒याम॑रुत्। क्रत्वा॒ तद्वो॑ मरुतो॒ नाधृषे॒ शवो॑ दा॒ना म॒ह्ना तदे॑षा॒मधृ॑ष्टासो॒ नाद्र॑यः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो आप लोग (महिना विद्मना जाताः) बड़े ज्ञान सामर्थ्य से प्रसिद्ध हैं और (ये च नु

स्वयं विद्मना क्त्वा प्र ब्रुवते) जो स्वयं ज्ञान और कर्म द्वारा अन्यों को उत्तम उपदेश करते हैं (तत् वः) उन आप लोगों के (शवः) बल का (एवयामरुत्) मार्गों, वा यान साधनों से जाना वाला मैं सामान्य मनुष्य कभी (न आधृषे) तिरस्कार न करूं। हे सामान्य जनो! आप लोग भी (एषाम्) इन आपके (मह्ना दाना) बड़े भारी विद्यादि दान से (शवः) सदा ज्ञान प्राप्त करके (अधृष्टासः) ढीठ न रहकर, विनीत (न अद्रयः) मेघ के समान विनम्र होकर अन्यों को धन, ज्ञान आदि देने वाले हो।

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्। न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, (बृहतः दिवः) बड़े तेजस्वी सूर्यवत् ज्ञान प्रकाशक गुरु से (शृण्विरे) ज्ञान श्रवण करते हैं (गिरा) वाणी से ही (सु-शुक्वानः) उत्तम रीति से शुद्ध कान्तियुक्त होकर (सु-भ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, ज्ञान बीजों के लिये उत्तम भूमिवत् हैं और (येषां सधस्थे) जिनके साथ रहने में (इरी) उनका सञ्चालक और (एव-यामरुत्) शिष्य जनों को ज्ञान मार्ग से ले जाने वाला गुरु भी (न ईष्टे) कभी इनको भय या त्रास उत्पन्न नहीं करता, वे आप लोग (अग्नयः न) अंग में विनयी, एवं अग्निवत् तेजस्वी, (स्व-विद्युतः) स्वयं विशेष दीप्तियुक्त और (धुनीनाम्) उत्तम वाणियों के, वा (स्पन्द्रासः प्र) प्रेरित करने वाले, ज्ञान रस को बहाने वाले होवो।

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्। यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥

भा०—सेनापति का वर्णन। (सः उरुक्रमः) वह महान् पराक्रमी (एवयामरुत्) गमन-साधन रथों से जाने वाले, शत्रुमारक, बलवान् पुरुषों

का सेनापति (समानस्मात् सदसः) समान, अनुरूप, अपने महागृह से (निश्चक्रमे) निष्क्रमण करता है। वह (शेवृधः) सुख बढ़ाने वाले (विष्प-र्धसः) विशेष स्पर्धा से युक्त (विमहसः) विशेष महान् सामर्थ्य वाले पुरुषों को अश्वों के समान (त्मना) अपने बल से (यदा) जब (अधि अयुक्त) अध्यक्ष रूप से नियुक्त करता है तब वह (स्नुभिः) उन अभिषिक्त (नृभिः) नायकों से (जिगाति) विजय प्राप्त करता है।

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—वह (अमवान्) बलवान्, (एवयामरुत्) वेग से जाने वाले वीर सैनिकों का स्वामी, (वृषा) मेघवत् शरवर्षी, बलवान्, प्रबन्ध-कर्त्ता, (त्वेषः) तेजस्वी, (ययिः) प्रयाणशील, (तविषः) बलवान् होकर (स्वनः) भारी शब्द वा उपदेष्टा के समान हो (रेजयत्) वह आप लोगों को सञ्चालित करे। (येन) जिसके साथ आप लोग (स्व-रोचिषः) स्वयं कान्तिमान् (स्थाः-रश्मानः) स्थिर किरणों के समान, वा स्थिर, स्वायत्त वागडोर वाले, (हिरण्ययाः) स्वर्णवत् कान्तियुक्त, (सु-आयुधासः) उत्तम शस्त्रबल धारण करते हुए, (इष्मिणः) धनुष बाणवान् होकर (असहन्त) विजय करें, (ऋञ्जत) और अपना कार्य सम्पन्न करें। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्।
स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृद्ध-शवसः) अति अधिक बढ़े हुए बलशाली! वीर पुरुषो! (वः) आप लोगों का (महिमा) महान् सामर्थ्य (अपारः) अपार है, उसको कोई शत्रु पार नहीं पा सकता। (वः) आप लोगों के (त्वेषं) अति तीक्ष्ण तेज और (शवः) बल की (एवयामरुत्) रथादि से प्रयाण

करने वाले मर्द वीरों का स्वामी सदा (अवतु) रक्षा करे। आप लोग (अग्नयः न) अग्निय तथा ज्ञानवान् पुरुषों के समान (शुशुक्वांसः) सदा तेजस्वी, कान्तिमान् होकर स्वामी के (प्रसितौ) उत्तम बन्धन और उत्तम नियन्त्रण तथा उसके (संदृशि) सम्यक् प्रकार के निरीक्षण में (स्थातारः स्थन) स्थिर होकर रहो और (ते) वे आप लोग (नः) हमें (निदः) निन्दा करने, निकृष्ट नीति से छेदन भेदन करने वाले, दुःखदायी शत्रु के (उरुष्यत) रक्षा किया करो।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत्। दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥

भा०—(येषाम्) जिन (अद्भुत-एनसाम्) अपराधरहित, निष्पाप जनों के (महः शर्धांसि) बड़े शत्रु हिंसक बल, सैन्य आदि हैं और जिनके (अज्मेषु) संग्रामों के अवसरों पर (दीर्घं) अति दीर्घ, (पृथु) विस्तृत, (पार्थिवम्) पृथिवीमय, वा पृथिवी पर बना हुआ (सद्म पप्रथे) घर विस्तृत है (ते) वे (रुद्रासः) दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने हारे, सज्जनों को उत्तम उपदेश करने हारे वीर, विद्वान् जन (यथा) जिस प्रकार (सुमखाः) उत्तम यज्ञशील (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (तुवि द्युम्नाः) बहुत प्रकाशवान् होकर (एवयामरुत्) रथादि साधनों से जाने वाले वीर पुरुषों तथा ज्ञान मार्गों से जाने वाले विद्वान् पुरुषों की (अवन्तु) रक्षा करें उसी प्रकार वे भी हमारी रक्षा करें।

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत्। विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो॒ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् तीव्र वेग से जाने वाले वीरो! प्रजाजनो, विद्वान् पुरुषो! आप लोग (अद्वेषः) द्वेष रहित होकर (नः गातुम्)

हमारी वाणी को (श्रोत) श्रवण करो। हमारी (गातुम् एतन) भूमि को प्राप्त करो। (एवयामरुत्) पूर्वोक्त प्रकार से रथगामी वीरों वाले (जरितुः) उपदेष्टा, आज्ञापक पुरुष के (हवं) आह्वान का (श्रोत) श्रवण करो। हे (समन्यवः) समान ज्ञान और उग्रता, मन्यु, क्रोधवान् पुरुषो! आप लोग (रथ्यः न) रथी योद्धाओं के समान (स-मन्यवः) क्रोध और ज्ञान से प्रचण्ड होकर (विष्णोः) व्यापक शक्तिमान् राजा के (महः) बड़े बड़े (दंसना) कर्मों को करो और (सनुतः) सदा (द्वेषांसि अप युयोतन) द्वेष के भावों और शत्रुओं को दूर करो।

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥ ३४ ॥ ६ ॥

भा०—हे (यज्ञियाः) यज्ञ, दान आदि सत्कार और सत्संग करने योग्य विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (यज्ञं गन्त) यज्ञ, आदर, सत्कार, सत्संग एवं देवपूजन आदि कर्म के अवसर पर प्राप्त होवो। हे (एवयामरुत्) उत्तम रथों से जाने वाले पुरुषों के स्वामी के (सुशमि) उत्तम कर्म बतलाने वाले, (अरक्षः) विघ्नों से रहित (हवम्) आज्ञा वचन को (श्रोत) श्रवण करो। (यूयं) आप लोग (तस्य प्रचेतसः) उस उत्कृष्ट चित्त और ज्ञान से युक्त पुरुष के (व्योमनि) विविध रक्षाओं से सम्पन्न राज्य में (ज्येष्ठासः) बड़े भाइयों के समान और (पर्वतासः न) मेघ या पर्वत के तुल्य उदार और अचल सहिष्णु होकर (दुर्धर्त्तवः) दुःखदायी कष्टों को भी सहारते हुए (स्यात) अचल होकर स्थिर रहो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

[१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पंक्तिः। २ स्वराट् पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं मनोतासूक्तम् ॥

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! वीर एवं विद्वन् ! हे अग्रणी ! प्रभो ! (त्वं हि) क्योंकि तू (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ, प्रथम, अति प्रसिद्ध, (मनोता) ज्ञान और अन्यों के मनों को अपने में बांधने वाला, मन के समान वेग से जाने में समर्थ है, इसलिये हे (दस्म) दुःखों और अज्ञान के नाशक ! (अस्याः धियः) इस ज्ञान और कर्म का तू (होता) उपदेश करने वाला (अभवः) हो । (त्वं) तू (सीम्) सब प्रकार से हे (वृषन्) बलवन् ! मेघवत् ज्ञान का दान करने हारे ! (सहः) सहनशील, बल को और उसको (विश्वस्मै) सब प्रकार के (सहसे) बल पराक्रम करने और (सहध्यै) विघ्न, बाधा एवं शत्रु को पराजित करने के लिये अपने बल को (दुस्तरीतु) अजेय, दुःसाध्य (अकृणोः) बना ।

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥

भा०—(अध) और हे विद्वन् ! हे वीर नायक ! हे प्रभो ! तू (यजीयान्) सबसे उत्तम पूज्य, दानी, सत्संगी और (होता) सबके भक्ति श्रद्धा प्रेम आदि से कहे वचनों और दिये उपहारों को भी स्वीकार करने हारा होकर (इडः पदे) भूमि के उत्तम पद पर, वा वाणी के बीच में (नि असीदः) विराजमान है । तू (ईड्यः) सबसे स्तुति करने योग्य होकर

(इषयन्) सबको चाहता हुआ, सबको इष्ट प्रदान कर । (त्वा देवयन्तः नरः) तुझ सर्वप्रकाशक दानशील की कामना करते हुए नायक लोग (चितयन्तः) तेरा ज्ञान लाभ करते हुए (महो राये) बड़े भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वा अनु ग्मन्) तेरा अनुगमन करते हैं ।

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैः३ स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वे) तेरे अधीन, तुझमें रमते हुए, तेरे आश्रित, तेरे निमित्त (जागृवांसः) सदा जागते हुए, सावधान जन (रयिं) दानशील तुझ को ही सर्वस्व जान तेरा (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं । वे (बहुभिः) बहुत से (वसव्यैः) शिष्यवत् अधीन बसने वाले, प्रजावत् पुरुषों सहित (वृता इव यन्तं) सन्मार्ग पर सदा सत्-पथ से जाते हुए का (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं । वे (विश्वहा) सदा ही (रुशन्तम्) चमकते हुए (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान, (दर्शतं) सबको ज्ञान-प्रकाश दर्शाने वाले, स्वयं दर्शनीय (बृहन्तं) महान् (वपावन्तं) बीज पेर कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति वाले, एवं शत्रुवत् विघ्नों की छेदक भेदक शक्ति से सम्पन्न, (दीदिवांसं) तेजस्वी पुरुष का (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं ।

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥ ४ ॥

भा०—(देवस्य) समस्त सुखों के देने और समस्त ज्ञानों और सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर के (पदं) ज्ञान करने और (श्रवः) श्रवण करने योग्य स्वरूप को (नमसा) नमस्कार, विनय पूर्वक (व्यन्तः) प्राप्त करते हुए (श्रवस्यवः) श्रवण योग्य ज्ञान के अभिलाषी जन उस (अमृक्तम्) परम पवित्र स्वरूप को (आपन्) प्राप्त करते हैं । वे परमेश्वर के (यज्ञियानि नामानि) यज्ञ अर्थात् उपासना योग्य नाना नामों

को (दधिरे) धरते, उसका नाना नामों से स्मरण करते हैं, वे (भद्रायां) सुख और कल्याण करने वाले (सं-दृष्टौ) सम्यक् दृष्टि, दर्शन में विराजते हुए (रणयन्त) आनन्द लाभ करते हैं।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ।५।३५

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (क्षितयः) बसने वाले जीव और प्रजागण (त्वा वर्धन्ति) तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरे यश की वृद्धि करते हैं। (रायः त्वा) समस्त ऐश्वर्य तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा गौरव बतलाते हैं। (जनानां उभयासः) मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों वर्ग तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा यशोगान करते हैं। तू ही (सदम् इत्) सदा ही वा आश्रय गृह के समान (मनुष्याणां त्राता) मनुष्यों का रक्षक और (तरणे) संसार-सागर को पार करने के निमित्त (चेत्यः) उत्तम दान देने हारा, (भूः) है और तू ही (पिता माता) पिता माता के तुल्य पालक और उत्पादक है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम॥ ६॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् विद्वान्, नेता, आचार्य और परमेश्वर (सपर्येण्यः) सदा पूजा, सत्कार, उपासना योग्य है। वह (विक्षु) प्रजाओं में (होता) ज्ञान और सुखों का देने वाला और (यजीयान्) दान, सत्संग, मैत्रीभाव आदि करने में सबसे श्रेष्ठ होकर (नि ससाद) विराजता है। वह (मन्द्रः) स्तुत्य और आनन्दप्रद है। हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! (तं) उस (दीदिवांसं) देदीप्यमान अग्निवत् स्वयं प्रकाश, तेजस्वी (त्वां) आप को (दमे) घर में वा इन्द्रियों के दमन करने वा प्रजाशासन के निमित्त (ज्ञु-बाधः) घुटने मोड़कर (नमसा) विनयपूर्वक नमस्कार करते हुए (उप सदेम) तेरे समीप बैठें, तेरी उपासना करें।

तं त्वा॑ व॒यं सु॒ध्यो॒३॒॑ नव्य॑मग्ने सुम्ना॒यव॑ ईमहे देव॒यन्तः॑ ।
त्वं विशो॑ अनयो॒ दीद्या॑नो दि॒वो अ॑ग्ने बृह॒ता रो॑च॒नेन॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वयंप्रकाश ! ज्ञानवन् ! नेतः ! (वयं) हम लोग (सुम्नायवः) सुख चाहते हुए और (देवयन्तः) तुझे चाहते हुए (सुध्यः) उत्तम बुद्धि वाले होकर (त्वा ईमहे) तुझे प्राप्त करते, तुझ से (दिवः ईमहे) अनेक कामनाएं याचना करते हैं। (त्वं) तू (बृहता रोचनेन) बड़े भारी प्रकाश से सूर्य के समान (दीद्यानः) चमकता हुआ (विशः) समस्त प्रजाओं की (दिवः) नाना प्रकाशों के समान उनकी समस्त कामनाओं को (अनयः) प्राप्त कराता है, हमें भी प्राप्त करा।

वि॒शां क॒विं वि॒श्पतिं॒ शश्व॑तीनां नि॒तोश॑नं वृष॒भं च॑र्षणी॒नाम् ।
प्रेती॑षणिमि॒षय॑न्तं पाव॒कं राज॑न्तम॒ग्निं य॑ज॒तं र॑यी॒णाम् ॥ ८ ॥

भा०—हम लोग (शश्वतीनां) सदा विद्यमान, स्थायी जीवों वा (विशां विश्पतिं) समस्त प्रजाओं के पालक, प्रजापति और (चर्षणीनां) समस्त ज्ञानदर्शी, विद्वान् मनुष्यों के बीच (वृषभं) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्व-श्रेष्ठ, मेघवत् उदार, बलवान् (नितोशनं) समस्त दुःखों और बाधक शत्रुओं के नाशने वाले (प्रेति-इषणिम्) प्राप्त पदार्थों के देने और चाहने वाले, अथवा (प्र-इति-इषणं) उत्तम पद को प्राप्त करने की इच्छा करने और अन्यों को प्रेरणा करने वाले (इषयन्तं) और अन्यों को उद्देश्य तक पहुँचा देने वा अन्नवत् पुष्ट करने वाले, (पावकं) परम पावन, (राजन्तम्) राजा के समान तेजस्वी, (रयीणां) नाना ऐश्वर्यों, बलों और भोग्य सुखों के (यजतं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् नायक, विद्वान्, प्रभु को हम (ईमहे) प्राप्त हों, उसी की प्रार्थना, उपासना करें।

सो अ॑ग्न ईजे शश॒मे च॒ मर्तो॒ यस्त॒ आन॑ट् स॒मिधा॑ ह॒व्यदा॑तिम् ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ नमो॑भि॒र्विश्वेत्स वा॒मा द॑धते॒ त्वोतः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् प्रभो ! (यः) जो पुरुष (ते) तेरी

(समिधा) समिधा सहित अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार देदीप्यमान, तेरे गुणों को प्रकाशित करने वाली स्तुति से (हव्य-दातिम्) अन्नादि दान क्रिया के तुल्य उत्तम वचन प्रदान (आनट्) करता है (सः) वह (ईजे) यज्ञ करता है, तेरा सत्संग करता है (सः शशये) वह तेरी स्तुति प्रार्थना करता है, वह शान्ति लाभ करता है और (यः) जो (नमोभिः) नमस्कारों सहित तेरे निमित्त (आहुतिं परि वेद) सब प्रकार के दान देता वा विनय सत्कारों सहित तेरे नाम की पुकार करता है (सः इत्) वही (त्वा-उतः) तेरे से सुरक्षित रहकर (विश्वा वामा) समस्त उत्तम ऐश्वर्य (दधते) धारण करता है।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१०॥

भा०—(नमोभिः, समिधा हव्यैः) जिस प्रकार अग्नि की अन्नों, समिधाओं और हवन योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र क्रिया की जाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! हम लोग (अस्मै) इस (महे) महान्, गुणों से पूज्य (ते) तेरी (नमोभिः) उत्तम अन्नों, नमस्कारों और सत्कारों से (समिधा) अच्छी प्रकार से चमकने वाली विद्या (उत) और (हव्यैः) उत्तम अन्नों, वचनों से (महि विधेम) बड़ा सत्कार करें और (वेदी) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली इस भूमि में हे (सहसः सूनो) शत्रुपराभवकारी सैन्यबल के सञ्चालक राजन् ! विद्वन् ! हम लोग (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) उत्तम उपदेशों द्वारा प्रेरित होकर (ते) तेरी प्रदान की (भद्रायां सुमतौ) कल्याणकारिणी शुभमति के अधीन रहकर सदा (आ यतेम) सर्वत्र प्रयत्न करते रहें।

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (रोदसी) आकाशस्थ समस्त पिण्डों और इस पृथिवी को (भासा) अपने प्रकाश से (आ वि ततन्थ) सब ओर विविध प्रकारों से व्यापता और उनको विविध २ प्रकार का बनाता है जो (श्रवोभिः) गुरुजनों द्वारा श्रवण करने योग्य ज्ञानमय वेदवचनों द्वारा (श्रवस्यः) श्रवण करने योग्य है, जो (बृहद्भिः वाजैः) बड़े ज्ञानों, बलों, ऐश्वर्यों से (तरुत्रः) संसार के संकटों से पार उतारने वाला है वह (स्थविरेभिः) ज्ञान और अनुभव में वृद्ध पुरुषों और (रेवद्भिः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों द्वारा हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (अस्मे) हमारे लिये (वि तरं) विशेष रूप से (वि भाहि) प्रकाशित हो और हमें विशेष रूप से पार होने का उपाय प्रकाशित कर। (२) राजा विशेष तेज से राजा प्रजा दोनों को या सेनापति रूप दुष्टनाशक की सेनाओं को विशेष रूप से फैलाता है, कीर्त्ति से प्रसिद्ध शत्रुहिंसक, बहुत से अन्नों वा बलवान् वीरों, ज्ञान वृद्धों और लक्षपतियों से हमें चमकाता है वही अग्निवत् मुख्य पद पाने योग्य है।

नृवद्व॑सो॒ सद॒मिद्धे॑ह्य॒स्मे भूरि॑ तो॒काय॒ तन॑याय प॒श्वः ।
पू॒र्वीरिषो॑ बृह॒तीरा॒रेअ॑घा अ॒स्मे भ॒द्रा सौ॑श्रव॒सानि॑ सन्तु ॥ १२ ॥

भा०—हे (वसो) जगत् को बसाने हारे प्रभो ! राष्ट्र, नगरादि बसाने हारे राजन् ! (अस्मे तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र पौत्र की रक्षा के लिये और (नृवत् सदम्) मनुष्यों, भृत्यों से युक्त घर, उत्तम नायकों से युक्त राजसभा को (धेहि) प्रदान कर और (अस्मे) हमें (भूरि पश्वः धेहि) बहुत से पशु प्रदान कर और (अस्मे) हमें (पूर्वीः इषः) समृद्ध अन्न, (बृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाएं और बड़ी २ सेनाएं जो (आरे-अघाः) पापों और पापियों को दूर भगा दें, प्राप्त हों। (अस्मे) हमारे (भद्रा) सुखदायक, कल्याणजनक (सौश्रवसानि) उत्तम अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य (सन्तु) हों।

पु॒रूण्य॑ग्ने पुरु॒धा त्वा॒या वसू॑नि राजन्व॒सुता॑ ते अश्याम् ।
पु॒रूणि॒ हि त्वे पु॑रुवार॒ सन्त्यग्ने॒ वसु॑ विध॒ते राज॑नि॒ त्वे ।१३।३८।४॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! प्रभो! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (ते) तेरे (वसूनि पुरूणि) ऐश्वर्य बहुत प्रकार के हैं। इसी कारण (ते वसुता) तेरा राष्ट्र को बसाने वाला सामर्थ्य और स्वामित्व (पुरुधा) बहुत प्रजाजनों को धारण पोषण करने में समर्थ है। इसलिये मैं प्रजाजन (ते) तेरे ऐश्वर्यों का (अश्याम्) भोग करूं। हे (पुरुवार) बहुत से वरणीय धनों के स्वामिन्! बहुतों से वरण वा दुष्टों को वारण करने में समर्थ! (त्वे हि) तुझ अकेले के अधीन ही (पुरूणि) बहुत से (वसूनि) ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (त्वे राजनि) तुझ राजा के अधीन रहकर हे (अग्ने) अग्रणी नायक! (विधते) विविध उत्तम शिल्प रचने, विधान बनाने, वा विधान का पालन करने, कराने वाले पुरुष के लिये ही (ते वसु) तेरा समस्त ऐश्वर्य हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥ इति चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ९ भुरिगुष्णिक्। २ स्वराडुष्णिक्। ७ निचृदुष्णिक्। ८ उष्णिक्। ३, ४ अनुष्टुप्। ५, ६, १० निचृदनुष्टुप्। ११ भुरिगतिजगती॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

त्वं हि क्षैत॑वद्य॒शोऽग्ने॑ मि॒त्रो न पत्य॑से।
त्वं वि॑चर्षणे॒ श्रवो॒ वसो॑ पु॒ष्टिं न पु॑ष्यसि॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष! जिस प्रकार (क्षैतवत् यशः पत्यते) पृथिवी अन्न ऐश्वर्य को खूब बढ़ाती है उसी प्रकार तू भी (यशः पत्यसे) अन्न और यश का पतिवत् स्वामी हो, अथवा भूमि में उत्पन्न अन्न और तद्वत् भूमि में प्राप्त यश कीर्ति से भी समृद्ध हो। तू (मित्रः न) स्नेही मित्र और मरण से बचने वाले जल वा सूर्य के समान (यशः पत्यसे) अन्न और तेज का स्वामी हो। हे (विचर्षणे) विशेष रूप से राष्ट्र या ज्ञान को देखने हारे! (त्वं) तू ही (श्रवः) अन्न और ज्ञान को

(पुष्टिं न) शरीर पोषक अन्न वा पशु सम्पदा के समान ही (पुष्यसि) पुष्ट किया कर। (२) हे (विचर्षणे वसो) सबके द्रष्टा सबमें बसे अन्तर्यामिन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! तू (क्षेतवत् यशः मित्रः न पत्यसे) पार्थिव अन्न और मित्र, सूर्यवत् पालक है। तू हमारे ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ा।

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते।

त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (चर्षणयः) समस्त मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से और (गीर्भिः) वाणियों से, (त्वां हि ईडते स्म) तेरी ही स्तुति करते, तुझे चाहते हैं। (अवृकः) चोरी, कुटिलता आदि से रहित (वाजी) वेग, बल, ज्ञान और ऐश्वर्यवान् प्रजाजन (त्वां) तुझे (याति) प्राप्त होता है। तू (रजस्तूः) समस्त लोकों का प्रेरक और (विश्वचर्षणिः) समस्त विश्व का द्रष्टा है।

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।

यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३ ॥

भा०—विद्वन्! राजन्! प्रभो! (दिवः नरः) नाना कामनाएं वा आशाएं करने वाले जन और ज्ञान प्रकाश, व्यवहार और विजिगीषा आदि के प्रमुख नायक जन (सजोषः) समान प्रीति से युक्त होकर (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ के ध्वजा रूप अग्नि के तुल्य, परस्पर संगति और मान सत्कार के ज्ञापक (त्वा) तुझको ही (इन्धते) प्रदीप्त करते, तुझे बढ़ाते हैं। (यत् ह) क्योंकि (स्यः मानुषः जनः) वह मननशील मनुष्यगण, (सुम्नायुः) सुख की कामना करता हुआ (अध्वरे) हिंसा आदि दोषों से रहित यज्ञ, उपासनादि कर्म में, (जुह्वे) तेरे प्रति अपने समर्पण करता और (त्वा जुह्वे) तुझे पुकारता, स्वीकार करता है। स-जोषसः। त्वा। इति पदपाठः चिन्त्यः।

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते।

ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥

भा०—(यः मर्तः) जो मनुष्य (सुदानवे) उत्तम दानशील (ते) तेरे निमित्त स्वयं (ऋधत्) समृद्ध हो और (धिया) बुद्धि, ज्ञान और कर्म से (ते शशमते) तेरी स्तुति करता, तेरे लिये स्वयं शान्ति धारण करता है, हे प्रभो ! स्वामिन् ! (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा और तेरे दिये ज्ञान सामर्थ्य से (बृहत. दिवः) बड़ी २ कामनाओं को, बड़े २ लोकों को, बड़े २ सूर्यों को और (द्विषः) शत्रुओं को भी (अंहः न) पाप के समान (तरति) पार कर जाता है, उनसे बढ़ जाता है ।

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।

वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! हे अग्निवत् तेजस्विन् ! राजन् ! हे अग्निवत् देह को चेतन करने हारे आत्मन् ! (समिधा) काष्ठ सहित (आहुतिं) आहुति अग्नि में दी जाती है और वह बढ़ता है उसी प्रकार (यः मर्त्यः) जो मरणधर्मा मनुष्य (ते) तेरे लिये (समिधा) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले जल वायु के साथ २ (आहुतिम्) आदर श्रद्धा पूर्वक खाने योग्य अन्न, आदि और (आहुतिं) आदर पूर्वक वचन, स्तुति आदि (निशितं) खूब सूक्ष्म और प्रभावजनक रूप से (नशत्) प्रदान कराता है (सः) वह (वयावन्तं क्षयम्) शाखा वाले वृक्ष के तुल्य कर चरणादि से युक्त हुए देह को, (शतायुषम्) सौ वर्ष तक (पुष्यति) पुष्ट कर लेता है अर्थात् पूर्ण जीवन जी लेता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥

भा०—(धूमः दिवि) जैसे अग्नि का धूम और (त्वेषः) प्रकाश (ऋण्वति) आकाश में फैलता है उसी प्रकार हे (पावक) अग्नि के समान राष्ट्र, देह और चित्तों को पवित्र करने हारे राजन् ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (ते) तेरा (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमय, (त्वेषः) तीक्ष्ण तेज, प्रताप और (धूमः) शत्रुओं,

रोगों और पापों को कंपा देने वा दूर करने वाला सामर्थ्य (दिवि) भूमि, राजसभा और मनोकामना में (ऋण्वति) व्यापता है और (त्वं) तू स्वयं (शुक्रः) कान्तिमान् (आततः) सर्वत्र व्यापक, (सूरः न) सूर्य के समान (द्युना) कान्ति से और (कृपा) कर्म सामर्थ्य वा करुणा से (रोचसे हि) प्रकाशित होता, सबको अच्छा प्रतीत होता है, तुझे सब तेरी कान्ति और कृपा के कारण चाहते हैं।

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! (अध हि) तू निश्चय से (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य और (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सबको अतिक्रमण करके स्थित, सर्वोपरि और (नः प्रियः) हमारा प्यारा (असि) है। तू (पुरि इव जूर्यः) नगरी में रहने वाले वृद्ध, हितोपदेष्टा पुरुष के समान वा (रण्वः) रण-कुशल राजा के समान वा (सूनुः न) गृह में विद्यमान पुत्र के समान (रण्वः) रमणीय, सुखप्रद, (जूर्यः) हितोपदेष्टा और (सूनुः) सबका प्रेरक और (त्रययाय्यः) तीनों लोकों में व्यापक है। वृद्ध पुरुष तीनों आश्रमों वा बाल्य, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होने से 'त्रययाय्य' है। राजा मित्र, शत्रु, उदासीन वा आगे, पीछे और मध्य में आक्रमण करने वाले तीनों पर प्रयाण करने में समर्थ होने से 'त्रययाय्य' है। पुत्र माता, आचार्य और यज्ञवेदि तीनों में जन्म लाभ करने से 'त्रययाय्य' है। विद्वान् विद्या, तप और कर्म वा तीनों वेदों में निष्ठ होने से 'त्रययाय्य' है।

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (क्रत्वा द्रोणे अज्यते) संघर्षण क्रिया वा यज्ञ कर्म से वृक्ष के विकार रूप अरणी काष्ठ वा कुण्डपात्र में प्रकट होता

उसी प्रकार हे विद्वन् ! राजन् ! आत्मन् ! परमेश्वर ! तू भी (क्त्वा) ज्ञान और कर्म से (द्रोणे) जाने योग्य सन्मार्ग, राष्ट्र में, देह में और समस्त विश्व में (अज्यसे) प्रकाशित होता है। तू (वाजी न) वेगवान् अश्व के समान (कृत्व्यः) समस्त कर्मों का करने हारा है। तू (परिज्मा इव) सब तरफ जाने वाले वायु के समान (स्वधा) जीवन देने वाला, ऐश्वर्य का पोषक, धारक, तू (गयः) प्राणवत्, गृहवत्, (अत्यः न) वेगवान् अश्ववत् व्यापक, सर्वातिशायी और (शिशुः) बालक के समान शुद्ध पवित्र और प्रशस्त आचरण वाला एवं (ह्वार्यः) कुटिल पुरुषों का नाश करने वाला है। (२) जीव स्वयं देह का धारक होने से 'स्वधा' है।

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! (यवसे पशुः न) घास के निमित्त पशु के समान बुभुक्षित सा होकर (अच्युता त्या चित्) कभी च्युत न होने वाले उन समस्त लोकों को, वृक्षों को अग्निवत् प्रलयकाल में ग्रस लेता है और जिस प्रकार (शिक्वसः) दीप्तियुक्त अग्नि के (धामा वना वृश्चन्ति) तेज ज्वालाएं वनों को भस्म कर देती हैं उसी प्रकार हे (अजर) अविनाशी ! प्रभो ! (शिक्वसः) प्रकाशमान, शक्तिशाली (ते) तेरे (यत् धामा) जो तेज और धारण सामर्थ्य हैं वे (वना) भोगने योग्य समस्त लोकों का (वृश्चन्ति) विनाश कर देते हैं। (२) तेजस्वी राजा के धारक सैन्यादि बल शत्रु के सैन्यों को काट गिराते हैं।

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम्।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरीयताम् विशाम्) यज्ञ करने वाले प्रजाओं के (दमे) गृह में (होता) विद्वान् होता के समान दाता होकर (वेषि) प्रकाशित हो। हे (विश्पते) प्रजा के पालक ! तू उनको (समृधः कृणु) समृद्ध कर और हे (अङ्गिरः) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू

(हव्यम्) आहुतिवत् ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न आदि पदार्थ और स्तुत्य वचन को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर ।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेहवान् मित्रों का आदर करने वाले ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (देव) दानशील ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (देवान् नः) हम कामनायुक्त अर्थियों को (रोदस्योः) माता पिता के समान जनों का (सुमतिं) शुभ ज्ञान (वोचः) उपदेश कर । तू (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि, उत्तम निवास स्थान को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (वीहि) प्राप्त कर, प्रकाशित कर । तू (दिवः नॄन् वीहि) कामनायुक्त पुरुषों को प्राप्त कर । (द्विषः, अंहांसि) शत्रुओं और पापों और (दुरिता) बुरे कर्मों को भी हम (तरेम) पार करें । (तव अवसा) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (ता) उनको (तरेम) तर जावें और (तरेम) सदा तर जाया करें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् ।
२, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! प्रभो ! (सः) वह (ऋतपाः) सत्य का पालक, धर्मात्मा, (ऋते-जाः) सत्य ज्ञान में जन्म लाभ करने वाला, (देवयुः) शुभ गुणों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाला पुरुष (क्षेषत्) दीर्घ जीवन पाता, इस लोक में रहता और (ते ज्योतिः नशते) तेरे ज्ञानमय प्रकाश को प्राप्त करता है । हे (देव) राजन् ! प्रभो ! (यं) जिस (मर्त्तम्) मनुष्य को (सजोषाः) प्रेम से युक्त (वरुणः) सब दुःखों का वारक, सर्वश्रेष्ठ (त्वं) तू (मित्रेण) स्नेहवान् मित्र

सहित (त्यजसा) दान से (पासि) पालन करता और (अंहः) पाप नाश करता है वही परम ज्योति लाभ करता है ।

ईजे य॒ज्ञेभिः शश॒मे शमीभिर्ऋ॒धद्वा॑राया॒ग्नये॑ ददाश ।
ए॒वा च॒न तं य॒शसा॒मजु॑ष्टि॒र्नांहो॒ मर्तं॑ नशते॒ न प्रदृ॑प्तिः ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष (यज्ञेभिः) दान, देवपूजन, सत्संगों से (ईजे) यज्ञ करता है, (शमीभिः शशमे) उत्तम कर्मों से अपने को शान्त करता है वा शान्तिजनक उपायों, स्तुतियों से प्रभु की स्तुति करता है और जो (ऋधद्वाराय) समृद्ध करने वाले धनों, व्यवहारों से युक्त (अग्नये) अग्नि में आहुति के तुल्य ज्ञानवान् पुरुष के हितार्थ (ददाश) दान करता है (एव चन) इस प्रकार निश्चय से (तं) उसको (यशसाम् अजुष्टिः) यशों अन्नों का अभाव (न नशते) प्राप्त नहीं होता, (तं मर्त्तं) उस मनुष्य को (अंहः न नशते) पाप भी स्पर्श नहीं करता और उसको (प्रदृप्तिः न नशते) भारी दर्प, घमण्ड वा मोह भी नहीं होता ।

सूरो॒ न यस्य॑ दृश॒तिर॑रे॒पा भी॒मा यदेति॑ शुच॒तस्त॒ आ धीः ।
हेष॑स्वतः शु॒रुधो॒ नायम॒क्तोः कुत्रा॑ चिद्र॒ण्वो व॑स॒तिर्व॑ने॒जाः ॥३॥

भा०—(यस्य) जिसका (दृशतिः) दर्शन, सत्य ज्ञान वा दृष्टि (सूरः न) सूर्य के समान सत्य अर्थ को प्रकाशित करने वाली (अरेपाः) पापों से रहित (भीमा) दुर्जनों को भय देने वाली है और (यत् शुचतः) अग्नि के समान चमकते हुए जिसको (धीः) उत्तम बुद्धि और कर्म (आ एति) प्राप्त होता है, (अक्तोः) सब पदार्थों को स्पष्ट कर देने वाले और (शुरुधः न) अन्धकार के नाशक तेजस्वी सूर्य के समान ही उस (हेषस्वतः) गंभीर गर्जनावत् वाणी बोलने हारे (ते) तुझ उपदेष्टा का (कुत्रचित्) कहीं भी हो वहां ही (रण्वः) अति रमण योग्य (वनेजाः) काष्ठ में अग्निवत्, किरणों में सूर्यवत् ही उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य, वा शान्तिदायक वन में उत्पन्न (वसतिः) निवास होता है ।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् वा राजा का (एम) ज्ञान और मार्ग (तिग्मं चित्) सूर्य के प्रकाश के समान अतितीक्ष्ण हो और (वर्पः महि) रूप, आकार महान्, विशाल और (भसत्) चमकने वाला तेजस्वी हो। वह स्वयं (अश्वः न) वेगवान् अश्व के समान (आसा) मुख से (यमसानः) यम अर्थात् संयम का सेवन करने वाला, वाचंयम तथा मिताहारी, निर्लोभ हो। वह (परशुः न) फरसे के समान अज्ञान के नाश करने में (जिह्वां) अपनी तीक्ष्ण वाणी का धार के समान (वि-जेहमानः) विविध प्रकार से प्रयोग करता हुआ (द्रविः न) ताप से धातु को गला कर शोधने वाले नियारिये, स्वर्णकार के समान (द्रावयति) समस्त मलों पाप, अज्ञान वा शत्रुओं को दूर कर देता है वह ही अग्नि के समान (दारु) काष्ठवत् छेदन भेदन करने वाले शत्रु सैन्य वा भय मोहादि जनक, वा हृदयविदारक शोकादि को भी (धक्षत्) भस्म कर देता है।

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(असिष्यन् अस्ता इव) जिस प्रकार बाण फेंकने वाला धनुर्धर बाण को धनुष में लगाकर शत्रु पर फेंकता है उसी प्रकार (सः इत्) वह विद्वान् भी (असिष्यन्) बन्धन में बंधता हुआ, सखड्ग वीर के तुल्य (प्रति धात्) उसको सामर्थ्य पूर्वक सहे और प्रतिकार करे। जिस प्रकार शिल्पी (अयसः न धारां शिशीते) लोहे की धार को तेज करता है उसी प्रकार विद्वान् भी वाणी को तीक्ष्ण करे, वार २ अभ्यास से कुशल बनावे। (यः) जो (अरतिः) आगे जाने वाला, वा कहीं पर भी आसक्त न हो, असंग हो, वह (चित्र-ध्रजतिः) अद्भुत वेगवान् गति वाला होकर (अक्तोः) रात्रि काल में (द्रुसद्वा वेः न) वृक्ष पर विराजने वाले पक्षी के समान

(रघु-पत्म-जंहाः) लघु, तुच्छ २ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ देता है। अथवा वह (अक्तोः वेः न) रात्रि के प्रकाशक सूर्य के तुल्य, तेजस्वी होकर (द्रुसद्वा) रथ से जाने वाले, रथवान् पुरुष के समान (रघु-पत्म जंहाः) वेग से सुदूर मार्गों को जाने में समर्थ होता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (अरुषः) रोष रहित होकर (दिवानक्तं) रात दिन (ईम्) इस जगत् को सूर्यवत् सन्मार्ग पर चलाता, जो (अमर्त्यः) असाधारण मनुष्य होकर (नॄन्) मनुष्यों का शासन करता है और जो (अरुषः) मर्म स्थानों पर वश करके, (दिवा) तेज, ज्ञान प्रकाश से (नॄन्) मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाता है (सः) वह पुरुष ही (रेभः न) सूर्यवत् उत्तम ज्ञानों का उपदेष्टा, स्वयं पूज्य, अन्यों का सत्कारक होकर (उस्राः प्रति वस्ते) किरणों के तुल्य, स्वयं ऊपर को निकलने वाली वाणियों को धारण करता है और वह (मित्रमहाः) मित्रों, स्नेही जनों का आदर करने हारा (शोचिषा) अग्नि के समान दीप्ति युक्त वाणी से (रारपीति) उत्तम उपदेश करता है।

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

भा०—(दिवः न) तेजस्वी सूर्य के समान (विधतः) कर्म या उपदेश करते हुए (यस्य) जिसके (नवीनोत्) उत्तम उपदेश ध्वनित होता है और जो स्वयं (वृषा) वर्षणशील मेघ के तुल्य (रुक्षः) कान्तिमान, उन्नत पद पर आरूढ़ होकर (ओषधीषु) वनस्पतियों के तुल्य प्रजाओं और सेनाओं पर (नूनोत्) आज्ञा वा शासन करता है और (यः) जो (घृणा) दीप्ति और (ध्रजसा) वेग से युक्त होकर (पत्मना) उत्तम मार्ग से (यन्)

आता हुआ (वसुना) ऐश्वर्य से (सु-पत्नी) सुख से राष्ट्र का पालन करने वाले, (रोदसी) शत्रुओं को रुलाने वाले, सेनापति और सैन्य दोनों को, उत्तम पुत्रादि के पालक पति पत्नी के समान ही (दम्) दमन करता वा पुष्ट करता है।

धार्याभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥४॥

भा०—(यः) जो (विद्युत् न) विशेष कान्तियुक्त सूर्य वा बिजली के समान (अर्कैः) अर्चना करने योग्य, (युज्येभिः) कार्यों में नियुक्त करने योग्य, (धार्याभिः) कार्यभारों को उत्तम रीति से धारण करने वाले अधीनस्थ पुरुषों से, किरणों के समान और (स्वेभिः) अपने (शुष्मैः) शत्रुशोषक बली और सैन्यों से (दविद्योत्) निरन्तर चमकता है और (यः) जो (मरुताम्) वायुवत बलवान् वीर पुरुषों के (शर्धः) सैन्य, बल को (ततक्ष) तैय्यार करता है वह (ऋभुः न) बहुत तेज से चमकने वाले, महान् सूर्य के समान (त्वेषः) तीक्ष्ण कान्ति से युक्त (रभसानः) वेगवान्, कार्यकुशल होकर (अद्यौत्) चमकता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४ निचृत् पंक्तिः । ८ पंक्तिः । अष्टर्चं सूक्तम् ।

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ १ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मननशील विद्वान् (यज्ञेभिः) यज्ञों से (देवताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञ के अवसर पर (यजाति) यज्ञ करता, यथायोग्य सत्कार, दान आदि करता है, हे (होतः) दान देने वाले ! हे (सहसः सूनो) शत्रु पराभवकारी सैन्य बल के सञ्चालक सेनापते ! बल के देने वाले ! हे (अग्ने) विद्वन् नायक ! प्रभो ! तु (एव)

उसी प्रकार (अद्य) आज (देवान्) धनैश्वर्यादि कामना करने वाले (उशतः) तुझे चाहते हुए (समानान्) पदाधिकार में समान बलवीर्य वाले, वा मान सहित रहने वाले (नः) हम लोगों को (समना) संग्राम, यज्ञादि के अवसर पर (यक्षि) वेतन, सुख, ऐश्वर्यादि देता और संगत कर हमें सुप्रबद्ध करता है, तू नायक होने योग्य है।

स नो॑ वि॒भावा॑ च॒क्षणि॒र्न वस्तो॑र॒ग्निर्व॒न्दारु॒ वेद्य॒श्चनो॑ धात् ।
वि॒श्वायु॒र्यो अ॒मृतो॒ मर्त्ये॑षूष॒र्भुद्भू॒दति॑थिर्जा॒तवे॑दाः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वायुः) सबको जीवन देने वाला, (अमृतः) अमरणधर्मा, मृत्युरहित, निर्भय, (मर्त्येषु) मरणशील, मनुष्यों जीवों के बीच में (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सर्वव्यापक (जात-वेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का उत्पादक, समस्त उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता (भूत्) है (सः) वह (विभावा) विशेष कान्ति से युक्त, (चक्षणिः) सबका द्रष्टा, (अग्निः) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश (वेद्यः) बुद्धि वा ज्ञान से जानने वा शरण योग्य प्रभु, विद्वान् (वस्तोः) बसने के निमित्त, सब दिन (नः) हमें (वन्दारु) उत्तम स्तुति करने योग्य (चनः) अन्न और ज्ञान (धात्) देवे।

द्यावो॒ न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः ।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒कोऽश्न॑स्य चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (अभ्वं) महान् सामर्थ्य को (द्यावः न) ये समस्त चमकने वाले सूर्य, नक्षत्र आदि, किरणों के समान (पनयन्ति) स्तुति करते हैं और जो (सूर्यः न) सूर्य के समान (शुक्रः) कान्तिमान् स्वयं तेजःस्वरूप होकर (भासांसि) समस्त ज्योतियों को (वस्ते) आच्छादित, या वस्त्रों को पुरुष के समान धारण करता है। (यः) जो (अजरः) जरा मरणादि से रहित (पावकः) सबको पवित्र करने वाला, अग्निवत् तेजस्वी, परम पावन होकर (वि इनोति) विविध प्रकार से व्यापता है, वह ही अग्नि जिस प्रकार (अश्नस्य पूर्व्याणि शिश्नथत्)

भोजन के दृढ़ रूपों को शिथिल कर देता है उसी प्रकार वह परमेश्वर (अश्नस्य) भोक्ता जीव के भोग्य कर्म फलादि के (पूर्व्याणि) पूर्व किये कर्म बन्धनों को (शिश्नथत्) शिथिल कर देता है।

व॒न्द्या हि सू॑नो॒ अस्य॑द्म॒सद्वा॑ च॒क्रे अ॒ग्निर्ज॒नुषाज्मान्न॑म् ।

स त्वं न॑ ऊर्जसन॒ ऊर्जं॑ धा॒ राजे॑व जेरवृ॒के क्षे॑ष्य॒न्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूनो) जगत् के उत्पादक और सञ्चालक ! तु (वद्मा) वन्दना करने योग्य और सब मनुष्यों को उपदेश करने हारा (असि) है। तू ही (अद्मसद्वा) समस्त भोग योग्य कर्म फलों पर अधिष्ठातृ रूप से भोजनों में अग्नि के तुल्य स्वादप्रद होकर विराजता है। तू ही (अग्निः) सर्वप्रकाशक होकर जीवों के लिये (जनुषा) जन्म द्वारा (अज्म) प्राप्त करने योग्य (अन्नं) अन्नवत् भोग्य फल को (चक्रे) बनाता है। (सः) वह (त्वं) तू (ऊर्जसनः) अन्नों, बलों का देने हारा (नः) हमें (ऊर्जं) अन्न (धाः) प्रदान कर और तू (राजा इव) राजा के समान (जेः) विजय कर, (अवृके अन्तः) भेड़िये के समान चोर, क्रूर पुरुषों से रहित, निर्विघ्न राष्ट्र में बसने वाले राजा के समान (अवृके अन्तः) चोरी, कुटिलतादि से रहित अन्तःकरण में (क्षेषि) निवास करता है।

नि॒ति॒क्ति यो वा॑र॒णमन्न॒मत्ति॑ वा॒युर्न राष्ट्र्यत्ये॑त्य॒क्तून् ।

तु॒र्याम॒ यस्त॑ आ॒दिशा॒मरा॑ती॒रत्यो॒ न ह्रुतः॒ पत॑तः परि॒ह्रुत् ॥५।५॥

भा०—(यः) जो राजा (वारणम्) शत्रुओं को दूर भगा देने में समर्थ सैन्य बल को (नितिक्ति) खूब तीक्ष्ण बनाये रखता है और (अन्नम्) भोग्य ऐश्वर्य का अन्न के समान (अत्ति) भोग करता है या जो (नितिक्ति वारणं अत्ति) खूब तीव्र, बलदायक रोगनाशक अन्न खाता है। जो (राष्ट्री) राष्ट्र का स्वामी (वायुः न) वायु के समान बलवान् होकर (अक्तून्) सब दिनों वा रात्रियों को सूर्य के समान समस्त तेजस्वी पुरुषों को (अति एति) अतिक्रमण कर जाता है। हे नायक, प्रभो ! (यः) जो तू वेगवान् अश्व के

समान (ह्वारः) वक्र या विनम्र होकर (परिह्वर) सर्वत्र वक्र गति से गमन करता है उन (आदिशाम्) चौदिशों (पततः ते) प्रयाण करते हुए या चारों दिशाओं में स्थित तेरे (अरातीः) शत्रुओं को हम (तुर्याम) विनाश करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार (सूर्यः भानुमद्भिः अर्कैः अक्तः) सूर्य प्रकाशयुक्त किरणों से प्रदीप्त होकर (भासा रोदसी वि ततन्थ) दीप्ति से आकाश और पृथिवी को व्याप लेता है और (पत्मन् दीयन् शचिषा तमांसि परि नयत्) आकाश मार्ग से गमन करता हुआ प्रकाश से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार राजा (भानुमद्भिः अर्कैः) सूर्य प्रकाश से पके अन्नों और तेजस्वी पूज्य पुरुषों सहित (भासा) अपने तेज से (रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्गों को (आ ततन्थ वि ततन्थ) व्याप ले और विशेष रूप से विस्तृत करे और (औशिजः न) कान्तिमान् सूर्य के समान ही कामनावान् प्रजावर्ग का हितकारी होकर (पत्मन् दीयन्) सन्मार्ग से गमन करता हुआ (चित्रः) अद्भुत विस्मयकारी और (अक्तः) तेजस्वी होकर (शोचिषा) विद्या के प्रकाश से (तमांसि) अज्ञान, शोक, दरिद्रता आदि अन्धकारों को (परि नयत्) प्रजावर्ग से दूर करे।

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रभो! तेजस्विन्! (अर्कशोकैः) अर्चना करने योग्य, सूर्यवत् प्रकाशों से (मन्द्रतमम्) अति आनन्दजनक, अति प्रशंसनीय, (त्वां हि) तुझको ही हम (ववृमहे) वरण करते हैं। तू (नः) हमारे वचनों का (महि श्रोषि) खूब श्रवण कर। (इन्द्रं न) विद्युत् के

समान (शवसा) बल से सम्पन्न (देवता) तेजस्वी, वा मेघवत् दानशील और (शवसा वायुम्) बल से वायुवत् शत्रु और दुःखों को उखाड़ फेंकने वाले वा ज्ञान व अन्न से वायुवत् जीवन देने हारे, प्राणप्रिय तुझको (नृतमाः) श्रेष्ठ पुरुष (राधसा) धनैश्वर्य और आराधना द्वारा (पृणन्ति) पूर्ण करते, प्रसन्न करते हैं।

नू नो॑ अग्नेऽवृ॒केभिः॑ स्व॒स्ति वेषि॑ रा॒यः प॒थिभि॒ः पर्ष्यंहः॑।
ता सू॒रिभ्यो॑ गृण॒ते रा॑सि सु॒म्नं मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥८॥६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! तेजस्वी राजन्! पापदाहक प्रभो! तू (नु) शीघ्र ही (नः) हमें (अवृकेभिः पथिभिः) चोरों से रहित मार्गों से (रायः) धनैश्वर्यों तक (स्वस्ति) कुशलतापूर्वक (वेषि) पहुँचा और (अंहः पर्षि) पाप से पार कर। तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों और (गृणते) उपदेष्टा गुरुजन वा स्तुति करने वाले को (ता सुम्नं) नाना प्रकार के सुख (रासि) प्रदान करता है। उन्हें प्राप्त करके हम भी (सुवीराः) उत्तम वीरों और पुत्रों से सम्पन्न होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न हों। इति षष्ठो वर्गः॥

[५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्। २, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ भुरिक्पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

हु॒वे वः॑ सू॒नुं सह॑सो॒ युवा॑न॒मद्रो॑घवाचं म॒तिभि॒र्यवि॑ष्ठम्।
य इन्व॑ति॒ द्रवि॑णानि॒ प्रचे॑ता वि॒श्ववा॑राणि पुरु॒वारो॑ अ॒ध्रुक् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो! (यः) जो (प्रचेताः) उत्तम चित्त और ज्ञान वाला, (पुरु-वारः) बहुत से प्रजाजनों वा सदस्यों से वरण करने योग्य, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करने हारा होकर (विश्व-वाराणि) समस्त लोकों से स्वीकार करने योग्य (द्रविणानि) ऐश्वर्यों और ज्ञानों को (इन्वति) प्रदान करता है ऐसे (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित, प्रेम युक्त

हितकारी वाणी बोलने हारे (मतिभिः यविष्ठम्) उत्तम प्रज्ञाओं से युक्त और बुद्धिमान्, बलवान् पुरुष को (वः) आप लोगों के लिये, वा आप लोगों में से ही (सहसः सूनुम्) विजयी, बल के सञ्चालक और उत्पादक (हुवे) होने की प्रार्थना करता हूँ ।

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥

भा०—(क्षामा इव) जिस प्रकार भूमि उत्तम राजा के अधीन रहकर (विश्वा भुवनानि सौभगानि धत्ते) समस्त लोकों और समस्त ऐश्वर्यों को धारण करती है उसी प्रकार (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (यज्ञियासः) परस्पर सत्संग, मेल जोल से रहने वाले प्रजाजन (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पन्न प्राणियों और (सौभगानि) ऐश्वर्यों को (दधिरे) धारण करते हैं, हे (होतः) दाता राजन् ! हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों के स्वामिन् ! वे सब लोग (दोषा वस्तोः) दिन और रात्रि (वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को (त्वे) तुझे ही (एरिरे) दे देते हैं ।

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (आसु विक्षु) इन प्रजाओं के बीच में (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से (प्रदिवः) उत्तम २ कामनाओं को (सीद) प्राप्त कर, उत्तम २ ज्ञानवान् पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजमान हो और (वार्याणाम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनों का (रथीः) प्राप्त करने वाला (वार्याणाम्) पदाधिकारों के निमित्त चुनने योग्य उत्तम नायकों के बीच में तू ही (रथीः अभवः) महारथी के समान उत्तम सेनापति हो । हे (चिकित्वः) विद्वन् ! तू ! (विधते) सेवा करने वाले भृत्यजन को (वसूनि) नाना ऐश्वर्य, (आनुषक्) निरन्तर (वि इनोषि) विविध रूपों से दिया कर । (अतः) इसी कारण तू राजा बन ।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (यः) जो (सनुत्यः) निश्चित रूप से छुप कर (नः अभिदासत्) हमारा नाश करे और (अन्तरः) भीतर आकर (वनुष्यात्) मारे, (तम्) उसको (अजरेभिः) बलवान् (तव स्वैः) तु अपने ही निज पुरुषों और (अजरेभिः) वृद्धावस्था से रहित (वृषभिः) प्रबन्धक, बलवान् पुरुषों द्वारा (तपसा) अपने सन्तापक सामर्थ्य और तप से (तप) तपा, सन्तप्त कर। हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य ! मित्रों के पूजक ! तू (तपसा) तपःसामर्थ्य से स्वयं भी (तपस्वान्) तपस्वी होकर (तप) तपस्या कर।

यस्ते यज्ञेन समिधाय उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक और उत्पादक स्वामिन् ! (यः) जो पुरुष (यज्ञेन) यज्ञ, दान, सत्संग आदि से और (उक्थैः अर्केभिः) वेदमन्त्रों, उत्तम वचनों और स्तुत्य पदों से (सम्-इधाय) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए (ते) तेरी वृद्धि के लिये (ददाशत्) अग्नि में आहुति के समान अपना अंश, कर आदि प्रदान करता है, हे (अमृत) अमरणधर्मा, बलवान् राजन् ! (सः) वह (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (राया) धन से (द्युम्नेन) यश और (शवसा) बल और ज्ञान से (वि-भाति) विशेष रूप से चमकता है।

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तेजस्विन् ! नायक ! तू (तूयम्) शीघ्र ही (सहसा) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य से (सहस्वान्) बलवान् होकर (स्पृधः) संग्राम की स्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को बलपूर्वक

(बाधस्व) पीड़ित कर और (इषितः) सेना आदि से सम्पन्न होकर (सः) वह तू (तत्) वह कार्य (कृधि) कर (यत्) जिससे तू (द्युभिः अक्तः) प्रकाश युक्त किरणों से चमकने वाले सूर्य के समान (द्युभिः अक्तः) तेजस्वी पुरुषों से स्नेहवान् होकर (वचोभिः शस्यसे) उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर सके। तू (जरितुः) उत्तम उपदेष्टा, ज्ञानवृद्ध पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य (घोषि) वेद वाणी के अनुकूल उपदेश को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक सेवन किया कर।

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अ॒श्याम॑ र॒यिं र॑यिवः सु॒वीर॑म्।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जरं॑ ते ॥७॥७॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! विद्वन्! हम लोग (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहते हुए (तं कामम्) उस २ कामना योग्य उत्तम पदार्थ का (अश्याम) भोग करें। हे (रयिवः) ऐश्वर्य के स्वामिन्! हम (सु-वीरम्) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिम् अश्याम) ऐश्वर्य का भोग करें। हम (वाजयन्तः) बल और धन की कामना करते हुए (ते वाजम्) तेरे अन्न और बल का (अश्याम) भोग करें और (ते अजराजरं) तेरे अविनाशी, नित्य (द्युम्नम्) ऐश्वर्य का (अश्याम) भोग करें। इति सप्तमो वर्गः॥

[६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ६, ७ त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्र नव्य॑सा॒ सह॑सः सू॒नुमच्छा॑ य॒ज्ञेन॑ गा॒तुमव॑ इ॒च्छमा॑नः।
वृ॒श्चद्व॑नं कृ॒ष्णया॑मं॒ रुश॑न्तं वी॒ती होता॑रं दि॒व्यं जि॑गाति ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसा) अति नवीन, अति स्तुत्य (यज्ञेन) परस्पर के सम्बन्ध, या दान प्रतिदान द्वारा (गातुम्) सन्मार्ग और उत्तम भूमि और (अवः) रक्षा और ज्ञान (इच्छन्) चाहता हुआ जन (सहसः

सूनुम्) बल के सम्पादक वा सञ्चालक (वृश्चद्-वनम्) वनों को काट डालने में समर्थ पशु या अग्नि के समान अज्ञान वा शत्रु के नाशक, (कृष्ण-यामम्) आकर्षण करने वाले, यम नियम-व्यवस्था से सम्पन्न (रुशन्तं) अति तेजस्वी, (होतारं) ऐश्वर्य वा ज्ञान के दाता, (दिव्यं) कामना करने योग्य, पुरुष के पास (वीती) इच्छापूर्वक (अच्छ जिगाति) जावे।

स श्वि॑ता॒नस्त॑न्य॒तू रो॑चन॒स्था अ॒जरे॑भि॒र्नान॑दद्भि॒र्यवि॑ष्ठः।
यः पा॑व॒कः पु॑रु॒तमः॑ पु॒रूणि॑ पृ॒थून्य॒ग्निर॑नु॒याति॒ भर्व॑न् ॥ २ ॥

भा०—(पावकः अग्निः पृथूनि भर्वन् अनुयाति) जिस प्रकार अग्नि बहुत बड़े २ काष्ठों को जलाता हुआ उनकी ही ओर जाता है उसी प्रकार (यः) जो (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी, सबको पवित्र करने वाला, (पुरुतमः) बहुतों में श्रेष्ठ, सबको पालन पोषण और तृप्त करने हारा, (भर्वन्) शत्रुओं को दग्ध करता और प्रजाओं को पालन करता हुआ (अग्निः) अग्रणी पुरुष (पृथूनि पुरूणि) बड़े २ और बहुत से सैन्यों के (अनुयाति) साथ चलता है। (सः) वह (श्वितानः) विद्युत् के समान श्वेत वर्ण, (तन्यतुः) गर्जनाशील, (रोचनस्थाः) सर्वप्रिय पद पर स्थित, (अजरेभिः) जरारहित, जवान, (नानदद्भिः) अति समृद्ध, गर्जनाशील नायकों के साथ (यविष्ठः) अति बलवान् होकर (पृथूनि पुरूणि भर्वन् अनुयाति) बड़े २ बहुत शत्रु सैन्यों को भस्म करता हुआ अनुगमन करता है।

वि ते॒ विष्व॒ग्वात॑जूतासो अग्ने॒ भामा॑सः शुचे॒ शुच॑यश्चरन्ति।
तु॒वि॒म्र॒क्षासो॑ दि॒व्या नव॑ग्वा॒ वना॑ वनन्ति धृष॒ता रु॒जन्तः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् अन्यों को प्रकाशित करने वाले विद्वन्! शत्रुओं को भस्म करने हारे नायक! (वात-जूतासः शुचयः भामासः) वायु से प्रेरित, अग्नि के कान्तियुक्त ज्वालासमूह जिस प्रकार सब ओर निकलते हैं उसी प्रकार (ते) तेरे (शुचयः) शुद्ध, ईमानदार, (भामासः) क्रोध या उग्रता से युक्त, (वात-जूतासः) वायुवत् प्रचण्ड वेग से प्रेरित

वीर लोग (शुचे) तेज या शुद्ध व्यवहार प्राप्त करने के लिये (विश्वक्) सब ओर (विचरन्ति) विचरते हैं। और वे (तुवि-म्रक्षासः) बहुतों से मेल करते हुए, (दिव्याः) तेजस्वी, (नवग्वाः) नयी से नयी, भूमि और चाल चलते हुए, (धृषता) शत्रु पराजयकारी बल से (वना रुजन्तः) शत्रु सैन्य के दलों को, फरसे से वनों के समान छिन्न भिन्न करते हुए (वना वनन्ति) नाना ऐश्वर्य भोगते हैं।

ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४॥

भा०—हे नायक! हे (शुचिष्मः) शुद्ध कान्तियुक्त तेजस्विन्! वा शुद्ध व्यवहार वाले! (ये) जो (ते) तेरे (विषितासः) विशेष रूप से बन्धन या प्रबन्ध में बंधे हुए (अश्वाः) अश्वों के समान आशुगामी अश्व सैन्य वा घुड़सवार शासक और भूमि के भोक्ता जमीदार लोग (क्षां वपन्ति) भूमि का छेदन भेदन करते, उस पर खेतियों को बोते वा काटते हैं या प्रजा से धन उगाहते हैं वे (शुक्रासः) शीघ्र कार्य करने हारे, शुद्ध और (शुचयः) सदाचारी और ईमानदार हों। (अध) और (ते उर्विया भ्रमः) तेरा विशाल भ्रमणशील या भरण पोषणकारी बल सामर्थ्य (पृश्नेः सानु अधि) भूमि के उच्च भाग, ऐश्वर्ययुक्त भाग, पर्वत शिखर पर मेघवत् विराजकर (यातयमानः) दुष्टों को दण्ड देता हुआ (विभाति) विशेष कान्ति से चमके।

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥ ५ ॥

भा०—(सृजाना अशनिः) उत्पन्न होती हुई विद्युत् की जिह्वा (वृष्णः) बरसते और (गो-सु-युधः जिह्वा) भूमि पर प्रहार करते मेघ से निकलती जीभ के समान (पापतीति) वेग से जाती है उसी प्रकार (गो-सु-युधः) भूमि के निमित्त युद्ध करने हारे (वृष्णः) बलवान् पुरुष की (जिह्वा) वाणी भी (पापतीति) बराबर आगे जाती है। वह (शूरस्य) शूरवीर पुरुष की

(प्र-सितिः) प्रबन्धक शक्ति और (क्षातिः) शत्रु को नाश करने वाली शक्ति, दोनों ही (दुर्वर्तुः) वारण नहीं की जा सकतीं। (भीमः) इस प्रकार वह भयानक राजा (वनानि दयते) ऐश्वर्यों वा भोग्य राष्ट्रों, या स्वसैन्य दलों को पालता और शत्रु सैन्य समूहों को नष्ट करता है। 'प्रसिति' प्रबन्धक शक्ति से पालता और 'क्षाति' अर्थात् विनाशक शक्ति से शत्रु का नाश करता है। इसी प्रकार (गो-सु-युधः) वाणी से युद्ध करने वाले तार्किक विद्वान् की वाणी विद्युत् के समान (सृजाना) नयी रचना करती हुई चलती है, वह उत्तम बन्धनयुक्त, सुग्रथित, दोषरहित हो।

आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ।
स बाधस्वापं भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (भानुना) तेज से (पार्थिवानि ज्रयांसि आ ततन्थ) पृथिवी पर के पदार्थों को सब ओर प्रकाशित करता है उसी प्रकार उत्तम विद्वान् नायक पुरुष भी (महः) बड़े भारी (तोदस्य) शत्रु को व्यापने वाले सैन्य के (धृषता) पराजयकारी सैन्य के (भानुना) तेज से (पार्थिवान्) पृथिवी के (ज्रयांसि) प्रासव्य राष्ट्रों, ऐश्वर्यों को (आततन्थ) सब ओर फैलावे। (सः) वह तू (सहोभिः) अपने प्रबल सैन्यों से (भया) भय देने वाले कारणों को (अप बाधस्व) दूर कर, स्वयं (वनुष्यन्) राष्ट्र का सेवन वा उपभोग करता हुआ (वनुषः) हिंसाकारी (स्पृधः) संग्रामकारी शत्रुओं को (नि जूर्व) अच्छी प्रकार नष्ट कर।

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥८॥

भा०—हे (चित्र) आश्चर्य कर्म करने हारे विद्वन्, राजन्! (सः) वह तू हे (चित्र-क्षत्र) आश्चर्यकारी वीर्य बल और राज्य के स्वामिन्! तू (अस्मे) हमें (चित्रम्) अद्भुत (चित्र-तमम्) सबसे अधिक संग्रह करने योग्य (वयो-धाम्) जीवन के पालन करने वाले, बलप्रद, अन्नप्रद, (चन्द्रं)

आह्लादकारी (पुरु-वीरं) बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य और (बृहन्तं) बड़े भारी (चन्द्रं) आह्लादकारी सुवर्णादि को भी (चन्द्राभिः) अह्लादकारिणी, सुखजनक वाणियों सहित (गृणते युवस्व) उपदेष्टा पुरुष को प्रदान कर। इत्यष्टमो वर्गः॥

[७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ७ स्वराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत्पंक्तिः। ४ स्वराट् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। ६ जगती ॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) प्रकाश या आकाश के (मूर्धानं) मूर्धा वा शिरवत् मुख्य केन्द्र, सूर्य के समान सर्वोपरि विराजमान, (पृथिव्या अरतिम्) पृथिवी के स्वामी, (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, (ऋते जातम्) सत्यज्ञान, व्यवहार, न्यायशासन और ऐश्वर्यादि में प्रसिद्ध पुरुष को (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी अग्र नेता रूप से (आ जनयन्त) बनावें और वे (कविं) क्रान्तदर्शी विद्वान्, मेधावी, (सम्राजम्) अच्छी प्रकार तेज से चमकने वाले, सम्राट् (जनानां) मनुष्यों के बीच में (अतिथिम्) सबसे अधिक आदर योग्य पुरुष को (आसन्) मुखवत् मुख्य पद पर प्रमुख (पात्रम्) पालक रक्षक (आ जनयन्त) बनाया करें। (२) परमेश्वर सूर्यादि प्रकाशमान, पृथिवी आदि अप्रकाशमान लोकों का प्रमुख स्वामी है, वह कवि, सम्राट्, सर्वव्यापक, परम पूज्य है। उसी को देव, विद्वान् जन अपना पालक करके जानते जनाते हैं।

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (वैश्वानरम) समस्त मनुष्यों के

हितकारी (यज्ञानां नाभिं) सब प्रकार के लेन देन और मेल जोल आदि के नाभिवत् मुख्य केन्द्र, (रयीणां सदनम्) ऐश्वर्यों के आश्रय, (महाम्) बड़े २ लोगों से (आहावम्) स्पर्धा करने वाले, वा बड़ों २ को आदर से बुलाने में समर्थ, या सबको अन्नादि देने हारे गृहवत् आश्रय पुरुष को प्राप्त कर उसके समक्ष (अभि सं नवन्त) आदर से झुकते हैं। (अध्वराणां रथ्यम्) यज्ञों वा संग्रामों के बीच महारथी और (यज्ञस्य) यज्ञ, दान, संगति आदि के (केतुम्) ज्ञापक, ध्वजा के तुल्य सर्वसाक्षी, पुरुष को ही (देवाः) विद्वान् लोग (आ जनयन्त) सर्वत्र प्रसिद्ध करें।

त्वद्विप्रो॑ जायते वाज्य॑ग्ने त्वद्वीरासो॑ अभिमातिषाहः॑।
वैश्वा॑नर॒ त्वम॒स्मासु॑ धेहि॒ वसू॑नि राजन्त्स्पृह॒याय्या॑णि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, परंतप ! हे ज्ञानयुक्त विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (त्वत्) तुझ से ही (विप्रः) विप्र, विद्वान् पुरुष (वाजी) बलवान् और अन्नैश्वर्यवान् (जायते) होता है। (त्वत्) तुझ से ही अधिकार प्राप्त करके (वीरासः) वीर पुरुष (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने हारे उत्पन्न होते हैं। हे (वैश्वानर) समस्त नायकों के नायक ! (त्वं) तू ही (अस्मासु) हममें (स्पृहयाय्याणि) चाहने योग्य नाना (वसूनि) ऐश्वर्य (धेहि) धारण करा।

त्वां विश्वे॑ अमृत॒ जाय॑मान॒ं शिशुं॒ न दे॒वा अ॒भि सं न॑वन्ते।
तव॒ क्रतु॑भिरमृत॒त्वमा॑य॒न्वैश्वा॑नर॒ यत्पि॒त्रोरदी॑देः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः) दानशील प्रिय सम्बन्धीजन जिस प्रकार (जायमानं शिशुं न) उत्पन्न होते हुए नवबालक को (अभि सं नवन्ते) लक्ष्यकर आशीर्वादादि के निमित्त उसके प्रति प्रेम से झुकते हैं उसी प्रकार हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के नायक ! हे (अमृत) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले ! (यत्) जब तू (पित्रोः) पालक माता पिताओं, एवं पिता वा गुरुजनों दोनों के अधीन उत्तम गुणों विद्यादि से (अदीदेः) प्रकाशित हो (देवाः) देव, विद्वान् लोग तुझ (जायमानं) उदय होते हुए, (शिशुं त्वां)

प्रशंसनीय तुझको (अभि सं नवन्ते) आदर पूर्वक झुकते हैं। वे (तव क्रतुभिः) तेरे कर्मों और ज्ञानों से ही (अमृतत्वम् आयन्) अमृत, अविनाशी सत्ता को प्राप्त हों।

वैश्वा॑नर॒ तव॒ तानि॑ व्र॒तानि॑ म॒हान्य॑ग्ने॒ नकि॒रा द॑धर्ष।
यज्जाय॑मानः पि॒त्रोरु॒पस्थेऽवि॑न्दः के॒तुं व॒युने॒ष्वह्ना॑म् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों में विद्यादि उत्तम गुणों से नायक होने योग्य ! (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो तू (पित्रोः) माता पिता विद्या और आचार्य उनके समीप (जायमानः) जन्म ग्रहण करता हुआ, अरणियों में अग्नि के समान (अह्नाम्) सब दिनों के करने योग्य (वयुनेषु) कर्मों और ज्ञानों में (केतुम् अविन्दः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त करता है (तव) तेरे (महानि व्रतानि) बड़े २ कार्यों कौर व्रताचरणों को (नकिः आदधर्ष) कोई भी नाश नहीं कर सके।

वै॒श्वा॒न॒रस्य॒ विमि॑तानि॒ चक्ष॑सा॒ सानू॑नि दि॒वो अ॒मृत॑स्य के॒तुना॑। तस्येदु॒ विश्वा॒ भुव॒नाधि॑ मू॒र्धनि॑ व॒या इ॑व रुरुहुः स॒प्त वि॒स्रुहः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(वैश्वानरस्य दिवः केतुना या सानूनि विमितानि) सब मनुष्यों के हितकारी सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार उच्च २ स्थल विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (वैश्वानरस्य) समस्त जीवों के हितकारी प्रभु के (दिवः) तेजःस्वरूप, कामना योग्य (अमृतस्य) मोक्ष रूप अमृत के स्वरूप (चक्षसा) सर्वप्रकाशक (केतुना) ज्ञान से (सानूनि) समस्त भोग्य ऐश्वर्य युक्त पदार्थ (वि-मितानि) विशेष रूप से बने हैं। (तस्य इत् मूर्धनि) उसके ही शिर पर, उसके ही आश्रय (विश्वा भुवना) समस्त लोक (वयाः इव) उसकी शाखाओं के समान (अधि रुरुहुः) स्थित हैं और उसी के शिर पर उसी के आश्रय (सप्त विस्रुहः) सात प्रवाहों के समान सात विकृतियां या सातों प्रकार के विसरणशील जीव सर्ग वा सात प्रकृति विकार (अधि रुरुहुः) स्थित हैं। (२) अध्यात्म में—अमृत, अविनाशी जीव के

दर्शन सामर्थ्य से समस्त इन्द्रियों और उसी के शिर के शाखावत् सात प्राण हैं। विद्वान् पक्ष में—(सप्त त्रिस्तुहः) सात छन्दोमय वाणियें उसके मस्तिष्क में हैं।

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ७।९

भा०—(यः) जो (वैश्वानरः) समस्त प्राणियों और पदार्थों में व्यापक, सबका सञ्चालक, परमेश्वर (सु-क्रतुः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (रजांसि) समस्त लोकों को (वि अमिमीत) विविध प्रकार से बनाता है और जो (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दिवः रोचना वि अमिमीत) आकाश या प्रकाश से युक्त सूर्यादि लोकों को किरणोंवत् बनाता है (यः) जो (विश्वा भुवनानि परि पप्रथे) समस्त उत्पन्न लोकों को सब ओर फैलाये है, वह (अदब्धः) कभी नाश न होने वाला (गोपाः) समस्त भूमियों, गतिशील सूर्यों और जन्तुओं का पालक और (अमृतस्य) अमृत, जीव प्रकृति आदि तत्वों का (रक्षिता) रक्षक है। इति नवमो वर्गः॥

[८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, ४ जगती। ६ विराड् जगती। २, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्।

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥१॥

भा०—(पृक्षस्य) स्नेहवान्, विद्यादान आदि सम्बन्धों से सम्पर्क करने वाले, (वृष्णः) मेघ के समान ज्ञानोपदेश को देने वाले, बलवान्, (अरुषस्य) तेजस्वी रोष वा हिंसा से रहित (जात-वेदसः) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, समस्त धनों के स्वामी पुरुष के (विदथा) ज्ञानों और प्राप्ति साधनों और (सहः) सहनशीलता और बल की (नु) भी अवश्य हम (प्र वोचम्) स्तुति करें और उत्तम गुणों वाले पुरुष को बल वृद्धि और

ज्ञानों का उपदेश करें। (वैश्वानराय अग्नये) सबके नायक अग्रणी पुरुष की (नव्यसी मतिः) अति स्तुत्य बुद्धि और वाणी (शुचिः) अति पवित्र शुद्ध रूप से (चारुः) अति सुन्दर होकर (सोम इव पवते) ओषधि रस के तुल्य दुःखनाशक होकर प्रकट होती है।

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान्, विद्वान्, शिष्य (परमे) सबसे उत्कृष्ट (व्योमनि) विशेष रूप से रक्षा करने वाले, आकाशवत् विशाल, ज्ञानवान् गुरु के अधीन, आकाश में सूर्य के तुल्य (जायमानः) जन्म लेता हुआ (व्रत-पाः) व्रतों का पालक होकर (व्रतानि) नाना व्रतों का (अरक्षत) पालन करे। वह (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, उत्तम कर्मकुशल पुरुष (वैश्वानरः) सबका हितैषी सबको सन्मार्ग पर ले जाने वाला, आचार्य होकर (अन्तरिक्षम्) रसवत् भीतर विद्यमान ज्ञान को (वि अमिमीत) विशेष रूप से ज्ञात करे और (महिना) बड़े सामर्थ्य से (नाकम्) सुख को (अस्पृशत्) प्राप्त करे और अन्यों को करावे।

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (रोदसी वि-अस्तभ्नात्) आकाश और पृथिवी दोनों को थामता है, (ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत्) प्रकाश से अन्धकार को लुप्त कर देता है, (चर्मणी इव धिषणे वि अवर्त्तयत्) दो चमड़ों के समान सबके धारक अन्तरिक्ष, पृथिवी दोनों को विशेष व्यापारवान् करता है (विश्वम् वृष्ण्यम् अधत्त) वर्षण योग्य जल को धारण करता है उसी प्रकार (वैश्वानरः) समस्त शिष्यगण को सन्मार्ग पर ले जाने हारा विद्वान् पुरुष (मित्रः) सबको स्नेह करने वाला होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् नर नारी दोनों को (वि अस्तभ्नात्) विशेष नियमों में स्थिर

करे। वह (अद्भुतः) आश्चर्यकारक, (ज्योतिषा) ज्ञान ज्योति से (तमः) शोक, अज्ञान रूप अन्धकार को (अन्तः-वावत्) लुप्त (अकृणोत्) करे। वह (धिषणे) व्रतों और आश्रमों के धारण करने वाले स्त्री पुरुषों को (चर्मणी इव) सूत्रों से दो चर्मों के समान मिला, एवं ग्रथित कर (वि-अवर्त्तयत्) विशेष कार्यों में प्रवृत्त करे। वह (वैश्वानरः) सबका नायक, होकर (विश्वम् वृष्ण्यम्) सब बलों को (अधत्त) धारण करे, करावे। (२) वह परमेश्वर सूर्य, पृथिवी आदि को धारण करता, अन्धकार को सूर्य प्रकाश से नाश करता, आकाश भूमि को घुमाता, सब बलों और विश्व को धारता है।

अपामुपस्थे महिषा अंगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् लोग (अपाम् उपस्थे अग्निम् अगृभ्णत) जलों और मेघों में से भी विद्युत् और अग्नि को ग्रहण करते हैं और (मातरिश्वा दूतः परावतः विवस्वतः अग्निम् वैश्वानरम् अभरत्) ज्ञान वा अग्नि विद्या का वेत्ता पुरुष दूर स्थित सूर्य से भी वैश्वानर अग्नि को यन्त्र द्वारा संग्रह कर लेता है उसी प्रकार (अपाम् उपस्थे) आप्त जनों के बीच में (विशः) वैश्यजन वा प्रजाएं (महिषाः) बड़े भारी ऐश्वर्य देती हुईं (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (राजानम्) तेजस्वी राजा को (उप तस्थुः) प्राप्त हों, (मातरिश्वा) भूमि पर वेग से जाने में समर्थ (दूतः) शत्रुओं को सन्ताप देने वाला विद्वान् पुरुष (परावतः) दूर देश के भी (विवस्वतः) विविध वसु अर्थात् ऐश्वर्यों और प्रजाओं से समृद्ध देश से (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी नायक (वैश्वानरं) सबके नायक, पुरुष को (आ अभरत्) प्राप्त करे।

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! (युगे युगे) प्रति वर्ष, (गृणद्भ्यः) उपदेश देने वाले विद्वानों को (विदथ्यं) युद्ध, यज्ञ आदि से उत्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य और (यशसं) अन्न और यश एवं (नव्यसीं) अति स्तुत्य, शुभ वाणी और सत्कार क्रिया को (धेहि) दिया और किया कर। हे (राजन्) राजन् ! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंक देने हारे ! जैसे (पव्या इव वनिनं) वज्र या कुठार से वन के वृक्ष को काटा जाता है और जैसे (तेजसा वनिनं न) तेज से जल युक्त मेघ को छिन्न भिन्न किया जाता है उसी प्रकार (पव्या) चक्र की धारा वा तलवार से और (तेजसा) तीक्ष्ण तेज से (अघ-शंसं) पाप की बात कहने वा पाप हत्यादि करने वाले चोर डाकू वा (वनिनं) वन में छुपे हिंसक पुरुष को (नीचा निवृश्च) नीचे गिराकर काट डाल।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी, नायक ! तू (अस्माकम्) हमारे बीच में जो (मघवत्सु) धन ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न पुरुष हैं उनमें (अनामि) कभी न झुकने वाले, अखूट (क्षत्रम्) धनैश्वर्य और (अजरम्) अविनाशी, जरावस्था से रहित, सदा जवान, शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला (सुवीर्यम्) उत्तम बल-वीर्य (धारय) धारण करा। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (वैश्वानर) सबके नायक ! (वयं) हम (तव ऊतिभिः) अपनी रक्षा साधन सेनाओं से (शतिनं सहस्रिणं वाजम्) सैकड़ों और सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य को (जयेम) विजय करें।

अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन्।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ७।१०

भा०—हे (त्रि-सधस्थ) तीनों सभा स्थानों के स्वामिन् ! तू (इष्टे) अभिलषित कार्य में लगे (अस्माकम्) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों

की (अदब्धेभिः गोपाभिः) न नाश होने वाले, दृढ़ रक्षकों द्वारा (पाहि) रक्षा किया कर। (नः) हमारे (ददुषां) करादि देने वाले प्रजाजनों के (शर्धः) बल की (रक्ष) रक्षा कर। हे (अग्ने) अग्रणी नायक! हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के नायक! तू (स्तवानः) प्रशंसित होकर (प्र तारीः च) सबको दुःखों से पार कर। इति दशमो वर्गः॥

[९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः। ३, ४ पंक्तिः। ७ भुरिग्जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

अह॑श्च कृ॒ष्णमह॒रर्जु॑नं च॒ वि व॑र्तेते॒ रज॑सी वे॒द्याभिः॑।
वै॒श्वा॒न॒रो जाय॑मानो॒ न राजावा॑तिर॒ज्ज्योति॑षा॒ग्निस्तमां॑सि॥ १॥

भा०—(कृष्णं च अहः) काला दिन अर्थात् रात्रि और (अर्जुनं च अहः) श्वेत, प्रकाशित दिन दोनों (वेद्याभिः) स्वयं जानने योग्य नाना घटनाओं सहित (रजसी) सबका मनोरञ्जन करते हुए (वि वर्तेते) बार २ आते हैं और (वैश्वानरः अग्निः) सबका नायक सञ्चालक सूर्य (राजानम्) राजा के समान देदीप्यमान होकर (ज्योतिषा तमांसि अव अतिरत्) तेज से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार (रजसी) एक दूसरे के मनों को अनुरञ्जन करने वाले राजा, प्रजा वा स्त्री-पुरुष लोग (वेद्याभिः) जानने योग्य कर्मों, 'वेदि', या यज्ञवेदि पर प्रतिज्ञा रूप से करने योग्य क्रियाओं द्वारा, दिन रात्रि के समान विविध व्यवहार करें और (वैश्वानरः) सबका नायक राष्ट्र में राजा एवं गृहस्थ में बालक, गृह में आहवनीय अग्नि, गृहपति और हृदय में परमेश्वर तेज से समस्त शोक, अज्ञानादि अन्धकारों को दूर करे।

नाहं तन्तुं॒ न वि जा॑ना॒म्योतुं॒ न यं वय॑न्ति समरेऽत॑मानाः।
कस्य॑ स्वित्पु॒त्र इ॒ह वक्त्वा॑नि प॒रो व॑दा॒त्यव॑रेण पि॒त्रा॥ २॥

भा०—(अहं) मैं (न तन्तुं वि जानामि) न तन्तु, वा तनना ही जानता हूँ और (न ओतुम्) न बुनना अथवा बरनी ही जानता हूँ और (न) न उसको जानता हूँ (यं) जिसको (समरे) समर में गमन करने योग्य परम लक्ष्य के निमित्त (अजमानाः) जाते हुए (वयन्ति) बुनते हैं। इस विषय में (कस्य स्वित् पुत्रः परः) किसी का अति ज्ञानी पुत्र (अवरेण पित्रा) उरे के, अल्प ज्ञानी पिता के द्वारा (परः) और उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर इस रहस्य के विषय में (वक्त्वानि वदाति) योग्य वचनों का उपदेश कर सकता है। कोई ही विलक्षण पुत्र होता है जो पिता वा गुरु से शिक्षा पाकर उनसे भी अधिक ज्ञानवान् होकर ब्रह्मत्व आदि यथार्थ रूप से बतला सके, नहीं तो हम जीवों में इतना अज्ञान है कि हम अरनी-बरनी और वस्त्रादि कुछ भी नहीं जानने वाले अनाड़ी के समान साधन, उपासना और साध्य कुछ नहीं जानते और पैदा हो जाते हैं। याज्ञिकों के मत से—यज्ञ रूप वस्त्र है, गायत्री आदि छन्द 'तन्तु' हैं, अध्वर्यु के कर्म 'ओतु' हैं, देवयजन स्थान 'समर' है, उनमें उन सबका उपदेष्टा कोई ही होता है। ब्रह्मवादियों के मत से—यह जगत् प्रपञ्च दुर्विज्ञेय है, इसमें आकाशादि सूक्ष्म पञ्चभूत 'तन्तु' हैं और स्थूल पञ्चभूत 'ओतु' है, संसारी जीव इस संसार 'समर' में निरन्तर जाते हुए क्या करते हैं यह पता नहीं लगता। इस रहस्य को कोई ज्ञानी ही बता सकता है।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥ ३ ॥

भा०—(सः इत्) वह ही (तन्तुं) 'तन्तु' को जानता है और (सः ओतुं विजानाति) वही 'ओतु' अर्थात् बरनी को भी जानता है, (सः) वह ही (ऋतुथा) समय २ पर और प्रति ज्ञानयोग्य काल में (वक्त्वानि) उपदेश करने योग्य वचनों का भी (वदाति) उपदेश करता है। (यः गोपाः) जो सबका रक्षक, (परः) सबसे उत्कृष्ट होकर (अन्येन) दूसरे के द्वारा

(अमृतस्य पश्यन्) अविनाशी आत्मा का साक्षात् करता, उसको देखता हुआ भी (अवः चरन्) इस लोक में व्यापता हुआ (ईं चिकेतत्) वह इस रहस्य को जान लेता है।

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥ ४ ॥

भा०—जीव का वर्णन—हे विद्वान् पुरुषो ! (अयं हि) यह ही (प्रथमः होता) सबसे उत्तम, समस्त सुखों का ग्रहण करने और देने वाला है (इमं पश्यत) इसका साक्षात् करो। (मर्त्येषु) मर जाने वाले देहों में (इदं अमृतं ज्योतिः) यह कभी नाश न होने वाली 'ज्योति' है। यह चेतन ज्योति कभी नाश नहीं होती। (अयं) यह (सः) वह (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, (तन्वा वर्धमानः) शरीर से बढ़ता हुआ (ध्रुवः) सदा स्थिर, नित्य (आ नि-सत्तः) शरीर या गर्भ में स्थिर होकर (जज्ञे) जन्म लेता है। (२) ईश्वर पक्ष में—वह सब का स्वामी, इन मरण-धर्मा जीवों में ज्योति है। जो 'होता' सब सुखों का दाता, ध्रुव, कूटस्थ, अमृत, ब्रह्माण्ड से भी कहीं बढ़ा है, (आ नि-सत्तः) सर्वत्र व्यापक है। (स जज्ञे) वह संसार को पैदा करता है।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥

भा०—इस देह में (दृशये) दर्शन करने के लिये (ध्रुवं) स्थिर नित्य (ज्योतिः) ज्योति, सुख दुःखादि का प्रकाश करने वाला, स्वयं प्रकाश आत्मा (नि-हितं) स्थित है जो (कम्) स्वयं सुखमय कर्त्तारूप है और (पतयत्सु) गति करने वाले वा अपने २ स्थान पर अपनी वृत्तियों के स्वामी के समान अध्यक्षों के तुल्य प्राणों वा विषयों की ओर दौड़ते हुए इन्द्रियों के बीच में, या उनके ऊपर घोड़ों पर सारथि के समान (अन्तः) देह के ही भीतर (जविष्ठं) अति वेग से युक्त (मनः) ज्ञान करने का

साधन 'मन' स्थित है। (विश्वेदेवाः) विषयों की कामना करने वाले सब इन्द्रियगण वा प्राण, (समनसः) मन के सहित मिलकर (सकेताः) ज्ञान-युक्त होकर (एकम् क्रतुम् अभि) एक ही कर्त्ता आत्मा की ओर (वि यन्ति) विशेष रूप से जाते हैं। वे मन सहित चेतनवत् देव, सुनकर उसी एक कर्त्ता आत्मा को प्राप्त हैं, उसी को अपना ज्ञान देते हैं। सब इन्द्रिय पृथक् २ होकर भी एक भोक्ता आत्मा को बतलाती हैं। "अस्ति आत्मा दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥" न्यायसूत्र। ३। २। १॥ ये देव प्राणगण नर हैं उनका स्वामी जीवात्मा 'वैश्वानर' है।

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी॒३दं ज्योति॒र्हृद॑य॒ आहि॑तं॒ यत्।
वि मे॒ मन॑श्चरति दू॒र आ॑धीः किं स्वि॑द्व॒क्ष्यामि॒ किमु॒ नू म॑निष्ये ६

भा०—(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे दोनों कान विविध दिशाओं को जाते हैं और (चक्षुः वि पतयन्ति) आंख भी विविध प्रकार से जाती वा ये स्वामिवत् स्वतन्त्र से होकर विविध कार्य करते हैं, कान सुनते और आंखें देखती हैं और (यत्) जो (ज्योतिः) सबका प्रकाशक और दीपक वा सूर्यवत् स्वयं प्रकाश स्वरूप (इदं) यह प्रत्यक्ष, अनुभववेद्य (हृदये आ-हितम्) हृदय में रक्खा है, यह भी इस शरीर में (वि पतयति) विशेष रूप से स्वामी होकर शासन करता है और (मे मनः) मेरा मनन करने वाला मन भी (दूरे आधीः) दूर २ देश के पदार्थों का निरन्तर ध्यान करता हुआ (वि चरति) विविध प्रकार से विचरता है, तो फिर इस रहस्य के विषय में मैं (किं स्विद् वक्ष्यामि) वाणी द्वारा क्या और क्योंकर कहूँ, (किम् उ नु मनिष्ये) मैं क्या और क्योंकर मनन कर सकूं?

विश्वे॑ दे॒वा अ॑नमस्यन्भिया॒नास्त्वाम॑ग्ने॒ तम॑सि तस्थि॒वांस॑म्।
वै॒श्वा॒न॒रो॑ऽवतू॒तये॒ नोऽम॑र्त्योऽवतू॒तये॑ नः ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, स्वप्रकाश, एवं अग्रणी! (भियानाः) भय से व्याकुल (विश्वे देवाः) समस्त विषयाभिलाषी

इन्द्रियगण (तमसि) अन्धकार में (तस्थिवांसम्) स्थित दीपक के समान चमकने वाले (त्वाम्) तुझको (अनमस्यन्) नमस्कार करते हैं, तेरी ओर झुकते हैं, तेरी शरण आते हैं। जैसे अन्धकार के समय सब लोग भयभीत होकर वनादि में अग्नि या दीपक की, अज्ञान दशा में गुरु की और प्रजाजन दस्यु आदि से भयभीत होकर प्रतापी पुरुष की शरण लेते, उसके आगे झुकते हैं उसी प्रकार ये इन्द्रियगण मृत्यु या शक्तिरहितता से भय करके पुनः चेतना लेने के लिये आत्मा की शरण जाते हैं। (वैश्वानरः) समस्त प्राणों में स्थित, सबका सञ्चालक, सब मनुष्यों में विद्यमान वह (अमर्त्यः) अविनाशी आत्मा ही (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (नः) हमें सदा (अवतु) प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार पापों से भयभीत विद्वान् जन सर्व प्रभु परमात्मा को प्राप्त करें। वह अपनी रक्षा शक्ति से हमारी रक्षा करे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ४ आर्षी पंक्तिः। २, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ७ प्राजापत्या बृहती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम्।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (यज्ञे प्रयति) प्रयत्न साध्य सत्संग, देवपूजा और दान आदि सत्कर्म करने के अवसर में और (अध्वरे) हिंसादि से रहित प्रजापालन आदि कर्म में (वः) अपने और अपने में से (मन्द्रं) स्तुति योग्य, (दिव्यं) ज्ञान में कुशल, तेजस्वी, (अग्निम्) स्वयं प्रकाश, ज्ञानवान् और अग्रणी पुरुष को (पुरः) अपने आगे साक्षी रूप से (दधिध्वम्) स्थापित करो। उपासना काल में प्रभु को सर्वसाक्षी उपास्य जानो, यज्ञादि कर्म में विद्वान् को पुरोहित बनाओ और प्रजाशासनादि कार्य में प्रतापी नायक को प्रधान पद पर स्थापित करो।

(सः हि) वह निश्चय से (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, (जात-वेदाः) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला और ऐश्वर्यों का स्वामी है। वह (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (नः) हमारे (पुरः) समक्ष साक्षी होकर (सु-अध्वरा) उत्तम अहिंसनीय, प्रजापालनादि सत्कार्यों का (करति) सम्पादन करे।

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥ २ ॥

भा०—हे (द्युमः) कान्तिमन्! सूर्यवत् तेजस्विन्! हे 'द्यु' अर्थात् पृथिवी और उत्तम कामना, सद्-व्यवहार आदि के स्वामिन्! हे (पुर्व-णीक) बहुत सी सेनाओं के स्वामिन्! बहुत से मुखों वाले, बहुत से वक्ता विद्वानों वा सैन्यों के स्वामिन्! हे (होतः) अधीनों को अन्न वेतनादि देने वाले! दातः! हे (अग्ने) अग्रणी, स्वयंप्रकाश! शत्रु को दग्ध करने वाले प्रतापिन्! तू (अग्निभिः) अग्निवत् तेजस्वी, अपने अंगों में नमने वाले, विनयशील भृत्यों, ज्ञानवान् विद्वानों द्वारा (इधानः) प्रकाशों से अग्नि के समान चमकता हुआ, (तम् उ स्तोमं) उस स्तुति-वचन को सुन वा स्तुत्य पद उत्तम सैन्य बल को ग्रहण कर (यम्) जिस (शूषं) सुख-कारी वचन या शत्रुपोषक शुद्ध, पवित्र, धार्मिक बल को (मतयः) बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार (पवन्ते) स्वच्छ रूप से प्रकट करते हैं जिस प्रकार (ममता इव शूषं शुचि घृतं न) माता या बुद्धिमती स्त्री, बलकारी, शुद्ध तेजस्कर दुग्ध, घृत, जलादि को स्वच्छ कर प्रदान करती है।

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३॥

भा०—(यः विप्रः) जो विद्वान् पुरुष (अग्नये) अग्रणी और विद्वान् पुरुष को (उक्थैः) उत्तम आदर योग्य वचनों से अग्नि में आहुति के समान (ददाश) देने योग्य पदार्थ, ज्ञानादि प्रदान करता है (सः) वह (मर्त्येषु)

मनुष्यों के बीच में (पीपाय) वृद्धि को प्राप्त होता है। (चित्र-शोचिः) अद्भुत कान्ति वाला, तेजस्वी पुरुष (तम्) उस दानशील विद्वान् को (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत २ रक्षा साधनों से (पीपाय) बढ़ाता है और (गो-मतः व्रजस्य) गौओं वाले अर्थात् गो समूह के (साता) सेवनीय ऐश्वर्य के ऊपर (दधाति) उसको पुष्ट करता है, उसका उसे स्वामी बना देता है। प्रजाजन राजा को करादि देता है वह उसको अन्न सम्पदा से बढ़ाता है। प्रजाजन को वह तेजस्वी पुरुष उत्तम रक्षा-साधनों से बढ़ाता और गवादि पशु समृद्धि के बल पर या वाणी, शासनाज्ञा से युक्त गमनयोग्य न्याय मार्ग के (सातौ) ठीक प्रकार से प्रदान करके पालता पोषता है।

आ यः प॒प्रौ जाय॑मान उ॒र्वी दू॑रे॒दृशा॑ भा॒सा कृ॒ष्णाध्वा॑।
अध॑ ब॒हु चि॒त्तम॒ ऊर्म्या॑यास्ति॒रः शो॒चिषा॑ ददृशे पाव॒कः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि वा सूर्य (दूरे-दृशा भासा उर्वी आ पप्रौ) दूर से दीखने वाली कान्ति से आकाश पृथिवी को पूर्ण कर देता है (अध ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिषा तिरः ददृशे) और जिस प्रकार वह रात्रि के बहुत २ से अन्धकार को अपनी कान्ति से दूर कर देता है उसी प्रकार (कृष्ण-अध्वा) संसार-मार्ग पर सुख से जाने हारा, कृत्यकृत्य (यः) जो पुरुष (जायमानः) उदित होते हुए सूर्य के समान प्रकट होकर अपने (दूरेदृशा भासा) दूरदर्शी ज्ञान प्रकाश से, (उर्वी) अपने माता पिता और बड़े स्त्री पुरुषों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है, वह (पावकः) सबको पवित्र करने हारा, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (ऊर्म्यायाः) उत्तम ज्ञान सम्पादन करने में लग्न जनता के (बहु चित् तमः) बहुत से अज्ञान अन्धकार को (शोचिषा) ज्ञान दीप्ति से (तिरः ददृशे) दूर करके यथार्थ पदार्थ का दर्शन कराता है।

नू न॑श्चि॒त्रं पु॑रु॒वाजा॑भिरू॒ती अग्ने॑ र॒यिं म॒घव॑द्भ्यश्च धेहि।
ये राध॑सा॒ श्रव॑सा॒ चात्य॒न्यान्त्सु॒वीर्ये॑भिश्चा॒भि सन्ति॒ जना॑न् ॥५॥

भा०—(ये) जो लोग (राधसा) धनैश्वर्य, ईश्वराराधन और कार्य

साधन से, (श्रवसा) यश और ज्ञान से और (सु-वीर्येभिः च) उत्तम वीर्य-वान् पुरुषों, बलयुक्त कार्यों और सामर्थ्यों से (जनान्) साधारण जनों से (अभि सन्ति) बढ़ जाते हैं, हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तेजस्विन् ! तू उन (मघवद्भ्यः) दान करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों के स्वामियों से (च) भी (चित्रं रयिम्) आश्चर्यजनक ऐश्वर्य (पुरु-वाजाभिः ऊती) बहुत अन्न और बलशाली भूमियों, सेना और रक्षाकारी उपायों से (नः) हमें (धेहि) प्रदान कर और हमें पालन पोषण कर । राजा को चाहिये कि धनवानों के धनों से भूमियों और सेनाओं को पुष्ट करे और उन द्वारा सामान्य प्रजाओं के पालन पोषण की व्यवस्था करे ।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (हविष्मान् उशन् आसानः जुहुते, अग्निः यज्ञं चनः दधाति) अन्न चरु का स्वामी सुख कामना युक्त होकर अग्नि में हवि होमता और वह अग्नि यज्ञ और अन्नादि हवि को स्वीकार करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक तेजस्विन् ! (हविष्मान्) अन्नादि देने योग्य कर आदि से युक्त प्रजाजन (आसानः) सुखपूर्वक राष्ट्र में रहता हुआ और (उशन्) तुझे चाहता हुआ और तुझसे शुभ आशाएं चाहता हुआ (यं ते जुहुते) जिस पदार्थ को तेरी वृद्धि के लिये देता है तू (इमं यज्ञं) इस दिये दान और पूजा सत्कार और (चनः) अन्नादि पदार्थ को (उशन् धाः) कामनावान् होकर ही धारण कर । तू (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्यों, अन्नों और बलों सैन्यों को धारण करने वाले प्रबल पुरुषों के आश्रय ही (सु-वृक्तिम्) राष्ट्र में उत्तम मार्ग और शत्रु सेना का सुख से वर्जन करने वाली शक्ति सेना को भी (दधिषे) धारण पालन कर । (गध्यस्य) सभी के चाहने योग्य ऐश्वर्य की (सातौ) संग्राम के बल पर प्राप्त करने वा प्रजा-जनों में यथोचित रीति से विभाग कर देने के लिये (अवीः) रक्षा कर ।

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन्! हे स्वामिन्! तू (द्वेषांसि) द्वेष के भावों तथा द्वेष करने वाले शत्रुजनों को (वि इनुहि) दूर कर, (इडां) हमारी अभिलाषा करने योग्य, भूमि और उत्तम वाणी को (वर्धय) बढ़ा और हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर और उत्तम पुत्रादि से युक्त होकर (शत-हिमाः) सौ सौ हेमन्तों, सौ सौ बरसों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न रहें। इति द्वादशो वर्गः॥

[११]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्पंक्तिः। षडृचं सूक्तम्॥

यज॑स्व होतरिषि॒तो यजी॑या॒नग्ने॒ बाधो॑ म॒रुतां॒ न प्रयु॑क्ति।
आ नो॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ नास॑त्या॒ द्यावा॑ हो॒त्राय॑ पृथि॒वी व॑वृत्याः॥१॥

भा०—हे (होतः) देने हारे! तू (यजीयान्) सबसे बड़ा देने हारा और (इषितः) हमारे इच्छाओं का विषय, प्रिय है। (इषितः सन्) हम लोगों से प्रेरित एवं प्रार्थित होकर हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! तू (मरुताम्) मनुष्यों को (बाधः) बुरे मार्ग से रोकने और (प्रयुक्ति) उत्तम कर्म में लगाने वाला ज्ञान-बल और कर्मबल (यजस्व) प्रदान कर और (नः होत्राय) हमें देने और अपने अधीन लेने के निमित्त ही (मित्रा-वरुणा) स्नेहवान्, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले श्रेष्ठ और दुष्टों का वारण करने वाले और (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, एवं नासिका स्थान अर्थात् अग्रपद पर विराजने योग्य, (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य सबको ज्ञान का प्रकाश और आश्रय तथा जीवन अन्न देने वाले स्त्री पुरुषों को (आववृत्याः) सब प्रकार के कार्यों में आदर पूर्वक नियुक्त कर।

त्वं होता॑ म॒न्द्रत॑मो नो अ॒ध्रुग॒न्तर्दे॒वो वि॒दथा॒ मर्त्ये॑षु।
पा॒व॒कया॑ जु॒ह्वा॒३ वह्नि॑रा॒साग्ने॒ यज॑स्व त॒न्वं॑ तव॒ स्वाम्॥२॥

भा०—देह की गृहस्थ से तुलना। जिस प्रकार (देवः) बलप्रद आत्मा अग्निवत् (मर्त्येषु अन्तः अध्रुक्) मरणशील देहों के बीच में देहों

का द्रोह या नाश न करता हुआ, (मन्द्रतमः) आनन्द जनक एवं स्फूर्त्ति जनक (वह्निः) शरीर को वहन करने में समर्थ होकर (पावकया जुह्वा) पवित्रकारक, शरीरशोधक अन्न ग्रहण करने वाली शक्ति से (स्वां तन्वं यजते) अपने शरीर में यज्ञ करता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! (त्वं) तू (होता) अन्नादि का दाता, (मन्द्र-तमः) अति स्तुत्य, एवं अपने अधीनों को हर्षित करता और स्वयं अति प्रसन्न रहता हुआ, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करता हुआ, (देवः) दानशील, तेजस्वी, सत्य ज्ञान का प्रकाशक होकर (मर्त्येषु विदथा अन्तः) मनुष्यों के बीच में, यज्ञ में (वह्निः) गृहस्थ के भार को वहन करने में समर्थ होकर, (पावकया जुह्वा) अति पवित्र करने वाली, आहुति अर्थात् वीर्याधान योग्य, वा प्रेमोपहारादि की पात्ररूप पत्नी के साथ तू (तव स्वां तनूं यजस्व) अपने देह को संगत कर, पति पत्नी भाव से एक देह होकर रह और (आसा) मुख अर्थात् वाणी द्वारा भी (यजस्व) उसको अपने साथ मिला । (२) इसी प्रकार 'अग्निवत्' तेजस्वी नायक राजा, अद्रोही दाता सदा प्रसन्न प्रकृति हो, (पावकया जुह्वा) दोष शोधक, वाणी और मुख से अपने देह के समान राष्ट्र रूप देह को प्राप्त करे ।

धन्या॑ चि॒द्धि त्वे धि॒षणा॒ वष्टि॒ प्र दे॒वाञ्जन्म॑ गृण॒ते यज॑ध्यै ।
वेपि॑ष्ठो अङ्गि॑रसां॒ यद्ध॒ विप्रो॒ मधु॑ च्छ॒न्दो भन॑ति रे॒भ इ॒ष्टौ ॥३॥

भा०—स्वयं वरण का प्रकार—(यद् ह) जब (विप्रः) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों में पूर्ण, बुद्धिमान् (रेभः) विद्वान् उत्तम वचनों को कहने वाला पुरुष (इष्टौ) यज्ञ वा सत्संग के निमित्त (मधु) मधु के समान, मधुर, मनोहर (छन्दः) अपनी स्वतन्त्र इच्छा को (वदति) कहता है और (अंगिरसां मध्ये वेपिष्ठः) अंगारों के बीच में कम्पनशील अग्नि के समान, विद्वानों के बीच में सबसे उत्तम वेद मन्त्र, उपदेशादि का उच्चारण करता है, हे विवाह करने हारे पुरुष ! (अजध्यै) संगति लाभ के निमित्त (देवान्) कन्या के दान करने वालों, उसके पिता, भाई, माता आदि के

तथा अन्य विद्वान् पुरुषों के प्रति अपना (जन्म गृणते) जन्म काल तथा गोत्र, वंश आदि का उच्चारण करते हुए (त्वे) तुझे (धिषणा) गृहस्थ धारण करने में समर्थ और स्वयं पोषण योग्य (धन्या) धनैश्वर्य देने की योग्य पात्री, सौभाग्यवती स्त्री (चित् हि) भी (प्र वष्टि) अच्छी प्रकार कामना करे। (२) इसी प्रकार तेजस्वी पुरुषों से (वेपिष्ठः) शत्रुओं को कंपा देने वाला, आज्ञापक, मधुर इच्छा को प्रकट करे, वीरों के प्रति अपना स्वरूप बतलावे, तब पालने योग्य धन समृद्ध प्रजा उसको अपना पति, स्वामी बनाना चाहती है।

अदि॑द्युतत्स्व॒पा॑को वि॒भावाग्ने॒ यज॑स्व॒ रोद॑सी उरू॒ची ।
आ॒युं न यं नम॑सा रा॒तह॑व्या अ॒ञ्जन्ति॑ सुप्र॒यसं॒ पञ्च॒ जनाः॑ ॥४॥

भा०—अग्नि तुल्य वर का स्वरूप—जिस प्रकार अग्नि (वि-भावा) विशेष कान्ति से युक्त होता है, उसको (पञ्च-जनाः रात-हव्या अञ्जन्ति) पांचों जन, काष्ठ आदि उसमें देकर प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार (यं) जिस वरणीय (सु-प्रयसम्) उत्तम प्रयत्नशील उद्योगी को (पञ्च जनाः) पांचों प्रकार के जन (रात-हव्याः) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य पदार्थ देकर (आयुं न) अभ्यागत अतिथि वा अपने प्रिय जीवन प्राण के तुल्य (नमसा) आदर पूर्वक नमस्कार और अन्नादि सत्कार द्वारा (अञ्जन्ति) सुशोभित करते और चाहते हैं, वह (अपाकः) अन्यों को सन्तापकारी न होता हुआ (सु अदिद्युतत्) अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त होकर (उरूची) बहुत आदरयुक्त (रोदसी) रुचि से समीप आने वाली पत्नी के साथ (यजस्व) संगति लाभ कर। लोक रीति से वर के लाल कपड़े उसकी अग्नि की तुल्यता बतलाते हैं। अग्नि, 'काम' और वीर्य वा तेज का प्रतिनिधि है। (२) इसी प्रकार जिसको पांचों जन आदर करें वह तेजस्वी प्रजा को सन्ताप न देता हुआ चमके, (रोदसी) विस्तृत राज

प्रजावर्गों को प्राप्त करे। 'रोदसी'—रुद्रस्य पत्नी, 'रुद्रः', रुचा कान्त्या द्रवति आगच्छति।

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः॥ ५॥

भा०—गृहाश्रम की यज्ञ से तुलना। जिस प्रकार (नमसा बर्हिः वृञ्जे) कुशादि अन्न के साथ यज्ञ में काटकर वेदी पर लाया और बिछाया जाता है और (सु-वृक्तिः घृतवती स्रुक् अयामि) उत्तम रीति से त्यागने योग्य घी से भरी स्रुक्, बहती धार वा स्रुक् नाम पात्र अग्नि में थामा जाता है तब (यज्ञः अश्रायि) यज्ञ वेदि में स्थिर होता है, उसी प्रकार (यत्) जिस समय (अग्नौ) अग्निवत् तेजस्वी, विनयशील, अग्रनायक, पुरुष के निमित्त (नमसा) उत्तम अन्न और विनय नमस्करादि सत्कार द्वारा (बर्हिः) उसी को आदर बढ़ाने वाला, आसन (वृञ्जे ह) दिया जाता है, तब (सु-वृक्तिः) उत्तम गति वाली, उत्तम रीति से पति का वरण करने वाली, या सुखपूर्वक पिता द्वारा वरके हाथों में देने योग्य, (घृतवती) घृत के समान स्नेह से युक्त वा देह पर घृत का अभ्यंग किये, वा तेजस्विनी, अर्घ्य, पाद्य, जलादि से युक्त, सुन्दर सजी वधू (अयामि) विवाह द्वारा बंधती है, विवाही जाती है। वह (सद्म) अपने आश्रय रूप पति वा पति के गृह को भी (अम्यक्षि) प्राप्त होती है और उसी समय (यज्ञः) पत्नी के साथ संगति लाभ करने वाला, उसको धन वीर्यादि का दाता पुरुष भी (पृथिव्याः सदने स्वामी इव) पृथिवी के गृह में स्वामी के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के तुल्य स्त्री को (सदने) प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम में (सूर्ये चक्षुः न) सूर्य के प्रकाश से युक्त चक्षु के समान (अश्रायि) स्थित होता है। वधू पति को गृह समझ उस पर आश्रय करे और पुरुष उसको भूमि जान, उसी को अपना गृह जाने, उसमें आश्रय ले, दोनों एक दूसरे के लिये प्रकाश और चक्षु के समान उपकार्य उपकारक, प्रकाश्य प्रकाशक और द्रष्टा और दर्शक हों।

द॒श॒स्या नः॑ पुर्वणीक होतर्दे॒वेभि॑रग्ने अ॒ग्निभि॑रिधा॒नः ।
रा॒यः सू॑नो सहसो वावसा॒ना अति॑ स्रसेम वृ॒जनं॒ नांहः॑ ॥६॥१३॥

भा०—हे (पुर्वणीक) बहुत सी कान्तियों या शोभाओं से युक्त मुख वाले ! सुमुख ! हे (होतः) वधू को अन्न, धन, वस्त्रादि देने और कन्या को स्वयं स्वीकार करने हारे ! हे (अग्ने) अग्नि के समान कान्तिमान् ! तू (अग्निभिः) अग्नि के समान उज्ज्वल (देवेभिः) किरणों से सूर्य के समान उत्तम गुणों से (इधानः) प्रकाशित होता हुआ (नः) हमें (रायः) दान देने योग्य ऐश्वर्य (दशस्य) प्रदान कर । हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं बल के उत्पादक ! (वावसानाः) अपने को अच्छी प्रकार कवच, वस्त्रादि से आच्छादित करते, या बचाते हुए सुरक्षित रूप से हम (वृजनं न) वर्जन करने योग्य शत्रु वा गन्तव्य मार्ग के समान ही (अंहः) पाप को भी (अति स्रसेम) पार कर जावें । उसी प्रकार अग्रणी नायक तेजस्वी, विजयेच्छु पुरुषों सहित देदीप्त होकर हम प्रजाजनों को ऐश्वर्य दें, हम कवचादि से आच्छादित होकर पापवत् शत्रु को पार करें । बहुत से सैन्यों का स्वामी 'पुर्वणीक' है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

मध्ये॒ होता॑ दुरो॒णे ब॒र्हिषो॒ राळ॒ग्निस्तो॒दस्य॒ रोद॑सी॒ यज॑ध्यै ।
अ॒यं स सू॒नुः सह॑स ऋ॒तावा॑ दू॒रात्सूर्यो॒ न शो॒चिषा॑ ततान ॥१॥

भा०—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और गृहपति विद्वान् का वर्णन । जिस प्रकार (यजध्यै बर्हिषः मध्ये बलस्य सूनुः राड् अग्निः दुरोणे सूर्यः न ततान) यज्ञ के निमित्त बिछे कुशामय आस्तरणों के बीच में बल द्वारा उत्पन्न चमकने वाला अग्नि गृह में सूर्य के समान अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक, एवं विद्वान् (रोदसी यजध्यै) स्त्री

पुरुषों और राजा प्रजा वर्गों को परस्पर संगत करने के लिये स्वयं (होता) दानशील होकर (तोदस्य) शत्रुजनों को और पीड़ादायी (बर्हिषः मध्ये) वृद्धिशील बिछे, कुशामय आस्तरणादि के बीच में (दुरोणे) अन्य प्रतिस्पर्धियों से न प्राप्त न होने योग्य उत्तम आसन वा पद पर या दुर्ग में स्थित होकर (सः) वह (राट्) तेजस्वी सम्राट् (सहसः सूनुः) शत्रु पर भयकारी सैन्य का सञ्चालक और (ऋतावा) सत्य न्याय का पालक होकर (दूरात्) दूर से ही (सूर्यः न) सूर्य के समान (शोचिषा ततान) अपनी कान्ति से अपने राज्य को फैलावे।

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ २ ॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील, पूज्य ! सत्संग योग्य विद्वन् ! (राजन्) राजन् ! (सर्वताता) सर्वहितकारी (द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष और सुखदात्री भूमि (अपाके) अपरिपक्व बुद्धि बल वाले (त्वे यस्मिन्) जिस तुझे (हव्या मघानि) उत्तम ग्रहण योग्य नाना (मानुषा) मनुष्यों के उपकारक ऐश्वर्य (आ दक्षन्) प्रदान करती और तुझे बलवान् बनाती है वह तू (त्रि-सधस्थः) तीन सभाओं में स्थित होकर (ततरुषः) सबको संकटों से तारने वाले सूर्य के समान (जंहः) सर्वत्र वेग से जाता हुआ (मानुषा मघानि हव्या यजध्यै यक्षत्) मनुष्यों के हितकर ऐश्वर्यों और नाना खाद्य अन्नों को देने के लिये यज्ञ किया कर।

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वने राट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत्।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि का (अरतिः तेजिष्ठा) बन में लगना ही अति तीक्ष्ण है और जैसे अग्नि (अध्वन् न तोदः) हण्टर के समान मार्ग में बढ़ता है उसी प्रकार (यस्य) जिसका (अरतिः) आगमन ही (तेजिष्ठा) अति तेज वा प्रभाव से युक्त और जो (राट्) स्वयं तेजस्वी सम्राट् होकर

(तोदः) पशुओं पर चाबुक के समान (अध्वन्) मार्ग में (वृधसानः) चलने वाले प्रजाजनों को आगे बढ़ाने वाला, उनको उन्नति पथ पर ले जाने हारा होकर (अद्यौत्) चमकता है, वह (अद्रोघः) प्रजा का द्रोह न करने हारा होकर (त्मन्) स्वतः (द्रविता न) वेग से जाते रथ के समान वेगवान् होकर (ओषधीषु) ओषधियों में अग्निवत् प्रजाओं में (अवत्रः) किसी से निवारण न किया जाकर (चेतति) सबको चेताता है।

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
द्रुवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्त्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(एतरि दमे न) आने वा प्रवेश करने योग्य गृह में जिस प्रकार (अग्निः स्तवे) सबसे प्रथम अग्नि रख यज्ञ किया जाता है वा (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर की प्रार्थना स्तुति की जाती है उसी प्रकार (जात-वेदाः) ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्रणी पुरुष की भी (अस्माकेभिः) हमारे (शूषैः) बल और सुखकारी वचनों से (स्तवे) स्तुति योग्य (दमे) दमन या शासन कार्य में प्रशंसनीय हो। (द्रुवन्नः क्रत्वा यज्ञैः जारयायि) काष्ठों को अन्न के समान खाने वाला अग्नि जिस प्रकार उत्तम यज्ञ और यज्ञांगों से स्तुति किया जाता है और (अर्वा न क्रत्वा) और जिस प्रकार वेगवती क्रिया के कारण अश्व प्रशंसनीय होता है और जिस प्रकार (पिता इव) पिता के समान उत्तम सन्तानों के कारण प्रशंसनीय होता है उसी प्रकार राजा वा गृहपति (द्रु-अन्नः) वनस्पतियों के फल पत्रादि और अन्न का भोग करता हुआ (क्रत्वा) क्रियाशीलता और बुद्धि के द्वारा (उस्त्रः वन्वन्) भूमियों और वाणियों का सेवन करता हुआ (पिता इव) पालक पिता के समान ही (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों, दानों, सत्कारों आदि से (जारयायि) स्तुति किया जाता है।

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम्।
सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ५

भा०—यह अग्नि या विद्युत् (यत् भासः तक्षत्) जिन दीप्तियों को पैदा करता है और जो यह (पृथ्वीम् अनुयाति) विद्युत् भूमि की ओर वेग से जाता है लोग (अस्य भासः पनयन्ति) इसकी दीप्तियों की प्रशंसा करते हैं और विद्युत् (स्यन्द्रः) जलवत् (विषितः) बन्धन मुक्त होकर बहने वाला, (धवीयान्) शरीर को स्पर्श करते ही कंपा देने वाला, (तायुः न ऋणः) चोर के समान चुपचाप निकल भागने वाला, (धन्वा अति राट्) अन्तरिक्ष में खूब चमकता है। उसी प्रकार राजा (यत् भासः वृथा तक्षत्) जब तेजों को अनायास उत्पन्न कर लेता है और (पृथ्वीम् अनुयाति) पृथ्वी अर्थात् देशवासिनी प्रजा का अनुगमन करता है, (अध) तब लोग (अस्य) इसके (भासः) तेजों, कान्तियों, चमकते गुणों की (पनयन्ति) प्रशंसा करते हैं। (यः) जो राजा (स्यन्द्रः) वेग से रथादि से जाने में कुशल, (वि-सितः) स्वतः बन्धन से मुक्त या विशेष राज नियमों से बद्ध, (धवीयान्) शत्रुओं को कंपा देने वाला, वा प्रजा या पृथ्वी का सबसे उत्तम पति होकर भी (तायुः न) चोर के समान अलक्षित भाव से पृथ्वी का भोग वा प्रजा का वर्धन करने वाला होकर (धन्वा) धनुष के बल से (अति राट्) सबसे अधिक तेजस्वी होकर चमकता है।

स त्वं नो॑ अर्वन्नि॒दाया॒ विश्वे॑भिरग्ने अ॒ग्निभि॑रिधा॒नः ।
वेषि॑ रा॒यो वि या॑सि दु॒च्छुना॒ मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥६॥१४॥

भा०—हे (अर्वन्) शत्रुओं के नाश करने हारे! हे अश्व के समान नियुक्त होकर राष्ट्र-रथ के सञ्चालक! महारथिन्! (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (अग्निभिः) आगे जाने वाले नाना नायकों, किरणों वा ज्वालाओं से सूर्य वा अग्नि के समान (इधानः) देदीप्यमान होकर, (त्वं) तू (निदायाः) निन्दित प्रजा वा निन्दा से (नः) हम लोगों को (वेषि) दूर रख। (नः रायः वेषि) हमारे उत्तम ऐश्वर्यों, धनों की कामना कर, वा उनकी निन्दित जनता वा क्रिया से नष्ट होने से (वेषि) रक्षा कर। तू (दुच्छुनाः) दुःखदायी, सुख की नाशक परसेनाओं, वा बुरी जनताओं को

(वि यासि) विशेष रूप से चढ़ाई कर, विविध प्रकार से नाश कर, जिससे हम (सुवीराः) उत्तम वीरों और सन्तानों सहित (शतहिमाः मदेम) सौ २ वर्ष की आयु वाले होकर आनन्द से जीवन व्यतीत करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २ स्वराट्-पंक्तिः । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड़ृचं सूक्तम् ॥

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् से (विश्वा सौभगानि) समस्त सुखजनक ऐश्वर्य (वनिनः न वयाः) वृक्ष से शाखाओं के तुल्य उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार हे (सुभग) उत्तम, ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (विश्वा सौभगानि) समस्त सौभाग्य (वनिनः वयाः न) वृक्ष से शाखाओं के समान (वनिनः त्वद्) ऐश्वर्यवान् तुझसे (वि यन्ति) विविध प्रकार से निकलते हैं। जिस प्रकार (श्रुष्टिः रयिः वृत्रतूर्ये दिवः वृष्टिः अपां रीतिः अग्नेः वनिनः न) अन्न, देह, मेघ, विद्युत्, वृष्टि और जलों की धारा आदि सब ही तेजस्वी सूर्य और विद्युत् से ही उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार हे राजन्! (श्रुष्टिः) अन्न समृद्धि, (रायः) ऐश्वर्य, सम्पदा, (वृत्रतूर्ये) शत्रु के नाश करने के निमित्त (वाजः) बल, सैन्य आदि (वृष्टिः) शस्त्र-वर्षण और प्रजा पर सुखों की वृष्टि और (अपां रीतिः) आप्त पुरुषों का आगमन, प्रजाओं का सन्मार्ग में चलना और राष्ट्र में जल धाराओं, नहरों का बहना, आदि सब (दिवः त्वत्) सर्व कामना योग्य, सूर्यवत् तेजस्वी तुझ से ही उत्पन्न होता है।

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रत्नम् इषे) सुन्दर प्रकाश को दूर तक फेंकता है, (परिज्मा इव दस्मवर्चाः क्षयति) वायु या प्राण के समान क्षीण तेज होकर, वा अन्न को देह में क्षय करता हुआ जाठराग्नि रूप से निवास करता है (ऋतस्य मित्रः) और जल को मित्रवत् स्नेह से चाहता है, (भूरेः क्षत्ता) बहुत से सुख का दाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! राजन्! (त्वं) तू (भगः) स्वयं ऐश्वर्यवान्, सेवने योग्य होकर (नः) हमारे लिये (रत्नम्) रमणीय ऐश्वर्य को (आ इषे हि) सब ओर से देता, चाहता वा प्राप्त करता है। तू (दस्मवर्चाः) शत्रुओं के नाशकारी तेज से युक्त होकर (परि-ज्मा इव) सर्वत्रगामी वायुवत् भूमि पर शासक होकर (क्षयसि) शत्रु का नाश करता और प्रजा को बसाता है और तू (मित्रः न) मरण या नाश होने से बचाने वाला सूर्यवत् (बृहतः ऋतस्य) बड़े भारी न्याय, सत्य ज्ञान रूप प्रकाश का (क्षत्ता असि) देने वाला हो और हे (देव) विद्वन्! तेजस्विन्! दातः तू (भूरेः वामस्य) बहुत से सुन्दर संभोग्य ऐश्वर्य का भी (क्षत्ता असि) देने वाला हो।

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम्।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य रूप अग्नि (सत्पतिः) जलों का स्वामी होकर (शवसा वाजम् वि भर्त्ति) जल से अन्न का पोषण करता है, (ऋत-जाताः) वह अन्नों को उत्पन्न करके (अपां नप्त्रा) जलों को आकाश से न गिरने देने वाले जलवाहक मेघ द्वारा ही बढ़ाता है उसी प्रकार हे (अग्ने प्रचेतः) प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञानवन्! विद्वन्! हे उत्तम धन के संग्रहीता राजन्! तू (ऋत-जातः) ज्ञान और ऐश्वर्य में प्रसिद्ध होकर (राया) ऐश्वर्य से और (अपां नप्त्रा) आप्तजनों, प्रजाओं के सुप्रबन्ध करने वाले, वा उनको सन्मार्ग से न गिरने देने वाले विद्वानों तथा जल धाराओं को बांधने वाले शिल्पीजन से (सजोषाः) प्रेमपूर्वक मिलकर (यं हिनोषि) तू जिसको बढ़ा देता है वह हे सूर्य वा अग्निवत् तेजस्विन्! तू (सत्पतिः)

सज्जनों का पालक, (शवसा) बल से (वृत्रम् हन्ति) विघ्नकारी और बढ़ते हुए शत्रु को नाश कर और (विप्रः) विद्वान् मेधावी जिस प्रकार (पणेः वाजम् शवसा वि भर्त्ति) स्तुत्य, पाठशील शिष्य के ज्ञान को अपने ज्ञान से बढ़ाता है उसी प्रकार तू भी (विप्रः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा (पणेः) व्यवहारशील वैश्य जन के (वाजम्) ऐश्वर्य को (वि भर्त्ति) विविध प्रकारों से पूर्ण करता है।

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट्।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (यः) जो (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों (उक्थैः) उत्तम वचनों, (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों और सत्कारों से (वेद्या) वेदिवत् पृथिवी से (निशितिम्) अग्नि के समान तेरी तीक्ष्णता को (आनट्) प्राप्त करता वा तुझे कराता अर्थात् तेरी शक्ति बढ़ाता है हे (देव) दातः, तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! (सः) वह (विश्वं वारम् प्रति धत्ते) समस्त वरण योग्य धन को धारण करता और सब निवारणीय शत्रु सैन्य का मुकाबला करता और शत्रु वारक सैन्य बल को प्रतिक्षण धारण करता है और वह (वसव्यैः) ऐश्वर्यों से (पत्यते) बलधारी स्वामी हो जाता है।

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शवसा) बल से (वृकाय) भेड़िये वा चोर के समान (जसुरये) प्रजा के नाशकारी (अरये) शत्रु के नाश के लिये (भूरि) बहुत भारी (पश्वः वयः) अश्व आदि पशु का द्रष्टा, अध्यक्ष का बल (कृणोषि) सम्पादन करता है। वह तू हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) शत्रुपराजयकारी, बलवान् वीर पुरुष के पुत्र ! हे क्षत्रबल

के सञ्चालक ! तू (नृभ्यः) उत्तम नेता पुरुषों और प्रजाजनों के हितार्थ (ता) वे वे नाना (सौश्रवसा) उत्तम २ अन्न, कीर्त्ति आदि से युक्त (सुवीरा) उत्तम पुत्र, वीर भृत्यादि से सम्पन्न ऐश्वर्य (पुष्यसे) राष्ट्र को परिपुष्ट करने के लिये (धाः) धारण कर ।

वध्रा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्त्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) सैन्य बल के सञ्चालक ! तू (विहायाः) महान् होकर (नः) हमारा (वध्रा) उपदेष्टा हो और (नः) हमें (वाजि) अन्न, बल, ऐश्वर्यादि सम्पन्न धन तथा (तोकं) वंश को बढ़ाने और दुःख के नाश करने वाले पुरुष तथा (तनयम्) पौत्र सन्तान (दाः) दे । अथवा—[वाजिनः इत्येकं पदम्] हमें (वाजिनः) ज्ञानी और बलवान् नाना पुरुष तथा पुत्र सन्तान प्रदान कर । मैं (विश्वाभिः गीर्भिः) समस्त उत्तम वाणियों से (पूर्त्तिम् अभि पश्यम्) पूर्णता को प्राप्त करूं । हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द लाभ करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिगुष्णिक् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् । ६ भुरिगतिजगती ॥ षड़ृचं सूक्तम् ॥

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥

भा०—(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (धीतिभिः) उत्तम कर्मों और कर्म करने के अंगों और धारणाओं वा अध्ययनों से (अग्नौ) ज्ञानी, मार्ग नेता पुरुष के अधीन रहकर (दुवः) उपासना या सेवा और (धियं जुजोष) उत्तम कर्म का आचरण और ज्ञान का अभ्यास करता है (सः नु) वह शीघ्र ही (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान बड़े ज्ञानी गुरुजनों का हितैषी, उनकी

विद्या से सुभूषित होकर (प्र भसत्) खूब चमक जाता है और वह (अवसे) अपने जीवन रक्षा के लिये (इषं) उत्तम अन्न और बल (वुरीत) प्राप्त करता है।

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् अग्नि (अग्निः इत् हि) वह अग्नि ही है जो (प्र-चेताः) उत्तम ज्ञान से युक्त, अन्यों को उत्तम ज्ञान से ज्ञानवान् करता तथा उदार हृदय है। (अग्निः) वह 'अग्नि' कहाने योग्य है जो (ऋषिः) यथार्थं ज्ञान का दर्शन करने हारा और (वेधस्तमः) सबसे अधिक बुद्धिमान्, विद्वान्, कर्म करने और विधान निर्माण करने में कुशल है।

नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! (नाना) बहुत से (आयवः) लोग (व्रतैः) उत्तम कर्मों से (अव्रतम्) कर्महीन, व्रतादि रहित (दस्युम्) प्रजानाशक पुरुष को (सीक्षन्तः) पराजित करते और (तूर्वन्तः) उसका नाश करते हुए (अर्यः रायः अवसे) शत्रु के धन की प्राप्ति और स्वामी के धन की रक्षा करने के लिये (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं।

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम्।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥

भा०—तेजस्वी नायक क्या प्रस्तुत करता है? (अग्निः) अग्नि, विद्युत् आग्नेय अस्त्रादि द्वारा सुसज्जित नायक हमें (अप्साम्) समस्त प्रजाओं तथा उत्तम कर्मों को (वीरं) विशेष रूप से उत्साहित करने और स्वयं करने वाला, वीर (ऋतीषहं) शत्रुओं को पराजय करने वाला, ऐसा (सत्पतिम्) सज्जनों का पालक पुरुष (ददाति) देता है (यस्य शवसः) जिसके बल से (शत्रवः त्रसन्ति) शत्रु लोग भय खाते हैं और (सञ्चक्षि) अच्छी प्रकार देखते रहने पर उसके समक्ष (भिया) भय से कांपते हैं।

अ॒ग्निर्हि वि॒द्मना॑ नि॒दो दे॒वो मर्त॑मुरु॒ष्यति॑ ।
स॒हावा॒ यस्यावृ॑तो र॒यिर्वाजे॒ष्ववृ॑तः ॥ ५ ॥

भा०—(अग्निः हि) अग्रणी नायक या ज्ञानवान् पुरुष ही (देवः) तेजस्वी होकर (विद्मना) ज्ञान के बल से (निदः) निन्दकों का (सहावा) पराजय करता हुआ (मर्त्तम्) मनुष्यमात्र की (उरुष्यति) रक्षा करता है। वह स्वयं (अवृतः) विना किसी के वरण किये हुए या विना कुछ चेष्टा किये भी (यस्य) जिसके (रयिः) ऐश्वर्य और बल (वाजेषु अवृतः) संग्राम करने के अवसरों पर छुपा नहीं रहता ।

अच्छा॑ नो मित्रमहो देव दे॒वानग्ने॒ वोचः॑ सुम॒तिं रोद॑स्योः ।
वी॒हि स्व॒स्तिं सु॑क्षि॒तिं दि॒वो नॄन्द्वि॒षो अंहां॑सि दु॒रि॒ता त॑रेम॒ ता
त॑रेम॒ तवाव॑सा तरेम ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः अग्ने) मित्रों के पूजने योग्य ! हे मित्रों द्वारा आदृत ! हे बड़े २ मित्रों वाले, स्नेहवान् पुरुषों के तुल्य महान्, हे (देव) दानशील ! ज्ञानवान् नायक ! तू (नः देवम् अच्छ रोदस्योः सुमतिं वोचः) हम उत्तम वा तुझे चाहने वाले, हमें और सूर्य पृथिवी के तुल्य परस्पर उपकारबद्ध गृहस्थ स्त्री पुरुषों वा राजा प्रजावर्गों के योग्य शुभ ज्ञान उपदेश कर। (स्वस्ति) कल्याणकारी (सुक्षितिं) उत्तम निवास वा उत्तम भूमि को (वीहि) प्राप्त कर, उसे चाह और प्रकाशित वा उपभोग कर (दिवः नॄन्) कामना करने योग्य पुरुषों को चाह। (द्विषः अंहांसि, दुरिता तरेम) हम शत्रुओं, पापों और दुष्टाचरणों को लांघ जाएं, (ता तरेम) उनसे पार हो जावें, (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा और कामना से हम (तरेम) तर जावें। इति षोडशो वर्गः ॥

[१५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृज्जगती । ३ निचृदतिजगती । ७ जगती । ८ विराड्जगती । ४, १४

भुरिक् त्रिष्टुप् । ९, १०, ११, १६, १९ त्रिष्टुप् । १३ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृदतिशक्वरी । १२ पंक्तिः । १५ ब्राह्मी बृहती । १७ विराडनुष्टुप् । १८ स्वराडनुष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

इमम् ऊ षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद् दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् १

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (वः) अपने लोगों में से जो (दिवः) ज्ञान प्रकाश के कारण (जनुषा) स्वभाव से (शुचिः) शुद्ध पवित्र है जो (स्वयं गर्भः) विद्यादि ग्रहण करने में स्वयं समर्थ होकर (अच्युतम्) अविनाशी, स्थिर नित्य वेद ज्ञान को (आ अत्ति) सब प्रकार से भोगता है और (वेति इत्) स्वयं विद्या से चमकता है (इमम्) उस (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, (उषः-बुधम्) प्रातःकाल स्वयं जागने वाले, यज्ञाग्निवत् वा सूर्यवत् तेजस्वी, अन्यों को प्रभात, वा जीवन के प्रभात बाल्य, कौमार दशा में ज्ञान द्वारा प्रबुद्ध करने वाले (विश्वासां विशाम्) आश्रम में प्रविष्ट समस्त शिष्यों को (पतिम्) प्रजावत् पालन करने वाले गुरु की (गिरा ऋञ्जते) विनीत वाणी से सेवा कर । अध्यात्म में 'अच्युत', 'वीतहव्य' जीव है । उसे अपने में ले लेने हारा अग्नि 'प्रभु' है।

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२॥

भा०—(ऊर्ध्व-शोचिषम्) अग्नि के समान ऊपर उठती कान्ति वाले, (ईड्यम्) पूज्य, वाणी-उपदेश के योग्य, विद्या के इच्छुक पुरुष को (वनस्पतौ) विद्यायाचक, विद्यार्थी जनों के पालक आचार्य के अधीन रहते हुए नाना (भृगवः) वेदवाणियों को धारण करने वाले (यम्) जिसको (सुधितं दधुः) उत्तम रूप से सुरक्षित रखते हैं (सः त्वं) वह आप हे (अद्भुत) महाशय ! (वीतहव्ये) दान करने और आदर से ग्रहण करने योग्य ज्ञान के देने वाले गुरु के अधीन ही (सुप्रीतः) अति प्रसन्न होकर

(प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं और उपदेश वचनों से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (महयसे) पूजा, आदर, वचनों को प्राप्त हो। ऐश्वर्यों का पालक पद 'वनस्पति' उस पर पूज्य तेजस्वी पुरुष भी (भृगवः) गो रक्षक और वाणी के धारण करने वाले विद्वान् और भूमि के धारक सामन्तजन हैं।

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—(सहसः सूनो) बलवान्, सहनशील, तपस्वी पुरुष के पुत्रवत् (सः त्वं) वह तू (दक्षस्य) बल, तेज और कर्म सामर्थ्य को (वृधः) बढ़ाने हारा और (अन्तरस्य) भीतर के (परस्य तरुषः) हिंसाकारी काम आदि अन्तः शत्रु का भी (अर्यः) अभ्यन्तर स्वामी (भूः) हो। तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (वीत-हव्याय) अपने देय भाग के स्वतः देने वाले प्रजाजन के हितार्थ (सप्रथः) अति विस्तृत (छर्दिः यच्छ) गृह, शरण प्रदान कर। इसी प्रकार (भरद्वाजाय) वाज, ज्ञान, ऐश्वर्य के धरने और ला २ कर संग्रह करने वाले पुरुष को भी (सप्रथः छर्दिः यच्छ) अति विस्तृत शरण प्रदान कर। (२) राजा भी निष्कपट, अचौर, शत्रुदाहक बल का बढ़ाने वाला, हिंसक शत्रु का नाशक, स्वामी हो, वह (सहसः) बल का सञ्चालक, 'वीतहव्य' = करप्रद प्रजाजन और (भरद्वाजाय) संग्राम, बल, अन्न के पालक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सबको शरण दे।

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम्।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वानो! (वः) आप लोगों के बीच में (द्युतानं) सदा चमकने वाले (अतिथिं) सर्वत्र व्यापक और अतिथिवत् पूज्य, (स्वः-नरम्) सुखमय मार्ग में ले जाने हारे, (मनुषः होतारं) मनुष्य को सब कुछ देने हारे, (सु-अध्वरम्) उत्तम, यज्ञ के पालक, स्वयं कभी नाश न होने वाले,

(द्युक्ष-वचसं) कान्तिवत् उज्ज्वल वाणी को कहने वाले (विप्रं) विविध ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् के तुल्य (सु-वृक्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं द्वारा (हव्य-वाहम्) हव्य, अन्नादि पदार्थों के धारक, अग्निवत् तेजस्वी, (अरतिं) अतिज्ञानी, (देवं) प्रकाशस्वरूप गुरु की और प्रभु की (ऋञ्जसे) सेवा किया कर। (२) उत्तम यज्ञमय होने से परमेश्वर 'स्वध्वर' प्रकाशस्वरूप होने से 'द्युतान', आनन्दप्रद, ज्ञानप्रद होने से 'स्वर्नर', अन्नादि कर्मफल देने से 'हव्यवाह्' है।

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ५।१७

भा०—(यः) जो (पावकया) अन्यों को पवित्र कर देने वाली अग्नि के तुल्य, तीव्र सन्तापजनक (चितयन्त्या) ज्ञान देने वाली, (कृपा) कृपा, सामर्थ्य या शक्ति से (भानुना उषसः न) कान्ति से उषाकालों के समान, (क्षामन्) भूमि पर (आ रुरुचे) सर्वत्र सबको अच्छा लगता और प्रकाशित होता है और (यः) जो (घृणे रणे) खूब चमकते रण में (यामन्) प्रयाण काल या मार्ग में (तूर्वन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ (एतशस्य) अश्व के स्वामी, महारथी (नू) के समान और (ततृ-षाणः न) प्यासे के समान (अजरः) जरारहित बलवान् होकर (आ रुरुचे) सब प्रकार से चमकता है। उस स्वामी प्रभु की तू स्तुति किया कर। (२) परमेश्वर परम पावनी ज्ञानमयी कृपा से सर्वत्र चमकता है वह अजर, अमर है, सूर्य के तुल्य वा रण में वीरवत् पापों का नाश करता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियम्प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं। देवो देवेषु वनते हि नो दुवः॥ ६॥

भा०—हे विद्वान् भक्त जनो! (वः) आप लोग अपने में (अग्निम् अग्निम्) अग्नि के समान स्वप्रकाश, अति तेजस्वी प्रभु को, अग्नि को

समिधा से जैसे, वैसे (दुवस्यत) उपासना करो। (वः) अपने (गृणीषणि) स्तुति के कार्य में एकमात्र लक्ष्यभूत (अतिथिम्) सर्वव्यापक, पूज्य (प्रियं-प्रियम्) अति प्रिय उस प्रभु की ही सेवा करो। (वः) आप लोग अपने में (अमृतम्) अमृत, अविनाशी रूप से विद्यमान आत्मा को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (उप विवासत) उपासना करो। (देवः) सर्वदाता, तेजोमय परमेश्वर (देवेषु) अपने कामनावान् भक्तों में ही (वार्यं वनते) उत्तम ऐश्वर्य देता और (नः दुवः वनते हि) वही निश्चय से हमारी सेवा, परिचर्या और स्तुति आदि स्वीकार करता है।

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ७ ॥

भा०—(अध्वरे यथा समिधा समिद्धं अग्निं पुरः गृणे) यज्ञ में जिस प्रकार समिधा से चमकते हुए अग्नि को पुरः स्थापित करके परमेश्वर की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित (गिरा) वाणी से (समिद्धम्) अच्छी प्रकार प्रकाशित (अग्निम्) ज्ञानवान् (ध्रुवं) स्थिर, (पावकं) दोषों को दूर करके पवित्र करने वाले, (शुचिं) शुद्धचित्त प्रभु वा विद्वान् को (अध्वरे) हिंसा आदि से रहित, ज्ञानमय यज्ञ में (पुरः) समक्ष रख उसकी (गृणे) स्तुति करूं और (जात-वेदसम्) ज्ञानों के स्वामी, (विप्रम्) विविध विद्याओं से हमें पूर्ण करने वाले (पुरु-वारम्) बहुतों से वरण करने और बहुतों के बहुत से कष्टों का निवारण करने वाले, (अद्रुहं) द्रोहरहित, (होतारं) ज्ञानैश्वर्य के दाता (कविं) क्रान्त-दर्शी, विद्वान् प्रभु को (सुम्नैः) शुभ, उत्तम मनन योग्य वचनों और मन्त्रों से हम (ईमहे) प्रार्थना किया करें।

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! (दूतं) दुःखों को दूर करने

वाले, शत्रु को संताप देने वाले, (अमृतम्) अविनाशी, (हव्यवाहं) ग्रहण करने योग्य, उत्तम स्तुतिवचन, अन्नादि के स्वीकार करने वाले, (पायुम्) पवित्रकारक (ईड्यम्) स्तुति योग्य (जागृविम्) सदा जागृत, चैतन्य (विभुं) विशेष सामर्थ्य से युक्त, व्यापक (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालक (त्वां) तुझ प्रभु को (देवासः च मर्त्तासः च) विद्वान् जन और साधारण मनुष्य भी (युगे-युगे) प्रतिदिन, प्रतिवर्ष, प्रति युग, (दधिरे) धारण करते और ध्यान में धरते तथा (नमसा) नमस्कार पूर्वक (नि षेदिरे) उपासना करते हैं और आगे भी करें।

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ९

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! सर्व प्रकाशक! प्रभो परमेश्वर! तू (उभयान् अनु) विद्वान् और अविद्वान् दोनों प्रकार के मनुष्यों को हितकारी, उनके (व्रता अनु) कर्मों के अनुसार (विभूषन्) व्यवस्था करता हुआ (देवानां) दिव्य समस्त पदार्थों और विद्वानों के बीच में सबसे उपासित, होकर (रजसी) आकाश और भूमि दोनों लोकों को (सम् ईयस्) व्याप्त हो रहा है। (यत्) जिस (ते धीतिम्) तेरा ध्यान और (सुमतिम्) शुभ मति, शुभ ज्ञान को (आ वृणीमहे) हम आदरपूर्वक वरण करते हैं। हे प्रभो! (अध) और तू (नः) हमारे लिये (त्रि-वरूथाः) तीन मंजिलों वाले घर के समान (त्रि-वरूथः) मन, वाणी, काय तीनों से वरण करने योग्य, वा तीनों प्रकार के दुःखों का वारण करने वाला होकर (नः शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो।

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०।१८

भा०—(तम्) उस (सुप्रतीकं) सुख रूप में प्रतीत होने वाले (सुदृशं) उत्तम द्रष्टा, (स्वञ्चम्) सुख से प्राप्त होने और पूजन करने

योग्य, (विदुस्तरं) बहुत अधिक विद्वान्, ज्ञानी प्रभु को हम (अविद्वांसः) अविद्वान् जन (सपेम) प्राप्त हों, (सः विद्वान्) वह ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी प्रभु (विश्वा वयुनानि) समस्त ज्ञानों को प्रदान करता है। वह ही (अमृतेषु) अमर अविनाशी हम जीवों के निमित्त (हव्यम्) सदा ग्रहण करने योग्य पवित्र ज्ञान का (प्र वोचत्) उत्तम रीति से उपदेश करता है। (२) हम (सुप्रतीकं) उत्तम मुख वाले सौम्य मुख, शुभ नेत्र वाले, सुपूज्य विद्वान् के पास (सपेम) एक होकर बैठें, वह हमें उपदेश करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥११॥

भा०—हे प्रभो! विद्वन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! (यः) जो (ते कवये) तुझ क्रान्तदर्शी, परम ज्ञानवान् पुरुष के (धीतिं) धारण करने योग्य ज्ञान को (आनट्) प्राप्त करता है हे (शूर) शूरवीर, पापों के नाशक! (तं पासि) तू उसकी रक्षा करता है, (उत) और (तं) उसको ही (पिपर्षि) पालन पोषण करता है और हे प्रभो! विद्वन्! जो पुरुष तेरे निमित्त (यज्ञस्य निशितिं वा) पूजा वा आदर सत्कार की तीव्रता और (उद्-इतिं वा) उद्गमन, उत्तम मार्ग की ओर बढ़ना और पूज्य के प्रति अभ्युत्थान अर्थात् आदर पूर्वक खड़े होने आदि सत्कार भी (आनट्) करता है, तू (तम् इत्) उसको ही (शवसा उत राया) बल और धन दोनों से ही (पृणक्षि) पालन करता है।

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्नि के समान दुष्टों को दग्ध करने हारे! प्रभो विद्वन्! राजन्! (त्वम्) तू (वनुष्यतः) याचना, प्रार्थना करते हुए (नः) हमें (अवद्यात्) निन्दा योग्य पापाचरण से (नि पाहि)

बचा। हे (सहसावन्) बलशालिन्! (त्वम् उ) तू ही (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से रक्षा कर। (ध्वस्मन्वत्) पापों और दुष्टों का ध्वंस करने वाला (पाथः) मार्ग और पालन सामर्थ्य (त्वा अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो और (त्वां) तुझे (स्पृहयाय्यः) सबसे चाहने योग्य, (सहस्री) सहस्रों सुखों को देने वाला, सब प्रकार का (रयिः) ऐश्वर्य भी (सम् अभ्येतु) प्राप्त हो।

अ॒ग्निर्होता॑ गृ॒हप॑ति॒: स राजा॒ विश्वा॑ वेद॒ जनि॑मा जा॒तवे॑दाः।
दे॒वाना॑मु॒त यो मर्त्या॑नां॒ यजि॑ष्ठ॒: स प्र य॑जतामृ॒तावा॑ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (देवानाम्) प्रकाश करने वाले सूर्य आदि लोकों और ज्ञानैश्वर्यों के देने वाले विद्वानों, ऐश्वर्यवानों और कामना वाले (मर्त्यानां) मरणशील मनुष्यों और अन्य प्राणधारियों की (विश्वा) समस्त (जनिमा) उत्पत्ति के रहस्यों को (वेद) जानता है (सः) वही (जात-वेदाः) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने हारा होने से ही 'जातवेदाः' है। (सः) वह (यजताम् यजिष्ठः) दानशीलों में सबसे बड़ा दानशील, (ऋतावा) ज्ञान, सत्य, न्याय, तेज और धनैश्वर्य का स्वामी परमेश्वर (अग्निः) सबका अग्रणी, सबसे पूर्व विद्यमान, अग्निवत् स्वप्रकाशक और अन्यों को प्रकाशित करने से 'अग्नि' है। (सः होता) वही स्वयं सबका दाता और सबको अपने में आहुति करने वाला होने से 'होता' है और वही (गृहपतिः) गृह स्वामी के समान विश्व का पालक होने से 'गृहपति' है (सः राजा) और वही राष्ट्र में राजा के समान समस्त ब्रह्माण्ड का राजा है। 'अग्नि' देवता वाले मन्त्रों में प्रायः सर्वत्र अग्नि, विद्युत् तत्व के वर्णन के साथ २ गृहपति, राष्ट्रपति, नायक, राजा और कुलपति आचार्य विद्वान् और परमेश्वर का समान वाक्यरचना से वर्णन है।

अग्ने॒ यद॒द्य वि॒शो अ॑ध्वरस्य होत॒: पाव॑कशोचे॒ वेष्ट्वं हि यज्वा॑।
ऋ॒ता य॑जासि महि॒ना वि यद्भूर्ह॒व्या व॑ह यविष्ठ॒ या ते॑ अ॒द्य १४

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश ! एवं अन्यों को प्रकाशित करने हारे ! हे (पावक-शोचे) पवित्र करने वाले तेज:प्रकाश से युक्त ! हे (होत:) यज्ञ के होता के समान अपने ऐश्वर्य, बल, ज्ञान आदि के दान करने हारे ! (यज्वा) उत्तम दानशील और संगति परस्पर मेल करने हारा होकर (अध्वरस्य विश:) यज्ञवत् न नाश करने योग्य प्रजाजन को (त्वं हि वे:) तू सदा हृदय से चाह और उसकी रक्षा कर। (यत्) जब या जो तू (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि भू:) विशेष शक्तिशाली होता है तब तू (ऋता) ऐश्वर्यों को (यजासि) स्वयं प्राप्त करता और औरों को भी देने में समर्थ होता है और तभी हे (यविष्ठ) अति जवान ! बलवन् (या ते हव्या) जो तेरे भोग करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थ हैं उनको भी तू (अद्य) आज के समान सदा ही (आ वह) प्राप्त कर और अन्यों को करा।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! यज्ञकर्त्ता पुरुष जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्य:) उत्तम तृप्तिकारक अन्नों को सावधानी से देखता और विद्वान् जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्य:) सुख से धारण करने योग्य ज्ञानों का उपदेश करता है उसी प्रकार तू भी हे प्रभो ! राजन् ! (सुधितानि) सुख से, उत्तम प्रकार से धारण करने योग्य (प्रयांसि) उत्तम २ प्रयत्नों और प्रयाससाध्य कार्यों और प्रयासशील सैन्यों को (अभि ख्य:) सब प्रकार से स्वयं देखा कर और जैसे प्रजाजन (रोदसी इव अजध्यै त्वा दधीत) सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्त्री पुरुषों को परस्पर सुसंगत करने के लिये अग्नि का साक्षी रूप से आधान करते हैं उसी प्रकार शासक शास्य और राजप्रजावर्ग दोनों को परस्पर सुसंगत करने के लिये (त्वा दधीत) तुझ राजा, प्रभु को साक्षी

रूप से (नि दधीत) मध्यस्थवत् स्थापित करें। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (वाजसातौ) ज्ञान, बल और धन के लाभ काल में और उनको प्राप्त करने के निमित्त एवं संग्राम के अवसर में भी (अव) रक्षा कर। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! सब दुःखों के नाशक (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा-सामर्थ्यादि से हम (विश्वानि दुरितानि) सब प्रकार के दुष्टाचरण और दुःखदायी कर्मों से (तरेम) पार हों और (ता तरेम) उन अनेक विघ्नों को पार करें और (तरेम) अवश्य ही पार करें।

अग्ने॒ विश्वे॑भिः स्वनीक दे॒वैरूर्णा॑वन्तं प्रथ॒मः सी॑द॒ योनि॑म्।
कु॒ला॒यिनं॑ घृ॒तव॑न्तं सवि॒त्रे य॒ज्ञं न॑य॒ यज॑मानाय सा॒धु ॥ १६ ॥

भा०—हे (सु-अनीक) उत्तम मुख वाले, सुन्दर! सौम्य सुमधुर-भाषिन्! विद्वन्! हे उत्तम बल, सैन्य के स्वामिन्! हे (अग्ने) तेजस्विन्! विनयशील! तू (प्रथमः) सबसे प्रथम, श्रेष्ठ है। तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वानों, वीरों और मनुष्यों के साथ (उर्णावन्तं योनिम्) ऊन के बने आसन, वस्त्रादि सम्पन्न, तथा प्रजा को उत्तम रीति से आच्छादन, रक्षा करने वाले (कुलायिनं) गृहोपयोगी, नाना द्रव्यों से समृद्ध, सर्वाश्रयपद, (घृतवन्तं) घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से पूर्ण गृह वा राष्ट्र को (सीद) प्राप्त कर, उस पर शासन कर और (यजमानाय) कर आदि देने वाले प्रजाजन के (यज्ञं) संगतियुक्त राजसभा आदि के कार्य को, यज्ञ को अग्नि वा अध्वर्यु के समान (साधु नय) भली प्रकार चला।

इ॒ममु॒ त्यम॑थर्व॒वद॒ग्निं म॑न्थन्ति वे॒धसः॑।
यम॑ङ्कु॒यन्त॒मान॑य॒न्नमू॑रं श्या॒व्या॑भ्यः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (वेधसः अथर्ववद् अग्नि मन्थन्ति) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष 'अथर्व' वेद में लिखे प्रमाणे वा अहिंसक, ईश्वरोपासक विद्वान् के समान (अग्नि मन्थन्ति) आग या विद्युत् को मथकर, रगड़कर पैदा करते हैं और (श्याव्याभ्यः आ नयन्) रात्रि के अन्धकारों को दूर

करने के लिये सब पदार्थ को दिखाने वाले दीपक रूप अग्नि को लाते हैं उसी प्रकार (इमम् उ त्यम्) उस (अथर्ववत्) अथर्ववेद में जैसा प्रधान पुरुष को चुनाव करने का प्रकार बतलाया है उसी प्रकार वा अहिंसक, सर्वपालक, प्रजापति के तुल्य (अग्निं) अग्रणी, प्रधान पुरुष को (मन्थन्ति) समस्त प्रजावर्ग में से दही में से मक्खन के समान, खूब गुण दोष विवेचन और वादानुवाद के बाद मथ कर सारवत् प्राप्त करते हैं और (यम्) जिस (अमूरं) मोहरहित, निष्पक्षपात, अहिंसक और सदोत्साही को (अंकूयन्तं) चिह्न वा अपने द्योतक आदर्श ध्वजा के तुल्य श्रेष्ठ पुरुष को (श्याव्याभ्यः) अज्ञान युक्त प्रजाओं, सम्पन्न समृद्ध सेनाओं के हितार्थ (आनयन्) प्राप्त करें और उसे उत्तम पद प्राप्त करावें। (२) अध्यात्म में तपस्वीजन देह को अरणि करके ध्यान योग के अभ्यास से आत्मा रूप अग्नि को, दधि से घृतवत् प्राप्त करते हैं। वह अज्ञान रात्रियों में प्रकाश करता है।

जनि॑ष्वा दे॒ववी॑तये स॒र्वता॑ता स्व॒स्तये॑ ।
आ दे॒वान् व॑क्ष्य॒मृताँ॑ ऋता॒वृधो॑ य॒ज्ञं दे॒वेषु॑ पिस्पृशः ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (स्वस्तये) कल्याण करने के लिये (सर्वताता) सबके हितार्थ सर्वत्र और (देव-वीतये) उत्तम गुणों का प्रकाश करने और उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (जनिष्व) उत्पन्न वा प्रकट हो। तू (ऋत-वृधः) सत्यज्ञान, न्यायव्यवहार और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (अमृतान्) दीर्घायु (देवान्) मनुष्यों को (आ वक्षि) सब स्थानों से प्राप्त कर और धारण कर। (देवेषु) उन विद्वानों, वीरों और धनार्थी व्यवहारकुशल पुरुषों के आश्रय पर (यज्ञं पिस्पृशः) राज्य पालन रूप यज्ञ को धारण कर, दान आदि उत्तम कार्य कर। दातव्य पदार्थ को स्पर्श करना यह मुहावरा दान देने में प्रयुक्त होता । जैसे—'स्पर्शयता घटोध्नी' रघु०।

व॒यमु॑ त्वा गृहपते जनाना॒मग्ने॒ अक॑र्म स॒मिधा॑ बृ॒हन्त॑म् ।
अ॒स्थू॒रि नो॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु ति॒ग्मेन॑ न॒स्तेज॑सा॒ सं
शि॑शाधि ॥ १९ ॥ २० ॥ ७ ॥

भा०—(समिधा बृहन्तम्) जिस प्रकार लोग अग्नि को समिधा द्वारा बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (गृहपते) गृह के उपासक ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्, नायक ! अंग या देह के नेता आत्मा के तुल्य ! (वयम् उ) हम अवश्य (त्वा) तुझको (जनानाम्) सब मनुष्यों के हितार्थ (सम्-इधा) सम्यक्, समर्थ तेज और ज्ञान से (बृहन्तम् अकर्म) वृद्धिशील, महान् बनावें । जिससे (नः) हमारे (गार्हपत्यानि) गृह के समस्त कार्य, (अस्थूरि) निर्विघ्न (सन्तु) हों और तु (तिग्मेन तेजसा) तीक्ष्ण प्रकाश व प्रभाव से (नः) हमें (सं शिशाधि) सन्मार्ग में अच्छी प्रकार शासन कर । इति विंशो वर्गः । इति षष्ठे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१६]

४८ भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७ आर्ची उष्णिक् । २, ३, ४, ५, ८, ९, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचृद्गायत्री। १०, १९, २०, २२, २३, २९, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१ गायत्री । २६, ३० विराड्-गायत्री । १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप् । ४३, ४५ निचृत् त्रिष्टुप् । २७ आर्चीपंक्तिः । ४६ भुरिक् पंक्तिः । ४७, ४८ निचृदनुष्टुप् ॥

अष्टाचत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने य॒ज्ञानां॒ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः ।
दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानमय जगदीश्वर ! विद्वन् ! (विश्वेषां) समस्त (यज्ञानां) दान देने योग्य पदार्थों का (होता) देने वाला, समस्त पूजनीय पदार्थों में सबसे बड़ा दानी होकर (विश्वेषां हितः) सबका हितकारी,

सबके बीच में प्रधान रूप से स्थित है, तू (देवेभिः) विद्वानों द्वारा (मानुषे जने) मननशील मनुष्य मात्र में पूज्य है।

स नो॑ म॒न्द्राभि॑रध्व॒रे जि॒ह्वाभि॑र्यजा म॒हः।
आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन्! (सः) वह तू (मन्द्राभिः) स्तुति योग्य, आह्लादजनक (जिह्वाभिः) वाणियों से (अध्वरे) अविनाशी यज्ञ में (महः यज) बड़ों का सदा सत्कार कर और (देवान्) विद्वान् पुरुषों के प्रति (आ वक्षि) आदरपूर्वक वचन बोल और (आ यक्षि च) आदर से दान दे। (२) हे प्रभो! आह्लादकारिणी वेदवाणियों से बड़े दिव्य गुणों का हमें उपदेश कर और हमें अपने से सदा संगत कर।

वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा।
अग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सुक्रतो ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! ज्ञानमय, प्रकाशस्वरूप! हे (वेधः) विधातः! विधानकर्त्तः! हे मेधाविन्! हे (देव) दानशील! हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और उत्तम प्रज्ञा वाले सुमते! तू (अञ्जसा) प्रकाशक तेज से (अध्वनः) बड़े मार्गों और (पथः) पगदण्डियों या उपमार्गों को भी (वेत्थ हि) निश्चय से जानता है। हमें सन्मार्ग से लेजा।

त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभि॑ः शु॒नम्।
ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक! (भरतः) मनुष्यमात्र (शुनम्) सुखप्रद, सर्वव्यापक (त्वाम्) तुझको (द्विता) सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारों से (वाजिभिः) ज्ञानयुक्त उपायों से (ईडे) उपासना करे और (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियम्) पूज्य तुझ को (ईजे) प्राप्त हो।

त्वमि॒मा वार्या॑ पु॒रु दिवो॑दासाय सुन्व॒ते।
भ॒रद्वा॑जाय दा॒शुषे॑ ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत् के समान चमकने हारे स्वामिन्! (त्वम्) तू (इमा वार्या) इन उत्तम २ धनों को (पुरू) बहुत मात्रा में (सुन्वते) ऐश्वर्य प्राप्त करने में यत्नवान् (दिवः दासाय) सूर्यवत् तेजस्वी, आचार्य के सेवक के समान (भरद्वाजाय) अन्न बल आदि के धारण करने वाले (दाशुषे) समर्पक भक्त जन को देता है। इत्येकविंशो वर्गः॥

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम्।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम्॥ ६॥

भा०—हे (अमर्त्य) अविनाशी! तू (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति को (शृण्वन्) श्रवण करता हुआ (दूतः) दूत के समान व शत्रुसंतापक होकर (दैव्यं) दिव्य पदार्थों के जानने वाले (जनं) मनुष्य को (आ वह) आदर से धारण कर।

त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये।
यज्ञेषु देवमीळते॥ ७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (देव-वीतये) शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों, सत्संगों में (स्वाध्यः) उत्तम रीति से ध्यान और आधान करने वाले (मर्तासः) मनुष्य (त्वां देवं ईडते) तुझ देव, दाता की स्तुति करते हैं।

तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः।
विश्वे जुषन्त कामिनः॥ ८॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान धन आदि दान देने वा लेने हारे और (विश्वे) समस्त (कामिनः) उत्तम कामनावान् पुरुष (तव संदृशम्) तेरे सम्यक् तत्वदर्शन, यथार्थ ज्ञान (उत) और (क्रतुम्) कर्म को भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते हैं। तू उनको (प्र यक्षि) ज्ञान और कर्म का उपदेश प्रदान करता है।

त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः।
अग्ने यक्षि दिवो विशः॥ ९॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! नायक! प्रभो! (त्वं) तू (होता) सुखों का देने हारा, (मनुः) ज्ञानवान्, मननशील, मान योग्य, (वह्निः) कार्य-भार को कन्धों पर लेने हारा है। तू (विदुष्टरः) अधिक विद्वान् होने से (आसा) मुख से उपदेश द्वारा या मुखवत् मुख्यस्थान प्राप्त करके (दिवः विशः) सुख की कामना करने वाली प्रजाओं को (यक्षि) संगत कर और ज्ञानोपदेश और व्यवस्था प्रदान कर।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तेजस्विन्! ज्ञानवन्! तू (गृणानः) उपदेश देता हुआ (वीतये) प्रजाजनों, शिष्यों वा उपासकों को रक्षा ज्ञान से प्रकाशित करने और (हव्यदातये) देने योग्य ज्ञानैश्वर्य आदि प्रदान करने के लिये (आ याहि) प्राप्त हो और (होता) दानशील तू (बर्हिषि) वृद्धि, मान आदर युक्त आसन, प्रजाजन वा राज्य सभा में (नि सत्सि) नियत होकर विराज। परमेश्वर (बर्हिषि) प्रत्येक यज्ञ वा वृद्धि-शील प्रत्येक चेतन २ में विराजता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अंगिरः) अंगारों में अग्नि के समान तेजस्विन्! (समिद्भिः घृतेन) काष्ठों और घृत से अग्नि के तुल्य ही हम (तं त्वा) उस तुझको (समिद्भिः) अच्छी प्रकार प्रकाश युक्त वचनों और (घृतेन) आदरार्थ दिये जाने योग्य जल, अन्न, स्नेह आदि से (वर्धयामसि) बढ़ावें। हे (यविष्ठय) अति युवन्, बलशालिन्! तू (बृहत्) महान् होकर (समिद्भिः घृतेन) उत्तम प्रकाशों और तेजोमय ज्ञान से (शोच) प्रकाशित हो।

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञान देने हारे विद्वन्! हे (अग्ने) अन्धकार में अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारे! (सः) वह तू (नः) हमें (पृथु) बहुत, विस्तृत (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य और (बृहत्) बड़ा भारी (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, बल ज्ञान और तप (अच्छ विवाससि) अच्छी प्रकार प्राप्त करा।

त्वामग्ने पुष्कराद्ध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥ १३॥

भा०—जिस प्रकार (अथर्वा) वायु (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के मूर्धा अर्थात् शिरोभाग, सबसे ऊपर विद्यमान (पुष्करात्) सबको पुष्ट करने वाले, अन्तरिक्ष मेघ से (अग्निम् निर् अमन्थत) विद्युत् रूप अग्नि को मथकर प्रकट करता है उसी प्रकार (वाघतः) विद्वान् लोग भी हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (त्वाम्) तुझको (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के शिरोरूप से विद्यमान (पुष्करात्) सबके पोषणकारक सूर्य या मेघ से (निर् अमन्थत) सार रूप से मथ कर प्राप्त करें और विद्वान् लोग (अथर्वा) अहिंसक, प्रजापालक विद्वान् हे (अग्ने) अग्रणी नायक! सर्वोपरि विद्यमान, सर्वपोषक कृषक जन प्रजाजन में से ही (त्वाम् निर् अमन्थत) तुझ नायक को सारवान् जानकर वाद विवाद के अनन्तर प्राप्त करें। (२) अहिंसा महाव्रत का पालक 'अथर्वा' योगीजन इस देह के शिरोभाग कपाल में से अरणियों से आग के समान, आत्मा रूप अग्नि को ध्यान निमर्थन द्वारा प्राप्त करें।

स्वदेहमरणिं कृत्वा आत्मानञ्चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासात् पश्ये देवं निगूढवत्॥ श्वेता०॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः।
वृत्रहणं पुरन्दरम्॥ १४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! हे आत्मन्! (अथर्वणः) प्रजा का

नाश न होने देने वाले सर्वपालक पुरुष का (पुत्रः) प्रतिनिधि पुरुष, जो बहुतसों की रक्षा करने में समर्थ है और (दध्यङ्) राष्ट्र को धारण करने में समर्थ और (ऋषिः) यथार्थ धर्माधर्म, सत्यासत्य का विवेचक हो, वह (तम् त्वाम्) उस तुझ (वृत्रहणं) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं के नाशक और (पुरं-दरम्) शत्रुपुरों के तोड़ने हारे को (ईधे) प्रकाशित करे, तुझे अधिक शक्तिशाली बनावे। (२) अथर्वा, आचार्य का (दध्यङ् ऋषिः) ज्ञानधारक शिष्य तुझे साक्षात् करे। आत्मा या परमात्मा अज्ञानान्धकार का नाशक होने से 'वृत्रहा' और ज्ञान बल से देहबन्धनाश करने से 'पुरन्दर' है। (३) 'अथर्वा' वायु का पुत्र मेघ विद्युत् को चमकाता है।

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम् ।
ध॒न॒ञ्ज॒यं रणे॑रणे ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पाथ्यः वृषाः समीधे) जलयुक्त, बरसता मेघ विद्युत् को चमकाता है उसी प्रकार हे नायक ! (पाथ्यः) धर्म पथ पर आरूढ़ (वृषा) बलवान्, प्रबन्धकुशल पुरुष (रणे रणे) प्रत्येक रण में, (धनं-जयम्) धनों, ऐश्वर्यों का विजय करने वाले, (दस्युहन्तम्) प्रजा-नाशक डाकुओं के नाश करने हारे (तम् त्वाम् उ) उस तुझको (समीधे) अच्छी प्रकार प्रकाशित, तेजस्वी बनावे। अध्यात्म में—'पाथ्यः वृषा' प्राण। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

एह्यू॒ षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ इ॒त्थेत॑रा॒ गिरः॑ ।
ए॒भिर्व॑र्धास॒ इन्दु॑भिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! तू (आ इहि उ) आ, (ते) तुझे मैं (इत्था) सत्य वेदवाणियों और (इतराः गिरः) अन्यान्य लौकिक वाणियों का भी (सु ब्रवाणि) उपदेश करूं। तू (एभिः) इन (इन्दुभिः) ओषधियों से देह के समान और चन्द्रकलाओं से चन्द्र के समान ऐश्वर्यों से (वर्धासि) वृद्धि को प्राप्त हो।

यत्र॒ क्व॑ च ते॒ मनो॒ दक्षं॑ दधस॒ उत्त॑रम् ।
तत्रा॒ सदः॑ कृणवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे नायक ! (ते मनः) तेरा मन (यत्र क्व च) जहां कहीं भी चाहे वहां ही तू (उत्तरम्) उत्कृष्ट (दक्षं दधते) बल धारण कर और (तत्र) वहां (सदः कृणवसे) अपना आश्रय, राजभवन, सभाभवन आदि बना । (२) योगी जिस किसी विषय में चाहे मन को लगावे, वहां ज्ञान वा बल प्राप्त करे और उसमें स्थिति प्राप्त करे ।

न॒हि ते॑ पू॒र्तम॑क्षि॒पद्भुव॑न्नेमानां वसो ।
अथा॒ दुवो॑ वनवसे ॥ १८ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने और राष्ट्र को बसाने हारे ! प्रजाजन एवं राजन् ! (ते) तेरे लिये (नेमानां) अन्नों और तेरे आगे झुकने वाले, स्वल्प बल वाले प्रजाजनों को (पूर्त्तम्) पूर्ण करने वाला बल (नहि अक्षि-पत् भुवत्) आंख से परे जाने वाला न हो । वह सदा तेरे निरीक्षण में ही रहे । (अथ) और तू (दुवः वनवसे) सब प्रकार की सेनाओं और शत्रुपराजयारी सेनाओं को भी प्राप्त कर । 'अक्षिपत्' इति दया० सम्मतः पदपाठः । (नेमानां पूर्त्तम् ते नहि अक्षिपत) अन्नादि भोग्य पदार्थों वा तुच्छ पुरुषों का पूर्ण वा पालन करने का भार तुझे न उखाड़ फेंके प्रत्युत वह (ते भुवत्) तुझे शक्तिशाली बनावे ।

आ॒ग्निर॑गामि॒ भार॑तो वृत्र॒हा पु॑रु॒चेत॑नः ।
दिवो॑दासस्य॒ सत्प॑तिः ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) भौतिक, देह में जाठर रूप से, लोक में सौर तेज रूप से (भारतः) सबका भरण पोषण करता है, (वृत्रहा) जीवन के विघ्नकारी कारणों और अन्धकारों का नाशक है, (दिवः दासस्य सत्पतिः) प्रकाश देने वाले पदार्थों का पालक होता है उसी प्रकार (भारतः) 'भरत' अर्थात् मनुष्यों का हितकारी, (वृत्रहा) शत्रुओं को नाश

करने वाला, (पुरु-चेतनः) बहुतों को चेताने और ज्ञान देने वाला, (अग्निः) अग्रणी नायक, तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (आ अगामि) प्राप्त हो। वह (दिवः दासस्य) ज्ञान प्रकाश, वा कामना योग्य पदार्थ के देने वाले गुरु और सेवकादि जनों का (सत्पतिः) उत्तम पालक हो। (२) आत्मा, देह का पोषक, प्रति मनुष्य स्थित होने से 'भारत', 'पुरु' इन्द्रियों को चेतन करने वाला, कामपूरक देह का उत्तम स्वामी हो।

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (विश्वानि पार्थिवा) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्यों को (अति) अतिक्रमण करने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (दाशत्) दे और (अवातः) कभी शत्रुरूप प्रतिकूल वायु से भी न झुककर (अस्तृतः) कभी मारा न जाकर सुख से उस ऐश्वर्य को स्वयं भी (वन्वन्) भोग करे। (२) भौतिक अग्नि, सूर्य ही सब रत्न, सुवर्णादि को उत्पन्न करता, कभी न झुकता, न नाश होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता।
बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

भा०—(प्रत्नवत्) पुरातन, पहले के प्रतापी नायकों के समान, हे (अग्ने) विद्वन्! नायक! राजन्! (सः) वह तू (नवीयसे) नये से नये, अति श्रेष्ठ, (द्युम्नेन) धन और यश से (भानुना) प्रकाश वा तेज से सूर्य के समान (संयता) अच्छी प्रकार प्रबन्ध करने वाले सैन्य बल से (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (ततन्थ) विस्तृत कर।

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो! जो (वः) आप में से (वेधसे)

विद्वान् पुरुष के लिये (स्तोमं गाय) उपदेश देता और (यज्ञं अर्च च) दान योग्य पदार्थ आदर से देता है, उसी (अग्नये) अग्रणी नायक, विद्वान् और (वः) आप लोगों में से (वेधसे) कार्य करने में कुशल, बुद्धिमान् पुरुष के आदरार्थ आप (स्तोमं यज्ञं अर्च च गाय च) स्तुति युक्त वचन कहो और दान मान से सत्कार करो।

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३॥

भा०—(यः) जो (होता) उचित पदार्थ का लेने और देने और आदरपूर्वक अन्यों को बुलाने, सत्कार करने हारा, (कवि-क्रतुः) पुरुष कैसे कर्म और बुद्धि को धारने वाला, (दूतः) दूत और (हव्य-वाहनः) विद्युत्-वत् हव्य, अन्नों, वक्तव्य वचनों को धारने वाला है, वह विद्वान् पुरुष ही (मानुषा युगा) मनुष्यों के जोड़े, स्त्री पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर (सीदत्) विराजे।

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम्।
वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥

भा०—हे (वसो) सबके बसाने हारे! तू (शुचि-व्रता राजाना) शुद्ध आचरण वाले राजा के तुल्य कान्तिमान्, तेजस्वी (रोदसी) सूर्य पृथ्वी के समान पति पत्नी, वर वधू जनों को और (आदित्यान्) सूर्य की किरणों वा बारह मासों के समान सबको सुख देने वाले (आदित्यान् = अदितेः पुत्रान्) भूमि के पालक जनों और (मारुतं जनम्) वायुवत् बलवान्, शत्रुमारक वीरों के समूह तथा सामान्य मनुष्यों को भी (इह) इस अपने राष्ट्र में (यक्षि) एकत्र बसा।

वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा अग्नि का (संदृष्टिः) अच्छी प्रकार देखना

वा प्रकासित होना मनुष्यमात्र को बसाता है, (इषयते) अन्न देता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे तेजस्वी पुरुष ! हे प्रकाश-स्वरूप ! हे (ऊर्जः नपात्) अन्न और बल को न गिरने देने हारे उसके धारक ! (अमृतस्य) अविनाशी, हे दीर्घायु ! (ते) तेरा (सम् दृष्टिः) सम्यक् दर्शन ही (वस्वी) सबको बसाने वाला होकर (मर्त्याय इषयते) मनुष्य-मात्र को अन्नवत् पुष्ट करता और प्रेरित करता है। (२) अविनाशी प्रभु का सम्यग् दर्शन मनुष्यमात्र को अन्नवत् पालता, संसार भर को सञ्चालित कर रहा है। यदि ह्यहं न वर्त्तेय जातुकर्मण्यतन्द्रितः। उत्सीदेयुरिमे लोकाः ॥ गीता० ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

क्रत्वा॒ दा अ॑स्तु॒ श्रेष्ठो॒ऽद्य त्वा॑ व॒न्वन्त्सु॒रेक्णाः॑ ।
मर्त॑ आनाश सुवृ॒क्तिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! जो पुरुष (अद्य) आज, तेरे प्रति (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से अपने को (दाः) देता, तुझ पर अपने को न्योछावर करता है, वह (त्वा वन्वन्) तेरा भजन, सेवन करता हुआ (श्रेष्ठः) सबसे श्रेष्ठ, विद्यावान् और (सुरेक्णाः) उत्तम धनवान् (अस्तु) हो और वही (मर्तः) मनुष्य (सुवृक्तिम् त्वाम्) सुखपूर्वक दुःखों के छुड़ाने वाले तुझको वा उत्तम मार्ग को (आनाश) पाता है।

ते ते॑ अग्ने॒ त्वोता॑ इ॒षय॑न्तो॒ विश्व॒मायुः॑ ।
तर॑न्तो अ॒र्यो अरा॑ती॒र्वन्व॑न्तो अ॒र्यो अरा॑तीः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! स्वप्रकाश ! (अरातीः अर्यः इव) न दान देने वाले कृपणों को जिस प्रकार धनस्वामी अपने वैभव से लांघ जाता है उसी प्रकार जो (अरातीः अर्यः) करादि न देने वाले शत्रुओं को (तरन्तः) पार करते हुए और (वन्वन्तः) उनका नाश करते हुए, (त्वा उताः) तुझसे सुरक्षित रहते हैं (ते ते) वे तेरे अधीन जन (इषयन्तः) अन्न की कामना करते हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन प्राप्त करते हैं।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।

अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८ ॥

भा०—(अग्निः) सूर्य वा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेज से, (विश्वम् अत्रिणं) समस्त प्रजाभक्षक दुष्ट जन को (नि यासत्) नाश करे वह (अग्निः) तेजस्वी नायक (नः) हमारा (रयिम्) ऐश्वर्य (वनते) प्राप्त करता है ।

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।

जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥

भा०—हे (जातवेदः) धनस्वामिन्! ज्ञानवन्! (विचर्षणे) विविध मनुष्यों के स्वामिन्! हे विशेष तत्वज्ञान के देखने हारे! तू (सु-वीरं) उत्तम पुत्रों, वीरों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर और हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करने में समर्थ! तू (रक्षांसि) दुष्ट, विघ्नकारी पुरुषों को (जहि) नाश कर ।

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।

रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामिन्! हे (ब्रह्मणः कवे) वेद के उपदेश देने हारे हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! विद्वन्! (त्वं) तू (नः) हमें और (नः ब्रह्मणः) हमारे विद्वान् ब्राह्मणों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा और (अघायतः) हम पर अत्याचार करने वाले से भी (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति ।

तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्निवत् दुष्ट पुरुष को दग्ध कर देने हारे! (यः) जो (दुरेवः) दुष्ट आचरण करने वाला, दुःखदायक कर्म करने वाला, (मर्त्तः) मनुष्य (नः वधाय) हमारे नाश करने के लिये (आ

दाशति) सब प्रकार से यत्न करता और हमें पकड़ता या अपनाता है, (तस्मात् अंहसः) उस पापी पुरुष से (नः पाहि) हमें बचा ।

त्वं तं दे॑व जि॒ह्वया॒ परि॑ बाधस्व दु॒ष्कृत॑म् ।
मर्तो॒ यो नो॒ जिघां॑सति ॥ ३२ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! शत्रुओं को खण्डित और विजय करने हारे राजन् ! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता हो (त्वं) तू (दुष्कृतम्) दुष्टाचरण करने वाले पापी को (जिह्वया) वाणी या आज्ञा द्वारा (परि बाधस्व) विनाश कर ।

भ॒रद्वा॑जाय स॒प्रथः॒ शर्म॑ यच्छ सहन्त्य ।
अग्ने॒ वरे॑ण्यं॒ वसु॑ ॥ ३३ ॥

भा०—हे (सहन्त्य) बलवन, शत्रुओं को पराजित करने हारे ! (अग्ने) हे तेजस्विन् ! नायक ! तू (भरद्वाजाय) अन्न और बल के धारण करने वाले प्रजाजन को (सप्रथः शर्म) विस्तृत शरण (यच्छ) दे और (वरेण्यं वसु) श्रेष्ठ धन और बसने योग्य भूमि प्रदान कर ।

अ॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ जङ्घनद् द्रविण॒स्युर्वि॑प॒न्यया॑ ।
समि॑द्धः शु॒क्र आहु॑तः ॥ ३४ ॥

भा०—जल जिस प्रकार (वृत्राणि जंघनत्) बढ़ते मेघों को प्राप्त करता है और जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य या विद्युत् (वृत्राणि जंघनत्) मेघों पर प्रहार करता है, उसी प्रकार हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमान् ! शीघ्र कार्य करने हारे ! तेजस्विन् ! कर्मकुशल ! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप्त, तेजस्वी और (आहुतः) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य प्रजाजनों द्वारा संवर्धित, पुष्ट और आदर सत्कार पाकर तथा (आहुतः = आहूतः) शत्रुओं द्वारा ललकारा जाकर (विपन्यया) विशेष व्यवहार कुशल, वार्त्ता, वाणी से (द्रविणस्युः) धन की कामना करता हुआ (वृत्राणि जंघनत्) धनों को प्राप्त करे और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करे ।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥ २७ ॥

भा०—(मातुः योनिम् सीदन् गर्भे स्थितः) माता के गर्भाशय में पहुँचकर वहां स्थित बालक जिस प्रकार पुष्टि पाता है उसी प्रकार हे राजन्! तू (मातुः गर्भे) माता, पृथ्वी के 'गर्भ' अर्थात् बीच में या स्वगृहीत राष्ट्र में (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य-न्याय के घर, सभा-भवन में, अध्यक्ष पद पर बैठता हुआ (अक्षरे) अविनाशी स्थिर पद पर (विद्युतानः) आकाश में सूर्यवत् चमकता हुआ (पितुः पिता आ) पिता का भी पिता होकर विराज। (२) यह अग्नि जीव अक्षय मातृतुल्य, ज्ञानवान् जगन्निर्माता परमेश्वर के परम पद में विराजता हुआ मोक्ष सुख भोगे।

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों के लाभ करने वाले, वा धन-सम्पन्न! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के देखने हारे! स्वामिन्! (यत्) जो (दिवि) पृथिवी पर वा प्रकाश में (दीदयत्) चमकता है या जिससे मनुष्य पृथिवी में, वा ज्ञान और कान्ति में चमके, ऐसा (प्रजा-वत्) प्रजा, पुत्र शिष्यादि से युक्त (ब्रह्म) वेद ज्ञान, अन्न और धन (आ भर) प्राप्त कर और अन्यों को भी प्राप्त करा।

उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) सहनशीलता, या विजयकारी बल से सम्पन्न! (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! हम लोग (प्रयस्वन्तः) उत्तम यत्नशील होकर (रण्वसन्दृशं त्वा उप) उत्तम, सम्यक् दर्शन वाले तेरे समीप रहकर (गिरः) वाणियों का (ससृजमहे) ज्ञान लाभ करें।

उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥ ३८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! (हिरण्य-सन्दृशः) हित और रमणीय वा तेजोयुक्त सम्यक् दर्शन, ज्ञान से सम्पन्न वा सुवर्णादि धनों से अच्छे रूपवान्, सुसज्जित (ते) तुझ (घृणेः) कान्तियुक्त, सूर्यवत् तेजस्वी और कृपालु की (शर्म) शरण (वयम्) हम सन्तप्त जन (छायाम् इव) छाया के समान ही (उप अगन्म) प्राप्त करें।

य उ॒ग्र इ॑व शर्य॒हा ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ न वंस॑गः।
अग्ने॒ पुरो॑ रु॒रोजि॑थ ॥ ३९ ॥

भा०—(तिग्मशृंगो वंसगः न) जिस प्रकार तीखे सींगों वाला सांड (पुरः रुजति) आगे के पदार्थों को तोड़ता है वा जिस प्रकार तीखी किरणों वाला सूर्य मेघादि के आवरण को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (उग्रः इव) प्रबल वायु के समान (शर्यहा) शर अर्थात् बाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर (पुरः रुरोजिथ) शत्रु के पुरों को तोड़ता है, वह तू (वंसगः) सेवनीय ऐश्वर्य को प्राप्त हो।

आ यं हस्ते॒ न खा॒दिनं॒ शिशुं॑ जा॒तं न बिभ्र॑ति।
वि॒शाम॒ग्निं स्व॑ध्व॒रम् ॥ ४० ॥ २८ ॥

भा०—(खादिनं) खाने में संलग्न (जातं शिशुं न) उत्पन्न बालक को जिस प्रकार (हस्ते बिभ्रति) हाथों में लेते हैं उसी प्रकार (यं) जिस (स्वध्वरं) उत्तम हिंसारहित, प्रजापालनादि कर्म करने वाले (विशाम्) प्रजाओं के बीच में (यं) जिस (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक को प्रजा जन (हस्ते) शत्रु को नाश करने और दुष्टों को हनन या दण्ड करने वाले बल के ऊपर (खादिनं) वज्रधर, आयुधसम्पन्न और (शिशुं जातं) उत्तम प्रशंसनीय आचार वाले, प्रसिद्ध पुरुष को (बिभ्रति) परिपुष्ट करते हैं वही उत्तम राजा है। इत्यष्टाविंशो वर्गः।

प्र दे॒वं दे॒ववी॑तये॒ भर॑ता वसु॒वित्त॑मम्।
आ स्वे योनौ॒ नि षी॑दतु ॥ ४१ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! आप लोग (देव-वीतये) विद्वानों की रक्षा, शुभ गुणों की प्राप्ति और विजयाभिलाषी और व्यवहारवान्, नाना कामनावान् प्रजाओं की रक्षा के लिये (देवं) ज्ञान वा धन के देने हारे, तेजस्वी (वसु-वित्तमम्) प्रजाओं और ऐश्वर्यों को भली प्रकार लाभ करने वाले पुरुष को (प्र भरत) अच्छी प्रकार पुष्ट करो वह (स्वे योनौ) अपने उचित स्थान पर (आ निषीदतु) आदर से विराजे ।

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् ।
स्योन आ गृहपतिम् ॥ ४२ ॥

भा०—(जात-वेदसि) नाना विद्याओं में प्रसिद्ध गुरु के अधीन (आ-जातम्) विद्या से सम्पन्न (प्रियं) प्रिय, (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, (गृहपतिम्) गृह के पालक के समान विद्वान् वा राजा को (स्योने) सुखकारी पद वा आसन पर (आ) आदर से स्थापित करो ।

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, तेजस्वी नायक ! (ये हि) जो भी (तव) तेरे (अश्वासः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले, (साधवः) कार्य साधन में चतुर पुरुष (मन्यवे) तेरे मन्यु अर्थात् शत्रु के प्रति संग्रामादि वा तेरे उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये (अरं वहन्ति) खूब कार्य-भार उठाते हैं उन को तू (युक्ष्व) उचित स्थानों पर नियुक्त कर ।

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (नः अच्छ याहि) हमें भली प्रकार से प्राप्त हो । (वीतये) हमारे उपभोग और रक्षा के लिये (प्रयांसि) उत्तम अन्नों, कर्मों व सैन्यों को (आ वह) धारण कर और (देवान्) विद्वान्, विजयाभिलाषी, वीर और तेजस्वी पुरुषों को (सोमपीतये) ऐश्वर्य प्राप्त करने और पालन करने के लिये (आ वह) प्राप्त कर ।

उद॑ग्ने भारत द्युमदज॑स्रेण दवि॑द्युतत् ।
शोचा वि भा॑ह्यजर ॥ ४५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (भारत) प्रजा के पोषण करने हारे एवं मनुष्यों के स्वामिन्! तू (द्युमत्) कान्तियुक्त (अजस्रेण) अविनाशी, निरन्तर चमकने वाले तेज से (उत् दविद्युतत्) सूर्य के समान सबसे ऊंचा रह कर प्रकाशित हो। हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक! हे (अजर) जरादि दोषों से रहित युवा, बलवान्! तू (शोचा) कान्ति से (वि भाहि) विविध प्रकार से चमक, प्रजाओं को अच्छा लग। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः।

वी॒ती यो दे॒वं मर्तो॑ दु॒वस्ये॑द॒ग्निमी॑ळीताध्व॒रे ह॒विष्मा॑न् ।
होता॑रं स॒त्यय॑जं॒ रोद॑स्योरु॒त्तानह॑स्तो॒ नम॒सा वि॑वासेत् ॥ ४६ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (वीती) कामना से (देवं) उत्तम कामना युक्त, तेजोमय, सर्वसुखदाता, प्रभु की (दुवस्येत्) सेवा करता है और जो पुरुष (हविष्मान्) अन्नादि उत्तम सामग्री से सम्पन्न होकर (अध्वरे अग्निम्) यज्ञ में विद्यमान अग्नि के तुल्य अहिंसायोग्य उत्तम कर्मों में ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष का (ईडीत) आदर सत्कार करता है वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य माता पिताओं के भी ऊपर विद्यमान (होतारं) ज्ञान दान करने वाले (सत्य-यजं) सज्जनों के उचित सत्य आचार, सत्य न्याय के देने वाले आचार्य और प्रभु को (उत्तान-हस्तः) ऊपर हाथ उठाकर (नमसा) आदरपूर्वक झुक कर (आविवासेत्) उसकी सेवा करे, उसका मान करे। गुरु, राजा, न्यायपति, पिता और ईश्वर सबको समान रूप से आदर करे।

आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विर्हृ॒दा त॒ष्टं भ॑रामसि ।
ते ते॑ भवन्तू॒क्षण॑ ऋष॒भासो॑ व॒शा उ॒त ॥ ४७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानमय! हे स्वप्रकाश! (ते) तेरे लिये हम (ऋचा) उत्तम मन्त्र से, उत्तम आदर से युक्त वचन सहित,

(हृदा) हृदय से (तष्टम्) सुसंस्कृत (हविः) ग्राह्य, अन्न (आ भरामसि) प्रस्तुत करें (ते) तेरे कार्य के लिये (ते) वे सब (उक्षणः) कार्य-भार उठाने वाले तथा वीर्यसेचन में समर्थ, बलवान् पशु और मनुष्य (ऋषभासः) सत्य न्याय से कान्तिमान्, नरश्रेष्ठ पुरुष (उत वशाः) राष्ट्रों को वश करने वाले अधिकारी, (वशाः) तुझे चाहने वाली प्रजाएं (ते भवन्तु) तेरे अधीन हों ।

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।

येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८॥३०॥५॥

भा०—(देवासः) विजयाभिलाषी वीर पुरुष (वृत्रहन्तमम्) बढ़ते, विघ्नकारी शत्रु नाश करने में सबसे बढ़ के, (अग्रियम्) अग्रासन प्राप्त करने योग्य, (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी, अग्रणी पुरुष को (इन्धते) प्रकाशित, प्रदीप्त करते हैं (येन वाजिना) जो संग्रामचतुर और ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न पुरुष (वसूनि आभृता) नाना धन लाता और (रक्षांसि तृळ्हा) दुष्टों को नाश करता है । इति त्रिंशो वर्गः । इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ११ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ९, १०, १२, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । १३ स्वराट् पंक्तिः । १५ आर्च्युष्णिक् ॥

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।

वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्र को हनन-साधन रूप से वश में रखने हारे ! हे (धृष्णो) शत्रुओं का बलपूर्वक मान भङ्ग करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शत्रुओं को उद्विग्न करने में समर्थ ! बलवन् ! (यः)

जो तू (शवोभिः) बलों से (वृत्रम्) मेघ को सूर्य के समान, बढ़ते हुए शत्रु को और (विश्वा अमित्रिया) समस्त अमित्र भाव से रहने वाले जनों को (वि वधिषः) विविध प्रकारों से दण्डित करते हो वे आप (यम्) जिस (ऊर्वं) हिंसनीय शत्रु का (तर्दः) नाश करते और (गव्यं) भूमि के हितकारी कृषि आदि (महि) श्रेष्ठ कर्म का (गृणानः) उपदेश करते हुए आप उस (सोमम्) ऐश्वर्य का (पिब) उपभोग और पालन करो।

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् २

भा०—(यः) जो पुरुष (ऋजीषी) सरल स्वभाव, धर्म मार्ग पर अन्यों को प्रेरित करने वाला, (तरुत्रः) सब दुःखों से स्वयं पार और अन्यों को नाशकों से बचाने वाला और वृक्षवत् अपने अधीनों को छाया-वत् आश्रय देने वाला है और (यः) जो (शिप्रवान्) उत्तम मुख, नासिका वाला, सुन्दर, सौम्य मुख वा मुकुटधारी है (यः मतीनाम् वृषभः) मननशील विद्वानों के बीच सर्वश्रेष्ठ, (यः गोत्रभिद्) पर्वतों को विद्युत् के समान, भूमि के पालक राजाओं को भेदन करने में समर्थ और (यः) जो (हरिष्ठाः) अश्वों, अश्वसैन्यों और मनुष्यों पर अध्यक्ष रूप से स्थित है, (सः ईं पाहि) वह तू इस राष्ट्र को पालन कर और (सः) वह तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (चित्रान्) अद्भुत २ (वाजान्) संग्रामकारी बलवान् परसैन्यों को (अभि तृन्धि) युद्ध द्वारा विनाश कर।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं और अज्ञान के नाश करने हारे राजन्! विद्वन्! तू (प्रत्नथा) पुरातन, (ब्रह्म) वेदज्ञान और पूर्वजों के धनों को (पाहि) सुरक्षित कर। वह (त्वा मन्दतु) तुझे नित्य उपदेश दे, एवं प्रसन्न करे। तू उसका (श्रुधि) श्रवण कर। (उत) और (गीर्भिः) वेद-

वाणियों तथा उपदेष्टा विद्वान् जनों द्वारा (वावृधस्व) नित्य बढ़ा कर। तू (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्य के समान अपने तेजस्वी रूप को प्रकट कर। (इषः पीपिहि) अन्नों का पान कर अथवा इष्ट जनों वा अधीन सेनाओं की वृद्धि कर। (शत्रून् जहि) शत्रुओं का नाश कर। (गाः अभि) जो भूमियों पर आक्रमण करें उनको (तृन्धि) काट गिरा। (२) विद्वान् जन ज्ञान-वाणियों से बढ़ें, तेजोमय आत्मा का साक्षात् करें, इष्ट वासनाओं को बढ़ावें और बाधक वासना कामादि अन्तः-शत्रुओं का नाश करें, आनन्द रसदात्री चित्तभूमियों में स्थित कामादि को समूल काटें।

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु के नाश करने हारे! (ते) वे (इमे) ये (मदाः) अति हर्षदायक और स्तुति करने वाले, तुझे सन्तुष्ट करने वाले और तुझ से वृत्ति पाकर तृप्त होने वाले, (पीताः) पालन किये गये, (मत्सरासः) हर्ष पूर्वक आगे बढ़ने वाले, (द्युमन्तम्) तेजस्वी (त्वा) तुझ (महाम्) महान्, (अनूनं) किसी से अन्यून, सबसे अधिक (तवसं) बलवान्, (विभूतिं) विशेष सामर्थ्य युक्त (प्रसाहम्) उत्तम बलशाली, शत्रु पराजय करने वाले (त्वा) तुझको (उक्षयन्त) सींचें, तेरा अभिषेक करें, बढ़ावें और तुझे (जर्हृषन्त) प्रसन्न करें।

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जिस प्रकार उदय होकर सूर्य अपने तेजस्वी रूप और उषा को प्रकट करता, अन्धकारों को दूर करता, पृथिवियों पर मेघ को प्रेरित करता है वा विद्युत् को फेंकता है उसी प्रकार (मन्दसानः) स्वयं प्रसन्न एवं प्रजा की कामना करता हुआ, (येभिः) जिन उपायों से (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को और (उषसम्) उषा के

समान कान्तियुक्त, वा कामनावान् प्रजा, वा शत्रु दहनकारी सेना को (अवासयः) राष्ट्र में बसावे और (दृढ़ानि) दृढ शत्रु-सैन्यों को (अपदर्दत्) दूर करने में समर्थ होता है, उन ही उपायों से तू (महाम्) गुणों में महान्, (सन्तं) सज्जन (अद्रिम्) निर्भय, मेघवत् प्रजा पर कृपालु, न विदीर्ण होने वाले, दृढ़, (अच्युतम्) धर्म और मार्ग से च्युत न होने वाले, ब्राह्मण वर्ग और क्षात्र शस्त्र बल को (गाः परि) भूमियों पर, सब ओर (स्वात् सदसः परि) राजभवन या सावधानी से दूर २ तक (नुत्थाः) भेजा कर। जिससे वे ज्ञान का प्रसार और राष्ट्र की वृद्धि करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (तव क्रत्वा) तेरी बुद्धि से और (तव दंसनाभिः) तेरे नाना कर्मों से, (आमासु) बुद्धि और बल में अपरिपक्व प्रजाओं के बीच में तू अपने (पक्वं) परिपक्व बल और ज्ञान को (शच्या) अपनी शक्ति और वाणी द्वारा (नि दीधः) स्थापित कर। (उस्रियाभ्यः) किरणों वा गौओं के लिये जिस प्रकार द्वार खोले जाते हैं उसी प्रकार (उस्रियाभ्यः) उन्नतिशील प्रजाओं के हित के लिये (दुरः) नाना द्वार, तथा विघ्ननिवारक उपाय, (वि और्णोः) प्रकट कर, खोल और तू (अंगिरस्वान्) प्राणों और तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (ऊर्वात्) हिंसाकारी शत्रु से (गाः) समस्त भूमियों को (वि असृजः) मुक्त कर।

पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! आप (महि दंसः) बड़े भारी कर्मकौशल से (उर्वीम् क्षां पप्राथ) बड़ी भारी भूमि को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करो और आप (ऋष्वः) महान् होकर (उर्वीं द्याम्) बड़ी भारी ज्ञानप्रकाश

से युक्त राजसभा, वा शत्रु विजय करने वाली सेना को और (बृहत्) बड़े भारी राज्य को भी (उप स्तभायः) थाम। (ऋतस्य) सत्य न्याय के बल पर (यह्वीः) बड़ी, वा अपने पुत्रों के समान (मातरा) सबकी माता, पिता के तुल्य माननीय, (प्रत्ने) सनातन से विद्यमान, (देवपुत्रे) विद्वान्, बलवान् उत्तम पुरुषों को पुत्रवत् उत्पन्न वा पालन करने वाली, (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य परस्पर सम्बद्ध स्त्री पुरुषों तथा राज प्रजावर्ग दोनों को तू (अधारयः) धारण कर। (२) परमेश्वर महान् है। अपने बड़े सामर्थ्य से (ऊर्वीं द्यां क्षां पप्राथ) भूमि और आकाश को रचता, थामता है। (देवपुत्रे) सूर्यादि के मातृ पितृवत् जगत् के उत्पादक आकाश भूमि को भी धारता है।

अध॑ त्वा॒ विश्वे॑ पु॒र इ॑न्द्र दे॒वा एकं॑ त॒वसं॑ दधिरे॒ भरा॑य।
अदे॑वो॒ यद॒भ्यौहि॑ष्ट दे॒वान्त्स्व॒र्षाता वृणत॒ इन्द्र॒मत्र॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! प्रभो (यद्) जब (अदेवः) उत्तम प्रकाश आदि से रहित, तामसी पुरुष (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (अभि औहिष्ट) प्राप्त होकर उनसे तर्क वितर्क करे तब (स्वः साता) वे उत्तम उपदेश प्राप्त करने के निमित्त (अत्र) इस लोक में (इन्द्रम्) अज्ञाननाशक विद्वान् को (वृणते) प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार जब (अदेवः) मनुष्यों का अहित पुरुष (देवान् अभि औहिष्ट) मनुष्यों पर आक्रमण करे तब वे (स्वर्षाता) सुख प्राप्त करने और संग्राम करने के लिये (इन्द्रम् वृणुते) शत्रुहन्ता सेनापति को वरण करें। (अध) और उसी निमित्त (विश्वे देवाः) सब मनुष्य, (एकं) एक, अद्वितीय (तवसं) बलवान्, (त्वा) तुझको, (भराय) अपने पालन पोषण और संग्राम के लिये (पुरः दधिरे) तुझे आगे स्थापित करें।

अध॒ द्यौश्चि॑त्ते॒ अप॒ सा नु वज्रा॑द् द्वि॒तान॑मद्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः।
अहिं॒ यदिन्द्रो॑ अ॒भ्योह॑सानं॒ नि चि॑द्वि॒श्वायुः॑ श॒यथे॑ ज॒घान॑ ॥९॥

भा०—(यत्) जो (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (ओहसानम् अहिम् अभि) सम्मुख आते हुए शत्रु को (शयथे चित्) उसको सुला देने के लिये मानो, (नि जघान) विनाश कर सकता है, (अध) तब (द्यौः चित्) भूमि या आकाश के समान ही (सा) वह प्रजा, हे इन्द्र ! राजन् ! (ते) तेरे समक्ष (द्विता अनमत्) दोनों प्रकार से झुके । एक तो (वज्राद् भियसा) वज्र अर्थात् शस्त्र के भय से दूसरे (मन्योः भियसा) क्रोध के भय से ।

अध त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृतच्छ॒ताश्रि॑म् ।
निका॑मम॒रम॑णसं॒ येन॒ नव॑न्त॒महि॒ं सं पि॑णगृजीषिन् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(अध) और हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर अन्यों को चलाने और स्वयं भी धर्मानुकूल चलने हारे ! (ते महः) तेरे महान् (उग्रं) भयंकर (सहस्र-भृष्टिं) हजारों को एक वार में भून देने वाले, (शताश्रियम्) सैकड़ों पर आश्रित या सैकड़ों को नाश करने वाले, (अरमणसं) शत्रु को अच्छा न लगने वाले (निकामं) यथेष्ट (वज्रं) शस्त्र बल को (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी (ववृतत्) बनावे । (येन) जिससे तू (नवन्तम्) स्तुतिशील अति नम्र (अहिम्) शत्रु को, मेघ को विद्युत् के समान (संपिणक्) दण्डित करे । इति द्वितीयो वर्गः ॥

वर्धा॒न्यं विश्वे॑ म॒रुतः॑ स॒जोषाः॒ पच॑च्छ॒तं म॑हि॒षाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्य॑म् ।
पू॒षा विष्णु॒स्त्रीणि॒ सरां॑सि धाव॑न्वृत्र॒हणं॑ मदि॒रमं॒शुम॑स्मै ॥११॥

भा०—(यं) जिसको (विश्वे मरुतः) सब वीर एवं प्रजा के पुरुष (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर (वर्धान्) बढ़ाते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (पूषा) सबका पोषक सूर्य, पृथिवी, (तुभ्यम्) तेरे लिये (शतं) सौ, सैकड़ों, अनेक, (महिषान्) बड़े और श्रेष्ठ भोग्य अन्न, फलादि देने वाले वृक्षों और खेतों को (पचत्) परिपक्व करता है और (विष्णुः) व्यापक (धावन्) वेग से चलने हारा वायु (त्रीणि सरांसि) तीनों जाने योग्य

लोकों को (धावन्) जाता, या उनको पवित्र करता हुआ, (अस्मै) इस राज्य के नायक (वृत्रहणम्) विघ्नकारी शत्रुओं के नाशक, (मदिरम्) हर्षजनक (अंशुम्) तेज को प्रदान करता है ।

आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक राजन् ! जिस प्रकार सूर्य (नदीनां) नदियों के (अपां) जलों के (ऊर्मिम्) ऊपर गये अंश को (महिः क्षोदः) बड़े भारी अति क्षुद्र २ कणिका रूप में विद्यमान, (वृतं) आच्छादित और (परि स्थितम्) आकाश में सर्वत्र व्याप्त (असृजः) करता है और वही (प्रवतः अनु) नीचे के देशों की ओर (तासां पन्थाम्) उन जलों का मार्ग कर देता है और (समुद्रम् प्रति अपसः नीचीः प्र अर्दयः) समुद्र के प्रति उनके वेगों को नीचे की ओर ही कर देता है वही जल वहकर फिर समुद्र में जाते हैं उसी प्रकार (नदीनाम् अपाम्) समृद्धिशाली आप्त प्रजाओं के (महि) बड़े भारी (वृतं) सुरक्षित और (ऊर्मिम्) उन्नत और (परि स्थितम्) सब ओर विराजते (क्षोदः) बल को (असृजः) प्राप्त कर और (प्रवतः अनु) उत्तम उद्देश्यों के प्रति हे (इन्द्र) राजन् ! (तासाम् पन्थाम् असृजः) उन प्रजाओं का मार्ग बना तथा (समुद्रम् प्रति) समुद्र के समान महान् अखिलाश्रय, परमेश्वर के प्रति उनके (अपसः प्रार्दयः) कर्मों को प्रेरित कर ।

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १३ ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (ता विश्वा) उन २ समस्त कर्मों को (चकृवांसम्) करते हुए, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य युक्त, (महा) महान्, (उग्रम्) उग्र, बलवान्, (अजुर्यम्) बुढ़ापे से रहित, सदा युवा, (सहोदाम्) बलप्रद (सुवीरं) उत्तम वीर, (स्वायुधम्) उत्तम शस्त्रास्त्र

से सम्पन्न, पुरुष को प्रजा (अवसे) रक्षा, पालन और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (आववृत्यात्) सब प्रकार से प्राप्त करे और वह (नव्यम्) उत्तम से उत्तम (ब्रह्म) महान्, बल, धन, अन्नादि को प्राप्त करे।

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सः) वह तू (द्युमतः) दीप्ति, कान्ति आदि से युक्त (नः) हमें (वाजाय श्रवसे, इषे, राये) बलैश्वर्य, अन्न, कीर्त्ति और ज्ञान और इष्ट वाञ्छित सुख तथा (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (धेहि) धारण और पालन कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (नृवतः सूरीन्) मनुष्यों के स्वामियों और विद्वानों को (भरद्वाजे) अन्नादि से भरण पोषण करने के काम में और (दिवि) राजसभा और न्यायव्यवहार के कार्य में (धेहि) नियुक्त कर। हे ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (पार्ये) संकटों से पार करने में समर्थ (एधि) हो।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥३॥

भा०—(अया) इस रीति से हम (देव-हितम्) मनुष्यों के हितकारी विद्वान् पुरुषों में विद्यमान तथा वीर पुरुषों से प्राप्त (वाजं) ज्ञान और ऐश्वर्य, अन्न आदि पदार्थ को (सनेम) स्वयं सेवन करें और औरों को दान करें। इस प्रकार हम लोग (सु-वीराः) उत्तम पुत्र पौत्रादिवान् होकर, (शत-हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द रहें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप्। ७, १० विराट् त्रिष्टुप्। १२ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, १५ भुरिक्पंक्तिः। ५ स्वराट्पंक्तिः। ६ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ, पराक्रमशाली हो और जो (अवातः) स्वयं न मारा जाकर भी (पुरु-हूतः) बहुतों से स्तुति योग्य और पुकारा जाकर (वन्वन्) शत्रुओं का नाश करता हो (तम् उ) उसकी अवश्य तू (स्तुहि) स्तुति कर। तू उस ही (चर्षणीनां वृषभम्) मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ (अषाढं) पराजित न होने वाले, (उग्रं) बलवान् (सहमानम्) शत्रुओं को पराजय करने वाले पुरुष को (गीर्भिः) उत्तम २ वाणियों से (वर्ध) बढ़ा।

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा॥ २॥

भा०—(सः) वह (युध्मः) युद्ध करने में चतुर, (सत्वा) बलवान्, (खजकृत्) नाना संग्रामों को करने वाला, (समद्वा = सम्-अद्वा, स-मद्वा) उत्तम अन्न का भोक्ता, वा सबके साथ प्रसन्न रहने वाला, (तुवि-म्रक्षः) बहुत सी प्रजाओं को स्नेह करने हारा, निष्पक्षपात, (नदनुमान्) गर्जनाशील, उपदेष्टा, (ऋजीषी) सरल मार्ग में प्रेरणा करने वाला, (बृहद्रेणुः) बहुत से हिंसक वीर पुरुषों का स्वामी, (मानुषीणाम् कृष्टीनाम्) मननशील प्रजाओं के बीच (एकः) अकेला, अद्वितीय (च्यवनः) नेता और (सहावा) बलवान् (अभवत्) हो।

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥३॥

भा०—(त्वं ह) तू निश्चय से, (त्यदत्) वह है जो (एकः) अकेला, अद्वितीय ही (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुषों के हितार्थ (दस्यून् अदमायः) दुष्ट, प्रजानाशक पुरुषों का दमन करे और तू (कृष्टीः अवनोः) कृषि करने वाली अहिंसक प्रजाओं का सेवन कर। (तत् ते वीर्यं अस्ति स्वित्) तेरा वह अद्वितीय बल है भी (न स्विद् अस्ति) या नहीं है (तत्) इस बात को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! तू (ऋतुथा) अवसर २ पर (वि वोचः) विविध प्रकार से बतलाया कर।

सद्धिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहिष्ठ) बहुत बलशालिन् ! (तुरतः तुरस्य) हिंसक, दुष्ट पुरुष को मारने वा शीघ्र अश्वादि बल को शीघ्रता से चलाने वाले (तुवि-जातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध, (ते) तेरा (सहः सत् हि) शत्रु पराभवकारी बल निश्चय से विद्यमान ही है (इति मन्ये) मैं यह स्वीकार करता हूँ। (अरध्रस्य) स्वयं शत्रुओं के वश न आने वाले, वा अहिंसक (रध्रतुरः) हिंसकों के नाशक (तवसः) बड़े बलवान्, (उग्रस्य) भयंकर तेरा (तवीयः) अति अधिक (उग्रम्) भयंकर बल (बभूव) हो।

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥४॥

भा०—हे (अच्युत) इन्द्र ! (नः) हमारा (युष्मे) तुम्हारे साथ (प्रत्नं सख्यम्) सदा से चला आया मैत्रीभाव (अस्तु) बना रहे। (इत्था) इस प्रकार (वदद्भिः) प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचन बोलते हुए (अंगिरोभिः) तेजस्वी पुरुषों की सहायता से तू (वलम्) नगर घेरने वाले (इषयन्तं) सैन्य सञ्चालित करते हुए शत्रु को मेघ को सूर्य के समान (हन्) नाश करे। (अस्य) नाश करने हारे ! उसके तू (पुरः वि ऋणोः) नगरों का नाश कर और (विश्वाः दुरः वि ऋणः) अपने समस्त शत्रुवारक सेनाओं को विविध दिशाओं में भेज, वा (अस्य विश्वाः पुरः दुरः वि ऋणोः) इसके पुर के समस्त द्वारों को तोड़ डाल। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों वा स्तुतियों से (हव्यः अस्ति) प्रशंसनीय, आदर योग्य हो, वह (महति वृत्रतूर्ये) बड़े भारी दुष्टनाशक संग्राम में (उग्रः) बलवान् और (ईशानकृत्

अस्ति) सामर्थ्यवान् पुरुषों को अधिकारी बनाने हारा हो। (सः) वह (तनये) पुत्रों में (तोकसाता) धनादि का न्यायपूर्वक विभाजक और (सः) वह (वज्री) दण्डधारी (समत्सु) संग्रामों और एक साथ हर्ष के अवसर, उत्सवादि कालों में (वितन्तसाय्यः अभवत्) विविध शत्रुओं का नाशक और राष्ट्र सम्पत्ति का विस्तारक हो।

स मुज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह राजा (मज्मना) बल से (अमर्त्येन नाम्ना) और शत्रु को नमाने वाले असाधारण सामर्थ्य से (मानुषाणां जनिम) मनुष्यों के जनसमूह वा मानुष जन्म को (अति प्रसर्स्रे) लांघ जावे। (सः) वह (द्युम्नेन) यश से (सः शवसा) वह बल से और (उत राया) धन से तथा (सः वीर्येण) वह वीर्य से (नृतमः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और (सम्-ओकाः) सबसे उत्तम पद और स्थान प्राप्त करे।

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ८

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशकारी राजा सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर (पिप्रुं) अपना धन भरने वाले, (शम्बरं) मेघवत् शान्ति-कारक सुखों के आच्छादक, (शुष्णम्) प्रजा के रक्तशोषक (चुमुरिम्) प्रजा के सर्वस्व खा जाने वाले और (धुनिम् च) प्रजा को भय से कंपाने वाले दुष्ट जनों को भी (वृणक्) नाश करता है और जो (पुरां) पूर्ण ऐश्वर्यों के (च्यौत्नाय) प्राप्त करने वा शत्रुओं के पुरों को नाश, (शयथाय नू चित्) प्रजाओं के सुखपूर्वक सोने के लिये, शत्रुओं को रण में सुलाने के लिये, उक्त दुष्टों का नाश करता है, (यः न मुहे) जो कभी मोह में नहीं पड़ता, (न मिथू जनः भूत्) जो कभी असत्यवादी पुरुष नहीं होता (सः) वह ही (सुमन्तु नामा भूत्) उत्तम मननशील नाम से प्रसिद्ध होता है।

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (उद्-अवता) उत्तम मार्ग पर चलने हारे, (चक्षसा) शत्रुओं का नाश करने वाले (पन्यसा) अति-स्तुत्य व्यवहार से तू (वृत्रहत्याय) बढ़ते और विघ्नकारी शत्रुओं के नाश के लिये (रथम् तिष्ठ) रथ पर सवार हो और (दक्षिणत्र हस्ते) दायें हाथ में (वज्रम् धिष्व) शस्त्र ग्रहण कर। हे (पुरुदत्र) नाना दान योग्य धनों के स्वामिन्! तू (मायाः अभि प्रमन्द) उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होकर हर्षित और तेजस्वी हो। मन्दतिर्ज्वलतिकर्मा ॥

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥५॥

भा०—(अग्निः शुष्कं वनं न) आग जिस प्रकार सूखे वन को भस्म कर देती है और जिस प्रकार (भीमा अशनिः न) भयंकर बिजुली पड़कर वृक्षादि को जलाती और प्रहार करती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) इन्द्र (यः) जो तू (रुरोज) शत्रु बल को भङ्ग करता, (अध्वनयत्) घोर नाद करता और (दुरिता) दुष्ट आचारों को भी (दम्भयत् च) विनाश करता है, वह तू (हेतिः) आघातकारी होकर स्वयं (गम्भीरया) गम्भीर नाद करने वाली (ऋष्वया) बड़ी भारी शक्ति से युक्त होकर (रक्षः नि धक्षि) दुष्ट पुरुष को भस्म कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक! बलवान् पिता के पुत्र! वा बल पराक्रम के द्वारा स्वयं उत्पन्न! हे (पुरुहूत) बहुतों में प्रशंसित! (यस्य) जिस (योतोः) प्राप्त होने योग्य धन का (अदेवः) अदानशील पुरुष (ईशे) स्वामी बना है उस धन को तू (आ याहि) अवश्य प्राप्त कर

हे (इन्द्र) दुष्टनाशक ! हे (तुवि-द्युम्न) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (तुवि-वाजेभिः) बहुत से वेगवान् अश्वादि साधनों से (पथिभिः) उत्तम मार्गों से और (राया) ऐश्वर्य के बल से (सहस्रं अर्वाक् आ याहि) हजारों प्रकार के धनों और ऐश्वर्यों को प्राप्त हो।

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥

भा०—(तुवि-द्युम्नस्य) बहुत ऐश्वर्यवान्, (स्थविरस्य) स्थिर, दीर्घजीवी, (घृष्वेः) शत्रुओं का घर्षण करने, उनसे टक्कर लेकर उनको निर्बल कर देने वाले, (पुरु-मायस्य) बहुत बुद्धि वाले, चतुर, (सह्योः) सहनशील पुरुष का (महिमा) महान् सामर्थ्य से (दिवः ररप्शे) महान् आकाश, तेजस्वी सूर्य से भी बढ़ जाता है और (पृथिव्याः प्र ररप्शे) पृथिवी से भी अधिक होता है। (अस्य शत्रुः न अस्ति) उसका कोई शत्रु नहीं होता। (न प्रति-मानम् अस्ति) न उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी, उसके समान, उसका मुकाबला करने वाला होता है और (न प्रति-ष्ठिः) न उसके मुकाबले पर खड़ा होने वाला होता है वा न उसका कोई आश्रय होता है, प्रत्युत वही सबका आश्रय होता है। (२) परमेश्वर तेजःस्वरूप, ऐश्वर्यवान् होने से 'तुविद्युम्न', सनातन कूटस्थ होने से 'स्थविर', कालक्रम से सब पदार्थों के घर्षण वा संहार करने से 'घृष्वि', जीवों को उपदेश करने, बनाने और बहुप्रज्ञ होने से 'पुरुमाय' और बलशाली होने से 'सह्य' है। उसकी महिमा आकाश, सूर्य, पृथ्वी आदि से कहीं महान् है। उसका न कोई शत्रु, न प्रतिमा, न माप और न आश्रय वही सबका आश्रय है।

प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥

भा०—हे राजन् ! (यत्) जो तू (अस्मै) इस राष्ट्र के लिये (पुरु) बहुत से (कुत्सं) शस्त्र समूह को (नि शिशाः) शासन कर और (पुरु

आयुम् नि शिशाः) बहुत से मनुष्यों को अपने अधीन शासन कर और (पुरु अतिथिग्वम् नि शिशाः) बहुत से अतिथियों को प्राप्त होने वाले सत्कारयोग्य धन प्रदान कर, (पुरू सहस्रा नि शिशाः) बहुत से हजारों धनों, बलों को भी शासन कर और (धृषता) शत्रु को पराजय करने वाले बल से (तूर्व-याणं) शीघ्र यान वाले (क्षाम्) राष्ट्र निवासी प्रजाजन को (अभि उद् निनेथ) ऊपर उठाता, उन्नति की ओर ले जाता, उत्तम पद प्रदान करता है (अद्य) आज भी (ते) तेरा (तत्) यह (करणं) प्रदान करना वा (कृतम्) किया हुआ कर्म भी (प्र भूत्) उत्तम सामर्थ्य को बढ़ाने वाला है। (२) परमेश्वर का यह महान् प्रभुता का कार्य है कि वह इस जीव को ज्ञानवज्र, दीर्घ जीवन और इन्द्रिय देता है। सहस्रों सुख देता है और वह शीघ्रगामिनी भूमि, नरदेह देता, वा उसको उत्तम पद की ओर ले जाता है।

अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देव) राजन् ! दानशील ! तेजस्वी ! (यत्र) जहां (बाधिताय) पीड़ित, दुःखित और (दिवे) कामना, युक्त, इच्छुक, (जनाय तन्वे) प्रजाजन के शरीर के सुख के लिये (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ तू ही (वरिवः) उत्तम धन तथा सेवा (करः) करने हारा है उस देश में (कवीनां कवितमम्) विद्वान् क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुषों में श्रेष्ठ विद्वान् (त्वा) तुझको ही (विश्वे देवाः) समस्त प्रजा के मनुष्य प्राप्त करके (अहिघ्ने) शत्रु के नाश वा मेघनाशक सूर्यवत् तेजस्वी पद प्राप्त करने के लिये (अनुमदन्) तेरे अनुकूल रहकर प्रसन्न होते और तेरी ही स्तुति करते हैं, दुःखित जनों के सुखार्थ, सेवा और धनार्पण करने हारे, त्यागी, देशसेवक को ही प्रधान पद पर प्रस्तुत करना चाहिये।

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ।१५।६।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्नों के देने वाले ! (अमर्त्याः) न मरने वाले, दीर्घजीवी (देवाः) विद्वान् और दानशील प्रजाजन, (द्यावा-पृथिवी अनु) सूर्य, पृथिवी का अनुकरण करते हुए (ते तत्) तेरे उस (ओजः) पराक्रम को (अनु जिहत) प्राप्त करें। (यत् ते) और जो तेरा (अकृतं) न किया हुआ काम (अस्ति) है हे (कृत्नो) करने वाले पुरुष ! तू उसको भी (कृण्व) कर और (यज्ञैः) आदर सत्कार और सत्संगों द्वारा (नवीयः) अति स्तुत्य, उत्तमोत्तम (उक्थं जनयस्व) वचन, वेद ज्ञानमय उपदेश को प्रकट कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १३ भुरिक्पंक्तिः । ९ पंक्तिः । २, ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, १०, ११, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (नृवत्) शरीर के नायक प्राणों और रश्मियों से युक्त है, (चर्षणिप्राः) दर्शन कराने वाले आंखों को प्रकाश से पूर्ण करता और (द्वि-बर्हाः) अन्तरिक्ष और वायु दोनों से बढ़ने हारा, (वीर्याय) बल की वृद्धि के लिये होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष, (महान्) महान् हो। वह (नृवत्) नायक पुरुषों का स्वामी और (चर्षणि-प्राः) प्रजाओं को सुख समृद्धि से पूर्ण करने वाला, (सहोभिः) बलवान् सैन्य वर्ग से (अमिनः) सहायक वर्ग का स्वामी, शत्रु पीड़क और प्रजा का अहिंसक (उत) और (द्वि-बर्हाः) सपक्ष विपक्ष, वा प्रजा वा शासक दोनों वर्गों से बढ़ने एवं दोनों को बढ़ाने वाला, होकर (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति कृपायुक्त होकर (वीर्याय) अपने बल बढ़ाने के लिये (ववृधे) खूब बढ़े। वह (कर्तृभिः) उत्तम कार्य करने वाले

सहायकों सहित (सुकृतः) उत्तम कर्म करने हारा, (उरुः) महान् और (पृथुः) विशाल शक्तिसम्पन्न (भूत्) हो ।

इन्द्र॒मे॒व धि॒षणा॑ सा॒तये॑ धाद् बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॒ युवा॑नम् ।
अषा॑ळ्हेन॒ शव॑सा शूशु॒वांसं॑ स॒द्यश्चि॒द्यो वा॑वृ॒धे अस॑ामि ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (सद्यः चित्) बहुत शीघ्र, वा सदा ही, (असामि) बहुत अधिक (ववृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (बृहन्तम्) महान् (अजरम्) अविनाशी, (युवानम्) तरुण, (अषाढेन शवसा) असह्य बल से (शूशुवांसम्) फैलने बढ़ने बढ़ाने वाले, राष्ट्र को व्यापने वाले, पुरुष को प्रजाजन (धिषणा) कर्म और बुद्धि से (सातये धात्) राज्य भोग करने के लिये सर्वोपरि स्थापित करे । (२) उस परमैश्वर्यवान्, महान्, अजर, अविनाशी नित्य, तरुण, महान् पराक्रम से व्यापक पूर्ण वृद्धियुक्त परमेश्वर को (धिषणा) बुद्धि (सातये धात्) भजन करने के लिये धारण करे ।

पृ॒थू क॒रस्ना॑ बहु॒ला गभ॑स्ती अस्म॒द्र्य१॒॑क्सं मि॑मीहि॒ श्रवां॑सि ।
यू॒थेव॑ प॒श्वः प॑शु॒पा दमू॑ना अ॒स्माँ इ॑न्द्रा॒भ्या व॑वृत्स्वा॒जौ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू अपने (पृथू) विशाल (करस्ना) नाना कर्मों वा, आर्य जनों को शुद्ध, निर्दोष करने वाले (गभस्ती) ग्रहणशील बाहुओं को (बहुला) बहुत धन प्राप्त करने वाला, बना और उनसे हमें (श्रवांसि) नाना अन्न, धन, यश और ज्ञानादि से (सं मिमीहि) सम्मानपूर्वक प्रदान कर । (पशुपा पश्वः यूथा इव) पशुओं का पालक पुरुष जिस प्रकार पशुओं के यूथों को (आवर्त्तते) वश करता है उसी प्रकार (आजौ) संग्राम काल में तू (दमूनाः) दमनशील, जितेन्द्रिय होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ ववृत्स्व) आ और हमारी रक्षा कर ।

तं व॒ इन्द्रं॑ च॒तिन॑मस्य शा॒कैरि॒ह नू॒नं वा॑ज॒यन्तो॑ हुवेम ।
यथा॑ चि॒त्पूर्वे॑ जरि॒तार॑ आ॒सुरने॑द्या अनव॒द्या अरि॑ष्टाः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! प्रजाजनो ! (नूनं) निश्चय से हम लोग (वः) आप लोगों में से (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील, (चतिनम्) शत्रु के नाशक, पुरुष को (अस्य शाकैः) उसकी शक्तियों और सामर्थ्य से (वाजयन्तः) संग्रामों और ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (इह तं हुवेम) इस राष्ट्र में उसको प्राप्त करें और (यथाचित्) जिस प्रकार (पूर्वे) पूर्व के (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा, (अनेद्याः) अनिन्दित आचरण वाले (अनवद्याः) स्वच्छ पवित्र, (अरिष्टाः) अहिंसित जीवन होकर (आसुः) रहें वैसे ही हम भी उत्तम आचार चरित्र वाले होकर रहें।

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥७

भा०—(सः) वह (हि) निश्चय से (धृत-व्रतः) व्रत, उत्तम कर्म करने के दृढ़ निश्चयों, प्रतिज्ञाओं को धारण करने वाला, (धन-दाः) धन देने वाला, (सोम-वृद्धः) ऐश्वर्य और अन्नादि से परिपुष्ट पुरुष (वामस्य वसुनः) सुन्दर, उपभोग योग्य ऐश्वर्य का स्वामी और (पुरुक्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी हो। (समुद्रे सिन्धवः न) समुद्र में नदियों के समान (अस्मिन्) उसमें (पथ्याः रायः) सन्मार्गों से आने वाले ऐश्वर्य (याद-मानाः) निरन्तर आते हुए (सं जग्मिरे) एकत्र हों। इति सप्तमो वर्गः ॥

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम्।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६॥

भा०—हे (शूर) शत्रुओं के नाश में कुशल ! वीर पुरुष ! (अभि-भूते) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ! तू (ओजिष्ठम्) सब जनों से श्रेष्ठ और (उग्रम्) अति उग्र (ओजः) पराक्रम और (शविष्ठं शवः) सब से अधिक उत्तम (नः आभर) हमें प्राप्त करा। हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (मादयध्यै) आनन्द पूर्वक उपभोग करने के लिये, उनको सुखी और आनन्दित करने के लिये

(विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) बलवान् पुरुषों के उचित एवं बलजनक (द्युम्ना) धन, मान और यश (अस्मभ्यं दाः) हमें दें।

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) अतिहर्ष, उपदेश वा हर्षकारी, उपदेष्टा (पृतनाषाट्) मनुष्यों वा सेनाओं के विजय में समर्थ और (अमृध्रः) कभी नाश न होने योग्य है, (येन) जिसके द्वारा हम (त्वोताः) तुझसे सुरक्षित रहकर (जिगीवांसः) विजयशील होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र पौत्र की प्राप्ति और धन विभाग के कार्य में (मंसीमहि) ठीक न्याय व्यवहार जानें (तं) उस (शूशुवांसं) उत्तम गुणों से युक्त, न्यायकर्त्ता पुरुष को (नः आभर) हमें प्राप्त करा।

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (वृषणं) बलवान्, उत्तम प्रबन्ध करने में चतुर, (शुष्मम्) शत्रुओं को शोषण करने वाले, सुखप्रद, (धनस्पृतं) धन को पूर्ण करने वाले, (शूशुवांसम्) अति उत्तम, प्रचुर, (सु-दक्षम्) उत्तम व्यवहारकुशल और बलवान् पुरुष (नः भर) हमें प्रदान कर। (येन) जिसके द्वारा (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षा कार्यों से सुरक्षित रहकर हम (जामीन् अजामीन्) क्या बन्धु रूप और क्या बन्धुओं से भिन्न (शत्रून्) समस्त शत्रुओं को (पृतनासु) संग्रामों में (वंसाम) विनाश करें वा उनका न्यायपूर्वक विभाग करें।

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ते) तेरा (वृषभः) बलवान्, धर्म से तेजस्वी पुरुष (शुष्मः) शत्रुओं को शोषण करने

में समर्थ, (पश्चात्) पीछे से, (उत्तरात्) बायें से, (अधरात्) नीचे से, (पुरस्तात्) आगे से (आ एतु) आवे। वह (विश्वतः) सब ओर से (आ एतु) आये, (अभि एतु) आगे बढ़े, (सम् एतु) ठीक प्रकार से चले। हे राजन्! तू (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (अर्वाङ्) हमें प्राप्त होने वाले (स्वर्वत्) सुखयुक्त, तेजःसम्पन्न, उत्तम (द्युम्नं) धन, यश, ज्ञान-प्रकाश, (धेहि) धारण कर और करा।

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे सूर्यवत् तेजस्विन्! विद्वन्! (ते) तेरे (नृवत्) उत्तम नेता पुरुषों से युक्त, उत्तम भृत्यादि सम्पन्न (वामं) उत्तम धन और ज्ञान को हम लोग (नृ-तमाभिः) उत्तम पुरुषों से सेवन करने योग्य (ऊती) क्रियाओं, रीतियों और (श्रोमतेभिः) उत्तम पुरुषों से श्रवण करने योग्य (वंसीमहि) प्राप्त प्राप्त करें। हे (राजन्) गुणों से प्रकाशमान! तू (उभयस्य वस्वः) दोनों प्रकार के अर्थात् राष्ट्र में बसने वाले प्रजा रूप धन और उपभोग योग्य ऐश्वर्य सुवर्णादि धन को भी (ईक्षे हि) निश्चय से देखता है। तू (महि) बड़ा (स्थूरं) स्थिर और (बृहन्तम्) महान् (रत्नं) रमण, सबको प्रसन्न करने योग्य, उत्तम नर रत्न को रत्नवत् (धाः) धारण कर और राष्ट्र में स्थापित कर।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥

भा०—हम लोग (नूतनाय) सर्वस्तुत्य, सदा नये से नये, (अवसे) रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये (मरुत्वन्तम्) वायु के गुणों से युक्त, सूर्यवत् तेजस्वी एवं मनुष्यों, वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) मेघवत् सुखों के वर्षण करने वाले, बैल के समान राज्य-शकट को उठाने में समर्थ, (वावृधानं) स्वयं बढ़ने वाले (अकवारिम्) शत्रु भी जिसकी निन्दा न

करते हों, ऐसे (दिव्यम्) ज्ञान और तेज में प्रसिद्ध, (शासम्) शस्त्र बल के तुल्य शासक, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (विश्वसाहम्) सबको पराजित करने वाले, सब कष्टों को सहने वाले, (उग्रम्) बलवान् (सहोदाम्) बलप्रद, (तं) उस पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में उच्चपद पर (हुवेम) आदर पूर्वक प्राप्त करें।

जनं॑ वज्रि॒न्महि॑ चि॒न्मन्य॑मानमे॒भ्यो नृभ्यो॑ रन्धया॒ येष्वस्मि॑ ।
अधा॒ हि त्वा॑ पृथि॒व्यां शूर॑सातौ॒ हवा॑महे॒ तन॑ये॒ गोष्व॒प्सु ॥१२॥

भा०—हे (वज्रिन्) शत्रुओं और अज्ञान के वर्जन में समर्थ ! शस्त्र बल के स्वामिन् ! ज्ञान के पालक ! मैं (येषु अस्मि) जिनके बीच में रहता हूँ (एभ्यः नृभ्यः) उन जनों के हित के लिये (मन्यमानं जनं) अभिमान करने हारे पुरुष को (रन्धय) वश कर और (महिचित्) बड़े भारी, पूजनीय (मन्यमानं) अन्यों से मान आदर पाने योग्य (जनं) उत्तम मनुष्य को (रंधय) अच्छी प्रकार सत्कारपूर्वक आराधना कर। (अध हि) और हम (पृथिव्याम्) इस भूमि पर (शूर-सातौ) शूरवीरों के एकत्र होने योग्य महासंग्राम में (तनये, गोषु, अप्सु) पुत्र, गौ आदि पशु और प्राणों के निमित्त हम (त्वा हवामहे) तुझे प्राप्त करें।

व॒यं त॑ ए॒भिः पु॑रुहूत स॒ख्यैः शत्रोः॑ शत्रो॒रुत्त॑र॒ इत्स्या॑म ।
घ्नन्तो॑ वृ॒त्राण्यु॒भया॑नि शूर रा॒या म॑देम बृह॒ता त्वोताः॑ ॥१३॥८॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे और प्रशंसा किये गये ! राजन् ! (वयम्) हम (ते एभिः सख्येभिः) तेरे इन मित्रता के कार्यों से (शत्रोः शत्रोः) प्रत्येक प्रकार के शत्रु से (उत्तरे) ऊपर, उसको विजय करने में सफल (स्याम) हों और हे (शूर) शूरवीर ! हम (उभयानि वृत्राणि) दोनों प्रकार के 'वृत्र' अर्थात् विघ्नकारी पुरुषों और वरण करने योग्य धनों को (घ्नन्तः) विनाश और प्राप्त करते हुए (बृहता) बड़े भारी (राया) ऐश्वर्य से (त्वा-उताः) तेरे द्वारा रक्षा पाकर (मदेम) सुखमय जीवन व्यतीत करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ष्यनुष्टुप् । २, ३, ७, १२ पंक्तिः । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । १३ स्वराट् पंक्तिः । १७ निचृत्पंक्तिः । ५, ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

द्यौर्न य इ॑न्द्राभि भूमा॒र्यस्त॒स्थौ र॒यिः शव॑सा पृ॒त्सु जना॑न् ।
तं नः॑ स॒हस्र॑भरमुर्व॒रा॒सां द॒द्धि सू॑नो सहसो वृत्र॒तुर॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यः) जो (रयिः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष (शवसा) बल से (पृत्सु) संग्रामों में (जनान्) शत्रु लोगों के (अभि तस्थौ) मुकाबले पर खड़ा हो सके वह तू (अर्यः) स्वामी, (द्यौः न) सूर्य के समान तेजस्वी और (भूम) पृथिवी के समान बलवान् हो । हे (सहसः सूनो) बलवान् सैन्य के सञ्चालक ! तू ऐसे (वृत्र-तुरम्) दुष्ट विघ्नकारी शत्रु जन के नाशक (सहस्र-भरम्) सहस्रों धनों के लाने, सहस्रों पुरुषों के भरण पोषण में समर्थ (उर्वरासाम्) अन्नादि के उत्पादक, उर्वरा उत्तम भूमियों के भोक्ता (तं) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को (नः दद्धि) हमें दे ।

दि॒वो न तुभ्य॒मन्वि॑न्द्र स॒त्रासु॒र्यं॑ दे॒वेभि॑र्धायि॒ विश्व॑म् ।
अहिं॒ यद्वृ॒त्रम॒पो व॑व्रि॒वांसं॒ हन्नृ॑जीषि॒न्विष्णु॑ना सचा॒नः ॥ २ ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (अपः वव्रिवांसं) जलों को अपने भीतर रखने वाले (अहिं) मेघ को (विष्णुना सचानः) व्यापक वायु वा सूर्य से मिलकर (ऋजीषी) सरल रेखा में जाने वाला विद्युत् (हन्) व्यापता या आघात करता है तब (देवेभिः दिवः असुर्यं विश्वम् धायि) कामनावान् मनुष्य आकाश के समस्त मेघस्थ जल को प्राप्त करते वा सूर्य के किरण आकाश में मेघस्थ जल को अपने में धारण करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जब (अपः वव्रिवांसम्) आप्त प्रजाजनों को घेर लेने वाले, (अहिम्) सन्मुख आये, सर्पवत् कुटिल,

व अवध्य, बलवान्, (वृत्रम्) समृद्ध शत्रु को तू (विष्णुना) व्यापक, विस्तृत सैन्य बल से (सचानः) समवाय बनाकर (हन्) मारता है, तब हे (ऋजीषिन्) सरल मार्ग में प्रजाओं को सञ्चालित करने हारे राजन्! तब (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (विश्वम् असुर्यम्) समस्त असुरों को नाश करने वाले बल और (असुर्य) असुरों से प्राप्त ऐश्वर्य को (देवेभिः) मनुष्य, (सत्रा अनुधायि) निरन्तर धारण पोषण करते हैं।

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वासाम् पुराम्) शत्रु के नगरियों के (दर्त्नुम्) तोड़ने फोड़ने में समर्थ शस्त्र बल को (आवत्) प्राप्त करे वह (तूर्वन्) शत्रु का नाश करता हुआ, (ओजीयान्) सर्वाधिक पराक्रमी, (तवसः) बलवान् से (तवीयान्) अधिक बलशाली, (कृत-ब्रह्मा) और बहुत धन, अन्न सम्पादन करके (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वृद्ध-महाः) वृद्धों का आदर करने हारा हो। वह (सोम्यस्य) ऐश्वर्य से प्राप्त होने योग्य (मधुनः) मधुर सुखों का भोक्ता (राजा अभवत्) राजा हो।

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अत्र) इस राष्ट्र में (अर्क-सातौ) अर्चनीय, पूज्य पुरुषों के सेवा करने और सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष का आश्रय, तथा 'अर्क', अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति वा विभाग के लिये (दश-ओणये) दशों को अपने से न्यून करने हारे सर्वश्रेष्ठ, दशावरा परिषत् के स्वामी (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष के लिये (पणयः) उत्तम स्तुति-कर्त्ता, विद्वान्, व्यवहार चतुर पुरुष (शतैः) सैकड़ों की संख्या में (अप-द्रन्) दूर २ तक जाया करें। (वधैः) वधकारी शस्त्रों से भी (शुष्णस्य) बलवान् (पित्वः) सबके पालक (अशुषस्य) शत्रु द्वारा कभी शोषण, या

कृश न किये जाने वाले, वा प्रजा का रक्त शोषण न करने हारे राजा की (मायाः) बुद्धियों वा शक्तियों के (किंचन) कुछ लवमात्र भी कोई (न अरिरेचीत्) कम नहीं कर सकता।

मुहो द्रुहो अप॑ विश्वायु धायि वज्र॑स्य यत्पत॑ने पादि॒ शुष्णः॑।
उ॒रु ष स॒रथं॒ सार॑थये करि॒न्द्रः कुत्सा॑य॒ सूर्य॑स्य सा॒तौ ॥५॥९॥

भा०—(यत्) जो राजा (शुष्णः वज्रस्य) बलवान् शस्त्रबल के (पतने) पड़ जाने पर (द्रुहः) द्रोही शत्रु के (महः) बड़े भारी (विश्वायु) समस्त बल को (अप धायि) नीचे गिरा देता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा (सूर्यस्य सातौ) सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (सारथये) अपने सारथी और (कुत्साय) शस्त्रबल की रक्षा और वृद्धि के लिये, (उरु सरथं) एक ही रथ पर पर्याप्त उद्योग (कः) करे। इति नवमो वर्गः॥

प्र श्ये॒नो न म॑दि॒रमं॒शुम॑स्मै॒ शिरो॑ दा॒सस्य॒ नमु॑चेर्मथा॒यन्।
प्राव॒न्नमीं॑ सा॒प्यं॑ स॒सन्तं॑ पृ॒णग्रा॒या समि॒षा सं स्व॒स्ति ॥ ६ ॥

भा०—बलवान् राजा (दासस्य) प्रजा के नाशक दुष्ट, (नमुचेः) अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ने वाले, अथवा दण्ड से मुक्त न करने योग्य, दुराग्रही, अवश्य दण्डनीय शत्रु के (शिरः) शिर को (मथायन्) विनाश करता हुआ, (श्येनः) उत्तम गति या उत्तम आचरणवान्, वा बाज के समान वेग से आक्रमण करने वाला, सेनापति (अस्मै) इस राष्ट्र की वृद्धि के लिये (मदिरम् अंशुम्) तृप्तिकारक अन्न को (प्र अवत्) अच्छी प्रकार ग्रहण करे और (साप्यं) अपने साथ सन्धिपूर्वक समवाय बनाकर रहने वाले, (ससन्तं) सोते हुए पुरुष के समान आगे लेटे, (नमीं) आगे झुकने वाले या नम्र होकर रहने वाले शत्रु की भी (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे और उसको (राया संपृणक्) धन से संयुक्त करे और (इषा स्वस्ति संपृणक्) उसको इच्छा या अभिलाषा, सेना आदि से संयुक्त करे; उसे धन, सैन्य आदि की सहायता करे।

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळहाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शस्त्रबल के धारण करने हारे! तू (अहिमायस्य) सर्प वा मेघ के समान माया करने वाले, (पिप्रोः) अपना पेट पूरने वाले शत्रु के (दृढाः पुरः) दृढ नगरियों को भी (शवसा) बलपूर्वक (न दर्दः) क्यों न तोड़े? हे (सुदामन्) उत्तम दानशील तू (ऋजिश्वने) सरल धार्मिक गुणों को बढ़ाने वाले अथवा 'ऋजु' सरल, धर्म मार्ग पर चलने वाले अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय, (दाशुषे) कर आदि देने वाले धार्मिक प्रजाजन को (अप्रमृष्यम् दात्रं तत् रेक्णः दाः) ऐसा धन दे जिसे कोई बलात् न छीन सके।

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥८॥

भा०—(मातुः द्योतनाय न इयध्यै उपसृजे) माता को प्रफुल्लित करने के लिये जिस प्रकार बालक उसके पास आने का यत्न करता है उसी प्रकार (सः) वह राजा (मातुः द्योतनाय) मातृ समान राष्ट्र भूमि को चमकाने और (इयध्यै) प्राप्त करने के लिये (वेतसुं) राज्य को वश करने वाले शासन दण्ड को (दशमायम्) दशगुणा वृद्धि देने वाले, दशवरा-परिषत् को, (दशओणिम्) दशों दिशाओं को वश करने में समर्थ सेनापति को (तूतुजिम्) शत्रुओं के नाशकारी (तुग्रम्) बल को अपने अधीन करने वाले सैन्य और (इयध्यै) गमनागमन के लिये (इभं) हस्ति को (शश्वत्) सदा (उप सृज) ग्रहण करे और अपना कार्य सम्पादन करे।

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह राजा (गभस्तौ) हाथ में (वज्रं बिभ्रत्) शस्त्र वा राजदण्ड धारण किये, (अप्रतीतः) शत्रुओं से अज्ञात रहकर वा अन्यों से (अप्रति-इतः) मुकाबले पर भी न जीता जाकर (ईं स्पृधः वनते) अपने

से स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को नाश करे, वा स्पर्धा करने वाले वादि-प्रतिवादियों के धन आदि का न्यायपूर्वक विभाग करे। (अस्ता इव गर्त्ते अधि हरी अतिष्ठत) जिस प्रकार शूरवीर धनुर्धर पुरुष रथ पर चढ़कर अपने दो अश्वों पर शासन करता है उसी प्रकार राजा (गर्त्ते अधि) न्यायासन पर विराज कर (हरी अधि तिष्ठत्) वादी प्रतिवादी दोनों पक्षों पर शासन करे। उस समय (ऋष्वम् इन्द्रम्) उस महान्, पूज्य, इन्द्रासन पर विराजते राजा को (वचोयुजा वहतः) वाणियों से परस्पर पर अभियोग करने वाले दो वकील सत्य निर्णय पर पहुँचावें।

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुओं को मारने हारे! (यत्) जो तू (सप्त) सात (शारदीः) हिंसक शत्रु की (पुरः) नगरियों को (शर्म दर्त्) अपने बल से विनाश करता है और (पुरुकुत्साय) बहुत से शस्त्र समूहों को धारण करने वाले सेनापति की (दासीः) शत्रु नाशकारिणी सेनाओं को (शिक्षन्) उत्तम युद्ध शिक्षा और वेतनादि देता हुआ शत्रुओं को (हन्) दण्ड देता है, उस (ते) तेरे (अवसा) रक्षा सामर्थ्य से हम (नव्यः) उत्तम से उत्तम सम्पदाओं को (सनेम) प्राप्त करें और (पूरवः) मनुष्यगण (यज्ञैः) उत्तम आदर सत्कारों द्वारा (एना) इन नाना सम्पदाओं की (प्र स्तवन्त) खूब प्रशंसा करें।

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (उशने काव्याय) कामना करने वाले विद्वान्, या अति पूज्य (पित्रे) पिता के तुल्य ज्ञानदाता पुरुष के उपकारार्थ, (स्वं नपातम्) कभी नष्ट न होने वाला, अपना धन और (नववास्त्वं) उत्तम से उत्तम नवीन रहने का घर और पहनने का वस्त्र

और (अनुदेयं) बाद में भी देने योग्य विदाई (परादद्ाथ) दान दिय कर। इस प्रकार (वृधः वरिवस्यन्) अपने से बड़ों की सेवा करता हुआ, (त्वं) तू (पृर्व्यः भूः) अपने पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में वृद्ध जनों का हितकारी और श्रेष्ठ पुरुष हो।

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

भा०—(धुनिः धुनिमतीः अपः ऋणोः सीराः न स्रवन्तीः) मेघों को कंपाने वाला वायु कम्पनकारी विद्युतों से युक्त मेघस्थ जलों को धाराओं के समान बहाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! (त्वं) तू (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने हारा होकर (धुनिमतीः अपः) स्तुतिशील आप्त प्रजाओं को (सीराः स्रवन्तीः न) बहती धाराओं के समान (ऋणोः) अपने अनुकूल चला। (यत्) जो हे (शूर) शूर वीर! तू (समुद्रं पर्षि) समुद्रवत् संकट को पार कर, (तुर्वशं) शीघ्र वश आने वाले (यदुम्) यत्नवान् प्रजाजन को भी (स्वस्ति पारय) सुखपूर्वक पार कर।

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनी चुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः १३।१०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तव ह त्यत् विश्वम्) यह सब तेरा ही सामर्थ्य है कि (आजौ) युद्ध काल में भी जो तेरे (धुनी चुमुरी) शत्रु को कंपा देने और राष्ट्र को भोग करने वाले सामर्थ्य हैं तू उन दोनों को (सस्तः) सुला देता अर्थात् उनको मन्द कर देता है और जो (दभीतिः) नाश करने हारा, (इध्म-भृतिः) लकड़ी से अपना भरण पोषण करने वाला, अग्नि के समान तेज मात्र धारण करने वाला, (पक्थी) परिपाक करने वाला, तेजस्वी पुरुष (अर्कैः सोमेभिः) अन्नों और जलों से (तुभ्यं) तेरा (सुन्वन्) सत्कार करता हुआ (दीदयत्) प्रकाशित करे, तू उसको सुखी कर। इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ९, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ स्वराड् बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमा उं त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥

भा०—हे (वीर) विविध उपायों से प्रजा को उपदेश देने हारे एवं सत्कर्मों में लगाने हारे ! विद्वन् ! राजन् ! (इमाः) ये (हव्याः) स्तुति करने वाली प्रजाएं (पुरु-तमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, (कारोः) विद्वान्, कर्त्ता, विधाता पुरुष के (हव्यं) स्तुति योग्य कर्म की (हवन्ते) स्तुति करती हैं। (धियः) उत्तम बुद्धियां और (अजरं) अक्षय (नवीयः) अति उत्तम कर्म, नये से नया ज्ञान, (रयिः) ऐश्वर्य, (वचस्या) वचनीय, (विभूतिः) विशेष सामर्थ्य, ये सब उत्तम वस्तुएं हे स्तुत्य वीर ! (रथेष्ठां त्वा) रथ पर स्थित तुझको (ईयते) प्राप्त हों।

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

भा०—(यस्य) जिस (पुर-मायस्य) नाना प्रकार के निर्माण सामर्थ्यों, नाना शक्तियों और बुद्धियों से सम्पन्न परमेश्वर का (महित्वम्) महान् सामर्थ्य (दिवम् अति-रिरिचे) सूर्य से बढ़ कर है और जो (पृथिव्याः अति रिरिचे) पृथिवी से भी बड़ा है। (यः विदानः) जो ज्ञानवान् है, (तम् उ) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (गिर्वाहसं) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य, (यज्ञ-वृद्धम्) उपासना और आदर सत्कारों, दानों आदि से परिपुष्ट, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (स्तुषे) स्तुति कर।

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (इत्) ही (अवयुनं) जिसमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता ऐसे घोर (तमः) अन्धकार को (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (वयुन-वत् चकार) अभिव्यक्त, ज्ञान योग्य कर देता है। हे (स्वधावः) स्वयं धारण शक्ति के स्वामिन्! प्रभो! (मर्त्ताः) मरणधर्मा जीव (अमृतस्य ते) जरा मरण रहित, अविनाशी तेरे (धाम) तेजोमय जगत् के धारण को (इयक्षन्तः) प्राप्त होना चाहते हुए (कदा) कभी भी (न मिनन्ति) हिंसा नहीं करते। परमेश्वर को साक्षात् करने के लिये वे अहिंसा महाव्रत को पालते हैं।

यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (ता) वे नाना जगत्-सर्जन आदि कर्म (चकार) करता है (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह स्विद्) कहां है? वह (कम् जनं आ चरति) किस मनुष्य को प्राप्त होता है? (कासु विक्षु च चरति) वह किन प्रजाओं में व्यापता है? हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (कः यज्ञः) वह कौनसा उपासना का प्रकार है जो (मनसे शम्) चित्त को शान्ति दायक है? (कः अर्कः) कौनसा अर्चना करने का उपाय है जो (वराय) श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के लिये है? हे प्रभो! (सः) वह (होता) सबका दाता (कतमः) कौन सबसे श्रेष्ठ है? उत्तर—(कतमः) वह परम सुखस्वरूप, व्यापक, श्रेष्ठ सर्वपूज्य है।

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५॥११॥

भा०—हे परमेश्वर! (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये हुए! हे (पुरुकृत्) बहुत से लोकों को बनाने हारे! (ये) जो (पुराजाः) पूर्वकाल में ... हुए, (प्रत्नासः) अति पुरातन, (मध्यमासः) मध्यकाल में उत्पन्न (उत) और (नूतनासः) नये विद्वान् (इदा हि) इस समय भी (वेविषतः

ते) सर्वव्यापक तेरे (सखायः) मित्र हैं, हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (उत) और तू (अवमस्य) अब के अर्थात् बाद के सबको (बोधि) जानता है। इत्येकादशो वर्गः॥

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम्॥ ६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (अवरासः) बाद के उत्पन्न जीव गण, (तं) उस परमवेद्य को (पृच्छन्तः) आदरपूर्वक प्रश्न द्वारा जानने की इच्छा करते हुए, (ते) तेरे ही (प्रत्ना) सनातन से चले आये, (पराणि) उत्तम २ (श्रुत्या) श्रवणीय गुरु-उपदेशादि वा वेद द्वारा जानने योग्य कर्मों, स्वरूपों को (अनु) जानने और करने को लक्ष्य करके (येमुः) यम, नियम, दीक्षा बन्धनादि करते हैं। हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेश करने हारे, विविध लोकों के सञ्चालक! (ब्रह्मवाहः) वेद ज्ञान-रूप धन को धारण करने वाले हम लोग (त्वा यात् एव विद्म) जितना ही तुझको जानते हैं (तात् एव) उतना ही (महान्तं) बड़ा, महान् पाकर तेरी (अर्चामसि) अर्चना करते हैं।

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व॥ ७॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष का (पाजः) बल (महि जज्ञानम्) बड़े भारी रूप में प्रकट होने वाले (त्वा अभि वितस्थे) तेरे प्रति विविध प्रकार से विरोध में खड़ा हो, तब तू (तत्) तेरे प्रति विविध प्रकार से विरोध में खड़ा हो, तब तू (तत्) उसके (अभि) मुकाबले पर (तिष्ठ) खड़ा हो जा। हे (धृष्णो) शत्रुओं को पराजय करने हारे! और (तव) तू अपने (प्रत्नेन) सनातन (युज्येन) सहायक (सख्या) मित्रवत् (वज्रेण) शस्त्रबल से (ता) उन सबको (अपनुदस्व) दूर कर। (२) अध्यात्म में 'इन्द्र'—जीव है। विघ्नकारी, सत्कार्यों

में बाधक काम क्रोधादि 'रक्षस्' हैं। उनका बल वार २ बाधक होकर उपस्थित होता है। वह सनातन सखा 'वज्र', अज्ञान दुःखादि के नाशक परमेश्वर की सहायता से उसे दूर करे।

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वीर) वीर! विविध लोकों के चलाने हारे प्रभो! शूरवीर राजन्! हे (कारुधायः) विद्वान् स्तोता तथा शिल्पकर्त्ता जनों के पोषक प्रभो! (सः) वह तू (ब्रह्मण्यतः) धनेच्छुक और परम ब्रह्मज्ञान वा ब्रह्मपद की कामना करने वाले (नूतनस्य) नये, मुमुक्षु पुरुष के (श्रुधि) वचन को श्रवण कर। (त्वं हि) तू (प्रदिवि) उत्तम कामना के निमित्त सदा (पितृणां) पालक पिताओं का भी (आपिः) परम बन्धु है और तू ही (शश्वत्) सदा काल से (सु-हवः) सुखपूर्वक बुलाने, प्रार्थना करने योग्य होकर (इष्टौ आ बभूथ) यज्ञ, सत्संग में मान-आदर-पूर्वक प्राप्त है।

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च॥ ९॥

भा०—हे विद्वन्! प्रभो! राजन्! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (वरुणं) रात्रि को, श्रेष्ठ पुरुष और शत्रुवारक जन को, (मित्रम्) दिन को और सर्वस्नेही ब्राह्मण को, (मरुतः) वायुओं, विद्वानों, वीर और व्यापारी मनुष्यों को, (अद्य) आज, सदा (प्र कृष्व) उत्तम बना और (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (पूषणं) पृथ्वी और उसके पोषक वर्ग को, (विष्णुम्) व्यापक वायु वा विद्युत् को और प्रजा में प्रभावशाली को, (अग्निम्) अग्नि तत्व को, अग्रणी, विद्वान् को, (पुरन्धिम्) देहपुर वासी पुरुष के धारक बुद्धि को, स्त्री को और राष्ट्र के धारक शक्तिमान् राजा को, (सवितारम्) सर्वोत्पादक पिता, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को और

(ओषधीः) ओषधियों को और शत्रुतापक तेज धरने वाली सेनाओं को और (पर्वतान् च) मेघों, पर्वतों और पालन कर्त्ता, मेघवत् उदार, पर्वतवत् अचल पुरुषों को भी (प्र कृण्व) उत्तम रूप से सामर्थ्यवान् बना।

इम उं त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥१०॥

भा०—हे (पुरुशाक) बहुत शक्तियों के स्वामिन् ! हे (प्रयज्यो) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य, पूजनीय प्रभो ! (इमे जरितारः) ये स्तुतिशील विद्वान् जन (अर्कैः) अर्चना योग्य वेद मन्त्रों, स्तुतियों से (त्वा अभि अर्चन्ति) तेरी अर्चना करते हैं। (आ हुवतः) अपने आत्मा को तेरे प्रति आहुतिवत् अर्पण करने और तुझे आदर पूर्वक बुलाने वालों को भी तू (आहुवानः) अपने प्रति बुलाता और अपने को उनके तईं देता हुआ उनका वचन (आ श्रुधि) आदरपूर्वक श्रवण कर। हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! अविनाशिन् ! (त्वावान्) तेरे जैसा (त्वत् अन्यः न अस्ति) तेरे से भिन्न दूसरा नहीं है।

नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभि सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (ऋत-सापः) सत्य वचन के आधार पर दृढ़ता से समवाय बनाने वाले, सत्य पर दृढ़ (अग्निजिह्वाः) अग्नि की ज्वाला के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली वाणी को बोलने वाले, (आसुः) हैं और (ये) जो (मनुं) मननशील (उपरं) सर्वोपरि विराजमान, मेघवत् उदारता से निष्पक्षपात होकर दान देने वाले को (दसाय) अज्ञान वा शत्रु का नाश करने के लिये (चक्रुः) नियुक्त करते हैं उन (यजत्रैः) दानशील, सत्संगी और पूजा के योग्य, (विश्वेभिः) समस्त पुरुषों के साथ या उन द्वारा हे (सहसः सूनो) बलवान् पुत्र, बल, सैन्य के सञ्चालक ! तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उप याहि) प्राप्त कर।

स नो॑ बोधि पुर ए॒ता सु॒गेषू॒त दु॒र्गेषु॑ पथि॒कृद्वि॒दानः॑ ।
ये अश्र॑मास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठा॒स्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म् १२।१२

भा०—(सः) वह तू (विदानः) ज्ञानवान् (पथि-कृत्) मार्ग बनाने हारा, (सुगेषु) सुगम और (दुः-गेषु) विषम स्थानों में (उत) भी (पुरः-एता) आगे चलने वाला नायक होकर (नः बोधि) हमें उत्तम ज्ञान दे, सन्मार्ग का उपदेश दे। (ये) जो (अश्रमासः) कभी न थकने वाले, (उरवः) बड़े (वहिष्ठाः) उत्तम वहन करने वाले अश्व के समान सुदृढ़, धुरन्धर पुरुष हैं (तेभिः) उन द्वारा हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (अभि-वाजम्) ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम आदि कार्यों की ओर (वक्षि) ले चल। इति द्वादशो वर्गः ॥

[२२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्तिः । १० पंक्तिः । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

य एक॒ इद्धव्य॑श्चर्षणी॒नामिन्द्रं॒ तं गी॒र्भिर॒भ्य॑र्च आ॒भिः ।
यः पत्य॑ते वृष॒भो वृष्ण्या॑वान्त्स॒त्यः सत्वा॑ पुरु॒मायः॒ सह॑स्वान् ॥१॥

भा०—(यः) जो (एक इत्) एक अद्वितीय ही (चर्षणीनाम् हव्यः) मनुष्यों के बीच सबके पुकारने योग्य है (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् को (आभिः) इन (गीर्भिः) वेद वाणियों, उत्तम वचनों से (अभि अर्च) साक्षात् अर्चना कर। (यः) जो (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखों का देने वाला, (वृष्ण्या-वान्) बलवान् पुरुषों के बलों का स्वामी है वह स्वयं भी (सत्यः) सत्य व्यवहार वाला, न्यायशील, (सत्वा) बलवान्, (पुरु-मायः) बहुत सी प्रज्ञाओं वा वाणियों का ज्ञाता और (सहस्वान्) बलवान् है।

तमु॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरो॒ नव॑ग्वाः स॒प्त विप्रा॑सो अ॒भि वा॒जय॑न्तः ।
न॒क्ष॒द्दा॒भं तत॑ुरिं पर्वते॒ष्ठामद्रो॑घवाचं म॒तिभिः॒ शवि॑ष्ठम् ॥ २ ॥

भा०—(नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व के पालक, माता, पिता और गुरुजन (नवग्वाः) नये से नये अति स्तुत्य, रम्य भूमियों, वाणियों और गतियों वाले, (सप्त) देह में सात प्राणों के समान, (विप्रासः) बुद्धिमान् पुरुष (अभि वाजयन्तः) एक साथ ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (नक्षत्-दाभं) राष्ट्र में प्राप्त और फैलते हुए शत्रु और सेना को नाश करने वाले, (ततुरिं) अति शीघ्र कार्य सम्पादन करने वाले, (पर्वतेष्ठाम्) मेघ में विद्यमान, विद्युत् के समान तेजस्वी, धर्ममेघ दशा में विराजमान, (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित वाणी वाले, (शविष्ठम्) अति बलवान् (तम्) उसको प्राप्त करें, उसका सत्संग लाभ करें ।

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारे ! मनुष्यों के स्वामिन् ! (यः) जो (अस्कृधोयुः) कभी न खुटने वाला, (अजरः) अविनाशी, (स्वर्वान्) सुखप्रद ऐश्वर्य है वह तू (मादयध्यै) सुख प्राप्त करने के लिये (तम् आभर) उसे प्राप्त करा । (अस्य) उस (पुरु-वीरस्य) बहुत से पुत्र, भृत्य, वीर जनों से युक्त (नृवतः) उत्तम नायक वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत अन्न सम्पदा पूर्ण, (रायः) धन की हम (ईमहे) याचना करते हैं ।

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरे (यदि) जिस (द्युम्नम्) सुख या उत्तम विचारणीय ज्ञान को (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा वा अध्येता जन (आनशुः) पाते हैं (तत्) उसे (नः) हमें भी तू (वि वोचः) उपदेश कर । हे (दुध्र) शत्रु से न हारने वाले ! हे (पुरू-हूत) बहुतों से अपनाये हुए ! हे (पुरू-वसो) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (असुरघ्नः) दुष्ट-असुरों के हनन करने वाले (ते)

तेरा (कः भागः) कौनसा भाग और (किं वयः) क्या बल वा अधिकार है उसे तू पहचान ।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्करी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥१३॥

भा०—(यस्य) जिस मनुष्य की (वेपी) सत्कर्म सहित व भक्ति भाव से कांपती हुई, (वक्करी) उत्तम वचन कहने वाली, (गीः) वाणी (वज्र-हस्तं) शस्त्र हाथ में लिये, (रथे-ष्ठाम्) रथ पर खड़े, (इन्द्रं) शत्रुहन्ता (तं) उस अलौकिक कर्त्ता, वीर पुरुष के विषय में (पृच्छन्ती) नाना प्रश्न पूछती हुई (गातुम् इषे) गाना चाहती है, वह (तुवि-ग्राभम्) बहुतों को वश करने वाले (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से लोकों के बनाने वाले, (रभः-दाम्) बल, शक्ति के दाता, (तुम्रम्) शत्रुओं को ग्लानियुक्त कर देने वाले संकटों के नाशक को (अच्छ नक्षते) भली प्रकार प्राप्त होता है, उसका साक्षात् करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

भा०—हे (स्वतवः) स्वयं बलशालिन् ! 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य के बल से युक्त ! हे (स्वोजः) स्वयं अपने ओज, बल, पराक्रम वाले ! वा 'स्व' धन के बल पर या उसके लिये विशेष पराक्रम करने में समर्थ ! हे (विरप्शिन्) गुणों में महान् ! परमेश्वर ! वा राजन् ! (त्वं) तू (अया ह मायया) इस अद्भुत निर्माणकर्त्री शक्ति, प्रकृति वा ज्ञानकर्त्री बुद्धि और (मनोजुवा) मन के समान वेग वाले (पर्वतेन) पोरु, पोरु, खण्ड २ में विद्यमान बल से तू (वावृधानं) अपने बढ़ते शत्रु को विनाश कर और (धृषता) शत्रु का मान भंग करने वाले, (अच्युता चित्) न डोलने वाले, (वीडिता) वीर्यवान्, बलवान्, (दृळ्हा) दृढ़ शत्रु नगरों वा सैन्यों को भी (रुजः) तोड़ डाल । महान् परमेश्वर हमारे अभेद्य, दृढ़ वासनामय कुसंस्कार, मोहादि शत्रुओं का नाश करे ।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

भा०—(तं) उस (शविष्ठं) अति बलशाली, (प्रत्नं) सनातन पुरुष को (नव्यस्या) नयी से नयी, अति रमणीय (धिया) वाणी और कर्म से (वः) आप लोगों के हित (परितंसयध्यै) सब प्रकार से सुशोभित करने, उसका उत्तम वर्णन करने के लिये (प्रत्नवत्) पूर्व के विद्वानों के समान ही यत्न करता हूँ । (सः) वह (अनिमानः) अविज्ञेय, परिमाणरहित, महान्, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सु-वह्मा) सुखपूर्वक समस्त जगत् को वहन कर रहा है। वह (विश्वानि) समस्त (दुर्-गहानि) दुःख से प्राप्त करने योग्य संकटों से भी (नः वः अतिवक्षत्) हमें और आप सबको भी उत्तम रथवत् पार पहुँचा दे ।

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवान् ! उत्तम प्रबन्ध करने हारे प्रभो ! विद्वन् ! तू (पार्थिवानि) पृथ्वी के और (दिव्यानि) आकाश के और (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सब पदार्थों को (आ दीपयः) सब प्रकार से चमकाता है, तू (ब्रह्मद्विषे) परमेश्वर, वेदज्ञ और अन्नादि के द्वेषी, (द्रुह्वणे) और द्रोही (जनाय) वेदज्ञ मनुष्यों के लिये इन सब पदार्थों को (तप) संतप्त, दुःखदायी कर (तान्) उनको (शोचिषा) अपने तेजस से (विश्वतः शोचय) सब ओर से दग्ध कर । उस ब्रह्मद्वेषी के लिये (क्षाम् अपः च शोचय) भूमि और जलों को भी प्रतप्त कर । प्रभु द्वेषी पुरुष को ये सब पदार्थ सुख न देकर कष्ट देते हैं ।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (त्वेषसन्दृक्)

कान्तियुक्त न्याय प्रकाश से सम्यक् दर्शन, यथार्थ विवेक करने वाला होकर (दिव्यस्य पार्थिवस्य राजा भुवः) दिव्य उत्तम पृथिवी के समस्त जनों और ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (अजुर्य) अविनाशिन्! तू (दक्षिणे हस्ते) दायें हाथ में (वज्रं धिष्व) वज्र, बल या धैर्य धारण कर। तू (विश्वाः) समस्त (मायाः) उत्तम विद्याओं, बुद्धियों को (विदयसे) विविध प्रकार से दे, उनकी रक्षा कर। उसी प्रकार तू शस्त्र बल से (मायाः विदयसे) शत्रु की कपटयुक्त चालों को विविध प्रकार से नाश कर।

आ सं॒य॒तमि॑न्द्र णः स्व॒स्तिं श॑त्रु॒तूर्या॑य बृह॒तीमसृ॑ध्राम्।
यया॒ दासा॒न्यार्या॑णि वृ॒त्रा करो॑ वज्रिन्त्सु॒तुका॒ नाहु॑षाणि ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यया) जिस बुद्धि वा शक्ति से (दासानि) मनुष्यों के नाश करने वाले (वृत्रा) विघ्नकारी कुलों वा धनों को (आर्याणि) उत्तम श्रेष्ठ, सदाचार युक्त, 'अर्य' अर्थात् स्वामी के उपभोग योग्य (करः) बना देता और हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र के स्वामिन्! बलशालिन्! जिस बुद्धि वा शक्ति से तू (नाहुषाणि) मनुष्यों के कुलों वा धनों को (सु-तुका) उत्तम, सुखपूर्वक, वृद्धिशील कर देता है और (वृत्रा सु-तुकानि) विघ्नकारी जनों को सुखपूर्वक मारने योग्य करता है, तू (नः) हमारे लिये उस (संयतम् स्वस्तिम् करः) कल्याणकारिणी, अच्छी प्रकार प्रजा को नियमादि में बांधने वाली और यत्न करने वाली कर, और (शत्रुतूर्याय) शत्रु के नाश करने के लिये (असृध्राम्) न नाश होने वाली (बृहतीम् करः) बड़े भारी सेना को बना।

स नो॑ नि॒युद्भिः॑ पुरुहूत वेधो वि॒श्ववा॑राभि॒रा ग॑हि प्रयज्यो।
न या अदे॑वो॒ वर॑ते॒ न दे॒व आभि॑र्याहि॒ तूय॒मा म॑द्र्य॒द्रिक् ॥ ११ ॥ १४ ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित! हे (वेधः) विधान, धारा वा राजनियमों के बनानेहारे! विद्वन्! हे (प्रयज्यो) उत्तम पूज्य! सत्संग, योग्य उत्तम न्याय वा विद्या आदि के दातः! राजन्! (सः) वह तू

(विश्व-वाराभिः) सबकी रक्षा करने वाली (नियुद्भिः) निरन्तर युद्ध करने वाली, सेनाओं और अश्ववत् सदा नियुक्त रहने वाले भृत्यादि सहित (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो । (या) जिनको (न अदेवः) न तो अदानशील (वरते) निवारण कर सके और (न देवः) न विजयेच्छुक शत्रु ही (वरते) प्राप्त कर सके, (आभिः) उनसे तू (मद्र्यद्रिक्) मेरे प्रति (तूयम्) शीघ्र ही (आ याहि) आ । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६, १० त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ स्वराट् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम पूजित ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (यत् वा) जब तू (बाह्वोः) शत्रु को पीड़न करने वाली दो बाहुओं के समान दायें बायें की दो सेनाओं में (वज्रं) शत्रु को वर्जन करने वाले शस्त्र बल को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) जुते दो अश्वों से महारथी के समान (युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) नियुक्त प्रजा के स्त्री पुरुषों सहित (यासि) प्रयाण करता है तब तू (स्तोमे) स्तुति-योग्य, (उक्थे) उत्तम प्रशंसनीय वचन के (शस्यमाने) कहे जाते हुए, (ब्रह्मणि) उत्तम, महान् ऐश्वर्य में तथा (सोमे) सर्वप्रेरक, राजपद पर (सुते) अभिषिक्त होने पर भी (निमिश्लः) उसमें निःसक्त होकर रह । वह ऐश्वर्य तुझे गर्वयुक्त, विलासी न बनावे ।

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२॥

भा०—(यद् वा) और जब तू (पार्ये दिवि) सबसे उत्कृष्ट, दूर तक

फैलने वाले, तेज में (वृत्र-हत्ये) विघ्नकारियों के नाश करने और (शूर-सातौ) शूरवीर पुरुषों के लाभ कर लेने पर (सु-ष्विम्) उत्तम ऐश्वर्यो-त्पादक राष्ट्र को (अवसि) प्राप्त कर ले, (यद्वा) और जब (बिभ्युषः) भयभीत (दक्षस्य) व्यवहारकुशल प्रजा को (शर्धतः) नाश करने वाले (दस्यून्) शत्रु, दुष्ट पुरुषों को स्वयं (अबिभ्यत्) भय रहित होकर (अरन्धयः) वश कर सके तो हे राजन् ! तू (निमिश्लः सन् राज्यं शाधि) निःसंग होकर राज्य का शासन, प्रजा का शासन कर ।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३॥

भा०—(प्र-नेनीः) उत्तम उद्देश्य की ओर ले जाने हारा (उग्रः) बलवान् पुरुष (ऊती) रक्षा, उत्तम उपाय और सन्मार्ग से (सुतं) उत्पन्न अभिषेक द्वारा प्राप्त, (सोमं) राष्ट्र को और (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् को (पाता) पालन करने हारा पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर राजा (अस्तु) बने । वह (सु-स्वये वीराय) उत्तम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले वीर पुरुषों के लिये (लोकं कर्त्ता) उत्तम स्थान बनावे । (कीरये चित्) उत्तम विद्वान् (स्तुवते) उपदेष्टा पुरुष के लिये भी (वसु) उत्तम गृह, धन आदि का (दाता अस्तु) देने वाला हो ।

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

भा०—वह राजा (हरिभ्यां) अश्वों से रथवान् पुरुष के समान राष्ट्र के उत्तम स्त्री पुरुषों द्वारा, व उनके हितार्थ उत्तम दो विद्वानों द्वारा (इयन्ति सवना) इतने, नाना शासनोचित कार्यों, ऐश्वर्यों को (गन्ता) प्राप्त होने वाला, (वज्रं बभ्रिः) शस्त्र बल को धारण करने वाला, (सोमं पपिः) अन्न और ऐश्वर्य का भोक्ता और पालक (गाः ददिः) उत्तम वाणियों और भूमियों का दान करने वाला हो । वह (सर्व-वीरं) समस्त वीर पुरुषों से

युक्त (नर्यं) नायक पुरुष के अधीन और राष्ट्र में बसे मनुष्यों का हित-कारी (वीरं) वीर सैन्य वा पुत्र का (कर्त्ता) उत्पन्न करने वाला हो। वह (स्तोमवाहाः) स्तुति वचनों और स्तुत्य पदाधिकार को धारण करने हारा होकर (गृणतः हवं श्रोता) उपदेष्टा और निवेदक जन के वचनों और पुकार का श्रवण करने वाला हो।

अस्मै व॒यं यद्वा॒वान॒ तद्वि॑विष्म॒ इन्द्रा॑य॒ यो नः॑ प्र॒दिवो॒ अप॒स्कः।
सु॒ते सोमे॑ स्तु॒मसि॒ शंस॑दु॒क्थेन्द्रा॑य॒ ब्रह्म॒ वर्ध॑नं॒ यथास॑त् ॥५॥१५॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारी (प्र-दिवः) उत्तम २ कामनाओं को पूर्ण करने के लिये, वा सनातन, अनादि काल से (अपः कः) नाना कर्म करता है वह (यत् वावान) जो चाहता है (यत् विविष्मः) हम वह २ प्राप्त करें। (वयं) हम (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवान् के लिये (सुते सोमे) ऐश्वर्य, अन्न और उत्पन्न पुत्र आदि प्राप्त होने पर अवश्य (स्तुमसि) स्तुति करें। मनुष्य को चाहिये कि (इन्द्राय) उस परमेश्वर के (उक्था) स्तुतियां अवश्य (शंसत्) किया करे, (यथा) जिससे हमारा (ब्रह्म) बृहत् ज्ञान और धन अन्न और आत्मा (वर्धनम्) स्वयं वृद्धिशील, हमें बढ़ती देने हारा (असत्) हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ब्रह्मा॑णि॒ हि च॑कृ॒षे वर्ध॑नानि॒ ताव॑त्त इन्द्र म॒तिभि॑र्विविष्मः।
सु॒ते सोमे॑ सुत॒पाः शन्त॑मानि॒ रान्द्र्या॑ क्रियास्म॒ वक्ष॑णानि य॒ज्ञैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (हि) निश्चय से (ब्रह्माणि) धनैश्वर्यों और अन्नों को मेघ के समान सदा (वर्धनानि) बढ़ने वाला (चकृषे) करता है, उनको निरन्तर बढ़ाता है। (तावत्) इसी कारण हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन्! हम लोग (मतिभिः) अपनी बुद्धियों द्वारा (ते) तेरे सामर्थ्यों को (विविष्मः) प्राप्त करें। हे (सु-तपाः, सुत-पाः) समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों, तथा ऐश्वर्य अन्नादि के पुत्रवत् पालन तथा उपभोग करने हारे! (सुते सोमे) अन्न ऐश्वर्य वा सौम्य पुत्रादि के उत्पन्न होने पर भी हम

(शं-तमानि) अति शान्तिदायक, (रान्द्या) हर्षजनक (वक्षणानि) स्तुति वचन, (यज्ञैः) ईश्वरोपासना, विद्वत्सत्कार और अग्निहोत्र, दान आदि उत्तम कर्मों सहित (क्रियास्म) किया करें ।

स नो॑ बोधि पु॒रो॒ळाशं॒ ररा॑णः पिबा॒ तु सोमं॒ गो ऋ॑जीकमिन्द्र ।
एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदो॒रुं कृ॑धि त्वाय॒त उ॑ लो॒कम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! धनाढ्य पुरुष ! वह तू (रराणः) अति प्रसन्न होकर एवं (पुरोडाशं रराणः) अन्न प्रदान करता हुआ, (गो-ऋजीकम्) गोरस, दूध आदि से संस्कृत, तथा और इन्द्रियों को ऋजु, सरल, सौम्य स्वभाव बनाने वाले तथा वाणी से संस्कृत, प्रशस्त और भूमि आदि से सुसम्पन्न (सोमम्) अन्न, ऐश्वर्य और पुत्रादि का (पिब) स्वयं पान तथा पालन कर और तू (यजमानस्य) दान देने वाले, दानशील पुरुष के योग्य (इदं बर्हिः) वृद्धि प्रतिष्ठाजनक इस उत्तम आसन पर (सीद) विराज । (त्वायतः) तुझे चाहने वाले प्रियजन के लिये (लोकं) स्थान को (उरुं कृधि) विशाल कर ।

स म॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु ।
प्रेमे ह॒वास॑ः पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वे॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे विद्या और कर्म में कुशल द्रष्टः ! (इमे यज्ञासः) ये यज्ञ, दान सत्संग, देवपूजा आदि सत्कर्म, (त्वा) तुझे (प्र अश्नुवन्तु) प्राप्त हों । (इमे हवासः) ये देने, लेने योग्य ज्ञान, अन्न, धन, उत्तम वचन स्तुति आदि पदार्थ (त्वा पुरु-हूतम्) बहुत से स्तुति प्राप्त तुझको प्राप्त होवें । (इयं धीः) यह उत्तम बुद्धि और कर्म-कुशलता तथा राष्ट्र के धारण पालन पोषण की शक्ति (अवसे) रक्षा, ज्ञान, प्रीति आदि के लिये (आ) प्राप्त हो । तू (यम्याः) उत्तम रीति से प्रबन्ध कर । (सः) वह तू हे (उग्र) बलशालिन् ! (अनु जोषम्) प्रेमपूर्वक (मन्दस्व) प्रसन्न रह ।

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥९॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! सभा आदि में एक समान ख्याति वालो ! आप लोग (वः) अपने (सुतेषु) ऐश्वर्यों और उत्पादित अन्नों के आधार पर (सोमेभिः) अन्न आदि ऐश्वर्यवर्धक पदार्थों और उत्तम पुरुषों द्वारा (भोजम्) भोक्ता पुरुष के समान राष्ट्रभोक्ता और पालक (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता और सम्यक् द्रष्टा पुरुष को (ईम्) जल से (सं पृणत) अभिषिक्त और पूर्ण करो । (यथा) जिससे (तस्मै) उसको (नः भराय) हमारे पोषण के लिये (कुवित्) बहुत साधन तथा अन्न सम्पदा (असति) हो । (सुष्विम्) उत्तम रीति से अन्न, ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (अवसे) रक्षा करने के लिये (न मृधाति) उनका नाश न करे ।

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता १०।१६।२

भा०—(इन्द्र एव इत्) वह शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, राष्ट्र को न्यायपूर्वक देखने वाला पुरुष ही (सुते सोमे) उत्पन्न पुत्र के तुल्य ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में (अस्तावि) स्तुति को प्राप्त हो और वह (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्य, अन्न, ज्ञान आदि को धारण करने वाले मनुष्यों के निमित्त (मघोनः) ऐश्वर्य सम्पन्न लोगों को भी (क्षयत्) निवास दे, पालन करे । (यथा) जिससे (इन्द्रः) वह राजा (जरित्रे) विद्वान् जनों के हित के लिये (सूरिः) उत्तम शासक (उत) तथा (विश्व-वारस्य रायः दाता) सबको स्वीकार करने योग्य, उत्तम धनों का दाता (असत्) हो । इति षोडशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः । ३,

५, ९ पंक्तिः । ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ ब्राह्मी बृहती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता सैन्य पर (वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, मेघवत् उदार, (मदः) अति प्रसन्न, (श्लोकः) कीर्त्तिमान्, (सोमेषु) सौम्य स्वभाव के पुरुषों के बीच (सचा) समवाय बनाकर रहने वाला (सुत-पाः) प्रजा को पुत्र के समान पालने और (सु-तपाः) और शत्रुओं को खूब तपाने हारा, उत्तम तपस्वी (ऋजीषी) ऋजु, सरल धर्म मार्ग से प्रजा को ले जाने हारा, (अर्चत्र्यः) अर्चना करने योग्य, पूज्य, (मघवा) धनसम्पन्न, (द्युक्षः) तेजस्वी, (राजा) राजा (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों के हित के लिये (गिराम्) उपदेष्टा विद्वानों के (उक्थैः) उत्तम वचनों से उपदेश प्राप्त कर वह (अक्षितोतिः) अक्षय, अनन्त रक्षा सामर्थ्य वाला हो ।

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२॥

भा०—(ततुरिः) शत्रुओं का नाशक, (वीः) विविध बलों का स्वामी, तेजस्वी, रक्षक, वीर, (विचेताः) विविध ज्ञानों का जानने हारा, विशेष चित्त से युक्त, (नर्यः) नायकों और मनुष्यों में श्रेष्ठ, हितैषी, (गृणतः) उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष के (हवं) ग्रहण योग्य उपदेश-वचन तथा निवेदक प्रजाजन की पुकार तथा आह्वान को (श्रोता) सुनने हारा राजा (उरु-ऊतिः) बड़े रक्षा-सामर्थ्य वाला हो । वह (वसुः) राष्ट्र को बसाने वाला, (नरां शंसः) सब मनुष्यों में स्तुति योग्य (कारु-धाया) शिल्पी तथा विद्वान् जनों का पालक पोषक, (वाजी) बलवान् पुरुष (स्तुतः) प्रशंसित और नायक पद पर प्रस्तुत होकर (विदथे) संग्रामादि के अवसर पर (वाजम्) (दाति) ऐश्वर्य और बल को देता है ।

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

भा०—(चक्रयोः अक्षः न) गाड़ी के पहियों में जिस प्रकार धुरा लगा रहता है वह उसके समस्त भार को सहता और चलता है उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (बृहन्) बड़ा भारी (अक्षः) तेज और व्यापक बल, (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच सूर्य के प्रकाश वा परमेश्वरी शक्ति के समान स्व और पर राष्ट्रों तथा शासक और शास्य वर्गों में (ते मह्ना) तेरे महान् सामर्थ्य से, (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (वयाः) ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियां और व्यापक सामर्थ्य और शाखा संस्थाएं, तेजस्वी पुरुष गण (वृक्षस्य वयाः नु) वृक्ष की शाखाओं के समान (वि रुरुहुः) विविध दिशाओं में विविध प्रकारों से उत्पन्न हों, बढ़ें और फूलें फलें । (२) राष्ट्र में राजा का शासन, निरीक्षण आदि अनेक कार्य-चक्रों में अक्ष के समान लगकर उसे धारण करता है, सब शासक जन उसकी शाखावत् हैं ।

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

भा०—हे (पुरुशाक) नाना शक्तियों के स्वामिन् ! (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओं के चलने के मार्ग अच्छी प्रकार चलने योग्य होते हैं और (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओं के दूध की बहती धारें अच्छी प्रकार सुख से खाने योग्य होती हैं उसी प्रकार (ते शचीवतः) तुझ शक्तिशाली, वाणी, प्रजा तथा शक्ति वाली सेना के स्वामी के (शाकाः) शक्तिशाली पुरुष तथा शक्ति के कार्य (संचरणीः) उत्तम रीति से चलने वाले, सदाचारी और सुखदायक हों । हे (सुदामन्) उत्तम नियमों में बांधने हारे ! (वत्सानां तन्तयः न) बछड़ों

को बांधने की रस्सियां जिस प्रकार कुछ ढीली रहकर बछड़ों को कष्ट न पहुँचाती हुई उनके लाभ के लिये होती हैं उसी प्रकार (वत्सानां) राष्ट्र में बसी प्रजाओं के (तन्तयः) विस्तृत राजनियम तथा (शाकाः) तेरे शक्तिशाली शासक वा शक्ति के कार्य (अदामानः) स्वतः बन्धनरहित होकर भी (दामन्वन्तः) उत्तम बन्धनों से बद्ध और प्रजा को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ हों।

अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा! (अद्य) आज (अन्यत् कर्वरम्) और ही काम (श्वः अन्यत् कर्वरम्) और कल दूसरा ही काम (सत् च असत्) व्यक्त और अव्यक्त, प्रकट और अप्रकट रूप से (आचक्रिः) नित्य करने वाला हो और वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नः) हम प्रजाओं को (मित्रः) मृत्यु भय से रक्षा करने वाला, स्नेहवान् और (वरुणः च) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों, कष्टों, विघ्नों का वारण करने में समर्थ और (पूषा) सबका पोषक होकर (वशस्य) हमारे कामना योग्य फल का (पर्येता) प्राप्त कराने वाला (अस्ति) हो और राजा (वशस्य पर्येता अस्ति) वश में आये राष्ट्र को अच्छी प्रकार वश करने में समर्थ हो। (२) परमेश्वर व्यक्त, अव्यक्त नाना कर्म करता है, वही मित्र, वरुण, पूषा, सबका स्वामी, जगत् में व्यापक है और काम्य सुखों का दाता है। (३) इन्द्र जीव (सत् च असत् च) अच्छे बुरे नाना कर्म करता है। परमेश्वर काम्य-फलों का दाता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥

भा०—(पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पहाड़ की पीठ से जिस प्रकार जलधाराएं काठ आदि पदार्थ को नीचे ले आती हैं उसी प्रकार (आपः)

आप्त प्रजाएं (त्वत्) तुझ उच्च पुरुष से (उक्थेभिः यज्ञैः) उत्तम, प्रशंसनीय स्तुति-वचनों, यज्ञ-कर्मों तथा सत्संगों द्वारा, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अनयन्त) अपने अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते हैं। (अश्वाः आजिं न जग्मुः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व वा अश्वारोही गण उत्तम स्तुतियों से राजा वा सेनापति का बल बढ़ाते हुए संग्राम में जाते हैं उसी प्रकार प्रभो ! हे (गिर्वाहः) वाणियों द्वारा प्राप्त करने योग्य, समस्त स्तुतियों को धारण करने हारे ! (अश्वाः) विद्याओं में प्रवीण, विद्वान् भी (त्वा) उस परम पूज्य तुझको (आभिः सुस्तुतिभिः) इन उत्तम स्तुतियों द्वारा (वाजयन्तः) अपने ज्ञान का विषय बनाते हुए, तेरा ज्ञान लाभ करते हुए (आजिं जग्मुः) अपने गन्तव्य, लक्ष्य को प्राप्त होते हैं।

न यं जर॑न्ति श॒रदो॒ न मासा॒ न द्याव॒ इन्द्र॑मवक॒र्शय॑न्ति ।
वृ॒द्धस्य॑ चिद्वर्धतामस्य त॒नूः स्तोमे॑भिरु॒क्थैश्च॑ श॒स्यमा॑ना ॥ ७ ॥

भा०—(यं इन्द्रम्) जिस प्रकार शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् महान् आत्मा को (न शरदः) न वर्षगण, (न मासाः) न मास और (न द्यावः) न दिन ही (अव कर्शयन्ति) कृश कर सकते हैं, (अस्य) इस (वृद्धस्य) महान् की (तनूः) व्यापक शक्ति, (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों और (उक्थैः च) उत्तम वचनों द्वारा (शस्यमाना चित्) वर्णन की जाकर भी (वर्धताम्) अन्नों से देह के समान बराबर बढ़ती है, उसी प्रकार जिस राजा को वर्ष, मास, दिन आदि वा हिंसक सेनाएं, ज्ञानवान् पुरुष और तेजस्वी लोग न घटावें उसकी व्यापक राष्ट्ररूप तनु उत्तम (स्तोमैः) उपदेष्टा पुरुषों द्वारा (शस्यमाना) उपदेश की जाकर शिष्य बुद्धि के समान बढ़े।

न वी॒ळवे॒ नम॑ते॒ न स्थि॒राय॒ न शर्ध॑ते॒ दस्यु॑जूताय स्त॒वान् ।
अज्रा॒ इन्द्र॑स्य गि॒रय॑श्चिदृ॒ष्वा ग॑म्भी॒रे चि॑द्भवति गा॒धम॑स्मै ॥८॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् स्वामी (दस्यु-जूताय) दुष्ट, प्रजा के नाशकारी पुरुषों से सेवित (वीडवे) बलवान् पुरुष के हित (न नमते) नहीं झुकता,

(न स्थिराय) न स्थिर, दृढ पुरुष के आगे झुकता और (न शर्धते) न बल प्रकट करने वाले के आगे ही झुकता है, वह (न स्तवान्) न ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा ही करता है, इस (इन्द्र) वैभवशाली, महान् शत्रुहन्ता पुरुष के (अज्राः) शत्रुओं को उखाड़ के फेंकने वाले शस्त्रास्त्र बल भी (गिरयः चित्) मेघों के समान लगातार बरसने वाले तथा पर्वत के तुल्य अभेद्य, दृढ़ और (ऋश्वाः) महान् होते हैं। (अस्मै) इसके लिये (गम्भीरे चित्) गहरे से गहरे समुद्र में भी (गाधम् भवति) थाह होती है। (२) परमेश्वर की समस्त लोकों को संचालन करने वाली महती शक्तियां 'अज्र' हैं, वह स्तुत्य होने से 'गिरि' हैं।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥

भा०—हे (अमत्रिन्) बलशालिन्! हे (सुतपावन्) प्रजाजन को पुत्र के समान पालन करने वाले! ऐश्वर्य के रक्षक राजन्! (सुतपावन्) उत्पन्न जगत् के रक्षक और पालन करने हारे प्रभो! तू (गम्भीरेण) गंभीर और (उरुणा) महान् सामर्थ्य से (नः इषः) हमारी कामनाओं और (वाजान्) बलों, अन्नों, ज्ञानों को (प्र यन्धि) हमें खूब दे। अथवा—(नः वाजान् प्र इषः) हमारे ऐश्वर्यों को तू चाह, (नः वाजान् प्र यन्धि) हमारे सैन्य बलों को नियम में रख और तू (नक्तोः) रात्रि के (वि-उष्टौ) प्रभात होने के काल में तथा (परितक्म्यायाम्) रात्रि काल में वा, अति कष्टमयी दशा में भी, (अरिषण्यन्) स्वयं प्रजाओं का पीड़न न करता हुआ, (ऊती) अपने रक्षा बल से (ऊर्ध्वः ऊ सु स्थाः) सबसे ऊंचा होकर रह।

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभीके) संग्राम में (अवसे) रक्षा करने के लिये (नायम्) नायक पुरुष को तथा सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने

वाले न्याय को (सचस्व) प्राप्त कर और (इतः) इस समीप आये (रिषः) हिंसक शत्रु से (पाहि) रक्षा कर। (च) और (एनम्) इस प्रजाजन की (अमा च अरण्ये च) घर में और जंगल में भी (रिषः) हिंसक, चोर, दस्यु वा व्याघ्रादि से (पाहि) रक्षा कर जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्रादि सहित (शत-हिमाः मदेम) सौ वर्षों तक आनन्द, सुख लाभ करें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पंक्तिः। ३ भुरिक् पंक्तिः। २, ७, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ६ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम्।

या त॑ ऊतिर॑व॒मा या प॑र॒मा या म॑ध्य॒मेन्द्र॑ शुष्मि॒न्नस्ति॑।
ताभि॑रू॒ षु वृ॑त्र॒हत्ये॑ऽवीर्न ए॒भिश्च॒ वाजै॑र्म॒हान्न॑ उग्र ॥ १ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) तेजस्विन्! (या ते) जो तेरी (ऊतिः अवमा) रक्षा निकृष्ट, अति तुच्छ, (परमा) जो रक्षा सर्वोत्कृष्ट, (या) जो रक्षा (मध्यमा) मध्यम कोटि की (अस्ति) है, (ताभिः) उन रक्षाओं से (वृत्रहत्ये) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रु-जनों के घात करने योग्य संग्राम में (एभिः वाजैः महान्) इन ऐश्वर्यों और बलों से महान् होकर (ताभिः) उन सेनाओं से (नः सु अवीः ऊ) हमारी अवश्य अच्छी प्रकार रक्षा कर।

आ॒भिः स्पृधो॑ मिथ॒तीररि॑षण्यन्न॒मित्र॑स्य व्यथया म॒न्युमि॑न्द्र।
आ॒भिर्विश्वा॑ अभि॒युजो॒ विषू॑ची॒रार्या॑य॒ विशोऽव॑ तारी॒र्दासीः॑ ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! तू (आभिः) इन (अमित्रस्य) शत्रु की (मिथतीः) हिंसा करती हुई (स्पृधः) सेनाओं को (मन्युम्) कोप करके (व्यथय) पीड़ित कर। स्वयं (अरिषण्यन्) प्रजा का विनाश न करता हुआ (आभिः) इन सेनाओं द्वारा (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध स्थानों पर विद्यमान (अभियुजः)

आक्रमण करने वाले की (दासीः) प्रजा नाशक सेनाओं को (अव तारीः) विनाश कर और (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुष की (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध प्रकार की (दासीः विशः) भृत्य वा दास के समान सेवा करने वाली प्रजाओं को (अव तारीः) संकट से पार कर।

इन्द्र॑ जा॒मय॑ उ॒त येऽजा॑मयोऽर्वाची॒नासो॑ व॒नुषो॑ युयु॒ज्रे।
त्वमे॑षां विथु॒रा शवां॑सि ज॒हि वृष्ण्या॑नि कृणु॒ही परा॑चः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! (ये) जो लोग (जामयः) बन्धुओं वा भार्याओं के समान स्नेही आज्ञाकारी, (उत) और (ये) जो (अजामयः) सपत्नी वा सौतों या अबन्धु जनों के समान, निःस्नेह हैं और जो (अर्वाचीनासः) अब के, वा हमारे प्रति आने वाले, (वनुषः) अपने धन, वेतन आदि देने वाले स्वामियों के प्रति (युयुज्रे) योग देते, वा उनके विरोध में आक्रमण या षड्यन्त्र करते हैं (त्वम्) तू (एषां) इनके (विथुरा) पीड़ादायक (शवांसि) बलों को (जहि) विनाश कर और (वृष्ण्यानि) बलशाली सैन्यों को (कृणुहि) सम्पादन कर और (पराचः जहि) पराङ्मुख शत्रुओं को भी नाश कर।

शूरो॑ वा॒ शूरं॑ वनते॒ शरी॑रैस्तनू॒रुचा॑ तरु॑षि॒ यत्कृ॒ण्वैते॑।
तो॒के वा॒ गोषु॒ तन॑ये॒ यद॒प्सु वि क्रन्द॑सी उ॒र्वरा॑सु॒ ब्रवै॑ते ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (तनू-रुचा) देह कान्ति में चमकने वाले दो पुरुष (तरुषि) एक दूसरे को मारने के निमित्त (कृण्वैते) युद्ध करते, एक दूसरे को मारते हैं उसी प्रकार दो प्रबल राजा (तनू-रुचा) विस्तृत सेना वा विस्तृत राष्ट्र से शोभावान् होकर (तरुषि) संग्राम में (शरीरैः) बहुत शरीरधारी सैन्यों से (कृण्वैते) उद्योग करें। तब (शूरः शूरं वा) एक शूरवीर पुरुष दूसरे शूरवीर को (वनते) मारता है। इसी प्रकार (यत्) जब (तोके) पुत्र, (तनये) पौत्र, (वा गोषु) वा गौओं और (अप्सु उर्वरासु) पुत्र वा अन्नादि को उत्पन्न करने वाली उपजाऊ आश्र

स्त्रियों और भूमियों के निमित्त (क्रन्दमानौ) परस्पर आक्षेप करते हुए, (यत् वि ब्रवैते) परस्पर विवाद करते हैं तब भी तू उनके ऊपर न्यायकर्त्ता के समान रह ।

नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! राजन् ! (त्वा) तेरे से अधिक (नहि शूरः) न कोई शूरवीर (न तुरः) न कोई हिंसक, (न धृष्णुः) न कोई शत्रुपराजयकारी, (न योधः) न कोई योद्धा, (मन्यमानः) अभिमानी होकर (युयोध) युद्ध कर सकता है, (एषाम्) इनमें से (त्वा प्रति नकिः अस्ति) तेरे मुकाबले पर कोई भी नहीं है । तू ही (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न वा प्रसिद्ध (तानि) उन २ नाना सैन्यों के (अभि असि) मुकाबले पर समर्थ है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६॥

भा०—(यदि) जो दो (वृत्रे) विघ्न उपस्थित होने पर (वा) अथवा (नृवति क्षये वा) मनुष्यों, वा भृत्यादि सहित गृह के निमित्त (व्यचस्वन्ता) विविध, वा एक दूसरे के विपरीत आते हुए, (वितन्तसैते) विशेष रूप से विवाद करते या लड़ते हैं और (यदि) जब (वेधसः) विद्वान् लोग (समिथे) संग्राम में (हवन्ते) निर्णय करने के लिये बुलाते हैं तब जो (उभयोः) दोनों के बीच (नृम्णम् अयोः) धन का ठीक २ विभाग कर देता है (सः पत्यते) वह स्वामी होने योग्य है ।

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

भा०—(अध) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यत्) जब (ते चर्षणयः) तेरे प्रजाजन (एजान् स्म) भय से कांपें तो उनका तू (त्राता

भव) रक्षक हो, (उत) और तू (वरूता भव) दुःखों को दूर करने हारा हो। (ये) जो (अस्माकासः) हमारे (नृतमासः) श्रेष्ठ नायक और (सूरयः) विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (पुरः) नगरों को (दधिरे) धारण करते हैं या हमारे आगे ज्ञान और बल को धारण करते, साक्षी रूप से रहते हैं उनका तू (अर्यः) स्वामी, रक्षक (भव) हो।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील! पूज्य! संगतियोग्य! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वृत्रहत्ये) बढ़ते विघ्नकारी शत्रु के नाश के कार्य में (ते महे इन्द्रियाय) तेरे बड़े ऐश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये, (देवेभिः) विजय कामना करने और कर आदि देने वाले प्रजाजन और विद्वान् पुरुष (ते) तेरे निमित्त (विश्वम् अनु दायि) सभी कुछ देते हैं। वे (नृषह्ये) संग्राम में (क्षत्रम् अनु दायि) बल प्रदान करते है और वे (ते सहः अनु दायि) तुझे शत्रु पराजयकारी शक्ति प्रदान करते हैं।

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९॥२०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले! तू (एव) इस प्रकार (समत्सु) युद्ध के अवसरों पर (नः) हमारे (स्पृधः) प्रतिस्पर्धा करने वाले शत्रुओं को (सम् अज) अच्छी प्रकार उखाड़ फेंक और (स्पृधः सम् अज) स्पृहा अर्थात् प्रेम करने वालों को मिला। (अदेवीः मिथतीः) ऐश्वर्य वा कर आदि न देने वाली, तथा परस्पर नाश करने वाली सेनाओं और प्रजाओं को (रारन्धि) वश कर। हम (ते अवसा) तेरे रक्षा सामर्थ्य से (नूनम्) निश्चयपूर्वक (गृणन्तः) तेरी स्तुति करते हुए (भरद्-वाजाः) ज्ञान और ऐश्वर्य का धारण करने वाले होकर (वस्तोः) राष्ट्र में बसने का सुख (विद्याम) प्राप्त करें। इति विंशो वर्गः ॥

[२६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २, ४ भुरिक् पंक्तिः । ३ निचृद् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी अन्न, ऐश्वर्य और बल की प्राप्ति, विभाग और प्रयोग करने के निमित्त, (वावृषाण:) तेरा बल बढ़ाते और अभिषेक करते हुए (त्वा) तुझे (ह्वयामसि) बुलाते हैं। (यत्) जब (विश:) प्रजाएं (शूर-सातौ) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम के निमित्त, संग्राम के उपरान्त, या उनको नाना पारितोषिकादि द्रव्य विभाग करने के निमित्त (सम् अयन्त) एक स्थान पर एकत्र हों तब तू (पार्ये अहन्) सर्व-पालनीय, अन्तिम या नियत दिन पर (नः) हमें (उग्रं अवः) उत्तम, तेजयुक्त पालन, भोग्य अन्न, वेतन आदि, (दाः) प्रदान कर ।

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाजिनेयः वाजी) ज्ञान युक्त माता, पिता वा आचार्य का पुत्र, शिक्षित विद्वान् (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी ज्ञान की प्राप्ति और विभाग के लिये गुरु को (हवते) स्वीकार करता है उसी प्रकार (वाजिनेयः) 'वाजिनी', बलवती सेना के योग्य (वाजी) बलवान् शूरवीर पुरुष (महः) उत्तम, देने योग्य, (गध्यस्य) सबको प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) ऐश्वर्य या अन्न, वेतनादि के (सातौ) प्राप्त करने के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वां हवते) तुझ स्वामी को अपनाता है । इसी प्रकार (गोषु) भूमि को विजय करने के निमित्त (युद्धयन्) युद्ध

करता हुआ वीर पुरुष (मुष्टि-हा) मुट्ठी के समान पांचों का समवाय, या संघ बना कर शत्रु को नाश करने में समर्थ, या 'मुष्टि', चोरी आदि उपद्रवों का नाशक पुरुष भी (वृत्रेषु) बढ़ते शत्रु रूप विघ्नों के बीच, या नाना धनों को प्राप्त करने के लिये भी (त्वां सत्पतिं) तुझको ही सत्पालक और (त्वां तरुत्रं) तुझको वृक्षवत् आश्रयदाता, रक्षक, वा संकटों से पार पहुँचाने वाला (चष्टे) देखता वा कहता है।

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! (त्वं अर्कसातौ) अन्न और स्तुत्य सूर्यवत् तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (कविम्) दूरदर्शी विद्वान् को (चोदयः) प्रेरित कर और (त्वं) तू (कुत्साय) राष्ट्र के शस्त्रास्त्र बल को धारण करने और (दाशुषे) कर आदि देने वाली प्रजा के पालन के लिये (शुष्णं) शत्रुशोषक बल को (वर्क्) नाना विभागों में विभक्त कर और (शुष्णं वर्क्) प्रजा-शोषक दुष्ट जन, वा दोषयुक्त व्यवस्था को नाश कर और (अतिथिग्वाय) अतिथिवत् पूज्य पुरुषों की गौ, गव्य दूध, घी तथा वाणी आदि से सत्कार करने वाले पुरुष के लिये (शंस्यं करिष्यन्) प्रशंसनीय कार्य करना चाहता हुआ (त्वं) तू (अमर्मणः) मर्म स्थल से रहित, अति दृढ़ शत्रु के (शिरः) शिर, मुख्य अंग को (परा हन्) परास्त कर।

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (योधं) युद्ध करने वाले (ऋष्वं) महान् (रथं) रथ तथा रथ सैन्य को (भरः) अच्छी प्रकार से प्राप्त और पालन कर। (युध्यन्तं) युद्ध करते हुए (दशद्युम्) दशों दिशाओं में चमकने वाले तेजस्वी, (वृषभं) शरवर्षी योद्धाजन को (आ अवः) आदरपूर्वक तृप्त, सन्तुष्ट कर। (वेतसवे) ऐश्वर्य को प्राप्त करने

वाले राष्ट्र के लिये (सचा) साथ ही समवाय बनाकर (त्वं) तू (तुग्रं) बल वा सैन्य लेकर चढ़ाई करने वाले शत्रु को (अहन्) दण्डित कर और (गृणन्तं तुजिम्) स्तुति वा उपदेश करते हुए, दानशील विद्या के दाता विद्वान् उपदेष्टा को तू (तूतोः) बढ़ा।

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे (शूर) वीर पुरुष! (त्वं तत् कः) तू वह काम कर कि (यत्) जो तू (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों शत्रुसैन्यों को (दर्षि) दलन करता है वह (त्वं) तू (बर्हणा) वृद्धिशील वा समृद्ध बल से (तत्) वह नाना वा (उक्थं) प्रशंसनीय (गिरेः दासं शम्बरं) मेघ के बीच विद्यमान शान्तिदायक जल को जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (अव हन्ति) नीचे गिराता है उसी प्रकार (गिरेः) पर्वत के बीच में रहकर (दासं) प्रजाजनों का नाश करने वाले (शम्बरं) शान्ति-नाशक शत्रुजन को (अव हन्) नीचे मार गिरा। अथवा (गिरेः दासं) मेघवत् निष्पक्षपात गुरु के सेवकवत् (शम्बरं) शान्तिकारक उत्तम शिष्यवत् प्रजाजन को (अव हन्) अवगत कर, उसे यथार्थ ज्ञान दे, वा उसको दण्डादि द्वारा दोषों से मुक्त कर। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (श्रद्धाभिः) सत्य धारणाओं और (सोमैः) सौम्य स्वभाव के पुरुषों या ऐश्वर्यों के साथ (मन्दसानः) प्रसन्न होता हुआ (दभीतये) शत्रु के नाश करने के लिये (चुमुरिम्) प्रजा को खा जाने वाले दुष्टगण (सिष्वप्) सुला दे और (पिठीनसे) 'पिठी' हिंसाकारिणी और शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को क्लेश देने वाली, शक्ति को नाक के समान मुख्य रूप से धारण करने वाले शक्तिशाली

नायक पुरुष को (त्वं) तू (रजिं) सैन्य पंक्ति वा स्वयं उसकी 'नाक' वा अग्रणी होकर रहने वाले वा राज्यशक्ति को (दशस्यन्) देता हुआ, (षष्टिं सहस्रा) ६० हजार शत्रुओं को भी (शच्या) समवाय बल से युक्त सेना और स्थिर बुद्धि द्वारा (हन्) विनाश कर ।

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अहंचन) मैं भी (तव) तेरे (तत्) उस (ज्यायः) महान्, (सुम्नम्) सुखप्रद (ओजः) पराक्रम का उन (सूरिभिः) विद्वानों के सहित (आनश्याम्) उपभोग करूं । हे (शविष्ठ) अत्यन्त शक्तिशालिन् ! हे (सधवीर) वीरों सहित (यत् नहुषा) जो लोग, (त्रिवरूथेन) शीत, उष्ण, वर्षा तीनों से बचाने वाले, गृह के स्वामी रूप अथवा त्रिविध दुःखों के वारक (त्वया) तुझसे (वीराः) वीर्यवान् होकर (स्तवन्ते) तेरा गुण गान करते हैं ।

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८।२२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (महिन) महान् ! पूज्य ! (वयम्) हम लोग (अस्याम्) इस (ते) तेरी (द्युम्न-हूतौ) धन के निमित्त आदर-पूर्वक पुकार तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त (ते प्रेष्ठाः) तेरे अति प्रिय (सखायः स्याम) मित्र होकर रहें । (वृत्राणां) बढ़ते और विघ्न करने वाले शत्रुओं के (घने) हनन और (धनानाम् सनये) धनों को प्रजा में यथोचित विभाग के लिये (प्रातर्दनिः) शत्रु को अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करने वाले सैन्य बल का स्वामी पुरुष ही, (श्रेष्ठः) सबसे उत्तम, प्रशंसनीय (क्षत्र-श्रीः अस्तु) बल वीर्य और क्षात्र शक्ति की उत्तम शोभा से युक्त वा आश्रय हो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १—७ इन्द्रः । ८ अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७, ८ त्रिष्टुप् । ६ ब्राह्मी उष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

किम॑स्य॒ मदे॒ किम्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ किम॑स्य स॒ख्ये च॑कार ।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ किं ते अ॑स्य पु॒रा वि॑विद्रे॒ किमु॒ नूत॑नासः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शक्तिशाली, शत्रुहन्ता पुरुष (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य को प्राप्त कर उसके हर्ष वा उसको दमन कर लेने के निमित्त (किं चकार) क्या करे ? (अस्यपीतौ) इसके उपभोग और पालन के निमित्त (किं चकार) क्या करे ? (अस्य सख्ये) इसकी मित्रता की वृद्धि के लिये वह (किं चकार) क्या २ उपाय करे ? (वा) और (ये) जो (अस्य) इसके (निषदि) राज्यासन पर विराजने पर (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं वे प्रजाजन (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये भी (किं विविद्रे) क्या २ लाभ करें और वे क्या २ कर्त्तव्य जानें ? इसका उत्तर अगली ऋचा में है।

सद॑स्य॒ मदे॒ सद्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ सद॑स्य स॒ख्ये च॑कार ।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ सत्ते अ॑स्य पु॒रा वि॑विद्रे॒ सदु॒ नूत॑नासः ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य के आनन्द पूर्वक लाभ, दमन और शासन करने में (सद् चकार) सत्य, न्यायपूर्वक उत्तम कार्य करे। (अस्य पीतौ) इसके उपभोग और पालन के निमित्त (सत् उ चकार) 'सत्' अर्थात् प्रमाद रहित होकर उत्तम प्रबन्ध करे। (अस्य सख्ये) उसका मैत्रीभाव बनाये रखने के लिये (सत् चकार) सदा सत्य, न्यायोचित शुभ कर्म करे। (ये वा अस्य निषदि) और जो इसके सिंहासन पर विराजने में (रणाः) प्रसन्न होते हैं (ते) वे भी (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये सभी (सत् सत् उ विविद्रे) उत्तम, उत्तम फल तथा शुभ पुरस्कार आदि लाभ करें।

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (ते महिमानः) तेरे महान् सामर्थ्य के विषय में हम (नहि नु सं विद्म) कुछ भी नहीं जानते हैं। तेरे (मघवत्त्वस्य न सं विद्म) तेरे महान् ऐश्वर्य के विषय में भी कुछ नहीं जानते । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते नूतनस्य) तेरे नये से नये (राधसः राधसः) धन ऐश्वर्य और आराधना योग्य गुण-राशि को भी (न सं विद्म) हम नहीं जानते । हे ऐश्वर्यवन् ! (ते इन्द्रियं) तेरा महान् ऐश्वर्यमय स्वरूप और बल भी (नकिः ददृशे) किसी को गोचर नहीं होता।

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (ते वर-शिखस्य एतत् त्यत्) उत्तम शिखा वाले तेरा वह प्रसिद्ध सर्वप्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) महान् ऐश्वर्य और बल (अचेति) जाना जाता है (येन) जिससे तू (अवधीः) शत्रुओं का नाश करता है। (यत्) और जो (ते) तेरे (नि-हतस्य) प्रहार किये गये (वज्रस्य) शस्त्र के (शुष्मात्) बल और (स्वनात्) शब्द से भी (परमः शेषः) बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा भी (ददार) भयभीत होता है।

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥२३॥

भा०—जब (हरि-यूपीयायाम्) वह मनुष्यों को गुणों से मुग्ध करने वाली विद्या के निमित्त (पूर्वे अर्धे) पूर्व के उत्तम काल में (अपरः) दूसरा भी (भियसा दर्त्) भय से भीत हो, इस प्रकार से वह (वृचीवतः) अज्ञाननाशक विद्या वाले शिष्यों को (हन्) ताड़ना करे । तब (वर-शिखस्य) उत्तम, शिखा धारण करने वाले (वृचीवतः) अविद्या के छेदन

करने वाली उत्तम इच्छा से युक्त विद्यार्थी का (शेपः) शासन करने हारा (इन्द्रः) उत्तम आचार्य (चायमानाय) सत्कार करने वाले (अभ्यावर्त्तिने) समीप रहने वाले अन्तेवासी शिष्य को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (वधीत्) दण्ड भी दे, उसकी यथोचित् ताड़ना भी करे। (२) इसी प्रकार (हरियू-पीयायाम्) मनुष्यों के स्वामी राजा की पालन करने वाली नीति में (वृचीवतः) प्रजा के उच्छेद करने वाली शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुषों को (पूर्वे अर्धे) अपने समृद्ध शासन के पूर्व काल में ही (अपरः) उत्तम राजा (भियसा) भयजनक उपाय से (हन्) उनको ताड़ना करे और (दर्त्) भयभीत करे। (अभ्यावर्त्तिने चायमानाय शिक्षन्) समीप आप्त अनुकूल अपने सत्कार करने वाले प्रजाजन के हितार्थ उनको (वर-शिखस्य शेप इव शिक्षन्) उत्तम शिखा या तुर्रे वाले प्रमुख नायक के पुत्रवत् सद्-व्यवहार की शिक्षा देता हुआ (इन्द्रः) राजा (वधीत्) दण्डित किया करे। अर्थात् राजा प्रजाजन को पुत्रवत् प्रेम करे, हित से ही उनको दण्डित करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥६॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत प्रजाओं से पुकारे, प्रशंसा किये गये (इन्द्र) शत्रुहन्तः राजन् ! (यव्या-वत्यां) शत्रुओं को दूर करने में कुशल पुरुषों से बनी सेना के बीच (साकं) एक साथ (त्रिंशत् शतं) तीन सहस्र ३००० (वर्मिणः) कवचधारी (वृचीवन्तः) शत्रूच्छेदक शस्त्र, वा तलवार लिये हुए (शरवे) शत्रुओं को नाश करने के लिये (पत्यमानाः) जाते हुए वा शर, हिंसक शस्त्रादि पर पूर्ण वश करते हुए वीर पुरुष (श्रवस्या) यश, धन, ऐश्वर्यादि की कामना से (पात्रा भिन्दानाः) शत्रु के बचाव के साधनों को भेदते हुए, (नि-अर्थानि) अपने निश्चित प्रयोजनों को (आयन्) प्राप्त करें।

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस राजा की (गावौ) 'गौ' वाणी और शस्त्रों को चलाने वाली सेना, वाक् शक्ति और शस्त्रशक्ति दोनों (अरुषा) रोषरहित और देदीप्यमान (सु-यवस्यू) उत्तम रीति से वयस्, चारे आदि चाहने वाली दो गौओं के समान (सु-यवस्यू) सुखदायक विवेक और शत्रूच्छेद चाहती हुईं (रेरिहाणा) उत्तम सुखास्वाद कराती हुईं, (अन्तः उ) राष्ट्र के मध्य में (चरतः) विचरती हैं (सः) वह (दैववाताय) देव, सूर्यवत् तेजस्वी और प्रचण्ड वात के समान शत्रुओं को वृक्षवत् उखाड़ फेंकने वाले बलवान् राजा के राज्यपद को प्राप्त करने और (सृञ्जयाय) आगन्तुक शत्रुओं के विजय करने के लिये (वृचीवतः) उच्छेदक शक्ति वाले वीर सैनिकों को (शिक्षन्) युद्ध की शिक्षा वा अन्नवृत्ति देता हुआ (तुर्वशं परादात्) हिंसक शत्रु को पराजित करे।

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमन्तो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ८।२४

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (सम्राट्) सर्वोपरि तेजस्वी पुरुष, (अभ्यावर्त्ती) शत्रु के प्रति सन्मुख आकर लड़ने वाला, (चायमानः) पूजा सत्कार प्राप्त करता हुआ, (द्वयान् रथिनः) दोनों प्रकार के रथ वाले, (वधूमन्तः) या रथ को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ (विंशतिं गाः) बीस बैलों, वा वेगवान् अश्वों के समान उत्तम धुरन्धर पुरुषों को (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (मह्यं ददाति) मुझ प्रजा के हितार्थ प्रदान करे। (पार्थवानाम्) बड़े राष्ट्र के स्वामी राजाओं की (इयं दक्षिणा) यह बलवती शक्ति (दूणाशा) कभी नाश को प्राप्त न हो। राजा शासन भार को उठाने के लिये २० प्रधान पुरुष नियत करे। धुरन्धरों की यह राजसभा 'दक्षिणा' नाम की है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[२८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १, ३—७ गावः २, ७ गाव इन्द्रो वा देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ४ जगती । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥

भा०—(गावः) गौएं तथा गृहस्थ में सुशील वधुएं (अस्मे आ अग्मन्) हमें अच्छी प्रकार से प्राप्त हों, (भद्रम् अक्रन्) वे कल्याण करें। (गोष्ठे) गोशाला में गौएं, वैसे (इह) गृह में वधूजन (सीदन्तु) विराजें और (अस्मे रणयन्तु) हमें आनन्द प्रसन्न करें और स्वयं प्रसन्न होकर रहें। वे (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (पुरु-रूपाः) बहुत उत्तम रूप वाली (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त स्वामी के लिये (पूर्वीः) श्रेष्ठतम, (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान कान्ति वाली एवं पतियों को चाहने वाली (दुहानाः) कामना पूर्ण करने वाली (स्युः) हों। (२) इसी प्रकार (गावः) वाणियां और भूमियां हमें प्राप्त हों, सुख दें (गोष्ठे) भूमि पर स्थित राजा के अधीन वे उत्तम प्रजायुक्त बहुत पदार्थों से सम्पन्न नाना सुखैश्वर्य दें।

इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् २

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (यज्वने) यज्ञशील, दान देने और सत्कार करने वाले (पृणते च) राष्ट्र के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले प्रजाजन को (शिक्षति) शिष्य वा पुत्रवत् शिक्षा दे और (उप ददाति इत्) उसे धन प्रदान करे और वह (स्वं) प्रजा के धन को (न मुषायति) चोरी से ग्रहण नहीं करे, प्रत्युत (भूयः भूयः) और भी अधिकाधिक (अस्य रयिम् वर्धयन् इत्) उसके धनैश्वर्य को बढ़ाता हुआ ही (देव-युम्) दाता,

तेजस्वी राजा को चाहने वाले प्रजाजन को पिता वा गुरु के समान ही (अभिन्ने खिल्ये) अपने से अभिन्न अंश में, अथवा शत्रु आदि से न टूटने योग्य भू प्रदेश दुर्गादि के बीच में (नि दधाति) अपने धन के समान ही सुरक्षित रखे।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ३

भा०—(याभिः) जिनसे (गोपतिः) गौवों, वेदवाणियों, विद्याओं वा भूमियों से उनका पालक (देवान्) कामनाशील मनुष्यों को (यजते) सत्कार करता और उनको (ददाति च) ज्ञान वा धन प्रदान करता है (ताभिः) उनके (सह) साथ (इत्) ही वह (ज्योग् सचते) चिर काल तक भी रहता है (ताः) वे भूमियां, वाणियां, विद्यायें, (न नशन्ति) कभी नष्ट नहीं होतीं। (तस्करः ता न दभाति) चोर भी उनको नहीं चुराता और (आसाम्) उनको (व्यथिः अमित्रः) कष्टदायी, शत्रु भी (न आदधर्षति) बलात्कार से नहीं छीन सकता।

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ४

भा०—(ताः गावः) उन वेद-वाणियों को (अर्वा) हिंसक वा अश्व के समान केवल पशु, (रेणुक-काटः) धूल से भरे, शुष्क कूंए के समान नीरस पुरुष भी (न अश्नुते) प्राप्त नहीं कर सकता और जो (संस्कृतत्रम् न उप यान्ति) शुद्ध संस्कृत, ज्ञान की रक्षा करने वाले विद्वान् के समीप नहीं जाते वे भी (ताः अभि न) उनको प्राप्त नहीं करते, परन्तु जो (उरुगायम्) महान् ज्ञान के उपदेश करने वाले, भय से रहित पुरुष को (उप यन्ति) प्राप्त करते हैं वे लोग (तस्य मर्तस्य यज्वनः) उस सत्संगयोग्य, ज्ञानदाता पुरुष की (ताः) उन वाणियों को (अनु) विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं। (तस्य गावः विचरन्ति) उसकी वाणियां गौओं के समान सुख से विविध रूपों में विचरती, प्रकाशित होती हैं।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

भा०—(प्रथमस्य) सर्वश्रेष्ठ (सोमस्य) ऐश्वर्य, अन्नादि का (भक्षः) सेवन करने वाला वा विद्वान् शिष्य की सेवा योग्य विद्वान् (मे गावः अच्छान्) मुझे गौओं और ज्ञानयुक्त विद्याओं का प्रदान करे। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मे गावः) मुझे गौएं, ज्ञानवाणियें दे। (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) शत्रुहन्ता राजा मुझे भूमियां प्रदान करे। हे (जनासः) लोगो! सुनो। (याः इमाः गावः) ये जो गौएं, वेदवाणियां और भूमियां हैं (स इन्द्रः) वही परमैश्वर्य है। मैं (हृदा मनसा) हृदय और मन से ऐसे ही (इन्द्रं चित्) ऐश्वर्य को (इच्छामि) प्राप्त करना चाहता हूँ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥

भा०—(कृशं चित् मेदयथ) जिस प्रकार दूध कृश पुरुष को मोटा कर देता है उसी प्रकार हे (गावः) वेदवाणियो! (यूयं) तुम (कृशं) तपस्वी पुरुष को (मेदयथ) अन्यों के प्रति स्नेहयुक्त कर देते हो। हे भूमियो! तुम (कृशं चित्) शत्रु के कर्षण करने में समर्थ राजा को (मेदयथः) स्नेहवान् बनाती हो और जिस प्रकार गौवें अपने दूध से (अश्रीरं चित्) शोभारहित, कान्तिहीन, दुवले पतले को (सुप्रतीकं) सुन्दर मुख वाला कर देती हैं, उसी प्रकार हे वेदविद्याओ! तुम सभी (अश्रीरं) शोभाहीन, कुरूप को भी (सु-प्रतीकम्) सौम्य मुख और उत्तम ज्ञान से युक्त कर देती हो। हे पृथिवियो! तुम श्री राज्यलक्ष्मी से हीन राजा को (सु-प्रतीकं) सुख से शत्रु के प्रति जाने में समर्थ, बलशाली बना देती हो। हे (भद्रवाचः) कल्याणवाणियो! जिस प्रकार गौवें (गृहं भद्रं कृण्वन्ति) घर को सुखयुक्त बनाती हैं उसी प्रकार तुम भी (गृहं भद्रं कृणुथ) घर को और ग्रहण करने योग्य ज्ञान को सुखदायक, सुगम बना

देती हो। (वः) तुम्हारा (वयः) बल, ज्ञान आदि (सभासु) सभास्थलों में (बृहत् उच्यते) बहुत बड़ा कहा जाता है।

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) रोक रखने वाले, गवाले का दण्ड (प्रजावतीः) उत्तम बछड़ों वाली (सु-यवसं रिशन्तीः) उत्तम जौ आदि खाने वाली, (शुद्धा अपः सु-प्र-पाणे पिबन्तीः) शुद्ध जलों को उत्तम घाट पर पीती हुई गौओं को (परि वृङ्क्ते) सब ओर से बचाये रखता है, उसी प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) दुष्टों को रुलाने वाले राजा का शस्त्र बल (प्रजावतीः) प्रजाओं से युक्त (सु-यवसं रिशन्तीः) उत्तम अन्न का भोग करती हुई (शुद्धाः अपः) शुद्ध जलों का (सु-प्र-पाणे) उत्तम पालक के अधीन (पिबन्तीः) उपभोग करती हुई भूमियों की (परि वृज्याः) हे राजन्! तू अच्छी प्रकार रक्षा कर। हे गौवत् भूमियो! (स्तेनः वः मा ईशत) चोर तुम पर शासन न करे, (मा अघ-शंसाः) पापी पुरुष तुम पर आधिपत्य न करे। उपदेष्टा पुरुष 'रुद्र' है। उसका दण्ड विद्याओं की रक्षा करता है, विद्याएं उत्तम शिष्यों से प्रजावती हैं। वे (सुप्रपाणे) उत्तम ज्ञान, वीर्य, बल युक्त ब्रह्मचारी में उत्तम (अपः) कर्म का पालन कराती हैं, उन वाणियों पर कोई चौर स्वभाव का पापी पुरुष अधिकार न करे।

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥ २५ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (रेतसि ऋषभस्य गोषु उपपर्चनम्) उत्तम वीर्य के निमित्त गौओं का सांड के साथ सम्पर्क होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) विद्यादातः! विद्वन्! (तव वीर्ये) तेरे ज्ञान सामर्थ्य के ऊपर (आसु) इन (गोषु) वेद वाणियों के निमित्त (इदम्) यह (उप-पर्चनम्) उत्तम सम्बन्ध (उप पृच्यताम्) जुड़े। (२) राजा के बाहु बल से भूमियों पर राजा का प्रभुत्व हो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[२९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । २ भुरिक्पंक्तिः । ६ ब्राह्मी उष्णिक् ॥

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (महः यन्तः) बड़े २ पदों वा लक्ष्यों को प्राप्त होते हुए और (सुमतये चकानाः) शुभ मति, ज्ञान की कामना करते हुए, (वः नरः) आप लोगों में से उत्तम नेता पुरुष (सख्याय) मित्रभाव के लिये (इन्द्रं सेपुः) ऐश्वर्यवान् राजा वा विद्वान् उपदेष्टा को प्राप्त करें। (वज्र-हस्तः) शस्त्रबल को अपने हाथ में रखने वाला राजा और पापों से वर्जन करने वाले दण्ड को अपने हाथों में लेने वाला गुरु, (महः दाता अस्ति) बड़ा भारी दाता है। आप लोग उसी (महाम् रण्वम्) महान् रमणीय, सत्य और उत्तम उपदेष्टा का (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (यजध्वम्) उसका आदर सत्कार और सत्संग करो।

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२॥

भा०—(यस्मिन् हस्ते) जिस प्रबल हाथ के नीचे (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी नायक जन (आ मिमिक्षुः) सब ओर से एकत्र होते हैं और (यस्मिन् हिरण्यये रथे) जिस हितकारी, रमणीय, सबको अच्छा लगने वाले 'रथ' अर्थात् महारथी पुरुष के अधीन (रथे-ष्ठाः) रथ पर विराजने वाले अन्य महारथी (आ मिमिक्षुः) सम्बन्धित रहकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिन (स्थूरयोः) विशाल (गभस्त्योः) बाहुओं में (रश्मयः) रासें, बागडोर (आ मिमिक्षुः) मिलकर रहती हैं और (अध्वन्) जिस मार्ग में (अश्वासः) प्रबल अश्वों के समान (वृषणः) बलवान् पुरुष भी (युजानाः)

नियुक्त होकर (आ मिमिक्षुः) मिलकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं वही प्रधान पुरुष सबका (इन्द्रः) स्वामी वा राजा होने योग्य है।

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! (ते पादौ) तेरे दोनों चरणों की, लोग (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि और आश्रय प्राप्त करने के लिये (दुवः आ मिमिक्षुः) सेवा करते हैं उसको आदरपूर्वक पुकारते हैं। हे (नृतो) नायक! तू (धृष्णुः) शत्रु को पराजित करने वाला, (वज्री) शस्त्रबल का स्वामी, (शवसा) शक्ति से (दक्षिणावान्) उत्तम बलवती सेना और दानशक्ति से सम्पन्न होकर और (सुरभिः) उत्तम रीति से कार्य करने में समर्थ कर देने वाले, सुदृढ़, (अत्कं) वस्त्र वा कवचों को (वसानः) पहने हुए, (दृशे) सबको सन्मार्ग दिखाने के लिये वा सबकी आंखों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान प्रकाश देने हारा और (इषिरः) सन्मार्ग में चलने हारा (बभूथ) हो।

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रधान नायक की अधीनता में (सः) वह (सुतः) उत्पन्न हुआ पुत्रवत्, वा अभिषिक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान्, सौम्य, प्रजाजन (आ मिश्लतमः) सब प्रकार मिला हुआ, परस्पर प्रेम युक्त (भूत्) हो जाता है, (यस्मिन् पक्तिः) जिसके अधीन गृह वा क्षेत्र में भोजन अन्न का उत्तम रीति से परिपाक (पच्यते) हो और (धानाः सन्ति) जिसके अधीन रहकर धान की खीलों के सदृश उज्ज्वल चरित्र वाली प्रजाएं ऐश्वर्य धारने में समर्थ हों उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा को (नरः) नायक (ब्रह्मकाराः) धन, अन्न और वेद ज्ञान उपदेश करने में दक्ष पुरुष (स्तुवन्तः) स्तुति करते और (उक्था शंसन्तः) उत्तम स्तुत्य वचन कहते हुए (देव-वाततमा) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा प्रभु के

अति समीप पहुँच जाते हैं। अध्यात्म में—'इन्द्र' आत्मा है, 'सोम' परमानन्दरस, 'पक्ति' तप, परिपाक और 'धाना' ध्यान धारणाएं हैं, जिसकी ब्रह्मज्ञानी स्तुति, उपदेश करते हुए उपास्य देव के समीपतम, तन्मय हो जाते हैं।

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥

भा०—(अस्य) इस महान् प्रभु के (शवसः) बल और ज्ञान की (अन्तः) कोई सीमा (न धायि) नहीं कही जा सकती। वह (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (वि बाबधे तु) विविध प्रकार से बांधे रहता है। वह (सूरिः) सबका सञ्चालक, विद्वान् (तूतुजानः) विघ्न-बाधाओं को नाश करने वाला, सब प्रकार के सुख देने वाला होकर (सम्-ईजमानः) सबसे संगत होकर, सबको उत्तम दान करता हुआ, (यूथा इव अप्सु) पशु समूहों को जलों पर गवाले के समान (अप्सु ताः ऊतीः आपृणति) उन आकाश और पृथिवीस्थ समस्त लोकों की रक्षा और अन्नादि से खूब तृप्त करता, उनको पूर्ण करता है।

एवेदिन्द्रः सुहवं ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥१॥

भा०—(एव इत् इन्द्रः) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, प्रभु (सुहवः) सुख से स्तुति, उपासना, आह्वान करने योग्य, (ऋष्वः) महान् (अस्तु) हो। वह (ऊती) रक्षादि साधनों या (अनूती) उन साधनों के अभाव में भी (हिरि-शिप्रः) मनोहर मुख नाक वाला, वा सुन्दर मुकुट वाला और (सत्वा) उत्तम बलशाली हो। (एवा) इसी प्रकार (हि) निश्चय से वह (असमात्योजाः जातः) बल पराक्रम में अनुपम होकर (पुरू च वृत्रा) बहुत से विघ्नकारियों और (दस्यून्) दुष्ट, प्रजा-त्रासकारी लोगों को (नि हनति) सर्वथा नष्ट करे। इति प्रथमो वर्गः ॥

[३०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ पंक्तिः । ५ ब्राह्मी उष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥

भा०—(इन्द्रः पृथिव्याः अर्धम् प्रति भवति) सूर्य पृथिवी के आधे भाग को प्रकाश करता है, (पृथिवी दिवः अर्धम् प्रति) और पृथिवी प्रकाश के आधे अंश को ग्रहण करती है तो भी (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी मिलकर रहते हैं उन दोनों में से (इन्द्रः) सूर्य ही (प्र रिरिचे) अधिक शक्तिशाली है। (उभे रोदसी प्रति) आकाश और पृथिवी दोनों को व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) तेजस्वी राजा (दिवः पृथिव्याः) आकाश और पृथिवीवत् विजयिनी सेना वा राजविद्वत्-सभा और पृथिवीवासी प्रजा दोनों से (प्र रिरिचे) बहुत बड़ा है। (उभे रोदसी अस्य अर्धम् प्रति) रुद्र और रुद्रपत्नी, सेनापति और सेना, शासक वर्ग और शास्य प्रजाजन दोनों भी इसके आधे या समृद्ध ऐश्वर्य के बराबर हैं। वह (एकः) अकेला (अजुर्यः) कभी नाश को प्राप्त न होकर (वीर्याय) बल वृद्धि के हित, (भूय इत् वावृधे) बहुत वृद्धि करे और वह (वसूनि) नाना ऐश्वर्यों से बसे प्राणियों की (दयते) रक्षा करे।

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥

भा०—(अध) और मैं (अस्य) उसके (असुर्यम्) बल को (बृहत्) बड़ा भारी (मन्ये) जानता हूँ और (यानि) जिन (उर्विया) बड़े २ (सद्मानि) लोकों को यह (सुक्रतुः) उत्तम पुरुष (विधात्) बनाता और (दाधार) धारण करता है उनको (नकिः) कोई नहीं (आ मिनाति)

नष्ट कर सकता। इसी कारण वह (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (दिवे, दिवे) दिनों दिन (दर्शतः भूत्) दर्शनीय होता है।

अ॒द्या चि॒न्नू चि॒त्तदपो॑ न॒दीनां॒ यदा॑भ्यो॒ अर॑दो गा॒तुमि॑न्द्र।
नि पर्व॑ता अ॒द्मसदो॒ न से॑दु॒स्त्वया॑ दृ॒ळ्हानि॑ सुक्रतो॒ रजां॑सि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) जिस प्रकार विद्युत् (नदीनाम् अपः अरदः) नदियों के जल को मेघ से छिन्न भिन्न करती है और (यत्) जो (आभ्यः) इनके जाने के लिये (गातुम्) मार्ग या पृथिवी स्थल को (अरदः) विदीर्ण करता है, उसी प्रकार हे राजन्! तू (नदीनाम्) समृद्धिशालिनी प्रजाओं के (अद्य चित्) नित्य ही, आज के समान, (तत् अपः अरदः) उन उन नाना कर्मों का निर्माण करे। (आभ्यः) उनके हितार्थ (गातुम्) सन्मार्ग और भूमियों को (अरदः) खोद, सन्मार्ग बना, जलों के लिये नहरें और अन्न के लिये भूमि का विलेखन कर। (पर्वताः) मेघ के समान प्रजा-पालक जन (अद्म-सदः न) अन्नादि उपभोग के लिये बैठे जनों के समान (अद्म-सदः) राजा के दिये अन्न, वृत्ति को प्राप्त कर (नि सेदुः) पदों पर विराजें। हे (सु-क्रतो) शुभ, उत्तम कर्म करने हारे! (त्वया) तेरे द्वारा (रजांसि) समस्त जन और लोक (दृढानि) कर्त्तव्यपरायण, दृढ बलवान् हों।

स॒त्यमित्तन्न त्वावाँ॑ अ॒न्यो अ॒स्तीन्द्र॑ दे॒वो न मर्त्यो॒ ज्याया॑न्।
अह॒न्नहिं॑ परि॒शया॑न॒मर्णो॑ऽवासृजो अ॒पो अच्छा॑ समु॒द्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(तत् सत्यम् इत्) यह बात सर्वथा सत्य है, कि (त्वावान् अन्यः न अस्ति) तेरे जैसा दूसरा और नहीं है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेरे जैसा (न देवः न मर्त्यः ज्यायान्) न देव और न मर्त्य ही तुझ से बड़ा है। (परि-शयानम्) सब ओर फैले (अहिं) मेघ को जिस प्रकार विद्युत्, सूर्य (अहन्) छिन्न भिन्न करता है और (अर्णः अव असृजः) जल को नीचे गिराता है और (अपः समुद्रम् अच्छ अवासृज) जलों को समुद्र की ओर बहा देता, या अन्तरिक्ष की ओर मेघ रूप से उठा देता है

इसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (परि-शयानम्) शान्त रूप से फैले (अहिं) आगे आये शत्रु को (अहन्) नाश करे । (अर्णः अवासृजः) धन को उत्पन्न कर और (अपः अच्छ समुद्रम्) आप्त प्रजाओं को समुद्र के समान गंभीर पुरुष को सौंप ।

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥५॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! जिस प्रकार सूर्य मेघ के जलों को सब ओर वर्षाता है, उसी प्रकार राजन् ! तू (अपः) आप्त प्रजाओं को (दुरः) शत्रुसंतापक सेनाओं को (विषूचीः वि) विविध दिशाओं में भेज और (पर्वतस्य) मेघ वा पर्वत के तुल्य शरवर्षी और अचल शत्रु के (दृढम्) दृढ़ सैन्य को (वि अरुजः) विविध प्रकार से नष्ट कर। तू (सूर्यम्) सूर्य, (द्याम्) तेज और (उषासम्) प्रभात के समान तेजस्वी पुरुष, कान्तिमती स्त्री, वा कामनावान् प्रजा और 'उषा' अर्थात् शत्रु को भस्म करने वाली सेना को (जनयन्) प्रकट करता हुआ (जगतः चर्षणीनाम्) जगत् के मनुष्यों के बीच (राजा अभवः) तेजस्वी, राजा होकर रह । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३१]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः ॥ ३ पंक्तिः । ४ निचृदतिशक्वरी । ५ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १ ॥

भा०—हे (रयिपते) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (रयीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों का (एकः) अकेला ही स्वामी (अभूः) है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हस्तयोः) हाथों में (कृष्टीः) कृषिकारिणी, समस्त प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, विनाश करने वाली समस्त सेनाओं को भी (अधिथाः) धारण

कर, उनका स्वामी रह। (चर्षणयः) विद्वान् मनुष्य (अप्सु) अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश (अप्सु) प्रजाजनों में (सूरे) सबके संचालक (तोके तनये च) पुत्र, पौत्र आदि के सम्बन्ध में (वि वाचः) विविध प्रकार के वचन, विविध बातें, या स्तुतियां (वि अवोचन्त) विविध प्रकार से कहें। अथवा—(२) (चर्षणयः) न्याय, राज्यशासन के द्रष्टा विद्वान् पुरुष (वि-वाचः) विशेष वाणियों के ज्ञानी अमुक के पुत्र, अमुक के पौत्र, तेजस्वी पुरुष के सम्बन्ध में विविध प्रकार से विवाद करके निर्णय करें कि कौन सभापति या राजा हो। अथवा—(३) विद्वान् जन पुत्र पौत्रादि में तथा (सूरे) नायक तेजस्वी पुरुष में (वि-वाचः अवोचन्त) विविध विद्याओं का उपदेश करें।

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! (त्वत् भिया) तुझसे भयभीत होकर, तेरे शासन में (विश्वा पार्थिवानि) समस्त पृथिवी के जन्तु (अच्युता) स्वयं नष्ट न होकर भी (रजांसि चित् च्यावयन्ते) अन्य लोकों को मार्ग पर जाने देते हैं, वे एक दूसरे का नाश नहीं करते। (ते अज्मन्) तेरे बड़े भारी बल के अधीन (द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी के तुल्य समस्त नर नारी, (पर्वतासः) पर्वतों या मेघों के तुल्य बड़े २ प्रजापालक जन और (वनानि) जंगल, वा सेव्य नाना ऐश्वर्य, (विश्वं दृढं) सब पदार्थ स्थिर रहकर भी विद्युत् के समान (भयते) भय करता है, तेरा शासन स्वीकार करता है। विद्युत् के प्रहार से जैसे मेघ (पार्थिवानि रजांसि) पृथिवी से लिये जलों को नीचे गिरा देते हैं। सब उसके भय से कांपते हैं।

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान तेजस्विन्! शत्रुहन्तः! हे (इन्द्र)

भूमि के विदारक ! कृषक ! (त्वं) तू (कुत्सेन) वज्र या हथियार, हल के बल से (अशुषम् शुष्णम्) कभी न सूखने वाले, अपार जल के बल को प्राप्त करके (गविष्टौ) बैलों, तथा भूमि की इष्टि अर्थात् प्राप्ति और उसमें बीज वपन आदि करके (कु-यवं) कुत्सित जौ आदि धान्य उत्पन्न करने के दोष को (अभि यु-द्धय) दूर कर और उत्तम अन्न प्राप्त कर। इसी प्रकार—हे राजन् ! तू (त्वं कुत्सेन अशुषं शुष्णं युध्य) तू शस्त्र बल से प्रजा-शोषक, स्वयं स्मृद्ध पुष्ट होने वाले अत्याचारी को प्रहार कर । (गविष्टौ) भूमि को प्राप्त करने के लिये (कुयवं) कुत्सित अन्न खाने वाले अथवा कुत्सित उपायों से प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट जन का (अभि युद्धय) बराबर मुकाबला किया कर । (अध) और (प्रपित्वे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (सूर्यस्य दश रपांसि) सूर्य के दसों हननकारी बलों को (मुषायः) प्राप्त कर और (चक्रम् अविवेः) राष्ट्र में चक्र का सञ्चालन कर अथवा (सूर्यस्य चक्रम्) सूर्य के चक्र या बिम्ब या ग्रह चक्र के समान अपने राजचक्र को (मुषायः) उसके अनुकरण में चला वा (मुषायः = पुषायः) पुष्ट कर। (रपांसि अविवेः) हनन साधन सैन्यों को सञ्चालित कर तथा (रपांसि) पापकारी दुष्ट पुरुषों को (दश) नष्ट कर, वा (दश अविवेः) दशों दिशाओं से दूर कर।

त्वं श॒तान्यव॒ शम्ब॑रस्य॒ पुरो॑ जघन्थाप्र॒तीनि॒ दस्यो॑ः ।
अशि॑क्षो॒ यत्र॒ शच्या॑ शचीवो॒ दिवो॑दासाय सुन्व॒ते सु॑तक्रे
भ॒रद्वा॑जाय गृण॒ते वसू॑नि ॥ ४ ॥

भा०—हे (शचीवः) शक्तिशालिन् ! हे बुद्धिमन् ! हे (सु-तक्रे, सुत-क्रे) सुप्रसन्न ! हे उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत ! उत्तम वेतन पर बद्ध अथवा उत्तम ऐश्वर्यों से अन्यों और अन्यों के श्रमों को अपने लिये खरीदने में समर्थ (त्वं) तू (शम्बरस्य) शान्ति के नाशक (दस्योः) प्रजा के नाशकारी, दुष्ट एवं शत्रु के (शतानि) सैकड़ों और (अप्रतीनि) अप्रतीत वा, अनुपम दृढ गुप्त स्थानों और (पुरः) किलाबन्द नगरियों को भी (अव जघन्थ)

पता लगा और नाश कर। (यत्र) जिस राष्ट्र में तू (सुन्वते) ऐश्वर्य बढ़ाने वा अभिषेक करने वाले (दिवः दासाय) तेजस्वी सूर्यवत् तेरे पास भृत्यवत् सेवक प्रजाजनों को और (गृणते) उपदेश करने वाले (भरद्वाजाय) ज्ञानधारक विद्वान् पुरुष को तू (वसूनि अशिक्षः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे वहां तू सुख से विराज।

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमातिष्ठ तुविनृम्ण भीमम्।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५॥३॥

भा०—हे (सत्य-सत्वन्) सत्यपालक बलवान् पुरुष, सत्य अन्तःकरण और बल वाले! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्यशालिन्! तू (महते रणाय) बड़े संग्राम के लिये (भीमम्) भयजनक (रथम्) रथ वा रथ सैन्य पर (आ तिष्ठ) बैठ, उस पर शासन कर। हे (प्र-पथिन्) उत्तम मार्ग पर चलने हारे, उत्तम अश्व यानादि के स्वामिन्! तू (अवसा) रक्षा, बल, ज्ञान सहित (मद्रिक्) मेरे समीप (उप याहि) प्राप्त हो और (चर्षणिभ्यः) विद्वान्, ज्ञानद्रष्टा पुरुषों से (प्र श्रुत) उत्तम २ वचन सुना (चर्षणिभ्यः प्र श्रावय च) और मनुष्यों के हितार्थ सुनाया कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

[३२]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। २ स्वराट् पंक्तिः। ३, ५ त्रिष्टुप्। ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥

भा०—मैं (अस्मै) इस (महे) महान्, (तवसे) बलवान् (तुराय) वेग से कार्य करने वाले, अप्रमादी, (वीराय) विविध ज्ञानों के उपदेष्टा, विविध शत्रुओं को कंपाने वाले, (विरप्शिने) अति प्रशस्त, विशेष रूप से, विविध प्रकारों से स्तुति योग्य, (वज्रिणे) शक्तिशाली, (स्थविराय) स्थिर,

शुद्ध, कूटस्थ प्रभु के (अपूर्व्या) अपूर्व, सबसे आदि, परम पुरुष के योग्य (पुरुतमानि) अति श्रेष्ठ, बहुत से (शं-तमानि) अति शान्तिदायक, (वचांसि) वचनों को मैं (आसा) मुख से (तक्षम्) उच्चारण करूं।

स मा॒तरा॒ सूर्ये॑णा क॒वीना॒मवा॑सयद्रु॒जदद्रिं॑ गृणा॒नः।

स्वा॒धीभि॒र्ऋक्व॑भि॒र्वाव॑शा॒न उदु॒स्रिया॑णामसृज॒न्निदा॑नम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् तथा बलवान् पुरुष (सूर्येण) सूर्य समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष द्वारा (कवीनाम्) क्रान्तदर्शी विद्वानों के (मातरा) माता पिता, राष्ट्र के उत्पादक नर नारी जनों को (अवासयत्) सुखपूर्वक बसावे, अर्थात् भावी में उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता बनने वाले बालक बालिकाओं की राजा तेजस्वी गुरु के समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने की व्यवस्था करे और वह स्वामी वा गुरु (गृणानः) उपदेश करता हुआ (अद्रिं रुजत्) अभेद्य अज्ञान को, मेघ को सूर्यवत् नाश करे। जिस प्रकार (वावशानः) कान्ति से चमकता हुआ सूर्य (सुआधीभिः ऋक्वभिः उस्त्रियाणां निदानम् उद् असृजन्) उत्तम जलधारक तेजोयुक्त किरणों द्वारा कान्तियों का और मेघों द्वारा जल-धाराओं का दान कराता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वह (वावशानः) निरन्तर चाहता हुआ, स्नेहवान् होकर (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यान, धारणा वाले विद्वानों, (ऋक्वभिः) अर्चना योग्य, उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुषों द्वारा (उस्त्रियाणाम्) ज्ञान-वाणियों का (निदानम्) निश्चित रूप से दान (उद् असृजत्) करे। इसी प्रकार— राजा, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष द्वारा (अद्रिं) अभेद्य शत्रु का नाश करता हुआ शासन करे, विद्वानों के माता पिता रूप सभा, दोनों की स्थापना करे। उत्तम विद्वान् पुरुषों से (उस्त्रियाणां निदानम्) वाणियों के निर्णय, तथा भूमियों के सुप्रबन्ध (उत् असृजत्) उत्तम रीति से करे।

स वह्नि॑भि॒र्ऋक्व॑भि॒र्गोषु॒ शश्व॑न्मि॒तज्ञु॑भिः पुरु॒कृत्वा॑ जिगाय।

पुरः॑ पुरो॒हा सखि॑भिः सखी॒यन्दृ॒ळ्हा रु॑रोज क॒विभिः॑ क॒विः सन् ॥३॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (ऋक्वभिः) पूजा करने योग्य प्रशंसनीय, (वह्निभिः) कार्य भार को अपने पर लेने में समर्थ, (मित-ज्ञुभिः) गोडे सिकोड़ कर बैठने वाले, सुसभ्य, वा परिमित, नपे हुए जानु या गोड़े आगे बढ़ाने वाले, एक चाल से चलने वाले, (सखिभिः) एक समान नाम वा ख्याति वाले वीरों, वा विद्वान् जनों के साथ (सखीयन्) मित्रवत् आचरण करता हुआ, (शश्वत्) सदा (गोषु) भूमियों और वेद-वाणियों को प्राप्त करने के निमित्त, (पुरु-कृत्वा) बहुत से कर्म करने हारा, पुरुष (जिगाय) विजय करे और उनके सहाय से ही वह (पुरोहा) शत्रु के पुरों वा आगे आने वाले शत्रु को नाश करने हारा, (कविः) दूरदर्शी पुरुष स्वयं (कविः सन्) क्रान्तदर्शी होकर (दृढाः पुरः दरोज) शत्रु की दृढ़ नगरियों को तोड़े। इसी प्रकार (२) विद्वान् पुरुष समवयस्क विद्वान् उपदेष्टाओं से मित्रभाव करके विजय लाभ करे, स्वयं क्रान्तदर्शी, तत्वज्ञानी होकर (पुरः) देहबन्धनों का नाश करे।

स नी॒व्या॑भिर्जरि॒तार॒मच्छा॑ म॒हो वाजे॑भिर्म॒हद्भि॑श्च॒ शुष्मैः॑।
पु॒रु॒वीरा॑भिर्वृषभ क्षिती॒नामा गि॑र्वणः सुवि॒ताय॒ प्र या॑हि ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह राजा तू सदा (नीव्याभिः) प्राप्त करने योग्य उद्देश्यों को लक्ष्य में रखने वाली वा 'नीवी' नामावलि या पंक्तियों में सुव्यवस्थित सेनाओं तथा (महद्भिः वाजेभिः) बड़े २ ज्ञानवान् और बलवान् पुरुषों तथा (महद्भिः शुष्मैः) बड़े २ बलों सहित (जरितारम्) स्तुतिशील तथा, स्वपक्ष को हानि करने वाले शत्रु जन को, पालन और हनन के लिये (अच्छ) सन्मुख होकर प्राप्त हो। हे (वृषभ) बलवन्! हे (गिर्वणः) वाणियों और आज्ञाओं के देने वाले और स्तुतियों के योग्य! तू (क्षितीनाम् सुविताय) प्रजाओं के सुख और ऐश्वर्यवृद्धि के लिये (पुरुवीराभिः) बहुत से वीर पुरुषों से बनी सेनाओं सहित (प्र याहि) आगे बढ़।

स सर्गे॑ण॒ शव॑सा त॒क्तो अत्यै॑र॒प इन्द्रो॑ दक्षिण॒तस्तु॑रा॒षाट्।
इ॒त्था सृ॑जा॒ना अन॑पावृ॒दर्थं॑ दि॒वेदि॑वे विविषुरप्रमृ॒ष्यम् ॥५॥४॥

भा०—(इन्द्रः सर्गेण तक्तः) जैसे विद्युत् वा वायु जल से पूर्ण होकर (दक्षिणतः अत्यैः) दक्षिण से वेग से आने वाले मेघों या वायुओं द्वारा (अपः सृजति) जलों को बरसाता है और वे (सृजानः दिवे दिवे अनपावृत् अर्थं विविषुः) उत्पन्न होकर दिनों दिन पुनः न लौटने योग्य गन्तव्य सागर को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार (सः) वह वीर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (तुराषाट्) अपने वेगवती सेना वा वेगयुक्त हिंसक भटों से शत्रुओं को विजय करने वाला होकर (सर्गेण) प्रजावत् गतिमान् (शवसा) सैन्य बल से (तक्तः) सुप्रसन्न, हृष्ट पुष्ट होकर (अत्यैः) वेगवान् अश्वगण सहित (अपः) आप्त प्रजावर्ग को प्राप्त करे। (इत्था) इस प्रकार से वे (सृजानाः) प्राप्त होती हुई प्रजाएं (दिवेदिवे) दिनों दिन (अनपावृत्) प्रत्यक्ष रूप से (अप्रमृष्यं अर्थं विविषुः) शत्रु से पराजय न होने वाले शरण योग्य पुरुष को प्राप्त करें। इति चतुर्थो वर्गः॥

[३३]

शुनहोत्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्पंक्तिः। ४ भुरिक्-पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान्॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! तू (यः) जो तू (ओजिष्ठः) सबसे अधिक पराक्रमी, (मदः) अतिहर्ष युक्त, (सु-अभिष्टिः) उत्तम आदरणीय, (दास्वान्) उत्तम दानों का दाता और (यः) जो तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी है, हे (वृषन्) बलवन्! हे प्रबन्धकर्त्तः! वह तू (नः) हमें (तम्) उस नाना ऐश्वर्य, हर्ष आदि को (दाः) प्रदान कर। वह तू (सौवश्व्यं) उत्तम अश्व सैन्य के कारण प्राप्त होने योग्य यश को (वनवत्) प्राप्त कर, तू (समत्सु) संग्रामों में (वनवत्) विघ्नों का नाश करे और धनों को प्राप्त करे और (अमित्रान् सासहत्) शत्रुओं का पराजय करे।

त्वां हीं॑न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वि-वाचः) विविध विद्यायुक्त वाणियों को जानने वाले, वा विविध भाषाओं को बोलने वाले, नाना देश वासी, (चर्षणयः) मनुष्य (शूरसातौ) शूर पुरुषों द्वारा सेवन योग्य संग्राम में (अवसे) रक्षा के निमित्त (त्वां हि) तुझको ही (हवन्ते) पुकारते, वा रक्षक रूप से स्वीकार करते हैं । तू (विप्रेभिः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा ही (पणीन्) उत्तम, प्रशंसित, एवं व्यवहारवान् पुरुषों को भी (वि-अशायः) विशेष रूप से सुख की नींद सुला, वे तेरी रक्षा में सुख से निश्चिन्त होकर रात बितावें । (त्वा-उतः) तुझसे सुरक्षित रहकर (इत्) ही (अर्वा:) अश्व के तुल्य वेग से जाने आने हारा पुरुष भी (वाजम्) अन्न ऐश्वर्यादि का (सनिता) भोग करता है ।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तान्) उन (उभयान्) दोनों प्रकार के (अमित्रान्) शत्रु और (दासा) सेवकों को, (वृत्राणि) धनों और (आर्या) स्वामियों, वैश्यों के योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त कर । हे (शूर) हे शूरवीर ! तू विवेक से (सु धितेभिः वना इव) कुठारों से जंगल के वृक्षों के समान (अत्कैः) बलों द्वारा शत्रुओं को (वधीः) विनाश कर और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर । हे (नृणां नृतम) नायकों में उत्तम ! तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (आ दर्षि) सब ओर विदीर्ण कर और (दासा आर्याः) सेवक श्रेष्ठ जनों का (आदर्षि) आदर कर ।

स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्धवयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥

भा०—हे शूर ! (यत्) जो (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम (स्वः

साता) सुख प्राप्ति के लिये (वृत्सु) संग्रामों में (नेमधिता) आधे ऐश्वर्य को धारण करने वाले होकर (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अकवाभिः) अनिन्दित वाणियों तथा (ऊती) रक्षा सामर्थ्य से (नः सखा) हमारा मित्र (विश्वायुः) सब मनुष्यों का स्वामी, (अविता) पालक और (वृधे भूः) हमारी वृद्धि के लिये समर्थ हो ।

नूनं न॑ इन्द्राप॒राय॑ च स्या॒ भवा॑ मृळी॒क उ॒त नो॑ अ॒भिष्टौ॑ ।
इ॒त्था गृ॒णन्तो॑ म॒हिन॑स्य॒ शर्म॑न्दि॒वि ष्या॑म॒ पार्ये॑ गो॒षत॑माः ॥५॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! दुःखविदारक ! तू (नूनं) निश्चय से (अपराय) दूसरे के लिये भी (मृळीक) दयार्द्र, सुखकर (स्याः) हो । (उत) और (नः) हमें (अभिष्टौ) प्राप्त होने पर भी (मृडीकः भव) सुखकारी हो । (इत्था) इस प्रकार (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम (महिनस्य) महान् सामर्थ्यवान् तेरे (दिवि) कान्तियुक्त, कमनीय, सुन्दर, (पार्ये) सबको पूर्ण करने वाले और पालक (शर्मन्) सुखमय शरण में (गोषतमाः) उत्तम ज्ञानवाणी, गवादि पशुओं और भूमियों का सुख सेवन करने वाले (स्याम) हों । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३४]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सं च॒ त्वे ज॒ग्मुर्गिर॑ इन्द्र पू॒र्वीर्वि च॒ त्वद्य॑न्ति वि॒भ्वो॑ मनी॒षाः ।
पु॒रा नू॒नं च॑ स्तु॒तय॒ ऋषी॑णां पस्पृ॒ध्र इन्द्रे॒ अध्यु॑क्था॒र्का ॥ १ ॥

भा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! (पूर्वीः) सबसे पूर्व की, उत्तम, (गिरः) वाणियां (त्वे) तुझमें ही (संजग्मुः) संगत, समन्वित होती हैं और (विभ्वः मनीषाः) विशेष समर्थ बुद्धियां भी (त्वत् वि यन्ति च) तुझसे विशेष रूप से प्रकट होती हैं । (इन्द्रे अधि) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त ही (ऋषीणां स्तुतयः च) मन्त्रार्थ द्रष्टाओं की स्तुतियां,

अवचन, (उक्थ अर्का) उत्तम अर्चना योग्य वचन (नूनं) अवश्य (पस्पृध्रे) एक दूसरे से स्पर्धा करते, एक दूसरे से उत्तम जंचते हैं।

पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति युज्ञैः।
रथो न मुहे शवसे युजानो॒३ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पुरुहूतः) बहुतों से स्तुति किया गया, (पुरुगूर्तः) बहुतों से उद्यम किया गया, अर्थात् जिसके निमित्त बहुत से उद्यम करते हैं, (यः) जो (ऋभ्वा) सत्य के बल पर महान् (यज्ञैः) यज्ञों और ईश्वर-पूजा अर्चनादि द्वारा (पुरु-प्रशस्तः) बहुतों से अच्छी प्रकार स्तुति किया जाता है, वह (महे) बड़े (शवसे) बल की वृद्धि के लिये (अस्माभिः युजानः) हम लोगों से योग द्वारा उपासित (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, (रथः न) महान् रथ के समान (अनुमाद्यः भूत्) प्रति दिन स्तुति योग्य और हर्ष अनुभव कराने हारा हो।

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तदुभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३॥

भा०—(यं) जिसको (धीतयः) नाना स्तुतियें भी (न हिंसन्ति) कष्ट नहीं देतीं और (न वाणीः) न नाना वाणियां या याचनाएं भी विघ्न करती हैं और वे (अभि वर्धयन्तीः इत्) इसको बढ़ाती हुई (इन्द्रे नक्षन्ति) ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही व्यापती हैं, उसमें ही चरितार्थ होती हैं। (यदि शतं, यत् सहस्रं स्तोतारः) चाहे सौ वा सहस्र स्तुतिकर्त्ता हों तो भी जब वे (गिर्वणसं गृणन्ति) समस्त स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाले, उस प्रभु की ही स्तुति करते हैं (तत्) तो भी यह सब अर्चनादि (अस्मै) इस जीव को (शं) शान्तिदायक ही होता है।

अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(दिवि इन्द्रे मासा यथा सोमः मिमिक्षे) आकाश में, तेजो-

मय सूर्य में जिस प्रकार 'सोम' अर्थात् चन्द्र एक मास के बाद (मिमिक्षे) उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार (एतत् सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीव, विद्वान् पुरुष, (अस्मै) अपने सुधार के लिये ही अपने जीव को भी (दिवि इन्द्रे) कामना योग्य ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (अर्चा एव) अर्चना द्वारा ही, (सं मिमिक्षे) मिल जाता है, इसी प्रकार यह जीव भी (न अयामि) नम्र, विनीत होकर प्राप्त हो। (धन्वन्) अन्तरिक्ष या मरुस्थल में जैसे (आपः सम् अभि वबृधुः) जल किसी को बढ़ाते या शक्तियुक्त करते हैं उसी प्रकार (आपः) आप्त प्रजाजन (सत्रा) सदा (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (हवनानि वावृधुः) हवनों को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार हम यज्ञों द्वारा उस प्रभु का यश बढ़ावें।

अस्मा पुतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥६॥

भा०—(मतिभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (अस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के लिये (एतत्) यह (महि) महत्व पूर्ण (आंगूषम्) ग्रहण योग्य, (स्तोत्रं) स्तुति वचन (अवाचि) कहा जावे (यथा) जिससे (महति) बड़े भारी (वृत्र-तूर्ये) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले संग्राम के अवसर में (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (विश्वायुः) पूर्णायु, सर्वत्र पहुँचने में समर्थ, समस्त मनुष्यों का स्वामी, (अविता) सबका रक्षक (वृधः च असत्) सबको बढ़ाने हारा हो। इति षष्ठो वर्गः ॥

[३५]

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥

भा०—हे राजन्! तेरे (रथ-क्षयाणि) रथों वा रमण योग्य साधन,

उत्तम प्रासाद आदि स्थानों में निवास करने के कार्य (कदा भुवन्) कब कब हों और (स्तोत्रे) स्तुतियोग्य कार्य अथवा स्तुति, उपदेश करने वाले विद्वान् जन को (सहस्रपोष्यं ब्रह्म) सहस्रों को पोषण करने वाला धन (कदा दाः) कब २ देवे, (राया) और धनैश्वर्य से युक्त (अस्य) इस राष्ट्र के (स्तोमं) स्तुत्य पद वा जन संघ को (कदा वासयः) कब २ बसावे, अलंकृत करे और (कदा) कब २ (वाजरत्नाः) अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि रमणीय पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (धियः) नाना कर्म तू (करसि) करे। इत्यादि सबका विवेकपूर्वक समय नियत कर।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कर्हि स्वित् तत्) कब ऐसा हो (यत्) कि तू (वीरैः नृभिः) वीर पुरुषों से (वीरान् नॄन् नीडयासे) वीर पुरुषों को मिलावे और (कर्हि स्वित् आजीन् जय) कब संग्रामों को विजय करे और कब (त्रिधातु) स्वर्ण, रजत और लोह से युक्त (गाः) भूमियों पर (अधि जयसि) जीत कर अधिकार करे। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्मे) हम प्रजाजन के उपकार करने के लिये (गोषु) उत्तम भूमियों में (स्वर्वत् द्युम्नं) सुख से युक्त, धन, अन्न (धेहि) उत्पन्न करावे। इत्यादि सब बातों का तू ठीक २ काल जान।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (कर्हि स्वित्) कब २ (जरित्रे) विद्वान् पुरुषों को (विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः) समस्त प्रकार के अन्न, धन आदि प्रदान करे। (कदा) कब २ (धियः) नाना कर्मों, प्रज्ञाओं तथा उनके करने वाले बुद्धिमान् पुरुषों को (नियुतः न) अपने अधीन नियुक्त पुरुषों या अश्वों के समान (युवासे) कार्य में

लगावे और (कदा) कब २ (गो-मघाः) भूमियों के धनस्वरूप (हवनानि) ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न, कर आदि पदार्थों को (गच्छाः) प्राप्त करे। इत्यादि का तू ठीक ठीक काल नियत कर।

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्राः वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह तू (जरित्रे) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के लिये (गो-मघाः) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्य, भूमि, राज्य, धन, (अश्व-चन्द्राः) वेग से जाने वाले अश्व आदि आह्लादकारक, (वाज-श्रवसः) बलकारक अन्नों से युक्त (पृक्षः) प्राप्त करने योग्य नाना पदार्थ, (अधि धेहि) अपने अधिकार में रख और प्रदान कर। तू (इषः) नाना अन्नों को (पिपीहि) पान कर, (इषः पिपीहि) आज्ञाकारी, वशवर्ती सेनाओं का पालन कर। (इषः पिपीहि) कामना योग्य प्रजाओं की वृद्धि कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सु-दुघां धेनुम्) उत्तम रीति से दोहने योग्य गौ के तुल्य इस भूमि और वाणी को और (सु-रुचः) उत्तम कान्तियुक्त तथा रुचिकारक पदार्थों को (भरद्-वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य संग्रह करने वाले पुरुषों के अधीन (रुरुच्याः) उनको अधिक रुचिकर सामर्थ्यवान् बना।

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! तू (यत्) जब (दुरः) द्वारों तथा शत्रुवारक सेनाओं को (वि गृणीषे) विविध आज्ञाएं देवे तब (शूरः) शूरवीर होकर तू (नूनं) निश्चय से (वृजनम्) जाने के मार्ग को (अन्यथा चित्) विपरीत (मा आगृणीषे) कभी मत बतला। (शुक्रः दुघस्य) जल को दोहन करने वाले मेघ के सदृश शुक्र या श्वेत कान्ति के धन या यश का दोहन करने वाले राजा की (धेनोः) विद्युत् के समान, वाणी, वा गौ के तुल्य भूमि से उत्पन्न (ब्रह्मणा) ज्ञान वा अन्न के तुल्य वृद्धिशील धन

से हे (विप्र) विद्वन्! तू (आङ्गिरसान्) अंगारे के समान तेजस्वी, देह में प्राणों के तुल्य, राष्ट्र में बसे विद्वान् शक्तिशाली पुरुषों को (अरम्) अच्छी प्रकार से (निर् जिन्व) तृप्त कर, उनको बढ़ा। इति सप्तमो वर्गः॥

[३६]

नर ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ५ भुरिक् पंक्तिः। ३ स्वराट् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

सत्रा मदा॑सस्तव॑ वि॒श्वज॑न्याः स॒त्रा रायो॒ऽध॒ ये पार्थि॑वासः।
स॒त्रा वाजा॑नामभवो विभ॒क्ता यद्दे॒वेषु॑ धा॒रय॑था असु॒र्य॑म्॥ १॥

भा०—(यत्) जो तू (देवेषु) समस्त तेजस्वी पुरुषों में किरणों के बीच सूर्य के समान (असुर्यम्) सबके प्राणों के हितकारी बल, अन्नादि को (धारयथाः) धारण करता है, अतः तू (वाजानाम्) ऐश्वर्यों, अन्नों का (सत्रा विभक्ता अभवः) सत्यपूर्वक विभाग करने वाला हो। (तव मदासः = दमासः) तेरे समस्त हर्षकारी और राष्ट्र दमनकारी उपाय (सत्रा) सदा, सचमुच (विश्व-जन्याः) समस्त जनों के हितकारी हों। (अध ये) और (पार्थिवासः रायः) पृथिवी पर प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्य भी (सत्रा) सचमुच (विश्व-जन्याः) सर्वजन हितकारी हों।

अनु॒ प्र ये॑जे॒ जन॒ ओजो॑ अस्य स॒त्रा द॑धिरे॒ अनु॑ वी॒र्या॑य।
स्यू॒म॒गृभे॒ दुध॒येऽर्व॑ते च॒ क्रतुं॑ वृ॒ञ्ज॒न्त्यपि॑ वृत्र॒हत्ये॑॥ २॥

भा०—(अस्य ओजः) इसके बल पराक्रम को (जनः) मनुष्य लोग (अनु येजे) प्रतिदिन आदर से देखें और (प्र येजे) उत्तम रीति से स्वीकार करें। (अस्य वीर्याय) इसके बल बढ़ाने के लिये (सत्रा अनु दधिरे) सदा सत्य व्यवहार धारण करे। (अपि) और (वृत्रहत्ये) वारण करने योग्य, बढ़ते शत्रु के नाश के लिये (स्यूमगृभे) एक दूसरे से सम्बद्ध, दृढ़ सैन्य को वश करने वाले (दुधये) शत्रुहिंसक (अर्वते) आगे बढ़ने वाले वीर पुरुष के योग्य (क्रतुं) कर्म (वृञ्जन्ति) करें।

तं स॒ध्रीची॑रू॒तयो॒ वृष्ण्या॑नि॒ पौंस्या॑नि नि॒युतः॑ सश्चु॒रिन्द्र॑म् ।
स॒मु॒द्रं न सिन्ध॑व उ॒क्थशु॑ष्मा उरु॒व्यच॑सं॒ गिर॒ आ वि॑शन्ति ॥३॥

भा०—(तं) उस (इन्द्रम्) सत्य न्याय और ऐश्वर्य को धारण करने वाले पुरुष को (ऊतयः) रक्षा करने वाले समस्त सैन्यादि साधन, (सध्रीचीः) एक साथ चलने वाली सेनाएं और (वृष्ण्यानि पौंस्यानि) बलशाली पुरुषों के बने सैन्य और पराक्रम (नियुतः) नियुक्त, लाखों जन, (सश्चुः) प्राप्त हों और (उक्थ-शुष्माः गिरः) उत्तम प्रशंसनीय बल से युक्त वा वचन २ में बल धारण करने वाली वाणियां (उरु-व्यचसं) उस महान्, पराक्रमी पुरुष को (सिन्धवः समुद्रं न) समुद्र को नदियों के समान (आ विशन्ति) प्राप्त होकर उसमें आश्रय लें।

स रा॒यस्खामुप॑ सृजा गृणा॒नः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॒ त्वमि॑न्द्र॒ वस्वः॑ ।
पति॑र्बभू॒थास॑मो॒ जना॑नामेको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॑ ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वम्) तू (गृणानः) हमें उपदेश करता हुआ और हमसे स्तुति प्राप्त करता हुआ, (पुरु-चन्द्रस्य) बहुतों को सुखी करने वाले (वस्वः) धनों और (रायः) देने लेने योग्य ऐश्वर्य की (खाम्) खुदी नहर के समान (उप सृज) बनाकर बहा दे। तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (असमः) अनुपम, (एकः) अद्वितीय (पतिः) पालक और (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा (बभूव) हो।

स तु श्रु॑धि॒ श्रुत्या॒ यो दु॑वो॒युर्द्यौर्न भूमा॒भि रायो॑ अ॒र्यः ।
अ॒सो॒ यथा॑ नः॒ शव॑सा चका॒नो यु॒गेयु॑गे॒ वय॑सा॒ चेकि॑तानः ॥५॥८॥

भा०—(यः) जो (द्यौः न) सूर्य के समान तेजस्वी (दुवोयुः) परिचर्या की कामना करता हुआ, (भूम रायः अभि) बहुत बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त कर (अर्यः) सबका स्वामी है। (सः) वह तू (श्रुत्या) श्रवण करने योग्य, प्रजाओं के वचनों को (श्रुधि तु) अवश्य श्रवण कर (यथा) जिससे तू

(युगे युगे) प्रति वर्ष, (वयसा) दीर्घ आयु (शवसा) और बल ज्ञान से (चकानः) कान्ति युक्त और (चेकितानः) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारा प्रिय (असः) हो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[३७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत्पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य॥ १॥

भा०—हे (उग्र) उद्वेगजनक! बलवन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (युक्तासः हरयः) नियुक्त मनुष्य, अश्वों के समान (ते) तेरे (विश्ववारं) सबों से वरण करने योग्य (रथं) रथवत् रमण करने योग्य राष्ट्र चक्र को (वहन्तु) धारण करें। (स्वर्वान्) सुख और उत्तम उपदेश ज्ञान से युक्त (कीरिः) विद्वान् पुरुष (त्वा हवते) तुझे उपदेश दे वा विद्वान् जन तुझे स्वीकार करें। (अद्य) आज (ते) तेरे (सधमादः) साथ हर्षित और प्रसन्न होने वाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध हों।

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा॥२॥

भा०—(हरयः) मनुष्य (द्रोणे) राष्ट्र में रहते हुए (कर्म) किसी भी उपयोगी कर्म को (प्र अग्मन्) अच्छी प्रकार करें। वे (पुनानासः) पवित्र, स्वच्छ रहते हुए (ऋज्यन्तः अभूवन्) ऋजु, सरल, धर्मानुकूल आचरण करते हुए रहें। (नः) हममें से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध पुरुष (पूर्व्यः) पूर्व, सबसे प्रथम पूजा योग्य, या पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों द्वारा नियत हो। वह (अस्य) इस राष्ट्र को (पपीयात्) निरन्तर पालन, उपभोग तथा समृद्ध करे। वह (द्युक्षः) आकाश के समान भूमि के राज्य को विस्तृत करने हारा, सूर्यवत् चमकने वाला, तेजस्वी होकर (सोम्यस्य)

सोम, राज्यैश्वर्य पद के योग्य (मदस्य) आनन्द, हर्ष, तृप्ति, सुख का (पपीयात्) लाभ करे।

आ सुस्त्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३ ॥

भा०—(रथ्यासः अश्वाः) रथ में लगने योग्य अश्वों के समान उत्तम धुरन्धर विद्वान् जन (शवसानम् इन्द्रम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् राजा को (अच्छ आ-सस्त्राणासः) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हुए, (ऋज्यन्तः) ऋजु, सरल, धार्मिक मार्ग पर गमन करते हुए (श्रवः अभि वहेयुः) ऐश्वर्य, उत्तम कीर्त्ति प्राप्त करावें और वह (नू चित्) अति शीघ्र ही (सु-चक्रे) उत्तम चक्रयुक्त रथ के समान उत्तम राज्यचक्र में (वायोः) वायु के समान बलवान्, सबके प्राणप्रद (अमृतं) अविनाशी, दीर्घायु पद को प्राप्त करें (नु चित्) दुःखों को (वि दस्येत्) नष्ट करे। अथवा (नूचित् इति निषेधे) वह उस अविनाशी पद का नाश न करे। अध्यात्म में—आत्मा के 'अश्व' प्राण हैं, देह 'सुचक्र' है। इसको अन्न, बल और ज्ञान प्राप्त करावें। जिससे आत्मा 'वायुवत्' जीवनप्रद, ज्ञानमय प्रभु के अमृतपद को प्राप्त करे, दुःखों का नाश करे।

वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४॥

भा०—(मघोनाम्) धन सम्पन्न पुरुषों में से (वरिष्ठः) उत्तम वरने योग्य, सबसे श्रेष्ठ, दुःखों को दूर करने वाला और (तुवि-कूर्मितमः) बहुत उत्तम कर्मों को करने वाला पुरुष ही (इन्द्रः) इन्द्र, ऐश्वर्य के राजपद के योग्य होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (दक्षिणाम्) दक्ष, अर्थात् बल से युक्त, बलवती, सञ्चालक शक्ति सैन्यादि और बलप्रद अन्न धनादि को भी (इयर्त्ति) प्राप्त होता और चलाता है। हे (वज्रिवः) बलशालिन्! (यया) जिससे (अंहः) पाप अपराध आदि को (परि यासि) दूर करता है। हे

(धृष्णो) दुष्टों का दमन करने हारे ! तू (यया) जिस महती शक्ति द्वारा (सूरीन्) उत्तम विद्वानों को (मघा दयसे) दान योग्य धन, अन्न देता और पालता है। (२) इसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष ही बहुत से कर्म करके दक्षिणा देता है जिससे वह पाप को नाश करता और विद्वान् को धन अन्नादि देकर पालता है।

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५॥९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (स्थविरस्य) स्थिर और बड़े (वाजस्य) अन्न, धन, बल का (दात्रा) देने वाला हो। वही (इन्द्रः) विद्या आदि का दाता, आचार्य (वृद्ध-महाः) वृद्धों द्वारा सत्कार करने योग्य होकर (गीर्भिः) उत्तम उपदेश योग्य वाणियों से (वर्धताम्) बढ़े और राष्ट्र की वृद्धि करे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (हनिष्ठः) खूब दण्ड देने वाला (अस्तु) हो। वह (सूरिः) विद्वान् पुरुष (तूतुजानः) दुष्टों का निरन्तर नाश करता और सज्जनों को दान देता हुआ (सत्वा) बलवान् सात्विक पुरुष (ता) उन नाना धनों को (पृणति) पूर्ण करे और दे। इति नवमो वर्गः ॥

[३८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम्।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

भा०—(चित्र-तमः) अति आश्चर्यजनक कार्य करने हारा, अति पूज्य, सर्वोत्तम ज्ञानदाता, राजा, विद्वान् पुरुष (नः) हमें (इतः) प्राप्त होकर (अपात् उत् उ) सदा पालन करे। वह (महीं) पूज्य, बड़ी (द्युमतीम्) तेजोयुक्त (इन्द्र-हूतिम्) ऐश्वर्य देने वाली भूमि और ज्ञान प्रकाश से

युक्त विद्वान् द्वारा उपदेश योग्य वाणी को भी (अर्वत्) पालन और धारण करे। वह (सु-दानुः) उत्तम दाता होकर (दैव्यस्य जनस्य) मनुष्यों और राजा के हितकारी प्रजाजन के (यामम्) नियन्त्रण करने के शासन कार्य में (पन्यसीं धीतिं) स्तुति योग्य धारण, सामर्थ्य और (रातिं) दानशीलता को (वनते) सेवन करे और धन प्रदान करे। परमेश्वर वा आत्मा पक्ष में—(अपात्) पाद आदि अवयवों से रहित, वह अद्भुतकर्मा है, वह द्युलोक सहित भूमि का धारक है, इत्यादि।

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

भा०—(दूरात् चित्) दूर देश से (आ) आकर (वसतः) शिष्य रूप से रहने वाले (अस्य) इस शिष्य के (कर्णा) कानों को (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (घोषात्) वेद से (ब्रुवाणः) ज्ञानोपदेश करता हुआ विद्वान् (तन्यति) अधिक विस्तृत करे, उसको अधिक ज्ञानवान् बनावे। (इयम् देव-हूतिः) विद्वान् पुरुष का यह विद्यादान वा देव अर्थात् विद्या की कामना वाले शिष्य की प्रार्थना (इन्द्रम्) उस विद्यादाता आचार्य के प्रति (ऋच्यमाना) स्तुति करती हुई (मद्र्यक्) मुझ शिष्य के प्रति (एनम् आववृत्यात्) उस गुरु को आवर्त्तन करे, मेरे प्रति गुरु का ध्यान और स्नेह आकर्षण करे।

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (वः) आप लोगों के बीच (परमया) सबसे उत्तम (धिया) बुद्धि और कर्म से युक्त (पुराजाम्) पूर्व उत्पन्न, (अजरम्) हानिरहित, (इन्द्रम्) ज्ञानप्रद गुरु को मैं (अर्कैः) आदर सत्कार योग्य उपचारों से (अभि अनूषि) साक्षात् स्तुति उपासना करूं। (अस्मिन्) इसके अधीन रहकर विद्वान् शिष्य जन (ब्रह्म) वेदज्ञान और

(गिरः च) उपदेशयोग्य विद्या, वाणियों को (दधिरे) धारण करें और (इन्द्रे अधि) उस विद्या-ऐश्वर्य के धारण करने कराने वाले गुरु की अध्यक्षता में (स्तोमः) उपदेश योग्य ज्ञान, वेदमय कोष, (वर्धत्) बड़ा हो जाता है। (२) वह परमेश्वर, परम शक्ति ज्ञान से सम्पन्न, सनातन, अजर, अमर है। उसकी मन्त्रों से स्तुति करूं। वह महान् बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और वेद वाणियों, स्तुतियों को धारण करता है।

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा, विद्वान् को (यज्ञः) परस्पर का सत्संग, आदर, मान, प्रतिष्ठा और करादि देना, (वर्धात्) बढ़ाता है, (यं सोमः वर्धात्) जिसको सोम्य विद्वान् शिष्य, पुत्र, ऐश्वर्य, ओषधि अन्नादि, बढ़ाते हैं और जिसको (ब्रह्म) बड़ा धन, बड़ा ज्ञान, बड़ा राष्ट्र तथा (गिरः) वाणियां और (मन्म उक्था च) मनन करने योग्य उत्तम २ वचन भी (वर्धात्) बढ़ाते हैं। (नक्तोः यामन्) रात्रि के बीतने या सर्वप्रकाशक सूर्य के आगमन पर (एनम् उषसः) उस सूर्य को उषाओं के समान (उषसः) शत्रु को दग्ध वा सन्तप्त, पीड़ित करने वाली सेनाएं (अक्तोः यामन्) तेजस्वी राजा के प्रयाण के समय में 'अक्तु' अर्थात् स्नेहयुक्त राष्ट्र के शासन काल में (वर्ध अह) निश्चय से बढ़ाता है और (मासः) मास (शरदः) वर्ष और (द्यावः) दिन, वर्ष के अवयव, ये (इन्द्रं वर्धान्) उसके ऐश्वर्य को बढ़ावें। गुरु और शिष्य के पक्ष में—सोम शिष्य है, 'यज्ञ' ज्ञान का दान, वेदवाणियां, मननयोग्य वचन को बढ़ाते हैं और प्रातः सायं, दिन रात, मास, ऋतु, वर्ष आदि विद्यार्थी को बालवत् बढ़ावें।

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (सहसे) बल वृद्धि के लिये (असामि जज्ञानं) पूर्ण होते हुए और (राधसे) आराधना और (श्रुताय च) श्रवण योग्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (वावृधानं) बढ़ते हुए (महाम्) महान् (उग्रम्) उत्तम पुरुष को (आ विवासेम) सब प्रकार परिचर्या करें। (नूनम्) निश्चय से हम (अवसे) ज्ञान और रक्षा प्राप्ति के लिये (वृत्र-तूर्येषु) विघ्नकारी अज्ञान, काम क्रोधादि व्यसनों और शत्रुओं के नाशक कार्यों के निमित्त हे (विप्र) विद्वन्! उस महापुरुष को ही (आ विवासेम) आश्रय रूप से स्वीकारें, उसकी सेवा करें। इति दशमो वर्गः॥

[३९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४, ५ भुरिक् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः॥ १॥

भा०—गुरु शिष्य प्रकरण। हे (देव) विद्या की अभिलाषा करने हारे विद्यार्थिन्! तू (गृणते) उपदेश करने वाले गुरु के (गो-अग्राः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त प्रेरणाओं अर्थात् उपदेशों को (युवस्व) प्राप्त कर और उस (मन्द्रस्य) स्तुति योग्य, (कवेः) क्रान्तदर्शी, (दिव्यस्य) ज्ञान प्रकाश में निष्ठ, (वह्नेः) विद्या को धारण करने वाले, (विप्रमन्मनः) विद्वान् मेधावी पुरुष के मनन योग्य ज्ञान को धारण करने वाले, (सचनस्य) सत्संग योग्य (मध्वः वचनस्य) मधुर वचन का (नः अपाः) हमें भी पान करा।

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (उशानः ऋतयुग् इन्द्रः ऋतधीतिभिः वलस्य-सानु रुजत्, पणीन् वचोभिः अभि बोधत्) कान्तिमान्, तेजोयुक्त सूर्य वा विद्युत्, जलधारक किरणों से व्यापक मेघ के उच्च भाग को छिन्न

भिन्न करता है, स्तुत्य व्यवहारों को गर्जनाओं सहित करता है, उसी प्रकार (अयम्) यह (उशानः) विद्याओं की कामना करने वाला, (युजानः) विद्याभ्यास में मनोयोग देने वाला विद्यार्थी (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान के भीतर योग देने वाला हो और (ऋत-धीतिभिः) ज्ञान को धारण करने के उपायों से (अद्रिं परि उस्राः) मेघवत् ज्ञानवर्षण करने वाले गुरु के प्रति अपनी इन्द्रिय वृत्तियों को (युजानः) लगाने वाला हो। वह (इन्द्रः) अज्ञान का नाश करने में समर्थ विद्वान्, गुरु (अरुग्णं) न टूटे हुए (वलस्य) व्यापक (सानु) अज्ञान के प्रबल अंश को (रुजत्) छिन्न भिन्न करे, विद्या के कठिन मर्मों को खोले। वह (वचोभिः) उत्तम वचनों द्वारा (पणीन् प्रति) अपने विद्यार्थियों को लक्ष्य कर उनके प्रति (अभि योधत्) युक्ति प्रतियुक्तियों से आक्षेप-प्रत्याक्षेप करे, वादविवाद द्वारा सिद्धान्तों की शिक्षा दे। अर्थात् गुरु स्वयं वीर के समान विद्यार्थी के लिये सब कठिन स्थलों को सरल करे। साथ ही (अयन् उशानः) यह गुरु भी (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान का योग कराने वाला होकर (ऋत-धीतिभिः) सत्य ज्ञान कराने वाली क्रियाओं से (अद्रिं परि उस्राः युजानः) अपने अभीत, निर्भय शिष्य के प्रति किरणोंवत् वाणियों को प्रदान करे।

अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान को नाश करने और ज्ञान के देनेहारे! सूर्यवत् तेजस्विन् गुरो! (इन्द्रः अक्तून् दोषा वस्तोः शरदः वि अद्योतयत्) जिस प्रकार चन्द्र रातों को सदा सब वर्षों में ही प्रकाशित करता है, उसी प्रकार (अयम्) यह (इन्दुः) चन्द्रवत् आह्लादकारी गुरु भी (दोषा वस्तोः) रात दिन (शरदः) छहों शरद आदि ऋतुओं में भी (अद्युतः अक्तून्) ज्ञान की दीप्ति से रहित रात्रिवत् अज्ञात विद्यास्थलों को (वि अद्योतयत्) विशेष रूप से प्रकाशित करा करे। जिस प्रकार उषाएं (अह्नां केतुम् अदधुः) दिनों को चमकाने वाले सूर्य को धारण करती

है उसी प्रकार (उषसः) विद्या की कामना करने वाले जितेन्द्रिय विद्यार्थी जन सूर्यवत् तेजस्वी, (अह्नां) न ताड़ना योग्य शिष्यों को (केतुम्) ज्ञान देने वाले गुरु को (अदधुः) धारण करें, उसको गुरुवत् स्वीकार करें। और जिस प्रकार सूर्य (शुचि-जन्मनः उषसः चकार) शुद्ध पवित्र जन्म-वाली उषाओं को उत्पन्न करता है उसी प्रकार वह गुरु भी (उषसः) विद्या के इच्छुक शिष्यों को (शुचि-जन्मनः चकार) शुद्ध पवित्र विद्या माता में शुद्ध पवित्र जन्म वाला बना देता है, अर्थात् विद्वान् बना कर उनको पवित्र ज्ञानमय जन्म देता है।

अयं रोचयदरुचो रुचानो३ऽयं वासयद् व्यृ१तेन पूर्वीः।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥

भा०—(रुचानः अरुचः रोचयत्) जिस प्रकार सूर्य स्वयं कान्ति से चमकता हुआ कान्ति से रहित चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार (अयम्) यह विद्वान् उपदेष्टा गुरु, स्वयं (रुचानः) तेजस्वी होकर (अरुचः) विद्या प्रकाश से रहित जनों को (रोचयत्) विद्या प्रकाश से प्रकाशित करे। (अयं) यह (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान प्रजाओं के समान ही नवीन विद्यार्थी जनों को (ऋतेन) सत्योपदेश के निमित्त (वासयत्) अपने अधीन बसावे, रखे। (अयम्) वह (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ज्ञान से पूर्ण करने हारा विद्वान् (स्वः-विदा नाभिना) तेजोमय, उपदेश को प्राप्त करने वाले 'नाभि' अर्थात् सम्बन्ध से (ऋत-युग्भिः) सत्य ज्ञान का योग करा देने वाले (अश्वैः) उत्तम विद्वान् सहायक अध्यापकों द्वारा (ईयते) आगे बढ़ता है।

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥५॥११॥

भा०—हे (प्रत्न राजन्) दीर्घायु ! विद्या प्रकाश से युक्त ! विद्वन् ! राजन् ! तू (नू) अवश्य (गृणते गृणानः) प्रार्थना करने वाले को विद्यो-

पदेश करता हुआ (वसुदेयाय) द्रव्य देने में समर्थ जनों को भी (पूर्वीः इषः पिन्व) पूर्व की वेद वाणियों से तृप्त कर और तू (ऋचसे) उत्तम काम के लिये (अपः) उत्तम जल (ओषधीः) नाना ओषधियां, (अविषा) विषों से रहित (वनानि) जल और वन के पदार्थ (गाः अर्वतः) गौ और अश्व आदि पशु (रिरीहि) दे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[४०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! (सुतः मदाय) जिस प्रकार उत्पन्न पुत्र हर्ष लाभ के लिये होता है उसी प्रकार वह उत्पन्न प्रजाजन, तथा ऐश्वर्य समूह (तुभ्यं) तेरे ही हर्ष, प्रसन्नता एवं सुख के लिये है। तू उसका (पिब) पालन कर और ऐश्वर्य का उपभोग अन्न के समान कर। अर्थात् जैसे ओषधि आदि अन्न रस का पान पुष्टि के लिये होता है उसी प्रकार प्रजा की समृद्धि का उपभोग अपनी शक्ति को पुष्ट करने के लिये हो। भोग विलासादि व्यसन उसको पुष्ट न करके निर्बल करते हैं अतः राजा को भोग-विलास करना उचित नहीं। हे राजन्! इसी प्रकार (तुभ्यं सुतः मदाय) तेरा राज्याभिषेक हर्ष के लिये हो और तू प्रजा का (पिब) पालन कर, (अव स्य) तू प्रजा को दुःखों से छुड़ा। (सखाया हरी) मित्रवत् विद्यमान (हरी) स्त्री पुरुषों वा राजा प्रजा के वर्गों को रथ में जुते, अश्वों के समान (वि मुच) विशेष रूप से बन्धनमुक्त, स्वतन्त्र जीवनवृत्ति वाला कर। (उत) और तू (गणे) प्रजागण के ऊपर (आ निषद्य) आदर से धर्मासन पर विराज कर (प्र गाय) उत्तम २ उपदेश और उत्तम आज्ञाएं दे। (अथ) और (गृणते यज्ञाय) उपदेश करने वाले,

सत्संग और आदर करने योग्य पुरुष को (वयः धाः) उत्तम अन्न और बल प्रदान कर।

अस्य॑ पिब॒ यस्य॑ जज्ञा॒न इ॑न्द्र॒ मदा॑य॒ क्रत्वे॒ अपि॑बो विरप्शिन्।
तमु॑ ते॒ गावो॒ नर॒ आपो॒ अद्रि॒रिन्दुं॒ सम॑ह्यन्पी॒तये॒ सम॑स्मै ॥ २ ॥

भा०—हे (विरप्शिन्) महान्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (जज्ञानः) प्रकट या प्रसिद्ध होता हुआ तू (मदाय) हर्षित, तृप्त और पूर्ण होने और (क्रत्वे) कर्म सामर्थ्य को बढ़ाने के लिये (अस्य अपिबः) जिस ऐश्वर्य का तू उपभोग और पालन करता है (अस्य पिब) बाद में भी तू उसी राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करता रह। (अस्यै ते) इस तेरी वृद्धि के लिये ही (गावः) गौएं, वाणियें, भूमियें, (नरः) उत्तम नायक, (आपः) राष्ट्र में जल, मेघ, कूप, नदी, तडाग आदि तथा आप्तजन, (अद्रिः) मेघ, पर्वत, शस्त्रबल सब (तम् इन्दुं) उस ऐश्वर्य के (पीतये) पालन और उपभोग के लिये (सम् अह्यन्) प्राप्त हों।

समि॑द्धे अ॒ग्नौ सु॒त इ॑न्द्र॒ सोम॒ आ त्वा॑ वहन्तु॒ हर॑यो॒ वहि॑ष्ठाः।
त्वा॒य॒ता मन॑सा जोहवी॒मीन्द्रा या॑हि सुवि॒ताय॑ म॒हे नः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के खूब प्रदीप्त हो जाने के समान (अग्नौ) अग्रणी नायक के (सम-इद्धे) अति प्रज्वलित, तेजस्वी हो जाने पर (सोमे सुते) राष्ट्र ऐश्वर्य के अभिषेक द्वारा प्राप्त हो जाने पर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (त्वा) तुझको (वहिष्ठाः) ऊपर धारण करने वा राज्य-भार को वहन करने में अति कुशल (हरयः) विद्वान् मनुष्य, उत्तम अश्वों के समान (त्वा वहन्तु) तुझे सन्मार्ग पर ले जावें। मैं प्रजाजन (त्वायता मनसा) तुझे चाहने वाले चित्त से (जोहवीमि) निरन्तर पुकारता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले! तू (नः महे सुविताय) हमारे बड़े भारी उत्तम शासन वा ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमें (आ याहि) प्राप्त हो।

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे वयो धात् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (शश्वत्) निरन्तर (उशता) प्रजा को चाहने वाले (मनसा) चित्त से (आ याहि) प्राप्त हो । तू (महा मनसा) बड़े उदार चित्त, ज्ञान से युक्त होकर (सोम-पेयम्) पुत्र वा शिष्यवत् पालन करने योग्य राष्ट्र-ऐश्वर्य रूप रक्षायोग्य धन को (ययाथ) प्राप्त कर । (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम वेदोपदेशों को स्वयं शिष्यवत् (उप शृणवः) ध्यानपूर्वक श्रवण कर । (अथ) और (यज्ञः) सत्संग, आदर सत्कार तथा प्रजा का कर आदि देना और दानवान् प्रजा-जन भी (ते तन्वे) तेरे शरीर और विस्तृत राष्ट्र के लिये (वयः धात्) उत्तम अन्न और बल प्रदान करे, तुझे पुष्ट करे ।

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ५॥१२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (यत्) जब (पार्ये) पालन करने योग्य (दिवि) तेजस्वी और सबको रुचने वाले कमनीय, राज्यपद पर और (यत्) जब (ऋधक् वा) उससे पृथक् भी हो, (यद् वा) अथवा जब तुम (स्वे सदने) अपने आसन वा गृह में (यत्र वा असि) या जहां कहीं, जिस स्थिति में भी हो (अतः) वहां से ही हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! आप (नियुत्वान्) लक्षों सेनाओं, नियुक्त भृत्यों तथा अश्व सैन्य के स्वामी होकर (स-जोषाः) प्रीतिपूर्वक (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् मनुष्यों सहित (अवसे) रक्षा करने के लिये (नः यज्ञं पाहि) हमारे यज्ञ, राष्ट्र का पालन कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

[४१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवन् ! अश्व सैन्य के स्वामिन् ! (इन्दवः सुतासः) ऐश्वर्यवान्, प्रेम दया से आर्द्र प्रजाजन, उत्पन्न पुत्र के समान होकर (तुभ्यं पवन्ते) तेरी वृद्धि के लिये यत्न करते हैं। तू (अहेडमानः) उन पर क्रोध और अनादर का भाव न करता हुआ (यज्ञं उप याहि) आदर सत्कार तथा सत्संग को प्राप्त हो। (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञियानाम् प्रथमः) सत्कार योग्य पुरुषों में से सबसे प्रथम (स्वम् ओकः) अपने स्थान को (गावः नः) शासित भूमियों गौओं, प्रजाओं के समान ही (अच्छ आगहि) प्राप्त हो। जैसे गौवें गोशाला में आती हैं उसी प्रकार तू सौम्य भाव से अपने पद को प्राप्त हो।

या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे अज्ञाननाशक स्वामिन् ! विद्वन् ! (या ते) जो तेरी (काकुत्) वाणी (सुकृता) उत्तम रीति से सम्पादित सु-अभ्यस्त, सुपरिष्कृत है। (या) जो (वरिष्ठा) सबसे श्रेष्ठ, है (यया) जिससे तू (शश्वत्) सदा (मध्वः ऊर्मिम्) मधुर, ज्ञान के सार भाग का (पिबसि) स्वयं ग्रहण करता और अन्यों को भी पान कराता है, तू (तया पाहि) उससे हमारी रक्षा कर। (अध्वर्युः) कभी नाश न करने वाला वीर जन (ते प्र अस्थात्) तेरी वृद्धि के लिये प्रतिष्ठित हो, आगे बढ़े। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (ते वज्रः) तेरा वज्र, शत्रुसंहारक शत्रुबल (गव्युः) गौ, ज्ञान वाणी राज्यभूमि का हितकारी (सं वर्त्तताम्) रहे।

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे (स्थातः) स्थिर रहने

वाले ! तू (यस्य ईशिषे) जिसका स्वामी होता है और (यः ते अन्नम्) जो तेरा भोग्य अन्न है (एषः) वह (द्रप्सः) सबको लुभाने वाला, (वृषभः) उत्तम सुखों को वर्षण करने वाला, (सोमः) ऐश्वर्यवान अथवा द्रुत गति से जाने वाला, (वृषभः) बलवान् (विश्वरूपः) नाना प्रजाजनों से युक्त, (सोमः) पुत्रवत्प्रिय, राष्ट्र (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वृष्णे) बलवान् तेरे लिये ही (सम् अकारि) अच्छी प्रकार संस्कार किया जावे, हे (उग्र) बलशालिन् ! तू (एतं पिब) उसका पालन, उपभोग कर ।

सुतः सोमो॒ असु॑तादिन्द्र॒ वस्या॑न॒यं श्रेया॑ञ्चिकि॒तुषे॒ रणा॑य ।
ए॒तं ति॑तिर्व॒ उप॑ याहि य॒ज्ञं तेन॒ विश्वा॒स्तवि॑षी॒रा पृ॑णस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (असुतात्) न उत्पन्न हुए की अपेक्षा (सुतः सोमः) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य के तुल्य यह अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य (वस्यान्) बहुत अधिक धनैश्वर्य से सम्पन्न तथा अधिक प्रजाजनों को बसाने हारा है और वह (चिकितुषे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (रणाय) उत्तम सुख प्राप्त करने और शत्रुनाशक संग्राम करने के लिये भी (श्रेयान्) अति श्रेष्ठ है । हे (तितिर्वः) शत्रु नाश करने हारे बलवन् ! राजन् ! तू (एतं यज्ञं उपयाहि) उस यज्ञ, पूज्य पद, सुसंगत राज्य को प्राप्त हो । (तेन) उससे (विश्वाः) समस्त (तविषीः) बलवती सेनाओं को (आपृणस्व) सब प्रकार से पालन पूर्ण कर ।

ह्वया॑मसि॒ त्वेन्द्र॑ याह्य॒र्वाङर॑ं ते॒ सोम॑स्त॒न्वे॑ भवाति ।
शत॑क्रतो मा॒दय॑स्वा सु॒तेषु॒ प्रास्माँ अ॑व॒ पृत॑नासु॒ प्र वि॒क्षु ॥५॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! बलवन् ! शत्रुहन्तः ! प्रभो ! (त्वा) तुझे हम (ह्वयामसि) बुलाते हैं । (सोमः) अन्न जिस प्रकार (तन्वे) शरीर के पोषण के लिये होता है और (सोमः तन्वे) जिस प्रकार पुत्र या शिष्य वंश परम्परा के विस्तार के लिये होता है, उसी प्रकार यह राष्ट्र भी (ते तन्वे अरम्) तेरे विशाल शरीर वा राज्य विस्तार के लिये पर्याप्त (भवाति)

हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अर्वाङ् आ याहि) सबके समक्ष आ। अथवा अश्व सैन्य को प्राप्त करके प्रयाण कर, हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने हारे! तू (अस्मान्) हम सबों को (सुतेषु) पुत्रवत् आह्लादक अभिषेकादि कर्मों के अवसरों वा ऐश्वर्यों के निमित्त (मादयस्व) आनन्दित कर और (पृतनासु) संग्रामों के अवसरों और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अस्मान् प्र अव) हमारी अच्छी रक्षा कर। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[४२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक्। २ निचृदनुष्टुप्। ३ अनुष्टुप्। ४ भुरिगनुष्टुप्॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरे॥ १॥

भा०—हे विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! प्रजाजन! तू (अस्मै) उस (पिपीषते) पान और उत्तम पालन करने की इच्छा करने वाले, (अरंगमाय) विद्या और संग्राम के पार जाने वाले, (अपश्चाद्-दघ्वने) पीछे पैर न रखने वाले (जग्मये) आगे बढ़ने हारे, वीर और (विदुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के पदार्थ (प्रति भर) ला।

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः॥ २॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (एनं) इस (ऋजीषिणम्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर प्रजाजन को चलाने में समर्थ, तथा ऋजीष, अर्थात् बल वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (सोमपातमं) उत्पन्न पुत्रवत् प्रजा तथा ऐश्वर्य के उत्तम पालक पुरुष को, (सुतेभिः) नाना पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र हृदय (अमत्रेभिः) सहायकारी (सोमेभिः) सौम्य गुण युक्त पुरुषों सहित (प्रति एतन) प्राप्त होवो।

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते॥ ३॥

भा०—(यदि) यदि आप लोग (सुतेभिः) उत्तम पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) दयार्द्र, तेजस्वी (सोमेभिः) उत्तम शासकों, ऐश्वर्यों वा गुणों सहित उस राजा को (प्रति भूषथ) सुभूषित करें तो वह (मेधिरः) शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, बुद्धिमान्, तथा अन्नादि सम्पन्न पुरुष (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र को (वेद) जाने और प्राप्त करे। वह (धृषत्) शत्रुओं का पराजय करने हारा (तम्-तम् इत्) आपके दिये उस २ ऐश्वर्यादि पदार्थ को (आ ईषते) आदरपूर्वक प्राप्त करे।

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्।

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४॥१४॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजाजन की हिंसा न करने वाले प्रजापालक राजन्! तू (अस्मै अस्मै) इस इस प्रजाजन के लिये (अन्धसः सुतम्) अन्न से उत्पन्न ऐश्वर्य को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर और (समस्य) समस्त (जेन्यस्य) विजय करने योग्य (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (अभिशस्तेः) शस्त्र प्रहार से (कुवित्) बहुत बार, बारबार (अवस्परत्) हमारी रक्षा कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यस्य मदे) जिसके हर्ष में (दिवः दासाय) ज्ञान और तेज के देने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये तू (त्यत्) उस (शम्बरम्) मेघ के समान गर्जते शत्रु को (रन्धयः) वश करता है (सः अयम्) वह यह (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) बलकारक अन्नादि ओषधि रस के तुल्य ऐश्वर्य (ते) तेरे ही लिये है। तू (पिब) उसे पान वा पालन कर।

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यस्य) जिसके (तीव्रसुतम्) तीव्र, वेग से कार्य करने वाले, अप्रमादी पुरुषों से शासित, (मदम्) हर्षदायक (मध्यम् अन्तम्) राष्ट्र के मध्य और सीमाप्रान्त की भी तू (रक्षसे) रक्षा करने में समर्थ है (अयं सः सोमः) वह यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रजाजन (ते सुतः) तेरे ही पुत्रवत् हैं । तेरे लिये ही वह (सुतः) अन्न वा ओषधि रसवत् तैयार वा अभिषेक किया गया है । तू उसका (पिब) पुत्रवत् पालन कर वा, ओषधि अन्नादिवत् उपभोग कर ।

यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळहा अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! (यस्य मदे) जिसके आनन्द, हर्ष के लिये (अश्मनः अन्तः) शस्त्र बल के भीतर (दृढाः) दृढ़तया सुरक्षित (गाः) भूमियों को तू (अवासृजः) अपने अधीन शासन करता है (अयं) यह (सः) वह (सोमः) ओषधि रसवत् ऐश्वर्य युक्त राज्य है (ते सुतः) उसके लिये ही मुझे अभिषेक प्राप्त है । तू (पिब) उसका पालन और उपभोग कर ।

यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (अन्धसः) प्राण धारक करने वाले, अन्नवत् पोषक राष्ट्र के बल पर (मन्दानः) तू अति हृष्ट प्रसन्न होता हुआ, (माघोनं शवः) ऐश्वर्यवान् होने योग्य बल को (दधिषे) धारण करता है (अयं सः सोमः) यह वह ऐश्वर्यमय राष्ट्र (ते सुतः) तेरा पुत्रवत् है । तू (पिब) उसका पालन कर । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४४]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृदनुष्टुप् । २, ५ स्वराडुष्णिक् । ६ आसुरी पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः । ८ निचृत्पंक्तिः । ९, १२, १६ पंक्तिः । १०, ११, १३, २२ विराट् त्रिष्टुप् । १४, १५, १७, १८, २०, २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १९, २१, २३ त्रिष्टुप् ॥

चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यो र॒यिवो॑ र॒यिन्त॑मो॒ यो द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्नव॑त्तमः ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (रयिवः) धन ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (स्वधा-पते) अन्न और धन धारण करने वाले बल के पालक ! (यः सोमः) जो ऐश्वर्य (ते) तेरा (रयिन्तमः) सबसे उत्तम और (द्युम्नैः) नाना प्रकार के धनों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यंत समृद्ध है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) सम्पन्न (सः ते मदः अस्ति) वह तुझे आनन्द देने वाला हो ।

यः श॒ग्मस्तु॑विशग्म ते रा॒यो दा॒मा म॑ती॒नाम् ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शग्म) बहुत से सुखों से पूर्ण प्रभो ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शग्मः) शान्तिदायक, (सोमः) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र (मतीनाम्) मननशील, बुद्धिमान् पुरुषों को (रायः दामा) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है । हे (स्वधापते) हे अन्नपते ! वह सब राष्ट्रैश्वर्य (ते सुतः) तेरे लिये समृद्ध होकर (मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो ।

येन॑ वृ॒द्धो न शव॑सा तु॒रो न स्वाभि॑रू॒तिभिः॑ ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिसके बल से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (शवसा) बल से (वृद्धः न) बढ़े हुए के समान जिस ऐश्वर्य से तू (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी रक्षा सेनाओं से (तुरः न) शत्रुओं को हिंसक के समान

मारने वाला होता है, हे (स्वधापते) अपने ऐश्वर्य शक्ति के पालक ! (सः सोमः) वह अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य, राष्ट्रधन (सुतः) तुझे प्राप्त हो और वह (ते मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो।

त्यमु॑ वो॒ अप्र॑हणं गृणी॒षे शव॑स॒स्पति॑म् ।
इन्द्रं॑ विश्वा॒साहं॒ नरं॒ मंहि॑ष्ठं वि॒श्वच॑र्षणिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (त्यम् उ) उस (अप्रहणं) अन्याय से किसी को दण्डित न करने वाले, (शवसः पतिम्) समस्त सैन्य-बल और ज्ञान के पालक, (इन्द्रम्) दुष्टों के नाशक, तत्वदर्शी (विश्वसाहम्) सब को पराजय करने वाले, (मंहिष्ठं) अति दानशील, (विश्वचर्षणिं) समस्त जगत् के द्रष्टा और समस्त मनुष्यों के स्वामी (वरं) नेता, पुरुष प्रभु को मैं (इन्द्रं गृणीषे) इन्द्र नाम से उपदेश करता हूँ। वही सर्वस्तुत्य, सर्वैश्वर्यवान्, आश्रय योग्य है।

यं व॒र्धय॒न्तीद्गिरः॒ पतिं॑ तु॒रस्य॒ राध॑सः ।
तमिन्न्व॑स्य॒ रोद॑सी दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(यं) जिसके (तुरस्य) शत्रुहिंसक सैन्य-बल और (राधसः) कार्यसाधक भृत्य वर्ग और ऐश्वर्य के (पतिम्) पालक पुरुष को (गिरः) स्तुति वाणियां, वा उत्तम वाग्मी पुरुष (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं। (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा जन, तथा स्त्री और पुरुष वर्ग दोनों (तत् इत् शुष्मं नु) उस ही शत्रुशोषक, बलशाली पुरुष की (सपर्यतः) सेवा करते हैं और (अस्य इत्) उसके ही (नु शुष्मं वर्धयन्ति) बल को नित्य बढ़ाते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

तद्व॑ उ॒क्थस्य॑ ब॒र्हणेन्द्रा॑योपस्तृणी॒षणि॑ ।
विपो॒ न यस्यो॒तयो॒ वि यद्रोह॑न्ति स॒क्षितः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस बलवान् पुरुष के (ऊतयः) रक्षा करने के साधन, शस्त्र-अस्त्र बल आदि उपाय (विपः) स्वयं ज्ञानवान् पुरुषों के

समान ज्ञानपूर्वक चलते हैं और (यत्) जो (सक्षित:) एकही स्थान पर रहकर (वि रोहन्ति) विशेष वृद्धि पाते हैं। (तत्) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु नाशक स्वामी के (उक्थस्य) प्रशंसनीय बल के (बर्हणा) बढ़ने से ही (वः उप-स्तृणीषणि) आप लोगों को उत्तम छत के समान रक्षक या उपस्तरण, बिछौने के समान सुखदायक हो।

अविंदद् दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७ ॥

भा०—(नवीयान्) सब से अधिक स्तुत्य पुरुष (पपानः) राष्ट्र का पालन करता हुआ (मित्रः) प्रजा को मरण से बचाने वाला और सबका स्नेही होकर (दक्षं अविदत्) बल प्राप्त करे और (वस्वः अचैत्) नाना धनों का सञ्चय करे। वह (ससवान्) उत्तम अन्न का स्वामी होकर (स्तौलाभिः धौतरीभिः) बड़ी २ शत्रुओं को कंपा देने वाली सेनाओं द्वारा (उरुष्या) प्रजा वा राष्ट्र की इच्छा से (सखिभ्यः) अपने मित्र वर्गों का भी (पायुः अभवत्) पालक हो।

ऋतस्यं पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन्।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतस्य पथि) सत्य के मार्ग में रह कर (वेधाः) विधान करने में कुशल, विद्वान् न्यायपति (अपायि) राष्ट्र का स्वामी के समान पालन करे और (देवासः) कामनाशील सभी मनुष्य (श्रिये) अपनी लक्ष्मी को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये (मनांसि) अपने चित्त (अक्रन्) बनाये रक्खें। वे उत्तम सम्पदा पाने और बढ़ाने की इच्छा करें। (वेन्यः) कान्तिमान् तेजस्वी, राज्य और शासन बल की कामना करने हारा विजिगीषु पुरुष सूर्य के समान (महः वचोभिः) बड़े, उत्तम वचनों से (नाम दधानः) ख्याति धारण करता हुआ, (दृशये) देखने योग्य अपने (वपुः) सुन्दर रूप को सूर्यवत् (वि आवः) विशेष रूप से प्रगट करे।

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (अस्मे) हममें (द्युमत्तमं) उत्तम तेज और विद्या प्रकाश से युक्त (दक्षं) बल (धेहि) धारण करा और (जनानां) मनुष्यों के बीच में (पूर्वीः अरातीः) पूर्व विद्यमान न देने की कृपण आदतों को (सेध) दूर कर और (शचीभिः) उत्तम बुद्धियों, शक्तियों, वाणियों द्वारा (वर्षीयः वयः) अति उत्तम, बहुत वर्षों तक स्थिर रहने वाला जीवन और बल (कृणुहि) कर, जिससे प्रजा दीर्घायु हों और (धनस्य) धन के (सातौ) न्यायपूर्वक विभाग करने के निमित्त तू (अस्मान् अविड्ढि) हममें प्रवेश कर, हम पर अध्यक्ष हो ।

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! धन के स्वामिन् ! (इन्द्र) हे शत्रुहन्तः ! (हरिवः) हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (तुभ्यम् इत्) तेरे ही हितैषी (अभूम) हों । (तू दात्रे) दानशील पुरुष के लिये (मा वि वेनः) कभी विपरीत कामना मत कर । (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में से कोई भी दूसरा (आपिः) तुझसे अतिरिक्त बन्धु (नकिः ददृशे) दिखाई नहीं देता । (किम् अङ्ग) हे स्वामिन् ! और क्या कहें ? (त्वा) तुझको सब विद्वान् जन (रध्र-चोदनं आहुः) अपने अधीन व्यक्तियों को उत्तम शिक्षा देने वाला बतलाते हैं । इति सप्तदशो वर्गः ॥

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११॥

भा०—हे (वृषभ) बलवान् पुरुष ! तू (नः) हमें (जस्वने) नाश कर देने वाले दुष्ट पुरुष के हाथ (मा ररीथाः) मत दे । (ते रेवतः) तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष के (सख्ये) मित्रभाव में रहते हुए हम लोग (मा रिषाम)

कभी पीड़ित न हों, न एक दूसरे का विनाश करें। (जनेषु) मनुष्यों में हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (पूर्वीः) पूर्व से चली आई, सनातन (निःषिधः) बुरे मार्ग से निषेध करने वाली मर्यादाओं को (ररीथाः) हमें बार २ बतला। (असुष्वीन्) ऐश्वर्य वृद्धि, सवन, यज्ञ, उपासना कर आदि दान और स्नान तथा तेरा अभिषेक न करने वाले जन हैं उनको (जहि) दण्डित कर। (अप्नृणतः) सन्तानों तथा वचन व्रत का पालन न करने वालों को (प्र वृह) उखाड़ डाल।

उद॒भ्राणी॑व स्त॒नय॑न्निय॒र्तीन्द्रो॒ राधां॒स्यश्व्या॑नि॒ गव्या॑।
त्वम॑सि प्र॒दिवः॑ का॒रुधा॑या॒ मा त्वा॑दा॒मान॒ आ द॑भन्म॒घोनः॑ ॥१२॥

भा०—(इन्द्रः अभ्राणि इव) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् मेघों को गर्जता हुआ ऊपर उठाता है इसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (स्तन-यन्) गर्जता हुआ (अश्वानि गव्यानि रधांसि) अश्वों, गौवों और भूमियों के धनों को (उत् इयर्ति) उन्नत करता है। हे राजन्! (त्वम्) तू (कारुधायाः) विद्वानों, शिल्पियों का धारण, पोषण करने वाला (प्र-दिवः) सबके द्वारा कामना योग्य (असि) है। (अदामानः) अदानशील, बन्धनरहित, उच्छृङ्खल पुरुष (त्वा) तुझे और तेरे (मघोनः) राज्य के ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (मा दभन्) विनाश न करें।

अध्व॑र्यो वीर॒ प्र म॒हे सु॒ताना॒मिन्द्रा॑य भर॒ स ह्य॑स्य॒ राजा॑।
यः पू॒र्व्याभि॑रु॒त नूत॑नाभिर्गी॒र्भिर्वा॑वृ॒धे गृ॑ण॒तामृषी॑णाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा का नाश न करने वाले! अहिंसक! (वीर) वीर पुरुष! तू (महे) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (सुतानाम्) ऐश्वर्यों अथवा उत्पन्न पुत्रों के समान राष्ट्र में प्रजाओं को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर। क्योंकि (सः हि) वह तू ही (अस्य) इस राज्य और ऐश्वर्य का (राजा) राजा है। (यः) जो तू (पूर्व्याभिः) पूर्व की (उत) और (नूतनाभिः) नयी २ (ऋषीणाम्) तत्वदर्शी (गृण-ताम्) उपदेष्टा पुरुषों की (गीर्भिः) वाणियों से (ववृधे) वृद्धि प्राप्त करे।

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः वृत्राणि जघान) सूर्य या विद्युत् मेघों को आघात करता है और (मदे) तृप्तिकारक, जल के आधार पर (पुरु वर्पांसि करोति) ओषधि वनस्पतियों के नाना रूपों को उत्पन्न करता है और विद्वान् पुरुष (वीराय) विविध सुखों या जलों के दाता (शिप्रिणे पिबध्यै) बलवान् मेघ के पान के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधुर पदार्थों से युक्त ओषधि समूह को (प्रहोषि) अग्नि में आहुति करता है उसी प्रकार (विद्वान् इन्द्रः) ज्ञानवान् राजा (अस्य मदे) इस राष्ट्र के तृप्तिकारक हर्ष-जनक ऐश्वर्य या दमन-शासन के बल पर ही (वृत्राणि) विघ्नकारी समस्त शत्रुओं को (अप्रती) विना रोक के (जघान) नाश करे और (पुरु वर्पांसि) बहुत प्रजा के शरीरों की रक्षा करे। हे प्रजावर्ग! तू (अस्मै) इस (शिप्रिणे) मुकुटधारी, सुमुख (वीराय) वीर पुरुष के (पिबध्यै) पान करने के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधु से युक्त ओषधि रस के समान (तम्) वह नाना अन्नादि युक्त ऐश्वर्य (प्रहोषि) अच्छी प्रकार प्रदान कर।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥१८

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष ही (सुतं पाता) उत्पन्न अन्न आदि ऐश्वर्य का भोक्ता, तथा प्रजाओं का पुत्रवत् पालक (अस्तु) हो। वही (सोमं) ऐश्वर्य का भोक्ता हो। वह (मन्दसाना) अति हृष्ट होकर (वज्रेण) शस्त्रबल से (वृत्रं) मेघ को सूर्यवत् बढ़ते शत्रु का (हन्ता) नाशक हो। वह (परावतः चित्) दूर देश से भी (यज्ञं) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म तथा पूज्य, सत्संग योग्य पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होने वाला हो। वह (वसुः) प्रजा के बसाने हारा (कारु-धायाः) विद्वानों शिल्पियों का पोषक होकर (धीनाम्) उत्तम ज्ञानों, कर्म, कौशलों वा धन्धों का (अविता) रक्षक हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (इदं) यह शरीर (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रं-पानं पात्रम्) जीव और जीव को प्राप्त इन्द्रियादि भोगों के उपभोग का साधन है । इससे ही वह साधना करके (अमृतम् अपायि) अमृत, मोक्ष रस का भी पान करता है और वह (देवं प्रति सौमनसाय मत्सत्) प्रभु परमेश्वर के प्रति शुभ चित्त रहने के लिये ही चाहे उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के स्वामी राजा का (इदं त्यत्) यह भी एक अद्भुत उत्तम (इन्द्र-पानम्) ऐश्वर्यपद की रक्षा करने वाला (पात्रं) पालक साधन है जिससे (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अमृत तुल्य सुख (अपायि) प्राप्त किया जाता है । वह प्रजाजन (देवं) उस तेजस्वी पुरुष को (सौमनसाय) शुभ चित्त बनाये रखने के लिये (मत्सत्) सदा आनन्दित करे । वह राजा भी (अस्मत्) हम प्रजाजन से (द्वेषः) द्वेष भाव को (वि युयवत्) पृथक् करे और वह हमसे (अंहः वि) पाप को भी दूर करे ।

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! तू (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, उत्साहवान् होकर (एना) पूर्व कहे राष्ट्रपालक बल से (शत्रून् जहि) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जामिम्) सम्बन्धी और (अजामिम्) सम्बन्ध रहित (अमित्रान्) स्नेह न करने वालों तथा (अभि-सेनान्) सामने आने वाले और (आ-देदिशानान्) सन्मुख सेनाओं वा प्रजाओं पर आदेश चलाने वाले शत्रुओं को भी (परा जहि) दण्डित कर । हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! उनको (प्र मृण च) अच्छी प्रकार नाश कर और (प्र जहि च) खूब दण्ड दे ।

आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (नः) हमारी (आसु पृत्सु) इन संग्रामों में वा वीरजनों की सेनाओं के बल पर (अस्मभ्यं) हमारे सुख के लिये (महि) बहुत बड़ा (सुगं) सुख जान कर (वरिवः) धनैश्वर्य (कः) पैदा कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अपां) आप्त प्रजाओं के (तोकस्य तनयस्य) पुत्र पौत्र के लिये ही (जेष) विजय कर और (नः) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (अर्धं कृणुहि) समृद्ध कर।

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! (वृषणः) बलवान् उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (हरयः) मनुष्य (वृषरथासः) बलवान् शस्त्रास्त्रवर्षण कुशल रथ आदि सैन्यों के स्वामी, महारथी और (वृषरश्मयः) प्रबन्ध करने में समर्थ रश्मियों अर्थात् बागडोरों वाले उत्तम प्रबन्धक, नियम मर्यादाओं से सम्पन्न, (अत्याः) सबसे उत्तम पुरुष, अश्वों के समान दृढ़ (युजानाः) तेरा सहयोग देने वाले (अस्मत्राञ्चः) हम लोगों में पूजनीय और (वज्रवाहः) वज्र को नित्य धारण करने वाले, (वृषणः) बलवान् पुरुष भी (वृष्णे) बलकारक (मदाय) तृप्ति और हर्ष के लिये (सुयुजः) उत्तम मनोयोग देते हुए (त्वां वहन्तु) तुझको अपने ऊपर धारण करें।

आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् २०।१९

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! (घृतप्रुषः ऊर्मयः न) जल वर्षाने वाले जल तरंगों के समान (मदन्तः) अति हर्षित, उत्साहवान्, (वृषणः) मेघों के समान शस्त्रवर्षी, बलवान् (ते) तेरे वीर जन (द्रोणम्) रथ और राष्ट्र

पर (आ अस्थुः) विराजें और वे (वृषभिः) बलयुक्त सैन्यों से (सुतानां) उत्पन्न किये ऐश्वर्यों में से हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (तुभ्यं) तुझ (वृषभाय) सर्वश्रेष्ठ (वृष्णे) सुखों के दाता के लिये (सोमम् प्र भरन्ति) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

वृषा॑सि दि॒वो वृ॑ष॒भः पृ॑थि॒व्या वृषा॒ सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम्।
वृष्णे॑ त॒ इन्दु॑र्वृषभ पीपाय स्वा॒दू रसो॑ मधु॒पेयो॒ वरा॑य ॥ २१ ॥

भा०—हे राजन्! तू (दिवः वृषा असि) प्रकाश के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी है। तू (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। तू (सिन्धूनां वृषा) मेघवत् जलों का सेचन करने हारा है। तू (स्तियानां वृषभः असि) संघ बना कर रहने वाली सेनाओं और प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ है। हे (वृषभ) सुखों की प्रजा पर मेघवत् वर्षा करने हारे (वृष्णे) बलवान् (वराय) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के पान करने के लिये यह (इन्दुः) ऐश्वर्य युक्त (स्वादुः) आनन्ददायक (मधुपेयः रसः) मधुर, शहद आदि के साथ मिलाकर खाने योग्य रस, वर को मधुपर्क आदि के तुल्य आदरार्थ (ते पीपाय) तुझे प्राप्त हो।

अ॒यं दे॒वः सह॑सा॒ जाय॑मान॒ इन्द्रे॑ण यु॒जा प॒णिम॑स्तभायत्।
अ॒यं स्वस्य॑ पि॒तुरायु॑धा॒नीन्दु॑रमुष्णा॒दशि॑वस्य मा॒याः ॥ २२ ॥

भा०—(अयं) यह (देवः) तेजस्वी, पुरुष (सहसा) अपने बल से (जायमानः) प्रकट होकर (इन्द्रेण युजा) ऐश्वर्ययुक्त सहायक के साथ मिलकर (पणिम्) स्तुत्य व्यवहार और व्यवहार कुशल प्रजावर्ग को (अस्तभायत्) स्थिर करे, उसे शासन करे और (अयं) वह (इन्दुः) स्वयं आर्द्र-हृदय एवं ऐश्वर्ययुक्त चन्द्र के समान आह्लादक होकर (स्वस्य पितुः) अपने पालक पिता के (आयुधानि) शस्त्रों अस्त्रों को (अस्तभायत्) स्थिरता से धारण करे और (अशिवस्य मायाः) अमङ्गलजनक शत्रु के छल कपटयुक्त चालों को (अमुष्णात्) दूर करे।

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (उषसः अकृणोत्) तेजोयुक्त प्रभात वेलाओं को प्रकट करता है उसी प्रकार (अयम्) यह तेजस्वी पुरुष (सु-पत्नीः) राष्ट्र की उत्तम पालक (उषसः) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सेनाओं को (अकृणोत्) तैयार करे और वह (उषसः) कान्ति और कामना से युक्त स्त्रियों को (सु-पत्नीः) उत्तम गृहपत्नी बनने दे । (सूर्ये अन्तः ज्योतिः) सूर्य के भीतर विद्यमान प्रखर तेज को वह (अदधात्) धारण करे और (अयं) वह (त्रितेषु रोचनेषु) तीनों प्रकाशमान अग्नि, विद्युत्, सूर्य उनमें (नि-गूढं) गुप्त रूप से विद्यमान (त्रि-धातु अमृतम्) तीनों तत्वों को धारण करने वाले अमृत के समान (दिवि) पृथिवी में भी (त्रितेषु) उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों स्थानों पर शोभा देने वाले पुरुषों में (नि-गूढं त्रिधातु अमृतं विन्दत्) छिपे तीनों प्रकार के प्रजाजन को धारण करने वाले अमृत-बल को प्राप्त करे ।

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४॥२०

भा०—(द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार प्रभु परमेश्वर (वि स्कभायत्) विविध प्रकार से थाम रहा है उसी प्रकार (अयम्) यह राजा भी (द्यावा पृथिवी) तेजस्वी पुरुषों और भूमि वासी अन्य प्रजाओं को (वि स्कभायत्) विविध उपायों से वश करे । (सप्त-रश्मि रथम्) उसी प्रकार सात किरणों वाले सूर्य के समान सात रासों से युक्त रथ, वा सात प्रकृतियों से युक्त सर्व सुखप्रद राज्य को (अयुनक्) संचालित करे । (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु जैसे (शच्या) वाणी द्वारा (गोषु) वेदवाणियों के भीतर (पक्वम्) परिपक्व ज्ञान को (दाधार) धारण कराता है और जिस प्रकार वह सम्प्रेरक (दशयन्त्रम् उत्सम्) दश

यन्त्रों से युक्त कूप वा जल स्रोत के समान दशों दिशाओं से नियन्त्रित (उत्सम्) इस जगत् को धारण करता है उसी प्रकार (अयं) यह (सोमः) अभिषेक योग्य राजा (शच्या) अपनी शक्ति वा आज्ञा के बल पर (गोषु अन्तः) भूमियों के बीच (पक्वम्) पके धान्य को (दाधार) ग्रहण करे और (दश-यन्त्रम् उत्सम् दाधार) दश यन्त्रों से युक्त कूप आदि बनवावे। वा राष्ट्र को (दश-यन्त्रम् उत्सम्) दश विद्वानों द्वारा नियन्त्रित उत्तम राष्ट्र को धारण करे। अध्यात्म—में 'दश यन्त्र उत्स' यह देह दश इन्द्रियगण से युक्त है। 'इन्द्र' आत्मा है। इति विंशो वर्गः॥

[४५]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः॥ १—३० इन्द्रः। ३१—३३ बृबुस्तक्षा देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२, २३, २४, २८, ३०, ३२ गायत्री। ४, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १५, १६, १७, १८, १९, २५, २६, २९ निचृद्गायत्री। ५, ६, २७ विराड्गायत्री। ३१ आर्च्युष्णिक्। ३३ अनुष्टुप्॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।
इन्द्रः स नो युवा सखा॥ १॥

भा०—(यः) जो पुरुष (परावतः) दूर देश से (तुर्वशं यदुम्) हिंसक मनुष्यों अथवा हिंसक सैन्यगण और यत्नशील प्रजावर्ग दोनों वा चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले यत्नशील प्रजावर्ग को (सुनीती) उत्तम नीति, न्याय से (आ अनयत्) अच्छी प्रकार सत् मार्ग से ले जाता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (युवा) बलवान् पुरुष (नः सखा) हमारा मित्र हो।

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता।
इन्द्रो जेता हितं धनम्॥ २॥

भा०—जो राजा (अविप्रे चित्) अविद्वान्, बालक आदि में (वयः

चित्) उत्तम जीवन और ज्ञान (दधत्) धारण कराता और (अनाशुना अर्वता चित्) वेग से न जाने वाले अश्व सैन्य से (हितं धनं जेता) सुखकारी धन विजय करता है वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा होने योग्य है।

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस राजा के ईश्वर के समान ही (महीः प्रणीतयः) बड़ी उत्तम २ नीतियें और (पूर्वीः) सनातन से चली आई वेदोपदिष्ट (प्र-शस्तयः) उत्तम शासन आज्ञायें हों। (अस्य ऊतयः) उसके अनेक रक्षा आदि के साधन कभी (न क्षीयन्ते) क्षीण न हों।

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत।
स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो! आप लोग (ब्रह्म-वाहसे) वेद, ज्ञान को प्राप्त कराने वा धारण करने वाले विद्वान् वा प्रभु और धनैश्वर्य को प्राप्त करने या धारने वाले राजा का (प्र अर्चत) उत्तम रीति से सत्कार करो और (प्र गायत च) उसकी उत्तम प्रशंसा करो। (सः हि) वह ही (नः) हमारे बीच (मही) उत्तम वाणी और (प्र-मतिः) उत्तम बुद्धि धारण करता है।

त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि।
उतेदृशे यथा वयम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्यवत् शत्रु को हनन करने हारे राजन्! (त्वम्) तु (एकस्य) एक का (उत) और (द्वयोः) दोनों का भी (अविता असि) रक्षक हो (उत) और (ईदृशे) ऐसे अवसर पर भी रक्षक हो (यथा) जैसे (वयम्) हम तुम्हारे रक्षक होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः॥

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः।
नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू प्रजाजन को (द्विषः अति नयसि) शत्रुओं तथा संकटों से भी पार पहुँचाता है। तू (द्विषः उक्थ-शंसिनः कृणोषि) द्वेषयुक्त जनों को भी उत्तम वचन कहने वाला बनाता है। गुणों से मुग्ध होकर शत्रु भी तेरी स्तुति करें। तू (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (सु-वीरः) उत्तम वीर और विविध विद्याओं का उपदेष्टा (उच्यसे) कहा जाता है।

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्।
गां न दोहसे हुवे॥ ७॥

भा०—(दोहसे गां न) दूध दोहने के लिये जिस प्रकार गौ को प्रेम से बुलाते हैं उसी प्रकार मैं (ब्रह्म-वाहसं) वेद ज्ञान को धारण करने वाले (ऋग्मियं) ऋचाओं के वेत्ता, स्तुतियों के योग्य पात्र, (सखायं) सबके मित्र रूप, (ब्रह्माणं) बड़े वेदज्ञ विद्वान् पुरुष को (दोहसे) ज्ञान रस प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदर से बुलाऊं।

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता।
वीरस्य पृतनासहः॥ ८॥

भा०—(यस्य) जिस (वीरस्य) विविध विद्या के उपदेष्टा तथा विविध प्रजाओं के आज्ञापक (पृतनासहः) शत्रुओं को पराजय करने वाले वीर के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नि ऊचुः) बतलाते हैं (तस्य द्विता) उस पुरुष के प्रति माता पिता और गुरु दोनों प्रकार का भाव रहे।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ रघु०॥

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते।
वृह माया अनानत॥ ९॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रधर! हे (शचीपते) शक्ति, वाणी के पालक! हे (अनानत) शत्रुजन के आगे कभी न झुकने हारे! तू (जनानां)

शत्रु लोगों को (दृढानि) दृढ़ दुर्गों और सैन्यों को तथा (मायाः) छल कपट के व्यवहारों को भी (वि वृह) उन्मूलन कर।

तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते।
अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (सत्य) सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ, सत्यभाषण आदि व्यवहार करने हारे! हे (सोमपाः) ओषधिरस का पान करने वाले, ऐश्वर्य, राष्ट्र प्रजा को प्रजा वा शिष्यवत् पालन करने वाले! हे (वाजानां पते) बलों, ज्ञानों, अन्नों और संग्रामों के पालक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हम लोग (श्रवस्यवः) यश, अन्न, उपदेश आदि के इच्छुक जन (त्वा तम् उ) उस तुझको ही (अहूमहि) पुकारते हैं, तुझसे विनय करते, तेरी स्तुति करते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने।
हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो तू (पुरा) पहले भी (हव्यः आसिथ) स्तुति योग्य रहा, (यः वा) और जो तू (नूनं) अब भी (हिते धने) हितकारी धन, ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर भी (हव्यः) प्रजाओं के स्तुतियोग्य है (सः) वह तू (हवं श्रुधि) हमारी स्तुति प्रार्थना को सुन।

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्।
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (धीभिः) उत्तम कर्मों और बुद्धियों द्वारा (अर्वद्भिः) अपने शत्रुनाशक वीरपुरुषों और अश्वों से (अर्वतः) शत्रु के वीरों, अश्वों तथा (श्रवाय्यान्) अति प्रसिद्ध, (वाजान्) संग्रामों और ऐश्वर्यों को तथा (हितं धनम्) हितकारी धन को (जेष्म) विजय करें।

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते।
भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वीर) वीर पुरुष! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (हिते धने) हितकारी, सुखजनक धन प्राप्त करने के निमित्त (भरे) संग्राम और प्रजा के भरण पोषण के कार्य में (वितन्तसाय्यः) सबका विजय करने हारा है।

या तं ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति।
तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्डित करने वाले! (या) जो (ते) तेरी (मक्षू जवस्तमा ऊतिः) अति वेग युक्त, गति, रक्षण, ज्ञान क्रिया (असति) है (तया) उससे तू (नः) हमारे (रथम्) रथ के तुल्य सर्व सुखद राष्ट्र को (हिनुहि) प्रेरित कर।

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना।
जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (जिष्णो) विजय करने हारे! तू (रथीतमः) सर्वश्रेष्ठ महारथी होकर (अस्माकेन) हमारे (अभि-युग्वना) शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ (रथेन) रथ सैन्य से (हितं धनं जेषि) सुखकर धन को उत्तम रीति से प्राप्त कर। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो (एकः इत्) अकेला ही अन्य की बिना सहायता के (कृष्टीनां विचर्षणिः) कृषियों को देखने वाले किसान के समान (कृष्टीनां) समस्त प्रजाओं का विशेष देखने वाला, उनको विविध प्रकार से आकर्षण करने वाला होकर (वृष-क्रतुः) बलवती प्रज्ञा और बलयुक्त कर्म वाला, (पतिः) सबका पालक (जज्ञे) प्रकट वा प्रसिद्ध हो (तम् उ स्तुहि) तू उसकी स्तुति कर।

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा।
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (गृणताम् इत्) अन्यों का उपदेश करने वाले विद्वानों तथा स्तुतिशील पुरुषों का (आपिः इत्) वास्तव बन्धु (आसिथ) हो और (ऊती) उत्तम रक्षा और ज्ञान से (शिवः) कल्याणकारक (सखा) परम मित्र हो (सः) वह (त्वं) आप (नः मृडय) हमें सुखी करो।

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः।
सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) वज्र अर्थात् शस्त्र वा शत्रु के वर्जन करने वाले बलों से युक्त पुरुषों के स्वामिन् ! तू (रक्षो-हत्याय) दुष्ट पुरुषों के नाश करने के लिये (गभस्त्योः) बाहुओं में (वज्रं धिष्व) शस्त्रवत् वज्र वीर्य को धारण कर और (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को (अभि सासहिष्ठाः) मुकाबले पर पराजित कर।

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्।
ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥

भा०—मैं (रयीणां युजं) धनों, बलों के दाता, (प्रत्नं) पुराने, वृद्ध, (सखायं) मित्र, (कीरि-चोदनम्) विद्यार्थियों, स्तुतिकर्त्ताओं को उपदेश करने वाले (ब्रह्मवाहः-तमम्) उत्तम वेद विज्ञान वा धन को धारण एवं प्राप्त कराने वाले आपकी (हुवे) आदरपूर्वक प्रार्थना करूं।

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह ही (एकः) अकेला, अद्वितीय, (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवी के (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पत्यते) प्राप्त होता और उन पर स्वामित्व करता है और वही (गिर्वणः-तमः) सबसे अधिक प्रशंसनीय और (अध्रि-गुः) बेरोक जाने वाला तथा सत्य गति वाला होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स नो॑ नि॒युद्भि॒रा पृ॑ण॒ कामं॒ वाजे॑भिर॒श्विभिः॑ ।
गोम॑द्भि॒र्गोप॑ते धृ॒षत् ॥ २१ ॥

भा०—हे (गोपते) वाणियों के पालक विद्वन् ! पृथ्वी पालक राजन् ! इन्द्रिय-पालक जितेन्द्रिय ! गवादि पशु पालक वैश्य वर्ग ! तुम (धृषत्) प्रगल्भ होकर (नियुद्भिः) अधीन नियुक्त अश्वादि सैन्यों (वाजेभिः) बलों, वीर्यों, संग्रामों और ज्ञान अन्नादि से और (अश्विभिः) बलवान् वीरों से (गोमद्भिः) वाणी, भूमि के स्वामी विद्वानों और भूमि वालों से (सः) वह तू (नः) हमारे (कामम् आपृण) मनोरथ पूर्ण कर ।

तद्वो॑ गाय सु॒ते सचा॑ पुरुहू॒ताय॒ सत्व॑ने ।
शं यद् गवे॒ न शा॒किने॑ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः सुते) आप लोगों के उत्पन्न इस जगत् में वा अन्न, धन, पुत्र, ऐश्वर्यादि प्राप्त होने पर आप (सचा) सब एक साथ मिलकर (तत्) उस (सत्वने) सत्ववान्, बलवान्, शुद्ध अन्तः-करण वाले (पुरुहूताय) बहुतों से प्रशंसित, (गवे न शाकिने) बड़े बैल के समान शक्तिमान् सर्वव्यापक, ज्ञानी की (गाय) स्तुति करो । (यत्) जो (शं) तुम्हें शान्ति प्रदान करे ।

न घा॒ वसु॒र्नि य॑मते दा॒नं वाज॑स्य॒ गोम॑तः ।
यत्सी॒मुप॒ श्रव॒द् गिरः॑ ॥ २३ ॥

भा०—(यत् वसुः) जो गुरु के अधीन अन्तेवासी होकर (सीम्) सबसे (गिरः उप श्रवत्) वेदवाणियों का श्रवण करे वह (गोमतः वाजस्य) वाणी युक्त ज्ञान का (दानं न घ नि यमते) शिष्यों को देना न रोके, प्रत्युत ज्ञान दिया करे । इसी प्रकार (यत् सीम् गिरः उपश्रवत्) जो राजा वा ऐश्वर्यवान् पुरुष उत्तम स्तुतियां सुने वह (वसुः) प्रजा का बसाने हारा, (गोमतः वाजस्य दानं न घ नि यमते) उत्तम सत्कार योग्य वाणी से युक्त ऐश्वर्य के दान को न रोके ।

कुवित्संस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।

शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (दस्युहा) दुष्ट पुरुषों का नाशक प्रबल राजा (कुवित्सस्य) बहुत से विवेकपूर्वक धन विभाग वा न्याय करने वाले विवेकी पुरुष के (गोमन्तं व्रजं) वाणी से युक्त उत्तम मार्ग को (प्र गमत्) अच्छी प्रकार जाता है वह ही (नः) हमारे (शचीभिः) उत्तम वाणियों, प्रज्ञाओं, शक्तियों से (अप वरत्) कष्ट दूर करे ।

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।

इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने वत्स को देख कर हंभारती हैं उसी प्रकार हे (शतक्रतो) अनन्त प्रज्ञाओं से सम्पन्न ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः मातरः) ये उत्तम ज्ञान करने वाले (गिरः) उत्तम २ उपदेष्टाजन, वा उनकी वाणियां (त्वा उ अभि प्र नोनवुः) तेरी ही स्तुति करती हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।

अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥

भा०—हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेष्टः ! विद्वन् ! और हे विविध प्रकारों से शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष ! (तव सख्यं) तेरी मित्रता (दूनाशं) नाश न होने वाली हो । तू (गव्यते गौः असि) गौ, भूमि, उत्तम वाणी चाहने वाले के लिये गौ, भूमि, वाणियों के समान पुष्टिकारक अन्न और आह्लाद देने वाला हो और (अश्वायते अश्वः भव) वेगवान् अश्व आदि चाहने वाले के लिये तू स्वयं अश्व के समान संकट पार करने में समर्थ हो ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।

न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (सः) वह आप (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (तन्वा) शरीर से (अन्धसः मन्दस्व) अन्न के द्वारा अति प्रसन्न रह और अन्यों को भी (तन्वा अन्धसः मन्दस्व) देह के निमित्त अन्न से ही तृप्त कर। (स्तोतारं) उत्तम ज्ञानोपदेष्टा पुरुष को (निदे न करः) निन्दक पुरुष के अधीन मत कर।

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः।
वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) विद्यायुक्त वाणियों से प्रशंसनीय, एवं उनको ने हारे विद्वन्! राजन्! प्रभो! (धेनवः गावः वत्सं न) गौएं जैसे बछड़े को प्रेम से प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (इमाः गिरः) ये वाणियें (सुते-सुते) जब २ और जहां भी जगत् उत्पन्न होता है वहां, वा प्रत्येक ऐश्वर्य के उत्पन्न होने पर (त्वा उ नक्षन्ते) तुझे ही प्राप्त होती हैं। तू ही स्तुतियों और विद्याओं का भाजन है।

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि।
वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (वाजेभिः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और बलों द्वारा (वाजयताम्) बल, ऐश्वर्य, ज्ञानों की प्राप्ति के इच्छुक (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत से विद्वान् पुरुषों के (विवाचि) विविध प्रकार के वाग् व्यपार होने के अवसर में (गिरः त्वा नक्षन्ते) नाना वाणियां तुझे प्राप्त हों।

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः।
अस्मान्राये महे हिनु ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! विद्वन्! (अस्माकम्) हमारा (वाहिष्ठः) उत्तम कार्य वहन करने में समर्थ, (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अन्तमः) तेरे समीपतम होकर (ते भूतु) तेरी वृद्धि के लिये हो। इसी प्रकार (ते स्तोमः अस्माकम् अन्तमः वाहिष्ठः भूतु) तेरा

स्तुति योग्य उपदेश, बल आदि द्वारा हमारे अति निकटतम उन्नतिप्रापक हो। तू (अस्मान्) हमें (महे राये हिनु) बड़े भारी ऐश्वर्य वृद्धि के लिये आगे बढ़ा।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्।
उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥

भा०—(पणीनां) विद्वान् पुरुषों के बीच (बृबुः) संशयों का उच्छेदक विद्वान् और (पणीनां) व्यवहारज्ञ व्यापारी पुरुषों के बीच (बृबुः) काट २ कर नये २ पदार्थ बनाने वाला शिल्पी तथा शत्रु उच्छेदक वीर पुरुष (गाङ्ग्यः कक्षः न) वेगवती नदी के तट के समान (वर्षिष्ठे मूर्धन्) दान-शील, सर्वोच्च, महान्, शिरोवत् उन्नत पद पर (उरुः) महान् होकर (अधि अस्थात्) प्रतिष्ठित हो।

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी।
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (यस्य) जिसकी (सहस्रिणी) सहस्रों ऐश्वर्य युक्त सुखों वाली (भद्रा रातिः) कल्याणमय दान क्रिया (वायोः इव) वायु की शीतल धारा के समान (सद्यः) अति शीघ्र (दानाय) दान देने के लिये (मंहते) बढ़ती है [(सः उरुः मूर्धन् अधि स्थात्) वह दुःख संकट काटने वाला महापुरुष सबके शिर पर विराजता है।]

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥ २६ ॥

भा०—(तत् वः) वह हमारा (अर्यः) उत्तम स्वामी होने योग्य है जिस (बृबुं) शत्रुनाशक, संशय, संकट काटने वाले (सहस्रदातमं) हजारों के देने वाले और (सहस्र-सातमं) सहस्रों के विभाग करने वाले को (विश्वे कारवः सदा आगृणन्ति) समस्त विद्वान् जन नित्य आदर से स्तुति करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[४६]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रः प्रगाथं वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ५,७ स्वराडनुष्टुप् । २ स्वराड्बृहती । ३,४ भुरिग्बृहती । ८,९ विराड्बृहती । ११ निचृद्बृहती । १३ बृहती । ६ ब्राह्मी गायत्री । १० पंक्तिः । १२, १४ विराट् पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (कारवः) विद्वान् और शिल्पीजन, (वाजस्य साता) धन और बल के प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हि हवामहे) तुझको आदर से पुकारते तेरा आश्रय लेते हैं । (वृत्रेषु) विघ्नकारी शत्रुओं के बीच (सत्पतिं त्वाम्) सत्पुरुषों के पालक तुझको पुकारते हैं और (नरः) नायक पुरुष (अर्वतः काष्ठासु) अश्वों को दिशाओं में दूर देशों तक पहुँचाने के लिये सारथि के समान अध्यक्ष तुझको ही प्राप्त करें ।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रबल को अपने हाथ अर्थात् वश में रखने वाले ! हे (अद्रिवः) मेघ वा पर्वत के समान शस्त्रवर्षी और अचल वीरों के स्वामिन् ! हे (चित्र) आश्चर्यबलयुक्त ! तू (धृष्णुया) प्रगल्भ वाणी से (महः) उत्तम २ (स्तवानः) हमें उपदेश और आदेश करता हुआ (जिग्युषे) विजयशील पुरुष के लिये (वाजं) वेगयुक्त अश्व और पारितोषक रूप से ऐश्वर्यादि के समान (नः) हमें (गाम्) गौ, भूमि, (रथ्यम्) रथ योग्य अश्व को (सत्रा) सदा, सत्य ज्ञान वा न्याय से (संकिर) अच्छी प्रकार हमें दे ।

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (सत्राहा) सब दिनों, वा (सत्राहा) सत्य बल से शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, (विचर्षणिः) विश्व का विविध प्रकार से द्रष्टा है (वयम्) हम (तम्) उसको (इन्द्रं हूमहे) 'इन्द्र' नाम से पुकारते हैं और अपनी रक्षा के लिये पुकारें। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत धनों के स्वामिन्! हे (सहस्र-मुष्क) सहस्रों को पुष्ट करने वाले! असंख्य वीर्यों, बलों से युक्त! तू (समत्सु) संग्रामों के अवसरों पर (नः वृधे भव) हमारी वृद्धि के लिये हो।

बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४ ॥

भा०—(ऋचीषये) हे स्तुति-अनुरूप गुण, कर्म स्वभाव वाले! राजन्! वेद मन्त्रों में बतलाये गुणों के अनुरूप भगवन्! (घृषौ) घर्षण और (मीढे) वर्षणकाल में (वृषभा इव) जिस प्रकार मेघों को विद्युत (बाधते) पीड़ित करता है उसी प्रकार तू भी (घृषौ) परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्धा तथा (मीढे) शत्रु पर निरन्तर बाणवर्षा तथा प्रजा पर निरन्तर ऐश्वर्यों की वर्षा तथा भूमियों पर जल सेचनादि के निमित्त (मन्युना) क्रोध और ज्ञानपूर्वक (वृषभा इव जनान्) मेघ तुल्य शरवर्षी एवं बलवान् सांडों के समान दृढ नरपुंगवों को भी (बाधसे) तू पीड़ित वा दण्डित करने में समर्थ है। हे राजन्! प्रभो! तू (महाधने) बड़े ऐश्वर्य के निमित्त होने वाले संग्राम में (तनूषु) प्रजाओं के शरीरों, (अप्सु) प्राणों और (सूर्ये) सूर्य में क्रम से आत्मा, जीवन और प्रकाश वा प्रताप के तुल्य होकर (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक, ज्ञानदाता होकर हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर, चेता।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (वज्र-हस्त) बल वीर्य को बाहु में धारण करने हारे! हे

(चित्र) आश्चर्यजनक कार्य करने हारे ! हे (सु-शिप्र) सुन्दर मुख, नासिका एवं उत्तम मुकुट धारण करने हारे ! (येन) जिससे तू (इमे) इन दोनों (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर सम्बद्ध राज प्रजावर्ग या स्त्री पुरुषों को (आ प्राः) सब ओर से परिपूर्ण कर सके, तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें वही (ज्येष्ठं) अत्यन्त अधिक, सर्वोत्तम (ओजिष्ठं) अति बलकारी, (पपुरि) नित्य तृप्त और पूर्ण करने वाला, (श्रवः) अन्न और ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (देवेषु) विद्वानों और विजय की कामना वालों के बीच (चर्षणी-सहम्) समस्त मनुष्यों को पराजय करने वाले (उग्रं त्वाम्) बलवान् तुझको (हूमहे) हम पुकारते हैं। (नः) हमें (विथुरा) पीड़ा देने वाले (पिब्दना) पीस कर नष्ट कर देने योग्य, वा न समक्ष में आने वाली, अप्रकट या कूट भाषा बोलने वाले, अपने से भिन्न भाषा-भाषी, (अमित्रान्) शत्रुओं को तू (नः) हमारे लिये (सुसहान् कृधि) सुगमता से विजय करने योग्य कर।

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नाहुषीषु कृष्टिषु) मनुष्य प्रजाओं में (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल, पराक्रम, धनैश्वर्य है और (यत्) जो (पञ्च-क्षितीनां द्युम्नं) पांचों प्रकार की राष्ट्र-प्रजाओं वा भूमियों का तेज और ऐश्वर्य है और (सत्रा) सत्य (विश्वानि पौंस्या) सब प्रकार के पुरुषार्थोपयोगी बल हैं उन सबको (आ भर) तू प्राप्त कर और हमें प्राप्त करा।

यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥ ८ ॥

भा०—(यत् वा कत् च) जो कोई भी (वृष्ण्यम्) बल (तृक्षौ जने) बलवान् मनुष्यों में (द्रुह्यौ वा जने) परस्पर द्रोहशील मनुष्यों, वा (पूरौ वा जने) एक दूसरे का पालन करने वाले पुरुषों में हो, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (तत्) वह बल तू (अमित्रान् तुर्वणे) शत्रुओं को नाश और (नृषाह्ये) मनुष्यों को वश करने के निमित्त और (पृत्सु) संग्रामों के अवसरों पर (अस्मभ्यं) हमें (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! आप (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् धनाढ्यों और (मह्यं च) मेरे लिये भी (त्रि-धातु) तीन धातु, सुवर्ण, रजत, लोह आदि से युक्त (त्रि-वरूथं) तीनों ऋतुओं में वरणीय, तीनों प्रकार के कष्टों के वारक, (स्वस्तिमत्) सुख, मंगलयुक्त (शरणम्) शरण देने वाले, आश्रय योग्य (छर्दिः) घर (प्र यच्छ) प्रदान कर। (एभ्यः) इन प्रजाजनों के हितार्थ (दिद्युम् यावय) ज्ञान, प्रकाश प्राप्त कराओ और दीप्तियुक्त शस्त्रादि दूर करो।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१०॥२८॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों के सेवन करने हारे! (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ये) जो लोग (गव्यता मनसा) भूमि की इच्छा वाले मन से (शत्रुम्) शत्रु को (धृष्णुया) दृढ़ होकर (आ दभुः) विनाश करते और (अभि प्र घ्नन्ति) सब प्रकार से दण्डित करते हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (नः) हम लोगों के तू सदा (तनू-पाः) शरीरों का रक्षक और (अन्तमः) सदा निकटवर्ती (भव) हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवर्धक ! (अध) और तू (नः) हमारे (वृधे) वृद्धि के लिये (भव स्म) सदा यत्नवान् हो और (युधि) युद्धकाल में (यत्) जब कि (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष, आकाश में (पर्णिनः) पंखों से जड़े (तिग्म-मूर्धानः) तीक्ष्ण सिरों से युक्त (दिद्यवः) बाण (पतयन्ति) पड़ रहे हों, वा तेजस्वी अन्तरिक्ष में (पर्णिनः) पक्षियों के समान (दिद्यवः) तीक्ष्ण (तिग्म-मूर्धानः) तीक्ष्ण शिर के टोप पहने, (युधि पतयन्ति) युद्ध में वेग से दौड़ रहे हों तब (नः नायम् अव) हमारे नायक की रक्षा कर ।

यत्र शूरा॑सस्तन्वो॑ वितन्व॒ते प्रि॒या शर्म॑ पितॄणाम् ।
अध॑ स्मा यच्छ त॒न्वे॒३॒ तने॑ च छ॒र्दिर॒चित्तं॑ या॒वय॒ द्वेषः॑ ॥ १२ ॥

भा०—(यत्र) जहां (शूरासः) शूरवीर पुरुष (पितॄणाम्) पालक माता, पिता, गुरुओं के (तन्वः) शरीर के सुख के (प्रिया शर्म) प्रिय गृहादि सुखकारक पदार्थों का (वि तन्वते) विस्तार करते हैं, ऐसे राष्ट्र में हे राजन् ! विद्वन् ! (अध स्म) आप भी हमारे (तन्वे तने) शरीर और पुत्र आदि के निमित्त (छर्दिः यच्छ) गृह प्रदान करो और (अचित्तं द्वेषः यावय) चित्त रहित, निर्दयता वा अज्ञान युक्त, हृदयहीन, अविवेक युक्त, द्वेष को दूर करो ।

यदि॑न्द्र॒ सर्गे॒ अर्व॑तश्चो॒दया॑से म॒हाध॒ने ।
अ॒स॒म॒ने अध्व॑नि वृ॒जि॒ने प॒थि श्ये॒नाँ इ॑व श्रवस्य॒तः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जब (सर्गे) करने वा प्रयाण करने योग्य (महाधने) संग्राम और (असमने) विषम, वा संग्राम से भिन्न अवसर में भी (वृजिने) बलयुक्त सैन्य और (पथि अध्वनि) गमन योग्य मार्ग में (श्येनान् इव) बाजों के समान वेगवान् (श्रवस्यतः) यश के अभिलाषी (अर्वतः) अश्वारोहियों को (चोदयासे) आज्ञा पर चलाता है, वह तू हमें शरण दे ।

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ ॥ २९ ॥

भा०—(प्रवणे सिन्धून् इव) जैसे नीचे देश में नदियां बहती हैं और जिस प्रकार (स्वनि क्रोशम् अनु वयः न) खटका होने पर भय से पक्षिगण भागते हैं, (बाह्वोः गृभीताः गवि आमिषि वयः न) बाहुओं में संकुचित हुए काक आदि पक्षी मृत गौ के मांस पर झपटते हैं उसी प्रकार (आशुया) वेग से युक्त (स्वनि) नायक की आवाज पर (क्रोशम् अनु) कोस २ पर वा शत्रु या मित्र के आह्वान के साथ २ (यतः) जाते हुए (सिन्धून्) वेगवान् अश्वारोही वीरों को (गवि) भूमि विजय के निमित्त (बाह्वोः गृभीताः) रासों को हाथों में पकड़े (ये) जो (आ वर्वृतति) पुनः आक्रमण करते हैं तू उनकी रक्षा कर । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४७]

गर्ग ऋषिः ॥ १—५ सोमः । ६—१९, २०, २१—३१ इन्द्रः । २० लिंगोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः । २६—२८ रथः । २९—३१ दुन्दुभिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, २१, २२, २८ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २६, ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ९, १२, १३, २६, ३१ भुरिक् पंक्तिः । १४, १७ स्वराट् पंक्तिः । २३ आसुरी पंक्तिः । १९ बृहती ॥ २४, २५ विराड्गायत्री ॥ एकत्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतोन्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्य, ओषधि, अन्नादि का उत्तम रस और विद्वज्जन समूह, वा बल (किल) अवश्य (स्वादुः) अन्न के समान स्वाद-युक्त, सुखजनक, (मधुमान्) मधु से युक्त ओषधि रसवत् मधुर और गुणकारी (उत अयं तीव्रः) और तीव्र रस वाले ओषधि रस के समान

वेग से कार्य करने वाला हो। (किल अयं रसवान् उत) और वह निश्चय से रस अर्थात् बलयुक्त भी हो। (उतो नु) और (अस्य पपिवांसम् इन्द्रम्) जैसे ओषधि को पान करने वाले पुरुष को बल की प्रतिस्पर्द्धा में कोई नहीं जीतता, उसी प्रकार (अस्य) इस ऐश्वर्य वा विद्वान्-प्रजामय राष्ट्र के (पपीवांसम्) पालन करने वाले (इन्द्रं) समृद्ध राजा को भी (आहवेषु) युद्धों में (कश्चन) कोई (न सहते) पराजित नहीं कर सके।

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो हन् ॥२॥

भा०—(अयं) यह सोम अर्थात् ऐश्वर्य, बल और विद्वत्समूह देने वाला, (इह) इस राज्य शासन वा लोक में (मदिष्ठः) अति हर्षदायक, तृप्तिकारक (आस) होता है (यस्य) जिसके द्वारा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक, (वृत्र-हत्ये) मेघ विनाशक, सूर्य के तुल्य शत्रु नाश के अवसर में (ममाद) अति प्रसन्न होता है। (यः) जो (शम्बरस्य) मेघ के तुल्य प्रजा सुखों के विनाशक, आच्छादक शत्रु के (नवतिं नव) ९९ प्रकार के (देह्यो च्यौत्ना) बलों और चालों को (वि अहन्) विविध उपायों से नाश करता है।

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥

भा०—ओषधिरस जिस प्रकार (पीतः वाचम् उत् इयर्ति) पान किया जाकर उत्तम वाक्-शक्ति को उत्पन्न करता है और जिस प्रकार ओषधिरस (उशतीम् मनीषाम् अजीगः) कामना करने योग्य, उत्तम प्रजा या बुद्धि को जागृत करता है उसी प्रकार (अयं) यह विद्वज्जन, वा सौम्य प्रजाजन (पीतः) पालित पोषित होकर (वाचम् इत् इयर्ति) वेदमय, ज्ञानवाणी का उपदेश करता है। (उशतीम्) उत्तम कमनीय (मनीषाम्) मति को (अजीगः) अन्यों को प्राप्त कराता और जगाता है और

जैसे ओषधि रस के बल से (धीरः) बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे परे कोई भुवन नहीं उन (षड् ऊर्वीः अमिमीत) छहों विशाल चराचर लोक-सृष्टियों, प्रकृति की विकृतियों को भी जान लेता है वैसे (अयं) यह राजा (धीरः) धैर्यवान् होकर उस विद्वज्जन के द्वारा (षट् ऊर्वीः) उन छः बड़ी, प्रजा संख्याओं या राजप्रकृतियों को भी (अमिमीत) अपने अधीन कर लेता है (याभ्यः आरे) जिनसे परे या निकट (कत् चन भुवनं न) कोई भी लोक नहीं है। षड् उर्वीः—प्रकृति के पांच भूत, पांच विकृति और महत्तत्त्व, अथवा पांच इन्द्रिय, तन्मात्रा और छठा मानस तत्व। राजतन्त्र में—स्वपक्ष की षड् प्रकृतियां स्वामी के अतिरिक्त अमात्यादि, वा षड् गुण, अथवा द्वादश राजचक्र में स्वपक्ष पर-पक्ष के छः छः सुहृदादि।

अ॒यं स यो व॑रि॒माणं॑ पृथि॒व्या व॒र्ष्माणं॑ दि॒वो अकृ॑णोद॒यं सः।
अ॒यं पी॒यूषं॑ ति॒सृषु॑ प्र॒वत्सु॒ सोमो॑ दाधारो॒र्व॑१॒॑न्तरि॑क्षम् ॥ ४ ॥

भा०—सोम तत्व का वर्णन। (अयं सोमः) यह सोम, सबका उत्पादक, सबका प्रेरक पदार्थ या बल है (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमाणं) श्रेष्ठता और बड़प्पन को (अकृणोत्) बनाता है, (अयं सः) यह वह पदार्थ है जो (दिवः वर्ष्माणं) सूर्य वा आकाश के वृष्टि और दृढ़त्व वा समस्त लोकों के नियन्त्रण सामर्थ्य को (अकृणोत्) उत्पन्न करता है। (अयं) यह (तिसृषु) तीनों (प्रवत्सु) ऊपर नीचे की भूमियों में भी (पीयूषं) जल तत्व को और (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष वा जल को वायुवत् (दाधार) धारण करता है।

सोमः—स्वा वै मे एषा तस्मात्सोमो नाम। श० ३।९४।२२॥ श्रीर्वै सोमः। श० ४।१।३९॥ राजा वै सोमः। श० १४।१।३।१२॥ सोमो राजा राजपतिः। तै० २।५।६।३॥ अयं वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः। कौ० ४।४॥ क्षत्रं सोमः। २।३८॥ अन्नं सोमः। कौ० ९।६॥ उत्तमं वा एतत् हविर्यत् सोमः। श० १२।८।२।१२॥ प्राणः सोमः। श० ७।३।१।२॥

रेतः सोमः। कौ० १३।७॥ एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो राजा। ऐ० १।१३॥ सोमो वै ब्राह्मणः। ता० २३।१६।५॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।३।३४॥ इन उद्धरणों से आत्मा, ऐश्वर्य, राजा, विद्वान्, क्षत्रिय, बल, अन्न, प्राण, वीर्य, प्रजा, विद्वान्, सभापति, ब्राह्मण और वीर्यवान् पुरुष ये 'सोम' कहाते हैं।

अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्यामस्तभ्नाद्वृषभो मरुत्वान् ॥५।३०॥

भा०—जैसे (शुक्रसद्मनाम्) जल वा तेज का आश्रय या ओस और प्रकाश रूप फैला देने वाली उषाओं के (अनीके) प्रमुख भाग में (अयम्) यह सूर्य (चित्र-दृशीकम् अर्णः विदत्) आश्चर्य से देखने योग्य जल वा तेज को प्राप्त कराता है वैसे (अयम्) यह तेजस्वी राजा या क्षत्र वर्ग (शुक्र-सद्मनाम्) उत्तम गृह बना कर रहने वाली (उषसाम्) उसको चाहने वा शत्रु को भस्म करने वाली प्रजाओं के (अनीके) प्रमुख भाग वा दल सैन्य में (चित्रं दृशीकम् अर्णः) अद्भुत दर्शनीय तेज को (विदत्) प्राप्त करे और करावे। (अयं) और वह (मरुत्वान्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषों और प्रजा वर्गों का स्वामी, (वृषभः) मेघवत् वा सूर्यवत् ही प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला होकर (महता स्कम्भनेन द्याम्) बड़े भारी थामने वाले बल से सूर्य जैसे आकाश के चन्द्रादि पिण्डों को धारण करता है वैसे (महता स्कम्भनेन) बड़े भारी थामने के बल से (महान्) महान् होकर (द्याम् अस्तभ्नात्) चाहने वाली प्रजा वा पृथिवी को अपने वश करे। (२) इसी प्रकार गृहपति कामना योग्य गृह में बसने वाली दारा के सहयोग में (अर्णः) धन प्राप्त करे। वह बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ और दृढ़ बलवान् होकर (द्याम्) नाना कामना वाली पत्नी को धारण करे। इति त्रिंशो वर्गः॥

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (शूर) शूरवीर ! (धृषत्) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ होकर (वसूनाम् समरे) राष्ट्र में बसे प्रजाजन के संगम स्थान तथा राष्ट्र बसाने वाले अन्य राजाओं के संग्राम में (वृत्रहा) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रु का नाशक होकर (कलशे) पात्र में रक्खे जल के समान राष्ट्र में विद्यमान (सोमम्) सर्व शासकपद तथा ऐश्वर्य को (पिब) पान, उपभोग वा पालन कर। सूर्य जिस प्रकार (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न में प्रखर ताप वाला होकर जल सोखता है उसी प्रकार तू भी (सवने) अभिषेक काल वा शासन-कार्य में तीक्ष्ण होकर (आ वृषस्व) सर्वत्र उत्तम प्रबन्ध कर, और (रयिस्थानः) ऐश्वर्य का आश्रय होकर (अस्मासु) हम में भी (रयिम् धेहि) ऐश्वर्य स्थापन कर।

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमें (पुरः एता इव) अग्रगामी नायक के समान (प्र पश्य) अच्छी प्रकार देख, हमारे सुख दुःख का विचार कर। (नः) हमें (वस्यः) श्रेष्ठ धन (प्रतरं) दुःखों से पार करने वाला (अच्छ प्र नय) अच्छी प्रकार हमें दे। तू (सुपारः) उत्तम पूर्ण और पालन करने हारा होकर (अति पारयः भव) संकटों से पार करने वाला हो। तू (नः) हमारे (सु-नीतिः) उत्तम सुखकारक नीति वाला और (वाम-नीतिः) सुन्दर नीति वाला (भव) हो।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (उरु) बड़े भारी (लोकं) उत्तम लोक, अभ्युदय और ज्ञानमय प्रकाश को (अनु नेषि) प्राप्त करा। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (स्ववंत्) सुखयुक्त (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश और (स्वस्ति) सुख कल्याण (अनु

नेषि) प्राप्त करा। हे राजन्! हम लोग (ते) तुझ (स्थविरस्य) वृद्ध, अनुभवी की (ऋष्वा) बड़े २ (बाहू) बाहुओं को (बृहन्ता) बड़े (शरणा) शरणदायक आश्रयवत् (उपस्थेयाम) प्राप्त करें।

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः॥ ९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अन्न के देने हारे! तू (वरिष्ठे) बहुत बड़े और अति उत्तम (बन्धुरे) प्रेमयुक्त बन्धन में (नः आ धाः) हमें रख और उत्तम प्रबन्धयुक्त राष्ट्र में हमें स्थापित कर और (वहिष्ठयोः) खूब सुख से वहन करने में समर्थ (अश्वयोः) दो घोड़ों के आश्रय पर जिस प्रकार रथ को सुख से ले जाते हैं उसी प्रकार (वहिष्ठयोः) राज्य कार्य-भार को वहन करने वाले दो उत्तम पुरुषों के आश्रय पर हे (शतावन्) सैकड़ों ऐश्वर्यों व सैकड़ों वीरों के स्वामिन्! शतक्रतो! शतपते! (इषां) सेनाओं में से (वर्षिष्ठाम् इषम्) खूब शरवर्षा करने वाली बहुत बड़ी सेना को (आ वक्षि) धारण कर और (इषां वर्षिष्ठाम् इषम्) अन्नों के बीच में से बहुत बढ़े हुए अन्न सम्पदा को हमें प्रदान कर। हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (अर्यः) स्वामी (नः रायः) हमारे धनों को (मा तारीत्) विनष्ट न कर।

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्॥ १०॥ ३१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सुखों के देने हारे! प्रभो! तू (मह्यं मृड) मुझे सुखी कर, (मह्यं जीवातुम् इच्छ) मेरे दीर्घ जीवन की इच्छा कर। (मह्यं धियं धारां च) बुद्धि और वाणी दोनों को (अयसः धाराम् न) लोहे की बनी शस्त्र धारा के समान तीक्ष्ण बनाकर (चोदय) सन्मार्ग में चला। (अहं) मैं (त्वायुः) तेरी कामना करता हुआ (यत् किं च इदं वदामि) यह जो कुछ भी कहूँ (तत् जुषस्व) उसे तू स्वीकार कर और

(मा) मुझे (देववन्तं) उत्तम गुणवान्, उत्तम मनुष्यों का स्वामी (कृधि) कर। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥

भा०—मैं प्रजाजन (त्रातारम्) त्राण करने वाले, (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान्, (अवितारम् इन्द्रम्) ज्ञान, रक्षादि देने वाले, अविद्या आदि दोषों के नाशक, (शूरम्) शत्रुहिंसक, (इन्द्रम्) सेना के स्वामी, (सु-हवं) उत्तम नाम वाले, उत्तम संग्रामकारी पुरुष को (हवे-हवे) प्रति यज्ञ और संग्राम में (ह्वयामि) पुकारता हूँ और (शक्रं) शक्तिशाली (पुरु-हूतं) बहुतों से आह्वान करने योग्य (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शुभ गुणधारी पुरुष को मैं 'इन्द्र' नाम से कहता हूँ और (मघवा) उत्तम धनवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यप्रद पुरुष (नः स्वस्ति धातु) हमें कल्याण, सुख दे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य दाता, दुष्टों का विदारक, राजा, सेनापति (सु-त्रामा) प्रजा का सुख से, उत्तम रीति से पालन करने वाला, (स्व-वान्) अपने बन्धु भृत्यादि और नाना धनों का स्वामी (सु-मृडीकः) उत्तम सुखप्रद, कृपालु, (अवोभिः) उत्तम रक्षा साधनों, ज्ञानों और तृप्तिकारक अन्नों से (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों और धनों को प्राप्त करने वाला (भवतु) हो। वह (द्वेषः बाधतां) द्वेष करने वाले शत्रुओं को पीड़ित करे और (अभयं कृणोतु) भय से रहित करे। जिससे हम (सु-वीर्यस्य चतयः) उत्तम बल वीर्य के स्वामी हों।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥१३॥

भा०—(वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) दान सत्कार,

मान पूजा आदि के योग्य पुरुष के (सु-मतौ) शुभ बुद्धि और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) उत्तम मनन और ज्ञानयुक्त व्यवहार के (अपि स्याम) अधीन रहें। (सः) वह (सु-त्रामा) सुखपूर्वक प्रजा के रक्षक (स्ववान्) धन, भृत्य आदि वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे द्वेषः) हमारे से द्वेष करने वालों को (आरात् चित्) दूर से ही (सनुतः) सदा, (युयोतु) दूर करे।

अव त्वे ईन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ऊर्मिः प्रवतः न) जल राशि, या जल स्रोत, वा जल-तरंग जैसे नीचे प्रदेशों की ओर जाते हैं उसी प्रकार (गिरः) स्तुतिकर्त्ताओं की वाणियां और विद्वान् जन (ब्रह्माणि) समस्त वेद और धनैश्वर्य (नि-युतः) लक्षों की संख्या में वा युद्ध करने वाले नियुक्त अश्वादि जन, (त्वे) तेरे अधीन (अव धवन्ते) चलते हैं, तुझे पति स्वीकार करते हैं। तू भी हे (वज्रिन्) बलवन्! तू (पुरूणि सवनानि) बहुत ऐश्वर्यों को (ऊरू राधः न) बहुत धन के समान और (अपः) आप्त प्रजाजनों को (गाः) भूमियों, उत्तम वाणियों और (इन्दून्) आह्लादक दयालु पुरुषों को भी (सं युवसे) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है।

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत्।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥३२॥

भा०—(यत्) जो (मघवा) ऐश्वर्य का स्वामी (उग्रम् इत्) उग्र, बलवान्, समर्थ पुरुष को ही (विश्वहा) सदा (अवेत्) प्राप्त करे और जैसे (पादौ प्रहरन् इव) पैरों को चलाता हुआ पुरुष (पूर्वम् अपरं अन्यम्-अन्यम् कृणोति) पहले पैर को पीछे और दूसरे को आगे करता है उसी प्रकार जो (शचीभिः) अपनी बुद्धियों, शक्तियों, वाणियों द्वारा पूर्व पदाधिकारी को पद से च्युत और अनियुक्त पुरुष को पद पर नियुक्त करता,

अथवा सैन्य सञ्चालन करते हुए आगे के भटों को पीछे और पीछे वालों को आगे करता है, (कः ईं स्तवत्) उसको कौन वर्णन या उपदेश करे, (कः पृणात्) उसको कौन प्रसन्न वा पूर्ण करे और उसका (कः यजाते) कौन सदा साथ दे सकता है ? यह वह जाने । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥

भा०—(वीरः) वीर पुरुष (उग्रम् उग्रम्) प्रत्येक उग्र, तेजस्वी पुरुष को (दमायन्) दमन करता हुआ और (अन्यम् अन्यम्) नाना व्यक्तियों को (अति नेनीयमानः) एक दूसरे से बढ़ाता हुआ, (एधमान-द्विट्) बढ़ते हुए, प्रतिस्पर्धी शत्रु से द्वेष करता हुआ (उभयस्य राजा) शासक, शास्य दोनों के बीच चमकता हुआ, दोनों का राजा होकर (विशः) अपने शासन में बसे (मनुष्यान्) मनुष्यों को वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यप्रद पुरुष (चोष्कूयते) बुलाता है, उन पर शासन करता है ।

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, अन्यों को वृत्ति आदि देकर पालने वाला, राजा (पूर्वेषां) पूर्व विद्यमान अनुभवी लोगों के (सख्या) सख्य मित्रता के बल से वह (अनानुभूतीः) अपनी अनुभवशून्यताओं, वा अज्ञात बातों को (वितर्तुराणः) विविध प्रकार से विनाश करता हुआ (परा-वृणक्ति) दूर करता है और (अपरेभिः) अन्य नाना पुरुषों (अनानुभूतीः) अनुभवरहित, असहृदय जनों को (अव-धून्वानः) दूर करता हुआ (एति) आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह सूर्य के समान (पूर्वीः शरदः) पूर्व आयु के वर्षों को (तर्तरीति) व्यतीत करे।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥

भा०—राजा और जीवात्मा का वर्णन। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप अर्थात् प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का (प्रति रूपं) प्रतिनिधि (बभूव) हो। (अस्य) इस राजा का (तत्) वह रूप (प्रति-चक्षणाय) प्रत्यक्ष में देखने और कहने के लिये है। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्य-वान् पुरुष (मायाभिः) नाना बुद्धियों, नाना शक्तियों से (पुरु-रूपः ईयते) बहुत प्रकार का जाना जाता है। क्योंकि (अस्य) इसके अधीन (शता दश) हजारों (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) नियुक्त रहते हैं। इसी प्रकार (२) (इन्द्रः) जीवात्मा विद्युत के समान (रूपं-रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक प्राणी के रूप में तदाकार होकर विराजता है। (तत् अस्य रूपं प्रति चक्षणाय) उसका वह रूप सबको प्रकट नहीं है, वह गुरु द्वारा कथन करने और अध्यात्म दृष्टि से देखने योग्य है। वह जीवात्मा (मायाभिः) नाना बुद्धियों, संकल्पों से ही (पुरु-रूपः ईयते) नाना रूप का जाना जाता है। (अस्य) इसके शासन में, देह में ही (दश शता हरयः) दस सैकड़ों प्राणगण, अश्वों वा भृत्यों के समान (युक्ताः) जुड़ कर ज्ञानतन्तु, तथा शक्तितन्तुओं के रूप में काम करते हैं।

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥

भा०—जैसे (रथे) रथ में (हरिता) वेग से जाने वाले अश्वों को (युजानः) लगाता हुआ रथी विराजता है उसी प्रकार राजा (रथे) रमणीय, राष्ट्र में (हरिता) कार्यभार उठाने में समर्थ संचालकों को (युजानः) नियुक्त करता हुआ (त्वष्टा) सूर्य के समान तेजस्वी (इह) इस लोक में (भूरि राजति) बहुत प्रकाशित होता है। (कः) कौन अतेजस्वी पुरुष (विश्वाहा) सब दिनों (द्विषतः पक्षः) शत्रु को सन्तप्त करने हारा होकर (आसते) विराज सकता है। (उत) और (आसीनेषु सूरिषु) विद्वानों के विराजते हुए उनके बीच कौन तेजस्वी सिंहासन पर विराज सकता है।

(२) इसी प्रकार (त्वष्टा) अति सूक्ष्म, कर्त्ता जीव (रथे) इस देह में (हरिता) विषयों का ग्रहण करने वाले इन्द्रियों को (युजानः) जोड़ता हुआ, योगी आत्मा (हरिता) प्राण अपान दोनों को दो अश्वों के समान योगद्वारा वश करता हुआ (सूरिषु आसीनेषु) देह के प्रेरक प्राणों के विराजते हुए (द्विषतः पक्षः विराजते) अप्रीतियुक्त द्वन्द्वों का भी ग्रहण करता रहता है।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् २०।३३

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! यह (भूमिः) भूमि (उर्वी सती) बहुत बड़ी होती हुई (अंहू-रणा) आने वाले प्राणियों से रण अर्थात् परस्पर युद्ध और रमण क्रीड़ा आदि करने योग्य (अभूत्) रही है। इस भूमि में हम (अगव्यूति क्षेत्रम्) विना मार्ग के क्षेत्र, निवास भूमि को (आगन्म) प्राप्त हों, हे (बृहस्पते) राष्ट्र के स्वामिन्! तू (गविष्टौ) भूमि के प्राप्त करने पर (प्र चिकित्स) अच्छी प्रकार गुण दोष आदि जान। (इत्था) इस प्रकार (सते जरित्रे) सज्जन विद्वान् पुरुष के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (पन्थाम् प्र चिकित्स) मार्ग का ज्ञान कर। (२) अध्यात्म में—महती प्रकृति तमोमय होने से पापमयी है। जीव देह रूप ऐसे क्षेत्र में आ जाता है जहां उसे जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का मार्ग नहीं मिलता। विद्वान जन मार्ग का उपदेश करे। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (जाः) उत्पन्न हुआ सूर्य (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः कृष्णाः) एक समान काली रात्रियों को (अप असेधत्) दूर करता है और (अन्यम् अर्धं) दूसरे आधे को (असेधत्) प्राप्त करता है

और जिस प्रकार (वृषभः) वर्षा का मूल कारण सूर्य (उद-व्रजे) जल के गमनयोग्य मार्ग आकाश में (वस्रयन्ता) रहना चाहते हुए (वर्चिनं शम्बरं च) तेजोमय मेघ और जल दोनों को (अहन्) आघात करता है उसी प्रकार राजा भी (जाः) प्रकट होकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) एक समान (कृष्णाः) घोर प्रजाकर्षण, प्रजापीड़ाकारिणी शत्रु सेनाओं को (सद्मनः) अपने स्थान से (अप असेधत्) दूर करे और (अन्यम्) दूसरे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र को (असेधत्) प्राप्त करे। वह (वृषभः) बलवान् होकर (उद-व्रजे) जल के मार्ग नदी आदि के तटों पर (वर्चिनं) तेजस्वी (शम्बरं) शान्तिनाशक (वस्रयन्ता) नाना आच्छादन, तथा वस्त्र एवं निवासादि चाहने वाले (दासा) प्रजानाशक शत्रु स्त्री पुरुषों को (अहन्) दण्डित करे।

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (प्र-स्तोकः इत् नु) तेरी उत्तम स्तुति करने वाला प्रजाजन ही (ते) तुझे (राधसः) धनैश्वर्य से पूर्ण (दश कोशयीः) कोशों, खजानों से भरी दस भूमियों और (दश वाजिनः) बल, वेग, अन्न धनादि से युक्त दशों प्रकार के पदार्थों को भी (अदात्) प्रदान करता है। (दिवः-दासात्) ज्ञानप्रकाश और भूमि को तेरे हाथ सौंपने वाले दाता ब्राह्मणवर्ग से प्राप्त (अतिथिग्वस्य) अतिथिवत् पूज्य होकर सम्मानयोग्य वाणी, गौ, भूमि को प्राप्त करने वाले तेरे ही (राधः) धनैश्वर्य को (शाम्बरं वसु) मेघ से बरसे जल के समान समग्र रूप से (प्रति अग्रभीष्म) हम प्राप्त करें। प्रजा राजा को ऐश्वर्य दे। ब्राह्मणवर्ग राजा को पूज्य जान उनके हाथ भूमि ऐसे ही सौंपे जैसे सूर्य मेघ को भूमि देता है। राजा के ऐश्वर्य का प्रजाजन ऐसे ही उपयोग करें जैसे वे मेघ के जल का उपयोग करते हैं।

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥

भा०—मैं (दिवः-दासात्) कामना करने योग्य ज्ञानप्रकाश और भूमि आदि के नाना पदार्थों के देने वाले से (दश अश्वान्) दश अश्व (दश कोषान्) दश कोश (दश अधि-भोजना) दस प्रकार के उत्तम २ भोजन और (वस्त्रा) पहनने के वस्त्र (दशो हिरण्य-पिण्डान्) दस सुवर्णादि के पिण्ड भी (असानिषम्) प्राप्त करूं। (२) अध्यात्म में—'अश्व' इन्द्रियें, दश 'कोश' अन्नमयादि पांच, अन्तःकरणचतुष्ट और आत्मा, इन्द्रियों के दश अर्थ, दशधा वस्त्र दश पिण्ड ।

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः ।

अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥

भा०—(अश्वथः) अश्वों, अश्व सैन्यों का स्वामी, राष्ट्र का भोक्ता राजा (अथर्वभ्यः) अहिंसक राज्य के पालक विद्वान् शासकों के उपयोग के लिये (प्रष्टि-मतः) पूछ कर काम करने के स्वभाव वाले, (दश रथान्) दस रथों, रथ सैन्यों और (शतं च गाः) सौ भूमियां, या सौ बैल या गौवें (पायवे) उत्तम पालक अध्यक्ष के लिये (अदात्) देवे ।

महि राधो विश्वजन्यं दधानान्

भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(सार्ञ्जयः) नाना न्याययुक्त राज्य-कार्यों को करने में समर्थ पुरुषों का अधिपति राजा (विश्वजन्यं) सर्वजनहितकारी (महि राधः) बड़े भारी धन को (दधानान्) धारण करने वाले (भरद् वाजान्) ऐश्वर्य अन्नादि के द्वारा प्रजा का पालन करने में समर्थ ज्ञानी पुरुषों को (अभि अयष्ट) आदर पूर्वक प्रदान करे । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान तेजस्विन् ! सेवनीय ऐश्वर्य के पालक ! वा शत्रुहिंसक सैन्य के स्वामिन् ! राजन् !

विद्वन् ! तू (वीडु-अङ्गः) शरीर और राज्य के सुदृढ़ अंगों वाला, (प्रतरणः) नौकावत् वा रथवत् संकटों से पार उतारने, मार्ग पार कराने वाला (सु-वीरः) उत्तम वीर होकर (अस्मत् सखा भूयाः) हमारा मित्र और हमको अपना मित्र बनाये रखने वाला हो। हे राजन् तू (सन्नद्धः) अच्छी प्रकार तैयार होकर (गोभिः) बाण के फेंकने वाली डोरियों से, (वीडयस्व, वीरयस्व) वीर कर्मकर, शत्रुओं पर बाण फेंक। वा हे राजन् ! तू (संनद्धः) अच्छी प्रकार कस कसाकर, सुसज्जित होकर (गोभिः) उत्तम वाणियों और भूमियों से (वीडयस्व) अपने को अधिक दृढ़ कर। हे विद्वन् ! तू (गोभिः वीडयस्व वि-ईरयस्व) विविध विद्याओं का उपदेश कर। तू (आ-स्थाता असि) अध्यक्ष होकर विराज और (ते) तेरे अधीन सैन्य वर्ग (जेत्वानि जयतु) विजय करने योग्य शत्रु सैन्यों को विजय करे।

दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ पर्याभृ॑तं॒ सहः॑।
अ॒पामो॒ज्मानं॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ।२७

भा०—(दिवः) सूर्य वा आकाश और (पृथिव्याः) पृथिवी से (परि उद्भृतं ओजः) प्राप्त, उत्पन्न तेज और अन्न तथा (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों से (परि आभृतं) प्राप्त (सहः) उत्तम बल को हे राजन् ! तू (यज) एकत्र प्राप्त कर और (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) आच्छादित (अपाम् ओज्मानं) जलों के बल रूप (वज्रं) विद्युत रूप तेज और (रथं) उत्तम यानादि को भी (हविषा) उत्तम ग्रहण करने के साधनों द्वारा (यज) सुसंगत कर। हे राजन् ! तू (हविषा) अन्न, आदि के बल पर (इन्द्रस्य वज्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा के शस्त्रबल और (रथं) रथ या नाभि को जो (गोभिः परि आवृतम्) भूमियों से घिरा हो, जिसके अधीन नाना देश हों उनको (यज) प्राप्त कर। राजा का बल कैसा हो—(दिवः परि आभृतम्) सूर्य से निकले तेज के समान तेजस्वी पुरुष वर्ग से प्राप्त (ओजः) पराक्रम रूप हो और जो (पृथिव्याः परि उद्भृतं) भूमि से उत्पन्न अन्न के समान परिपोषक, प्रजा बल और (वन-

स्पतिभ्यः परि आभृतम्) बड़े वृक्षों के समान प्रजा के पालक शत्रु हिंसक, सैन्य के पालक नायकों द्वारा एकत्र किया गया (सहः) शत्रु पराजयकारी बल है, उसको और (अपाम् ओज्मानम्) आप्त प्रजा वर्गों के पराक्रम को भी (यज) एकत्र संगत कर।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑ ।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥२८॥

भा०—इन्द्र का वज्र। हे (देव) विजय के इच्छुक! हे (रथ) रम्यस्वभाव! वा रथवत् राष्ट्र के प्रजापालन को अपने कन्धों लेकर चलने हारे राजन्! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र का (वज्रः) पराक्रम रूप है! तू (मरुताम् अनीकम्) समस्त मनुष्यों का सैन्यवत् प्रमुख, बलशाली है। तू (मित्रस्य गर्भः) मित्र राजवर्ग के मध्य में स्थित उनको वश करने वाला है, तू (वरुणस्य नाभिः) श्रेष्ठ पुरुष वर्ग का 'नाभि' उनके बीच केन्द्र के समान अपने से सम्बद्ध करने वाला है। (सः) वह तू (नः) हमारी (इमां) इस (हव्य-दातिम्) ग्रहण योग्य भेंट आदि को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हव्या) ग्राह्य पदार्थों को (प्रति गृभाय) ग्रहण कर।

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त् ।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥ २९ ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) द्वन्द्व युद्ध में अधिक प्रकाशित वीर! हे नक्कारे के समान गर्जने हारे! हे वृक्ष को कुठार के समान शत्रु को छिन्न भिन्न करने वाले! हे शत्रुओं के नाशक! तू (पृथिवीम्) भूमिवासी (उत द्याम्) तेजस्विनी, ऐश्वर्यादि को चाहने वाली, व्यापार करने में लगी प्रजा को (उप श्वासय) आश्वासन और उनको प्राणवत् जीवन वृत्ति प्रदान कर। (ते) तेरे अधीन (पुरुत्रा) बहुत प्रकार के (जगत्) गतिशील, नाना जंगम प्राणीगण (वि स्थितं) विविध प्रकार से स्थित होकर (मनुतां) तेरा मान करें। (सः) वह तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक

भूमि पर कृषि अन्न के उत्पादक समृद्ध प्रजावर्ग और (देवैः) विद्वान् पुरुषों से (सजूः) मिलकर उनके सहयोग से (शत्रून्) शत्रुओं को (दूराद् दवीयः) दूर से भी दूर तक (अपसेध) भगा दे।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥३०॥

भा०—हे (दुन्दुभे) नक्कारे के समान गर्जने हारे! तू शत्रुओं को (आ क्रन्दय) ललकार और रुला। तू (नः) हममें (बलं ओजः) बल, पराक्रम (आ धाः) धारण करा और (दुरिता) बुरे व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ तू (निः स्तनिहि) गर्जना कर। (इतः) इस राष्ट्र से तू (दुच्छुनाः) दुःखदायी, दुष्ट कुत्तों के स्वभाव वाले, शत्रुजनों को (अप प्रोथ) दूर मार भगा। तू (इन्द्रस्य) विद्युत् के (मुष्टिः) मुक्के के समान शत्रुसंहारक, वा राष्ट्र का मुष्टिवत् संगठित बल (असि) है। वह तू सदा (वीडयस्व) पराक्रम किया कर।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ।३१।३५।७

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (अमूः) उन दूर की और (इमाः) इन अपनी और पराई सेनाओं को (आ अज) दूर हटा और भेज (प्रति वर्त्तय, आवर्त्तय च) परे लौटा दे और अपनी ओर लौटा ले। पराई सेनाओं को परे कर दे और अपनी सेनाओं को वापस लौटा ले। (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा से युक्त नक्कारा जिस प्रकार गर्जता है उसी प्रकार तू राजा (वावदीति) बराबर अपनी सेनाओं को आज्ञा दे। (नः) हमारे (नरः) नायक जन (अश्व-पर्णाः) अश्वों पर चढ़कर वेग से जाने वाले (सञ्चरन्ति) एक साथ मिलकर गमन करें और (अस्माकं रथिनः) हमारे रथारोही लोग (जयन्तु) विजय प्राप्त करें। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

[४८]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ तृणपाणिकं पृश्निसूक्तं ॥ देवता—१–१० अग्निः । ११, १२,२०,२१ मरुतः । १३–१५ मरुतो लिंगोक्ता देवता वा । १६–१९ पूषा । २२ पृश्निर्द्यावाभूमी वा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १४ बृहती । ३, १९ विराड्बृहती । १०, १२, १७ भुरिग्बृहती । २ आर्चीं जगती । १५ निचृदति जगती । ६, २१ त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ भुरिग नुष्टुप् । २० स्वराडनुष्टुप् । २२ अनुष्टुप् । ११, १६ उष्णिक् । १३, १८ निचृदुष्णिक् ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् जिज्ञासु पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ, परस्पर के सत्संग के अवसर पर (वः) आप लोगों के प्रति (गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे अग्नये) अग्नि के समान सब पापों और पापियों को भस्म करने वाले, क्रियाकुशल, व्यवहारज्ञ स्वामी या प्रभु के (अमृतम्) अविनाशी स्वरूप का (प्र-प्र) निरन्तर वर्णन करें, उत्तम पद के लिये प्रस्ताव करें। हे जिज्ञासु जनो ! मैं भी उसी (जात-वेदसं) समस्त ज्ञानों को जानने वाले सब ऐश्वर्यों के स्वामी को (प्रियं मित्रं न) प्रिय मित्र के तुल्य ही (प्र-प्र शंसिषम्) प्रशंसा करूं।

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हि न) वह निश्चय से (अस्मयुः) हमारा प्रिय स्वामी, (तनूनाम्) हमारे शरीरों का (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो। वह (वृधः भुवत्) हमारा बढ़ाने हारा और (त्राता) पालक भी (भुवत्) हो। हम उस (ऊर्जः नपातम्) बल के पुत्र, बलवान्

पिता के पुत्र, बल को नष्ट न होने देने वाले नायक को प्रस्तुत करके (हव्य-दातये) कर आदि ग्राह्य पदार्थों को देने के लिये तैयार रहें और अपना अंश नियम से उसे (दाशेम) देते रहें।

वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (हि) क्योंकि (वृषा) सुखों का मेघवत् वर्षण करने हारा और (अर्चिषा) विद्युत्वत् कान्ति से (विभासि) प्रकाशित होता है तू (अजरः) कभी जीर्ण न होने वाला, अविनाशी, (महान्) महान्, (अजस्रेण) निरन्तर, अविनाशी, (शोचिषा) तेज से (शोशुचत्) चमकता हुआ हे (शुचे) शुद्ध स्वभाव! (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से हमें (सु-दीदिहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर।

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! आप (महः) बड़े (देवान्) किरणों को सूर्यवत् (यजसि) संगत करते हो, (उत) और (दंसना) नाना कर्मों को भी (यक्षि) संगत करते हो, (तव क्रत्वा) तेरे कर्म सामर्थ्य और बल से (आनुषक्) निरन्तर हम भी मिलकर रहें। तू (सीम्) सब ओर से (अवसे) रक्षा के लिये (देवान् अर्वाचः कृणुहि) बड़े देवों, विद्वानों को प्राप्त करा और (वाजा) नाना ऐश्वर्य (रास्व) प्रदान कर (उत उ) और (वंस्व) न्याय से विभक्त कर।

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आपः) समुद्र के जल, (अद्रयः) मेघ (वना) सूर्य के किरण और काष्ठ (ऋतस्य गर्भम्) तेज को अपने भीतर धारण करने वाले अग्नि को (पिप्रति) अपने में विद्युत्, तेज, ताप आदि के रूप

में धारते हैं और (यः) जो (नृभिः सहसा मथितः जायते) मनुष्यों से बलपूर्वक मथा जाकर प्रकट होता है वह (पृथिव्याः अधि) पृथिवी और (अध सानवि) अन्तरिक्ष के ऊपर भी विराजता है उसी प्रकार (यम्) जिस (ऋतस्य गर्भम्) सत्य न्याय व्यवहार को अपने में धारण करने वाले पुरुष को (आपः) आप्तजन, (अद्रयः) मेघ वा पर्वत तुल्य उदार, अचल, क्षत्रिय वीर पुरुष और (वना) शत्रुहिंसक सैन्यगण, (पिप्रति) जिसको प्रसन्न करते, पूर्ण करते, जिसकी शक्ति को बढ़ाते हैं और (यः) जो (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (मथितः) परस्पर वाद विवाद द्वारा निर्णय पाकर (सहसा) अपने शत्रुविजयी बल से (जायते) प्रकट होता है, वह (पृथिव्याः अधि सानवि) पृथिवी के उच्च पद पर सूर्यवत् विराजता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि। तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषोवृषा ॥६॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (भानुना) सूर्यस्थ प्रकाश से (उभे रोदसी) आकाश, पृथिवी दोनों को (आ पप्रौ) व्यापता है और जो (धूमेन दिवि धावते) धूम से आकाश में जाता है, या जो (दिवि) दूर आकाश में (धूमेन धावते) धूमाकार, नीहारिका रूप से गति करता है और जो (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली रातों में (तमः तिरः) अन्धकार को दूर करके (आ ददृशे) सब ओर दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो (अरुषः) तेजस्वी, शत्रुओं के मर्मों पर आघात करने वाला पुरुष (भानुना) अपने तेज से (उभे रोदसी) अपनी और शत्रु दोनों की सेनाओं वा भूमियों को (आपप्रौ) व्याप लेता है और जो (धूमेन) शत्रु को कंपा देने वाले सामर्थ्य से (दिवि) भूमि पर (धावते) वेग से आक्रमण करता है। (श्यावासु ऊर्म्यासु) श्याम वर्ण की सस्य श्यामला भूमियों में (तमः तिरः) शत्रु दल को अन्धकारवत् दूर करके (वृषा) सूर्यवत् वा मेघवत् (आ) विराजता है, वही (अरुषः) तेजस्वी, रोष रहित (वृषा) बलवान्, राज्य का प्रबन्धक

और सुखों की प्रजा पर वृष्टि करने हारा राजा (श्यावाः) समृद्ध प्रजाओं को (आपप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करता है।

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा। भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि तुल्य तेजस्विन्! जैसे अग्नि (बृहद्भिः अर्चिभिः) बड़ी ज्वालाओं और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध निर्मल प्रकाश से (समिधानः) प्रकाशमान होता है उसी प्रकार हे (देव) तेजस्विन्! दानशील विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (बृहद्भिः) बड़े (अर्चिभिः) अर्चना योग्य गुणों, सहायकों और (शुक्रेण) शुद्ध, निर्मल (शोचिषा) तेज से (भरद्वाजे) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि को धारण करते हुए राष्ट्र वा शिष्यादि में (समिधानः) प्रकाशित होता हुआ विराज। हे (यविष्ठ्य) अति बलशालिन्! हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन्! सदाचारिन्! तू (रेवत्) अन्नादि सम्पन्न होकर (नः दीदिहि) हमें प्रकाशित कर। हे (पावक) अग्निवत् पवित्र करने हारे! तू (द्युमत्) ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर (नः दीदिहि) हमें प्रकाशित कर, हमें तेजस्वी, ज्ञानवान् कर।

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम्। शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! अग्रणी! प्रभो! राजन्! (त्वम्) तू (मानुषीणाम् विश्वासां विशाम्) समस्त मानुष प्रजाओं में (गृहपतिः असि) गृह स्वामीवत् उनके गृहों, घरों व स्त्री पुत्रादि का पालक है। हे (यविष्ठ) अति बलशालिन्! अति तरुण! अति शत्रुहिंसक! (ये च ददति) जो तुझे कर आदि देते हैं उनको और (समेद्धारं) तुझे चमकाने और बढ़ाने वाले प्रजावर्ग को भी (पूर्भिः) उत्तम, पालक, नगर, प्रकोट आदि साधनों से (शतं हिमाः) सौ वर्षों तक, पूर्ण आयु उनकी (अंहसः पाहि) पाप आदि हत्याकारी जन्तु, शत्रु आदि से रक्षा कर।

(स्तोतृभ्यः) उपदेष्टाओं के हितार्थ उनके (समेद्धारं) बढ़ाने वाले को (शतं हिमाः पाहि) सौ बरसों तक पालन कर ।

त्वं न॑श्चित्र ऊ॒त्या वसो॒ राधां॑सि चोदय ।

अ॒स्य रा॒यस्त्वम॑ग्ने र॒थीर॑सि वि॒दा गा॒धं तु॒चे तु नः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजाओं को भूमि पर बसाने वाले राजन् ! सबको बसाने और सबमें बसने वाले प्रभो ! शिष्यादि को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य ! गृहपते ! पितः ! (त्वं) तू (ऊत्या) रक्षा और ज्ञान सामर्थ्य से, (नः राधांसि) हमें नाना ऐश्वर्य (चोदय) प्रदान कर । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक ! तू (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य का (रथीः असि) महारथी के तुल्य स्वामी है । तू (नः तुचे तु) हमारे पुत्रादि के लिये भी (गाधं विदाः) प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और बुद्धि प्राप्त करा और (चोदय) उनको सन्मार्ग में प्रेरित कर ।

पर्षि॑ तो॒कं तन॑यं प॒र्तृभि॒ष्ट्वमद॑ब्धै॒रप्र॑युत्वभिः ।

अग्ने॒ हेळां॑सि दैव्या॑ युयोधि॒ नोऽदे॑वानि॒ ह्वरां॑सि च ॥१०॥२॥

भा०—हे (अग्ने) आगे सन्मार्ग पर ले चलने हारे ! नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (अदब्धैः) अहिंसक दम्भादि वृत्तियों से रहित, (अप्रयुत्वभिः) कभी पृथक् न होने वाले, सदा के संगी, (पर्तृभिः) पालक पुरुषों द्वारा (तनयं तोकं) पुत्र पौत्रवत् प्रजाजन को (पर्षि) पालन और ज्ञान धनादि से पूर्ण कर और (नः) हमारे (दैव्या) विद्वानों के प्रति उत्पन्न हुए (हेडांसि) अनादर और क्रोध आदि के भावों को (च) और (अदेवानि ह्वरांसि) अविद्वानों दुष्टों के योग्य कुटिल कर्मों को (युयोधि) हमसे दूर कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

आ सखायः सबर्दुघां धे॒नुम॑जध्व॒मुप॒ नव्य॑सा॒ वचः॑ ।

सृ॒जध्व॒मन॑पस्फुराम् ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार लोग (सबर्दुघाम् अनपस्फुराम् धेनुम् आ

अजन्ति, आ सृजन्ति) दूध देने वाली, न मारने योग्य गौ को प्राप्त करते हैं और वध बंधन आदि से मुक्त करते हैं, हे (सखायः) स्नेही मित्रो ! आप लोग भी उसी प्रकार (सबर्दुघाम्) ज्ञानरस और सुखदायक अन्न आदि को दोहन करने वाली, (अनपस्फुराम्) नभी नाश न होने वाली, अविनाश्य (धेनुम्) वेदवाणी और भूमि की (नव्यसा) नये और स्तुत्य उपाय, अध्ययनाध्ययन तथा हलाकर्षणादि से (आ अजध्वम्) प्राप्त करो और भूमि को जोतो और उत्तम (वचः आ सृजध्वम्) वचन बोलो । भूमि से (वचः = पचः) परिपक्व अन्न पैदा करो ।

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (या) जो भूमि गौ के समान ही (स्वभानवे) धनैश्वर्य के तेज से स्वयं चमकने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (शर्धाय) बलवान् शरीरादि के धारक, शत्रुहिंसक, (मारुताय) मनुष्यों के स्वामी राजा, वा मनुष्यों के बसे राष्ट्र के लिये (अमृत्यु श्रवः) कभी न मरने वाले, नित्य, मृत्यु से रहित, क्षुधा रूप मृत्यु के नाशक, यश और अन्न को (धुक्षत) प्रदान करती है और (या) जो (मरुतां) मनुष्यों और (तुराणां) क्षिप्रकारी, शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (मृडीके) सुखदायी राजा के अधीन वा सुखकारी कार्य में लगी हो और (या) जो (सुम्नैः) सुखकारी कार्यों से (एव-यावरी) वेगयुक्त अश्वों, उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होती है उस भूमि को प्राप्त करो ।

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! वह पूर्वोक्त वेदवाणी, विदुषी स्त्री और पृथ्वी रूप गौ, (भरद्-वाजाय) ज्ञान ऐश्वर्य को धारण करने वाले के लिये (द्विता) दोनों ही पदार्थ (अव धुक्षत) प्रेमपूर्वक नम्र होकर देती है, एक

तो (विश्वदोहसं धेनुं च) वह समस्त सुख देने वाली वाणी का उपदेश करती है और (विश्वभोजसम् इषं च) समस्त विश्व के पालक, सबके भोजन योग्य अन्न भी देती है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग सुखों के देने और पालन करने वाली दोनों प्रकार की (धेनुं) वाणी और गोवत् भूमि का और (इषं च) इष्टतम अन्न और सेनादि का (अव धुक्षत) दोहन करो और ऐश्वर्यादि प्राप्त करो।

तं व॒ इन्द्रं॒ न सु॒क्रतुं॒ वरु॑णमिव मा॒यिन॑म्।
अ॒र्य॒मणं॒ न म॒न्द्रं सृ॒प्रभो॑जसं॒ विष्णुं॒ न स्तु॑ष आ॒दिशे॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (आदिशे) शासन-कार्य के लिये (इन्द्रं न) विद्युत् के समान (सु-क्रतुं) उत्तम कर्मकुशल, (वरुणम्) सबको आवरण करने में समर्थ, जालिया के तुल्य हिंसकों के नाशक (मायिनम्) प्रज्ञावान्, बुद्धिचतुर, (अर्यमणं न) शत्रुओं वा मनुष्यों को नियम में बांधने वाले, न्यायकारी पुरुष के समान (मन्द्रं) अति स्तुत्य और (विष्णुं न) व्यापक सामर्थ्य वाले प्रभु के समान (सृप्र-भोजसं) प्राप्त शरणागत के रक्षक (तं) उस पुरुष की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ। ऐसे पुरुष को ही राजपद ग्रहण करने का प्रस्ताव करूं।

त्वे॒षं शर्धो॒ न मारु॑तं तुवि॒ष्वण्य॑न॒र्वाणं॑ पू॒षणं॒ सं यथा॑ श॒ता।
सं स॒हस्रा॒ कारि॑षच्चर्ष॒णिभ्य॒ आँ आ॒विर्गू॒ळहा वसू॑ करत्
सु॒वेदा॑ नो॒ वसू॑ करत् ॥ १५ ॥

भा०—(सुवेदाः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (तुविष्वणि) बहुत भारी शब्द करने वाला (त्वेषं) अतिदीप्तियुक्त (शर्धः) शत्रुहिंसक, बलशाली शस्त्र (मारुतं शर्धः न) वायुओं के प्रबल बल के समान घोर शब्दकारी (कारिषत्) बनवाये और वह (अनर्वाणं करत्) अश्वादि से रहित सामान्य प्रजावर्ग को भी राष्ट्र का पोषक (पूषणं) पोषण करने वाला बनावे। (यथा) जिससे, वह (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हित के लिये (शता) सैकड़ों

और (सहस्रा) हजारों (वसू) ऐश्वर्यों को (सम् कारिषत्) संग्रह करे और (सु-वेदाः) उत्तम वैज्ञानिक पुरुष (नः) हमारे लिये सैकड़ों सहस्रों (गूढा वसू) गूढ गुप्त रूप से विद्यमान ऐश्वर्यों की भी (आविः करत्) प्रकट करे।

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे।
अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषण करने हारे ! हे (आ-घृणे) सब ओर से तेजस्विन् ! वा सब प्रकार से दयाशील ! तू (मा आ द्रव) मुझे आदरपूर्वक प्राप्त हो। (उप द्रव) अति समीप आ। (अपि-कर्णे) तेरे कान के समीप (शंसिषम्) तुझे मैं उपदेश करता हूँ। तू (अर्यः) प्रजा का स्वामी होकर (अरातयः) कर न देने वाले उच्छृङ्खलों और अन्य धन न देने वाले दुष्टजनों को (अघाः) दण्डित कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (काकं-वीरम्) काक आदि पक्षियों को पोषण करने वाले (वनस्पतिम्) बड़े वृक्ष के तुल्य (काकं-बीरम्) क्षुद्र, छोटे जनों के पालक पुरुष को (मा उद् वृहः) मत उखाड़, मत काट। (अशस्तीः) अयुक्त वचन बोलने वालों को, बुरी घासों के समान (वि नीनशः हि) अवश्य नष्ट कर। तू (सूरः) प्रजा का शासक, सूर्यवत् तेजस्वी होकर (वेः चन ग्रीवाः आदधते) व्याध लोग जैसे पक्षियों की गरदन पकड़ते और उसे दुःख देते हैं तू (एवा) उस प्रकार (आ चन) हमारी गर्दनें मत पकड़ (उत) और (मा अहः) मत मार।

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम्।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (दधन्वतः) धारण करने वाले, (अच्छि-

द्रस्य) छिद्ररहित (दृतेः) पात्र के समान (दधन्वतः) प्रजा का पोषण, पालन करते हुए (अच्छिद्रस्य) त्रुटिरहित, प्रजा का व्यर्थ छेदन भेदन न करने वाले, (दधन्वतः) अति धनवान्, अति धनुर्धर, भूमि के स्वामी, (दृतेः) शत्रु को विदारण और भयभीत करने वाले की (सख्यम्) मित्रता (अवृकम् अस्तु) भेड़िये के समान छल से युक्त, न हो ।

प॒रो हि मर्त्यै॒रसि॑ स॒मो दे॒वैरु॒त श्रि॒या ।
अ॒भि ख्यः॑ पूषन् पृत॑नासु न॒स्त्वमवा॑ नू॒नं यथा॑ पु॒रा ॥ १९ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पालक ! तू (मर्त्यैः) मनुष्यों सहित (परः) सबका पालक, तृप्तिकारक (असि) है (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी से (देवैः समः असि) विद्वान्, तेजस्वी, व्यवहारवान्, धनाढ्य पुरुषों के समान है । तू (पृतनासु) संग्रामों के अवसरों, मनुष्यों वा सेनाओं के बीच (नः अभि ख्यः) हमें देख और (यथा पुरा) पहले के समान (नूनं) अवश्य (त्वं नः अव) तू हमारी रक्षा कर ।

वा॒मी वा॒मस्य॑ धूतयः॒ प्रणी॑तिरस्तु सू॒नृता॑ ।
दे॒वस्य॑ वा मरुतो॒ मर्त्य॑स्य वेजा॒नस्य॑ प्रयज्यवः ॥ २० ॥

भा०—हे (धूतयः) शत्रुओं को कंपाने, भीतरी दोषों को त्यागने हारे, (प्र-यज्यवः) उत्तम दान, यज्ञ, सत्संग करने वाले, (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वामस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, व्यवहारज्ञ, तेजस्वी, (वा) और (ईजानस्य) यज्ञशील (मर्त्यस्य) मनुष्य की (सूनृता) उत्तम सत्यवाणी और (प्र-नीतिः) उत्तम नीति (वामी अस्तु) सर्व प्रिय हो ।

स॒द्यश्चि॒द्यस्य॑ चर्कृ॒तिः परि॒ द्यां दे॒वो नैति॒ सूर्यः॑ । त्वे॒षं शवो॑
दधिरे॒ नाम॑ य॒ज्ञियं॑ म॒रुतो॑ वृत्र॒हं शवो॒ ज्येष्ठं॑ वृत्र॒हं शवः॑ ॥२१॥

भा०—(द्याम् परि सूर्यः नः) आकाश में जैसे सूर्य उदय होता है वैसे जो (देवः) तेजस्वी, विजिगीषु राजा (द्यां परि एति) भूमि पर विचरता है और (यस्य चित् सद्यः चर्कृतिः) जिसका कर्म सामर्थ्य शीघ्र फल देता

है, वह पुरुष तेजस्वी होता है। उसके अधीन ही (मरुतः) वीर मनुष्य (त्वेषं) अति दीप्तियुक्त (शवः) बल, (वृत्रहं नाम) शत्रु हननकारी नाम और (यज्ञियं) यज्ञ, आत्मत्याग, संगठन के (शत्रः) बल को (दधिरे) धारण करें, क्योंकि (वृत्रहं शवः) विघ्नकारी एवं बढ़ते शत्रु को नाश कर देने वाला बल ही (ज्येष्ठं) सबसे श्रेष्ठ है।

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (द्यौः सकृत् अजायत) सूर्य जिस प्रकार एक बार ही उत्पन्न होता है, (भूमिः सकृत् अजायत) और भूमि भी एक ही वार उत्पन्न होती है। (पृश्न्याः दुग्धं पयः सकृत्) भूमि से दोहन करने योग्य अन्न तथा अन्तरिक्ष से दोहन करने योग्य वृष्टि का जल भी वर्ष में एक ही बार होता है। (अन्यः) दूसरा जो होता भी है वह (न अनु जायते) उसके समान नहीं होता, उससे न्यून गुण ही होता है। उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष एक ही बार अभिषिक्त हो, भूमि भी उसको एक वार ही वर ले। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४९]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, ११ त्रिष्टुप्। ५, ६, ९, १३ निचृत्त्रिष्टुप्। ८, १२ विराट्त्रिष्टुप्। २, १४ स्वराट् पंक्तिः। ७ ब्राह्म्युष्णिक्। १५ अतिजगती। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१॥

भा०—(सु-व्रतं) उत्तम व्रत, धारण करने वाले, उत्तमकर्मा, (जनं) उत्पन्न बालक, शिष्य वा प्रजाजन को (नव्यसीभिः गीर्भिः) नयी से नयी, अति उत्तम विद्याओं वा वाणियों से (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) सुख प्रदान करते हुए स्नेहयुक्त और कुपथ से वारण करने वाले मित्र और वरुण अध्यापक

और उपदेशक, एवं मित्र और वरुण ब्राह्मण और क्षत्रिय जन, दोनों की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, संकटों का वारण करने वाला, (मित्रः) स्नेही वा प्रजा को मरण से बचाने वाला, (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष, तीनों ही (सु-क्षत्रासः) उत्तम, वीर्य, क्षात्रबल और धन से युक्त हैं। (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते इह) वे यहां हमारे प्रार्थना वचन (श्रुवन्तु) श्रवण करें।

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

भा०—(विशः विशः) प्रत्येक प्रजा में (ईड्यम्) स्तुति योग्य, (अध्वरेषु) हिंसारहित, अविनाश योग्य, स्थायी कार्य-व्यवहारों में, (अदृप्त-क्रतुम्) बुद्धि में मोहित न होने वाला, कर्म करने पर गर्व रहित, (युवत्योः) युवा युवती दोनों के बीच (दिवः) अति कमनीय, तेजस्विनी, पुत्र कामना वाली स्त्री और (सहसः) बलवान् पुरुष दोनों के (सुनूम्) पुत्र (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (अरतिम्) विषय में न रमने वाले, जितेन्द्रिय, (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ, परस्पर संगति, लेन देन के व्यवहार के ज्ञापक और (अरुषं) रोष रोहित, सौम्य पुरुष को (यजध्यै) आदर सत्कार करने के लिये उसकी स्तुति करूं।

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥

भा०—(अरुषस्य) जिस प्रकार अति प्रदीप्त सूर्य के (दुहितरा) पुत्र पुत्रियों के समान (विरूपे) एक दूसरे से भिन्न रूप के होकर भी उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः पिपिशे) नक्षत्रों से सुशोभित होती है और (अन्या सूरः) दूसरे को सूर्य प्रकाशित करता है, वे दोनों रात और दिन जिस प्रकार (मिथः-तुरा) परस्पर मिलने को त्वरावान् होते हुए (पावके) अति पवित्र रूप होकर (वि-चरन्ती) विविध रूप में गति करते हुए रहते हैं उसी प्रकार

(अरुषस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञानवान् आचार्य के (दुहितरा) ज्ञान का अच्छी प्रकार दोहन करने वाले, शिष्य शिष्या, (वि-रूपे) भिन्न २ कान्तियों वाले, स्त्री पुरुष हों, उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः) नाना आच्छादक वस्त्रों से (पिपिशे) सजे, (अन्या सूरः) अन्य स्वयं सूर्यवत् तेजस्वी कान्तिमान् हो। वे दोनों (पावके) अति पवित्र आचारवान् होकर (मिथः-तुरा) एक दूसरे से मिलने के लिये अति त्वरावान् अति उत्सुक (वि-चरन्ती) विविध व्रतादि का आचरण करते हुए हों। वे दोनों (ऋच्यमाने) स्तुति योग्य होते हुए (श्रुतं मन्म) श्रवण किये गये, मनन योग्य ज्ञान को (नक्षतः) सदा प्राप्त हों।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥

भा०—(मनीषा वायुम्) जिस प्रकार बुद्धि या मति, चित्त की वृत्ति ज्ञान या चेतनायुक्त आत्मा को प्राप्त होती है उसी प्रकार (बृहती मनीषा) बड़ी, बुद्धिमती, मन की प्रबल इच्छा वाली स्त्री (बृहद्-रयिं) बड़े ऐश्वर्य युक्त, (विश्व-वारं) सब प्रकार से वरण योग्य (रथ-प्राम्) रथ से आने वाले (वायुम्) वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय पुरुष को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र इयक्षसि) प्राप्त हो। हे (प्र-यज्यो) उत्तम सम्बन्ध में बंधने हारे पुरुष! तू (कविः) विद्वान् और (द्युतद्-यामा) चमचमाते रथ वाला, (नियुतः) सब प्रकार से मिलने वाली स्त्री का (पत्यमानः) पति होना चाहता हुआ तू (कविम्) विदुषी, बुद्धिमती स्त्री को (प्र इयक्षसि) अच्छी प्रकार प्राप्त कर। (२) योगी पक्ष में—(बृहती मनीषा) बड़ा ज्ञान, (बृहद्रयिं विश्ववारं रथ-प्राम्) महान् ऐश्वर्य-सर्व वरणीय ब्रह्माण्ड में व्यापक प्रभु को प्राप्त है। हे (प्र-यज्यो) उत्तम ईश्वरोपासक! तू (द्युतद्यामा) यम नियमों द्वारा तेजस्वी होकर (नियुतः पत्यमानः) इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय होकर तू (कविम्) उत्तम क्रान्तप्रज्ञ प्रभु की (प्र यक्षसि) अच्छी प्रकार उपासना कर।

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५॥५॥

भा०—(यत् रथः) जो रमणीय, सुखजनक व्यवहार (विरुक्मान्) विविध रुचियों से समृद्ध, (मनसा युजानः) चित्त से जुड़ने वाला है (येन) जिससे (नरा) स्त्री पुरुष दोनों (न-असत्या) परस्पर असत्याचरण न करते हुए वा नासिका अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हुए, (तनयाय त्मने च) पुत्र लाभ और अपने जीवन या आत्मा के हितार्थ (वर्त्तिः याथः) जीवन-मार्ग व्यतीत करते हैं वह (विरुक्मान् रथः) विशेष कान्तिमान् रथ के समान आश्रय (मे वपुः च्छदयत्) मेरे शरीर को बल देता हुआ उसकी रक्षा करे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥

भा०—जैसे (पर्जन्य-वाता वृषभा) मेघ लाने वाले और वर्षा करने वाले दो प्रकार के सूर्य वायु या मेघ और वायु दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के लिये (अप्यानि पुरीषाणि जिन्वतः) समुद्र के जलों को लाते हैं वैसे हे (वृषभा) वीर्य सेचन में समर्थ, श्रेष्ठ, बलवान् स्त्री पुरुषो ! और (पर्जन्य-वाता) मेघ वायु के समान सुखवर्षक और प्राणवत् प्रिय ! आप दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर उत्पन्न (अप्यानि) जलों से उत्पन्न (पुरीषाणि) नाना ऐश्वर्यों को (जिन्वतम्) प्राप्त करो । हे (कवयः) विद्वान् लोगो ! (यस्य सत्यश्रुतः) सत्योपदेश का श्रवण करने वाले जिस विद्वान् की (गीर्भिः) वाणियों से (जगतः) जंगम और (स्थातः) स्थावर संसार का ज्ञान होता है आप लोग उसके (आ) अधीन ही (जगत्) इस जंगम संसार को (कृणुध्वम्) करो ।

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

भा०—(पावीरवी) आचारादि को पवित्र करने वाली, (कन्या) कान्तिमती कन्या (चित्रायुः) आश्चर्यजनक आगमन वा जीवन वाली, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त, (वीरपत्नी) वीर पुरुष की स्त्री, (ग्नाभिः) वेद वाणियों से (धियं धात्) यज्ञ आदि कर्म करे। वह (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (गृणते) मुझ स्तुति करने वाले को (दुराधर्षं) दृढ़ (शरणं) गृह और (शर्म) सुख (यंसत्) प्रदान करे।

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥

भा०—(पूषा) पोषण करने वाला पोषक, सहायक जन, (कामेन कृतः) कामना से प्रेरित होकर (वचस्या) उत्तम वचन युक्त वाणी से (पथः-पथः) प्रत्येक मार्ग में (परिपतिं अर्कम् अभ्यानड्) पालक स्वामी से प्राप्त होने वाले अन्न वा आदर पद प्राप्त करे। (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) आह्लादजनक वचनों और स्वर्णादि पदार्थों सहित (शुरुधः = आशु-रुधः, शुग्-रुधः) अति शीघ्र हृदय की पापादि प्रवृत्तियों को रोकने वाली वा शोकादि की नाशक वाणियों का (रासत्) उपदेश करे, वह (धियं-धियं) प्रत्येक कार्य और ज्ञान को (प्र सीषधाति) अच्छी प्रकार करे।

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम्।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥

भा०—(होता) दानशील (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् (वि-भा-वा) विशेष कान्तिमान् होकर (प्रथम-भाजं) प्रथम, पूज्यों का सेवन करने वाले, (यशसं) यशस्वी, (वयोधां) बल, ज्ञान, दीर्घायु धारण करने कराने वाले, (सुपाणिं) उत्तम हाथ वाले, उत्तम व्यवहारवान् (देवम्) दानशील, ज्ञानदाता, (सु-गभस्तिम्) सूर्यवत् उत्तम बाहु वाले और उत्तम किरणवान्, सुप्रकाशक, (ऋभ्वम्) अति तेजस्वी, सत्य ज्ञान से युक्त (यजतं)

सत्संग योग्य, (त्वष्टारं) संशयादि के छेत्ता, सूर्यवत् प्रकाशक (पस्त्यानां) गृहों वा प्रजाओं के बीच (सु-हवं) सुगृहीत नामधेय गुरुजन का (यक्षत्) सत्कार करे और उत्तम भेंट अन्न आदि प्रदान करे। स्नातक गृह में प्रवेश कर या जगत् में उच्च पदस्थ होकर भी गुरु व प्रभु का आदर और उसकी उपासना करता रहे।

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्य (आभिः गीर्भिः) इन वाणियों से (भुवनस्य पितरं) संसार के पालक (रुद्रं) रोगों, दुःखों को दूर करने वाले, परमेश्वर को (दिवा) दिन में और उसी (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले प्रभु को (अक्तौ) रात्रि के समय भी (वर्धय) सदा बढ़ा, स्तुति कर और हम (कविना) विद्वान् पुरुष द्वारा (इषितासः) प्रेरित होकर (बृहन्तम्) महान् (ऋष्वम्) दर्शनीय (अजरम्) अविनाशी, (सु-सुम्नम्) उत्तम सुखमय प्रभु को ही (ऋधक् हुवेम) सत्य स्वरूप में स्तुति करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम्।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ११

भा०—(अङ्गिरस्वत् मरुतः चित् अचित्रं जिन्वन्ति) दीप्ति युक्त किरणों के समान वायुगण जैसे ओषधि आदि से रहित क्षेत्र को जल बरसा कर तृप्त करते हैं वैसे हे (युवानः कवयः) युवा विद्वान् पुरुषो! हे (नरः) नेता जनो! आप लोग (अंगिरस्वत्) अग्नियों, किरणों या प्राणों के तुल्य (नक्षन्तः) स्थान २ पर जाते हुए (अचित्रं हि जिन्वथ) साधारण जन को ज्ञान से तृप्त करो और (वृधन्तः) बढ़ते बढ़ाते हुए, (यज्ञियासः) उत्तम आदर सत्कार के योग्य होकर (गृणतः) उपदेश करने वाले पुरुष की (वरस्यां) उत्तम वाणी को (गन्त) ग्रहण करो।

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम्।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥

भा०—(पशुरक्षिः अस्तम् यूथा इव) पशुओं का रक्षक, पशुपालक जैसे पशुओं के रेवड़ को घर हांक ले जाता है उसी प्रकार तू (वीराय) वीर, विविध विद्या के दाता, (तवसे) बलवान्, (तुराय) शत्रुहिंसक पुरुष के लिये (प्र अज) स्तुतियें प्रकट कर, वा (यूथा प्र अज) जन समूहों को उत्तम मार्ग में चला। (नाकं स्तृभिः न) अन्तरिक्ष जैसे नक्षत्रों से मण्डित होता है उसी प्रकार (सः विपः) वह विद्वान् भी (श्रुतस्य) श्रवण करने योग्य (तन्वि स्तृभिः) शरीर पर उत्तम आच्छादक वस्त्रों से सुशोभित होकर (श्रुतस्य वचनस्य) श्रवण योग्य, उत्तम वचन का (पिस्पृशति) निरन्तर श्रवण करे।

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (बाधिताय मनवे) कर्म बन्धनों से पीड़ित मनन, ज्ञान वाले, चेतना से युक्त जीवगण के उपकार के लिये (त्रिः चित् पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव आदि लोक (वि ममे) विचरता है, हे प्रभो! (तस्य ते) उस तेरे (उपदद्यमाने) दिये गये (शर्मन्) सुख, शरण में हम (तना) विस्तृत (राया) ऐश्वर्य और (तन्वा) शरीर से (मदेम) सुखी हों।

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात्।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥ १४ ॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ और (पर्वतः) पालन पोषण करने वाला मेघ वा पर्वत (सविता) और सूर्य (नः) हमें (तत् तत् तत्) उन २ नाना प्रकार का (चनः) अन्न (अद्भिः) जलों और (अर्कैः) सूर्य किरणों सहित (धात्) प्रदान करे। (तत्) वह (राति-साचः) दानशील पुरुष (भगः) ऐश्वर्यवान् और (पुरन्धिः) जगत् को एक पुर के समान धारण करने वाला प्रभु (ओषधीभिः) ओषधियों

द्वारा (चनः) अन्न को (अभि जिन्वतु) खूब वृद्धि करे और (राये प्रजिन्व) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये अन्न को खूब बढ़ावे।

नू नो॑ र॒यिं र॒थ्यं॑ चर्षणि॒प्रां पु॑रु॒वीरं॑ म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पाम्।
क्षयं॑ दाता॒जरं॒ येन॒ जना॒न्त्स्पृधो॒ अदे॑वीर॒भि च॒ क्रमा॑म
विश॒ आदे॑वीर॒भ्य॑१॒श्नवा॑म ॥ १५ ॥ ७ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो! आप लोग (नः) हमें (रथ्यं) रथ आदि के योग्य (चर्षणीप्राम्) मनुष्यों को पूर्ण करने वाले (पुरुवीरं) बहुत से वीर पुरुषों से युक्त, (महः ऋतस्य) बड़े धनैश्वर्य के (गोपाम्) रक्षक (अजरं) अविनाशी (क्षयं) गृह, दुर्ग (नः) हमें (दात) प्रदान करो, (येन) जिससे हम (स्पृधः जनान्) स्पर्धा करने वाले मनुष्यों और (अदेवीः) देव अर्थात् शुभ गुणों और उत्तम मनुष्यों से रहित दुष्ट प्रजाओं को (अभि क्रमाम) पराजित करें और (आदेवीः) सब प्रकार से उत्तम गुणों से युक्त शुभ प्रजाओं को (अभि अश्नवाम) प्राप्त करें। इति सप्तमो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५०]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७ त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ८, १३ विराट्त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पंक्तिः। ९ पंक्तिः। १४ भुरिक् पंक्ति। १० निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

हु॒वे वो॑ दे॒वीमदि॑तिं॒ नमो॑भिर्मृळी॒काय॒ वरु॑णं मि॒त्रम॒ग्निम्।
अ॒भि॒क्ष॒दाम॑र्य॒मणं॑ सु॒शेवं॑ त्रा॒तॄन्दे॒वान्त्स॑वि॒तारं॒ भगं॑ च ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो मैं (वः) आप लोगों के (मृडीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) अदीन, अपराधीन, अखण्डित चरित्रा, ब्रह्मचारिणी (देवीम्) तेजस्विनी स्त्री को (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (हुवे) अपने यहां बुलाऊं, निमन्त्रित करूं। इसी प्रकार (वरुणं) दुःखों, कष्टों को वारण करने वाले (मित्रम्) स्नेहवान्, सुहृद्, (अग्निम्) अग्रणी,

तेजस्वी, ज्ञानी, (अभिक्ष दाम्, अभि-क्षदाम् = अभिक्षदाम्) कुपात्र में भिक्षा न देने वाले वा शत्रुओं को उनके मुकाबले पर मारने वाले, (अर्यमणं) शत्रुओं को नियम में बांधने वाले, न्यायकारी, (सुशेवं) उत्तम सुखदाता, (सवितारं) सूर्यवत् तेजस्वी और उत्पादक पिता, माता, गुरु और (भगं) सेवने योग्य ऐश्वर्यवान् पुरुष और (त्रातॄन् देवान्) पालक वीरजन और व्यवहार कुशल पुरुषों को भी मैं (नमोभिः हुवे) आदर युक्त वचनों, सत्कारों से बुलाऊं ।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२॥

भा०—सूर्य जैसे (सु-महः) उत्तम तेज युक्त (दक्ष-पितॄन्) दाहक सामर्थ्य, ताप से युक्त (सु-ज्योतिषः) उत्तम कान्तियुक्त (देवान्) किरणों को प्राप्त है वैसे हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू भी (सु-ज्योतिषः) उत्तम ज्ञान प्रकाश से युक्त (दक्षं-पितॄन्) चतुर माता पिता और गुरुजनों (देवान्) ज्ञान, धन, अन्न, वस्त्रादि के दाता (सु-महः) उत्तम पूजनीय पुरुषों को (अनागास्त्वे) अपराध और पाप से मुक्त होने के लिये (वीहि) प्राप्त हो । और (ये) जो (द्वि-जन्मानः) माता पिता और गुरु द्वारा जन्म प्राप्त कर द्विज हों, (ऋत-सापः) उन सत्य वचन और ज्ञान से सम्बन्ध बनाने वाले, सत्यवादी (सत्याः) सत्य कर्मा, (यजताः) सत्संग योग्य, दानी और (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि के समान वाणी द्वारा यथार्थ बात को प्रकाशित करने वाले और (स्वर्वन्तः) सुख और उत्तम उपदेशमय ज्ञान को धारण करने वाले जनों को [प्राप्त हो ।]

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी या आकाश और पृथिवी के समान प्रजा और राजा तथा माता पिता जनो ! आप दोनों

(उरु क्षत्रम् करथः) बहुत बड़ा बल उत्पन्न करो। हे (रोदसी) एक दूसरे का सन्मार्ग वा धर्म मर्यादा में रोकने वा बांधने वाले स्त्री पुरुषो! हे (सु-सुम्ने) सुख से रहने वालो! आप दोनों (बृहत् शरणं) बड़ा गृह (करथः) बनाओ। हे (धिषणे) धारण पोषण करने वाले जनो! आप दोनों (नः) हमारे लिये (यथा महः वरिवः करथः) जिस प्रकार बड़ा भारी धन और सेवादि करते हैं उसी प्रकार (नः क्षयाय) हमारे रहने के लिये (अनेहः) पाप हत्यादि से रहित गृह, राज्य प्रबन्धादि करो।

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥

भा०—(यत् ईम्) जो कोई (अर्भे महति वा) छोटे वा बड़े कार्य वा पद पर (हितासः) नियुक्त हैं ऐसे (रुद्रस्य सूनवः) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के अधीन चलने वाले, उसके पुत्रवत् आज्ञापालक (वसवः) राष्ट्र में बसे अन्यों को बसाने वाले, (अधृष्टाः) अप्रगल्भ, विनीत हैं, वे (अद्य) आज (नः आ नमन्ताम्) हमें विनयपूर्वक प्राप्त हों। हम उन (देवान्) विद्वान्, विजयेच्छुक (मरुतः) मनुष्यों को (बाधे) संग्राम, पीड़ा दुःखादि के अवसर पर (अह्वाम) बुलावें, वे हमें कष्ट से पार करें।

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥८॥

भा०—जैसे (पूषा मरुत्सु देवी रोदसी मिम्यक्ष सिषक्ति च) सूर्य वायुओं के आश्रय पर आकाश और पृथिवी दोनों को वृष्टि आदि से सींचता है, वैसे (येषु) जिन विद्वानों, वीर पुरुषों का आश्रय लेकर (अभ्यर्ध-यज्वा) उत्तम समृद्ध भाग देने वाला, (पूषा) प्रजा-पालक राजा (रोदसी देवी) रुद्र, दुष्टों को रुलाने वाले राजा वा सेनापति को विजयशील और सर्व सुखदात्री सेना और प्रजा दोनों पर (मिम्यक्ष) ऐश्वर्य का सेचन करता और (सिषक्ति) दोनों को परस्पर मिलाये रखता है और

(यत ह) जो (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुष (प्र-विक्ते) अच्छी प्रकार से निर्णय किये गये, विवेचित (अध्वनि) मार्ग में (रेजन्ते) गमन करते हैं, हे मनुष्यो ! (भूमौ) इस भूमि पर आप उनका (हवं श्रुत्वा) उपदेश श्रवण करके (याथ) सन्मार्ग पर चलो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥

भा०—हे (जरितः) उपदेश करने वाले विद्वन् ! जो (गृणानः) उपदेश करता हुआ (महः वाजान् उप रासत) बड़े २ उत्तम ज्ञानों का उपदेश करता और (स्तवानः) उपदेश किया जाता हुआ (त्यम्) उस ग्राह्य ज्ञान का (उप श्रवत् च) गुरु के समीप श्रवण करता है (त्यं वीरम्) उस वीर, विविध विद्या के उपदेष्टा, (गिर्वणसं) वाणियों के प्रदाता, (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानद्रष्टा आचार्य को (नवेन ब्रह्मणा) नये, नव उत्पन्न अन्न और धन से प्रथम विद्वान् उपदेष्टा गुरु की अर्चना करनी चाहिये। वे विद्वान् ज्ञान का उपदेश किया करें।

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ७

भा०—हे (आपः) आप्त जनो ! आप लोग (ओमानं) रक्षा आदि करने वाले पुरुष को और (मानुषीः) मनुष्य प्रजा और (अमृक्तं) अशुद्ध जन को जलवत् स्वच्छ करके (धात) धारण पोषण करो और (तोकाय तनयाय) छोटी उमर वाले पुत्र के लिये मातावत् (शं) शान्ति प्रदान और दुःख दूर करो। (यूयं) आप लोग (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः) स्थावर और जंगम दोनों के (जनित्रीः) पैदा करने वाली (मातृतमाः) उत्तम माताओं के समान (भिषजः स्थः) सब रोगों को दूर करने वाले होओ। जल जैसे स्थावर वृक्षादि और जंगम जीवों को उत्पन्न करते और सर्व रोग पीड़ा हरते, शान्ति देते, अशुद्ध को स्वच्छ करते, अन्न को बढ़ाते

और उत्तम माता के समान हैं वैसे आप्त जन वैद्य और माताएं भी, रक्षक को बचावें, अशुद्ध को शुद्ध करें, पुत्रों को शान्ति दें, उत्तम सन्तान और अन्य वनस्पति आदि को उत्पन्न करें। ज्ञानवान् प्रमाता होने से विद्वान् 'मातृतम' हैं। स्थावर, जंगम सबका ज्ञान प्रकट करने वा विज्ञानपूर्वक उत्पन्न करने से दोनों के 'जनित्री' हैं।

आ नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणो॒ हिर॑ण्यपाणिर्यज॒तो ज॑गम्यात्।
यो दत्र॑वाँ उ॒षसो॒ न प्रती॑कं व्यूर्णु॒ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ ८ ॥

भा०—(देवः) ज्ञान, धन का देने वाला, (सविता) पितावत् उत्पादक, सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रायमाणः) प्रजा का रक्षक, (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण आदि धन को अपने हाथ में रखने वाला (यजतः) पूज्य पुरुष (नः आ जगम्यात्) हमें प्राप्त हो। (यः) जो (दत्रवान्) दान योग्य धन का स्वामी, सूर्य के समान (उषसः प्रतीकं न) प्रभात के समान प्रतीति-कर वचन तथा (वार्याणि) उत्तम धन और ज्ञान भी (दाशुषे) आत्मसमर्पक प्रजाजन को (वि ऊर्णुते) प्रकट करता है।

उ॒त त्वं सू॑नो सहसो नो अ॒द्या दे॒वाँ अ॒स्मिन्न॑ध्व॒रे व॑वृत्याः।
स्याम॒हं ते॒ सद॒मिद्रा॒तौ तव॑ स्याम॒ग्नेऽव॑सा सु॒वीरः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) शत्रुजय करने में समर्थ सैन्य बल के संचालक! बलवान् पिता के शिष्य वा पुत्र! (त्वं) तू (अद्य) आज (अस्मिन् अध्वरे) इस हिंसारहित प्रजापालनादि कार्य में (देवान्) उत्तम गुणों वा पुरुषों को (नः आववृत्याः) हमें प्राप्त करा। (उत) और मैं (सदम्) सदा, वा प्राप्त करने योग्य अंश को प्राप्त करके (ते रातौ स्याम्) तेरी दी वृत्ति के अधीन रहूँ और (तव अवसा) तेरी रक्षा अन्नादि से हे (अग्ने) तेजस्विन्! (सुवीरः स्याम्) उत्तम वीर, उत्तम सन्तानयुक्त होऊं।

उ॒त त्या मे॒ हव॒मा ज॑ग्म्यात॒ं नास॑त्या धी॒भिर्यु॒वम॒ङ्ग वि॑प्रा।
अत्रिं॒ न म॒हस्तम॑सोऽमुमुक्त॒ं तूर्व॑तं नरा दुरि॒ताद॒भीके॑ ॥१०॥९॥

भा०—(उत) और (अङ्ग) हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, (विप्रा) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (त्या युवम्) वे आप दोनों (मे) मेरे (हवम्) ग्राह्य पदार्थ, वचन अन्नादि को (जग्म्यातम्) प्राप्त करो। सूर्य, चन्द्र दोनों जैसे (अत्रि) इस लोक में रहने वाले जनों को (महः तमसः मोचयतः) बड़े अन्धकार से मुक्त करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (अत्रि) इस लोक या स्थान में विद्यमान जन को (महः तमसः) बड़े अज्ञान रूप अन्धकार से और (दुरितात्) दुष्ट धर्माचरण से भी (अमु-मुक्तम्) सदा छुड़ाते रहो। हे (नरा) उत्तम नर नारियो ! उत्तम मार्ग में ले जाने हारे आप दोनों (अभीके) सदा समीप रहकर (तूर्वतम्) दुष्ट जन वा दुर्गुणों का नाश करो। इति नवमो वर्गः ॥

ते नो॑ रा॒यो द्यु॒मतो॒ वाज॑वतो दा॒तारो॑ भूत नृ॒वतः॑ पु॒रु॒क्षोः ।
द॒श॒स्यन्तो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता॒ अप्या॑ मृ॒ळता॑ च देवाः ११

भा०—हे (देवाः) विद्वान् दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमें (द्युमतः) दीप्तियुक्त, (वाजवतः) बलयुक्त, (नृवतः) उत्तम भृत्यादि वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत से अन्नादि से सम्पन्न (रायः) ऐश्वर्य के (दातारः भूत) देने वाले होवो। आप लोग (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी, (गो-जाताः) वाणी के प्रसिद्ध, विद्वान्, (अप्याः) भूमि, अन्तरिक्ष और जलों की विद्या में निष्णात होकर (दशस्यन्तः) ज्ञान प्रदान करते हुए (नः) हम सबको (मृडत) सुखी करो।

ते नो॑ रु॒द्रः सर॑स्वती स॒जोषा॑ मी॒ळ्हुष्म॑न्तो॒ विष्णु॑र्मृळन्तु वा॒युः ।
ऋ॒भु॒क्षा वाजो॒ दैव्यो॑ विधा॒ता प॒र्जन्या॒वाता॑ पिप्यता॒मिषं॑ नः ॥१२॥

भा०—(रुद्रः) दुष्ट पुरुषों को दण्ड देने वाला राजा, उपदेश देने वाला विद्वान्, रोगों को दूर करने वाला वैद्य, (सरस्वती) उत्तम विज्ञान-वती वेदवाणी और विदुषी स्त्री, (सजोषाः) प्रीतियुक्त मित्रजन, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष, (वायुः) वायुवत् बलवान् और ज्ञानी पुरुष

(ऋभुक्षाः) विद्वान्, (दैव्यः) विद्वानों से नियुक्त (विधाता) विधानकर्त्ता, (पर्जन्य-वाता) मेघ और वायुवत्, विजयशील, बलवान् पुरुष ये सभी (मीढुष्मन्तः) उत्तम सेचन करने वाले, प्रजा को बढ़ाने वाले गुणों से युक्त होकर (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें और (नः इषं पिप्यताम्) हमारे अन्न की वृद्धि करें। (२) (रुद्रः) अग्नि, (सरस्वती) नदी, (विष्णुः) सूर्य, (वायुः) वायु, (ऋभुक्षाः) महान् (वाजः) बलवान् (दैव्यः विधाता) किरणों, प्रकाशों का कर्त्ता सूर्य (पर्जन्यवाता) मेघ और प्रबल बात सब राष्ट्र में अन्न उत्पन्न करें।

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥ १३ ॥

भा०—(उत) और (स्यः देवः) वह तेजस्वी (सविता) सूर्य और सूर्यवत् तेजस्वी, (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (अपां नपात्) जलों के बीच विद्यमान, उनमें से उत्पन्न, न गिरने वाला अग्नि, विद्युत्, (पप्रिः) सबको पूर्ण और पालन करने वाला, (त्वष्टा) तेजस्वी, (देवेभिः) दिव्य गुणों, उत्तम पुरुषों और (जनिभिः) जन्मयुक्त प्राणियों सहित, (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (देवेभिः) किरणवत् तेजस्वी पुरुषों और (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रों सहित पृथिवी, ये सब (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः दानु) हमारे देने योग्य पदार्थ की (अवतु) रक्षा करें।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु १४

भा०—(उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न मेघ और (बुध्न्यः) आश्रय करने और प्रजा को सुप्रबन्ध में बांधने वाला (अहिः) अहिंसनीय, बलवान् पुरुष, (अजः एक-पात्) न कभी उत्पन्न होने वाला, एक अद्वितीय, जगत् में व्यापक, जगत् का चरणवत् आश्रय परमेश्वर और (अजः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और राज्य को सञ्चालन करने

वाला (एक-पात्) एकमात्र चरणवत् राष्ट्र का आश्रय, प्रधान पुरुष, राजा, (पृथिवी समुद्रः) यह भूमि और समुद्र, अथवा पृथिवी के समान विशाल और समुद्र के समान गम्भीर पुरुष और (ऋत-वृधः) सत्य, अन्न, तेज, यज्ञ और धनादि से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले (स्तुताः) स्तुति योग्य, (कविशस्ताः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्तुति या शिक्षा प्राप्त, (मन्त्राः) मननशील, उत्तम मन्त्र को देने वाले विद्वान् वा वेद के मन्त्र और उत्तम विचार सभी (हुवानाः) हमसे बुलाये गये या आदरपूर्वक हमें बुलाने हारे (विश्वेदेवाः) सभी उत्तम मनुष्य (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें, ज्ञान दें, अन्नादि से तृप्त सन्तुष्ट करें।

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
ग्नाहुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥१०॥

भा०—(एव) इस प्रकार जो (नपाताः) धर्म से प्रजाओं को न गिरने देने और स्वयं भी न गिरने वाले, (भरद्-वाजाः) ज्ञान और बल को धारण करने वाले, (धीभिः) उत्तम बुद्धियों, कर्मों से और (अर्कैः) अन्नों द्वारा (अभि अर्चन्ति) आदर सत्कार करते हैं और (हुतासः) आदरपूर्वक आमन्त्रित, (अधृष्टाः) विनीत, (यजत्राः) दानशील, (विश्वे वसवः) सब राष्ट्रवासी जन और (ग्नाः) उत्तम स्त्रियां भी वे (स्तुतासः भूत) प्रशंसित हों। वे (ग्नाः अभ्यर्चन्ति) स्त्रियों और उत्तम ज्ञानप्रद वाणियों का आदर करें। इति दशमो वर्गः ॥

[५१]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप्। ४, ६, ९ स्वराट्पंक्तिः। १३, १४, १५ निचृदुष्णिक्। १६ निचृदनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम्।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (मित्रयोः वरुणयोः महि चक्षुः ऋतस्य दर्शतम्, अनीकं, दिवः रुक्मन्, उदिता वि अद्यौत्) मित्र दिन, वरुण रात्रि इन दोनों में वह बड़ा, नेत्रवत् सूर्य प्रकाश दिखाने वाले मुख के समान और आकाश के मध्य स्वर्ण के समान, उदय काल में विशेष रूप से चमकता है उसी प्रकार (मित्रयोः) एक दूसरे को सदा प्रेम करने वाले (वरुणयोः) एक दूसरे का वरण करने वाले, उत्तम वर वधू, दोनों की (त्यत्) वह (महि) बड़ी, (प्रियं चक्षुः) प्रिय, एक दूसरे को तृप्त और प्रसन्न करने वाली आंख (अदब्धम्) एक दूसरे से अहिंसित, अपीड़ित होकर विना बाधा के (एति) एक दूसरे को प्राप्त हो। वे प्रेम, आदर, उत्सुकता और निःसंकोच भाव से परस्पर को देखा करें। वह (दर्शतम्) देखने योग्य वा सत्य ज्ञान को दिखाने वाली, (शुचि) पवित्र, निर्मल, निष्पाप, (अनी-कम्) मुखवत् दर्शनीय, सैन्यवत् एक दूसरे का विजय करने वाली, चक्षु भी, (दिवः रुक्मः न) कामनायुक्त कामिनी के स्वर्णमय आभूषणवत्, (दिवः) कामना करने वाली स्त्री के (उदिता) उद्‌गमन काल में (रुक्मः) रुचि अर्थात् अभिलाषाओं का ज्ञापक होकर (वि अद्यौत्) विविध भावों, विशेष सौहार्दों को प्रकट करे। अथवा—वह चक्षु, दर्शनीय शुद्ध पवित्र, मुख को आभूषणवत् प्रकाशित करे। (२) इसी प्रकार परस्पर मित्र, और परस्पर के वरण करने वाले, अध्यापक शिष्य और राजा और प्रजा-वर्गों के आंखों में स्नेह आदि सदा हों, वह विवेकपूर्ण सत्यज्ञान और न्याय के पवित्र सुन्दर मुख को उज्ज्वल करें। सत्यासत्य को दिखाने वाले नेत्र के तुल्य वेदज्ञ पुरुष भी सब स्त्री पुरुषों को प्रिय, अहिंसित, पवित्र, भूमि के भूषणवत् और सूर्यवत् तेजस्वी हों।

वेद् यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन। (यः) जो (त्रीणि विदथानि) जानने और प्राप्त करने योग्य ज्ञान, कर्म और उपासना को

(वेद) जानता है, और जो (विप्रः) विद्वान् मेधावी, (सनुतः) सदा (देवानां) विद्वानों वा सूर्य चन्द्रादि लोकों के (जन्म) प्रकट होने का तत्व (च) भी (वेद) जानता है वह (सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् (अर्यः) स्वामी के समान, (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच, उनके हितार्थ, (ऋजु) सरल, धर्म मार्ग को और (वृजिना च) वर्जन करने योग्य अशोभन पाप कर्मों को (पश्यन्) विवेक पूर्वक देखता हुआ समस्त (एवान्) प्राप्तव्य पदार्थों और जाने योग्य मार्गों को भी (अभि चष्टे) प्रकाशित करता, देखता और उपदेश करता है। चष्टे इति चक्षुः। देखने से 'चक्षु' आंख कहलाता है।

स्तुष उ॑ वो म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पानदि॑तिं मि॒त्रं वरु॑णं सुजा॒तान्।
अ॒र्य॒मणं॒ भग॒मद॑ब्धधीतीन॒च्छा॑ वोचे सध॒न्य॑: पाव॒कान् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् उत्तम पुरुषो! (स-धन्यः) धन धान्य से सम्पन्न, एवं धन द्वारा सत्कार योग्य उत्तम जनों सहित विद्यमान मैं, (वः) आप लोगों में से (ऋतस्य गोपान्) वेद, सत्य ज्ञान, न्याय, तेज, धन और बल के रक्षा करने वाले (अदितिं) सूर्य, पृथ्वी के समान तेजस्वी माता पिता, पुत्रादि, (मित्रं) स्नेही, (वरुणं) संकटों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुओं को नियम में रखने वाले, (भगं) ऐश्वर्यवान्, (सुजातान्) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, (अदब्धधीतीन्) जिनका अध्ययन, पठन पाठन नष्ट, विघ्नित, न हो, ऐसे पूर्ण शिक्षित (पावकान्) अग्निवत् अन्यों को पवित्र करने वाले, इन सब (महः ऋतस्य गोपान्) बड़े श्रेष्ठ सत्य ज्ञान और तेज के रक्षक जनों को मैं (स्तुषे) उत्तम स्तुति और (अच्छ वोचे) उनके प्रति उत्तम वचन कहूँ।

रि॒शाद॑सः स॒त्प॑तीँ॒रद॑ब्धान्म॒हो राज्ञ॑: सुवस॒नस्य॑ दा॒तॄन्।
यूनः॑ सुक्ष॒त्रान्क्षय॑तो दि॒वो नॄना॑दि॒त्यान्या॒म्यदि॑तिं दुवो॒यु ॥ ४ ॥

भा०—(रिशादसः) हिंसकों का नाश करने वाले, (सत्पतीन्) सज्जनों के पालक, (अदब्धान्) अन्यों से पीड़ित न होने और अन्यों को

पीड़ा न देने वाले, (महः) बड़े (राज्ञः) राजावत् स्वामी, (सु-वसनस्य) उत्तम वस्त्र, वा आश्रय के (दातॄन्) देने वाले, (यूनः) युवा, तरुण, (सु-क्षत्रान्) उत्तम बल, धन से युक्त, (क्षियतः) ऐश्वर्यवान्, एवं राष्ट्र में बसने वाले, (दिवः) ज्ञान प्रकाशक (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारी, सूर्यवत् तेजस्वी (नॄन्) नायक और (दुवोयु) परिचर्या या सेवा की कामना करने वाले पुरुषों को और (अदितिं) अखण्डित, एवं अदीन, उदात्त स्वभाव के माता व पिता को (यामि) मैं प्राप्त होऊं, विनय से उनसे याचना करूं।

द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५॥११

भा०—हे (पितः द्यौः) आकाश वा सूर्य के समान तेजस्विन्! पालक पितः! हे (मातः पृथिवि) माता पृथिवी! हे (अध्रुक्) द्रोह रहित (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (भ्रातः) भाई! हे (वसवः) बसे हुए प्रजा-जनो! आप लोग (नः) हमें (मृडत) सुखी करो। हे (आदित्याः) आदित्यसम तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! (अदिते) हे मातः! हे पितः! हे अखण्ड शक्ते! आप (विश्वे) सब (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (अस्मभ्यम्) हमें बहुत (शर्म) सुख (यन्त) प्रदान करो। इत्येकादशो वर्गः॥

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ६ ॥

भा०—हे (यजत्राः) दानशील और सत्संग योग्य पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (वृक्ये) चोरों के योग्य व्यवहार के निमित्त (समस्मै) सब प्रकार के (अघायते) हम पर पापाचरण करने की इच्छा वाले, (वृकाय) हिंसक, भेड़िये के समान चोर, डाकू स्वभाव के मनुष्य के लाभ की (नः) हमें (मा रीरधत) हमें नष्ट मत करो, हमें उसके हितार्थ दण्डित मत

करो, हमें उसके अधीन मत करो। (हि) क्योंकि आप लोग (नः तनूनां) हमारे शरीरों के भी (रथ्यः) रथ के नेता, सारथिवत् सन्मार्ग में ले जाने वाले (रथ) हो और (यूयं) तुम लोग सदा (दक्षस्य वचसः) उत्तम वचन के प्रवर्त्तक (बभूव) हो।

मा व॒ एनो॑ अ॒न्यकृ॑तं भुजेम॒ मा तत्क॑र्म वसवो॒ यच्चय॑ध्वे।
विश्व॑स्य॒ हि क्षय॑थ विश्वदेवाः स्व॒यं रि॒पुस्त॒न्वं॑ रीरिषीष्ट ॥ ७ ॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में बसे, विद्वान् पुरुषो! (अन्यकृतं) किसी अन्य के किये (एनः) पाप, अपराध को हम सब (मा भुजेम) न भोगें। (यत्) जिसे आप लोग (चयध्वे) नाश करो, या रोको वह कर्म भी हम (मा कर्म) न करें। हे (विश्व-देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो! आप लोग (विश्वस्य हि क्षयथ) सब कार्यों के स्वामी हो। मनुष्य प्रायः स्वयं अपना (रिपुः) शत्रु होकर कभी (तन्वं) अपने शरीर का (रीरिषीष्ट) विनाश कर लेता है। इसलिये सावधान रहो, न हो कि एक के किये से और दुःख पावें और जो काम स्वयं बाद नष्ट करना पड़े, उसको कर बैठे। चयतिः समुच्चये, हिंसायां च। क्षि निवासे, ऐश्वर्ये च॥

नम॒ इदु॒ग्रं नम॒ आ वि॑वासे॒ नमो॑ दाधार पृथि॒वीमु॒त द्याम्।
नमो॑ दे॒वेभ्यो॒ नम॑ ईश एषां कृ॒तं चि॒देनो॒ नम॒सा वि॑वासे ॥ ८ ॥

भा०—(नमः इत्) 'नमस्' अर्थात् दुष्टों और सज्जनों का नमाने का उपाय बड़ा ही (उग्रं) बलशाली होना उचित है। मैं उसी (नमः) विनय के साधन, दण्ड बल, या नमस्कार योग्य परब्रह्म का (आ विवासे) सेवन करूं। (नमः) वही वश करने वाला बल, सर्वनमस्य परब्रह्म ही (पृथिवीम् उत द्याम् दाधार) पृथिवी और सूर्य दोनों को धारण कर रहा है। (देवेभ्यः) विद्वानों, व्यवहारकर्त्ता, विजेताओं और द्यूतादि खेलने वाले लोग सबके लिये (नमः) उनको नमाने वाला यह वज्र और विनय का व्यवहार ही है। (नमः) वह विनयशाली दण्ड या आदर ही (एषां)

इन सब पर (ईशे) प्रभुत्व करता है। इनके (कृतं चित् एनः) किये हुए पाप को भी मैं (नमसा) विनय वा दण्ड से ही (आ विवासे) दूर करने में समर्थ होऊं।

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान्।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नृन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९॥

भा०—हे (यजत्राः) न्याय, ज्ञान, ऐश्वर्य को देने वालो! हे सत्संग और पूजा योग्य पुरुषो! (रथ्यः) रथ को ले जाने में सारथि के समान गृहस्थ वा राष्ट्र का नेता मैं (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, ज्ञान और न्याय के द्वारा (पूतदक्षान्) पवित्र कर्म करने वाले और (ऋतस्य पस्त्यसदः) न्याय गृहों में विराजने वाले (अदब्धान्) अधर्म, लोभ, अन्यायाचरण से अपीड़ित, (उरुचक्षसः) बड़े दूरदर्शी (विश्वान् वः महः नॄन्) समस्त उन आप बड़े पूज्य लोगों को (नमोभिः) विनय युक्त व्यवहारों से (आ नमे) नमता, नमाता हूँ।

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः १०।१२

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ, पापों से निवारक, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अग्नि) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, जो (ऋत-धीतयः) सत्य कर्म करने, सत्य शास्त्रों को पढ़ने और (वक्मराजसत्याः) वचन में सदा सत्य से चमकने वाले, सदा सत्यभाषी और (सु-क्षत्रासः) उत्तम बलशाली हैं (ते हि) वे ही (श्रेष्ठ-वर्चसः) सर्वोत्तम तेज से युक्त होते हैं। (ते उ) वे ही (नरः) लोग (नः) हमारे (विश्वानि दुरितानि) सब बुरे आचरणों को (तिरः नयन्ति) दूर करते हैं। इति द्वादशो वर्गः॥

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, (पृथिवी) भूमि के

समान सर्वाधार, (क्षाम) भूमि के समान क्षमावान्, (पूषा) सर्वपोषक (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्व कल्याणकारी, (अदितिः) माता, पिता वा पुत्र वा अदीन शक्ति, (पञ्च-जनाः) पांचों जन, (सु-शर्म्माणः) उत्तम गृह, उत्तम सुख, शरण देने वाले, (सु-अवसः) उत्तम रक्षा करने वाले (सु-नीथाः) उत्तम वाणी बोलने और उत्तम मार्ग से स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाले (भवन्तु) हों। वे (नः) हमारे (सु-त्रात्रासः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाले और (सु-गोपाः) उत्तम रक्षक, भूमि पशुओं और इन्द्रियों के उत्तम पालक, जितेन्द्रिय (भवन्तु) हों।

नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भरद्वाजः सुमतिं याति होता।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥ १२ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान्, प्रकाश के देने और लेने की कामना वाले गुरु शिष्य जनो! जो (भरत्-वाजः) ज्ञान को धारण करने हारा और (होता) अन्यों को ज्ञान दान करने वाला विद्वान् (सुमतिम् याति) उत्तम मतिमान् शिष्य को प्राप्त करता है वह (नु) मानो शीघ्र ही (दिव्यं सद्मानं) उत्तम प्रकाश योग्य गृह के समान (दिव्यं) ज्ञान धारण करने योग्य विद्या के सत्पात्र को (नंशि) प्राप्त कर लेता है। वह (यजमानः) ज्ञान दान करने वाला, (आसनेभिः) समीप बैठे हुए (मियेधैः यजमानः) सत्संग करने वाले, विद्यार्थियों से सत्संग करता हुआ, (वसूयुः) अधीन बसने वाले वसु, ब्रह्मचारियों का प्रिय इच्छुक, स्वामी होकर (देवानां) विद्याभिलाषी जनों के (जन्म) विद्या जन्म का (ववन्द) उपदेश करता है। (२) शिष्य पक्ष में—जो (भारद्वाजः) ज्ञान धारण करने वाला, तत्सं-ग्रहीता, (होता) अपने को गुरु के अधीन सौंपने और विद्या ग्रहण करने वाला, (सुमतिं याति) उत्तम मतिमान, ज्ञानी गुरु को जाता और उससे विद्या की याचना करता है वह (नु) शीघ्र ही, मानो (दिव्यं) दिव्य, उत्तम, (सद्मानं) गृह या भवन के समान विशाल शरण को (नंशि) प्राप्त करता है। वह (यजमानः) आदर सत्कार, पूजा आदि करता हुआ

(आसानेभिः मियेधैः) विराजने वाले सत्संगी जनों द्वारा (वसूयुः) वसु होने की कामना युक्त होकर (देवानां जन्म) विद्वानों के बीच उपनयन द्वारा नवीन जन्म (नंशि) प्राप्त करे और (ववन्द) गुरुओं को नमस्कार करे।

अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आप (त्यं) उस (रिपुम्) पापवान्, शत्रु, (स्तेनम्) चोर, (दुराध्यम्) दुःख से वश में आने वाले (वृजिनं) मार्गवत् (दविष्ठम्) दूर से दूर को भी, पैर रखकर जाने योग्य वा वर्जनीय शत्रु को (सुगं कृधि) सुगम कर । हे (सत्पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! तू (अस्य) इस प्रजाजन से उसे (अप कृधि) दूर कर ।

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥ १४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्पादक पितावत् सर्वप्रेरक ! अभिषेक योग्य प्रजेश्वर ! (नः) हमारे बीच में (ग्रावाणः) उत्तम शास्त्र के उपदेष्टा और शत्रुओं को कुचलने वाले वीर पुरुष लोग (हि) भी (सखित्वनाय) मित्रता के निमित्त (कं) कर्त्ता पुरुष को (वावशुः) सदा चाहते हैं । हे राजन् ! विद्वन् ! तू (पणिम्) व्यवहारवान्, (अत्रिणम्) मूल खा जाने वाले पुरुष को (नि जहि) दण्डित कर (हि) क्योंकि (सः वृकः हि) वह अवश्य वृक, चौर, वा भेड़िये के स्वभाव वाला, प्रजा को विविध प्रकार से काटने और दुःख देने वाला है ।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) सुखपूर्वक ऐश्वर्यादि के दान करने वालो ! (यूयं) आप लोग (हि) निश्चय से (सु-दानवः) उत्तम सुख देने वाले, (अभि) सब प्रकार से तेजस्वी और (इन्द्र-ज्येष्ठाः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष

को अपने में सबसे बड़ा मानने वाले (स्थ) होकर रहो। (नः) हमारे (अध्वन्) मार्ग को (सुगं) सुख से गमन करने योग्य (आ कर्त्त) करो। हे (गोपाः) भूमि और प्रजा के रक्षक जनो! आप लोग (अमा) हमारे गृह को (सुगं कर्त्त) सुखदायक बनाओ।

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।

येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६॥१३॥

भा०—हम लोग (स्वस्ति-गाम्) सुख से चलने योग्य और कल्याणमय उद्देश्य को जाने वाले वा कल्याणकारी सुखदायक भूमि वाले (अनेहसम्) पापों, दुःखों, कष्टों से रहित (पन्थाम्) मार्ग को (अपि अगन्म) प्राप्त हों, (येन) जिससे जाता हुआ मनुष्य (विश्वाः द्विषः) समस्त शत्रु सेनाओं को (परि वृणक्ति) दूर करने में समर्थ होता है और (वसु विन्दते) ऐश्वर्य लाभ करता है। (२) अध्यात्म में—परमगस्य प्रभु 'पन्था' है, कल्याण मार्ग से गमन करने योग्य, पापरहित है। हम उसमें (अपि अगन्महि) अप्यय अर्थात् मोक्ष प्राप्त हों, जिससे भक्त द्वेष वृत्तियों को त्याग कर (वसु) सबमें बसे परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[५२]

ऋजिश्वा ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, ४, १५, १६ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप्। ५ भुरिक्पंक्तिः। ७, ८, ११ गायत्री। ९, १०, १२ निचृद्गायत्री। १४ विराड्जगती॥

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः।

उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥

भा०—(अतियाजस्य) अति दान का (यष्टा) देने वाला, उत्तम सत्संग, मान, पूजा, ईश्वरार्चना करने वाला पुरुष (तत्) वह (न दिवा नि हीयताम्) न सूर्यवत् तेजस्वी पद से गिर सकता है, (न पृथिव्या

नि हीयताम्) और न वह पृथिवी से त्यागा जा सकता है, अर्थात् समस्त दुनियां उसका साथ देती है। (अनु मन्ये) मैं स्वीकार करता हूँ कि वह (न यज्ञेन नि हीयताम्) न कभी यज्ञ से रहित होता है, (उत न) और न (शचीभिः नि हीयताम्) वह उत्तम कर्मों से रहित होता है, (तम्) उसके प्रति (सुभ्वः) उत्तम २ भूमियां, वा उत्तम भूमियों के स्वामी लोग, और (पर्वतासः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् उन्नत जन भी विनम्र हो जावें तथा उसको (न उब्जन्तु) कभी विनाश न करें।

अति॑ वा॒ यो म॑रुतो॒ मन्य॑ते नो॒ ब्रह्म॑ वा॒ यः क्रि॒यमा॑णं॒ निनि॑त्सात्।
तपूं॑षि॒ तस्मै॑ वृजि॒नानि॑ सन्तु ब्रह्म॒द्विष॑म॒भि तं शो॑चतु॒ द्यौः ॥२॥

भा०—(यः वा) और जो हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमारे (क्रियमाणं) किये जाते हुए (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान, धन, अन्न आदि को (अति मन्यते) अतिक्रमण करे, (वा) अथवा (यः) जो उसकी (निनित्सात्) निन्दा करे (तस्मै) उसके लिये (तपूंषि) समस्त तप और तापदायक अस्त्रादि (वृजिनानि) वर्जन करने वाले, बाधक (सन्तु) हों। (तं) उस (ब्रह्म-द्विषम्) ज्ञान, प्रभु, धन, अन्न आदि के द्वेषी पुरुष को (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वा व्यवहार, वा धनादि कामना, (अभि शोचतु) सब ओर से शोकित व्यथित करे।

किम॒ङ्ग त्वा॒ ब्रह्म॑णः सोम गो॒पां किम॒ङ्ग त्वा॑हुरभिशस्ति॒पां नः॑।
किम॒ङ्ग नः॑ पश्यसि नि॒द्यमा॑नान् ब्रह्म॒द्विषे॒ तपु॑षिं हे॒तिम॑स्य ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे राजन्! (सोम) ऐश्वर्य चाहने वाले! (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः गोपाम्) धन, वेद वाणी और बृहत् राष्ट्र आदि का रक्षक (किम् आहुः) क्यों कहते हैं? (अङ्ग) हे राजन्! (त्वा) तुझे (नः) हमारा (अभिशस्तिपाम्) निन्दा से बचाने वाला (किम्) क्यों (आहुः) कहते हैं? (अङ्ग) हे राजन्! प्रभो! (नः) हमें (निद्यमानान्) निंदा वा नाश का विषय बनाते हुए दुष्ट जनों को (किम् पश्यसि) क्यों देखता है? तू

(ब्रह्म-द्विषे) वेद, धन और अन्नादि से द्वेष करने वाले के लिये (तपुषिम् हेतिम्) संतापदायक अस्त्र (अस्य) फेंक।

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥

भा०—(माम्) मुझको (जायमानाः) नित्य उत्तम गुणों वा प्रकाशों से प्रकट होने वाली प्रभात वेलाएं और शत्रु के दर्प को दग्ध करने वाली सेनाएं और मुझे चाहने वाली प्रजाएं (अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (पिन्वमानाः) सींचने वाली (सिन्धवः) वेगवती नदियें और बढ़ते समुद्र तथा तृप्त होते हुए प्राणगण और वेग से जाने वाले अश्व आदि (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (ध्रुवासः पर्वतासः) स्थिर रहने वाले पर्वत (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (देव-हूतौ) शुभ गुणों की प्राप्ति और विद्वानों की अर्चना तथा प्रभु की उपासना-काल में (पितरः) पालक जन, गुरु माता पिता आदि सम्बन्धी तथा ऋतु गण और ओषधि आदि पदार्थ सभी (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें, मुझे प्राप्त हों।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥

भा०—(विश्व-दानीम्) सदा ही हम सब लोग (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले (स्याम) रहें। हम लोग (सूर्यम् नु) सूर्य को ही (उत् चरन्तम्) ऊपर आते हुए देखें, जिस प्रकार वह (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) समस्त किरणों को धारण करता हुआ तेज सहित आने वालों में सबसे उत्तम है (तथा) उसी प्रकार शुभ गुणों को धारण करने और विद्वान् जनों वा विद्या की कामना करने वाले शिष्यों का पालन करता हुआ प्रधान पुरुष (अवसा) अपने रक्षा और ज्ञान से (आगमिष्ठः) आने वालों में सर्वश्रेष्ठ हो और वह (वसूनां) बसे प्रजाजनों वा शिष्यों के बीच (वसु-पतिः) प्रजाजनों और वसु ब्रह्मचारियों का स्वामी होकर (तथा करत्) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञानी होकर तेज और ज्ञान का प्रदान करे।

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा, विद्या वा ज्ञान का देने वाला आचार्य वह (अवसा) ज्ञान और रक्षा सामर्थ्य से (नेदिष्ठम्) अति समीप (आगमिष्ठः) आने वाला हो, हमारे सदा अति समीप, निकटतम होकर रहे । वह (सिन्धुभिः) जलधाराओं से (पिन्वमाना) खूब बढ़ी हुई, (सरस्वती) महा नदी के समान वेग से प्रवाहित होने वाले वचनों से उत्तम ज्ञान की धारावत् हमें नित्य सेचन या वृद्धि करने हारा हो। (ओषधिभिः) ओषधियों वनस्पतियों सहित (पर्जन्यः) जलों को देने वाले मेघ के समान ज्ञान और रक्षा देने वाला और शत्रुओं का विजेता होकर (नः) हमें (मयोभूः) सुख देने हारा हो । वह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, अग्रणी, ज्ञानवान् होकर (सु-शंसः) उत्तम उपदेश करने वाला, (पिता इव) पालक पिता के समान (सु-हवः) सुख से, विना संकोच पुकारने और सुसत्कार योग्य हो ।

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! (आ गत) आप लोग आओ । (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) गुरु से ग्रहण करने योग्य अधीत ज्ञान को (शृणुत) श्रवण करो और आप लोग (इदं बर्हिः) इस उत्तम पद, वृद्धि योग्य आसन पर (आ नि सीदत) आकर विराजो ।

यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ८

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (घृत-स्नुना हव्येन) घृत से युक्त अन्न से जैसे विद्वानों की स्निग्ध भोजनादि से सेवा-आदर किया जाता है उसी प्रकार हे (देवाः) विद्या की कामना करने वाले विद्यार्थी जनो ! (यः) जो (घृत-स्नुना) स्नेह से द्रवीभूत, वा स्नेह से हृदय से निलकने वाले,

(हव्येन) ग्राह्य ज्ञान से (वः) आप लोगों को अलंकृत करता है (तम्) उस विद्वान् गुरु को (विश्वे) आप सब लोग (उप गच्छथ) प्राप्त होओ, उसी की उपासना सेवा करो।

उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृण्वन्त्व॒मृत॑स्य॒ ये। सु॒मृ॒ळी॒का भ॑वन्तु नः॥९॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र पौत्रादि हों वे (अमृतस्य) कभी नाश न होने वाले, नित्य ज्ञान वेद की (गिरः) वाणियों का (उप शृण्वन्तु) गुरु के समीप श्रवण करें और वे (नः) हमें (सुमृडीकाः भवन्तु) उत्तम सुख देने वाले हों।

विश्वे॑ दे॒वा ऋ॑ता॒वृध॑ ऋ॒तुभि॑र्हवन॒श्रुतः॑। जु॒षन्तां॒ युज्यं॒ पयः॑॥१०॥१५

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विद्या की कामना करने वाले मनुष्य (ऋता-वृधः) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले हों और (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतु अनुसार वा ऋत, सत्य ज्ञान के स्वामी विद्वानों द्वारा (हवन-श्रुतः) दान और ग्रहण करने योग्य ज्ञान का श्रवण करने वाले होकर (युज्यम्) योग, एवं एकाग्रचित्त वा चित्तवृत्तिनिरोध को बढ़ाने वाले (पयः) मधुर ज्ञान रस का (जुषन्ताम्) सेवन करें। इति पञ्चदशो वर्गः॥

स्तो॒त्रमिन्द्रो॑ म॒रुद्ग॑ण॒स्त्वष्टृ॑मान्मि॒त्रो अ॑र्य॒मा।
इ॒मा ह॒व्या जु॑षन्त नः॥ ११॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (मरुद्-गणः) मनुष्यजन, (त्वष्टृमान् मित्रः) सबका स्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उत्तम उपदेश और (इमा हव्यानि) इन ग्राह्य वचनों तथा प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये पदार्थों को भी (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करें।

इ॒मं नो॑ अग्ने अध्व॒रं होत॑र्वयुन॒शो य॑ज।
चि॒कि॒त्वान्दैव्यं॒ जन॑म्॥ १२॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान देने वाले ! (अग्ने) अग्नि समान तेजस्विन् आचार्य ! प्रभो ! आप (चिकित्वान्) ज्ञानवान् हो। आप (नः) हमारे

बीच (अध्वरं) न हिंसा करने योग्य, अपीड़नीय, अविनाशी, अध्ययनादि ज्ञान यज्ञ को (वयुनशः) उनके ज्ञान शक्ति के अनुसार (यज) करें और हमें भी ज्ञान दें। तू (दैव्यं) देव, ज्ञान के इच्छुक (जनम्) जन, शिष्य को भी (यज) संगति में रख। (२) इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्, राजन्! आप (अध्वरं चिकित्वान्) अहिंसनीय, स्थायी, प्रजापालन रूप यज्ञ को जानते हुए (वयुनशः) प्रजाजन को ज्ञान और कर्म सामर्थ्य के अनुसार (दैव्यं जनम्) देव अर्थात् राजा के उचित सेवक जन रूप में (यज) प्राप्त करो, उनको पदों पर लगाओ।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥

भा०—(विश्वे देवाः) हे सब विद्वान्, विद्या के अभिलाषी पुरुषो! (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षवत् बीच की भूमि, (ये च द्यवि स्थ) और जो सूर्यवत् प्रकाशमान ज्ञान मार्ग में विद्यमान हों (ये अग्नि-जिह्वाः) और जो अग्नि की ज्वाला के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली वाणी वाले (उत वा) और (यजत्राः) ज्ञान देने और सत्संग करने योग्य हैं वे (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) देने योग्य, गुरु से ग्रहण योग्य ज्ञान को (श्रृणुत) सुनो और (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उच्च आसन पर (आसद्य) बैठ कर (मादयध्वम्) स्वयं प्रसन्न हों, अन्यों को भी हर्षित करें।

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥

भा०—हे (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो! हे (यज्ञियाः) सत्संग, दान पूजादि के योग्य जनो! हे (उभे रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर के उपकारक स्त्री पुरुषो! वा राजप्रजावर्गीय जनो! और (अपां नपात् च) प्राणों का नाश न करने वाला जन (मम) मेरे (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का आप लोग (श्रृण्वन्तु) श्रवण करें। मैं (वः) आप

लोगों के प्रति (परि-चक्ष्याणि) निन्दा वा प्रतिवाद योग्य (वचांसि) वचन (मा वोचम्) कभी न कहूँ। हम लोग (वः सुम्नेषु) आप लोगों के सुखों में (इत्) ही (अन्तमाः) अति निकटवर्त्ती होकर (मदेम) हर्ष लाभ करें।

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५॥

भा०—(ये के च) और जो कोई (महिनः) गुणों में महान्, (ज्मा) इस भूमि पर (दिवः) सूर्य के प्रकाश से तथा (अपां सधस्थे अहि-मायाः) जलों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष में मेघ के समान आचरण करने वाले, उदार, निष्पक्ष होकर ज्ञानों, सुखों की वर्षा करने वाले वा (अपां सधस्थे) आप्त विद्वज्जनों के साथ सभा आदि स्थानों में (दिवः) ज्ञान प्रकाश से (अहि-मायाः) अन्यों को पराजित करने वाली, सर्वातिशायी बुद्धि वाले (जज्ञिरे) प्रकट हों (ते देवाः) वे ज्ञानादि देने में कुशल ज्ञानी पुरुष (क्षपः उस्राः) रात दिन, (इषये) इष्ट सुख लाभ के लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वं आयुः) समस्त आयु (वरिवस्यन्तु) दें और जन समाज की सेवा करें।

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६॥

भा०—(अग्नि-पर्जन्यौ) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाश युक्त और प्रतापी और मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने वाला, वा शत्रुओं को विजय और प्रजा को तृप्त, प्रसन्न करने वाला, ये दोनों प्रकार के पुरुष (सु-हवा) उत्तम दान, ज्ञान और धन से युक्त, वा प्रजाओं द्वारा सुख से बुलाने, निसंकोच कहने सुनने योग्य होकर (मे धियं अवतम्) मेरी बुद्धि, सदाचार की रक्षा करें और (अस्मिन् हवे) इस दान-प्रतिदान यज्ञ में (नः सु-स्तुतिम् अवतम्) हमारी उत्तम स्तुति श्रवण करें। उन दोनों

में से (अन्यः) जैसे एक अग्नि (इडाम् जनयत्) मेघ के समान भूमि को बीज वपन योग्य बनाकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार (अन्यः) एक तो (इडाम् जनयत्) शिष्य के प्रति उपदेश योग्य वाणी को प्रकट करे और (अन्यः गर्भम् जनयत्) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जलों को गर्भित करता, वा पृथिवी पर जाठर रूप में अन्न को पचाकर, वीर्य बना कर प्रथम पुरुष में, फिर स्त्रीयोनि में गर्भ को उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अन्यः) दूसरा विद्वान् जन (गर्भम्) विद्यार्थी को माता के समान विद्या के गर्भ में ग्रहण करके पुनः शिष्य को पुत्रवत् वेदविद्या में उत्पन्न करे। जिस प्रकार सूर्य और मेघ दोनों (प्रजावतीः इषः धत्तम्) प्रजा से युक्त अन्न सम्पदा को देते और पुष्ट करते हैं उसी प्रकार गुरु, आचार्य उत्तम सन्ततियुक्त कामनाओं को धारण करें, अग्नि-मेघवत् अग्रणी, सेना नायक और राजा दोनों प्रजा से युक्त सेनाओं को धारण करें।

स्तीर्णे ब॒र्हिषि॑ समिधा॒ने अ॒ग्नौ सू॒क्तेन॑ म॒हा नम॑सा वि॑वासे।
अ॒स्मिन्नो॑ अ॒द्य वि॒दथे॑ यजत्रा॒ विश्वे॑ देवा ह॒विषि॑ मादयध्वम् ॥ १७ ॥ १६ ॥

भा०—(बर्हिषि स्तीर्णे) यज्ञ में, यज्ञवेदि पर आसन कुशा आदि आस्तरण योग्य पदार्थ के बिछ जाने पर और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के प्रदीप्त होते हुए जिस प्रकार (महा-सूक्तेन) वेद के बड़े सूक्त से और (महा नमसा) बड़े नमस्कार, आदर वा अन्नादि पदार्थ से (आविवासे) यज्ञ कर्म करता है उसी प्रकार (बर्हिषि) बड़े मान वृद्धि युक्त, (स्तीर्णे) बिछे आसन पर (अग्नौ समिधाने) अग्निवत् तेजस्वी राजा वा ज्ञानप्रकाश से युक्त विद्वान् के विराजने पर मैं (महा-नमसा) बड़ी शक्ति, आदर से (सूक्तेन) उत्तम वचनों से उसकी (आ विवासे) सेवा शुश्रूषा करूं। हे (यजत्राः) यज्ञशील, ज्ञानदाता, एवं सत्संगयोग्य पूज्य पुरुषो ! (अद्य) आज (नः) हमारे (अस्मिन् विदथे) इस यज्ञ में (विश्वे देवाः) आप सब विद्वान् जन (हविषि) अन्नादि से (मादयध्वम्) स्वयं तृप्त और हर्षित होवो और (नः मादयध्वम्) हमें प्रसन्न करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री । २, ५, ९ निचृद्गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वाज-सातये रथं न) वेग से देशान्तर जाने के लिये वेगयुक्त रथ को जोड़ते हैं उसी प्रकार हे (पथस्पते) मार्ग के स्वामिन् ! हे (पूषन्) सर्वपोषक प्रभो ! (वाज सातये धिये) ज्ञान के देने वाली, बुद्धि और ऐश्वर्य के देने वाले कर्म के लिये (रथं) रमणीय, वा वेग से ले जाने वाले (त्वा) तुझको (वयम् उ) हम (अयुज्महि) योगाभ्यास द्वारा, समाहित चित्त से ध्यान करें । (२) इसी प्रकार हे राजन् ! तुझको ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ रथवत् नियुक्त करें ।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (नर्यं) मनुष्यों का हितकारी, (वीरं) वीर (प्रयत-दक्षिणम्) उत्तम संपत्, बल वीर्य से युक्त, (वामं) सेवन करने योग्य (गृहपतिं) गृह स्वामी और (नर्यं) मनुष्यों के हित, (वीरं) विविध कष्टों को दूर करने वाले, (प्रयत-दक्षिणं) खूब दान दक्षिणा देने योग्य, (वामं) सुन्दर, सुखकर, (गृहपतिम्) गृह के पालक (वसु) धन को भी (नः) हमें (अभि नय) प्राप्त करा ।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय ।

पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आ घृणे) सर्वत्र प्रकाशित ! तेजस्विन् ! (पूषन्) निर्बलों के पोषक ! तू (अदित्सन्तं चित्) न देना चाहने वाले पुरुष को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरित कर । (पणेः चित्) व्यवहार-कुशल, वणिग्जन, वा स्तुतिशील जन के (मनः) मन को (वि म्रद) विशेष मृदु कर । वह कंजूस न होकर, दयाशील, कोमल हृदय रहे ।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने के लिये (पथः) उत्तम मार्गों को (वि चिनुहि) खोज । (मृधः) हिंसकारियों को (वि जहि) विविध प्रकार से दण्डित कर । हे (उग्र) बलवन् ! (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां और कर्म (साधन्ताम्) उत्तम कर्म और फलों को सिद्ध करें ।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! मेधाविन् ! दूरदर्शिन् ! आप (पणीनाम्) द्यूतादि, व्यवहार करने वाले दुष्टों के (हृदया) हृदयों को (आरया) आरा से जैसे काष्ठों को चीरा जाता वा पैनी चोब से पशुओं को उद्विग्न कर ठीक रास्ते चलाया जाता है उसी प्रकार (आरया) सब प्रकार की शिक्षा और 'आर्त्ति', पीड़ा, दण्डादि की व्यवस्था द्वारा (परि तृन्धि) पीड़ित कर (अथ) इस प्रकार (ईम्) उनको (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (रन्धय) वश कर, दण्डित कर । इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों का पक्ष पोषण करने हारे ! प्रजापोषक राजन् ! तू (पणेः) व्यवहार में लगे दुष्ट जन को (आरया) दण्ड व्यवस्था से, पशु को चोब से जैसे वैसे (वि तुद) विविध प्रकार से व्यथित कर और (हृदि) हृदय में (प्रियम्) उनका प्रिय हित (इच्छ) चाहा कर । (अथ ईम् अस्मभ्यम् रन्धय) और उनको हमारे हितार्थ वश कर ।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! तू (पणीनां) व्यवहारवान् प्रजा के लोगों के (किकिरा) व्यवस्था पत्रों की छोटी बातों को भी (आ रिख) अवश्य लिख। (अथ) और (हृदया) उनके हृदयों को (ईम्) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ (रन्धय) वश कर।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।

तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों का पक्ष पोषण करने हारे ! हे (आघृणे) सब प्रकार तेजस्विन् ! समस्त ज्ञानों के प्रकाशक विद्वन् ! तू (यां) जिस (ब्रह्म-चोदनीम्) ब्रह्म विद्या और धन की ओर प्रेरित करने वाली (आराम्) चोब या आरा शस्त्री के तुल्य सद्-असद् विवेक करने वाली बुद्धि या वाणी को (बिभर्षि) धारण करता है (तया) उससे (समस्य हृदयम्) सबके दिलों को (आ रिख) अंकित कर और (किकिरा कृणु) अपने उत्तम विचारों को सर्वत्र लिखकर विस्तारित कर।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी।

तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥

भा०—हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! सूर्यवत् प्रतापिन् ! (पशु-साधनी) पशुओं को वश करने वाली, (अष्ट्रा गो-ओपशा) बैलों के सदा समीप रहकर चाबुक जैसे सन्मार्ग में चलाती है उसी प्रकार हे राजन् (ते) तेरी (या) जो (अष्ट्रा) व्यापक शक्ति (गो-ओपशा) भूमि पर प्रशान्त रूप से विद्यमान रहकर (पशु-साधनी) पशु तुल्य मूर्ख जनों को अपने वश करने वाली है, (तस्याः) उसके (सुम्नम्) सुखकारी परिणाम को हम (ते) तुझ से (ईमहे) प्राप्त करें।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।

नृवत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (पूषन्) पशुपाल के तुल्य प्रजापोषक राजन् ! (उत)

और तू (गो-सणिम्) गौ देने वाली, (अश्व-साम्) अश्व देने वाली और (वाज-साम्) अन्न, बल, ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाली, (उत) और नृवत् उत्तम नायकों से युक्त (धियं) बुद्धि वा कर्म को (नः वीतये) हमारे सुखोपभोग और ज्ञान के लिये (कृणुहि) कर । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ८, ९ गायत्री । ३, १० निचृद्गायत्री । ५ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति ।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजा के पोषक ! (यः) जो विद्वान् (इदम् एव) यह ऐसा ही है इस प्रकार यथार्थ रूप से जो विद्वान् (ब्रवत्) उपदेश करता और (अञ्जसा) तत्व ज्ञान-प्रकाश से (अनु शासति) अनुशासन अर्थात् न्यायोपदेश करता है, तू उस (विदुषा) विद्वान् द्वारा हमें (सं नय) उत्तम मार्ग पर ले चल ।

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (गृहान्) गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (अभि शासति) साक्षात् उपदेश करता और (ब्रवत् च) बतलाता है कि (इमे एव इति) ये ही ठीक २ पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं ऐसे (पूष्णा) पोषक पालक के साथ (सं गमेमहि) हम सत्संग करें ।

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।
नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

भा०—(पूष्णः) पोषण करने वाले राजा का (चक्रम्) राजतन्त्र (न रिष्यति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता । (कोशः न अवपद्यते) उसका खजाना भी कमती नहीं होता है और (अस्य पविः न व्यथते) उसका बल वीर्य और शस्त्र बल भी पीड़ित नहीं होता ।

यो अस्मै ह॒विषावि॑धन्न तं पू॒षापि॑ मृष्यते ।
प्र॒थ॒मो वि॑न्दते॒ वसु॑ ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो व्यक्ति (अस्मै) इस प्रजाजन को (हविषा) लेने देने योग्य कर अन्नादि से (अविधत्) पीड़ित करता है और स्वयं (प्रथमः) मुख्य होकर (वसु विन्दते) धन लेता है, (तं पूषा अपि) उसको प्रजा-पोषक राजा भी (न मृष्यते) कभी सहन नहीं करता ।

पू॒षा गा अन्वे॑तु नः पू॒षा र॑क्ष॒त्वर्व॑तः ।
पू॒षा वाजं॑ सनोतु नः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—(पूषा) राज्य, प्रजा का पोषक राजा, (गाः) गौवों को गोपाल के समान (अन्वेतु) हमारी भूमियों को प्राप्त करे । वह (अर्वतः नः रक्षतु) अश्वों को सारथिवत् हमारी रक्षा करे । वह (पूषा नः वाजं सनोतु) सर्वपोषक अन्नवत् हमें ऐश्वर्य न्यायपूर्वक विभक्त करे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

पूष॒न्ननु॒ प्र गा इ॑हि॒ यज॑मानस्य सु॒न्व॒तः ।
अ॒स्माकं॑ स्तुव॒तामु॒त ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! (सुन्वतः यजमानस्य) अभिषेक करने और तुझे कर आदि देने वाले प्रजाजन के (गाः अनु) भूमियों वा वाणियों का (अनु इहि) गौओं के पीछे २ गोपालवत् अनुगमन कर अर्थात् प्रजा के बहुमत के पीछे चल । (उत्) और (स्तुवताम् अस्माकं) उत्तम उपदेश करने वाले हम लोगों की (गाः अनु इहि) वाणियों का अनुसरण कर । जैसे पशु-पाल दण्ड लेकर पशु को बन्धन से रहित करके दण्ड बल से सन्मार्ग पर ले जाता है उसी प्रकार राजा प्रजा के पीछे चलता हुआ दण्ड बल से उसका शासन करे ।

माकि॑र्नेश॒न्माकीं॑ रिष॒न्माकीं॒ सं शा॑रि॒ केव॑टे ।
अथारि॑ष्टाभि॒रा ग॑हि ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रजाजन (माकिः नेशत्) कभी किसी प्रकार

नष्ट न हो, (माकीं रिषत्) किसी अन्य द्वारा पीड़ित भी न हो। वह (केवटे) कूप या गड़े के समान, अवनत दशा में भी (माकीं सं शारि) कभी शीर्ण न हो। (अथ) और (अरिष्टाभिः) अहिंसित प्रजाओं सहित तू सुखी गौओं से गोपाल के समान, (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम (इर्यम्) प्रजा को सन्मार्ग में चलाने वाले और स्वयं भी बड़ों द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित, (अनष्ट-वेदसम्) ज्ञान और धन से सम्पन्न, (ईशानं) राष्ट्र पर प्रमुख करने में समर्थ, (शृण्वन्तं) प्रजा के न्याय कथन को सुनने वाले (पूषणं) सर्वपोषक राजा से (रायः) नाना ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करते हैं।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करने वाले पालक! (तव व्रते) तेरे काम में लगे हुए (वयं) हम (कदा चन न रिष्येम) कभी पीड़ित न हों। हम (ते स्तोतारः) तेरे गुणों, वा विद्या आदि का कथन करते हुए (इह) इस राष्ट्र में (स्मसि) रहें।

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥ ॥ २० ॥

भा०—(पूषा) प्रजा को पोषण करने वाला राजा, (परस्तात्) दूर तक भी (दक्षिणं) बलयुक्त वा दानशील (हस्तं) हाथ (परि दधातु) रखे। जिससे (नः) हमारा (नष्टम्) खोया हुआ धन भी (आ अजतु) हमें प्राप्त हो। इति विंशो वर्गः ॥

[५५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ गायत्री। ३, ४ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै ।
रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥

भा०—हे (आ घृणे) तेजस्विन् ! तू (आ इहि) हमें प्राप्त हो । हे (नपात्) कभी कुमार्ग में न जाने वाले ! तू (वाम्) हम दोनों को (विमुचः) विशेष रूप से दुःखों से मुक्त कर । हम (सं सचावहै) दोनों राजा प्रजा और स्त्री पुरुष परस्पर अच्छी प्रकार सम्बद्ध होकर रहें । तू (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, धन, यज्ञादि का (रथीः) रथवान् के समान सञ्चालक (भव) हो ।

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः ।
रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(रथीतमम्) श्रेष्ठ रथ के स्वामी, (कपर्दिनम्) मानसूचक शिखा धारण करने वाले, प्रमुख, (महः राधसः ईशानम्) बड़े भारी ऐश्वर्य के स्वामी, (सखायम्) मित्र से हम लोग (रायः) नाना धन (ईमहे) याचना करें ।

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व ।
धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अजाश्व) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामिन् ! वा (अजाश्व) वेग से चलने वाले अश्वों के स्वामिन् ! तू (रायः) ऐश्वर्यों को (धारा असि) धारण करने वाली वाणी के समान आज्ञापक है, हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! तू (वसोः) बसने वाले प्रजाजन का (राशिः असि) राशि अर्थात् जन-संघ का प्रतिनिधि है । वा ऐश्वर्य का महान् राशि, परमैश्वर्यवन् है और तू (धीवतः धीवतः) प्रत्येक बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुष का (सखा) मित्र है ।

पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् ।
स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान्, (अजाश्व) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामी, (पूषणं) प्रजा के पोषक राजा को (नु उप स्तोषाम) अवश्य परस्पर समीप बैठकर विचार प्रस्तुत करें। ऐसे व्यक्ति को राजा बनावें (यः) जो (स्वसुः = सु-असुः, स्व-सुः) उत्तम प्राणवान्, सुखजनक प्राणवत् प्रिय, सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ, स्व = धनैश्वर्य को उत्पन्न करने में समर्थ होकर भी (जारः) उत्तम, उपदेष्टा, विद्वान् (उच्यते) कहा जावे। अथवा (यः) जो (स्वसुः) स्वयं शरण में आई प्रजा का, उषा को जीर्ण करने वाले सूर्य के समान, सन्मार्ग में आदेष्टा कहा जाता है।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

भा०—जो (स्वसुः जारः) रात्रि वा उषा को नष्ट करने वाले सूर्यवत् भगिनीतुल्य प्रजा को (जारः) शासन से सन्मार्ग में चलाने वाला और (इन्द्रस्य सखा) अग्नि या विद्युत् के मित्र वायु के समान (मम सखा) मेरा मित्र (भ्राता) एवं पतिवत् पोषक वा (स्वसुः भ्राता इव) बहिन के भाई के समान भरण पोषण करने वाला है, उसको मैं (मातुः) ज्ञान देने वाली विद्या वा माता के तुल्य, मान या मापने योग्य भूमि को (दिधुषम्) धारण करने में समर्थ (अब्रवम्) कहता हूँ, वह (नः शृणोतु) हमारा वचन श्रवण करे।

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(ते) वे (अजासः) शत्रु को जड़ से उखाड़ने वाले वीर पुरुष (नि-शृम्भाः) नित्य, स्थिर सम्बद्ध होकर (रथे अजासः) रथ में लगे वेग से जाने वाले अश्वों के समान (जन श्रियं बिभ्रतः) प्रजा की समृद्धि को धारण करते हुए वा (जन-श्रियं) जनों के बीच शोभावान् (देवं) तेजस्वी राजा को (आ वहन्तु) धारण करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री । ६ स्वराडुष्णिक् ॥

य ए॑नमा॒दिदे॑शति कर॒म्भादिति॑ पू॒षण॑म् ।
न तेन॑ दे॒व आ॒दिशे॑ ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् (एनं पूषणम्) उस प्रजा के पोषक राजा वा प्रभु को (करम्भात्) स्वयं कर्म फल का भोक्ता होकर इस हेतु (आ दिदेशति) स्तुति करता है (तेन) उसे (देवः) कर्म फल देने वाले प्रभु से (आदिशे न) कार्य-फल की याचना करने की आवश्यकता नहीं। वह विना मांगे कर्म फल देता है। (करम्भः) करोतेरम्भच् ॥ उ० ॥

उ॒त घा॒ स र॒थीत॑मः॒ सख्या॒ सत्प॑ति॒र्यु॒जा ।
इन्द्रो॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते ॥ २ ॥

भा०—(उत) और (घ) निश्चय से (सः) वह (रथीतमः) उत्तम रथ का स्वामी, (सख्या युजा) मित्र सहायक से (सत्-पतिः) सज्जनों का प्रतिपालक है। वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् होकर (वृत्राणि) मेघों को सूर्य के समान विघ्नों, को (जिघ्नते) विनाश करता है। अध्यात्म में—आत्मा रथीतम है। वह (युजा) सहयोगी, प्रभु के कारण सत्-पति, उत्तम स्वामी का सेवक हो विघ्नों का नाश करता है।

उ॒तादः॑ प॑रु॒षे गवि॒ सूर॑श्च॒क्रं हि॑र॒ण्यय॑म् ।
न्यैरयद्र॒थीत॑मः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रथीतमः सूरः गवि चक्रं नि ऐरयत्) उत्तम महारथि भूमि पर, या प्रबल अश्व या बैल के बल पर, रथ चक्र को चलाता है वा (सूरः परुषे) शूरवीर पुरुष, कठोर भाषण करने वाले शत्रु पर (हिरण्ययं चक्रं नि ऐरयत्) चमकते, दीप्तियुक्त हिंसा साधन, शस्त्र को चलाता है, वा जैसे (सूरः) सूर्य (परुषे) पर्वयुक्त, या तर्पक मेघ और (गवि) भूमि पर (हिरण्ययम्) तेजोमय 'चक्र' वा विम्ब को प्रेरित

करता है उसी प्रकार (रथीतमः) उत्तम रथों का स्वामी, शूरवीर आज्ञापक पुरुष कठोर शत्रु वा कठोर संग्राम काल में वा ([अ] प-रुषे) रोषरहित प्रजा के हितार्थ (गवि) इस भूमि पर (हिरण्ययं) हित और रमणीय (अदः) उस दूर स्थित (चक्रम्) राज्य चक्र, वा सैन्य चक्र को (नि ऐरयत्) अच्छी प्रकार सञ्चालित करे ।

यदुद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः ।
तत्सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (दस्र) दर्शनीय ! हे दुःखों के नाश करने हारे ! हे (मन्तुमः) ज्ञानवान् ! (यत्) जो (अद्य) आज (त्वा) तुझे (ब्रवाम) उपदेश करें (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) ज्ञान का (सु साधय) अच्छी प्रकार साधन कर ।

इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् ।
आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! तू (आरात्) दूर वा समीप (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है । तू (इमं) इस (गो-एषणम्) पशु, भूमि, उत्तम वाणी आदि के इच्छुक (जनं) जन समूह को (सातये) नाना ऐश्वर्यादि विभक्त करने के लिये (सीषधः) प्राप्त कर ।

आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (अद्य च श्वः च) आज भी और कल भी (सर्व-तातये) सबके कल्याणकारी, यज्ञादि कार्य में (ते) तेरी (आरे-अघाम्) पापादि से रहित (उप-वसुम्) धनप्रद (स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, नीति को (ईमहे) याचना करते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्र-पूषणौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ विराड्गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री । ४, ५ गायत्री ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये।
हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रा पूषणा नु) ऐश्वर्ययुक्त और सब निर्बलों के पोषक, दोनों प्रकार के पुरुषों को (सख्याय) मित्र भाव, (स्वस्तये) सुख प्राप्ति और (वाज-सातये) बलैश्वर्य, अन्नादि प्राप्त करने के लिये (वयं हुवेम) हम प्राप्त करें, आदरपूर्वक बुलावें। इरां दृणाति 'इन्द्रः', अन्नोत्पादक कृषक जन 'इन्द्र' और भागधुक्, पृथिवीपति 'पूषा' है। अन्नादि के लिये दोनों आवश्यक हैं।

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्।
करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

भा०—दोनों का पृथक् २ विवरण। (चम्वोः) राष्ट्र का भोग करने वाले पूर्वोक्त इन्द्र और पूषा राजा और प्रजावर्ग दोनों में से (अन्यः) एक तो (पातवे) अपने पालन के लिये (सुतम्) अभिषिक्त (सोमम्) ऐश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक राजा को (उप सदत्) प्राप्त होता है और (अन्यः) दूसरा राजा (करम्भम्) कर ग्रहण कर उससे ही भरण करने योग्य अन्नवत् राष्ट्र को (इच्छति) प्राप्त करना चाहता है। (२) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान्, व्यापारी वर्ग (पातवे) आगे के भोग के लिये राष्ट्र का उत्पन्न ऐश्वर्य प्राप्त करे और (अन्यः) दूसरा (पूषा) पृथिवीस्थ शेष प्रजावर्ग भूमि से अन्न उत्पन्न करना चाहता है। एक धन कमावे और एक अन्न। व्यापारी वर्ग 'इन्द्र' और कृषक वर्ग 'पूषा' है।

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनों में से, (अन्यस्य) एक, प्रजावर्ग के (अजाः वह्नयः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, अग्निवत् तेजस्वी, राज्य-भार को धारण करने वाले, (सम्भृता) वेतनादि द्वारा पोषित हों और (अन्यस्य) दूसरे,

राजपक्ष के, (अजा) वेगवान् (हरी) अश्व वा स्त्री पुरुष (संभृता) वेतनबद्ध-वत् हृष्ट पुष्ट हों। (ताभ्याम्) उन दोनों से, (वृत्राणि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और संकटों को (जिघ्नते) नाश करता है। अधिदेव में—इन्द्र सूर्य, पूषा वायु है।

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः।
तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (वृषन्तमः) खूब वर्षा करने वाला सूर्य वा मेघ (महीः अपः) बहुत जलों को सर्वत्र फैला देता है (पूषा सचा अभवत्) पोषक वायु सहायक होता है। वैसे (यत्) जब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजवर्ग, (वृषन्तमः) खूब बलवान्, भूमिसेचक होकर (रितः) सब ओर जाने वाली गाड़ियों, वा (महीः) बड़ी अन्न सम्पद् देने वाली भूमियों को (अनयत्) प्राप्त करावे। (तत्र) वहां (सचा) सहायक रूप से (पूषा अभवत्) पोषक कृषक वर्ग होता है।

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव।
इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥

भा०—(पूष्णः) सर्वपोषक और (इन्द्रस्य च) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता तथा अज्ञाननाशक उत्तम ज्ञानदायक जन की (तां) उस (सुमतिम्) शुभ मति को (वृक्षस्य) वृक्ष की (वयाम् इव) शाखा के समान अपने आश्रय और उन्नति के लिये (प्र आ रभामहे) प्राप्त करें। इसी प्रकार (पूष्णः) सर्वपोषक पृथ्वी और (इन्द्रस्य) विद्युत् मेघ, सूर्य आदि सम्बन्धी (सु-मतिं) उत्तम ज्ञान को हम प्राप्त करें।

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः।
मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—(सारथिः अभीशून् इव) सारथि जैसे घोड़े की लगाम की रस्सियों को अलग २ रखता और उनको वश करता है वैसे हम लोग (पूषणम्) प्रजा के पोषक, पृथ्वी, तथा उस पर कृषि आदि करने वाले

प्रजावर्ग तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वैश्य वर्ग, इन दोनों को (मह्यै) भूमि या राष्ट्र की उन्नति और (स्वस्तये) सबके कल्याण के लिये (उत् युवामहे) उद्योगपूर्वक पृथक् २ रक्खें और उनको वश करें, उनकी उत्तम व्यवस्था करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ३—४ विराट् त्रिष्टुप्। २ विराट् जगती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१॥

भा०—हे (स्वधावः) अपने तेज को धारण कराने वाले पुरुष ! हे (पूषन्) धारण किये वीर्य को पोषण करने वाली ! भूमिवत् स्त्रि ! आप दोनों (वि सु-रूपे) विशेष सुन्दर रूपवान्, भिन्न २ उत्तम रुचि वाले, (अहनी) दिन रात्रिवत् एक दूसरे को पीड़ा न देने वाले होवो। हे (स्वधावः) आत्मांश को धारण करने वाले पुरुष ! (ते शुक्रं) तेरा वीर्य, (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है और हे (पूषन्) गर्भ में वीर्य को पोषण करने हारी भूमिस्वरूप ! (ते) तेरा वीर्य रजः रूप (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है। पुरुष तू (द्यौः इव असि) सूर्य के समान है और आप दोनों (यजतम्) आदर पूर्वक मिलकर रहो। हे स्त्रि ! तू (द्यौः इव असि) भूमि के समान कामना वाली है। हे पुरुष ! हे स्त्रि ! तुम दोनों पृथक् (विश्वाः मायाः) समस्त निर्माणकारिणी, सृष्टि उत्पादक शक्तियों को (अवसि) सुरक्षित रखते हो। (ते) तुम्हारी (रातिं) दान आदान, (भद्रा अस्तु) भद्र, सुखप्रद और कल्याणकारक (इह) इस लोक में हो। उसी प्रकार प्रजा राजा आदि भी मिलकर रहें।

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥

भा०—(पूषा) गृहस्थ का पोषक पुरुष (अज-अश्वः) भेड़ बकरियों और अश्वों का स्वामी (पशु-पाः) पशुओं की पालना करने वाला, (वाजपस्त्यः) गृह में अन्न और ऐश्वर्य का सञ्चय करने वाला, (धियं-जिन्वः) ज्ञान और उत्तम कर्म द्वारा परमेश्वर और बन्धुजनों को प्रसन्न करने हारा होकर (विश्वे भुवने) समस्त संसार में (अर्पितः) स्थिर होकर रहे। वह (पूषा) गृहस्थ का पालक पोषक (शिथिराम्) काम करने में शिथिल, अल्पशक्ति वाली, (अष्ट्राम्) भोग योग्य स्त्री को (उद् वरीवृजत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे, उससे उद्वाह करे। वह (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सं-चक्षाणः) अच्छी प्रकार देखता, वा उत्तम वचन कहता हुआ (भुवना ईयते) समस्त पदार्थों को प्राप्त हो।

यास्ते॑ पूषन्ना॒वो॑ अ॒न्तः स॑मु॒द्रे हि॑र॒ण्ययी॑र॒न्तरि॑क्षे॒ चर॑न्ति ।
ताभि॑र्यासि दू॒त्यां सूर्य॑स्य॒ कामे॑न कृत॒ श्रव॑ इ॒च्छमा॑नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक! पालक गृहपते! (नावः हिरण्ययीः अन्तः समुद्रे अन्तरिक्षे चरन्ति) जिस प्रकार नौकाएं और स्वर्णादि से भूषित, वा लोह आदि से बनी, समुद्र और आकाश दोनों स्थानों पर चलती हैं उसी प्रकार (याः) जो (ते) तेरी (हिरण्ययीः) हितकारी और रमण योग्य, सुखप्रद, (नावः) हृदय को प्रेरणा करने वाली वाणियां (समुद्रे) अति हर्षयुक्त (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तःकरण के बीच (चरन्ति) प्रवेश करती हैं (ताभिः) उन वाणियों से ही हे (कृत) कर्त्तः! तू (श्रवः इच्छमानः) अन्न और यश की कामना करता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य की (दूत्यां) दूतवत् प्रतिनिधि होने की क्रिया को (यासि) प्राप्त होता है अर्थात् सूर्य की कान्ति को प्राप्त करता है। अपनी प्रेरिका आज्ञा से ही पालक स्वामी, यशस्वी और सूर्यवत् तेजस्वी हो।

पू॒षा सु॒बन्धु॑र्दि॒व आ पृ॑थि॒व्या इ॒ळस्पति॑र्म॒घवा॑ द॒स्मव॑र्चाः ।
यं दे॒वासो॒ अद॑दुः सू॒र्या॒यै॒ कामे॑न कृ॒तं त॒वसं॒ स्व॒ञ्चम् ॥४॥२४॥

भा०—(यं) जिसको (कामेन कृतम्) कामना युक्त (तवसं) बलवान् (सु-अञ्चम्) सुभूषित, सुन्दर ढंग करके (देवासः) विद्वान् लोग (सूर्यायै) सूर्य की दीप्ति के समान उज्ज्वल, कमनीय स्त्री के लिये (अदद्युः) पति रूप से प्रदान करें। (पूषा) गृहस्थ का पोषक, गृहपति, (दिवः) कामना करने वा उसे चाहने वाली और (पृथिव्याः) उसकी पृथिवीवत् आश्रय रूप स्त्री का (सुबन्धुः) पूज्य बन्धुवत् प्रिय हो। वह (इडः पतिः) भूमि के पालक के समान 'इडा' अर्थात् चाहने योग्य प्रिय पत्नी का पालक और अन्न का स्वामी तथा (मघवा) धनादि सम्पन्न और (दस्म-वर्चाः) विघ्नों के नाशक तेज से सम्पन्न हो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[५९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृद् बृहती। २ विराड्बृहती। ६, ७, ९ भुरिगनुष्टुप्। १० अनुष्टुप्। ८ उष्णिक्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम्॥ १॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य, वायु वा विद्युत् के समान बलवान् पुरुष और हे अग्नि के समान दीप्ति, उत्तेजना उत्पन्न करने वाली स्त्रि! आप दोनों (सुतेषु) उत्पन्न होने वाले पुत्रों के निमित्त (यानि वीर्या) जिन २ वीर्यों, बलयुक्त कार्यों को (चक्रथुः) करें मैं (वां) आप दोनों को उन आवश्यक कर्त्तव्यों का (प्र वोच) उपदेश करता हूँ। (देव-शत्रवः) 'देव' अर्थात् प्रकाश, जल, पृथिवी आदि पदार्थों और शुभ गुणों के शत्रु, उनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करने वाले (वां पितरः) आप दोनों के पालक माता पिता, पितामह, चाचा आदि वृद्धजन (हतासः) अवश्य पीड़ित होते और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और (युवम्) तुम दोनों

(३)—'कृतः' इति सायणाभिमतः पाठः।

(जीवथः) जीवित रहकर दीर्घ जीवन जीओ। (२) विद्युत्-अग्निपक्ष में—'देव' अर्थात् किरणों के शत्रुभूत् या उनसे नष्ट होने वाले, उसी प्रकार उत्तम गुणों के शत्रु, हिंसक जन्तु और रोग आदि के जन्तु (पितरः) जो अन्य जन्तुओं का नाश करते हैं वे (वां वीर्यैः हतासः) आप दोनों के बलों से नष्ट हों। 'पितरः' पीयतिर्हिंसाकर्मा। तस्यैतद्रूपम् इति सायणः।

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त सूर्य और अग्नि के तुल्य पति पत्नी, (वाम्) आप दोनों का (पनिष्ठः) अति स्तुत्य (महिमा) महान् सामर्थ्य वह (इत्था बट्) इस प्रकार का अति सत्य है। क्योंकि (वां) आप दोनों का (जनिता) उत्पादक, मां बाप वा आचार्य, गुरुजन (समानः) एक समान पद वा मान पाने योग्य हैं। (युवं) आप दोनों वस्तुतः (भ्रातरौ) भाई बहन के समान, एक दूसरे के पोषक पालक हो। (युवं) तुम दोनों (यमौ) ब्रह्मचर्याश्रम में संयम से रहने वाले, युगल होकर और (इह-इह-मातरौ) इस गृहाश्रम में रह २ कर सन्तानों के माता पिता होवो॥ माता या स्त्री की अग्नि रूपता देखो, छान्दोग्य में पञ्चाग्नि प्रकरण, योषा वै अग्निः। तस्यां देवाः वीर्यं जुह्वति। अथवा सामवेद मन्त्रब्राह्मण में—अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वन् त्रैश्रृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु॥ मन्त्र ब्रा० १।१।३॥ दोनों स्त्री पुरुष समान पद के माता पिता वा समधियों वा आचार्य से उत्पन्न होते हैं। 'यम' अर्थात् ब्रह्मचर्य काल में वे दोनों भाई भाई वा भाई-बहिन के समान हैं, परन्तु लोक में—गृहस्थ होकर वे घर २ में, मां बाप बन जाते हैं।

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने।
इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे॥ ३॥

भा०—पूर्वोक्त दोनों वरवधू, पतिपत्नी, (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान्, मेघ विद्युत् के तुल्य परस्पर स्नेह धारण करने वाले और (अग्नी) दोनों अग्नियों के तुल्य तेजस्वी, (ओकिवांसा) परस्पर मिलकर रहने वाले, परस्पर समवेत, अर्थात् नित्य सम्बन्ध बनाकर रहने वाले, (सुते) पुत्र के निमित्त (सचा) एक साथ संगत हुए, (आदने) ऐश्वर्य भोग वा भोजन के निमित्त (अश्वा सप्ती इव) वेगवान् दो अश्वों के समान सदा साथ रहने वाले, (अवसा) परस्पर की रक्षा, अन्न-तृप्ति, ऐश्वर्य आदि के द्वारा (इह) इस गृहाश्रम में विराजें और (वयम्) हम सब उन दोनों (वज्रिणा) बलवान्, वीर्यवान्, (देवा) दानशील, तेजस्वी एवं एक दूसरे की कामना करते हुए दोनों को (हवामहे) इस गृहस्थाश्रम में आदरपूर्वक बुलाते हैं।

य इ॑न्द्राग्नी सु॒तेषु॑ वां॒ स्तव॒त्तेष्वृ॑तावृधा।
जो॒ष॒वा॒कं वद॑तः पज्रहोषिणा॒ न दे॑वा भ॒सथ॑श्च॒न ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो! (सुतेषु) उत्पन्न पुत्रों के निमित्त (ऋत-वृधा वां) धन, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करने वाले आप दोनों को (यः) जो विद्वान् (स्तवत्) उपदेश करे, आप दोनों (जोषवाकं वदतः) प्रीति वचन बोलने वाले, उसके प्रति (पज्रहोषिणा) उत्तम कमाये धन देने और उत्तम वचन कहने वाले होओ। आप दोनों (देवा) परस्पर प्रीतियुक्त, दानशील होकर उसके प्रति (न भसथः चन) कभी व्यर्थवाद वा उपहास न करो।

इन्द्रा॑ग्नी॒ को अ॒स्य वां॒ देवौ॒ मर्त॑श्चिकेतति।
विषू॑चो॒ अश्वा॑न्युयुजा॒न ई॑यत॒ एकः॑ समा॒न आ रथे॑ ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी और हे (देवौ) विद्वान् स्त्री पुरुषो! (वां) आप दोनों के बीच, (कः मर्त्तः) कौन मनुष्य (चिकेतति) जानता है जो (एकः) अकेला ही, (समाने रथे) एक समान रमण योग्य गृहस्थ या देहस्थ रथ में (वि-पूचः) विविध दिशाओं

में जाने वाले (अश्वान्) अश्वों के समान नाना विषय भोगने वाले इन्द्रियों को (युयुजानः) योग वा कर्मकौशल से एकाग्र करता हुआ (ईयते) जीवन मार्ग पर गमन करता है? उत्तर—(कः) कर्त्ता, प्रजापति, गृहस्थ। (२) विज्ञान पक्ष में—कौन पुरुष विद्युत् और अग्नि इनके रहस्य-विज्ञान को जानता है? जो जानता है वह (समाने रथे विषूचः अश्वान् युयुजे) एक ही समान रथ में नाना प्रकार के, नाना शक्ति वाले, नाना आकार-प्रकार के 'अश्व' अर्थात् वेगयुक्त एंजिन, यन्त्रादि लगा कर वेग से गमन करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इन्द्रा॑ग्नी अ॒पादि॒यं पूर्वागा॑त्प॒द्वती॑भ्यः।
हि॒त्वी शिरो॑ जि॒ह्वया॒ वाव॑द॒च्चर॑त्त्रिं॒शत्प॒दा न्य॑क्रमीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, विद्युत् और अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो! (इयम्) यह स्त्री (अपात्) अपने सत्य वचन से न गिरने हारी, (पद्वतीभ्यः) उत्तम आचरण वाली अन्य सखियों से भी (पूर्वा) प्रथम, सबसे मुख्य होकर (आ अगात्) सबके सन्मुख आवे। वह (शिरः हित्वी) शिर को बांधकर, उत्तम रीति से वेणी आदि बनाकर (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) व्यक्त भाव प्रकट करे और (चरत्) तदनुसार आचरण करे और (त्रिंशत् पदा) तीसों पदों या स्थानों में (नि अक्रमीत्) निकल कर जावे। भोजनान्तरशतपदीवत् त्रिंशत्पदेत्युपलक्षणम् ॥ (२) विद्युत्-पक्ष में—(इयं) यह विद्युत् वेगवती होने से गाड़ी के चरणों वाली, गमनशील, पशुओं से जुती गाड़ियों की अपेक्षा पूर्व पहुँच सकती है। (शिरः हित्वा) अग्र भाग जोड़ देने से यन्त्र द्वारा बोलती है, सर्किट में चलती है, तीसों स्थानों में व्याप जाती है।

इन्द्रा॑ग्नी॒ आ हि त॑न्व॒ते नरो॒ धन्वा॑नि बा॒ह्वोः।
मा नो॑ अ॒स्मिन्म॑हाध॒ने परा॑ वर्क्तं॒ गवि॑ष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत्-अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो! (अस्मिन् महाधने) इस संग्राम में (गविष्टिषु) भूमियों को विजय करने के अवसरों

में (नः मा परा वर्क्तम्) हम अन्य नगरवासियों को छोड़कर मत भागना। क्योंकि उस समय तो (नरः) मनुष्य लोग (बाह्वोः) बाहुओं में (धन्वानि) धनुषों को लेकर (आ तन्वते) युद्ध किया करते हैं। गृहस्थ में प्रवेश करने वाले स्त्री-पुरुषों को नागरिकों के कर्त्तव्य का उपदेश है कि संग्राम के अवसर पर नगर को संकट में छोड़कर न भागें, वे वीरों के समान शस्त्र लेकर युद्ध करें।

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो! (अर्यः) आगे आने वाली (अघाः) पापयुक्त हिंसक (अरातयः) शत्रु सेनाएं (मा तपन्ति) मुझे सन्ताप देती हैं। आप लोग (द्वेषांसि) द्वेष करने वालों को (अप आ कृतं) दूर करो और (सूर्यात् अधि) सूर्य के प्रकाशमय जीवन से उनको (युयुतम्) नियुक्त करो।

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो! (युवोः) तुम दोनों के (दिव्यानि) उत्तम, सूर्यादि से उत्पन्न और (पार्थिवानि) पृथिवी से उत्पन्न, सुभिक्ष, अन्न, जल, रत्न, भूमि आदि (वसु) नाना द्रव्य हों। आप दोनों (नः) हमें (इह) इस राष्ट्र में (विश्वायु-पोषसम्) समस्त मनुष्यों को वा जीवन भर पोषण करने में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य (प्र यच्छतम्) प्रदान करो।

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (उक्थ-वाहसा) उत्तम वचन या ओम् को धारण करने वाले! (स्तोमेभिः) स्तुतियोग्य वचनों और वेदमन्त्र के सूक्तों से (हवन-श्रुता) दानयोग्य ज्ञान को श्रवण करने हारे! (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और

तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस उत्पन्न हुए पुत्रादि सन्तान के पालने के लिये (विश्वाभिः गीर्भिः) सब प्रकार की विद्याओं से ज्ञानवान् होकर (आ गतम्) आओ । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[६०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ विराड्गायत्री । ५, ९, ११ निचृद्गायत्री । २, १०, १२ गायत्री । १३ स्वराट् पंक्तिः । १४ निचृदनुष्टुप् । १५ विराडनुष्टुप् ॥

पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान्, (अग्नी) अग्निवत् तेजस्वी (सहुरी) सहनशील (सहस्-तमा) अति बलशाली, (सहसा) बल से (वाजयन्ता) ऐश्वर्य वा संग्राम करने वाले, (भूरेः वसव्यस्य) बहुत द्रव्य के (इरज्यन्ता) स्वामियों की (सपर्यात्) सेवा करे वह (वृत्रम् श्नथत्) विघ्नों को नाश करता, (वाजं सनोति) ऐश्वर्य को भोगता और औरों को भी देता है । (२) (यः इन्द्र-अग्नी सहुरी श्नथत्) जो वायु विद्युत् और सूर्य अग्नि दोनों को वश करता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) धन और अन्न को भोगता है । वह (सहुरी सपर्यात्) दोनों बलशाली तत्वों को कार्य में लगाता है । वह (वसव्यस्य भूरेः इरज्यन्त) भारी ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है । वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) बहुत धन और अन्नादि ऐश्वर्य को भोगता है ।

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! अग्रणी नायक ! अथवा पूर्वोक्त स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों ! (ताः)

उन (गाः अभि) भूमियों को लक्ष्य करके (योधिष्टम्) शत्रुओं से युद्ध करो और (नूनम्) अवश्य (अपः) आप्त प्रजाओं और (स्वः) सुखकारक, वा उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली (उषसः) कमनीय, कान्तियुक्त, प्रिय, प्रभातवेलाओं के समान सुन्दर (ऊढ़ाः) विवाहित पत्नियों को लक्ष्य कर उनकी मान रक्षा के लिये (अभि योधिष्टम्) शत्रु वा दुष्ट जनों को प्रहार करो। हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (दिशः) दिशाओं (स्वः) सुखमय प्रकाश और (उषसः) उषाओं के समान सुप्रसन्न प्रजाजनों को और (चित्राः) अद्भुत एवं पूज्य (अपः) जलवत् शीतल, एवं आप्त जनों को और (गाः) भूमियों, इन्द्रिय गणों को (युवसे) मिला और हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तू भी उसी प्रकार (नियुत्वान्) उत्तम अश्वों का स्वामी होकर (दिशः) आदेश मानने वाली (स्वः) प्रेरणा योग्य (उषसः) शत्रु को दग्ध करने वाली (चित्राः) अद्भुत बलशाली, (अपः) जल धारावत् प्रवाह से जाने वाली, (गाः) शस्त्रास्त्र चलाने वाली सेनाओं को (युवसे) प्राप्त कर।

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृत्रहणा) विद्युत् और सूर्य के समान मेघवत् शत्रु पर आघात करने वाले (इन्द्र अग्ने) विद्युत् के समान तेजस्विन्! राजन्! अग्नि के तुल्य सत्यप्रकाशक विद्वन्! सभ्यजन! आप दोनों (वृत्रहभिः) दुष्टों का नाश करने वाले (नमोभिः) शस्त्रास्त्रों, उपायों से और (शुष्मैः) बलों सहित (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ और हे (इन्द्र अग्ने) दुष्ट नाशक! पापियों को सन्ताप देने हारे जनो! (युवं) आप दोनों (अकवेभिः) अनिन्दनीय अनेकों (उत्तमेभिः) उत्तम २ (राधोभिः) धनों से (भवतम्) सम्पन्न होओ।

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥

भा०—(ययोः) जिन दो के बल पर (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (पुरा कृतम्) पहले बना और अब भी (पप्रे) व्यवहार करता और चलता है, मैं (ता) उन दोनों (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि वा वायु अग्नि तत्वों का (हुवे) उपदेश करूं। वे दोनों (न मर्धतः) विश्व को नाश नहीं करते। इसी प्रकार राष्ट्र में जिनके बल पर संसार व्यवहार चलता है, जो राष्ट्र को नष्ट नहीं होने देते वे तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् पुरुष 'इन्द्र' और 'अग्नि' हैं।

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हम लोग (उग्रा) अति तेजस्वी, (वि-घनिना) विशेष रूप से आघात करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु विद्युत् दोनों को (हवामहे) प्राप्त करें, उनको अपने वश करें (ता) वे दोनों (नः) हमें (ईदृशे) इस प्रकार के व्यवहार में (मृडातः) सुखी करते हैं। इसी प्रकार शत्रुओं को दण्ड देने वाले, तेजस्वी सेनापति और सैन्य को हम (मृधः) संग्रामों को विजय करने के लिये प्राप्त करें (ताः नः मृडात) वे हम पर दया करें। मृडति-रुपदयाकर्मा ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥

भा०—आप दोनों (आर्या) श्रेष्ठ स्वभाव होकर (वृत्राणि हतः) विघ्नों और विघ्नकारियों को दण्डित करें। आप दोनों (सत्पती) सज्जनों के पालक और उत्तम पति-पत्नी होकर (दासानि) भृत्य जनों तथा प्रजा के उपक्षय करने वाले कार्यों और करने वालों को भी (हतः) दण्डित करो और आप दोनों (विश्वा द्विषः) सब द्वेष के भावों और द्वेष करने वालों को भी (अप हतः) दण्डित कर दूर करो।

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! सेनापति सैन्य जनो ! हे (शम्भुवा) शान्ति देने हारो ! (युवाम्) आप दोनों की (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुति युक्त वचन वा स्तोता जन (अभि-अनूषत) साक्षात् प्रशंसा करते हैं वा विद्वान् जन उपदेश करते हैं। आप दोनों (सुतम् पिबतम्) उत्पन्न अन्नादि ओषधि, प्राप्त ऐश्वर्य का पालन वा उपभोग करो।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (नरा) नायक जनो ! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्रणी पुरुषो ! (याः) जो (वां) आप दोनों की (पुरु-स्पृहः) बहुतों से अभिलाषा करने योग्य (नि-युतः) अधीन नियुक्त सेनाएं वा लक्षों सम्पदाएं वा उत्तम इच्छाएं (सन्ति) हैं (ताभिः) उनसे आप दोनों (दाशुषे) दानशील, करप्रद प्रजाजन के हितार्थ (आगतम्) आइये।

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्निसम तेजस्वी जनो ! आप (ताभिः) इन सम्पदाओं, शुभ कामनाओं से (आ गच्छतम्) आइये। (इदं सवनं) यह यज्ञ (उप सुतम्) अच्छी प्रकार किया गया है। आप (सोम-पीतये) ओषधिरस वत् ऐश्वर्य, सुख के उपभोग के लिये प्राप्त हूजिये।

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—जैसे अग्नि (अर्चिषा) ज्वाला से (विश्वा वना) सब बनों या काष्ठों में (परि स्वजत्) लग जाता है और उनको (जिह्वया) ज्वाला से (कृष्णा) काला कोयला (करोति) बना देता है और जैसे सूर्य वा विद्युत् (अर्चिषा) अपनी दीप्ति से (विश्वा वना परिष्वजत्) समस्त किरणों और

मेघस्थ जलों को व्यापता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) अपनी ग्रहण-कारिणी आकर्षक शक्ति से आकर्षण करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (अर्चिषा) अर्चना वा आदर सत्कार योग्य उत्तम कर्म से (विश्वा वना) समस्त विभाग योग्य द्रव्यों को (परि स्वजत्) प्राप्त कर लेता है और (जिह्वया) वाणी द्वारा (कृष्णा) नाना आकर्षण (करोति) उत्पन्न करता है, हे विद्वन् ! तू (तम् ईडिष्व) उसको चाह, उसकी स्तुति और आदर कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (द्युम्नाय) तेजोवृद्धि के लिये (सुतराः अपः) सुखप्रद जल और (सुम्नम्) सुखकारी अन्न (इद्धे) उसके तेजस्वी होने पर (आ विवासति) आदर से देता है, उसकी सेवा करता है वह स्वयं (सुम्नम्) सुख और (सुतराः अपः) सुखजनक जलों को प्राप्त करता है । (२) (यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य) विद्युत् के (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य को (इद्धे) उसके प्रदीप्त तेज के बल पर (आ विवासति) आविष्कार करना चाहता है वह (द्युम्नाय) ऐश्वर्य या अति तेज के लिये भी (सु-तराः अपः) खूब वेग से जाने वाले जलों को प्राप्त करे, उससे विद्युत् प्राप्त करे । (३) शिष्य (इन्द्रस्य) ज्ञानप्रद गुरु की सेवा करे वह (द्युम्नाय) यश के लिये सुख से पार तराने वाले कर्मों वा ज्ञानों का प्राप्त करे ।

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः ।
इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्ययुक्त, तेजस्वी और ज्ञानयुक्त स्त्री पुरुषो ! आप लोग (नः वाजवतीः इषः) हमारे बलयुक्त अन्नों, ऐश्वर्ययुक्त काम-नाओं तथा संग्रामकारी सेनाओं को आप दोनों (पिपृतम्) पालो और (आशून् अर्वतः) शीघ्रगामी अश्वों और शत्रुहिंसक वीरों को भी

(पिपृतम्) पालन करो और (इन्द्रम् अग्निं च) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष, ज्ञानयुक्त और अग्नितत्व से युक्त तुझे प्राप्त होने वाले स्त्री पुरुष इन दोनों को (वोढवे) विवाह करने के निमित्त (पिपृतम्) पालन करो। अर्थात् पुरुष जब तक पर्याप्त धन न कमावे और स्त्री जब तक ऋतु से न हो तब तक उनके माता पिता पालें और बाद में उनके विवाह करें। (३) विज्ञानपक्ष में—विद्युत् और अग्नि दोनों का रथ वहन के लिये प्रयोग करो क्योंकि ये दोनों तत्व वेगवान् प्रेरणा और वेग से जाने वाले बलों को धारते हैं।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे विद्युत् अग्निवत् तेजस्वी प्रकाशवान् धनी ज्ञानी स्त्री पुरुषो! (उभा) दोनों आप (इषां) अन्नों और (रयीणाम् दातारा) धनों को देने वाले हो। (वाम् उभा) आप दोनों को मैं (वाजस्य सातये) बल, अन्न और ऐश्वर्य के विभाग के लिये (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूँ और (उभा) दोनों आदरपूर्वक और (सह) एक साथ मिलकर (राधसः) धन का (मादयध्यै) आनन्द-लाभ करने के लिये (वाम् उभा हुवे) आप दोनों की प्रार्थना करता हूँ।

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य विद्युत् या मेघ विद्युत् के समान परस्पर वर्त्तने वाले स्त्री पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (गव्येभिः) गौ आदि पशु से प्राप्त दुग्ध आदि पदार्थों, वाणी के ज्ञानों और भूमि से प्राप्त अन्नों सहित और (अश्व्यैः) अश्व योग्य रथों और (वसव्यैः) धनों से प्राप्त होने योग्य सुखों एवं बसे हुए जनों के हितकारी साधनों सहित (उप गच्छतम्) प्राप्त होओ। आप दोनों (सखायौ) समान ख्याति वा नाम, प्रसिद्धि वाले, परस्पर मित्र, (देवौ) दीप्तियुक्त, सुखप्रद और (सख्याय) मित्रता की

वृद्धि के लिये (शम्भुवा) शान्ति देने वाले हो। (ता) उन आप दोनों को हम लोग (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें। उसी प्रकार हमारे पास विद्युत् और अग्नि भूमि या किरणों के योग्य दीपकादि, वेगवान् साधनों, रथादि और गृहादि योग्य यन्त्रों सहित प्राप्त हों।

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! आप दोनों (सुन्वतः यजमानस्य) नाना पदार्थों को उत्पन्न करने वाले, दानशील पुरुष के (हवं) वचन को (शृणुतं) श्रवण करो। (हव्यानि वीतं) उत्तम अन्नों का भोजन करो। (सोम्यं मधु) बलदायक, ओषधिरस से युक्त मधुर पदार्थ का (पिबतं) पान करो। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सरस्वती देवता ॥ छन्दः—१, १३ निचृज्जगती। २ जगती। ३ विराड्जगती। ४, ९, ११, १२ निचृद्गायत्री। ५, ६, १० विराड्गायत्री। ७, ८ गायत्री। १४ पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति १

भा०—(इयम्) यह सरस्वती, वेगयुक्त जल, वाणी, नदी जिस प्रकार (वध्र्यश्वाय) अश्व अर्थात् वेग से जाने वाले प्रवाह को रोकने या उसको और अधिक बढ़ाने वाले पुरुष को (ऋण-च्युतं) जल से प्राप्त होने वाला, (दिवः दासम्) तेज या विद्युत् का देने वाला (रभसम्) वेग (अददात्) प्रदान करती है और (यः) जो नदी (शश्वन्तम्) निरन्तर चलने वाली और (पणिं) व्यवहार योग्य, उत्तम (अवसं) गति को (आचखाद) स्थिर रखती है और उसके (ता तविषा दात्राणि) वे २ नाना प्रकार के बलयुक्त दान हैं उसी प्रकार यह सरस्वती, वाणी वा ज्ञानमय

प्रभु ! (वध्र्यश्वाय) अपने इन्द्रिय रूप अश्वों को बांधकर संयम से रहने वाले और (दाशुषे) अपने आपको उसके अर्पण करने वाले भक्त को वा ज्ञानदाता विद्वान् को, (ऋण-च्युतं) ऋण से मुक्त करने और (दिवोदासं) ज्ञान प्रकाश देने वाले (रभसं) कार्य साधक बल और ज्ञान (अददात्) प्रदान करती है और (या) जो (शश्वन्तम्) अनादि काल से विद्यमान, नित्य, (अवसम्) ज्ञान, रक्षा बल और (पणिम्) व्यवहार साधक, वा स्तुत्य ज्ञान वा ज्ञानवान् पुरुष को (आचखाद्) स्थिर कर देती है। हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली वाणि ! (ते) तेरे (तविषा) बड़े (ता दात्राणि) वे अनेक दान हैं। (२) स्त्रीपक्ष में—योषा वै सरस्वती वृषा पूषा ॥ शत० २।५।१।११॥ (इयम्) यह स्त्री (दाशुषे) अन्न, वस्त्र, वीर्य, सर्वस्व देने वाले (वध्र्यश्वाय) इन्द्रिय बल को बढ़ाने वाले, वीर्यवान् पुरुष के लिये (रभसम्) दृढ़ (ऋण-च्युतम्) पितृऋण से मुक्त कर देने वाले (दिवः-दासं) प्रसन्नतादायक पुत्र प्रदान करती है। (अवसं) रक्षक (पणिं) स्तुत्य पति को (शश्वन्तम्) पुत्रादि द्वारा सदा के लिये (आचखाद्) स्थिर कर देती है, स्त्री के वे नाना बड़े महत्वयुक्त (दात्रा) सुखमय प्रदान हैं।

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२

भा०—जैसे नदी (बिसखाः-इव) कमल के मूल उखाड़ने वाले के समान (उर्मिभिः तविषेभिः) बलवान् तरंगों से (गिरीणां सानु अरुजत्) पर्वतों के चट्टानों को तोड़ डालती है और जैसे विद्युत् (शुष्मेभिः) बल-युक्त प्रहारों से (गिरीणां सानु) मेघों या पर्वतों के शिखरों को तोड़ती फोड़ती है, वैसे (इयं) यह वाणी (शुष्मेभिः) बलयुक्त (तविषेभिः) बड़े २ (ऊर्मिभिः) तरंगों से युक्त उल्लासों से (गिरीणां) स्तुति वा वाणियों के प्रयोक्ता विद्वान् पुरुषों के (सानु) प्राप्तव्य ज्ञान को (अरुजत्) तोड़ देती है। उस (पारावतघ्नीं) परब्रह्मस्वरूप 'अवत' अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुँचने वाली, वहां तक का ज्ञान देने वाली (सरस्वतीम्) प्रशस्त

ज्ञानयुक्त वेद वाणी को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम मलनाशक, पापशोधक (धीतिभिः) अध्ययनादि कर्मों से (आ विवासेम) अच्छी प्रकार सेवन करें, निरन्तर अभ्यास करें।

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति देवि ! वाणि ! तू (देवनिदः) विद्वानों और देव, परमेश्वर की निन्दा करने वालों और निन्दा के भावों को (नि बर्हय) दूर कर। (बृसयस्य) संशय आदि करने वाले (विश्वस्य) सब (मायिनः) प्रज्ञावान् पुरुष को (प्रजां) प्रजा, शिष्य आदि को (अविन्दः) प्राप्त कर (उत) और (क्षितिभ्यः) भूमि निवासी मनुष्यों के हितार्थ (अवनीः) नदीवत् सुरक्षित भूमियों को (अविन्दः) प्राप्त करा। हे (वाजिनीवति) ज्ञानयुक्त विद्याओं से समृद्ध वाणि ! तू (एभ्यः) इन लोगों के लिये (विषम्) मलशोधक जल के समान विविध पापों का अन्त कर देने वाले ज्ञान को (अस्रवः) प्रवाहित कर। (२) नदी लोगों को बसने के लिये नाना स्थान और जल प्रदान करती है।

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

भा०—(सरस्वती देवी) उत्तम जल-प्रवाह से युक्त नदी जैसे (वाजेभिः) नाना अन्नों से (वाजिनीवती) अन्न से सम्पन्न भूमि वाली होकर (धीनाम् अवित्री) नाना कौसल कर्मों को चलाने वाली होती और प्रजा को पालती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री हो। वह (वाजेभिः) ज्ञानों और बलों से (वाजिनीवती) विद्या सम्पन्न होकर (धीनाम्) उत्तम बुद्धियों और कर्मों की (अवित्री) प्रकाश करने वाली होकर (नः प्र अवतु) हमें प्राप्त हो।

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देवि) ज्ञानदात्रि ! (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न महाभागे ! (वृत्र-तूर्ये इन्द्रं न) मेघ को छिन्न भिन्न करने के कार्य में 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत् के समान (यः) जो पुरुष (त्वा) तुझको (हिते धने) हितकारी धन को प्राप्त करने के निमित्त (उप ब्रूते) उपदेश करता है तू ऐसे पुरुष को (धीनाम् अवित्री प्र अवतु) बुद्धियों को पालन करती हुई प्राप्त हो। अवत्वित्यस्य पूर्वतोऽपकर्षः ॥ इति त्रिंशो वर्गः ॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवि) कमनीय स्वभावयुक्त, प्रिये (सरस्वति) विदुषि ! हे (वाजिनि) उत्तम ज्ञानवति, अन्नदात्रि ! बलवति ! तू (वाजेषु) बलयुक्त संग्राम आदि ज्ञानयुक्त अध्ययनादि कालों में भी (नः सनिम्) हमें देने योग्य हमारी वृत्ति तथा विवेचक बुद्धि को (पूषा) भूमि या पोषक पति के समान ही (अव) पालन कर और (रद) दे। स्त्री भृत्यादि को पतिवत् ही पालन करे।

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (सरस्वती) वेद वाणी, (घोरा) दुष्टों को भय देने वाली, (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली (वृत्र-घ्नीः) अज्ञान रूप विघ्न को नाश करने वाली, (सु-स्तुतिम् वष्टि) सदा उत्तम उपदेश करना चाहती है। (२) इसी प्रकार (नः) हमारे बीच वह विदुषी स्त्री, (घोरा) दयाशील, सुवर्ण रथ पर चढ़ने हारी, वा उत्तम हितकारक सदाचार मार्ग पर चलने हारी, (वृत्रघ्नी) दुष्टों का नाशक होकर उत्तम प्रशंसा की कामना करे।

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः ।
अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥

भा०—(यस्याः) जिस वाणी का (अनन्तः) अनन्त (अमः) व्यापक

ज्ञान (अह्रुत:) कुटिलतारहित, सरल, (त्वेष:) दीप्तियुक्त, (चरिष्णुः) फैलने वाला, (अर्णवः) सत्य से युक्त, समुद्र के समान महान्, (रोरुवत्) शब्द करता हुआ उपदेश रूप में (चरति) गुरु से शिष्य के पास जाता है वह वेदवाणी सबको अभ्यास करने योग्य है। (२) इसी प्रकार (यस्याः अमः) जिसका साथी पुरुष अनन्त बलशाली, (त्वेषः) तेजस्वी, (चरिष्णुः) विचारशील, समुद्रवत् गम्भीर, गर्जना वा उपदेश करता हुआ विचरता है। (३) इसी प्रकार नदी का (अमः) गमन स्थान समुद्र है, वह गर्जता है।

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी।
अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥

भा०—(अहा इव सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार दिनों के पार पहुँच जाता है, इसी प्रकार (सा) वह, (ऋतावरी) सत्य ज्ञान से श्रेष्ठ, वाणी, (अन्याः) अन्य (स्वसॄः) स्वयं आ जाने वाले (नः) हमारे (द्विषः) शत्रु, द्वेष या अप्रीति युक्त भावों से (अति अतन्) हमें पार करे। (२) इसी प्रकार विदुषी स्त्री, सत्य और श्रेययुक्त न्यायनिष्ठ होकर अन्य सब बहिनों को भी पार कर सब शत्रुओं से हमें पार करे।

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—(उत) और (सरस्वती) अन्तरिक्ष में विचरने वाली उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी (सप्त-स्वसा) पांच प्राण, मन और बुद्धि इन ७ मुखों में स्थित वा ७ प्राणों से युक्त, (सु-जुष्टा) सुखपूर्वक सेवित, (प्रियासु) सब प्रिय वृत्तियों में भी (नः प्रिया) हमें अति प्रिय होने से (स्तोम्या भूत्) स्तुति योग्य है। वेदवाणी, गायत्री आदि सात छन्दों से 'सप्त-स्वसा' है। वही अति प्रिय, (स्तोम्या) भगवत्स्तुति के योग्य है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम्।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्यारूप सरस्वती तो (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित समस्त पदार्थों, (रजः) कण २ परमाणु २ समस्त लोकों और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में भी (आपप्रुषी) व्याप्त है। प्रभु की वह ज्ञान शक्ति हमें (निदः) निन्दा करने वाले से (पातु) बचावे।

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

भा०—जो वाणी (त्रि-सधस्था) नाभि, उरस् और कण्ठ तीनों में विराजती है। जो (सप्त-धातुः) रक्त, मेदस्, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक्र सातों से धारण करने योग्य होकर (जाता) उत्पन्न हुए (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रियों को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई, (वाजे वाजे) प्रत्येक ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के कार्य में (हव्या भूत्) स्तुति योग्य है। (२) वेदवाणी सात छन्दों से धारण योग्य होने से सप्त धातु और ब्राह्मणादि और निषाद इन पांचों को बढ़ाती है। वह ईश्वरस्तुति के योग्य है। (३) देवी, स्त्री, सातों धातुओं को धारण करने वाली, पिता, स्वसुर, भाई, देवर और पुत्र पांचों का मान बढ़ाती, प्रत्येक यज्ञ में संगिनी रूप से स्वीकार्य है।

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३॥

भा०—(या) जो वाणी, (महिम्ना) महान् सामर्थ्य वा ज्ञान से (महिना) पूज्य है, जो (अप्सु) इन सबमें (द्युम्नेभिः) यशों वा ज्ञानमय प्रकाशों से (अन्याः) अन्य प्रजाओं को भी (सु चेकिते) ज्ञानयुक्त करती है और (अपसाम्) कर्म करने वाले विद्वानों के बीच (अपस्तमा) उत्तम कर्मोपदेश करने वाली है, जो (रथः इव) रथ, वा महान् आकाशवत् (बृहती) बहुत बड़ी, वेदवाणी (विभ्वने) विभु, व्यापक ब्रह्म की स्तुति के लिये (कृता) प्रकट की जाती है, जो (चिकितुषा) विद्वान् पुरुष द्वारा (उपस्तुत्या) उपासना काल में भी परमेश्वर के स्तुति है वह (सरस्वती) वाणी, वेदवाणी पूज्य है।

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मापं स्फरीः पयसा न आ धंक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥
३२ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वेदवाणि ! हे प्रभो ! तू (नः) हमें (वस्यः) अति समृद्ध ऐश्वर्य को (अभि नेषि) प्राप्त करा। (मा अप स्फरीः) हमें विनाश मत कर। (पयसा) पुष्टिकारक ज्ञान से (नः) हमें (मा आ धक्) थोड़ा भी दग्ध, संतप्त न होने दे। (वेश्या) प्रवेश होने योग्य (सख्या) मित्रभाव से (नः जुषस्व) हमें प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। (त्वत्) तुझसे रहित होकर हम (अरणानि) अरमणीय, दुःखदायी (क्षेत्राणि) क्षेत्र या देहों में (मा गन्म) न जावें, तिर्यग् देहों में न भटकें। (२) सरस्वती स्त्री हमें उत्तम धन प्राप्त करावे, हमें नष्ट न करे, न उजाड़े। जल अन्नादि के कारण हमें न सतावे। हृदय में प्रवेश होने योग्य मित्र भाव से प्रेम से अपनावे। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(षष्ठे मण्डले षष्ठोऽनुवाकः)

[६२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ त्रिष्टुप् ॥
एकादशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उस्रा) किरणों और वायुओं से युक्त, (अश्विना) वेगवान् किरणादि से युक्त सूर्य और उषा (ज्मः अन्तान् उरू वरांसि) पृथिवी के समीप के नाना पदार्थों को (परि युयूषतः) पृथक् २ दर्शाते हैं उसी प्रकार (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् साधनों से सम्पन्न (दिवः नरा) ज्ञानप्रकाश वा उत्तम कामना और व्यवहार के प्रवर्त्तक, (अस्य) इस जगत् के बीच (प्र-सन्ता) उत्तम सामर्थ्यवान्, मानयुक्त होकर रहें। (या) जो (सद्यः) शीघ्र ही (उस्रा) तेजस्वी होकर (व्युषि) विशेष कामना या इच्छा होने पर (अन्तान्) समीपस्थ सत्य पदार्थों को और (उरू वरांसि) बहुत से दुःखवारक, श्रेष्ठ पदार्थों को (ज्मः परि युयूषतः) पृथिवी से पृथक् कर लेते, प्राप्त करते और उनका विवेक करते हैं, ऐसे विवेचक स्त्री पुरुषों को (अर्कैः जरमाणः) उत्तम अर्चना अर्थात् सत्कारोचित साधनों से (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूँ।

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥

भा०—(रथस्य रजोभिः भानुम्) रथ के धूलिकणों से सूर्य को सुशोभित करते हुए, रथ से जाते हुए जिनको लोग सूर्य उषा के समान जानते हैं (ता) वे आप दोनों (शुचिभिः) शुद्ध पवित्र आचरणों से, (यज्ञम् आ चक्रमाणा) सत्संग, दान, सत्कार आदि व्यवहार करते हुए (रथस्य) रमणीय व्यवहार के (रजोभिः) तेजों से (भानुम्) अपने तेज को (रुरुचुः) अति रुचिकारक बनाओ। आप दोनों इस जगत् में (अमिता) अनेक (पुरू) बहुविध (वरांसि) श्रेष्ठ रथादि पदार्थों का (मिमाना) निर्माण करते हुए (अज्रान्) वेग से जाने वाले अश्व, यानादि को (अपः धन्वान् अतियाथः) समुद्रों और मैदानों के पार पहुँचाने में समर्थ होवो।

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—(त्यत् वर्त्तिः) वह मार्ग (यत् अरध्रम्) जो मनुष्यों के वश का न हो, जिस पर चला न जा सके, ऐसा ऊंचा, नीचा, विषम, आकाश जलादि का मार्ग है और जो (दाशुषः मर्त्यस्य) राष्ट्र में कर आदि देने वाले प्रजाजन को (व्यथिः) दुःख देता है, उसको (परि शयध्यै) सुख से पार करने के लिये (उग्रा) बलवान् (ता) वे दोनों (अश्विना) वेगवान् रथ, अश्व यन्त्रादि के जानने वा बनाना जानने वाले, विद्युत् अग्निवत् शिल्प कुशल स्त्री पुरुष, (शश्वत्) सदा (अश्वैः) वेग से जाने वाले यन्त्रों और (मनोजवेभिः) मन के समान वेगवान् वा विज्ञानपूर्वक अपने संकल्पानुसार न्यूनाधिक वेग रखने योग्य (इषिरैः) इच्छानुकूल चलने वाले रथादि साधनों से (इत्था धियः ऊहथुः) इस प्रकार नाना कर्म करें, लोगों को उन रथ, अश्व, यन्त्रादि से (परि ऊहथुः) पार या दूर देश तक पहुँचा दिया करें।

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥ ४ ॥

भा०—(युयुजान-सप्ती) वेग वाले रथादि यन्त्रों में जुड़े वायु, विद्युत् जिस प्रकार (नव्यसः जरमाणस्य मन्म उपभूषतः) स्तुत्य उपदेष्टा के ज्ञान को भूषित करते हैं उसी प्रकार (युयुजान-सप्ती) वेगवान् अश्वादि को रथ में जोड़ने वाले सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (नव्यसः जरमाणस्य) स्तुत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (मन्म उपभूषतः) मनन करने योग्य ज्ञान प्राप्त करावें। वे दोनों (शुभं) उत्तम कान्ति (पृक्षम्) परस्पर सम्पर्क और (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल (वहन्ता) धारण करते हुए हों। उन (युवाना) युवा युवति बलवान् दोनों को (प्रत्नः) वृद्ध (होता) ज्ञानदाता विद्वान्, बड़ा धनप्रद पुरुष (यक्षत्) ज्ञान प्रदान करे। वा उनको धन की सहायता देकर विज्ञान की उन्नति करे।

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्ररांती ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत् दोनों (वल्गू) सुखजनक, (दस्रा) दुःखों के नाशक, (पुरु-शाक-तमा) नाना शक्तिमान्, (नव्यसा वचसा) अतिस्तुत्य, वचन योग्य और (शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुः) विद्वान् उपदेष्टा को अति शान्तिदायक होते और (चित्ररातो) नाना अद्भुत ऐश्वर्य देने वाले होते हैं उसी प्रकार (या) जो स्त्री पुरुष (शंसते) उत्तम आशंसा करने वाले और (स्तुवते) ज्ञान के उपदेष्टा विद्वान् को (शम्-भविष्ठा) शान्तिदायक (बभूवतुः) हों और (गृणते) विद्या दाता गुरु को (चित्र-राती) नाना उत्तम धनादि देने वाले होते हैं (ता) उन (वल्गू) मधुर भाषी, (दस्रा) दुःखनाशक, (पुरु-शाक-तमा) बहुत शक्तियों से सम्पन्न (प्रत्ना) श्रेष्ठ पुरुषों का (नव्यसा) अति स्तुतियोग्य (वचसा) वचन से (विवासे) आदर करूं। इति प्रथमो वर्गः ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे दोनों यन्त्रस्थ विद्युत् और पवन (तुग्रस्य सूनुम्) लेन देन करने वाले के पुत्र, व्यापारी और (तुग्रस्य सूनुम्) शत्रु का नाश करने वाले, बलवान् सैन्य के प्रेरक, वा सञ्चालक (भुज्युं) भोक्ता, वा पालक सेनानायक को (समुद्रात् अद्भ्यः) आकाश से और जलों से (विभिः) पक्षियों के समान आकाश में जाने वाले यन्त्रों द्वारा (रजोभिः) उत्तम मार्गों से और (अरेणुभिः योजनेभिः) रजोरेणु से रहित, योजनों तक (अर्णसः उपस्थात्) जल के समीप (पतत्रिभिः) वेग से जाने वाले साधनों से वे (भुजन्ता) पालन करने वाले (निर् ऊहथुः) उठा ले जाने में समर्थ होते हैं। (२) स्त्री पुरुष पक्ष में—(ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (अद्भ्यः) मूल, कारणीभूत उत्पादक वीर्यांशों से (विभिः रजोभिः) कान्ति

युक्त, शुक्रांशों और रजों से (समुद्रात्) परस्पर मिलकर हर्ष देने वाले संग से (तुग्रस्य) पालक पति के (भुज्युं) वंश के पालक (सूनुं) पुत्र को (निर् उहथुः) उत्पन्न करें अर्थात् स्त्री पुरुष मिलकर शुक्रों और रजों से पुत्र उत्पन्न करें। वह पुत्र 'तुग्र्' अर्थात् वीर्यदाता और पालक पति का वंश का पालक होता है और पुत्र उत्पन्न हो जाने पर वे दोनों (अरेणुभिः) पापरहित, निर्दोष (योजनेभिः) परस्पर के समागमों से (भुजन्ता) एक दूसरे को पालन और नाना ऐश्वर्यों, सुखों का भोग करते हुए (पतत्रिभिः) जैसे वेग से जाने वाले रथों, नौकाओं वा पक्षादि युक्त यन्त्रों से (अर्णसः उपस्थात) समुद्र या जल के पार जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों (पतत्रिभिः) गिरने से बचाने वाले धर्म-साधनों से वा सन्तानों से (अर्णसः उपस्थात्) पितृऋण रूप सागर से (भुज्युं) पालक माता पिता को (निर् ऊहथुः) पार कर देते हैं। सन्तान उत्पन्न करके वे दोनों पति-पत्नी माता पिता के ऋण से मुक्त हो जाते हैं।

वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (जयुषा रथ्या) विजयशील रथ पर सवार, रथी-सारथी के समान (अद्रिं वि यातम्) पर्वतादि दुर्गम मार्ग को भी प्राप्त करो। (वृषणा) आप दोनों बलवान्, परस्पर सुखों का वर्षण करते हुए (वध्रिमत्याः हवं) कुल वृद्धि करने वाली और सुसंयत इन्द्रियों से युक्त भूमि रूप स्त्री के वचन और नाना वृद्धि युक्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भूमि विषयक उत्तम ज्ञान का (श्रुतं) श्रवण करो। (दशस्यन्ता) एक दूसरे का बल बढ़ाते हुए और प्रेमपूर्वक धन, वीर्य आदि देते हुए, (शयवे) शयु अर्थात् शिशु को उत्पन्न करने के लिये (गाम्) भूमिवत् स्त्री को (पिप्यथुः) अधिक गुण, शक्तियुक्त करो। (इति) इस प्रकार (सुमतिं च्यवाना) उत्तम ज्ञान और बुद्धि को प्राप्त होते हुए (भुरण्यू)

सन्तानों के पालक पोषक होवो। 'शयवे'—शयुः शिशुश्च समानधातुजौ समानार्थौ।

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात॥ ८॥

भा०—हे (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले राजन्, सेनानायक, एवं उसके प्रजागण, वा सैन्यगण! (यत्) जो (देवानाम्) तेजस्वी पुरुषों (उत) और (मर्त्यत्रा) मनुष्यों, विद्वानों और 'मर्त्य', शत्रु-मारक वीर भटों में (प्रदिवः) उत्तम तेजस्वी, उत्तम व्यवहारवान् (भूमा) और बहुत बड़ा (हेडः) क्रोधवान्, अनादृत पुरुष (अस्ति) है, हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो! हे (वसवः) राष्ट्र में बसे प्रजाजनो! हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने, सबके दुःखों को दूर करने हारे जनो! उस (रक्षोयुजे) विघ्नकारी पुरुषों के सहयोगी पुरुष को दण्डित करने के लिये आप लोग (अघं तपुः) हिंसा रहित, स्वयं नष्ट न होने और शत्रु को नाश करने वाला शत्रुसंतापक उपाय शस्त्रादि, (दधात) धारण करो और (रक्षोयुजे अघं तपुः दधात) रक्षकों के सहयोगी, पुरुष की वृद्धि के लिये शत्रुनाशक शस्त्र धारण करो।

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय॥ ९॥

भा०—(यः) जो (ईं) सब प्रकार से (राजानौ) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाशित होने वाले उत्तम स्त्री पुरुषों को (रजसः) समस्त लोकों के हितार्थ, उनमें (ऋतुथा) समय पर (विदधत्) विशेष रूप से धारण करता है उस जगत् को वे दोनों भी (वरुणः मित्रः) दुष्टों के वारक और स्नेही बनकर (चिकेतत्) जानें और (आनवाय) अति नवीन, या मनुष्यों के (द्रोघाय चित्) द्रोह के लिये और (वचसे) निन्दा वचन के लिये जिस प्रकार राजा दण्ड देता है उसी प्रकार (गम्भीराय रक्षसे) बड़े भारी दुष्ट पुरुष के विनाश के लिये भी (हेतिम् अस्य) शस्त्र का प्रहार करो।

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०॥

भा०—हे (अश्विनौ) उत्तम स्त्री पुरुषो! सभा वा सभापति! प्रजावर्ग और राजन्! आप दोनों (द्युमता) तेज से युक्त (नृवता) उत्तम नायक से युक्त (रथेन) रथ के समान रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ से और (अन्तरैः चक्रैः) भीतरी साधनों से (तनयाय) उत्तम सन्तान-लाभ के लिये (वर्त्तिः यातम्) रथ से जैसे मार्ग चला जाता है उसी प्रकार गृहस्थोचित व्यवहार से गृहाश्रम को प्राप्त होओ। जिस प्रकार (त्यजसा वनुष्यतां शीर्षा वृजन्ति तथा) क्रोध से हिंसकों के शिर काट देते हैं उसी प्रकार आप दोनों (सनुत्येन त्यजसा) चिरस्थायी पुत्र और धन के बल से (मर्त्यस्य) मरणशील मनुष्य को (वनुष्यताम्) विनाश करने वालों के (शीर्षा) प्रमुख कारकों को (ववृक्तम्) विनष्ट करो। चिरस्थायी सन्तान व प्रजा से आप दोनों भी अपने को नष्ट कर देने वाले मृत्यु आदि कारणों को दूर करो, सन्तान द्वारा मरणधर्मा मनुष्य भी स्थिर, अमर होकर रहे। प्रजापतिरमृतम्। शत० ॥

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक्।
दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती।११।२

भा०—हे (चित्रराती) अद्भुत दान देने वाले, अति विस्मयजनक प्रेम करने वाले राजा, प्रजा, सैन्य सेनापति, वा पति-पत्नी जनो! (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्भिः) उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट इन सब प्रकार की अश्व-सेनाओं से जिस प्रकार राजा आदि जाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी इन तीनों प्रकार के प्रजावर्गों सहित (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ और (दृढस्य) दृढ़ (गोमतः) गवादि पशु, उत्तम भूमि आदि वाले (व्रजस्य) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम के (दुरः) द्वारों को (वि वर्तम्) खोलो और (गृणते) उपदेश करने वाले विद्वान् के भी (गोमतः

व्रजस्य) वेद वाणी से युक्त व्रज अर्थात् आश्रय के द्वार को भी (वि वर्त्तम्) विशेष रूप से खोलो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ स्वराड्बृहती । २, ४, ६, ७ पंक्तिः । ३, १० भुरिक् पंक्तिः । ८ स्वराट् पंक्तिः । ११ आसुरी पंक्तिः । ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

क्व१॒॑त्या व॒ल्गू पु॑रुहू॒ताय॑ दू॒तो न स्तोमो॑ऽविद॒न्नम॑स्वान् ।
आ यो अ॒र्वाङ् नास॑त्या व॒वर्त॒ प्रेष्ठा॒ ह्यस॑थो अस्य॒ मन्म॑न् ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (दूतः न) दूत, संदेश-हर जैसे प्रकार (पुरुहूता वल्गू नमस्वान् सत् अविदत्) बहुतों में प्रशंसित, बलशाली राजा, सेनापति दोनों को नमस्कारवान् होकर भेंट करता है उसी प्रकार (स्तोमः) स्तुतियुक्त विद्वान् (नमस्वान्) दण्डपूर्वक शासन की शक्ति से सम्पन्न होकर (त्वा) उन (वल्गू) सुन्दर वाणी बोलने वाले, (पुरु-हूता) बहुतों से प्रशंसित आप दोनों को आज (क्व अविदत्) किस स्थान पर मिले ? हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले जनो ! (यः) जो आप लोगों से (अर्वाक्) विनययुक्त होकर वा (अर्वाक् = अर्-वाक्) उत्तम वचनयुक्त होकर (आ ववर्त्त) व्यवहार करे, तुम दोनों (अस्य मन्मन्) उसके मान आदर और ज्ञान में (प्रेष्ठा हि असथः) अति प्रिय होकर रहो ।

अरं॑ मे गन्तं॒ हव॑नाया॒स्मै गृ॑णा॒ना यथा॒ पिबा॑थो॒ अन्धः॑ ।
परि॑ ह॒ त्यद्व॒र्तिर्या॑थो रि॒षो न यत्परो॒ नान्त॑रस्तुतु॒र्यात् ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (अस्मै) इस मुझ जन के उपकार के लिये आप दोनों (मे हवनाय) मेरे आह्वान या सत्कार को स्वीकार करने के लिये (गृणाना) उत्तम वचन कहते हुए (यथा) जब भी (अरं गन्तम्) अच्छी प्रकार आइये तो (अन्धः पिबाथः) अन्न का अवश्य भोजन करियें

और आप दोनों (त्यद् वर्त्तिः परियाथः) उस उत्तम मार्ग में गमन करें (यत् परः न) जिसमें न दूसरा शत्रुजन और (न अन्तरः) न अपना अन्तरंग, समीपवर्त्ती जन भी (तुतुर्यात्) अपने पर प्रहार करें। अथवा (वर्त्तिः परियाथः) आप लोग ऐसे व्यवहार करें वा ऐसे गृह में जावें या रहें जिससे अपना, पराया हानि न पहुँचा सके।

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो! (वाम्) आप दोनों के प्रति (वरीमन्) उत्तम, वरण योग्य, अवसर में (अन्धसः) अन्नों का (अकारि) सत्कार किया जाय और (सुप्र-अयनतमम्) सुख से, उत्तम रीति से स्थिति करने योग्य (बर्हिः) मान-वर्धक आसन (अस्तारि) बिछाया जावे। (युव-युः) तुम दोनों को चाहने वाला पुरुष (वां) आप दोनों को (उत्तान-हस्तः) हाथों को ऊपर उठाकर (ववन्द) आप लोगों की स्तुति और अभिवादन करे और (अद्रयः) मेघ के तुल्य उदार जन (वां नक्षन्तः) आप दोनों को प्राप्त होकर (आञ्जन्) स्नेहपूर्वक चाहें वा आप दोनों का जलादि से अभिषेक, प्रोक्षण, अर्घ्य-सत्कार आदि करें।

ऊर्ध्वो वाम॒ग्निर॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्प्र रा॒तिरे॑ति जू॒र्णिनी॑ घृ॒ताची॑।
प्र होता॑ गू॒र्तम॑ना उरा॒णोऽयु॑क्त॒ यो नास॑त्या॒ हवी॑मन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले, नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजमान, स्त्री पुरुषो! (यः) जो (होता) ज्ञान वा धन का देने वाला, (गूर्त-मनाः) उद्यमयुक्त चित्त वाला, सुख से ज्ञान का उपदेश करने वाला, (उराणः) अति दानशील वा बहुत बड़े कर्म करने वाला, (ऊर्ध्वः) तुम दोनों के ऊपर अध्यक्षवत् रहकर (प्र अयुक्त) लोगों को सत्कर्म में लगाता है और (अग्निः) अग्नि, वा सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक, तेजस्वी, होकर (अध्वरेषु) उत्तम हिंसारहित उपकार कार्यों में (वाम् ऊर्ध्वः

अस्थात्) आप दोनों के ऊपर स्थित होता है उसके (हवीमन्) शासन में रहकर (वाम्) तुम दोनों को (जूर्णिनी घृताची) वेग से गुजरती रात्रि के समान वृद्ध पुरुष की स्नेह से युक्त (रातिः) ज्ञान आदि की दान-सम्पदा, (प्र एति) अच्छी प्रकार उज्ज्वल रूप में प्राप्त होती है ।

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५॥३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की पुत्री, उषा वा प्रभातवेला, जिस प्रकार सूर्य के (रथं) रमणीय या वेगयुक्त (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियुक्त विम्ब पर (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये विराजती है उसी प्रकार (सूर्यस्य) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पिता की (दुहिता) दूर देश में जाकर विवाह करने वाली कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियों, अस्त्र शस्त्र रक्षा साधनों तथा (शत-ऊतिम्) सैकड़ों उत्तम भोगों से युक्त (रथं) सुन्दर रमण योग्य, सुखप्रद आश्रय पर शोभा वृद्धि के लिये रथवत् ही (अधि तस्थौ) विराजे। इसी प्रकार वह कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न (रथं) रमण योग्य पुरुष को (श्रिये अधि तस्थौ) प्राप्त कर उसके आश्रय या सेवा के निमित्त, निर्भय रहे । हे (पुरु-भुजा) बहुत से भोग और प्रजापालनादि कुशल तुम दोनों ! (अत्र) इस लोक वा आश्रम में ही आप दोनों (मायाभिः) नाना बुद्धियों से सम्पन्न होकर (मायिना भूतम्) उत्तम बुद्धिमान् हो जाओ । आप दोनों (नरा) उत्तम नायक, (यज्ञियानां) यज्ञयोग्य, सत्कारपात्र पुरुषों के बीच में (जनिमन्) इस नवीन जन्म ग्रहण के अवसर पर (नृतू भूतम्) अति हर्ष युक्त, सदा आनन्द, सुप्रसन्न रहो । इति तृतीयो वर्गः ॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार सेनापति और सभापति राजा, दोनों ही

(सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति से चमकने और अन्नों और वाणियों को उत्पन्न करने वाली, भूतधात्री पृथ्वी की (शुभे) शोभा के लिये, (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः पुष्टिम् वहतः) इन नाना देखने योग्य लक्ष्मी या कान्ति सहित समृद्धि को (ऊहथुः) वहन करते हैं इसी प्रकार हे वर वधू जनो ! (युवं) आप दोनों (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) इन दर्शन करने योग्य नाना सम्पदाओं द्वारा (शुभे) शोभा और शुभ संकल्प के निमित्त (पुष्टिम् ऊहथुः) गवादि सम्पदा और धन समृद्धि को प्राप्त कर घर ले जाओ। (वां) तुम दोनों के (वयः) अश्वों के समान वेगवान् इन्द्रियगण, दीप्तियां, वा रक्षक गण, (वां वपुषे) तुम दोनों की सुरूपता, शरीर की पुष्टि और रक्षा के लिये (अनुपप्तन्) पीछे २ चलें और हे (धिष्ण्या) गृहस्थ धारण करने में समर्थ दृढ़ वर वधू जनो ! (वाम्) आप दोनों को (सु-स्तुता वाणी नक्षत्) उत्तम प्रशंसित वाणी प्राप्त हो। अर्थात् सम्पन्न होने पर स्त्री पुरुषों की इन्द्रियें विजित हों, जिससे शरीर भोग विलासों से नष्ट न हो। लोग आचार की प्रशंसा करें, वे सम्पन्न हों, उनके रक्षक लोग भी आज्ञाकारी हों।

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर स्थित, कभी असत्य व्यवहार न करने वाले स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों के (प्रयः) उत्तम गमन साधन रथ को (वयः) वेग से जाने वाले वा कान्तिमान् (अश्वासः) अश्ववत् आशु गति से जाने वाले अग्नि आदि तत्व (वहिष्ठाः) स्थानान्तर पहुँचा देने में समर्थ होकर (अभि वहन्तु) ले चलें। इसी प्रकार (वयः) तेजस्वी पुरुष (वहिष्ठाः) उत्तम कार्य वा ज्ञान के धारक होकर (वाम् प्रयः वहन्तु) तुम दोनों को उत्तम ज्ञान, प्रिय वचन प्राप्त करावें। (वां रथः) आप लोगों का रथ (मनः-जवाः) मन के समान तीव्र वेग से वा मन की इच्छानुकूल मृदु, मध्य, तीव्र वेग से जाने वाला (प्र

असर्जि) बनाया जावे और वह (पूर्वीः) पूर्ण (इषः) चाहने योग्य (पृक्षः) सम्पर्क करने योग्य (इषिधः) नाना इच्छाओं को प्रकट कराने वाला, रुचिकारक अन्न भी (अनु ससर्जि) अनुकूल तैयार हो।

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसंक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसांश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार मेघ और विद्युत्, दोनों का जन्तु मात्र पर बहुत बड़ा उपकार होता है, वे प्राणि-जगत् को (इषं धेनुं पिन्वतम्) अन्न और भूमि को समान रूप से सेचन करते हैं, समस्त ओषधियों के रसादि भी उनकी वृष्टि के अनुसार ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हे (पुरु-भुजा) बहुत प्रजाओं, इन्द्रियों को आत्मा व मन के तुल्य पालन और उपभोग करने वाले राजा, अमात्य वा तद्वत् सहयोगी स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों का (देष्णम्) दान योग्य धन भी (पुरु हि) बहुत प्रकार का हो और आप दोनों (नः) हमारी (धेनुं न) गौ या भूमि को मेघ, विद्युत् के समान ही (असक्राम् इषम्) हमसे अन्य के पास न जाने वाली, निजू (इषं) अन्न आदि सम्पदा की (पिन्वतम्) वृद्धि करो और (ये) जो (स्तुतः) उत्तम उपदेष्टा, विद्वान् और (सुस्तुतिः च) उत्तम स्तुति और (ये रसाः च) जो रस, नाना बल हैं वे भी हे (माध्वी) मधुर अन्नादि के भोक्ता जनो! (वाम् रातिम् अनु अग्मन्) आप दोनों के दिये धन का अनुगमन करे। अर्थात् आपका दिया दान ही सबको अधिक सुख दे।

उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ९

भा०—(पुरयस्य) अग्रणी वा पुर अर्थात् नगर के नियन्ता नगराध्यक्ष (मे) मुझ पुरुष के अधीन मेरे (ऋज्रे) धर्मयुक्त, सरल नीति से युक्त सर्वप्रिय (सुमीढे) धन धान्य से समृद्ध, मेघादि से सुसेचित, (पेरुके च)

उत्तम प्रजा पालक राष्ट्र में (रथ्वी) सदा कर्म करने में कुशल प्रजा वेगवती नदी के समान सुखप्रद हो और (शतं पक्वा) नाना पके अन्न, खेत आदि हों और (शांडः) प्रजा को शान्तिदायक और शत्रुओं अन्त करने में समर्थ वीर पुरुष, (हिरणिनः) सुवर्ण आदि का स्वामी (स्मद्-दिष्टीन्) उत्तम, शुभ दर्शन वा ज्ञान वाले (ऋभ्वान्) बड़े २ (दश) दस (अभिसाचः) सहयोगी ऐसे पुरुषों को (दात्) स्थापित करे जो (वशासः) उसके अधीन होकर कार्य करें। उत्तम राष्ट्र में राजा दश विद्वान् पुरुषों की दशावरा राज्यपरिषत् बनाकर उत्तम राज्य का पालन करे। 'शांडः' शं ददाति इति शांडः। स्यति अन्तं करोति वा शत्रूणाम्। स्यतेरंडजौणादिकः। दात्-धात्। वर्णविकारः।

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले, एवं प्रमुख स्थान पर स्थित जनो ! (वां) तुम दोनों के (अश्वानां) अश्व सैन्यों के (गिरे) उपदेष्टा, वा शिक्षक के लिये (पुरु-पन्थाः) बहुतों को नाना प्रकार के जीवनोपाय रूप मार्ग देने में समर्थ, बहुतों को वृत्ति देने वाला राजा (शता सहस्रा) सैकड़ों और हजारों तक (दात्) दे। अथवा हे (नासत्या) सदा सत्य ज्ञान व्यवहार करने वाले राजा प्रजा वर्गो (पुरुपन्थाः) बहुत से मार्गों से सम्पन्न देश (State) वा देश का राजा (गिरे) विद्वान् ज्ञानवक्ता पुरुष के अधीन शिक्षा पाने के लिये (अश्वानां शता सहस्रा दात्) अश्व-सवारों के सैकड़ों हजारों वा सैकड़ों विद्या के इच्छुक जन भी देवे। हे (वीर) वीर पुरुष ! तू (भरद्-वाजाय) ज्ञान और बल को धारण करने वाले (गिरे) उपदेष्टा, शासक विद्वान् के सेवार्थ उसके अधीन (दात्) सैकड़ों सहस्रों अश्व सैन्य रक्खे जिससे हे (पुरुदंससा) बहुत से उत्तम कर्म करने वाले राज प्रजावर्गो ! (रक्षांसि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष सदा (हताः स्युः) दण्डित हों।

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥ ४ ॥

भा०—सत्य व्यवहार निपुण राजा प्रजावर्गो ! वा सभा सेनाध्यक्षो ! वा गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! मैं (वां) आप दोनों के (वरिमन् सुम्ने) अति विशाल सुखप्रद शासन में (सूरिभिः) विद्वानों के सहित (स्याम्) रहूँ । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (रोचमानाः) प्रकाशमान होकर (श्रिये उत् अस्थुः) शोभा वृद्धि के लिये ऊपर उठती हैं और जिस प्रकार (रुशन्तः अपां ऊर्मयः न) स्वच्छ वर्ण की जलों की तरंगे उठा करती हैं उसी प्रकार (उषसः) कमनीय, कान्ति वाली, विदुषी (रोचमानाः) रुचिर दीप्ति वाली, सुस्वभाव स्त्रियें, स्वच्छ विमल आचार वाली, शुक्र कर्मा होकर (श्रिये) घर की शोभा के लिये (उत् अस्थुः) उन्नति, उत्तम स्थिति, मान पावें। (मघोनी) उत्तम ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) कर्मकुशल स्त्री, (वस्वी अभूत् उ) गृह में बसने वाली, माता बनने योग्य हो। वह ही (विश्वा सुपथा) समस्त उत्तम धर्म मार्गों को (सुगानि कृणोति) सुगम कर देती है।

भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः देवि) प्रभात वेला, वा उषा के समान कान्तिमति देवि ! पति की कामना करने हारी विदुषि ! तू (भद्रा) कल्याणकारिणी सौम्य वंश वा स्वभाव वाली (ददृशे) उत्तम स्वरूप से दिखाई दे।

(उर्विया) बहुत महत्वयुक्त, उत्तम गुणों से प्रकाशित हो, बहुत से गुणों को प्रकाशित कर (ते) तेरी (शोचिः) शुद्ध (भानवः) कान्तियोंवत् कामनाएं (द्याम्) तेरी कामना करने वाले तेजस्वी पुरुष को (उत् अपप्तन्) उत्तम रीति से प्राप्त हों। तू (शुम्भमाना) सुशोभित होकर (वक्षः) अपना स्वरूप और उत्तम वचन एवं गृहस्थ के बहुत सामर्थ्य को (आविः कृणुषे) प्रकट कर। हे (देवि) विदुषि! तू (महोभिः) बड़े उत्तम २ गुणों से (रोचमाना) सबको प्रिय लगती हुई विराज।

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम्।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो नवोळ्हा ॥३॥

भा०—(गावः) बैल जिस प्रकार (ऊर्विया प्रथानां भूमिम् प्राप्य रथं वहन्ति) विस्तृत भूमि को प्राप्त होकर रथादि को ढो ले जाते हैं और जिस प्रकार (गावः प्रथानाम् उर्विया वहन्ति) किरण फैलती हुई उषा को धारण करते हैं उसी प्रकार (अरुणासः) तेजस्वी, (रुशन्तः) दुष्टों वा दुष्ट भावों के नाश करने वाले, (गावः) ज्ञानवान् पुरुष, (उर्विया प्रथानाम्) पृथ्वी के समान विशाल, (सुभगाम्) सौभाग्यवती स्त्री को (वहन्ति) उद्वाह-पूर्वक ग्रहण करें। (शूरः अस्ता इव शत्रून् अप-एजते) शूरवीर, अस्त्रकुशल धनुर्धारी के समान वह स्त्री तथा विवाह करने वाला पुरुष, अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि तथा बाहरी शत्रुओं को दूर करे। (तमः बाधते) जिस प्रकार उषा वा सूर्य अन्धकार को दूर करते हैं उसी प्रकार वे दोनों (तमः) अज्ञान, शोक आदि को नाश करें। वह पुरुष (अजिरः नवोढा) वेग से जाने वाला अश्व जैसे रथ ढोने में समर्थ होता है वैसे जरा वा वृद्धावस्था, दुर्बलता से रहित पुरुष (नवोढा) नयी वधू का विवाह करने, गृहस्थ भार उठाने में समर्थ हो।

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

भा०—उषा जैसे (दिवः-दुहिता) प्रकाश वा प्रकाशवान् सूर्य से उत्पन्न होने, प्रकाशों के देने, जगत् को पूर्ण करने से 'दिवः दुहिता' है, वह पर्वतों या मेघों पर पड़ती, (स्वभानुः) स्वतः कान्तिमती होकर प्राणिवर्ग को जीवन देती है वैसे हे (दिवः दुहितः) कामनाओं को पूर्ण करने हारी, स्त्रि ! (ते) तेरे लिये (पर्वतेषु) पर्वत वा मेघवत् पालन करने वाले सम्बन्धी जनों के बीच (सु-पथा) उत्तम २ सदाचार और धार्मिक मार्ग (सुगा) सुख से गमन करने योग्य हों। दुराचार के कुमार्गों पर तू पैर न रख। (अवाते अपः तरसि) प्रचण्ड वात से रहित शान्त अवसर में जैसे महासमुद्र का जल पार किया जाता है उसी प्रकार हे (स्व-भानो) स्वयं कान्ति से चमकने हारी हे (दिवः दुहितः) उत्तम संकल्पों के उत्पन्न करने हारी स्त्रि ! तू भी (अवाते) विघ्नादि नाशक कारणों से रहित वा अहिंसक पुरुष के अधीन रहकर (अपः) नाना कर्मों को अन्तरिक्ष वा जलमार्ग के समान (तरसि) पार कर। (ता) वह तू (पृथु-यामन्) बड़े भारी (ऋष्वे) महान धर्म में रहकर (नः) हमें (इषयध्यै) आदर सत्कार करती हुई (नः आवह) हमें प्राप्त कर।

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) कमनीय कान्ति वाली, सुकुमारि ! तु (या ह) जो निश्चय से (देवी) पति की कामना करती हुई (अवाता) किसी को प्राप्त न होकर, अनन्यपूर्वा होकर (जोषम् अनु) प्रेम के अनुसार (वरं) वरण योग्य पुरुष के साथ (आवहसि) विवाह करती है और (या ह) जो तू (देवी) शुभ गुणों से युक्त होकर (पूर्वहूतौ) प्रथम वार के दान और स्वीकार करने के अवसर में (मंहना) पूज्य, आदरणीय और (दर्शता) दर्शनीय (भूः) होती है। (त्वं) तू हे (दिवः दुहितः) सूर्य की कन्या उषावत् पति की कामना पूर्ण करने हारी विदुषि ! (सा) वह तू (उक्षभिः आ

वह) सेचन समर्थ दृढ अंगों से, बैलों से शकटवत्, गृहस्थ भार को धारण कर।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरिं वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—(व्युष्टौ) विशेष रूप से प्रकाश का आवरण हट जाने पर, प्रभात काल में (चित्) जिस प्रकार (वयः) पक्षी गण (वसतेः) अपने घोंसले से (उत् अपप्तन्) उड़कर देशान्तर जीविका के लिये चले जाते हैं उसी प्रकार (नरः च) पुरुष लोग भी (व्युष्टौ) प्रातःकाल हो जाने पर (ये पितु-भाजः) जो अन्न खा चुके वे भोजनानन्तर (वसतेः) निवास स्थान से (उप अपप्तन्) बाहर वृत्ति कमाने के लिये जाया करें। हे (देवि उषः) देवि ! विदुषि ! उषावत् कान्तिमति ! एवं पति को हृदय से चाहने वाली ! तू (दाशुषे) अन्न वस्त्र देने वाले (अमा) साथ के सहचर (सते) प्राप्त, सच्चरित्र (मर्त्याय) पुरुष के लिये (भूरिवामम् वहसि) बहुत उत्तम २ ऐश्वर्य, सुख आदि प्राप्त करा। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । विराट् पंक्तिः । २, ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्ष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

भा०—उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्य। (एषा) यह (दिवः-जाः) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न उषा जैसे (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (मानुषीः क्षितीः) मननशील, मनुष्य प्रजाओं को जगाती है और (राम्यासु) रात्रियों के उत्तर भाग में वह जिस प्रकार (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से (अज्ञायि) सबको जान पड़ती है, वह (तमसः अक्तून्) अन्धकार से रात्रियों को (तिरः) पृथक् करती अथवा (तमसः) अन्धकार

से 'अक्तु' अर्थात् प्रकाशयुक्त दिनों को वा तमोमय रात्रि कालों को, (तिरः) प्राप्त करा देती है, (चित्) उसी प्रकार (एषा) यह (नः) हमारी (दुहिता) पुत्री (दिवः दुहिताः) कामना, सद्व्यवहारों, उत्तम इच्छाओं, भावनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर देश में विवाहित होने योग्य कन्या, (दिवः-आः) तेजोमय ज्ञानी पुरुष से शिक्षा, विनयादि से गुणों में प्रसिद्ध होकर, (मानुषीः क्षितीः अजीगः) मनुष्य प्रजाओं को जगावे और (या) जो (रुशता भानुना) चमकते ज्ञान प्रकाश और सदाचार की कान्ति से (राम्यासु) रमण करने योग्य स्त्रियों में से सर्वश्रेष्ठ (अज्ञायि) प्रसिद्धि प्राप्त कर, जानी जावे, वा (राम्यासु) रमण अर्थात् पति को सुख देने की क्रियाओं में (अज्ञायि) कुशलता प्राप्त करे, (स्या) वह (अक्तून्) पूज्य माता पिता, सास ससुर, भाई आदि पूज्य पुरुषों को (तमसः) शोकादि खेदजनक कारणों से (तिरः) पृथक् करे ।

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) प्रभात वेलायें (चन्द्र-रथाः) आह्लाद-जनक, रमणीय रूप वाली, या मानो प्रातःकाल तक दीखने वाले चन्द्र पर रथवत् चढ़कर आने वाली होकर, (अरुण-युग्भिः) प्रातःकालिक अरुण वर्ण से युक्त अश्वों अर्थात् किरणों सहित (तत् वि ययुः) उस परम क्रान्तिमार्ग पर गति करते हैं उसी प्रकार (उषसः) कमनीय कन्याएं, (चन्द्र-रथाः) आह्लादजनक, उत्तम रमणीय व्यवहारों वाली वा उत्तम रथों पर विराजमान होकर (अरुण-युग्भिः) रक्त वर्ण के (अश्वैः) अश्वों से (चित्रं) अद्भुत (वि भान्ति) विशेष रूप से चमकें (तत्) उस परम गृह-आश्रम को (ययुः) प्राप्त हों । वे (यज्ञस्य) परस्पर संगति, मुख्य पद या श्रेष्ठ प्रजोत्पत्ति रूप अंश को प्राप्त कराती हुईं, (ताः) वे सब मिलकर (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार के समान दुःख को (वि बाधन्ते) विविध प्रकार से दूर करें ।

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषसः) प्रभात वेला के सदृश कान्ति से युक्त, उदय-कालिक अनुराग वाली शुभ कन्याओ ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अन्न, वस्त्र, भूषण आदि देने वाले पुरुष के लिये (श्रवः) यश, ज्ञान, (वाजम्) बल वीर्य, (इषम्) उत्तम अन्न, उत्तम इच्छा और (ऊर्जम्) बल पराक्रम (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुई, अर्थात् इन पदार्थों की प्राप्ति में सहायक होती हुई स्वयं (मघोनी) धन सम्पन्न होकर (पत्यमानाः) पति की कामना करती हुई (वीरवत् अवः) उत्तम सन्तानयुक्त कामना, (पत्यमानाः) प्राप्त करती हुई (विधते) विशेष पोषक पति के लिये (अद्य) आज (रत्नम् निधात) उत्तम, रमणीय, धनवत् पुत्र रत्न धारण करो ।

इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

भा०—हे (उषासः) प्रभात के समान कान्ति युक्त स्त्रियो ! (वः) आप लोगों में से (विधते) विशेषरूप से धारण पोषण करने वाले के लिये (इदा हि) इसी अवसर में (रत्नम्) रम्य सुख (अस्ति) है । (वीराय दाशुषे) वीर, दानशील पुरुष को भी (इदा) इस समय (रत्नम् अस्ति) रमण योग्य सुख प्राप्त होता है । आप लोग (पुरा चित्) पहले के समान ही (मावते) मेरे सदृश (जरते विप्राय) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष के लिये (यद् उक्था) जो उत्तम वचन हों वे भी (इदा) इस अवसर में ही (नि वहथ स्म) प्रकट करो । अर्थात् गृहस्थ का सुख, पुत्रादि लाभ, पालक पोषक वीर्यवान् दानशील पुरुष को भी इसी चढ़ते यौवन काल में ही प्राप्त होता है, इसलिये स्त्रियें अपने सदृश वरों को उत्तम वचनों से इसी काल में वरें और वरणकाल में विद्वान् का आचार्यवत् ही अर्घ पाद्यादि उपचार करें ।

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अद्रिसानो) पर्वत के शिखर के समान दृढ़ आधारशिला पर आरूढ़ (उषः) कमनीय कन्ये ! (इदा हि) इसी नवयौवन काल में (अंगिरसः) विद्वान् तेजस्वी लोग (ते) तेरे उपदेश के लिये, (गवाम् गोत्रा गृणन्ति) नाना वाणियों के समूह उपदेश करें और (अर्केण) सूर्यवत् प्रकाशमान, अर्चनायोग्य (ब्रह्मणा च) वेद के द्वारा वे (सत्या) सत्य रहस्यों को (वि बिभिदुः) विशेष रूप से खोल २ कर कहें। इस प्रकार ही (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (देव-हूतिः अभवत्) 'देव' उत्तम गुणों वा कामना योग्य वर की प्राप्ति हो।

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषावत् कमनीय ! विदुषि स्त्रि ! (प्रत्नवत्) पुराने आचार के समान ही तू भी (नः) हमारे प्रति (दिवः) ज्ञान प्रकाश और सद् व्यवहारों को (उच्छ) प्रकट कर। हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त विदुषि ! (विधते) विशेष पालक पोषक स्वामी के लिये (भरद्-वाजवत्) ज्ञानवान् वा ऐश्वर्यवान् विद्वान् के समान ही आदर सत्कार कर। (गृणते) उत्तम उपदेश देने वाले विद्वान् पति के लिये तू (सुवीरं रयिम्) उत्तम पुत्र भृत्यादि से युक्त धन को (रिरीहि) प्रदान कर। (नः) हममें (पुरु-गायम् श्रवः) बहुत से अपत्यादि से युक्त उत्तम धन, यश और बहुतों से स्तुति योग्य ऐश्वर्य (अधि धेहि) धारण कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्पंक्तिः । ६, ७, १० भुरिक् पंक्तिः । ८ स्वराट्पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं का (वपुः समानं, धेनु, पत्यमानम्) रूप एक समान, सबको प्राण से तृप्त करने वाला और सदा गति युक्त होता है वह (चिकितुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (नाम) कार्यसाधक होता है, उनका एक स्वरूप (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों में (दोहसे) जीवन प्रदान करने के लिये (पीपाय) उनको प्राण से तृप्त करता है और दूसरा रूप यह कि (ऊधः पृश्निः) रात्रि काल में अन्तरिक्ष, एक वार ही (शुक्रं दुदुहे) जल प्रदान करता है । अर्थात् दूसरा गुण वायु का है कि वह अपने में जल को धारण करता है । वह स्थूल पदार्थों का वाष्प रूप है । इसी प्रकार समस्त (वपुः नु) शरीर (चिकितुषे) रोग दूर करने वाले वैद्य की दृष्टि में, (समानं चित् अस्ति) एक समान ही है । सब शरीर के घटक तत्व एक समान हैं, उनके रोगोत्पत्ति और स्वस्थता के कारण सर्वत्र समान हैं । उन सबका (नाम समानं) नाम भी एक समान हो । (पृश्निः) सूर्य के समान तेजस्वी, विज्ञान के प्रश्नों को सरल करने वाला विद्वान् पुरुष (धेनु) वत्स को तृप्त करने वाले (ऊधः) गाय के थन के समान (धेनु) सबके तृप्त करने वाले वाङ्मय रूप (पत्यमानम् ऊधः) प्राप्त होते हुए उत्तम ज्ञान को धारण कराने वाले, (शुक्रं) शुद्ध कान्तियुक्त शास्त्र वेद को (सकृत् दुदुहे) एक ही वार, ब्रह्मचर्य काल में दोहन करे, प्राप्त करे । वह उसको (अन्यत्) नाना रूप में (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच (दोहसे) उसका ज्ञान प्रदान करने के लिये (पीपाय) उसी को बढ़ावे ।

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२॥

भा०—(मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुष (इधानाः अग्नयः न) प्रदीप्त हुए अग्नियों के समान (शोशुचन्) अपने को प्रज्वलित, शुद्ध

आचारवान् बनावें। वे (द्विः त्रिः वावृधन्त) दुगना तिगुना वृद्धि को प्राप्त हों। (एषां) इन लोगों के सम्बन्धी जन (अरेणवः) अहिंसक, निर्दोष और (हिरण्ययासः) स्वर्ण आदि से ऐश्वर्यवान् और (नृम्णैः) धनों और (पौंस्यैः च साकं) बलों से सम्पन्न (भूवन्) हों।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (रुद्रस्य) वायु के समान बलवान्, (मीढुषः) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष के (पुत्राः) पुत्र होते हैं (यान् च) और जिनको (नु) शीघ्र ही (भरध्यै) भरण पोषण के लिये (विदे) प्राप्त करती है, वे ही (महः) गुणों से महान् होते हैं और (सा माता) वह माता (मही) बड़ी पूज्य होती है। (सा इत्) वह माता ही (पृश्निः) अन्तरिक्ष, पृथ्वी के समान दूध पिलाकर पालने पोषने में समर्थ माता (सुभ्वे) उत्तम वीर्यवान् पुरुष की वंश वृद्धि के लिये (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण करती और इसी प्रकार (पृश्नि) वृष्टिकारक सूर्यवत् वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष भी (शुभे) उत्तम भूमि के समान उत्तम सन्तानोत्पादक स्त्री के शरीर में (गर्भम् आ अधात्) गर्भ धारण करावे।

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् जन (जनुषः) जन्म लेने वाले जन्तुओं की (न ईषन्ते) हिंसा नहीं करते, ऐसे (सन्तः) सन्त जन (अन्तः) अन्तःकरण के भीतर (अवद्यानि) निन्द्य विचारों को (पुनानाः) दूर कर, स्वयं और अन्यों को भी पवित्र करते हुए (शुचयः) शुद्ध पवित्र होकर (जोषम्) प्रेम-रस का (अनु निर्दुह्रे) सबको भरपूर प्रदान करते हैं। जिस प्रकार (श्रिया) विद्युत्-कान्ति से युक्त वायु गण (तन्वं) विस्तृत भूमि सेचन करते हैं उसी प्रकार वे (अनु) बाद में (श्रिया) शोभा से अपने (तन्वम्) शरीर, यशःशरीर को (उक्षमाणाः) सेचन करते, बढ़ाते हैं।

मुक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५।७॥

भा०—(येषु) जिन मनुष्यों में राजा (मक्षु) शीघ्र ही (दोहसे न) ऐश्वर्य प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता और जो (अयाः) मनुष्य (धृष्णु) शत्रु को पराजित करने वाले (मारुतं) वायुवत् अनन्त बल वा मनुष्यों का सामूहिक बल (दधानाः) धारण करते हैं और (ये) जो (अयासः) प्रजाजन (स्तौनाः न) चोर नहीं हैं उन (उग्रान्) बलवान् पुरुषों को (चित्) भी (सुदानुः) उत्तम दानशील पुरुष (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (नु) शीघ्र ही (अव यासत्) अधीन रखकर एकत्र, संहत करे। इति सप्तमो वर्गः॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) बलवान् वायुगण (शवसा) बल, या जल से (उभे रोदसी सुमेके = सुमेघे युजन्त) उत्तम मेघयुक्त आकाश और पृथिवी दोनों को मिलाये रखते हैं उसी प्रकार (ते) वे (उग्राः) बलवान् पुरुष (इत्) ही (शवसा) अपने शरीर-बल और ज्ञान-बल से (धृष्णुसेनाः) शत्रु को पराजय कर देने वाली सेनाओं को बनाकर (रोदसी उभे) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य राजवर्ग और प्रजावर्ग (सुमेके) उत्तम रूपवान् एक दूसरे को बढ़ाने वाले दोनों को (युजन्त) संयुक्त बनायें, दोनों को प्रेम भाव से मिलाये रखें। (अध स्म) और (अमवत्सु तेषु) बलवान्, गृहवान् और सहायवान् उन पुरुष में ही (रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की (स्व शोचिः) अपनी, शुद्ध पवित्र ज्योति (रोकः न तस्थौ) उनकी उत्तम रुचि के समान विराजती है।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो! जिस प्रकार वायु-बल से जाने वाला (यामः) यान (अनश्वः चित्) विना अश्व के होता है और (यम्) जिसको (अरथीः) विना रथी वा सारथी के एक ही आदमी (अजति) चला सकता है, (अनवसः अनभीशुः) जिसमें न कोई गति देने वाला और न कोई लगाम हो, तो भी (रजस्तूः) जल और पृथ्वी दोनों लोकों में चले। उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् लोगो! (वः यामः) तुम्हारा जीवन का सत्-मार्ग (अनेनः) निष्पाप (अस्तु) हो और वह (अनश्वः अरथीः) अश्व और रथ आदि नाना साधनों से रहित भी (यम् अजति) जिसको चला सके, जिस तक पहुँच सके, वह सच्चरित्रता का मार्ग (अनवसः) जिस पर अन्नादि भोग्य पदार्थों से रहित, (अनभीशुः) अंगुलि, बाहु आदि के विशेष बल शक्ति से रहित (रजस्तूः) रजो गुण को दूर करने वाला पुरुष भी (पथ्या साधन्) पथ्य, हिताचरण करता हुआ (वि याति) विशेष रूप से चलता है। निष्पाप धर्म के मार्ग पर अमीर गरीब सब कोई समान रूप से चल सकता है।

नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता न्व॑स्ति॒ मरु॑तो॒ यमव॑थ॒ वाज॑सातौ ।
तो॒के वा॒ गोषु॒ तन॑ये॒ यम॒प्सु स व्र॒जं द॒र्ता पार्ये॒ अध॒ द्योः ॥८॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् वीर और प्रजा के जीवन देने वाले पुरुषो! आप लोग (वाज-सातौ) ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम के कार्य में (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, (अस्य वर्त्ता न) न जिसको निवारण करने वाला और (अस्य तरुता न नु अस्ति) न उसको मारने वाला भी कोई होता है। हे वीर पुरुषो! (यम्) जिसको आप लोग (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र, (वा गोषु) और भूमि गवादि पशुओं के निमित्त (अवथ) रक्षा करते हो, (सः) वह (व्रजं) गोसमूह को (दर्त्ता = धर्त्ता) धारने में समर्थ होता तथा वह (द्योः पार्ये) भूमि के पालन पोषण करने में वा विजिगीषु पुरुष के साथ संग्राम में भी (व्रजं दर्त्ता) सैन्य दल तथा शत्रु के मार्ग, नगर आदि का नाशकर होता है।

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (गृणते) उपदेश देने और (तुराय) शत्रु का नाश करने और (स्वतवसे) अपने धन को बल के तुल्य धारण करने वाले विद्वान्, क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के (मारुताय) मनुष्य वर्ग के लिये (चित्रम् अर्कम्) अद्भुत, नाना प्रकार का, सञ्चययोग्य ज्ञान, अर्चना करने योग्य आदर सत्कार, शस्त्रादि बल तथा नाना अन्न (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार धारण करो । हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! जिनके (मखेभ्यः) संग्रामों और यज्ञों के भय से (पृथिवी) समस्त संसार (रेजते) कांपता है और (ये) जो (सहसा) बल और उत्साह से (सहांसि) नाना शत्रु सैन्यों को (सहन्ते) पराजित करते हैं उनके लिये भी (चित्रम् अर्कं प्र भरध्वम्) नाना संचय योग्य अन्न प्रदान करो । विजय करने में सहायक सेनाओं का भोजन भी राज्य दे ।

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१०॥

भा०—(अध्वरस्य इव दिद्युत्) जिस प्रकार यज्ञ का प्रकाश हो और (अग्नेः जुह्वः न) जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं प्रकाश युक्त हों उसी प्रकार (मरुतः) वायु के समान बलवान् मनुष्य भी (त्विषीमन्तः) कान्ति से युक्त (तृषु-च्यवसः) तीक्ष्ण-वेगयुक्त गति वाले, (अर्चत्रयः) परस्पर का मान सत्कार करने वाले वा माता, पिता, गुरु और परमेश्वर के उपासक (धुनयः न) शत्रुजनों और वृक्षों को वायुओं के समान कंपाने वाले, (वीराः) शूरवीर, (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी शरीर वाले, (अधृष्टाः) विनीत और अपराजित होकर रहें ।

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ।११।८॥

भा०—मैं प्रजाजन (वृधन्तं) राष्ट्र को बढ़ाने वाले, (रुद्रस्य सूनुम्) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति और उपदेष्टा, आचार्य के पुत्रवत् प्रिय तथा उसके अभिषेक्ता, (तं) उस (मारुतं) बलवान् मनुष्य गण को मैं (हवसा) अन्नादि से (आविवासे) सत्कार करूं। वे (दिवः) तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, पवित्र, ईमानदार, (मनीषाः) मनस्वी, (गिरयः न) मेघों के समान और (आपः न) जल धाराओं के समान (शर्धाय) जल वर्षण और बल के लिये (अस्पृध्रन्) एक दूसरे से बढ़ने के लिये उद्योग करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ९ स्वराट् पंक्तिः। २, १० भुरिक् पंक्तिः। ३, ७, ८, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

विश्वे॑षां वः स॒तां ज्येष्ठ॑तमा गी॒र्भिर्मि॒त्रावरु॑णा वावृ॒धध्यै॑।
सं या र॒श्मेव॑ य॒मतु॒र्यमि॑ष्ठा॒ द्वा जनाँ॒ अस॑मा बा॒हुभिः॒ स्वैः ॥१॥

भा०—हे मनुष्यो! (विश्वेषां वः सताम्) आप समस्त सज्जन पुरुषों के बीच (ज्येष्ठ-तमा) सबसे अधिक श्रेष्ठ (मित्रा-वरुणौ) मित्रवत् स्नेही और दुःखों के वारण करने वाले वे दोनों हैं जो (द्वा) दोनों मिलकर (असमौ) अन्यों के असमान या परस्पर आयु और रूप बल में समान न रहकर भी (वावृधध्यै) राष्ट्र और कुल की वृद्धि करने के लिये (यमिष्ठौ) संयमशील होकर (गीर्भिः) उपदेश वाणियों से (जनान् सं यमतुः) लोगों को नियम में रखते हैं और जो (बाहुभिः) बाहुबलों और (स्वैः) धनों के बल से मनुष्यों को काबू करते हैं। अर्थात् ऐसे उत्तम ब्राह्मण, उत्तम क्षत्रिय और उत्तम वैश्य तीनों ही वर्ण के स्त्री पुरुष श्रेष्ठ जानने योग्य हैं।

इ॒यं म॒द्वां प्र स्तृ॑णीते मनी॒षोप॑ प्रि॒या नम॑सा ब॒र्हिरच्छ॑।
य॒न्तं नो॑ मित्रावरुणा॒वधृ॑ष्टं छ॒र्दिर्यद्वां॑ वरू॒थ्यं॑ सुदानू ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, हे परस्पर स्नेह करने वाले और एक दूसरे का वरण करने वाले वर वधू! (इयं मनीषा) यह मेरे मन की उत्तम कामना (प्रिया वां) आप दोनों प्रिय जनों को (मत्) मेरी ओर से (नमसा) विनयपूर्वक, अन्नादि के साथ (प्र स्तृणीते) प्राप्त होती है। इसी प्रकार (अच्छ बर्हिः प्र स्तृणीते) उत्तम आसन भी आप लोगों के लिये बिछाया जाता है। आप दोनों (सु-दानू) उत्तम दानशील होकर (नः) हमें (वरूथ्यं) शीत, आतप, वर्षा आदि को वारण करने वाला (छर्दिः अधृष्टं) दृढ़ गृह (यन्तं) दो।

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर स्नेह और वरण करने वाले श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो! (चित्) जैसे (अप्नः स्थः) कर्माध्यक्ष पुरुष (अवसा) कर्म द्वारा (श्रुधीयतः जनान्) अन्न, वृत्ति चाहने वाले मनुष्यों को (यतते) काम कराता है उसी प्रकार (यौ) जो आप दोनों (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (श्रुधीयतः) अन्न के इच्छुक (जनान्) जन्तुओं को (सं यतथः) एक साथ कार्य कराओ। (नमसा) आदर सत्कारपूर्वक (हूयमाना) आमन्त्रित होकर (प्रिया) एक दूसरे के प्रिय होकर (सुशस्ति) उत्तम कीर्त्ति तथा उपदेशादि को (उप आ यातम्) प्राप्त होवो।

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४॥

भा०—(या) जो आप दोनों (अश्वा न) रथ में लगे दो अश्वों के समान, (वाजिना) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य में समान हैं, जो दोनों (पूत-बन्धू) पवित्र सम्बन्धों से बंधे, शुद्ध चित्त युक्त सम्बन्धियों वाले, (ऋता) सत्य आचरण वाले हो, (यत्) जिन दोनों को (अदितिः) माता के समान भूमि, वा भूमि के समान माता (भरध्यै) पोषणार्थ (गर्भम्) गर्भ रूप

में धारण करती है और (या) जो आप (मर्त्ताय, रिपवे) सामान्य मनुष्य तथा रिपु, अर्थात् पापयुक्त शत्रु के दमन के लिये (घोरा) भयंकर हो, वे आप दोनों (महन्ता) गुणों में महान् (जायमाना) उत्पन्न, एव प्रसिद्ध होकर (महि प्र नि दीधः) बहुत बल, ज्ञान एवं बड़े उपास्य ब्रह्म का प्रणिधान, पुनः २ अभ्यास, मनन और प्राप्ति करो।

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५॥

भा०—(यत्) जो आप दोनों (रोदसी चित्) भूमि आकाश, वा सूर्य पृथिवी के समान, प्रकाश, जल, अन्न, आश्रय आदि देने वाले माता पिता के समान (ऊर्वी) विशाल (परि भूथः) शक्तिमान् होकर रहते हो, उन (वाम्) आप दोनों के (मंहना) बड़े सामर्थ्य से (मन्दमानाः) प्रसन्न होकर (विश्वे देवासः) सब मनुष्य, (सजोषाः) समान रूप से प्रीति युक्त होकर (वां क्षत्रं अदधुः) प्राण अपान के बल इन्द्रिय गण के तुल्य, आप दोनों के बल को धारण करते हैं और आपके (स्पशः) यथार्थ बात को देखने वाले, दूत, विद्वान् आदि जन भी (अदब्धासः) कभी नाश या पीड़ित न होने वाले (अमूराः) प्रलोभनादि से मोह में न पड़ने वाले (सन्ति) हों। इति नवमो वर्गः ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः।
दृळहो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

भा०—(ता हि) वे आप दोनों (अनु द्यून् हि) सब दिनों (क्षत्रं धारयेथे) बल को धारण करें और आप दोनों (द्योः उपमात् इव) सूर्य के तेज और ताप के समान सामर्थ्य से स्वयं दृढ़ होकर (सानुम्) भोग योग्य ऐश्वर्य व उन्नत भाग को (दृंहेथे) वृद्धि करो। (विश्वदेवः नक्षत्रः सन् यथा दृढ़ आयोः धासिना द्याम् आतान्) सब किरणों का स्वामी सूर्य जिस प्रकार आकाश में स्थिर होकर दृढ़ है और वह जीवन वा जन समूह

के धारक पोषक सामर्थ्य से प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है उसी प्रकार (दृढ) सुदृढ़, बलवान् (नक्षत्रः) व्यापक सामर्थ्यवान्, वा कभी क्षीण न होने वाला (विश्व-देवः) सब मनुष्यों का स्वामी, (आयोः धासिना) सब मनुष्यों के जीवन धारक सामर्थ्य, बल, अन्नादि से (भूमिम् आ आतान्) भूमि को वश और पालन करे ।

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

भा०—हे मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे से प्रेमपूर्वक वरण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों जिस प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट को तृप्त करने के लिये (विग्रं) विशेष रूप से गले से नीचे उतारने योग्य खूब चबाया खाद्य अन्न प्राप्त करते हो, उसी प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट भर खिलाने के लिये (विग्रम्) विद्वान् पुरुष का (धैथे) आदर पूर्वक पोषण करो, विद्वान् को अन्नादि दो । (यत्) क्योंकि (स-भृतयः) समान भरण पोषण या वेतन प्राप्त करने वाले भृत्यादि लोग (सद्म) एक ही आश्रय गृह को (आपृणन्ति) पूर्ण कर उसे भरते हैं और गृह की सेवा करते हैं, परन्तु (अवाताः युवतयः) अविवाहित, पति को न प्राप्त हुई युवती स्त्रियें (न मृष्यन्ते) एक दूसरे को सहन नहीं करतीं, इसलिये हे (विश्वजिन्वा) समस्त विश्व को अन्नादि से तृप्त करने वालो ! (यत्) जो (पयः सद्म विभरन्ते) नदियों के समान अन्न जलादि पुष्टिकारक पदार्थों से गृह को भरपूर करें उनको तुम दोनों (धैथे) पालन पोषण करो ।

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो पुरुष (इदं सदम्) आप दोनों के विद्वानों के बैठने योग्य इस गृह को प्राप्त होकर (जिह्वया) वाणी से तुम्हें प्राप्त हो, वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् आप दोनों को (आ)

प्राप्त हो, वह (ऋते) सत्य ज्ञान और धर्मानुकूल व्यवहार वा धन के सम्बन्ध में (सत्यः) सच्चा (वाम् अरतिः) आप दोनों का स्वामी (भूत्) हो। (वां तत् महित्वम्) आप लोगों का यह बड़ा भारी गुण हो। हे (घृतान्नौ) घृत युक्त अन्न का भोजन करने वाले सत्पुरुषो ! (ता युवं) वे आप दोनों (दाशुषे अंहः) दान देने वाले के पाप को (वि चयिष्टम्) दूर करो। विद्वान् स्त्री पुरुष अपने को शिष्य रूप से अर्पण करने वाले के दोषों को चुन २ कर दूर करें। अथवा शिष्यादि जन (दाशुषे) ज्ञान दाता के पाप दोष को (वि चयिष्ट) स्वयं संग्रह न करें। वे घृतयुक्त अन्न का भोजन करें, रूखा न खाया करें। अस्माकं यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥ तै० उप० ॥

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य माता पिता के समान पूज्य पुरुषो ! (यत्) जो लोग (प्रिया) प्रिय (धामा) आप दोनों के धारण करने योग्य कर्मों और पदों को प्राप्त करने के लिये (स्पूर्धन्) स्पर्धा करते हैं और (युव-धिता) आप लोगों के किये कर्मों का (न प्र मिनन्ति) विनाश नहीं करते और (ये देवासः) जो विद्वान् (मर्त्ताः) मरणधर्मा, मनुष्य (ओहसा) अपने कर्म सामर्थ्य से (अयज्ञ-साचः) यज्ञ, परस्पर सत्संग को प्राप्त न होकर भी (नः स्पूर्धन्) आप दोनों के कर्मों में विघ्न नहीं करते वे भी (अप्यः न पुत्राः) आप दोनों के कर्म निष्ठ एवं प्राप्त दाराओं में उत्पन्न पुत्रों के समान ही प्रिय होते हैं।

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (कीस्तासः) विद्वान् लोग (वाचं) वेद वाणी को (वि भरन्ते) विविध प्रकार से धारण करते हैं (यत् केचित्) जो कोई

विद्वान् लोग (निविदः शंसन्ति) विशेष विद्यायुक्त वाणियों का उपदेश करते हैं वे (मनानाः) मननशील हम लोग (सत्यानि उक्था) सत्य २ बचनों का (आत्) बाद में (वां ब्रवाम) हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों को उपदेश करें। (देवेभिः) विद्वान् उत्तम पुरुषों के साथ आप दोनों (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से अवश्य (यतथः) यत्न करते रहो।

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११।१०॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणौ) स्नेह युक्त, श्रेष्ठ विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत् अनु) जिन आप दोनों के पीछे २ (गावः) वाणियें और उत्तम पशुजन किरणोंवत् (अनु स्फुरान्) चलते हैं और (यत्) जो आप दोनों (ऋजिप्यं) सत्य धर्म के पालक, (धृष्णुं) शत्रु पराजय में समर्थ (वृषणं) बलवान् पुरुष को (रणे) संग्राम में (युनजन्) नियुक्त करते हैं, उन (अवोः वां) रक्षा करने वाले आप दोनों के (इत्था) इस प्रकार (छर्दिषः अभिष्टौ) गृह को प्राप्त करने में (अस्कृधोयुः) महत्वाकांक्षी पुरुष (युवोः) आप दोनों के अधीन विद्या का अभ्यास करे। इति दशमो वर्गः॥

[६८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ११ त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७, ८ स्वराट्पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ९, १० निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणौ) 'इन्द्र' ऐश्वर्ययुक्त, सौभाग्यवान् ! हे 'वरुण' एक दूसरे का वरण और दुःखों का वारण करने वाले युगल पुरुषो ! (यः वां यज्ञः) जो आप दोनों का परस्पर दान प्रतिदान, सत्संग (अद्य) आज (महे इषे) बड़े उत्तम, इच्छापूर्ति और (महे) बड़े उत्तम (सुम्नाय) सुख प्राप्ति

के लिये (आ ववर्त्तत्) हो वह आप दोनों का यज्ञ (श्रुष्टी) शीघ्र ही (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त, (उद्यतः) उत्तम रीति से सुनियंत्रित और (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त और (वृक्तबर्हिषः) तृणों के समान संशयों वा बन्धनों को काटने वाले विद्वान् पुरुष के (यजध्यै) दान, सत्संग के लिये (आववर्तत्) नित्य ही हो।

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ २ ॥

भा०—(ता) वे इन्द्र, वरुण, ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक और श्रेष्ठ शत्रु-वारक दोनों प्रमुख पुरुष (हि) निश्चय से, (देवताता) उत्तम विद्वान्, व्यवहारवान् मनुष्यों के बीच (श्रेष्ठा) सबसे उत्तम, (शूराणां तुजा) शूर वीर पुरुषों के पालक और शत्रु के वीरों के नाशक हों। (ताः) वे दोनों (हि) निश्चयपूर्वक (शविष्ठा भूतम्) सबसे अधिक बलशाली होवें। वे दोनों (मघोनां मंहिष्ठा) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के बीच अति दानशील, पूजनीय, (तुवि-शुष्मा) बहुत से बलों से सम्पन्न और (ऋतेन) सत्य ज्ञान, न्यायव्यवहार और धन-बल से (वृत्र-तुरा) मेघवत् बढ़ते शत्रु और विघ्नों का नाश करने वाले और (सर्व-सेना) सब सेनाओं के स्वामी (भूतम्) हों।

ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता और प्रमुख रूप से वरण योग्य, सर्वश्रेष्ठ, सैन्य और सेनापति, (सुम्नेभिः) सुखकारी (शूषैः) बलों से (चकाना) तेजस्वी और प्रजा की शुभ कामना करने वाले (ता) उन दोनों की (नमस्येभिः) आदर योग्य वचनों से (गृणीहि) स्तुति कर उन दोनों में से (अन्यः) एक तो (वज्रेण) बाहुबल से और (शवसा) सैन्यबल से (वृत्रं हन्ति) बढ़ते शत्रु को दण्डित करे और (अन्यः) दूसरा (वृजनेषु) सैन्यबलों के बीच (सिषक्ति) समवाय उत्पन्न करे।

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥

भा०—(ग्नाः) स्त्रियें और (नरः च) पुरुष (नरां) मनुष्यों के बीच में भी (विश्वे देवासः) विद्वान्, व्यवहारकुशल स्त्री पुरुष सभी (स्वगूर्त्ताः) स्वयं उद्यमी होकर (वावृधन्त) बढ़ा करते हैं। हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्य-वान् और श्रेष्ठ पुरुषो! आप दोनों भी (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (एभ्यः) इन प्रजाजनों के लिये (द्यौः पृथिवी च) सूर्य और भूमि के समान प्रकाश और अन्न खूब देने वाले (प्र भूतम्) होओ।

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वाँ वरुण दाशति त्मन्।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥११॥

भा०—इन्द्र वरुण की व्याख्या। हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त! हे वरण योग्य दोनों जनो! (वां) आप दोनों में से (यः) जो (त्मन् दाशति) अपने बल पर दान करता है, (सः इत् सुदानुः) वही उत्तम दाता है; वही (स्व-वान्) आत्मवान्, व सच्चा धनवान्, वही (ऋतावा) बलवान् तेजस्वी, धनाढ्य है। (सः) वह (दास्वान्) दानशील पुरुष ही (इषा द्विषः तरेत्) इच्छा या प्रेरणा, आज्ञा, सैन्य बल और अन्नसम्पदा से अपने शत्रुओं को पार करता है, जो (रयिं सत्) नाना ऐश्वर्य को विभक्त करता और (जनान् च रयिवतः करोति) सब लोगों को धन सम्पन्न करता है।

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानादि गुणों में श्रेष्ठ पुरुषो! (यूयं) आप दोनों (दाशु-अध्वराय) दानरूप से दूसरे को कष्ट न देने वाले यज्ञ को सम्पादन करने के लिये (यम्) जिस प्रकार के (वसुमन्तं) धन सम्पन्न और (पुरु-क्षुम्) बहुत प्रकार के धान्यों से

सम्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य को (धत्थः) धारण करते और औरों को प्रदान करते हैं (यः) जो ऐश्वर्य (वनुषाम् अशस्तीः) याचक लोगों की दुःखदायी दशाओं को (प्र भनक्ति) दूर करता और जो पुरुष (वनुषां अशस्तीः प्र भनक्ति) हिंसक दुष्ट पुरुषों के अप्रशस्त, निन्दित कर्मों को तोड़ता है (सः) वह (अस्मे) हमारे हितार्थ (अपि स्यात्) होवे ।

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्यः इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्ता और प्रमुख रूप से वरण योग्य ! सैन्य-सेनापति जनो ! (येषां) जिनका (शुष्मः) बल (पृतनासु) संग्रामों, मनुष्यों वा सेनाओं के बीच (साह्वान्) सर्वविजयी हो, जो (सद्यः) बहुत शीघ्र ही (ततुरिः) शत्रुनाशक होकर (द्युम्ना) धन और बल से (तिरते) शत्रुओं को नाश करता है और जिनका (रयिः) धन वा बल (नः) हमारे (सूरिभ्यः) विद्वानों का (सुत्रात्रः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला और (देवगोपाः) सब मनुष्यों का रक्षक (स्यात्) हो वही हमारा (सुत्रात्रः) उत्तम रक्षक होने योग्य है ।

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक सेनापति एवं सैन्यवर्ग ! आप दोनों (देवा) विजयशील होकर (गृणाना) मा बाप के तुल्य उत्तम २ आज्ञाएं और उपदेश करते हुए, (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति लाभ के लिये (रयिं पृङ्क्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करो । (इत्था) इस प्रकार सत्य २ (महिनस्य शर्धः) महान् पुरुष, प्रभु के बल की हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नावा अपः न) नाव से जलों के समान (नावा) उत्तम स्तुति और प्रेरणा से हम लोग (दुरिता) सब पापों और कष्टों से (तरेम) पार हो जायं ।

प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ९

भा०—(यः) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से, (उर्वी) विशाल भूमि और आकाश दोनों को (शोचिषा न) दीप्ति से सूर्य के समान राजा और प्रजा वर्ग को (विभाति) प्रकाशित करता है वह (महिव्रतः) बड़े २ कर्म करने वाला, (सप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (अजराः) सदा युवा, जरारहित, अविनाशी (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि और कर्मसामर्थ्य से सम्पन्न है उस (बृहते सम्राजे) बड़े सम्राट्, (देवाय) दानशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष की (प्रियम् मन्म) प्रिय, उत्तम मननयोग्य ज्ञान और स्तुति का (प्र अर्च) सेवन कर ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ मान्य स्त्री पुरुषो ! आप लोग (धृत व्रता) व्रतों को धारण करने वाले (सुत-पा) प्रजा जनों को, राष्ट्र को पुत्रवत् पालन करने वाले, आप दोनों (इमं सुतं) इस पुत्रवत् उत्पन्न प्रजा जनको (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रिय सौम्य स्वभाव के (मद्यम्) आनन्द वा हर्ष के जनक, अन्नवत् तृप्तिदायक सुखजनक को (पिबतम्) पालन करो । (युवोः) आप दोनों का (रथः) रथ और रमणीय व्यवहार (देव-वीतौ) विद्याभिलाषी जन तथा उत्तम विद्वानों की रक्षा और कान्ति के लिये, (स्व-सरम् अध्वरम् प्रति) दिन के समान सुप्रकाशित, स्वयं उत्तम वेग से जाने वाले, हिंसा रहित, राज्यपालन अध्ययनाध्यापन कार्य के प्रति (प्रीतये) प्रजाजन के पालन के लिये (उप याति) प्राप्त हो ।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त और हे श्रेष्ठ और दुःखों के वारण करने और उत्तम पद पर वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मधुमत्-तमस्य) अति मधुर (वृष्णः) बलकारक (सोमस्य) अन्न, जल और ऐश्वर्य के उपभोग से (वृषेथाम्) खूब बलवान् बनो । हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! (इदं) यह (वाम्) आप दोनों का (अन्धः) उत्तम अन्न (अस्मे) हमारे लिये भी (परि-सिक्तम्) सब प्रकार से सिंच कर पात्रादि में रक्खा हो और आप दोनों (अस्मिन् बर्हिषि) इस वृद्धिशील राष्ट्रगृह और उत्तम आसन पर (आसद्य) विराजकर (मादयेथाम्) अति हर्ष लाभ करो, सुखी होओ । इति द्वादशो वर्गः ॥

[६९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राविष्णू देवते ॥ छन्दः—१. ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ८ त्रिष्टुप् । ५ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) 'इन्द्र' ऐश्वर्ययुक्त ! हे 'विष्णु' अर्थात् व्यापक रूप से विद्यमान, विविध सुखों को देने वा विविध मार्गों से जाने वाले ! आप दोनों सूर्य विद्युत्वत् राजा और प्रजाजनो ! वा स्त्री पुरुषो ! मैं विद्वान् पुरुष (अस्य अपसः पारे) इस कर्म के पार (वां) आप दोनों को (कर्मणा) उत्तम कर्म सामर्थ्य से (सं हिनोमि) अच्छी प्रकार पहुँचाता हूँ और (इषा सं) अन्नादि सम्पत्ति, उत्तम अभिलाषा, प्रेरक आज्ञा तथा सेनादि से भी (वां सं हिनोमि) आप दोनों को बढ़ाता हूँ । आप दोनों (नः) हम सबको (अरिष्टैः) हिंसादि उपद्रवों से रहित (पथिभिः) मार्गों और गमन साधनों से (अस्य अपसः पारे पारयन्ता) इस महान् कर्म के पार पहुँचाते हुए (यज्ञं) हमारे इस सत्संग को (जुषेथाम्) प्रेम से स्वीकार करो और (नः द्रविणं च धत्तम्) हमारे धनादि को भी धारण करो, एवं हमें धनादि प्रदान करो ।

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः २

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य से युक्त, राजा प्रजावत् सूर्य विद्युत्वत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सोमधाना) अन्न, ऐश्वर्य के धारक (कलशा) दो कलसों के समान अक्षयनिधि वा बलवीर्य के धारक होकर (विश्वासां) समस्त (मतीनां) मनन योग्य बुद्धियों, ज्ञान-वाणियों को (जनितारा) प्रकट करने वाले होओ। (अर्कैः) अर्चना, स्तुति वा आदर सत्कार योग्य वेदमन्त्रों और सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से (गीय-मानासः) गाये गये (स्तोमासः) स्तुति वचन और वेद के सूक्त तथा (शस्यमानाः) उपदेश की गई (गिरः) वाणियां (वां प्र वहन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हों।

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! व्यापक सामर्थ्य-वन् ! सभा, सभापते, सेना, सेनापते ! राजन् ! प्रभो ! आप दोनों (द्रविणः दधाना) नाना धनों के धारक होकर (सोमं आ यातम्) ऐश्वर्य, वा सोम्य प्रजाजन को पुत्र वा शिष्यवत् प्राप्त होओ। आप दोनों (मदानां मदपती) सब सुखों को प्राप्त कर उनको पालन करने वाले होओ। (मतीनां) मननशील विद्वान् पुरुषों के (शस्यमानासः) उपदेश किये गये (स्तोमासः) स्तुतियोग्य उपदेश, (उक्थैः) उत्तम वचनों वा प्रशंसनीय (शक्तुभिः) चमका देने वाले गुणों से (वां सं सं अञ्जन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करें।

आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥४॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विष्णो ! प्रजा में

सैन्यशक्ति के स्वामिन्! (वाम्) आप दोनों को (अभिमाति सहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ, (अश्वासः) घुड़सवार वीर पुरुष (सध-मादः) एक साथ प्रसन्न होकर (वहन्तु) धारण करें। आप दोनों (मतीनां) मननशील विद्वानों के (विश्वा) समस्त (हवना) ग्रहण करने योग्य वचनों और पदार्थों का (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन करो और (मे) मेरे तथा उन विद्वानों के (ब्रह्माणि) वेदोक्त मन्त्रों और (गिरः) वाणियों को (उप श्रृणुतम्) शिष्यवत् न्यायपूर्वक श्रवण करो।

इन्द्रा॑विष्णू तत्प॑न॒याय्यं॑ वां॒ सोम॑स्य॒ मद॑ उ॒रु च॑क्रमाथे।
अकृ॑णुतम॒न्तरि॑क्षं॒ वरी॒योऽप्र॑थतं जी॒वसे॑ नो॒ रजां॑सि ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन्! व्यापक सामर्थ्यवन् राजन्! विद्वन्! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (पनयाय्यं) प्रशंसनीय कर्म है कि आप दोनों (सोमस्य मदे) अन्न के समान ही ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र द्वारा तृप्ति और हर्षलाभ करने पर, (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को सूर्य वायु के समान स्वभूमियों के मध्य देश में भी (उरु चक्रमाथे) बहुत वेग से जाते और पराक्रम करते हो, उसको (वरीयः अकृणुतम्) विस्तृत और उत्तम बनाओ और (नः) हम प्रजाओं को (जीवसे) दीर्घ और सुख युक्त जीवन के लिये (रजांसि अकृणुतम्, अप्रथतम्) नाना ऐश्वर्यों की उत्पत्ति और वृद्धि करो।

इन्द्रा॑विष्णू ह॒विषा॑ वावृधा॒नाग्रा॑द्वाना॒ नम॑सा रातहव्या।
घृता॑सुती॒ द्रवि॑णं धत्तम॒स्मे स॑मु॒द्रः स्थः॑ क॒लशः॑ सोम॒धानः॑ ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्ययुक्त, व्यापक, सामर्थ्यवान् पुरुषो! आप दोनों (हविषा) 'हवि' अर्थात् प्रजाजन से लेने योग्य कर और अन्न से (वावृधाना) बढ़ते और अन्यों को बढ़ाते हुए (रातहव्या) उत्तम अन्नों को सूर्य वा मेघवत् प्रदान करते हुए, (नमसा) विनय और शक्ति से (अग्राद्वाना) प्रमुख होकर भोग्य सम्पत्ति को सबमें न्यायपूर्वक विभाग

करते हुए, (घृतासुती) सूर्य मेघवत् जल के समान तेज और अन्न आदि को उत्पन्न करते हुए, (अस्मे द्रविणं धत्तम्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करो। आप दोनों (सोम-धानः) ऐश्वर्य या खजाने को अपने में रखने वाले (कलशः समुद्रः) मुद्रा से अंकित बन्द कलश के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त, हर्षयुक्त, समुद्रवत् रत्नादि के आकर (स्थः) होओ।

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रा विष्णू) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्ययुक्त तथा विविध विद्याओं के प्रदान करने वाले बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों (अस्य मध्वः) उस मधु अर्थात् मधुर अन्न वा जल, (सोमस्य) ओषधि-रसवत् उत्पन्न वनस्पति और ऐश्वर्य का भी (पिबतं) पान, भोजन एवं उपभोग करो। इस प्रकार ही (जठरं) अपने उदर को (पृणेथाम्) पूर्ण करो। (वाम्) आप दोनों को (मदिराणि अन्धांसि) हर्षजनक नाना प्रकार के जीवनप्रद अन्न (अग्मन्) प्राप्त हों, आप दोनों (मे हवं उप शृणुतम्) मेरे उत्तम उपदेश का श्रवण करो और (मे ब्रह्माणि उपशृणुतम्) मेरे उपदेश किये वेद मन्त्रों का उत्तम ज्ञान श्रवण करो।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८।१३॥

भा०—हे विष्णो ! वायु के समान व्यापक, बलशालिन् ! और (इन्द्रः च) विद्युतवत् शत्रु के नाशक आप दोनों (यत्) जब (अप स्पृधेथाम्) बढ़ने का उद्योग करो तब (सहस्रं) अपरिमित ज्ञान, बल और ऐश्वर्य इनको (त्रेधा ऐरयेथां) तीनों प्रकारों से प्रेरित करो, तीनों को प्रकट करो। (उभा जिग्यथुः) आप दोनों विजय को प्राप्त करो, (न पराजयेथे) कभी पराजित मत होओ। (कतरः चन एनोः) इनमें से कोई भी (न पराजिग्ये) पराजय को प्राप्त न हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ६ जगती ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥

भा०—भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू, वा स्त्री पुरुषों का कर्त्तव्य । जिस प्रकार (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि (घृतवती) जल और तेज से युक्त हो तो, (भुवनानाम् अभिश्रिया) सब उत्पन्न प्राणियों और लोकों को आश्रय देने वाले, (मधु-दुघे) जल और अन्न को प्रदान करनेवाले, (सु-पेशसा) उत्तम रूपयुक्त, (वरुणस्य धर्मणा विस्कभिते) सर्वश्रेष्ठ प्रभु, परमेश्वर या वायु के धारण सामर्थ्य से थमे हुए (भूरि-रेतसा) बहुत जल, उत्पादक बल, तेज से युक्त होते हैं उसी प्रकार माता पिता और वर वधू दोनों ही (घृतवती) तेज, अन्न और हृदयों में प्रवाहित स्नेह से युक्त हों । वे दोनों (भुवनानाम् अभिश्रिया) उत्पन्न होने वाले प्रजाओं, पुत्रादि के सब प्रकार से आश्रय योग्य और (उर्वी) बहुत विशाल हृदय, (पृथ्वी) भूमिवत् आश्रयदाता, (मधु-दुघे) मधुर वचन और अन्न को देने वाले, (सु-पेशसा) उत्तम रूपवान हों । वे दोनों (वरुणस्य) वरण करने वाले वा वरण योग्य श्रेष्ठ पुरुष के (धर्मणा) धर्म से (विस्कभिते) विविध प्रकार से एक दूसरे का आश्रय होकर (अजरे) युवा युवती, जरावस्था से रहित, (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् हों ।

असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (रोदसी) सूर्य भूमि (असश्चन्ती) पृथक् २ रहकर भी (भूरि-धारे) बहुत जलधाराओं से युक्त (पयस्वती) जल, अन्न से सम्पन्न

होकर (घृतं दुहाते) जल, तेज और अन्न प्रदान करते हैं, वे (मनुर्हितं रेतः सिञ्चतम्) मनुष्यों के हितकारी तेज और जल प्रदान करते हैं; जैसे माता पिता दोनों (असश्चन्ती) पृथक् गोत्रों के होते हुए, (भूरि-धारे) बहुत, उत्तम वाणियों और स्तन्यधाराओं से युक्त, वा बहुत पदार्थों को धारण करने वाले, (पयस्वती) अन्न और दूध से युक्त, (शुचि-व्रते) पवित्र कर्म और व्रत का पालन करने वाले (सु-कृते) उत्तम पुण्य कर्म वाले होकर (घृतं दुहाते) स्रवणशील स्नेह, दुग्ध और अन्न प्रदान करें। वे दोनों (अस्य भुवनस्य) इस संसार में (राजन्ती) गुणों से प्रकाशित होकर (रोदसी) सूर्य भूमिवत् एक दूसरे की मर्यादा का पालन करते हुए (यत् मनुः हितम्) जो मननशील मनुष्य के उत्पन्न करने के लिये पूर्व आश्रम में धारण किया (रेतः) वीर्य हो, उसकी वे दोनों (अस्मे) हमारे प्रजावृद्धि के लिये (सिञ्चतम्) गृहाश्रमकाल में निषिक्त कर धारण करें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें।

यो वा॑मृ॒जवे॒ क्रम॑णाय रोदसी॒ मर्तो॑ द॒दाश॑ धिषणे॒ स सा॑धति।
प्र प्र॒जाभि॑र्जायते॒ धर्म॑ण॒स्परि॑ यु॒वोः सि॒क्ता विषु॑रूपाणि॒ सव्र॑ता ३

भा०—हे (धिषणे) एक दूसरे को धारण करने वाले, बुद्धिमान्, (रोदसी) सूर्य भूमि के समान तेजस्वी, दृढ़ स्त्री पुरुषो! (वां) आप दोनों में से (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) धर्म मार्ग पर चलने के लिये (ददाश) अपने को समर्पित करता है (सः साधति) वह सन्मार्ग पर जाता और उद्देश्य साधता है। वही (युवोः) आप दोनों के बीच (धर्मणः परि) धर्मानुसार (प्रजाभिः प्र जायते) उत्तम प्रजा, सन्तानों द्वारा उत्पन्न होता है। (युवोः) आप दोनों के (सिक्ता) वीर्यों से उत्पन्न सन्तान (विषुरूपाणि) नाना प्रकार के (सव्रता) समान शुभाचरण युक्त होते हैं।

घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒भीवृ॑ते घृत॒श्रिया॑ घृत॒पृचा॑ घृता॒वृधा॑।
उ॒र्वी पृ॒थ्वी हो॑तृ॒वूर्ये॑ पु॒रोहि॑ते॒ त इद्विप्रा॑ ईळते सु॒म्नमि॒ष्टये॑ ॥४॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि जैसे (घृतेन अभीवृते) जल, प्रकाश से युक्त, उनसे शोभा धारण करते हैं, उसी प्रकार स्त्री पुरुष एक दूसरे की कामना करने वाले, एक दूसरे को चाहने वाले, एक दूसरे का आश्रय होकर (घृतेन अभीवृते) स्नेह से सबके समक्ष एक दूसरे द्वारा वरण किये जावें। वे दोनों (घृत-श्रिया) जल से शोभित मेघविद्युत् के समान, तेज से शोभित सूर्य विद्युत् के तुल्य, स्नेह और ज्ञान से शोभा युक्त हों। वे दोनों (घृत-पृचा) स्नेहपूर्वक एक दूसरे से सम्बद्ध हों, (घृता-वृधा) स्नेह से स्वयं बढ़ने और दूसरे को बढ़ाने वाले हों, दोनों वे (उर्वी) बड़े आदरणीय हों (पृथ्वी) विस्तृत भूमि के समान परस्पर आश्रय रूप, (होतृ-वूर्ये) दोनों ही ज्ञानादि देने वाले विद्वानों का यज्ञों में वरण करने वाले वा एक दूसरे को आप ही दाता प्रतिगृहीत। रूप से वरण करने वाले, (पुरोहिते) दोनों एक दूसरे के कार्यों के ऊपर विद्वान् पुरोहित के समान साक्षी, एवं हित को सदा आगे रखने वाले, वा गृहस्थ में प्रविष्ट होने के पूर्व सबके समक्ष प्रेम ग्रन्थि से बद्ध हों। (विप्राः) विद्वान् पुरुष (इष्टये) इष्ट एवं परस्पर की सत्संगति लाभ के लिए, (ते इत्) उन दोनों को ही (सुम्नम् ईडते) सुखपूर्वक चाहा करते हैं।

मधु॑ नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी मि॑मिक्षतां मधु॒श्चुता॑ मधु॒दुघे॒ मधु॑व्रते।
दधा॑ने य॒ज्ञं द्रवि॑णं च दे॒वता॒ महि॒ श्रवो॒ वाज॑म॒स्मे सु॒वीर्य॑म् ॥५॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि दोनों जिस प्रकार (मधुमि-मिक्षतः) अन्न, जल सब पर वर्षाते हैं उसी प्रकार स्त्री-पुरुष, वर-वधू दोनों माता पिता होकर (नः) हमें (मधु मिमिक्षताम्) अन्न प्रचुर मात्रा में दें। वे दोनों (मधु-श्चुता) मधुर पदार्थों के देने वाले, (मधु-दुघे) मधुर पदार्थों को दोहन करने वाले, (मधु-व्रते) मधुर फलोत्पादक कर्म करने वाले हों। वे दोनों (अस्मे) हमें (महि) बड़ा (सु-वीर्यम्) उत्तम बल-प्रद (वाजं श्रवः) बल, अन्न और ज्ञान और (द्रविणं यज्ञम् च दधाने)

धनैश्वर्य और सत्संग को धारण करने वाले होकर (मधु मिमिक्षताम्) मधुर अन्न प्रदान करें।

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा। संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य पृथिवी जैसे (वः) हमें (ऊर्ज) अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार (विश्व-विदा) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने और सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाले (सुदंससा) उत्तम कर्म करने वाले, सदाचारी, (पिता माता) पिता और माता (नः ऊर्जं पिन्वताम्) हमें उत्तम बलकारक अन्न प्रदान करें। वे दोनों (विश्वशम्भुवा) समस्त जनों को शान्ति देने वाले, (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् (सनिं) उत्तम दान योग्य (वाजं) ऐश्वर्य को (संरराणे) अच्छी प्रकार देते हुए, (अस्मे) हमें (रयिं सम् इन्वताम्) बल, वीर्य और धन प्रदान करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २, ३ निचृज्जगती । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । षडृचं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः। घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

भा०—जैसे (देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य (हिरण्यया बाहू) सबके हित और रमणीय 'बाहू' अर्थात् अन्धकार को बाधने वाले किरणों को (उद् अयंस्त) ऊपर थामता है और (सु-दक्षः) खूब दाहकारी होकर (विधर्मणि) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः अभि घृतेन प्रुष्णुते) समस्त भुवनों को तेज से संतप्त करता वा जल से सेचन भी करता है वैसे (स्यः देवः) वह दानशील, व्यवहारज्ञ, युद्धनिपुण (सविता) शासक, राजा (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और बुद्धि से सम्पन्न होकर (सवनाय) ऐश्वर्य की

वृद्धि और शासन कार्य के लिये (हिरण्यया बाहू) हित और सबको प्रिय, सुवर्ण से अलंकृत बाहुवत् हिरण्य अर्थात् लोह के बने, कान्तिमान्, तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से युक्त, शत्रु पीड़क बलवान् सैन्यों को भी (उद् अयंस्त) उत्तम रीति से उठाता, उनको नियन्त्रण में रखता है, वही (मखः) यज्ञ के समान पूज्य, उपकारक (युवा) बलवान्, (सु-दक्षः) उत्तम कार्यकुशल, होकर (विधर्मणि) विविध प्रजाओं के धारण करने के कार्य में (रजसः अभि) लोक समूह के प्रति (घृतेन) तेज से (पाणी) अपने हाथों को (प्रुष्णुते) प्रतप्त करता है, जिनसे वह दुष्टों के दमन, प्रजा के शासन में समर्थ हो। (प्रुष्णुते) प्रुष प्लुष दाहे। भ्वा० ॥

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः २

भा०—हे प्रभो ! (यः) जो तू (विश्वस्य) समस्त (द्विपदः) दोपाये, मनुष्यों और (यः चतुष्पदः) जो चौपायों, पशुओं तथा (भूमनः) बहुत प्रकार के जगत् के भी (निवेशने) बसने और (प्रसवे) पैदा होने, समृद्ध होने और शासन में (च) भी समर्थ है उस तुझ (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वशासक (देवस्य) सर्वप्रद, तेजस्वी प्रभु के (बलिष्ठे) अति प्रशंसनीय, (सवीमनि) शासन और (वसुनः दावने) ऐश्वर्य के दान पर हम (स्याम) सुखपूर्वक रहें।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥३॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक, सत्कर्मों और शुभमार्गों में चलाने हारे प्रभो ! स्वामिन् ! (अदब्धेभिः) कभी नाश न होने वाले रक्षासाधनों और (शिवेभिः) कल्याणकारी, सुखजनक उपायों से (अद्य) आज (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणमय जीवन को (त्वं) तू (परि पाहि) पालन कर। तू (हिरण्य-जिह्वः) सर्व हितकारी, सबको भली लगने वाली, सुवर्ण-

वत् कान्तियुक्त, सत्यप्रकाशक वाणी बोलने वाला (नव्यसे) नये से नये, सर्वश्रेष्ठ, अति रमणीय, (सुविताय) सुखपूर्वक गमनयोग्य सदाचार पालन तथा ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर और (नः) हम पर (अघ-शंसः) पापी, दुष्ट, पापमार्ग का उपदेश करने वाला पुरुष (माकिः ईशत) कभी प्रभुता न करे।

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४॥

भा०—(सविता देवः प्रतिदोपम् उद् अस्थात्) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य प्रति रात्रि समाप्ति पर उदय होता है, उसी प्रकार (स्यः देवः) वह तेजस्वी, दानशील, (सविता) उत्तम शासक, (दमूनाः) मन इन्द्रियों पर दमन करने वाला, (हिरण्य-पाणिः) सुवर्णादि धन को अपने हाथ में, अपने वश में रखने वाला होकर (प्रति दोपम्) प्रति दिन वा प्रत्येक दोष वा दुष्टों के प्रत्येक अपराध पर (उद् अस्थात्) उठ खड़ा हो, वह (अयोहनुः) लोहे के बने अस्त्रों शस्त्रों से शत्रु का हनन करने वाला सेना का स्वामी, (यजतः) पूज्य एवं सत्संगयोग्य वृत्तिदाता, (मन्द्रजिह्वः) सबको प्रसन्न करने वाली वाणी को बोलने वाला होकर (दाशुषे) आत्मसमर्पक भृत्य वा करप्रद प्रजाजन के उपकार के लिये (भूरिवामम् आसुवति) बहुत सा उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे।

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥ ५ ॥

भा०—जैसे (सविता सुप्रतीका उत् अयान् पतयत्, अभ्वम् अरीरमत्, दिवः पृथिव्या रोहांसि अरुहत्) सूर्य सुन्दर प्रतीति-कर तेजों को लेकर उदय होता, आता हुआ जगत् को प्रसन्न करता, भूमि आकाश के उन्नत भागों पर चढ़ता है, उसी प्रकार जो (सविता) शासक, राजा, (उपवक्ता इव) उपदेष्टा पुरुष के समान (हिरण्यया) हित, रमणीय (सुप्रतीका)

उत्तम मार्ग को बतलाने वाले (बाहू) शत्रुओं के नाशक बाहुओं को (उत् अयान् उ) सदा उद्यत रक्खे, वह (दिवः) तेज के (रोहांसि) उन्नत पदों और (पृथिव्याः रोहांसि) पृथ्वी के उत्तम भागों, पृथिवी पर उत्पन्न ऐश्वर्यों को भी (अरुहत्) प्राप्त करे, (अभ्वम्) महान् राष्ट्र को भी (कत् चित्) कभी (पतयत्) प्राप्त करे और (अरीरमत्) सुख से स्वयं रमण कर, राष्ट्र को सुखी करके उसका पति, स्वामी, पालक हो। (२) सर्वोत्पादक प्रभु हमारे प्रति उपदेष्टावत् बाहुऐं उठावे, (अभ्वं पतयत्) हमारे असामर्थ्य को दूर कर हमें सुखी करे।

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६।१५॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक! सर्वप्रेरक प्रभो! (अद्य) आज तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुख (सावीः) प्रदान कर। (श्वः उ) और कल भी हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुखैश्वर्य (सावीः) प्रदान कर और तू (दिवेदिवे अस्मभ्यम् वामम् सावीः) प्रतिदिन हमें उत्तम २ सुख ऐश्वर्य प्रदान किया कर। हे (देव) दानशील! दिव्य पुरुष! (वयं) हम लोग (अया धिया) इस प्रकार की उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (वामस्य) प्रशंसनीय और (भूरेः) बहुत से (क्षयस्य) गृह और ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा के (वामभाजः स्याम) सुखपूर्वक उपभोग करने वाले हों। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[७२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) सूर्य और चन्द्र के समान ऐश्वर्य और वीर्य

से युक्त और प्रजाओं को उत्पन्न करने में समर्थ उत्तम स्त्री पुरुषो ! वा उत्तम आचार्य शिष्य जनो ! (वां तत् महित्वं) तुम दोनों का वह महत्व-पूर्ण कार्य है कि (युवं) तुम दोनों (महानि) पूज्य, आदर योग्य (प्रथमानि) श्रेष्ठ २ कार्य (चक्रथुः) करो। (युवं) तुम दोनों (सूर्यं) सर्व प्रकाशक सूर्य और सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष तथा सर्वोत्पादक, सर्व प्रकाशक प्रभु को, (विविदथुः) अपना आदर्श जानो और उसी को प्राप्त करो। (विश्वा तमांसि निदः च) सब प्रकार के अविद्याजनित मोह, शोकादि अन्धकारों को, निन्दकों और निन्दनीय व्यवहारों को भी (अहतम्) नाश करो।

इन्द्रा॑सोमा वा॒सय॑थ उ॒षास॒मुत्सूर्यं॑ नयथो॒ ज्योति॑षा स॒ह।
उप॒ द्यां स्क॒म्भथुः स्क॒म्भ॑ने॒नाप्र॑थतं पृथि॒वीं मा॒तरं॒ वि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त एवं प्रजा को शासन करने वाले जनो ! तेजस्वी और वीर्यवान् पुरुषो ! आप लोग (उषासं वासयथः) उत्तम कामना युक्त प्रजा को सुखपूर्वक बसाओ, एवं कामनायुक्त, प्रभात वेलावत् कमनीय रूपयुक्त युवा युवतियों को गृहाश्रम में बसाने का उद्योग करो। (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ज्योतिषा सह) उसके तेज सहित (उत् नयथः) उत्तम पद प्राप्त कराओ। (स्कम्भनेन) आश्रय देने वाले स्तम्भ से जिस प्रकार गृह की छत को थामा जाता है उसी प्रकार (स्कम्भनेन) आश्रयप्रद सामर्थ्य से (द्यां) परस्पर की कामना करने वाले दूसरे अंग को (स्कम्भथुः) अपने ऊपर थामो। (पृथिवीं मातरम्) पृथिवी के समान माता को (वि अप्रथतम्) विशेष रूप से विख्यात, विस्तृत करो। अर्थात् राष्ट्र की वृद्धि के साथ २ मातृ जाति का अधिक मान करो। (२) आचार्य और शिष्य दोनों (उषासम्) विद्येच्छुक ब्रह्मचारी को अन्तेवासी रूप में बसावें, सूर्यवत् कान्तियुक्त करें, ज्ञानमय वेद का धारण करें और विस्तृत वेदमयी माता का विस्तार करें।

इन्द्रा॑सोमा॒वहि॑म॒पः प॑रि॒ष्ठां ह॒थो वृ॒त्रमनु॑ वां॒ द्यौर॑मन्यत।
प्रार्णां॑स्यैरयतं न॒दीना॒मा स॑मु॒द्राणि॑ पप्रथुः पु॒रूणि॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमौ) आचार्य, शिष्य ! प्रभु, प्रजावत् विद्यमान स्त्री पुरुषो ! वा विद्युत् पवन के समान परस्पर सहायक जनो ! (अपः परि-स्थाम् अहिम् वृत्रम् हथः) जिस प्रकार जलों को धारण करने वाले व्यापक मेघ को विद्युत् और वायु आघात करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (अपः परि-स्थाम्) उत्तम कर्मों वा ज्ञानों के ऊपर स्थित (वृत्रम् अहिम्) आवरणकारी अज्ञान को (हथः) विनाश करो। (वां) आप दोनों में से (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अनु अमन्यत) उत्तम कार्य की अनुमति दिया करे। आप दोनों (नदीनां) नदियों के (अर्णांसि) जलों को विद्युत् और पवन के समान, (नदीनाम्) समृद्धि युक्त प्रजाजनों के (अर्णांसि) नाना ऐश्वर्यों वा ज्ञानों को (प्र ऐरयतम्) प्रदान करो। (पुरूणि) बहुत से (समुद्राणि) समुद्रवत् विस्तृत कामनायोग्य उत्तम कर्मों, अन्तःकरणों वा मनोरथों को (आ पप्रथुः) विस्तृत करो।

इन्द्रा॑सोमा प॒क्वमा॒मास्व॒न्तर्नि गवा॒मिद्द॑धथु॒र्व॒क्षणा॑सु ।
ज॒गृ॒भ॒थु॒रन॑पिनद्धमासु॒ रुश॑च्चि॒त्रासु॒ जग॑तीष्व॒न्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) सूर्य चन्द्र वा, वायु विद्युत्वत् युगल जनो ! जैसे (आमासु अन्तः पक्वम् निदधथुः) सूर्य वायु वा सूर्य चन्द्र कच्ची ओषधियों में परिपक्व रस प्रदान करते हैं और जिस प्रकार (गवां वक्षणासु जलं नि दधथुः) भूमियों के बीच बहती नदियों में वायु और मेघ जल प्रदान करते हैं, उसी प्रकार आप दोनों (आमासु) सह धर्मचारिणी दाराओं में (पक्वम् वीर्यं नि दधथुः) परिपक्व वीर्य आधान करो और (गवाम्) गमन योग्य धर्मदाराओं के (वक्षणासु अन्तः) कोखों में विद्यमान गर्भ, शिशु आदि को (नि दधथुः) पालन करो। (आसु) उनके बीच सब उत्तम व्यवहार (अनपिनद्धम्) बन्धन रहित, स्पष्ट रूप से (जगृभथुः) ग्रहण करो और (चित्रासु जगतीषु अन्तः) अद्भुत सृष्टियों के बीच (रुशत्) सुरूप, तेजोयुक्त पदार्थ को (जगृभथुः) ग्रहण कराओ।

इन्द्रा॑सोमा यु॒वम॒ङ्ग तरु॑त्रमपत्य॒साचं॒ श्रुत्यं॑ ररा॒थे ।
यु॒वं शुष्मं॒ नर्यं॑ चर्ष॒णिभ्यः॒ सं वि॑व्यथुः पृतना॒षाह॑मुग्रा ॥५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त सूर्यवत् तेजस्वी एवं सोम्य गुण-युक्त चन्द्रवत् सुन्दर स्त्री पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (तरुत्रम्) पार उतारने वाले (अपत्य-साचं) पुत्रादि सन्तान युक्त, (श्रुत्यं) श्रवण योग्य धन को (रराथे) प्रदान करो। आप दोनों (उग्रा) बलवान् होकर (चर्ष-णिभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (नर्यं) नायकोचित (पृतना-षाहम्) सैन्यों वा संग्रामों को जीतने वाले (शुष्मं) बल वा बलवान् पुत्र को (सं विव्यथुः) सन्तान रूप से उत्पन्न करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[७३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

यो अ॑द्रि॒भित्प्र॑थम॒जा ऋ॒तावा॒ बृह॒स्पति॑राङ्गिर॒सो ह॒विष्मा॑न् ।
द्वि॒बर्ह॑ज्मा प्राघर्म॒सत्पि॒ता न॒ आ रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति ॥१॥

भा०—(यः) जो (अद्रि-भित्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान, (अद्रिभित्) शस्त्रयुक्त सैन्यों को भेदने में समर्थ (प्रथ-मजाः) प्रथम मुख्य रूप से प्रकट होने वाला, (ऋतावा) न्याय, सत्य, ऐश्वर्य, तेज को सेवन करने वाला, (हविष्मान्) अन्नों का स्वामी, (आङ्गिरसः) जलते अङ्गारों के समान तेजस्वी विद्वानों का स्वामी है, (बृहस्पतिः) वही 'बृहस्पति' अर्थात् बड़े भारी राष्ट्र का पालक, स्वामी होने योग्य है। वह (द्विबर्हज्मा) शास्त्र बल और बुद्धिबल दोनों से भूमि राष्ट्र की वृद्धि करने वाला (प्राघर्मसत्) उत्तम तेज धारक (नः पिता) हमारा वास्तविक पिता, पालक होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवी, राजा प्रजा वर्ग दोनों को (आ रोरवीति) सब प्रकार से आज्ञा करे।

जना॑य चि॒द्य ईव॑त उ लो॒कं बृह॒स्पति॑र्दे॒वहू॑तौ च॒कार॑ ।
घ्नन्वृ॒त्राणि॒ वि पुरो॑ दर्दरीति॒ जय॒ञ्छत्रूँ॑र॒मित्रा॑न्पृ॒त्सु साह॑न् ॥२॥

भा०—(यः) जो (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र और वेदवाणी का स्वामी विद्वान् और राजा (देवहूतौ) विद्वानों व शूरों को निमन्त्रित करने योग्य यज्ञ व संग्राम में (ईवते जनाय) शरणागत मनुष्य की रक्षार्थ (उ) भी (लोकं) आश्रय (चकार) करता है और जो (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं को (घ्नन्) विनाश करता हुआ, (अमित्रान्) स्नेह न करने वाले (शत्रून्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (साहन्) पराजय करता और (जयन्) जीतता (पुरः वि दर्दरीति) शत्रु के गढ़ों को विविध प्रकार से तोड़ता फोड़ता है।

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥१७॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी, (देवः) तेजस्वी दानशील राजा, (महः वसूनि) बहुत से ऐश्वर्यों और बसने योग्य जनपदों को (सम् अजयत्) समवाय बना कर विजय करे और (एषः) वह (महः) बड़े २ (गोमतः) भूमियों से युक्त (व्रजान्) मार्गों को भी मेघों को सूर्यवत् विजय करे। वह (बृहस्पतिः) बड़े ऐश्वर्य और बल सैन्यादि का पालक होकर (अप्रतीतः) अन्यों से मुकाबला न किया जाकर, (अपः सिषासन्) मेघवत् जलों की वर्षा करता हुआ और (स्वः) राष्ट्र में सुख सम्पदाएं विभक्त करता हुआ, (अमित्रम्) शत्रु जन को (अर्कैः) शस्त्रों द्वारा (हन्ति) दण्ड दे। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७४]

भारद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सोमारुद्रौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोमवत् शान्तिदायक चन्द्रवत् आह्लादक, सोम और रुद्र अर्थात् रोगों को दूर करने वाले वैद्य के समान देश से

दुष्टों को दूर भगाने वाले राजन् आप दोनों (असुर्यं धारयेथाम्) विद्युत् और मेघ रूप जल वा पवन के समान प्राणयुक्त बल धारण करो, कराओ। (वाम्) आप दोनों के (इष्टयः) दान हमें (अरम् अश्नुवन्तु) खूब प्राप्त हों। आप दोनों (दमे दमे) प्रत्येक घर में (सप्त रत्ना दधाना) सातों प्रकार के रत्न धारण कराते हुए (नः द्विपदे) हमारे दोपाये और चौपायों को (शं शं भूतम्) अति शान्तिदायक होओ।

सोमा॑रुद्रा॒ वि वृ॑हतं॒ विषू॑ची॒ममी॑वा॒ या नो॒ गय॑मावि॒वेश॑।
आ॒रे बा॑धेथां॒ निर्ऋ॑तिं परा॒चैर॒स्मे भ॒द्रा सौ॑श्रव॒सानि॑ सन्तु ॥२॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) 'सोम' अर्थात् ओषधिवर्ग वा जल के समान शान्तिदायक और 'रुद्र' अर्थात् रोगहारक अग्नि के समान पीड़ा को दूर करने वाले वैद्य के तुल्य आर्तिनाशक ! (या अमीवा) जो रोग दायक पीड़ा (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणयुक्त देह में (आविवेश) प्रविष्ट हो (विषूची) विविध प्रकार के अनर्थों से युक्त उस को (वि-वृहतम्) सर्वथा उखाड़ फेंको और (निर्ऋतिं) अति कष्टदायी विपत्ति को (पराचैः बाधेथाम्) दूर से ही हरो और (अस्मै) हमें (भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) सुखदायी श्रेष्ठ २ अन्न समृद्धियें प्राप्त हों।

सोमा॑रुद्रा यु॒वमे॒तान्य॒स्मे विश्वा॑ त॒नूषु॑ भेष॒जानि॑ धत्तम्।
अव॑ स्यतं मु॒ञ्चतं॒ यन्नो॒ अस्ति॑ त॒नूषु॑ ब॒द्धं कृ॒तमेनो॑ अ॒स्मत् ॥३॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) जल और अग्नितत्वों के तुल्य शान्तिदायक, रोगहारक विद्वान् पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरों के निमित्त (एतानि) ये नाना प्रकार के (विश्वा) समस्त (भेषजानि) रोग दूर करने के औषधों को (धत्तम्) धारण करो। (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (यत्) जो (कृतं) किया हुआ (एनः) पाप (बद्धं अस्ति) बंधा है उसको (अव स्यतम्) दूर करो और (अस्मत्) हमसे (अव मुञ्चतम्) छुड़ाओ।

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ।४।१८

भा०—(सोमारुद्रौ) जल अग्निवत् शान्तिदायक और पीड़ानाशक जन (तिग्म-आयुधौ) तीक्ष्ण प्रहारसाधनों से युक्त, (तिग्म-हेती) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले, (सु-शेवौ) उत्तम सुखदायक पुरुष (नः सुमृडतम्) हमें हुए (नः) अच्छी प्रकार सुखी करें । वे दोनों (सु-मनस्यमाना) शुभ चित्त वाले होते हमें (वरुणस्य पाशात्) वरुण अर्थात् प्रबल रोग के पाश से (न मुञ्चतम्) छुड़ावें और (नः गोपायतम्) हमारी रक्षा करें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७५]

पायुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ देवता—१ वर्म । २ धनुः । ३ ज्याः । ४ आर्त्नी । ५ इषुधिः । ६ सारथिः । ६ रश्मयः । ७ अश्वाः । ८ रथः । ९ रथगोपाः । १० लिङ्गोक्ताः । ११, १२, १५, १६ इषवः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तघ्नः । १७–१९ लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरादितिश्च । १८ कवचसोमवरुणाः । १९ देवाः । ब्रह्म च)॥ छन्दः—१, ३, निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७, ८, ९, ११, १४, १८ त्रिष्टुप् । ६ जगती । १० विराड् जगती । १२, १९ विराडनुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १३ स्वराडुष्णिक् । १७ पंक्तिः ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो शूरवीर (वर्मी) कवच धारण करके (समदाम् उपस्थे) संग्राम में (याति) जाता है वह (जीमूतस्य इव) मेघ के समान (प्रतीकं) प्रतीत होने लगता है; वह मेघ के समान शत्रु पर शस्त्रास्त्र की वर्षा करने में समर्थ होता है । हे शूरवीर पुरुष ! तू (अनाविद्धया तन्वा) बिना घायल हुए शरीर से (जय) विजय कर । (वर्मणः सः महिमा) कवच का यही गुण है कि शरीर पर घाव न लग सके । वही कवच

(त्वा पिपर्तु) तेरा पालन करे, तुझे संग्रामों में क्षत विक्षत न होने दे। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद (अ० २९। मं० २८-५७)

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

भा०—जो (धनुः) धनुष (शत्रोः) शत्रु के (अपकामं) मन चाहे फल का नाश (कृणोति) करता है, ऐसे (धन्वना) धनुष के बल से हम लोग (गाः जयेम) गौओं, भूमियों का विजय करें। उसी (धन्वना आजिं जयेम) धनुष से हम संग्राम का विजय करें। उसी (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष से हम वेग से आने वाली हर्ष या मद से युक्त शत्रुसेनाओं और संग्रामों को भी जीतें। (धन्वना) धनुष के बल से हम (सर्वाः दिशः जयेम) समस्त दिशाओं का विजय करें, दिग्विजय करें।

वृक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३॥

भा०—(योषा-इव) जैसे स्त्री (प्रियं सखायं परि-षस्वजाना) प्रिय मित्र को आलिङ्गन करती हुई (वक्ष्यन्ती इव) कुछ कहना सा चाहती हुई मानो (कर्णम् आ गनीगन्ति) कान के समीप आती है वैसे (अधि धन्वन्) धनुष पर (वितता) तनी (ज्या) डोरी, प्रिय मित्रवत् सहायक धनुर्दण्ड के साथ लगकर मानो वीर पुरुष के कान में कुछ कहना सा चाहती हुई कान तक पहुँचती है और (समने पारयन्ती) संग्राम में शत्रुसंकट से पार करती हुई (शिङ्क्ते) मधुर रव करती है।

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४

भा०—(समना-इव योषा) समान मन, एक चित्त हुई स्त्री जिस प्रकार पति को और (माता इव पुत्रं) माता जिस प्रकार पुत्र को (आचरन्ती) प्रेम व्यवहार करती हुई (संविदाने) परस्पर ऐकमत्य होकर

(उपस्थे विभृताम्) अपने समीप, गोद में धारण करती है उसी प्रकार (ते) वे (इमे) दोनों (आर्त्नी) धनुष की कोटियां भी (सं-विदाने) एक साथ डोरी से मिलकर (अमित्रान् विस्फुरन्ती) शत्रुओं का नाश करती हुई (शत्रून् अप विध्यताम्) शत्रुओं को मार भगावें। एक पुरुष की प्रिय स्त्री और माता दोनों सहमति कर प्रियाचरण करतीं, उसको प्रेम करती हैं, उसी प्रकार धनुष की कोटियों के तुल्य (आर्त्नी) शत्रुनाशक दायें बायें की दो सेनाएं शूरवीर की रक्षा करें।

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ५।१९

भा०—जिस प्रकार (बह्वीनां पिता) एक पुरुष बहुत सी कन्याओं का पिता हो और (अस्य बहुः पुत्रः) उसके बहुत से पुत्र होवें, वे सब (समना अवगत्य चिश्चा कृणोति) एक स्थान पर मिलकर चीं चां करें ठीक उसी प्रकार (इषुधिः) बाणों को अपने भीतर धारण करने वाला तरकस (बह्वीनां पिता) बहुत से बाणों का पालक होने से उनका पिता है और (अस्य) इसके भीतर से निकला बाणसंघ (बहुः पुत्रः) बहु पुत्रों के तुल्य है। वह (समना अवगत्य) संग्राम में आकर (चिश्चा कृणोति) 'चींचां' ऐसी ध्वनि करता है। वह (इषुधिः) तरकस (पृष्ठे निनद्धः) वीर पुरुष के पीठ पीछे बंधकर, भागते शत्रु के पीठ पर लगे सन्नद्ध वीर के समान (प्र-सूतः) मानों बाणों को अपने में से पैदा सा करता हुआ (सर्वाः सं-काः) समस्त संग्राम में स्थित, संघ बनाकर खड़ी (पृतनाः) सेनाओं को (जयति) विजय करता है। उसी प्रकार (इषुधिः) बाणों का धारक वीर भी (नि-नद्धः) कवच बांधे शत्रु के पीछे लगकर बाणों को निरन्तर फेंकता हुआ शत्रु सेनाओं को विजय करे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६॥

भा०—(सु-सारथिः) रथ चलाने वाला उत्तम सारथी (रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ, (यत्र-यत्र कामयते) जहां जहां चाहता है वहां २ (वाजिनः) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) आगे आगे ले जाता है। (मनः) मन जैसे इन्द्रियों को वश रखता है वैसे (रश्मयः) रासें भी घोड़ों को (पश्चात् अनु यच्छन्ति) पीछे से नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वानो! आप लोग (अभीशूनां महिमानं पनायत) रासों के महान् सामर्थ्य का वर्णन करो कि सारथी यथेष्ट रथ चलाता और अश्वों को वश करता है। अध्यात्म में 'मन' रासें हैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनःप्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयवानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ कठ उप०॥

आत्मा रथ का स्वामी, शरीर रथ, बुद्धि कोचवान्, मन रासें, इन्द्रिय घोड़े और विषय देश हैं। बुद्धि, इन्द्रिय, मन सब मिलकर 'भोक्ता' है, ऐसा विद्वान् वर्णन करते हैं।

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः॥ ७॥

भा०—(रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों के साथ वेग से जाते हुए (अश्वाः) अश्व (वृषपाणयः) शकट में लगे बैलों के समान अधिक से अधिक भार वहन करने में समर्थ (अश्वाः) घोड़े और (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों और रथ सवारों सहित युद्ध करने वाले (वृष-पाणयः) बलवान् शरवर्षी धनुष हाथ में लिये, वा बलवान्, वा मेघवत् शरवर्षी वीरों को अपने हाथ में लिये, अपने वश किये (अश्वाः) बलवान् अश्व-सवार सेनानायक (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र घोष, गर्जना करते हैं। वे (प्रपदैः) आगे के कदमों से (अमित्रान् अव-क्रामन्तः) शत्रुओं को रोंदते हुए,

स्वयं (अनप-व्ययन्तः) दूर न जाते हुए भी स्थिर रह कर या स्वयं अपना नाश न होने देते हुए (शत्रून् क्षियन्ति) शत्रुओं को नाश करते हैं।

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्र) जिसमें (अस्य) इस वीर के (रथवाहनं) रथ को संचालित करने वाले यन्त्रादि उपकरण, (हविः) अन्न और (नाम) शत्रु को नमाने वाले (आयुधं) अस्त्रादि और (अस्य) इसका (वर्म) कवच भी (निहितम्) रक्खे हों (तत्र) उस रथवत् राष्ट्र में हम (सु-मनस्यमानाः) शुभ चित्त होकर रहें और (विश्वाहा) सब दिनों (शग्मं) सुखकारी (रथम्) रथ को (सदेम) प्राप्त हों, रथ पर सवारी करें।

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥

भा०—(स्वादु-संसदः) उत्तम सुखजनक अन्न ऐश्वर्यादि भोग करने के लिये न्यायासन आदि उत्तम पदों पर विराजने वाले, (वयः-धाः) दीर्घायु, ज्ञान, बल को धारण करने वाले (कृच्छ्रे-श्रितः) संकटों में प्रजाओं द्वारा आश्रय लेने योग्य, (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, (गभीराः) गंभीर स्वभाव के, (चित्र-सेनाः) अद्भुत सेनाओं के स्वामी (इषु-बलाः) धनुषबाण के बल, सैन्य से युक्त, (अमृध्राः) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य, प्रजा की हिंसा न करने वाले, (सतः-वीराः) सत्व, बल से सम्पन्न, (व्रात-साहाः) शत्रु सैन्य-दलों को पराजित करने वाले, (उरवः) बहुत, संख्या में अधिक (पितरः) पालक, पिता के तुल्य आदरणीय हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा। पूषा नः पातु दुरिताद् ऋतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥२०

भा०—हे (पितरः) पालन करने वाले, पिता माता के समान आदर योग्य (सोम्यासः) 'सोम' अर्थात् चन्द्रमा, सोम ओषधि के गुणों के

योग्य, वा सोम अर्थात् पुत्र वा शिष्यों के प्रति हितकारी (ब्राह्मणासः) ब्रह्म, वेद के जानने वाले विद्वान् पुरुषो! आप लोग (रक्ष) हमारी रक्षा करो और (ऋत-वृधः) सत्य, न्याय, ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए (ईशत) हम पर शासन करो। (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों (नः) हमें (दुरितात् पातु) पाप, दुष्टाचरण से बचावें और (अघशंसः) पाप की शिक्षा देने वाला, चोर पुरुष (नः माकिः ईशत) हम पर प्रभुत्व न करे। इति विंशो वर्गः ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ११

भा०—इषवः देवताः। यह 'इषु' बाण (मृगः) सिंह के समान वेग से आक्रमण करने वाला, अति शुद्ध, चमचमाता हो। वह (सुपर्णं) उत्तम वेग से जाने योग्य पंखों को (वस्ते) धारण करता है। (अस्याः दन्तः) इस बाण का, दांत के समान तीक्ष्ण फला हो। वह (सं-नद्धा) खूब दृढ़ता से बंधा हो और (गोभिः प्र-सूता पतति) धनुष की डोरियों से प्रेरित होकर वह दूर जाता है। (यत्र) जिस संग्राम में (नरः सं द्रवन्ति च वि द्रवन्ति च) मनुष्य मिलकर वेग से दौड़ते और विविध दिशाओं में भागते हैं (तत्र) उस युद्ध काल में भी (अस्मभ्यम्) हमें वे (इषवः) बाण गण (शर्म यंसन्) शरण प्रदान करते हैं। (२) भूमिपक्ष में—यह भूमिः (गोभिः सन्नद्धा) गौ आदि पशुओं से अच्छी प्रकार व्याप्त वा सूर्य की किरणों से सुदृढ़ होकर भी (प्र-सूता) उत्तम २ अन्नों को उत्पन्न करने हारी होकर (पतति) ऐश्वर्य से युक्त होती है। (मृगः) सिंह के समान पराक्रमी, (दन्तः) दन्त के समान शत्रु का छेदन भेदन करने में समर्थ बलवान् पुरुष (अस्याः) इसके (सुपर्णं) सुख से पालने वाले वा इसको पूर्ण समृद्ध करने वाले शस्त्र-बल और वैश्य जन को (वस्ते) अपने नीचे बसाये और (यत्र) जिस भूमि में लोग (सं च वि च द्रवन्ति) एकत्र

होते वा विविध दिशाओं में आते जाते हैं उसी पृथिवी पर (इषवः) बाण वा इच्छानुकूल प्राप्त काम्य पदार्थ हमें (शर्म यंसन्) सुख प्रदान करें।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल, सत्य, न्याय मार्ग में चलने हारे विद्वन्! सीधे जाने वाले बाण के समान तू (नः) हमें (परिवृङ्धि) रक्षा कर। (नः) हमारा शरीर (अश्मा) पत्थर या शिला के समान कठोर (भवतु) हो। (सोमः) विद्वान्, उत्तम शास्ता (नः अधि) हमारे ऊपर (ब्रवीतु) शासन करे। (अदितिः) अखण्डशासन और यह अदीन प्रजा वा भूमि-माता (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख दे।

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्वाजनि) अश्वों को चलाने वाली, कशा के समान आज्ञादात्रि विदुषि ! राजसभे ! तू (अश्वान्) अश्वों के समान (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानी, विद्वान् पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों और आनन्द के अवसरों पर (चोदय) सन्मार्ग में चला। जो विद्वान् लोग (एषां) इन दुष्ट शत्रु लोगों के (सानु) अवयवों पर (आ जङ्घन्ति) प्रहार करते और (जघनान्) नीच जनों, मारने वाले वा मारने योग्य शत्रु जनों को (उप जिघ्नते) मारने में समर्थ होते हैं उनको (समत्सु चोदय) संग्रामों में ठीक प्रकार से चला। जैसे कशा से अश्व को चलाते हैं वैसे उत्तम जनों को सन्मार्ग से चलाने वाली राजसभा वा विदुषी स्त्री ऐसे वीरों को तैयार करे जो शत्रुओं के अंगों और अन्य हिंसकजनों को मारने में समर्थ हों।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १४

भा०—(अहिः इव भोगैः बाहुम् परि एति) सांप जैसे अपने अंगों

से बाहु के इर्द गिर्द लिपट जाता है वैसे (हस्त-घ्नः) हाथ में लगा दस्तबन्द भी (भोगैः) पालक अवयवों से (बाहुं परि एति) बाहु के इर्द गिर्द रहता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेतिं) आघात को (परि-बाधमानः) बचाता है। उसी प्रकार (पुमान्) वीर पुरुष (हस्त-घ्नः) सधे हाथ से शत्रुओं को मारने में कुशल वीर (अहिः इव) मेघ के समान (भोगैः) प्रजा को पालने में समर्थ शस्त्रादि उपायों सहित (बाहुम् परि एति) शत्रु को बाधने वाले सैन्य को प्राप्त होता और (ज्यायाः) प्राणों का नाश करने वाली शत्रु सेना के (हेतिं) शस्त्रबल को (परि-बाधमानः) दूर से ही नाश करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब ज्ञानों को जानता हुआ (विश्वतः) सब प्रकार से (पुमांसं परि पातु) सहयोगी पुरुष की रक्षा करे।

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार 'इषु' अर्थात् बाण की डण्डी (आल-अक्ता) विष से बुझी, (रुरु-शीर्ष्णी) मृग के समान अग्रमुख वाली, (अथो) और (यस्याः मुखम्) जिसके मुख में (अयः) लोहे का फल लगा रहता है वह (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल से सिंचकर वृद्धि पाती है उसको ही हम (बृहत् नमः) बड़ा शत्रु नमाने का साधन बनाते हैं, उसी प्रकार (या) जो स्त्री (आलाक्ता = आरक्ता वा आरा-अक्ता) ईषत् अनुराग से युक्त (रुरु-शीर्ष्णी) हरिण के समान शिर मुख नयनों से युक्त, (अथो यस्य मुखम् अयः) और जिसका मुख सुवर्ण अलंकार से सुभूषित हो, ऐसी (पर्जन्य-रेतसे) तृप्ति, सुख देने वाले प्रिय पुरुष के वीर्य के धारण करने वाली (इष्वै) मनोकामना युक्त (दे०व्यै) उत्तम विदुषी स्त्री को प्राप्त करने अर्थात् गृहस्थ बसाने के लिये हम (बृहत् नमः) बहुत आदर, अन्नादि से ग्रहण करें। सेनापक्ष में—जो सेना (आलाक्ता—आरा-अक्ता) आरा अर्थात् शस्त्रों से सुशोभित (रुरु-शीर्ष्णी) हितकारी सिंहवत् पराक्रमी नेताओं को अपने प्रमुख शिरोमणि पद पर नियुक्त करने वाली है (यस्याः) जिसका (मुखम्

अयः) मुख लोह के समान तीक्ष्ण और कठिन है, उस (इष्वै दैव्यै) प्रेरणा करने योग्य, युद्ध करने में कुशल (पर्जन्य-रेतसे) शत्रु को जीतने वाले वीर पुरुषों के पराक्रम वाली सेना का हम (बृहत् नमः) सदा आदर करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

अव॑सृष्टा॒ परा॑ पत॒ शर॑व्ये॒ ब्रह्म॑संशिते।
गच्छा॒मित्रा॒न्प्र प॑द्यस्व॒ मामीषां॒ कं च॒नोच्छि॑षः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शरव्ये) बाण दूर तक फेंकने में कुशल सेने! बाण जिस प्रकार (अव-सृष्टा परा पतति) छूट कर दूर पड़ता है और शत्रु तक पहुँचकर नाश करता है, उसी प्रकार तू भी (अव-सृष्टा) छूट कर (परा पत) दूर २ तक जा और हे (ब्रह्म-शंसिते) 'ब्रह्म', वेदज्ञ सेनानायक, वा 'ब्रह्म' अर्थात् धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये अति तीक्ष्ण तू (अमित्रान् गच्छ) शत्रुओं को लक्ष्य करके जा, (तान् प्रपद्यस्व) तू उन तक पहुँच और (अमीषां) उनमें से (कं चन मा उत् शिषः) किसी को भी मत बचा रहने दे।

यत्र॒ बाणाः॑ स॒म्पत॑न्ति कुमा॒रा वि॑शि॒खा इ॑व।
तत्रा॑ नो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒रदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु १७

भा०—जिस गृह में (वि शिखाः) बिना शिखा के, चूड़ा कर्म करने के उपरान्त मुंडित (कुमाराः सं पतन्ति) बालक आते हैं वहां जिस प्रकार (ब्रह्मणः पतिः) वेद का पालक विद्वान् और (अदितिः) माता पिता सदा ही (शर्म यच्छन्ति) सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार (यत्र) जिस रण में (कुमाराः) बुरी मार मारने वाले (वि-शिखाः) विना शिखा वा विविध चोटियां या विशेष तीक्ष्ण शिखा वाले, पैने, (बाणाः सम्पतन्ति) बाण एक साथ तब से आ गिरते हैं (तत्र) वहां (ब्रह्मणः पतिः) धनैश्वर्य, वेद और बड़े राष्ट्र का पालक (अदितिः) अखण्ड चरित्र और राज्य का स्वामी होकर (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति दे। (विश्वाहा शर्म यच्छतु) वह सदा ही हमें शान्ति दे।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे वीर योद्धः! हे नायक! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूँ। (राजा सोमः) राजा, तेजस्वी, 'सोम' ऐश्वर्यवान् पुरुष (त्वा) तुझे (अमृतेन) अन्नादि से (अनु वस्ताम्) और सुरक्षित करें। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रधान (ते) तेरे लिये (उरोः वरीयः कृणोतु) बहुत २ धन प्रदान करे। (जयन्तं त्वा अनु) विजय करते हुए तेरे पीछे २ (देवाः) उत्तम मनुष्य (मदन्तु) हर्षित हों।

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥२२॥६॥६॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारा (स्वः) अपना (अरणः) विना रण वा संग्राम के ही, बिना युद्ध के ही है, जिससे कोई हमारा झगड़ा भी नहीं, या जो (अरणः) हमें अच्छा या प्रिय नहीं लगता, (यः च) और जो (निस्त्यः) छिपा या दूर रहकर भी (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है (तं) उस शत्रु पुरुष को (सर्वे) समस्त (देवाः) युद्धकुशल विजयेच्छु पुरुष (धूर्वन्तु) विनाश करें। (मम) मेरा (अन्तरं) समीप, अति निकटतम (वर्म) कवच (ब्रह्म) बहुत बड़ा, महान् चेतन ही है। इति द्वाविंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ सप्तमं मण्डलम्

[१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१–१८ एकादशाक्षरपदैस्त्रिपदा विराड्गायत्री । १९–२५ त्रिष्टुप् ॥ पंचविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं नरो॒ दीधि॑तिभिर॒रण्यो॒र्हस्त॑च्युती जनयन्त प्रश॒स्तम् ।
दू॒रे॒दृशं॑ गृ॒हप॑तिमथ॒र्युम् ॥ १ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (दीधितिभिः) अंगुलियों से और (हस्तच्युती) हाथों से घुमा २ कर (अरण्योः) दो अरणि काष्ठों में (अग्नि जनयन्त) अग्नि को उत्पन्न करें जो (प्रशस्तम्) सबसे उत्तम (दूरे-दृशं) दूर से दीखने योग्य और (अथर्युम्) जो पीड़ा, कष्ट न दे । उसी प्रकार (नरः) नायक लोग (हस्त-च्युती) हनन साधन, शस्त्रास्त्रों के सञ्चालन द्वारा शत्रु नाश करके (अरण्योः) उत्तरारणि और अधरारणिवत् पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष के दोनों दलों में से (दीधितिभिः) कर्मों को धारण करने में समर्थ सहाय सहित वा उसके गुणों, प्रकाशक स्तुतियों से (प्रशस्तम्) गृह के स्वामीवत् राष्ट्र पालक (अग्निं) अग्रणी नायक और तेजस्वी पुरुष को (जनयन्त) प्रकट करें । गार्हपत्याग्नि को अरणियों से मथकर जैसे स्थापन करे वैसे राज्यशासनार्थ परस्पर वादविवाद के अनन्तर गुणवान् तेजस्वी पुरुष को नायक पद पर स्थापित करें ।

तम॒ग्निमस्ते॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन्त्सुप्रति॒चक्ष॒मव॑से॒ कुत॑श्चित् ।
द॒क्षाय्यो॒ यो दम॒ आस॒ नित्यः॑ ॥ २ ॥

भा०—(वसवः अग्निम् अस्ते कुतश्चित् नि ऋण्वन्) जैसे नये बसे गृहाश्रम में प्रविष्ट जन कहीं से भी अग्नि को लाकर स्थापित करते हैं वह (दक्षाय्यः नित्यः दमे आस) सब कर्म करने हारा, पूजनीय होकर गृह

में नित्य रूप से रहता है वैसे (यः) जो (नित्यः) सदा स्थिर, (दक्षाय्यः) चतुर विद्वान्, पूजनीय होकर (दमे आस) प्रजाओं के दमन में लगा रहे। (तम्) ऐसे (सु-प्रति-चक्षम्) प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बलविद्या को उत्तम रीति से देखने वाले (कुतश्चित्) कहीं से भी, किसी भी कुल से उत्पन्न पुरुष को (अग्निम्) अग्रणी ज्ञानी, नायक रूप से (वसवः) राष्ट्र में बसी समस्त प्रजाएं (अवसे) राष्ट्र रक्षार्थ (नि-ऋण्वन्) नियुक्त करें।

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! अग्रणी नायक! तू (प्र-इद्धः) अच्छी प्रकार प्रकाशित, अग्निवत् दीप्तिमान्, कुशल होकर (नः पुरः) हमारे आगे (अजस्रया) निरन्तर (सूर्म्या) उत्तम क्रियाओं और वाणी से, (दीदिहि) चमक और हे (यविष्ठ) अति बलवन्! युवक! (त्वां) तुझको (शश्वन्तः) नित्य, अनेक (वाजाः) जानने और प्राप्त करने योग्य पदार्थ, ज्ञान, ऐश्वर्यादि (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं।

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निभ्यः अग्नयः) पूर्व कारणरूप अग्नियों से उत्पन्न जिस प्रकार अन्य कार्यरूप अग्नियें (द्यु-मन्तः) तेजोयुक्त होकर (शोशुचन्त) चमकती हैं, उसी प्रकार (अग्निभ्यः) अग्रणी विद्वानों से (वरं) श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके (द्युमन्तः) तेजस्वी, ज्ञानप्रकाश से युक्त होकर (अग्नयः) विद्वान् जन (निः शोशुचन्त) खूब चमकें, तेजस्वी बनें, उत्तम पद पावें (यत्र) जहां (सु-जाताः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध, सुविख्यात (नरः) प्रधान, अग्रगण्य पुरुष (सम आसते) एकत्र होकर विराजते हैं।

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम्।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (धिया) कर्म द्वारा (प्रशस्तं) उत्तम (सुवीरं) सुख से बहुतों को सञ्चालित करने में समर्थ (स्व-पत्यं) अपना ऐसा वेगयुक्त (रयिं) बल उत्पन्न करता है (यं यावा) जिसको पैरों से जाने वाला वा (यातुमावान्) यानसाधनों अश्वादि का स्वामी भी पार नहीं करता, अर्थात् विद्युत से उत्पन्न यन्त्रवेग का पैदल वा सवारी भी मुकाबला नहीं कर सकती, इसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (धिया) उत्तम बुद्धि और कर्मकौशल से (नः) हमें (सुवीरं) उत्तम वीरों से समृद्ध (स्वपत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम सन्तान से युक्त (प्रशस्तं रयिम्) प्रशंसनीय ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर (यं) जिसका (यावा) आक्रमणकारी और (यातुमा-वान्) प्रयाण या पीड़ा देने में समान बल-सामर्थ्य वाला अन्य पुरुष वा सामान्य जन (न तरति) पार न कर सके, वैसा ऐश्वर्य न पासके, उसकी तुलना भी न कर सके। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

उप॒ यमेति॑ युव॒तिः सु॒दक्षं॑ दो॒षा वस्तो॑र्ह॒विष्म॑ती घृ॒ताची॑ ।
उप॒ स्वैन॑म॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥ ६ ॥

भा०—(हविष्मती घृताची दोषा वस्तोः सुदक्षं) घृत, चरु आदि हविष्यान्न से युक्त, घृत से ॰णं आहुति जिस प्रकार दिन रात्रि, सायं प्रातः उत्तम दाह करने वाले अग्नि को प्राप्त होती है और (युवतिः दोषा वस्तोः) युवती स्त्री जिस प्रकार दिन रात्रि काल में निवासार्थ उत्तम कुशल पुरुष के पास (हविष्मती) उत्तम अन्न का भोजन लेकर (घृताची) घृत आदि स्निग्ध पदार्थ अंग में लगाकर (उप एति) प्रिय पुरुष को प्राप्त होती है और जिस प्रकार (वसू-युः) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचारी युवा पुरुष को चाहने वाली (अरमति) पूर्व रति को न प्राप्त ब्रह्मचारिणी (स्वा) स्वयं (उप एति) प्राप्त होती है उसी प्रकार (यम्) जिस (सु-दक्षं) उत्तम कर्म-कुशल, अग्नितुल्य प्रतापी पुरुष को (हविष्मती) ग्राह्य अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त (घृताची) तेज, अन्नादि से पूर्ण भूमि या प्रजा (उप एति) प्राप्त होती है, (वसू-युः) अपने बसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करती

हुई (अरमतिः) अन्य कहीं विश्राम सुख न पाकर (स्वा) उसकी निजी सम्पत्ति सी बन कर (एनम्) उसको ही (उप एति) प्राप्त होती है।

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्।

प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (तपोभिः) तीक्ष्ण तापों से (जरूथम्) जीर्ण, सूखे घास या काठ को जलाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, तेजस्विन् नायक ! तू (येभिः) जिन (तपोभिः) संतापदायक शस्त्रास्त्रादि से (जरूथम्) परुषभाषी शत्रु को (अदहः) दग्ध करे उनसे ही (अरातीः) शत्रुओं को भी (अप दह) भस्म कर और शत्रु को (अमीवाम्) कष्टदायक रोग के समान (नि-स्वरं) निः शब्द, मूक, कुछ न कहने लायक, मृतवत् करके (चातयस्व) पीड़ित कर और उसे नष्ट कर।

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक।

उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् अपने प्रकाशक पुरुष को प्राप्त होता है उसको उत्तम प्रकाश आदि कार्य भी देता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! हे (वसिष्ठ) बसने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! हे (शुक्र) कान्तिमन् शुक्र ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् ! हे (पावक) अग्निवत् पंक्तिपावन ! अन्यों के दोषों के शोधक ! (यः) जो (ते) तेरे (अनीकं) तेजोवत् सैन्य बल को (आ इधते) अति दीप्त करता है, उसे बलवान् बनाता है उस प्रजावर्ग (उत) और (नः) हमें भी (एभिः स्तवथैः) इन स्तुति वचनों, कर्मोंसहित (इह स्याः) यहां प्राप्त हो।

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा।

उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और हे (अग्ने) अग्निवत् प्रतापवन् ! सेनापते ! (ये) जो (मर्त्ताः) मनुष्य (नरः) नेता रूप से (पुरु-त्रा) बहुत पदों पर

(पित्र्यासः) माता पिता के पद के योग्य, उन सदृश प्रजा के पालक होकर (ते अनीकं) तेरे सैन्य को (भेजिरे) बनाते हैं (एभिः) उनके साथ तू (नः) हमें (सुमनाः) शुभ चित्तवान् होकर (इह स्याः) इस राष्ट्र में रह।

इमे नरो॑ वृत्रहत्ये॑षु शूरा॒ विश्वा॒ अदे॑वीर॒भि स॑न्तु मा॒याः ।
ये मे॒ धियं॑ प॒नयं॑न्त प्रश॒स्ताम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन्! (ये) जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (प्रशस्तां) अति उत्तम (धियं) बुद्धि को (पनयन्त) उपदेश करते हैं (इमे) ये (नरः) उत्तम लोग (शूराः) शूरवीर होकर (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं को मारने के निमित्त संग्रामों में (विश्वाः) समस्त (अदेवीः) अशुभ (मायाः) शत्रुकृत छलादि वञ्चनाओं को (अभि सन्तु) पराजित करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

मा शूने॑ अग्ने॒ नि ष॑दाम नृ॒णां माशेष॑सो॒ऽवीर॑ता॒ परि॑ त्वा ।
प्र॒जाव॑तीषु॒ दुर्या॑सु दुर्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तेजस्विन्! राजन्! हे (दुर्य) गृहों के स्वामिन्! हम (अशेषसः) बिना पुत्र सन्तानादि के होकर (शूने) सुखयुक्त, सम्पन्न, वा शून्य गृहों में (मा नि सदाम) कभी न बैठें और (नृणां) मनुष्यों के बीच हम (त्व परि) तेरे अधीन रहकर (अवीरता) वीरता से रहित होकर (मा नि सदाम) उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त न करें और (प्रजावतीषु दुर्यासु) प्रजाओं से युक्त गृह में बसी स्त्रियों के बीच रहते हुए हम (अशेषसः अवीरता मा निषदाम) पुत्रादि और वीर्य शौर्यादि से रहित होकर घरों में न बैठें, प्रत्युत पुत्रवान्, वीर प्रजाजन हों।

यम॒श्वी नित्य॑मु॒पया॑ति य॒ज्ञं प्र॒जाव॑न्तं स्वप॒त्यं क्षयं॑ नः ।
स्वज॑न्मना॒ शेष॑सा वावृधा॒नम् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् यज्ञम्) जिस यज्ञ को (अश्वी) इन्द्रियरूप अश्वों का स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुष (नित्यम् उप याति) नित्य प्राप्त करता है और

(यम् प्रजावन्तं) जिस प्रजा से युक्त, (क्षयं) बसे हुए, (स्वपत्यं) अपने अधिपतित्व में विद्यमान देश को (अश्वी) अश्व सैन्यों का स्वामी राजा प्राप्त होता है और जो यज्ञ और निवास योग्य गृह (स्व-जन्मना) अपने से जन्म लाभ करने वाले (शेषसा) पुत्र और धन से (वावृधानम्) बढ़ते हुए को भी प्राप्त होता है उसी (प्रजावन्तं) पुत्रादि से समृद्ध (स्वपत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम पुत्र युक्त और (स्व-जन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं) अपने वीर्य से उत्पन्न सुपुत्र से बढ़ते हुए यज्ञस्वरूप (क्षयं) गृह को (नः) हमें भी प्राप्त करा ।

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणीनायक, तेजस्विन् ! विद्वन् ! प्रभो ! आप (अजुष्टात्) धर्म सेवन न करने वाले, अप्रीति युक्त (रक्षसः) अतिक्रोधी, अतिहिंसक, (अघायोः) पापाचारी, पापमय जीवन व्यतीत करने वाले, अन्यों से छल, हत्यादि करने वाले दुर्जन से भी (नः पाहि) हमारी रक्षा करो । मैं (त्वा युजा) तुझ सहायक से (पृतनायून्) सेना वा संग्राम के इच्छुक शत्रुओं को भी (अभि स्याम्) पराजित करने में समर्थ होऊं ।

सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य सब अग्नियों से बढ़ कर (अग्निः) यज्ञाग्नि (वाजी) अन्नादि आहुति युक्त और (सहस्र-पाथाः) अनेक विध अन्नों वाला, अनेक किरणों से जल पीकर (अक्षरा समेति) मेघ के उदकों सहित प्राप्त होता है, उसी प्रकार (यत्र) जहां (अग्निः) विद्वान् तेजस्वी नायक (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य तेजस्वी पुरुषों को अतिक्रमण करके स्वयं (वाजी) बलवान् (तनयः) प्रजाजनों का पुत्रवत् प्रेमपात्र और (वीळु-पाणिः) वीर्यवान् हाथों वाला, या वीर्यवान्

सैन्य को वश करता हुआ हो, (सः इत् अग्निः) वही 'अग्नि' है। वह ही (सहस्रपाथा) सहस्रों जनों का पालक, अन्नों और पालनसाधनों से समृद्ध होकर (अक्षरा) न नाश होने वाली नदियों के समान सदाबहार प्रजाओं को (सम् एति) प्राप्त होता है।

सेदुग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात्।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥ २५ ॥

भा०—(यः) जो (वनुष्यतः) याचना अर्थात् शरण, अन्न, आजीविकादि चाहने वालों को (निपाति) रक्षा करता है और (समेद्धारम्) अपने को प्रदीप्त, प्रज्वलित, बलवान् करने वाले को (अंहसः) पाप से (उरुष्यात्) रक्षा करे। अथवा—(यः) जो (समेद्धारम्) अपने को प्रदीप्त करने वाले पुरुष को (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से और (उरुष्यात् अंहसः) महान् पापाचार से (नि पाति) बचा लेता है और जिसको (सुजातासः) उत्तम कर्मों में जन्म लेने वाले (वीराः) वीर, विद्योपासक द्विज, शिष्य, (परिचरन्ति) सेवा करते हैं (सः इत् अग्निः) वह गुरु अग्निवत् तेजस्वी है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान्।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि को (ईशानः सम्-इन्धे) सब जगत् का स्वामी परमेश्वर सूर्य विद्युत् से खूब प्रज्वलित करता है और (होता अध्वरेषु परि एति) जिस प्रकार अग्नि को आहुतिदाता अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञादि कर्मों में प्राप्त होता है उसी प्रकार (यम्) जिस प्रतापी पुरुष को (हविष्मान्) नाना अन्नादि का स्वामी, (ईशानः) राष्ट्र का बड़ा स्वामी (सम् इन्धे इत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करता है और (यम्) जिसका (अध्वरेषु) प्रजापालन अध्ययनाध्यापनादि हिंसारहित, प्रजाशिष्यादिपालन कार्यों में (होता) कर आदि देने और विद्यादि ग्रहण

करने वाली प्रजा वा शिष्यादि जन (परि एति) परिचर्या करता है (सः) वह ही (अयम्) यह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान्, प्रकाशक पुरुष (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (आहुतः) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य है।

त्वे अ॑ग्न आ॒हव॑नानि॒ भूरी॑शा॒नास॒ आ जु॑हुयाम॒ नित्या॑।
ऊ॒भा कृ॒ण्वन्तो॑ वह॒तू मि॒येधे॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार हम लोग (मियेधे) पवित्र यज्ञ में (आहवनानि) आहुति करने योग्य अन्नादि (आ (जुहुयाम) आहुति करते हैं, उसी प्रकार (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त होकर हम लोग (त्वे) तेरे अधीन (नित्या आहवनानि) नित्य आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम वचन वा अन्न वस्त्रादि (आ जुहुयाम) आदरपूर्वक दें और (मियेधे) पवित्र यज्ञादि के अवसर पर भी (वहतू) कार्य या गृहस्थाश्रम के भार को धारण करने वाले विवाहित वर वधू या यजमान पुरोहित (उभा) दोनों को भी (आ कृण्वन्तः) सन्मुख करते हुए (त्वे आ जुहुयाम) अग्निवत् तुझमें दान दें।

इ॒मो अ॑ग्ने वी॒तत॑मानि ह॒व्याज॑स्रो वक्षि दे॒वता॑ति॒मच्छ॑।
प्रति॑ न ईं सुर॒भीणि॑ व्यन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! प्रतापयुक्त! विद्वन्, ज्ञानवन्! जिस प्रकार अग्नि (देवतातिम् हव्या वहति) यज्ञ को प्राप्त कर उसमें हव्य चरु आदि ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (इमा) ये (वीत-तमानि हव्या वक्षि) उक्त कामना योग्य अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को धारण कर और खूब ज्ञानप्रकाशक, कामना योग्य सुन्दर, ग्राह्य ज्ञान को धारण कर, दूसरों तक पहुँचा, उपदेश कर। तू (अजस्रः) अहिंसित, अपीड़ित होकर (देवतातिम् अच्छ) शुभ गुणों को प्राप्त कर और (नः) हमें (सुरभीणि) उत्तम शक्तिप्रद अन्न (ईम्) सब प्रकार से (प्रति व्यन्तु) प्रति दिन प्राप्त हों।

मा नो॑ अग्ने वी॒रते॒ परा॑ दा दु॒र्वास॒सेऽम॑तये मा नो॑ अ॒स्यै ।
मा नः॑ क्षु॒धे मा र॒क्षस॑ ऋतावो॒ मा नो॒ दमे॒ मा वन॒ आ जु॑हूर्थाः ॥१९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! विद्वन्! प्रभो! (नः) हमें (अवीरते) वीरों से रहित सैन्य वा देश में, (मा परा दाः) मत छोड़। (दुर्वाससे) बुरे, मैले कुचैले वस्त्र पहनने वा मलिन वस्त्र धारण करने वाले के लाभ के लिये और (अस्यै अमतये) इस मूढ़ता या मति रहित मूर्ख पुरुष के सुख के लिये (नः मा परा दाः) हमें मत त्याग अर्थात् तू हमें मैला, कुचैला और मूढ़ मत रहने दे, न मैले कुचैले और मूर्ख के पल्ले डाल। हे विद्वन्! (क्षुधे नः मा परा दाः) भूख से पीड़ित होने या भूखे के आगे भी हमें मत डाल। हे (ऋतावः) सत्य, न्यायशील! ऐश्वर्यवन्! तू हमें (रक्षसे मा परा दाः) दुष्ट राक्षस पुरुष के सुख के लिये मत त्याग। (नः) हमें (दमे मा आ जुहूर्थाः) घर में पीड़ित न होने दे और (नः वने मा आ जुहूर्थाः) हमें वन में भी मत त्याग।

नू मे॒ ब्रह्मा॑ण्यग्न॒ उच्छ॑शाधि॒ त्वं दे॑व म॒घव॑द्भ्यः सुषूदः ।
रा॒तौ स्या॑मो॒भया॑स॒ आ ते॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ।२०।२६

भा०—हे (देव) ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाले! (अग्ने) अग्निवत् तत्व प्रकाशित करने हारे विद्वन्! (त्वं) तू (मे) मेरे हितार्थ (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञानमय वेदमन्त्रों का (उत् शशाधि) उत्तम रीति से अनुशासन कर। हे विद्वन्! तू (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हितार्थ (ब्रह्माणि उत् शशाधि) ज्ञानमय वेद मन्त्रों का उपदेश कर और (सु-सूदः) दुःखों को दूर कर। हम (उभयासः) विद्वान् और अविद्वान् दोनों (ते रातौ आ स्याम) तेरे दान में समर्थ हों। हे विद्वान् जनो! (यूयम्) आप सब (नः) हमें सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणजनक साधनों से (पात) रक्षा करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

त्वम॑ग्ने सु॒हवो॑ र॒ण्वस॑न्दृक् सु॒दी॒ती सू॑नो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा॒ तन॑ये॒ नित्य॒ आ धङ्मा वी॒रो अ॒स्मन्नर्यो॒ वि दा॑सीत् २१

भा०—जिस प्रकार (सहसः सूनुः अग्निः रण्वसंदृक् सुदीती दीप्यते) बलपूर्वक उत्पन्न किया अग्नि, विद्युत् उत्तम कान्ति से चमकता और रम्य रूप से दीखता, पदार्थों को दिखाता है, वह (मा अधक्) हमें भस्म न करे और (मा वि दासीत्) किसी प्रकार पीड़ा न पहुँचावे । उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष ! (त्वं) तू (सु-हवः) उत्तम दानशील और उत्तम गुणों और पदार्थों का ग्रहण और भोजन करने हारा वा शुभ नामा तथा (रण्व-संदृक्) रमणीय रूप से दीखने और उत्तम सुखजनक उपायों वा रम्य आत्मतत्व को सम्यक्-दृष्टि से देखने हारा हो । हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं उत्तम बल सैन्यादि के संचालक ! तू (सुदीती) उत्तम दीप्ति से (दिदीहि) चमक, सबको प्रिय लग । (सचा) सम्बन्ध से (त्वे तनये) तेरे सदृश पुत्र रहने पर तू पितृजनों को (मा आ धक्) दग्ध न कर, दुराचरणों, कुलक्षणों से माता पिता को न सता । इसी प्रकार (वीरः नर्यः) हमारा पुत्र और वीर मनुष्यों का हितकारी होकर (मा वि दासीत्) नष्ट न हो ।

मा नो॑ अग्ने दुर्भृ॒तये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॒ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः ।
मा ते॑ अ॒स्मान्दु॑र्म॒तयो॑ भृ॒माच्चि॑द्दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! तू (सचा) सहयोगी होकर (देवेद्धेषु अग्निषु) उत्तम विद्वान् पुरुषों वा उत्तम गुणों से प्रदीप्त हुए अग्निवत् तेजस्वी पुरुषों के होते हुए भी (नः) हमें (दुर्भृतये) दुःख वा कष्ट से भरण पोषण करने वा दुःख से भरण पोषण करने वाले कुस्वामी की सेवा के लिये (मा प्र वोचः) कभी मत कह । हे (सहसः सूनो) बलवान् के पुत्र ! बल के सञ्चालक ! (देवस्य ते) तेजस्वी वा आखेट, द्यूत, रति आदि क्रीड़ाशील तेरी (दुर्मतयः) दुष्ट बुद्धि या दुर्विचार (भृमात् चित्) भ्रम से, भूलकर भी (अस्मान् मा नशन्त) हमें प्राप्त न हों अर्थात् राजा के दुर्व्यसन प्रजा में न आवें और न उनको कष्टदायक हों । भूल कर भी

राजा अपने व्यसनों से प्रजा को पीड़ित न करे। प्रजा के कन्धे चढ़कर अपने दुर्व्यसनों की पूर्त्ति न करे।

स मर्तो॑ अग्ने स्वनीक रे॒वानम॑र्त्ये॒ य आ॑जु॒होति॑ ह॒व्यम्।
स दे॒वता॑ वसु॒वनिं॑ दधाति॒ यं सू॒रिर॒र्थी पृ॒च्छमा॑न॒ एति॑ ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अमर्त्ये) न मरने वाले, अविनाशी आत्मा वा परमेश्वर में (हव्यम्) अग्नि में हव्य के समान देने योग्य चित्त की (आ जुहोति) आहुति देता है हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम बलशालिन्! स्वप्रकाश अग्ने! (सः मर्त्तः) वह मनुष्य (रेवान्) रयि अर्थात् भौतिक देहांश का उत्तम स्वामी होकर रहता है। (यं) जिस परमेश्वर को (सूरिः) विद्वान् ज्ञानी और (अर्थी) अभ्यर्थना करने वाला, अर्थार्थी, वा ज्ञानार्थी कामना-युक्त पुरुष (पृच्छमानः) विद्वानों से ब्रह्म विषयक शक्तियों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का पूछने हारा पुरुष (वसु-वनिं दधाति) उत्तम ऐश्वर्य धारता वा समस्त जीवगणों को न्यायानुसार प्रदान करता है। (२) उसी प्रकार हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम सैन्य के स्वामिन्! राजन्! जो तुझे विशेष जानकर कर आदि देता है वह राष्ट्रवासी जन धनसम्पन्न हो जाता है। (सः) और वह अर्थी, धनार्थी और न्यायार्थी उसके पास धर्म वा व्यवहार विषयक प्रश्न करता हुआ आता है, वह देवस्वरूप राजा उसके धनादि का न्याय-पूर्वक विभाग करे।

म॒हो नो॑ अग्ने सुवि॒तस्य॑ वि॒द्वान् र॒यिं सू॒रिभ्य॒ आ व॑हा बृ॒हन्त॑म्।
येन॑ व॒यं स॑हसाव॒न्मदे॒माविक्षितास॒ आयु॑षा सु॒वीराः॑ ॥२४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तू (नः) हमारे (सुवितस्य) सुखदायक कल्याणहित का (विद्वान्) जानने हारा, (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लाभ के लिये (बृहन्तं रयिम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त कर और धारण कर। हे (सहसावन्) बल से राष्ट्र पर प्रभुत्व करने हारे! (येन) जिस ऐश्वर्य से (वयम्) हम (अविक्षितासः) बिना क्षीण हुए

(मदेम) प्रसन्न हों और (आयुषा) दीर्घ जीवन से युक्त और (सु-वीराः) उत्तम वीर और उत्तम पुत्रों वाले हों ।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवंद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२७॥१

भा०—व्याख्या देखो (मं० ७ । सू० १ । मन्त्र २०) इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आप्रं देवता ॥ छन्दः—१, ९ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ६, ७, ८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! अग्रणी पुरुष ! तू (नः) हमारे (समिधम्) काष्ठ को अग्नि के समान अच्छी प्रकार तेजस्वी होने के साधन को (जुषस्व) प्राप्त कर । (अद्य) आज (बृहत्) बड़े भारी (यजतं) संगति या परस्पर सम्मिलित सम्मेलन को (शोच) उज्ज्वल, सुशोभित कर और धूम के समान (धूमम्) शत्रु को कंपित करने वाला सामर्थ्य (ऋण्वन्) प्रदान करता हुआ, (स्तूपैः) रश्मियों से सूर्य के समान (स्तूपैः) स्तुत्य गुणों से (दिव्यं सानु) कान्तियुक्त ऐश्वर्य व उत्तम पद को (उपस्पृश) प्राप्त कर और (रश्मिभिः) रश्मियों से (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेज को (सं ततनः) विस्तारित कर ।

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥

भा०—(ये) जो (सु-क्रतवः) उत्तम कर्म करने वाले (शुचयः) शुद्ध आचार-चरित्रवान् (धियं-धाः) उत्तम कार्यों और उत्तम बुद्धि के धारक, (देवाः) विद्वान् पुरुष (उभयानि) शरीर, आत्मा दोनों को पुष्ट करने वाले, (हव्या) ग्राह्य अन्नों और ज्ञानों का (स्वदन्ति) आस्वाद लेते है (एषाम्) उनकी और (यज्ञैः) उत्तम यज्ञों दानों, आदर सत्कारों से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य (नराशंसस्य) मनुष्यों से स्तुति योग्य पुरुष के (महिमानम्) बड़े सामर्थ्य की हम (उप स्तोषाम) स्तुति करें, उनके गुणों का वर्णन, उपदेश करें ।

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (नः) आप लोगों में से (ईडेन्यम्) स्तुति योग्य, (असुरं) मेघ के समान जीवन-प्राण के देने वाले, बलवान्, (सुदक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अग्निवत् तेजस्वी, (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश दोनों के बीच (दूतम्) सूर्यवत् प्रतापी, (सत्य-वाचम्) सत्य वाणी बोलने वाले, (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के समान (अग्निं) अग्रणी ज्ञानी, (मनुना) मननशील पुरुषों द्वारा वा ज्ञान से (समिद्धं) अच्छी प्रकार अग्नि के समान ही प्रज्वलित वा प्रसिद्ध पुरुष को (अध्वराय) हिंसा से रहित, प्रजापालन, अध्ययनाध्यापनादि उत्तम कार्य के लिये, (सदम्-इत्) सदा ही (सं महेम) अच्छी प्रकार आदर सत्कार करें ।

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अध्वर्यवः) यज्ञ करने वाले विद्वान्, (घृतपृष्ठं आ-जुह्वानाः) घृत से सिंचे एवं तेजोयुक्त अग्नि में आहुति करते हुए (अभि-ज्ञु) आगे गोडे किये, पालथी मार कर बैठते और (नमसा) अन्नादि से युक्त (बर्हिः अग्नौ प्र वृञ्जते) चरु को अग्नि में त्यागते हैं उसी

प्रकार (सपर्यवः) सेवा-परिचर्या करने वाले, (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा को (भरमाणाः) भरण पोषण करते हुए, (अभि-ज्ञु) अपने अभिमुख गोड़े किये, सभ्यतापूर्वक आसन पर विराज कर, (अग्नौ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर, (नमसा) वज्र वा बल वीर्य के द्वारा (प्र वृञ्जते) उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक धनादि का विभाग करते हैं और आप (घृत-पृष्ठं) तेजस्वी पुरुष को (आजुह्वानाः) आदरपूर्वक अपना अध्यक्ष स्वीकार करते हुए (पृषद्-वत) सेचनकारी मेघों के समान (हविषा) ग्राह्य ज्ञान से अपने को (मर्जयध्वम्) शुद्धाचारवान् बनाओ ।

स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥५॥१॥

भा०—(पूर्वी मातरा) पूर्व विद्यमान माता और पिता (शिशुं न) दोनों जिस प्रकार बालक को (रिहाणे) नाना भोज्य पदार्थ का आस्वादन कराते हुए उसको (समङ्क्तः) अच्छी प्रकार अभ्यङ्गमर्दनादि से चमकाते हैं और (समनेषु) संग्रामों में जिस प्रकार (अग्रुवः) आगे २ बढ़ने वाली सेनाएं (सम् अञ्जन्) अपने नायक के गुणों को चमकातीं, उसको प्रसिद्ध करती हैं उसी प्रकार (देवयन्तः) विद्वानों को चाहने वाले (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान और चिन्ता करने वाले, (देवताता) विद्वानों के करने योग्य उत्तम कार्य में (रथयुः) वीर रथी के समान (दुरः अशिश्रयुः) उत्तम द्वारों का आश्रय लेते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥

भा०—(सुदुघा-इव धेनुः) उत्तम दूध देने वाली गौ आदि वाणी के समान कल्याणकारक (दिव्ये योषणे) उत्तम गुणयुक्त युवा युवतीजन (उषासानक्ता च) दिन रात्रि के समान (बर्हि-सदा) उत्तम आसन पर विराजने वाले (पुरु-हूते) बहुतों से प्रशंसित, (मघोनी) ऐश्वर्यवान् और

(यज्ञिये) दान, सत्संग योग्य होकर (सुविताय) कल्याण और उत्तम सन्तान को प्राप्त करने के लिये (श्रयेताम्) परस्पर का आश्रय लें।

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्रा) विविध विद्यायुक्त स्त्री पुरुषो ! (मानुषेषु यज्ञेषु) मनुष्यों के यज्ञों में (कारू) उत्तम कर्मशील, (जातवेदसा) ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त आप दोनों को (यजध्यै) प्रतिष्ठा करने योग्य (मन्ये) मानता हूँ। आप लोग (नः) हमारे बीच यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों के बीच और (हवेषु) ग्रहण योग्य आश्रमों में भी अपने (अध्वरं) हिंसारहित एवं अविनाशी यज्ञ को (ऊर्ध्वं कृतम्) सबसे श्रेष्ठ करो और (ता) उन नाना (वार्याणि) वरण योग्य धनों को (वनथः) प्राप्त करो ।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—(भारती) सब शास्त्रों को धारण करने वाली, सर्वपालक, विद्या माता के समान वेद वाणी (भारतीभिः) विदुषी स्त्रियों के साथ और (इडा) स्तुति योग्य वाणी (मनुष्यैः देवैः) साधारण मनुष्यों और विशेष विद्वानों के साथ और (सरस्वती) विज्ञान युक्त वाणी (सारस्वतेभिः) विज्ञान युक्त वाणी के विद्वानों से (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त हों। (तिस्रः देवीः) तीनों प्रकार की विदुषी स्त्रियां (इदं बर्हिः सदन्तु) इस वृद्धियुक्त राष्ट्र में वाक्, मन, प्राण शक्तियों के समान देह में (अर्वाक् सदन्तु) सबके समक्ष आदर प्राप्त करें।

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

भा०—हे (देव) कामनायुक्त ! पुत्र की इच्छा करने और वीर्यदान में समर्थ ! हे (त्वष्टः) तेजस्विन् ! हे प्रजा उत्पन्न करने हारे !

पत्नी के साथ रमण करता हुआ (नः) हमारे उपकार के लिये (तत्) उस (तुरीपम्) विनाश से बचाने वाले (पोषयित्नु) शरीर को पुष्ट करने वाले वीर्य को (वि स्यस्व) त्याग कर (यत्) जिससे (कर्मण्यः) कर्म कुशल (सु-दक्षः) उत्तम चतुर, (युक्तग्रावा) विद्वानों का उपासक (देव-कामः) विद्वानों का प्रिय, (वीरः) पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है। (२) इसी प्रकार (त्वष्टा) राज्यकर्त्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी हिंसकों से बचाने वाले राष्ट्रपोषक सैन्यबल को जोड़कर (रराणः) रण करता हुआ, गर्जन सहित शत्रु पर अस्त्र छोड़े। जिससे कर्मकुशल वीर (युक्त-ग्रावा) क्षात्रबल, शस्त्रादि से युक्त होकर स्वामी का प्रिय हो सके।

वन॑स्पतेऽव॑ सृ॒जोप॑ दे॒वान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति ।
सेदु॒ होता॑ स॒त्यत॑रो यजाति॒ यथा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मानि॒ वेद॑ ॥१०॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान (वनस्पते) महावृक्ष, वटादि के समान आश्रितशरण, धनादि के याचकों के पालक! राजन्! एवं शत्रुओं के हिंसक सैन्य जनों के पति सेनापते! (देवान्) सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार तू भी (देवान्) उत्तम गुणों ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों और अग्नि, जल, पृथिवी आदि दिव्य तत्वों तथा विद्या धनादि की कामना करने वाले शिष्यादि जनों को (उप अव सृज) अपने समीप, अपने अधीन रख, उनको सन्मार्ग में चला, तथा उपभोग कर। (शमिता हविः सूदयाति) पाचक जैसे अन्न को पकाता और रसयुक्त करता है वैसे (अग्निः) अग्नि ही ऐसा है जो हमें (शमिता) शान्ति, सुख कल्याण का करने वाला होकर (हविः) ग्राह्य अन्नादि पदार्थ को (सूदयाति) पकाता है। वही (हविः) देह में मुख मार्ग से ग्रहण किये अन्न को रस बना कर अंग २ में (सूदयाति) प्रवाहित करता है। (२) इसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (शमिता) प्रजा वा राष्ट्र में शान्ति-कारक होकर (हविः सूदयाति) अन्न, कर आदि को ग्रहण कर विभक्त करे। (सः इद् होता) वही, 'होता' देने और लेने में समर्थ (सत्य-तरः)

सत्य, न्याय के बल से स्वयं सर्वश्रेष्ठ, एवं अन्यों को अज्ञान, दुःखों से पार करने वाला होकर (यजाति) ज्ञान, न्याय और धन का यथोचित रूप से प्रदान करे, (यथा) क्योंकि वही (देवानां) देव, उत्तम गुणों, विद्वानों और विद्या के इच्छुक शिष्य आदि के भी (जनिमानि) यथार्थ रूपों, तथा जन्मों आदि को (वेद) जानता है।

आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑। ब॒र्हिर्न॒ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥११॥२॥

भा०—(समिधानः अग्निः यथा इन्द्रेण देवैः तुरेभिः अर्वाङ् आ याति) अच्छी प्रकार दीप्तियुक्त अग्नि वा सूर्य-प्रकाश जिस प्रकार विद्युत्, मेघ और जलादि देने वाले वायुगण तथा दीप्तियुक्त प्रकाशों, रोगनाशक, अतिवेगयुक्त गुणों सहित (स-रथं) समान रंगरूप में हमें प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! नायक! तू भी (समिधानः) तेजस्वी होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र और (तुरेभिः) शत्रु बल के नाशक और आशु कार्य करने वाले वीरों, (देवैः) उत्तम विद्वानों सहित (अर्वाङ्) हमें विनययुक्त होकर वा (अर्वाङ्) अश्वादि से युक्त होकर प्राप्त हो। (बर्हिः न) कुशा के आसन पर विद्वान् के समान (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन के ऊपर (आस्ताम्) विराजे। वह (स्वाहा) उत्तम वचन, सत्य क्रिया और शुभ कर्म से (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रों की माता के समान, (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन स्वभाव वाला हो और (देवाः) देव, विद्वान्‌गण (अमृताः) राज्यों में दीर्घायु, मृत्युभय से रहित होकर (मादयन्ताम्) स्वयं सुखी हों, अन्यों को भी सुखी करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९, १० विराट्त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों, मनुष्यों के बीच (निध्रुविः) नित्य, ध्रुव, स्थायीरूप से वर्त्तमान (ऋतावा) सत्य, न्याय प्रकाश और धनैश्वर्यादि का स्वयं भोक्ता, अन्यों को उचित रूप में देने वाला, (तपुः-मूर्धा) सूर्य, अग्नि, विद्युत् के समान दुष्टों को सन्ताप देने में सर्वोत्कृष्ट (घृतान्नः) अग्नि जैसे घृत को अन्नवत् ग्रहण करता, वैसे जो घृत से युक्त अन्न का भोजन करता है और (पावकः) प्रजा के आचार व्यवहारों को पवित्र करता, एवं (स-जोषाः) समान भाव से सबके प्रति प्रीतियुक्त हो (वः) आप लोगों के बीच में उस (देवम्) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ, दानशील, ज्ञानप्रकाशक, (यजिष्ठं) अतिपूज्य, सत्संग योग्य, (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि तुल्य ही हिंसारहित प्रजापालन, अध्ययनाध्यापन, विद्या ग्रहण आदि कार्यों में (दूतम्) सेवा के योग्य, (कृणुध्वम्) बनाओ। ऐसे ही विद्वान् को राजा लोग भी दूतवत् प्रमुख वक्ता नियत करें।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२

भा०—(अविष्यन्) तृप्ति चाहता हुआ (अश्वः) अश्व (यवसे) घास चारे के लिये (न) जिस प्रकार (प्रोथत्) हिनहिनाता है उसी प्रकार राजा (अविष्यन्) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ (यवसे) शत्रु को छिन्न भिन्न करने के लिए (प्रोथत्) गर्जना करता हुआ (यदा) जब (महः संवरणात्) बड़े रक्षास्थान, प्रकोट से (वि अस्थात्) विशेष रूप से प्रस्थान करे (आत्) अनन्तर (अस्य शोचिः अनु) उसके तेज के साथ साथ, अग्नि की ज्वाला के पीछे २ (वातः) वायुवत्, प्रबल वृक्षों को उखाड़ देने वाले आंधी के समान, प्रबल सैन्य समूह (अनुवाति) जात

है। (अध) तब हे राजन्! सेनापते! (ते व्रजनं) तेरा गमन करना (कृष्णम् अस्ति) बड़ा चित्ताकर्षक एवं शत्रुओं के मूल काट देने वाला होता है। अश्व, अग्नि और राजा इन तीनों पदों में श्लेषविवरण पूर्वक सरल व्याख्या देखो यजुर्वेद, आलोक भाष्य (अ० १६।६२)। अध्यात्म में—व्यापक होने से परमेश्वर वा आत्मा 'अश्व' है। दृश्य जगत् उसका हिरण्यमय 'संवरण' है, वह उसके दूर होने पर प्रकट होता है, उसके तेज के साथ साथ यह 'वात', वायु, प्राण भी चलता है उसकी (व्रजनं) प्राप्ति ही (कृष्णम्) आकर्षक, अति आनन्दप्रद, सब दुःख बन्धन काटने में समर्थ है।

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्॥ ३॥

भा०—जैसे (नवजातस्य अजराः इधाना उत् चरन्ति) नये उत्पन्न अग्नि से गतिशील जलते लपट उठते हैं (द्याम् धूमः अच्छ एति) आकाश की ओर धूम उठता है, (दूतः सन् देवान् ईयसे) सन्तापदायक, तप्त होकर किरणों को प्रकट करता है वैसे हे (अग्ने) अग्रणी नायक! राजन्! विद्वन्! (यस्य नवजातस्य) जिस नये विद्वान् या पदाधिकारी बने (वृष्णः) सुखों के वर्धक, बलवान्, प्रबन्धक (ते) तेरे (इधानाः) तेजस्वी (अजराः) शत्रु कण्टकों को उखाड़ देने वाले पुरुष (उत्-चरन्ति) उत्तम पद पर नियुक्त होकर राष्ट्र में विचरते हैं, वह तू (धूमः) शत्रुओं को कंपा देने वाला, तेजस्वी होकर (द्याम् अच्छ एति) सूर्यवत् तेजस्वी उच्च पद को प्राप्त होता है। वह ही हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (दूतः) शत्रुओं को सन्तापदायी होकर (देवान्) विद्वान पुरुषों को (सम् ईयसे) अच्छी तरह प्राप्त हो।

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि॥ ४॥

भा०—जैसे अग्नि (पाजः तृषु वि अश्रेत्) शीघ्र ही पृथिवी में विविध दिशाओं में फैल जाता है, जैसे जाठराग्नि (जम्भैः अन्ना सम् अवृक्त) दाता द्वारा अन्नों को ग्रहण कर समस्त शरीर में फैला देता है, जैसे अग्नि की (प्रसितिः) ज्वाला या विद्युत् की (प्रसितिः) उत्तम जकड़ या आकर्षण (सेना इव) सेना के समान फैलता है और जैसे वह (जुह्वा) ज्वाला से चमकता वा यवादिकों को भस्म करता है वैसे हे राजन् ! सेनापते ! (यस्य ते) जिस तेरा (पाजः) बल (तृषु) अतिशीघ्र (पृथिव्याम् वि अश्रेत्) इस पृथिवी पर विविध प्रकार से विराजता है, (यत्) जो (जम्भैः) अन्नों को दांतों के समान हिंसकारी शस्त्रों-अस्त्रों के बल से अन्नवत् भोग्य देशों को (सम् अवृक्त) पृथक् २ विभक्त करता है (ते प्रसितः) तेरा उत्तम प्रबन्ध, (सेना इव सृष्टा) सेना के समान ही व्यवस्थित होकर (एति) प्राप्त होता है। हे (दस्म) शत्रुनाशक ! वह तू (जुह्वा) अपनी वाणी से (यवं) यव को मुख के समान, खाद्य या विनाश्य शत्रु का (विवेक्षि) नाश करता है।

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ५।२

भा०—(नरः) मनुष्य (अत्यं न) अश्व को जिस प्रकार (मर्जयन्त) खरखरे से नित्य सायं प्रातः साफ करते और उसको स्वच्छ कर रखते हैं उसी प्रकार (नि-शिशानाः नरः) खूब तीक्ष्ण करने वाले मनुष्य (तम्) उस (यविष्ठम्) युवा के समान अति बलशाली (अतिथिम्) व्यापक (अग्निम्) अग्नि वा विद्युत् को (दोषा उषसि) रात्रि-काल और प्रातः-काल में (मर्जयन्त इत्) सदा स्वच्छ रक्खें और घर्षण द्वारा प्रकट करें। (आहुतस्य) एकत्र एक स्थान पर सब ओर से सुरक्षित (वृष्णः) बलवान्, (अस्य) इसके (शोचिः) कान्ति को (योनौ) गृह में (दीदाय) मनुष्यवत् प्रकाशित करे। (२) इसी प्रकार (नरः) उत्तम पुरुष (दोषा उषसि) रात दिन, प्रातः सायं (यविष्ठं अतिथिं तम् अग्निम्) युवा, बलवान् अतिथिवत् पूज्य,

सर्वोपरि विराजमान उस अग्रणीनायक को (नि-शिशानाः) निरन्तर तीक्ष्ण, एवं कर्म व्यवहार चतुर करते हुए उसे (मर्जयन्त) सदा शुद्ध, स्वच्छ, आचारवान् बनाये रक्खें। (आहुतस्य अस्य वृष्णः) आदरपूर्वक स्वीकार किये इस बलवान् पुरुष का (शोचिः) तेज (योनौ) उसके उपयुक्त पद पर ही (दीदाय) प्रकाश करे। इति तृतीयो वर्गः ॥

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६॥

भा०—हे (स्वनीक) सुन्दर मुख वाले! सुमुख! विद्वन्! हे उत्तम सैन्य वाले! सेनापते! राजन्! (यत्) जो तू (रुक्मः) कान्तिमान्, सूर्य के समान (उपाके) सबके समीप (रोचसे) रुचिकर होता, सबके मन भाता है, (ते प्रतीकं) तेरा प्रतीति कराने वाला ज्ञान, बल उत्तम हो और तेरी (सु-सन्दृक्) उत्तम दृष्टि हो। (ते शुष्मः) तेरा बल, (दिवः न तन्यतुः न) आकाश, सूर्य या मेघ, विद्युत् के समान (एति) प्राप्त होता है और तू (सूरः न चित्रः) सूर्य के समान आश्चर्यकारक होकर (भानुम् प्रति चक्षि) अपने तेज को प्रकट करे।

यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (इडाभिः घृतवद्भिः हव्यैः च अग्नये स्वाहा) अन्नों और घृतयुक्त आहुति योग्य पदार्थों से अग्नि के लिये आहुति दी जाती है, उसी प्रकार हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों के बीच में (अग्नये) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक और अग्नि पद पर स्थित, सन्मार्ग पर ले जाने वाले पुरुष के लिये हम लोग (इडाभिः) उत्तम वाणियों से और (घृतवद्भिः) घृत से युक्त हव्य अर्थात् भोजन योग्य अन्नों से (परि दाशेम) उसका सत्कार करें। हे (अग्ने) अग्रणी! विद्वन्! तू (तेभिः) उन २, नाना (अमितैः) अपरिमित (महोभिः) तेजों से और (शतम्) सैकड़ों

(आयसीभिः पूर्भिः) लोह की बनी दृढ़ नगरियों से (नि पाहि) अच्छी प्रकार राष्ट्र की रक्षा कर।

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! (वा) और (या) जो (ते दाशुषे) तुझ विद्या और न्याय के दाता की (अधृष्टा) निरादर के अयोग्य, आदर योग्य, विनययुक्त (गिरः) वाणियां, वा तेरी जो वाणियां (दाशुषे) करादि देने वाले, तुझ पर अपने को त्यागने वाले प्रजाजन के हित के लिये हैं (वा) अथवा (याभिः) जिनसे (नृवतीः) उत्तम नायकों वाली सेनाओं और प्रजाओं को (उरुष्याः) रक्षा करता है, हे (सहसः सूनो) बलशाली सैन्य के चालक! हे (जातवेदः) ज्ञानवन्! विद्वन् वा ऐश्वर्यवन्! तू (ताभिः) उनसे (नः) हमारे (जरितॄन्) उपदेश करने वाले (सूरीन्) विद्वानों को (नि पाहि) पालन कर।

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जो (पूता इव स्वधितिः) शुद्ध स्वच्छ शस्त्र की धार के समान (शुचिः) कान्तियुक्त, (निर्गात्) अपने गृह से निकले और (स्वया कृपा) अपनी कृपा, सामर्थ्य और (तन्वा) देह से (रोचमानः) अग्निवत् चमकता है, (यः) जो (मात्रोः) माता पिता के बीच (उशेन्यः) कामना योग्य पुत्र के समान (आ जनिष्ट) अरणियों के बीच अग्नि के समान प्रकट होता है, वह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मों को करता हुआ (पावकः) अग्निवत् पवित्र करने वाला होकर (देव-यज्याय) विद्वानों के आदर तथा सत्संग के लिये यत्नशील रहे।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।४

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (नः) हमारे (एता) इन नाना (सौभगानि) सुखजनक, उत्तम ऐश्वर्यों को (दिदीहि) प्रकाशित कर। हम लोग (अपि) अवश्य (सुचेतसं) उत्तम चित्त वाली (क्रतुम्) बुद्धि को (वतेम) प्राप्त करें। (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील और (गृणते) उपदेश-कुशल पुरुष के लिये (विश्वा च) सब प्रकार के सौभाग्य (सन्तु) हों और हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी कर्मों से (नः) हमारी (सदा पात) सदा रक्षा करो।

[४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ ७ भुरिक् पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः। ८, ९ पंक्तिः। २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। १० विराट्त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम्।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों में से (यः) जो (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने के लिये और (अग्नये) ज्ञानवान् परमेश्वर की उपासना करने और अग्नि में आहुति देने के लिये (सु-पूतं) शुद्ध पवित्र (हव्यं) आहुति देने योग्य अन्नादि पदार्थ और (मतिं) उत्तम बुद्धि को (जिगाति) प्राप्त करता है और (यः) जो (दैव्यानि) विद्वानों और (मानुषा) साधारण मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (जनूंषि) जन्मों को भी (अन्तः) अपने भीतर (जिगाति) प्राप्त कर लेता है, उस विद्वान् के लिये आप भी (हव्यं) उत्तम पदार्थ (प्र भरध्वम्) प्राप्त कराओ।

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥२॥

भा०—(यः) जो (मातुः अजनिष्ठ) माता से बालक के समान ज्ञान-दाता गुरु से उत्पन्न होता है। (सः) वह (यतः) यम नियम का पालक,

(यविष्ठः) उत्तम युवा और (तरुणः) तरुण (गृत्सः) विद्वान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (अस्तु) हो। वह (शुचिदन्) शुद्ध विमल दन्तों वाला, स्वच्छ मुख हो और (वना) सूर्यवत् किरणों को (युवसे) प्राप्त करता है और वह (समित् चित्) काष्ठों को अग्नि के समान (सद्यः) शीघ्र ही (भूरि चित् अन्ना) नाना प्रकार के अन्नों वा भोग्य ऐश्वर्यों का (अत्ति) भोग करता है।

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) विद्वान् पुरुष को (संसदि) सभा वा (अनीके) सैन्य में (यं) जिस नायक को (मर्त्तासः) मनुष्य (श्येतं) शुद्ध चरित्र जानकर (जगृभ्रे) स्वीकार करते हैं (यः) जो (पौरुषेयीम् गृभम्) पुरुषों के व्यवहार योग्य पदार्थों को लेने देने की विधि का (नि उवोच) नियमित रीति से उपदेश करता है और जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (आयवे) राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (दुरोकम्) शत्रुओं से दुःख से सेवने योग्य राष्ट्र वा सैन्य बल को (शुशोच) चमका देता है वही सेनानायक वा राजा होने योग्य है।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार के बीच भी ज्ञान का प्रकाश करने हारा, (कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी, (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान, उत्कृष्ट चित्त वाला, (अमृतः) दीर्घायु, (अकविषु) अविद्वानों के बीच (नि धायि) स्थापित हो। (सः) वह (नः) हमें (अत्र) इस लोक में (मा जुहुरः) विनाश न करे, हमसे कुटिल बर्त्ताव न करे। हे अग्ने, तेजस्विन्! (ते) तेरे अधीन हम लोग (सदा) सदा (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले होकर (स्याम) रहें।

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५॥५॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवकृतं योनिमाससाद) विद्वानों द्वारा स्थापन योग्य स्थान कुण्ड आदि में स्थापित होता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) कर्म वा यज्ञ द्वारा जीवों को संकट से पार करता और (ओषधीः वनिनः भूमिः च बिभर्त्ति) इसको ओषधियां और वन के वृक्ष अरणि आदि और भूमि आदि धारण करते हैं उसी प्रकार (यः) जो विद्वान् तेजस्वी पुरुष (देवकृतं) विद्याभिलाषी विद्यार्थियों के लिये बनाये (योनिं) गृह पाठशालादि को (आ ससाद) प्राप्त होता है, (च) और जिस प्रकार (ओषधयः वनिनः भूमिः च) ओषधियें अपने रस में और बन के वृक्ष, काष्ठादि आग के रूप में और भूमि अपने गर्भ में ज्वालामुखी आदि रूप से विश्वधारक अग्नि को धारण करते हैं उसी प्रकार (विश्व-धायसं) समस्त ज्ञान के पालन करने वाले (तम्) उसको (वनिनः) वनस्थ, वानप्रस्थी, विद्वान् जन (ओषधीः च भूमिः च गर्भं) गर्भ को ओषधियों और उत्पादक भूमि के माता के समान (बिभर्त्ति) धारण करते और पालते पोषते हैं; वह भी उन सबको पालन पोषण करे। (२) इसी प्रकार जो वीर तेजस्वी पुरुष (देवकृतं योनिम् आससाद) विद्वानों से दिये पद को प्राप्त करता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) कर्म सामर्थ्य से जीवित मनुष्यों को संकट से पार करता, उस (विश्व-धायसं) समस्त राष्ट्र के दूध पिलाने वाली माता की तरह पालक पोषक राजा को (ओषधीः) बल वीर्य धारण करने वाली सेनाएं और (वनिनः) तेजस्वी, धनी, शस्त्रधर लोग (भूमिः च) और भूमि राष्ट्र, ये पुष्ट करते और वह भी उनको (बिभर्त्ति) पालन पोषण करता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः अमृतस्य ईशे) अग्नि, विद्युत् या सूर्य जिस प्रकार अमृत, जल, अन्न वा जीवन का प्रभु है, वह उसको उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (हि) निश्चय से (भूरेः अमृतस्य) बड़े भारी मोक्षमय अमृत को (ईशे) प्राप्त करे और वह (भूरेः रायः) बहुत धन, ऐश्वर्य और (सु-वीर्यस्य) उत्तम बल (भूरेः दातोः) बहुत अधिक दान को भी (ईशे) करने में समर्थ हो। हे (सहसावन्) बलयुक्त (वयम्) हम लोग (अवीराः) पुत्र सन्तानादि, बलयुक्त प्राणों और वीरता से रहित होकर (त्वा मा परि सदाम) तेरे इर्द गिर्द न बैठे रहें और हम (अप्सवः) केवल दर्शनीय ही बनकर (मा परि सदाम) न बैठे रहें और (मा अदुवः) और हम सेवा परिचर्या से रहित, निकम्मे न रहें। अर्थात् हम तेरे अधीन वीर, रूपवान्, कर्मण्य और उत्तम सेवक रहें।

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥७॥

भा०—(अरणस्य) ऋण से रहित पुरुष का (रेक्णः) धन (परि-सद्यम्) पर्याप्त होता है, इसलिये हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन्! हम लोग (नित्यस्य) नित्य, स्थायी (अरणस्य) ऋण और रण, संग्राम, लड़ाई झगड़े आदि से मुक्त (रायः) धनैश्वर्य के भी (पतयः) स्वामी (स्याम) हों। क्योंकि ऋण और झगड़े में पड़ा हुआ धन स्थायी नहीं होता। वह पराया होने से हाथ से निकल जाता है। इसी प्रकार (अरणस्य) जिसके उत्पन्न करने में स्वयं वीर्याधान नहीं किया ऐसे पुरुष का (रेक्णः) पर वीर्य का सन्तान भी (परि-सद्यं) त्याज्य होता है। क्यों? क्योंकि (अन्य-जातम् शेषः) दूसरे से प्राप्त धन और पुत्र दोनों ही (न अस्ति) नहीं के बराबर है। इसलिये हे विद्वन्! पराये का धन और पराये का पुत्र तो (अचे-तानस्य) ना समझ आदि का होता है। अविद्वान्, अयत्नशील पुरुष दूसरे के धन और पुत्र को अपना समझ बैठते हैं। वस्तुतः हे विद्वन्! तू (पथः मा वि दुक्षः) सन्मार्गों को दूषित मत कर। अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने

और श्रम से धनोपार्जन आदि शास्त्रीय उपायों पर दोषारोपण मत कर। अथवा—(अचेतानस्य) अनजान, नाबालिग के (पथः) प्राप्त करने योग्य धनादि को (मा वि दुक्षः) दूषित मत कर, उस पर अपना हक जमाने की टेढ़ी चाल न कर। (परिषद्यं रेक्णः अन्यजातं च शेषः न अस्ति) परिषद् अर्थात् जन सभा का रुपया और दूसरे से उत्पन्न पुत्र दोनों ही नहीं के समान हैं; वे अपने नहीं होते। हम (अरणस्य नित्यस्य रेक्णः पतयः स्याम) झगड़े, विवाद से रहित स्थायी धन के स्वामी हों। (अचेतानस्य पथः मा वि दुक्षः) अनजान मूर्ख के मार्गों को पाखण्डादि से दूषित मत करो (दया०)॥

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(अरणः) जो सुन्दर, उत्तम रूप, गुण, स्वभाव वाला न हो वा जो ऋण दूर न कर सके ऐसा (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (अन्योदर्यः) दूसरे के पेट से उत्पन्न हुआ सन्तान, उसको (मनसा उ ग्रभाय मन्तवै नहि) मन से भी अपना लेने की नहीं सोचनी चाहिये। (अध चित्) और (सः पुत्रः) वह पुत्र ही (ओकः इत् एति) गृह को प्राप्त करता है, जिसको पुत्र बनाया जाता है वही गृहादि सम्पत्ति का स्वामी होता है, इसलिये पराये को पुत्र बना लेने पर पराया ही घर का स्वामी हो जाता है। यह अनर्थ है, इसलिये (नः) हमें (नव्यः) स्तुति योग्य, उत्तम, (वाजी) बलवान् (अभिषाड्) शत्रुओं को पराजित करने वाला पुत्र (एतु) प्राप्त हो।

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! राजन्! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (त्वं) तू (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसाकारी और (अवद्यात्)

निन्दनीय कर्मों, पुरुषों, जन्तुओं से (नि पाहि) रक्षा कर। (ध्वस्मन्वत् पाथः) दोषों से रहित पथ और (ध्वस्मन्-वन् पाथः) शत्रुओं का नाशक सामर्थ्य वाला, राष्ट्रपालक बल (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो। (स्पृहयाय्यः रयिः) सबसे चाहने योग्य धन (सहस्री) सहस्रों की संख्या में, अपरिमित (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ३ मन्त्र १० ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ७ स्वराट् पंक्तिः। ६ पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वेषाम्) समस्त (अमृतानाम्) नाश न होने वाले अग्नि आकाश आदि नित्य पदार्थों और जीवात्माओं के (उपस्थे) समीप में (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों से उपासित, सबमें विद्यमान है और जो (जागृवद्भिः) अविद्या की नींद त्याग कर जागने वाले ज्ञानी पुरुषों से उपासित होता और (वावृधे) सबको बढ़ाता और स्वयं महान् है, उस (दिवः पृथिव्याः अरतये) सूर्य और पृथिवी में व्यापक, उनके स्वामी, (तवसे) अनन्त बलशाली, (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासना के लिये (गिरं प्र भरध्वम्) वाणी का प्रयोग करो, स्तुति प्रार्थना करो।

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥२॥

भा०—जो (अग्निः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश, महान् आत्मा, (दिवि

पृथिव्यां) तेजस्वी पदार्थ सूर्य आदि और पृथिवी आदि प्रकाश रहित पदार्थों में भी (धायि) अग्निवत् स्थित है, जो (सिन्धूनां नेता) बहने वाले प्रवाहों, वेग से गति करने वाले सूर्यादि का संचालक है जो (स्तियानाम् वृषभः) अप् अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच विद्यमान और अनन्त बलशाली, उनको नियम, व्यवहार में बांधने वाला है, (सः) वह (अग्निः) सबका अग्रनायक, संचालक (वैश्वानरः) सबको ठीक २ मार्ग में चलाने वाला 'वैश्वानर' है। वही प्रभु (मानुषीः विशः) समस्त मनुष्य प्रजाओं को (अभि वि भाति) प्रकाशित करता और उनमें स्वयं प्रकाशित होता है। वह समस्त मनुष्यों में विद्यमान होने से 'वैश्वानर' है। वह (वरेण) श्रेष्ठ स्वभाव से ही (वावृधानः) सबको बढ़ाने हारा, स्वयं सबसे महान् है।

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के हृदयों में विराजमान, सबके हितकारी! (अग्ने) सबके पूर्व विद्यमान! अग्निवत् स्वयंप्रकाश, सर्वप्रकाशक! (यत्) जो (पूरवे) मनुष्यमात्र के लिये (शोशुचानः) प्रकाशक, ज्ञानरूप में प्रकाश करता हुआ, (पुरः दरयन्) ज्ञान वज्र से आत्मा के देह रूप पुरों अर्थात् देह-बन्धनों को काटता हुआ (अदीदेः) ज्ञान को प्रकाशित करता है, (त्वद् भिया) तेरे ही भय से (असिक्नीः) रात्रि के समान अन्धकारमय दशाओं को प्राप्त (विशः) जीव प्रजाएं भी (असमना) एक समान चित्त न होकर (भोजनानि जहतीः) नाना भोग्य पदार्थों को त्याग कर (आयन्) तेरी शरण आती हैं। (२) वीर राजा तेजस्वी होकर (पुरः दरयन् अदीदेः) शत्रु के किलों, नगरों को तोड़ता, प्रताप से चमकता है। भय से शत्रु सेनाएं भोजन तक त्याग कर (असमनाः) संग्राम छोड़ कर (असिक्नीः आयन्) अन्धकारमय गुफाओं का आश्रय लेती हैं।

तव॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौर्वैश्वा॑नर व्र॒तम॑ग्ने सचन्त ।
त्वं भा॒सा रोद॑सी॒ आ त॑त॒न्थाज॑स्रेण शो॒चिषा॒ शोशु॑चानः ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! हे (वैश्वानर) समस्त संसार के चलाने हारे, (त्रि-धातु) तीनों गुणों को धारण करने वाली, परम सूक्ष्मतत्व प्रकृति और (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी और द्यौ अर्थात् प्रकाशसहित समस्त पदार्थ भी (तव व्रतम्) तेरी ही कर्म-व्यवस्था को (सचन्ते) धारण करते हैं। हे प्रभो ! (त्वं) तू (भासा) अपनी दीप्ति से (रोदसी) भूमि और आकाश सर्वत्र (आ ततन्थ) व्याप रहा है । तू (अजस्रेण) अविनाशी, निरन्तर स्थिर रहने वाले (शोचिषा) प्रकाश, तेज से, सूर्यवत् (शोशुचानः) प्रकाशमान रहता है ।

त्वाम॑ग्ने ह॒रितो॑ वावशा॒ना गिरः॑ सचन्ते॒ धुन॑यो घृ॒ताचीः॑ ।
पतिं॑ कृष्टी॒नां र॒थ्यं॑ रयी॒णां वै॑श्वान॒रमु॒षसां॑ के॒तुमह्ना॑म् ॥५॥७॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (वावशानाः) चाहती हुई (हरितः) दिशावासी प्रजाएं, (गिरः) वेद वाणियों और (घृताचीः धुनयः) समुद्र को जलयुक्त नदियों के समान (कृष्टीनां पतिम्) समस्त प्रजाओं, मनुष्यों के पालक, (रथ्यम्) रथयोग्य अश्व वा सारथि-वत् (रयीणां) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले (उषसाम्) प्रभात वेलाओं और (अह्नाम्) दिनों के (केतुम्) प्रकट करने वाले सूर्य के समान (उषसां केतुम्) पापों, दुर्भावों को भस्म करने एवं कामना करने वालों के ज्ञापक (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के सञ्चालक, सर्व हितकारक (त्वाम्) तुझ परमेश्वर को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं । इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वे अ॑सु॒र्यं१॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्व॒न्क्रतुं॒ हि ते॑ मित्रमहो जु॒षन्त॑ ।
त्वं दस्यूँ॒रोक॑सो अग्न आज उ॒रु ज्योति॑र्ज॒नय॒न्नार्या॑य ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेह करने वालों से पूज्य और स्वयं उनका आदर करने वाले ! प्रभो ! (वसवः) बसने वाले जीवगण (त्वे) तेरे ही में

(असुर्यं) मेघ में विद्यमान परम उदार सामर्थ्य को (नि ऋण्वन्) सब प्रकार से साधते हैं, वे (ते हि) निश्चय से तेरे (क्रतुं कर्म और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेमपूर्वक सेवन करते हैं। (त्वं) तू हे (अग्ने) तेजस्विन्! (आर्याय) सज्जन, श्रेष्ठ, कर्मण्य पुरुष के लिये (उरु) बहुत भारी (ज्योतिः जनयन्) ज्ञानप्रकाश करता हुआ (ओकसः) उसके समवाय या निवास-स्थान, देह से (दस्यून्) दुष्टों, दुष्टभावों और जनों को (आ अजः) दूर करता है।

स जायमानः पर॒मे व्यो॑मन्वा॒युर्न पाथः॒ परि॑ पासि स॒द्यः।
त्वं भुव॑ना ज॒नय॑न्न॒भि क्र॒न्नप॑त्याय जातवेदो दश॒स्यन् ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह तू हे परमेश्वर! (परमे) सबसे उत्कृष्ट, (व्योमन्) विशेष रक्षा के पद पर (जायमानः) रक्षक रूप से प्रकट होता हुआ (वायुः न) प्राण या जीवनाधार वायु के समान (पाथः) समस्त विश्व का पालन करता है और (सद्यः) संकट में विना विलम्ब के (परि पासि) बचा लेता है। हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न भुवनों, प्राणियों और पदार्थों के जानने हारे प्रभो! तू (भुवना) समस्त लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (अपत्याय) पुत्र के समान समस्त जीव संसार को (अभि क्रन्) ज्ञान वा मेघ वा विद्युत्वत् निष्पक्षपात रूप से गर्जनवर्षणादिवत् उपदेश करता हुआ और उनके (दशस्यान्) सुख सामग्री, दीर्घायु, भोग्य और भोग शक्ति प्रदान करता हुआ (परि पासि) सबको पालन करता है।

ताम॑ग्ने अ॒स्मे इष॒मेर॑यस्व वैश्वा॑नर द्यु॒मतीं॑ जातवेदः।
यया॒ राधः॒ पिन्व॑सि विश्ववार पृ॒थु श्रवो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (द्युमतीम् इषम् ईरयति) आकाश से आने वाली विद्युत्, सूर्य के तेज से युक्त वृष्टि को प्रेरित करता है इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजःस्वरूप! हे (जातवेदः) मतिमन्! प्रभो! आप (अस्मे) हमारे लिये (ताम्) उस (द्युमतीम्) कामना योग्य (इषम्) अन्न-

समृद्धि को (ईरयस्व) प्रदान करो । हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के भीतर बसने वाले ! तू (यया) जिस भी प्रकार से (राधः पिन्वसि) धन की वृष्टि करता है हे (विश्ववार) वरने योग्य और संकटों को दूर करने हारे आप (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य को (पृथु श्रवः) बहुत बड़ा यश, अन्न, ज्ञान (पिन्वसि) प्रदान करता है ।

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥९।८॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! ज्ञानवन् ! आप (नः) हममें से (मघवद्भ्यः) उत्तम पूजनीय पापादिरहित, सात्विक ऐश्वर्य वाले पुरुष को (तं) उस नाना प्रकार के (पुरु-क्षुम्) बहुत प्रकार के अन्नों से सम्पन्न (रयिम्) ऐश्वर्य और (श्रुत्यं वाजं) श्रवण करने योग्य ज्ञान (युवस्व) प्रदान कर, हे (वैश्वानर) सर्व मनुष्यों के हित करने वाले प्रभो ! आप (रुद्रेभिः) पृथिवी, अग्नि आदि हव्यों और (वसुभिः) प्राणों सहित (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः) हमें (महि) बड़ी (शर्म) शान्ति और शरण (यच्छ) प्रदान कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्पंक्तिः । ३, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१॥

भा०—(असुरस्य) बलवान्, मेघ के समान उदार (सम्राजः) सर्वत्र समान भाव से और अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी, (कृष्टी-नाम्) मनुष्यों के बीच, उनके लिये (अनु-माद्यस्य) उसके हर्ष में अन्यों को भी हर्षित होने योग्य (तवसः) बलवान (पुंसः) पुरुष की (इन्द्रस्य इव) सूर्य, विद्युत्, वायु के समान ही (प्रशस्तिं) उत्तम प्रशंसा और

(कृतानि) उनके समान उसके कर्त्तव्य कर्मों को (वन्दे) वर्णन करता हूँ और (दारुं) शत्रु-सैन्यों, दुखों और शत्रु-नगरों के विदारण करने वाले, तथा दुष्टों के भयदाता की (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (विवक्मि) उनके विशेष गुणों और कर्त्तव्यों का भी वर्णन करता हूँ।

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (रोदस्योः) सूर्य पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में (कविम्) अति बुद्धिमान्, (केतुम्) ज्ञानवान्, अन्यों को सन्मार्ग बतलाने वाले, (धासिम्) अन्नवत् पालक पोषक, (भानुम्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, (राज्यम्) राजा के पद के योग्य और (शं) प्रजाओं को शान्तिदायक, कल्याणकारक पुरुष को (हिन्वन्ति) प्राप्त होते, उसको बढ़ाते हैं। (अद्रेः) मेघ के समान, उदार प्रबल शस्त्रास्त्र बल से सम्पन्न, (पुरन्दरस्य) शत्रु के नगरों को तोड़ने वाले, (अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के (पूर्व्यं) पूर्व के जनों से किये वा उपदेश किये, श्रेष्ठ (महानि) बड़े २ आदर योग्य (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्मों का (आ विवासे) वर्णन करता हूँ।

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥ ३ ॥

भा०—(पूर्वः) सबसे मुख्य, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (अक्रतून्) कर्महीन, प्रज्ञाहीन, मूर्ख, (ग्रथिनः) कुटिलाचारी, (मृध्रवाचः) दूसरों के पीड़ा देने वाले, असत्य वाणी वाले, (पणीन्) व्यवहारी और (अश्रद्धान्) सत्य वचन, कर्मादि को धारण न करने वाले, (अवृधान्) दूसरों को न बढ़ने देने वाले, (अयज्ञान्) यज्ञ, सत्संग, अग्निहोत्र, दान, उपासनादि से रहित और (तान्) उन नाना (अपरान्) अन्य (अयज्यून्) अन्यों को सत्कार न करने वाले लोगों को (प्र विवाय, नि चकार) दूर करे और पराजित करे।

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अपाचीने) नीचे के या दूर के (तमसि) अन्धकार में (मदन्ती) सुखी रहने वाली प्रजाओं को अपनी (शचीभिः) शक्तियों, वाणियों, किरणों से सूर्य के समान (नृतमः) पुरुषोत्तम (प्राचीः चकार) आगे और उत्तम पद की ओर अग्रसर करता है (तम्) उस (वस्वः ईशानम्) बसे समस्त संसार और ऐश्वर्य के स्वामी, (पृतन्यून्) सेनाओं को चाहने वाले, उनके स्वामियों को भी (दमयन्तम्) दमन करते हुए (अनानतं) अति विनयी, (अग्निम्) अग्रणी सेनानायक पुरुष के (गृणीषे) गुण वर्णन करता हूँ । (२) इसी प्रकार परमेश्वर वेद वाणियों से तमोगुण में वर्त्तमान प्रजाओं को उन्नत करता है, वह सबका ईशान, स्वामी है, उसकी मैं स्तुति करूं ।

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

भा०—(यः) जो (देह्यः) कर आदि द्वारा बढ़ाने योग्य, देह में आत्मा के समान राष्ट्र में बसने वाला, (बधस्नैः) बध, दण्डादि से राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ, निष्कण्टक करने वाले राजभृत्यों, न्यायाधीश आदि शासकों और बधकारी शस्त्रों द्वारा शत्रु-कण्टकों को मार्ग से साफ करने वाले सैन्यों से शत्रु को (अनमयत्) नमाता है और जो सुरम्य व्यवस्था द्वारा (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों की (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान सुभूषित, (चकार) करता है, अर्थात् जिसके शासन में विवाहित स्त्रियों का सौभाग्य स्थिर रहता है, (सः) वह (यह्वः) महान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी स्वयं (नहुषः) सत्य नियम में बद्ध होकर (विशः निरुध्य) प्रजाओं को नियमों में नियन्त्रित करके (सहोभिः) शत्रुपराजयकारी बलों से शत्रुओं को भी (बलिहृतः चक्रे) कर देने वाला बनाता है ।

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य शर्मन्) जिसके सुखप्रद गृहवत् शरण में रहकर (विश्वे जनासः) समस्त मनुष्य, (सुमतिं भिक्षमाणाः) उत्तम मति, ज्ञान की याचना करते हुए (एवैः) ज्ञानों और शुभ गुणों सहित (उप तस्थुः) विराजते हैं वह (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में सूर्य के समान (पित्रोः) माता पिता दोनों के (उप-स्थम्) समीप, दोनों के तुल्य आदरणीय (वरम्) श्रेष्ठ पद को (आ ससाद) प्राप्त करता है ।

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥९॥

भा०—(सूर्यस्य उदिता वैश्वानरः) जिस प्रकार सूर्य के उदयकाल में अग्नि (बुध्न्या वसूनि आ ददे) अन्तरिक्ष में आये अन्धकारों को ग्रस लेता है (दिवः पृथिव्याः आ ददे) आकाश और पृथिवी के अन्धकारों को भी हरता है उसी प्रकार (देवः) दानशील, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितैषी पुरुष (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान अपने अभ्युदयकाल में (बुध्न्या वसूनि) भृत्यादि को कार्यों में बांधने वाले ऐश्वर्यों को (आ ददे) प्राप्त करे और वह (अवरात् समुद्रात्) उरे के, समीपवर्ती समुद्र से और (परस्मात्) दूरस्थ समुद्र तक (दिवः, पृथिव्याः) व्यवहार, व्यापार से तथा पृथिवी से भी धन और अन्न रत्नादि नाना पदार्थ (आ, आ, आ ददे) पुनः पुनः प्राप्त करे । इति नवमो वर्गः ॥

[७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ७ स्वराट् पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१॥

भा०—(वाजिनं अश्वं नमोभिः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व को विनम्र करने के लिये कशादि, चाबुक, साधनों से प्रेरित किया जाता है और जिस प्रकार उसको (नमोभिः) अन्नों से बढ़ाते, पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों के बीच (देवं चित्) सूर्यवत् तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी, ज्ञानप्रकाशक, (सहसानम्) बलवान् (अश्वम्) राष्ट्र के भोक्ता, (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुष का भी (नमोभिः प्र हिषे) उत्तम आदर सत्कारों से प्रेरित, प्रार्थित करें और शस्त्रादि से उसे बढ़ावें। हे विद्वन्! राजन्! तू (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (मित-द्रुः) परिमित भय वाला, (देवेषु) विद्वान् श्रेष्ठ पुरुषों के बीच (विविदे) विदित हो, प्रसिद्धि और परिचय प्राप्त कर और तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारे (अध्वरस्य) यज्ञ, अविनाश्य कर्तव्य का (दूतः) अग्निवत् प्रकाशक (भव) हो।

आ याह्यग्ने पथ्याऽ३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (देवानां सख्यं) विद्वान्, तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक किरणवत् विद्वानों के (सख्यं) मित्र भाव को (जुषाणः) प्राप्त करता हुआ (मन्द्रः) सबको हर्ष देता हुआ (स्वाः) अपनी (पथ्याः) धर्म मार्ग पर चलने वाली प्रजाओं को (अनु आयाहि) अनुकूल रूप से प्राप्त कर, हमें प्राप्त हो और सिंह वा मेघवत् (पृथिव्याः सानु) पृथिवी के उच्चतम उन्नत प्रदेश को भी (शुष्मैः) अपने बलों से (नदयन्) गुंजित वा समृद्ध करता हुआ (जम्भेभिः) अपने शत्रु-नाशक उपायों से (विश्वम्) समस्त राष्ट्र और (वनानि) ऐश्वर्यों को भी (उशधक्) काष्ठों को अग्निवत् चाहे और उपभोग करे।

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (प्राचीनः यज्ञः) प्राङ्मुख यज्ञ (सुधितम् बर्हिः) अच्छी प्रकार बिछे कुशासनादि चाहता है उसी प्रकार (प्राचीनः) उत्तम पद पर प्राप्त (यज्ञः) सत्संग और आदर योग्य (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी पुरुष आदर सत्कार प्राप्त कर (बर्हिः अग्निः च) हविद्रव्य को अग्नि के समान (होता) स्वयं ग्रहण करके (प्रीणीते) तृप्त होता है। हे (यविष्ठ) बलशालिन्, अति तरुण! तू (यतः) जिनसे (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है वे (मातरा) माता पिता (विश्व-वारे) सब सुखों के देने वाले, सब प्रकार से वरण योग्य, परम पूज्य होते हैं, उन दोनों को तू (आ हुवानः) आदरपूर्वक स्तुति करता हुआ (सुशेवः) उनको सुख देने वाला हो।

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम्।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणेऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो (एषाम्) इन प्रजावर्गों में (वि-चेतसः) विविध और विशेष ज्ञान वाले (मानुषासः) मनुष्य हैं वे (सद्यः) शीघ्र (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि के समान तेजस्वी (रथिरं) रथ के संचालन अग्नि को (जनन्त) उत्पन्न करें। (दुरोणे अग्निः) दुःख से चढ़ने योग्य अन्तरिक्ष में जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार (दुरोणे) गृह में (अग्निः) 'गार्हपत्य' अग्नि स्थापन किया जाता है (विशां विश्पतिः) प्रजाओं का स्वामी, (विशां दुरोणे) प्रजा के गृहस्थवत् राष्ट्र में (मन्द्रा) आनन्दप्रद हो। वह (मधुवचाः) मधुरभाषी (ऋतावा) सत्य, न्याय का करने वाला पुरुष (अधायि) राजा पद पर स्थापित हो।

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (नृसदने अग्निः विधर्त्ता) मनुष्यों के रहने के स्थान में अग्नि स्थापित होकर विविध सुखों को धारण करता है उसी प्रकार (वह्निः) पत्नी से विवाह करने वाला, (वृतः) स्वयं वृत होकर

(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नृ-सदने) नरनारी के रहने योग्य गृह में (ब्रह्मा) प्रजा की वृद्धि करने हारा होकर (आ जगन्वान्) आदर पूर्वक (असादि) विराजे। वह स्वयं (द्यौः) सूर्य के समान और (पृथिवी) गृहस्थ का आश्रय होने से पृथिवी के तुल्य है। इसी प्रकार स्त्री कामना योग्य होने से 'द्यौ' और सन्तान की उत्पादक भूमि होने से पृथिवी के तुल्य है। दोनों (यं वावृधाते) जिसको बढ़ाते हैं, (यं) जिसको (होता) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष भी (विश्ववारं) संघ से वरण करने योग्य जानकर (यजति) प्राप्त होता और ज्ञान प्रदान करता है। (२) इसी प्रकार 'वृत' अर्थात् वरण किया राजा, राज्य-भार को उठाने से 'वह्नि', बड़ा होने से 'ब्रह्मा', अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है। (यं) जिसको (द्यौः पृथिवी च) ज्ञानी, अज्ञानी वा शासक और शास्य दोनों वर्ग बढ़ावें।

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन्।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥६॥

भा०—(ये) जो (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी लोग (वारं) वरणीय, श्रेष्ठ (मन्त्रम्) विचार, राष्ट्रचालक मन्त्रणा को (अतक्षन्) प्रकट करते हैं (एते) वे (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (विश्वम्) सब विश्व को (आ अतिरन्त) बढ़ाते हैं और (ये) जो (श्रोपमाणाः) स्वयं ज्ञान का श्रवण करते कराते हुए, (विशः) प्रजाओं को (प्र तिरन्त) बढ़ाते हैं और (ये) जो (मे) मुझे (अस्य ऋतस्य) इस सत्य विज्ञान और न्याय को (आदीधयन्) प्रकाशित करते हैं वे (विश्वम् आतिरन्त) सबको पालन करते और दुःखों से पार करते हैं।

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।१०

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र! बलशाली सैन्य के स्वामिन्! हम (वसिष्ठाः) उत्तम वसु होकर

(वसूनाम्) गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन और विद्याभ्यास करने वा राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनों के (ईशानं) स्वामी (त्वाम्) तुझसे (ईमहे) प्रार्थना करते हैं कि (स्तोतृभ्य:) विद्वान् उपदेष्टा, स्तुतिशील और (मघवद्भ्य:) धन सम्पन्नों के लिये (इषं आनट्) इच्छानुरूप ज्ञान और धन प्रदान कर। हे उत्तम विद्वानो, आप्त पुरुषो! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभि:) कल्याणकारी साधनों से (सदा नः पात) हमारी सदा रक्षा करें। वसन्ति आचार्याधीनं ब्रह्मचर्यमिति वसवः तेषु उत्तमाः वसिष्ठाः। वसन्ति गृहेषु इति वसवः पितरः। तेषु उत्तमा वसिष्ठाः। इति दशमो वर्गः॥

[८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ७ स्वराट् पंक्तिः। ५ निचृत्त्रिष्टुप् २, ३, ४, ६ त्रिष्टुप्॥

इन्धे राजा सम॒र्यो नमो॑भि॒र्यस्य॒ प्रती॑क॒माहु॑तं घृ॒तेन॑।
नरो॑ ह॒व्येभि॑रीळते स॒बाध॒ आग्निरग्र॑ उ॒षसा॑मशोचि॥ १॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार सूर्य (उषसाम् अग्रे) प्रभात वेलाओं के पूर्व भाग में (आ अशोचि) प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (अग्निः) यह आहवनीय अग्नि (उषसाम् अग्रे अशोचि) प्रभात वेलाओं के पूर्व अंश में ही प्रदीप्त हो। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतम्) जिसका प्रज्वलित रूप तेज से व्याप्त, सूर्य बिम्ब के समान, घृत से आहुत होकर चमकता है, (सबाधः नरः) बाधा अर्थात् पीड़ा रोगादि से व्यथित लोग उसकी (हव्येभिः) नाना प्रकार के अग्नि में आहुति योग्य ओषधि अन्नों से (ईडते) तृप्त करते हैं; रोगपीड़ित होकर जन रोगनाश के लिये नाना ओषधियों की आहुति करते हैं। (सः राजा अर्यः) वह अग्नि प्रदीप्त होकर स्वामी के समान (नमोभिः सम् इन्धे) उत्तम अन्नों से खूब प्रदीप्त हो। (२) इसी प्रकार (उषसाम् अग्रे) कामनायुक्त धन रक्षादि, चाहने वाली प्रजाओं और शत्रु दाहक सेनाओं

के बीच में अग्र, मुख्य पद पर (अग्निः) अग्रणी नायक (आ अशोचि) खूब प्रदीप्त हो, वह अपने को सदा स्वच्छ, निष्पाप और शुचि अर्थात् अर्थ कामादि से भी स्वच्छ होकर रहे। (यस्य) जिसकी (प्रतीकं) प्रतीति कराने वाला सैन्य (घृतेन) तेज से (आहुतम्) युक्त हो और जिसकी (सबाधः नरः हव्येभिः ईडते) दुष्टों से पीड़ित प्रजा के लोग देने योग्य नाना भेटों, करों से उसको प्रसन्न करते हैं। वह (अर्यः) स्वामी, (नमोभिः) अन्नों से वैश्य के समान और आदर सत्कारों से ज्ञानी पुरुष के समान (राजा) तेजस्वी राजा (नमोभिः) शत्रु नमाने के उपाय रूप शस्त्रास्त्र बलों से (समिन्धे) खूब प्रदीप्त होता है।

अ॒यमु॒ ष्य सुम॑हाँ अवेदि॒ होता॑ म॒न्द्रो मनु॑षो य॒ह्वो अ॒ग्निः।
वि भा अ॑कः ससृजा॒नः पृ॑थि॒व्यां कृ॒ष्णप॑वि॒रोष॑धीभिर्ववक्षे ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः कृष्ण-पविः ओषधीभिः ववक्षे) अग्नि काले मार्ग वाला है, उसे ओषधियां धारण करती हैं। उसी प्रकार (मनुष्यः) मननशील मनुष्य भी (यह्वः) महान् पूज्य (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी है जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (कृष्ण-पविः) श्याम धारावाले वा शत्रु को काटने वाले शस्त्रास्त्र से युक्त है। उसे (ओषधीभिः) तीक्ष्ण शत्रुबल को दग्ध करने वाले सैन्यगण (ववक्षे) धारण करते हैं। वह (ससृजानः) अग्नि के समान उत्पन्न होकर, स्वयं कार्य करता हुआ (भाः वि अकः) नाना या विशेष कान्तियें प्रकट करता है (अयम् उ स्यः) वह ही यह (होता) महान् राज्य को स्वीकार करने और सहस्रों को वृत्ति देने वाला, (मन्द्रः) सबको सुखी करने वाला होकर (सु-महान् अवेदि) खूब बड़ा जाना जाता है।

क॒था॑ नो अग्ने॒ वि व॑सः सुवृ॒क्तिं कामु॒ स्व॒धामृ॑णवः श॒स्यमा॑नः।
क॒दा भ॑वेम॒ पत॑यः सुदत्र रा॒यो व॒न्तारो॑ दु॒ष्टर॑स्य सा॒धोः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! अग्रणी, मुख्यपद को

आप्त राजन् ! तू (कया) किस रीति नीति से (नः वि वसः) हमें विविध प्रकार से रक्षा करते हो ? और (काम् सुवृक्तिम्) किस उत्तम संविभाग की (स्वधां) ऐश्वर्य एवं स्वराष्ट्र को धारण करने वाली नीति को आप (शस्यमानः) स्तुति योग्य होकर (ऋणवः) प्राप्त होते हो ? हे (सुदत्र) उत्तम दानशील ! हम लोग (दुस्तरस्य रायः) अपार ऐश्वर्य के (पतयः) स्वामी और (वन्तारः) सेवन करने वाले (कदा) कब (भवेम) हों ? और (दुःस्तरस्य) बल विद्या में अपार (साधोः) सज्जन पुरुष के हम भी (वन्तारः कदा भवेम) सेवक कब हों ?

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

भा०—(यत्) जो (भाः) दीप्तिमान् होकर (सूर्यः न रोचते) सूर्य के समान प्रकाशित होता, (बृहत्) महान् होकर (अयम्) वह (भरतस्य) मनुष्यमात्र का (अग्निः) अग्नि के समान मार्गदर्शक प्रकाशक रूप से (प्र-प्र शृण्वे) उच्च पद पर विख्यात सुना जाता और उनके सुख, दुःख, निवेदनादि सुनता है; (यः) जो (पृतनासु) मनुष्यों में (पूरुम्) पालक जनों को (अभि तस्थौ) प्राप्त कर अध्यक्ष रूप से विराजता है और वह (द्युतानः) दीप्तियुक्त होकर (दैव्यः) देव, विद्वानों में प्रशंसित (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य और सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि (शुशोच) चमकता है ।

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वे) तेरे निमित्त (भूरि) बहुत (आहवनानि) सत्कार पूर्वक निमन्त्रण (असन् इत्) हों । तू (विश्वेभिः अनीकैः) सब सैन्यों से युक्त और (सुमनाः) उत्तम चित्त वाला (भुवः) हो । हे (सुजात) उत्तम गुणों से प्रख्यात ! तू (स्तुतः-चित्) प्रशंसित और

(गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ (शृणिषे) अन्यों के वचन श्रवण कर और (स्वयं) अपने आप (तन्वं वर्धस्व) शरीरवत् अपने राष्ट्र और विस्तृत ज्ञान की वृद्धि कर।

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन्! (द्वि-बर्हाः) विद्या और नियम, ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष (अग्नये) अग्रगण्य पुरुष की उन्नति के लिये (शत-साः) सैकड़ों ज्ञानों को देने वाला होकर (सं-सहस्रम्) सहस्रों, अपरिमित ऐश्वर्यों और ज्ञानों को देने वाला (इदं वचः) इस प्रकार का वचन (उत् जनिषीष्ट) उत्पन्न करे, कहे (यत्) जो (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (आपये) आप्तजन, बन्धु वर्ग के लिये (शं भवाति) शान्तिदायक हो और जो (द्युमत्) शुभ कामनायुक्त, (अमीव-चातनं) रोगादिनाशक और (रक्षः हा) दुष्ट पुरुषों का नाशकारी हो।

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।११

भा०—व्याख्या देखो (सू० ७। म० ७) इत्येकादशो वर्गः॥

[९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ भुरिक् पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥

भा०—(जारः) रात्रि को जीर्ण कर देने वाला सूर्य जिस प्रकार (उषसाम् उपस्थात्) प्रभात वेलाओं के बीच प्रकट होकर (अबोधि) सबको प्रबुद्ध करता, (उभयस्य जन्तोः) दोपाये, चौपाये दोनों को (केतुम्

दधाति) प्रकाश वा चेतना देता है, उसी प्रकार (उषसाम् उपस्थात्) हृदय से चाहने वाले शिष्यों वा प्रजाओं के बीच (जारः) उत्तम उपदेश करने हारा पुरुष (अबोधि) अन्यों को ज्ञान से बोधित करे। वह (होता) उत्तम ज्ञान का देने वाला (मन्द्रः) उत्तम हर्षजनक, (कवि-तमः) श्रेष्ठ विद्वान्, (पावकः) शोधक अग्नि के समान सबको पवित्र करने वाला होता है। वह (उभयस्य जन्तोः) ज्ञानी अज्ञानी, पशु मनुष्य वा इह-लोक परलोक को जाने वाले दोनों प्रकार के (जन्तोः) प्राणियों को (केतुम्) ज्ञान का प्रकाश (दधाति) प्रदान करता है; वह (देवेषु) विद्वानों और ज्ञान की कामना करने वालों और (सुकृत्सु) उच्च आचारवान् सुकर्मा पुरुषों में (हव्या) ग्रहण करने योग्य अन्न, वचनादि तथा (द्रविणं) धन (दधाति) प्रदान करे।

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (राम्याणां तमः दमूनाः तिरः ददृशे) रात्रियों के अन्धकार को दूर करके अग्नि वा सूर्य दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो (दमूनाः) दान वा दमन में चित्त देने वाला, जितेन्द्रिय (होता) दाता, (मन्द्रः) सबको प्रसन्न करने वाला पुरुष (नः) हमारे (पुरु-भोजसं) बहुतों को पालने और बहुत ऐश्वर्यों को भोगने वाले (अर्कं) पूज्य पुरुष को (वि पुनानः) विशेष रूप से, पवित्र रूप से, अभिषिक्त वा स्थापित करता हुआ (पणीनां) व्यवहार करने वाले प्रजागणों के (दुरः) नाना द्वारों या व्यवहार के मार्गों को (वि पुनानः) न्यायमर्यादा से स्वच्छ, निष्कण्टक करता हुआ (राम्याणाम्) रमण योग्य, प्रसन्न (विशां तमः तिरः ददृशे) प्रजाओं के अज्ञान, अधर्म वा पाप को दूर करके स्वयं अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी रूप से दीखता है (सः सुक्रतुः) वही पुरुष शुभ कर्म और उत्तम बुद्धि वाला है।

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व आ विवेश ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (चित्र-भानुः) अद्भुत कान्ति वाला सूर्य (उषसाम् अग्रे भाति) प्रभात वेलाओं के अग्रभाग में चमकता है और जिस प्रकार विद्युत् (अपाम्) जलों के (गर्भः) बीच, गर्भित होकर (प्र-स्वः) उत्तम रीति से ओषधियों को उत्पन्न करने वाली भूमियों और ओषधियों में भी (आ विवेश) प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार (अमूरः) कभी नाश न होने वाला, एवं अमूढ़, मोह अज्ञान से रहित, (कविः) क्रान्तदर्शी, (अदितिः) अदीन, उत्साही, (विवस्वान्) सूर्यवत् नाना किरणों के सदृश वसुओं, प्रजाओं का स्वामी, (सु-संसत्) उत्तम राजसभा का स्वामी, (मित्रः) प्रजा को मारने या विनाश होने से बचाने वाला, सबका स्नेही, न्यायशील, (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य, सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि, (शिवः) कल्याणकारी हो। वह (नः) हमारे बीच में (उषसाम्) शत्रु और पापों को भस्म करने वाले सैन्यों के आगे सेनानायकवत् प्रकाशित हो और वह (अपां) आप्त प्रजाओं को (गर्भः) वश में लेने हारा होकर (प्र-स्वः) उत्तम धनवान् होकर (प्रस्वः = प्रसुवः) प्रभूत ऐश्वर्यवान्, प्रजाओं के भीतर प्रजापति, गृहपति के समान (आविवेश) प्रविष्ट हो।

ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः।
सुसन्दृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥४॥

भा०—हे मनुष्यो! जो (युगेषु) वर्षों में (समनगाः) संग्रामों में जाने वाला, (जातवेदाः) धनाढ्य और विद्यावान् (वः) आप सब (मनुषः) मनुष्यों को (अशुचत्) शुद्ध पवित्र करता है वह (ईडेन्यः) स्तुति योग्य है और (यः) जो (भानुना) तेज से सूर्य के समान (सु-सन्दृशा) उत्तम सम्यक् दर्शन, यथार्थ ज्ञान प्रकाश से (वि भाति) स्वयं प्रकाशित होता है (गावः) किरणें जिस प्रकार (समिधानं) चमकते सूर्य का बोध कराती हैं

उसी प्रकार (गावः) वेद-वाणियां भी (समिधानं प्रति) अच्छी प्रकार सम्यक् ज्ञान से प्रकाशमान पुरुष को (बुधन्त) पदार्थ का प्रत्यक्ष बोध कराती हैं।

अग्ने॑ याहि दू॒त्यं१॒॑ मा रि॑षण्यो दे॒वाँ अच्छा॑ ब्रह्म॒कृता॑ ग॒णेन॑।
सर॑स्वतीं म॒रुतो॑ अ॒श्विना॒पो यक्षि॑ दे॒वान्र॑त्न॒धेया॑य॒ विश्वा॑न् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, प्रतापशालिन्! तू (दूत्यं याहि) अग्नि के समान शत्रु संतापन के सामर्थ्य को प्राप्त हो, तथा (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (मा रिषण्यः) दण्डित मत कर और शुभ गुणों का नाश मत कर। (ब्रह्म-कृता गणेन) धन, अन्न और ज्ञान को उत्पन्न करने वाले 'गण' अर्थात् नाना साधनों से (सरस्वतीम्) वेद वाणी को, (मरुतः) प्रजाओं के व्यापारी पुरुषों को और (अश्विना) प्रजा के उत्तम स्त्री पुरुषों, अश्वारोही, रथी, सारथी जनों और (अपः) आप्त पुरुषों के साथ (अच्छ यक्षि) भली प्रकार सत्संग कर। (रत्नधेयाय) रमणीय गुणों और पदार्थों को धारण करने के लिये (विश्वान् देवान्) समस्त प्रकार के विद्वान् पुरुषों का (यक्षि) सत्संग कर।

त्वाम॑ग्ने समिधा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न्यक्षि॑ रा॒ये पुर॑न्धिम्।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्निवत् तेजस्विन्! (वसिष्ठः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन उत्तम वसु ब्रह्मचारी (त्वा जरूथं) तुझ विद्या और वयस् में वृद्ध एवं उत्तम ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (हन्) प्राप्त हो। वह विद्वान् होकर (राये) धन प्राप्त करने के लिये (पुरन्धिम्) बहुत से धनों को धारने वाले आढ्य पुरुष को (यक्षि) प्राप्त करे। हे (जातवेदः) विद्वन्! हे धनवन्! तू (पुरु-नीथाः) बहुत वाणियों, मार्गों व उपायों से सम्पन्न होकर (जरस्व) अन्यों को विद्या का उपदेश कर और स्वयं बड़ा हो। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा शुभ साधनों से पालन करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (जारः) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (पृथु-पाजः अश्रेद्) महान् तेज धारण करता है, (शोशुचानः दविद्युतत्) खूब तेजस्वी होकर चमकता है उसी प्रकार (जारः) विद्या का उपदेष्टा, (उषः न) उषा वा प्रभात काल के समान (पृथु-पाजः) बड़े भारी बल और अन्न को (अश्रेत्) प्राप्त करे । वह (शोशुचानः) स्वयं तेजस्वी होकर अन्यों को भी शुद्ध करता हुआ (दविद्युतत्) स्वयं प्रकाशित हो, सबको प्रकाशित करे । वह (शुचिः) शुद्धचित्त, धर्मात्मा, (वृषा) बलवान्, सब पर सुखों की वर्षा करने हारा, उत्तम प्रबन्धक (हरिः) पुरुष (आ भाति) सब प्रकार से प्रकाशित हो । वह (धियः) कर्त्तव्यों, ज्ञानों और बुद्धियों को (हिन्वानः) उपदेश करता हुआ (उशतीः) विद्या धनादि की अभिलाषा करने वाली प्रजाओं को (अजीगः) प्रबुद्ध करे ।

स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२॥

भा०—(अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (वस्तोः स्वः न) दिन के समय किरणों के बीच सूर्य के समान (उषसाम्) कामना युक्त प्रजाओं और शत्रुओं को दग्ध करने वाली सेनाओं के बीच (अरोचि) शोभित होता है । (यज्ञं तन्वानाः उशिजः न) यज्ञ करने वाले धनादि के इच्छुक ऋत्विजों के समान विद्या धनादि की कामना करने वाले पुरुष भी (यज्ञं तन्वानाः) सत्संग करते हुए (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान प्राप्त करें । वह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवः) ज्ञानदाता, अज्ञात तत्वों का प्रका-

शित करने वाला, (विद्वान्) विद्वान् (देव-यात्रा) ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर वा अन्यों को शुभ गुण प्राप्त कराने वाला, (वनिष्ठः) ज्ञान ऐश्वर्यादि का उदारता से विभाग करता हुआ (जन्मानि) नाना उत्तम जन्मों, रूपों वा उत्तम जन्म ग्रहण करने हारे शिष्य जनों को (आ वि द्रवत्) विशेष रूप से प्राप्त करे।

अच्छा गिरो॑ म॒तयो॑ देव॒यन्ती॑र॒ग्निं य॑न्ति॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणाः।
सु॒स॒न्दृशं॑ सु॒प्रती॑कं॒ स्वञ्चं॑ हव्य॒वाह॑मर॒तिं मानु॑षाणाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (द्रविणं भिक्षमाणाः मानुषाणाम् अरतिं यन्ति) धन के याचक लोग मनुष्यों के स्वामी को प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार (गिरः) उत्तम वाणियां, (मतयः) उत्तम बुद्धियां (देवयन्तीः) प्रभु की कामना करती हुईं (भिक्षमाणाः) धन, यज्ञादि की प्रार्थना करती हुईं प्रभु को लक्ष्य कर जाती हैं उसी प्रकार (गिरः) उत्तम स्तुतिशील (मतयः) मननशील कन्याएं भी (देवयन्तीः) देव, दानशील, कामना योग्य पति की कामना करती हुईं (द्रविणं भिक्षमाणाः) धन, यश एवं पुत्रादि की कामना करती हुईं (सुसन्दृशं) उत्तम, समान रूप से सुन्दर दीखने वाले, (सुप्रतीकम्) सुमुख, (स्वञ्चम्) उत्तम रीति से पूजा योग्य (हव्य-वाहम्) ग्राह्य और देय ऐश्वर्य, अन्न वस्त्रादि प्राप्त कराने वाले (अरतिम्) स्वामी, एवं (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष एवं यज्ञाग्नि को भी (यन्ति) प्राप्त करती हैं। उसी प्रकार उत्तम वक्ता, मतिमान्, विद्वान् की कामना युक्त शिष्यादि वा प्रजाएं उत्तम ज्ञान, न्याय आदि के द्रष्टा, पूज्य अग्र-नेता, पुरुष को आचार्य व राजा रूप से प्राप्त होते हैं।

इन्द्रं॑ नो अग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ रु॒द्रं रु॒द्रेभि॒रा व॑हा बृ॒हन्त॑म्।
आ॒दि॒त्येभि॒रदि॑तिं वि॒श्वज॑न्यां बृह॒स्पति॒मृक्व॑भिर्वि॒श्ववा॑रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! आप (सजोषाः) प्रेम युक्त

होकर (वसुभिः) जल, पृथिवी आदि पदार्थों द्वारा हमें (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त, एवं भूमि पर्वतादि के विदारण में समर्थ विद्युत्, मेघ आदि को (आ वह) प्राप्त कराओ। (आदित्येभिः) सूर्य द्वारा उत्पन्न मास आदि कालावयवों से (विश्व-जन्यां) समस्त जन हितकारी (अदितिं) अखण्ड काल के ज्ञान और (ऋक्भिः) ऋचाओं से (विश्व-वारम्) सबके वरने योग्य (बृहस्पतिम्) बड़े ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को (नः आवह) हमें प्राप्त कराओ। उन २ द्वारा उन २ पदार्थों का ज्ञान और उपयोग करो। इसी प्रकार हे राजन्! (वसुभिः इन्द्रं) ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (रुद्रेभिः रुद्रं) रोगनाशक ओषधियों सहित 'रुद्र' अर्थात् वैद्य को, (आदित्येभिः अदितिं) आदान प्रतिदानकारी व्यवहारज्ञों से इस सर्व सेनोपयोगी भूमि को और (ऋक्भिः विश्ववारम्) अर्चना योग्य पुरुषों सहित सर्वदुःखवारक, बड़ों के भी पालक प्रभु वा राजा को हम प्राप्त करें।

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥५।१३॥

भा०—(उशिजः) रक्षा, द्रव्यादि की कामना वाले (विशः) प्रजागण (अध्वरेषु) हिंसारहित, प्रजापालनादि कार्यों में (अग्निं) यज्ञों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी, (मन्द्रम्) सब को हर्ष देने वाले, (होतारम्) सबको आदर से बुलाने और भृति, वेतनादि देने वाले, (अग्निम्) ज्ञानी, अग्रनायक पुरुष को (ईडते) चाहते हैं। (सः हि) वह निश्चय से (रयीणाम्) ऐश्वर्यों की रक्षा के लिये (अतन्द्रः) अप्रमादी, (दूतः) दुष्टों का संतापक और (देवान् यजथाय) विद्वानों का आदर सत्कार सत्संगादि करने के लिये सदा तत्पर एवं (क्षपावान्) रात्रियों के स्वामी चन्द्र के समान आह्लादकारक और शत्रुओं को नाश करने वाली सेनाओं का स्वामी (अभवत्) हो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[११]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः । २, ४ भुरिक्पंक्तिः । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

म॒हाँ अ॑स्यध्व॒रस्य॑ प्रके॒तो न ऋ॒ते त्वद॒मृता॑ मादयन्ते ।
आ विश्वे॑भिः स॒रथं॑ याहि दे॒वैर्न्य॑ग्ने॒ होता॑ प्रथ॒मः स॑दे॒ह ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरस्य) सब प्रकार के व्यवहार का (प्र-केतः) बतलाने वाला और (महान् असि) गुणों में महान् है। (त्वद् ऋते) तेरे विना (अमृताः) जीवित जीव (न मादयन्ते) प्रसन्न नहीं हो सकते, तेरे विना सुख का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। तू (विश्वेभिः देवैः) समस्त उत्तम मनुष्यों सहित (सरथं आयाहि) अपने रथों सुखों, सहित आ, (होता) तू सबके सुखों का दाता (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (इह सद) यहां विराज।

त्वामी॑ळते अजि॒रं दू॒त्या॑य ह॒विष्म॑न्तः सद॒मिन्मानु॑षासः ।
यस्य॑ दे॒वैरास॑दो ब॒र्हिर॒ग्नेऽहा॑न्यस्मै सु॒दिना॑ भवन्ति ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (हविष्मन्तः मानुषासः) अन्नादि साधनों वाले मनुष्य (सदम् इत्) स्थिरता से विराजने वाले (अजिरम्) शत्रुओं को ऊखाड़ फेंकने वाले (त्वाम्) तुझको (दूत्याय) उत्तम दूत कर्म और शत्रु संतापन के कार्य के लिए (ईडते) प्रार्थना करते हैं। (यस्य) जिसका (बर्हिः) बड़ा राष्ट्र (देवैः आ सदः) विद्वान् पुरुषों द्वारा शासित होता है, (अस्मै) उसके (अहानि) सब दिन (सुदिना भवन्ति) उत्तम होते हैं।

त्रिश्चि॑द॒क्तोः प्र चि॑कितु॒र्वसू॑नि॒ त्वे अ॒न्तर्दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
म॒नु॒ष्वद॑ग्न इ॒ह य॑क्षि दे॒वान्भवा॑ नो दू॒तो अ॑भिशस्ति॒पावा॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् प्रकाशक ! (त्वे अन्तः) तेरे शासन में (दाशुषे मर्त्याय) वृत्ति आदि देने वाले मनुष्य के (वसूनि) ऐश्वर्यों को विद्वान् लोग (अक्तोः) दिन वा रात्रि में भी (त्रिः) तीन बार

(प्रचिकितुः) अच्छी प्रकार चेत लेवें। तू (मनुष्वत्) मनुष्यों के समान विचारवान् होकर ही (देवान् यक्षि) शुभ गुणों और उत्तम पुरुषों से संगत हो। (नः) हमारा (दूतः) दूत, शत्रुसंतापक होकर (अभिशस्तिपावा) दुरपवाद वा शत्रु-प्रहार से बचाने वाला वा हम प्रशंसिकों का रक्षक (भव) हो।

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तो अ॑ध्व॒रस्या॒ग्निर्विश्व॑स्य ह॒विषः॑ कृ॒तस्य॑।
क्रतुं॒ ह्य॑स्य॒ वस॑वो जु॒षन्ताथा॑ दे॒वा द॑धिरे हव्य॒वाह॑म् ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार अग्नि (बृहतः अध्वरस्य ईशे) बड़ा यज्ञ कराने में समर्थ है उसी प्रकार अग्रणीनायक, तेजस्वी पुरुष (बृहतः अध्वरस्य) बड़े हिंसारहित यज्ञ का (ईशे) प्रभु है। (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ही (कृतस्य) स्वयं किये (विश्वस्य) सब प्रकार के (हविषः) अन्न वा धन का (ईशे) स्वामी है। (अस्य) इसके उपदेश किये (क्रतुम्) काम और ज्ञान को (हि) निश्चय से (वसवः) ब्रह्मचारी लोग (जुषन्त) सेवन करें (अथ) और (देवाः) विद्वान् लोग (हव्यवाहम्) ग्रहण योग्य ज्ञानों को धारण करने वाले इसको (दधिरे) धारण करें।

आग्ने॑ वह ह॒विरद्या॑य दे॒वानिन्द्र॑ज्येष्ठास इ॒ह मा॑दयन्ताम्।
इ॒मं य॒ज्ञं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥५॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (अद्याय) खाने के लिये (हविः आ वह) उत्तम अन्न प्राप्त करा। अथवा (हविः-अद्याय) उत्तम अन्नादि भोजन कराने के लिये (देवान् आ वह) उत्तम विद्वान् पुरुषों को प्राप्त कर। (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्र-ज्येष्ठासः) राजा को मुख्य मानने वाले प्रजाजन (मादयन्ताम्) प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करें। हे विद्वन्! राजन्! (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर (धेहि) स्थापित कर। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) तुम सब लोग (नः) हमें (सदा)

सर्वदा (स्वस्तिभिः पात) सुख-कल्याणकर साधनों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ पंक्तिः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

भा०—(स्वे दुरोणे) अपने गृह, अग्नि कुण्ड में (समिद्धः) प्रदीप्त अग्नि के समान (यः) जो पुरुष वा प्रभु (स्वे दुरोणे) अपने गृह वा परम पद में (सम्-इद्धः सम् दीदाय) सर्वत्र समान रूप से प्रकाशित हो रहा है उस (यविष्ठं) अति बलवान्, वा परमाणु २ को विद्युत् के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ, (महा) बड़े (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथिवी के बीच (चित्र-भानुम्) अद्भुत कान्तिमान्, सूर्यवत् स्वयं प्रकाशित, अन्यों को भी प्रकाशित करने वाले, (विश्वतः प्रत्यञ्चम्) सर्वत्र, प्रत्येक पदार्थ में व्यापक (सु-आहुतम्) उत्तम रीति से स्वीकृत एवं आदरपूर्वक वर्णन करने योग्य प्रभु को (अगन्म) हम प्राप्त हों।

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

भा०—(दमे) गृह में (अग्निः) प्रज्वलित अग्नि के समान (दमे) समान संसार को दमन करने में सर्वत्र प्रकाशक (जात-वेदाः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (स्तवे) स्तुति करने पर (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (सः) वह (विश्वा दुरितानि) सब प्रकारों के दुष्टाचारों और दुःखों को (साह्वान्) पराजित करने हारा है। (सः) वह (नः) हम (गृणतः) स्तुति करने वालों को (अवद्यात् दुरितात्) निन्दनीय पापाचार से (रक्षिषत्) बचावे और (उत्) वह (नः मघोनः) धन सम्पन्न हुए हमें भी निन्द्य पापाचार से बचावे।

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३।१५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वप्रकाश प्रभो ! (त्वं वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबसे चाहने, वरने, दुःखों के वारण करने, सबको जीवन धनादि का न्यायपूर्वक विभाग करने से तू 'वरुण' है। (उत मित्रः) और तू ही सबको स्नेह करने और मृत्यु से बचाने वाला होने से 'मित्र' है। (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, विद्याओं में निवास करने, रमने वाले विद्वान् (मतिभिः) मननशील बुद्धियों और वाणियों से (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते, स्तुति कर तेरा गुण फैलाते हैं। (त्वे) तेरे में ही समस्त (वसु) ऐश्वर्य (सु-सननानि) उत्तमरीति से देने योग्य (सन्तु) हों। हे विद्वानो! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः पात) सुख कल्याणजनक उपायों से रक्षा करो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक्पंक्तिः॥
तृचं सूक्तम् ॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विश्व-शुचे) जगत् को प्रकाशित और पवित्र करने वाले और (विश्वे-शुचे) सबके प्रति शुद्ध अन्तःकरण, (धियन्धे) उत्तम बुद्धि, ज्ञान और कर्म को धारण करने, कराने वाले, (असुरघ्ने) दुष्टों का नाश, तिरस्कार करने वाले (मतीनां यतये) ज्ञान बुद्धियों के देने एवं मननशील पुरुषों के बीच संयम से ईश्वर प्राप्ति और जगत् सुधार का यत्न करने वाले, (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों के हितकारी, सर्वनायक (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (बर्हिषि अग्नये) यज्ञ में अग्नि के लिये (हविः न) हवि के समान (मन्म धीतिम् भरे) मननयोग्य उत्तम संकल्प और स्तुति करता हूँ।

त्वम॑ग्ने शो॒चिषा॒ शोशु॑चान॒ आ रोद॑सी अपृणा॒ जाय॑मानः ।
त्वं दे॒वाँ अ॒भिश॑स्तेरमुञ्चो॒ वैश्वा॑नर जातवेदो महि॒त्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि या सूर्य (जायमानः) प्रकट होता हुआ (शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणात्) स्वयं प्रदीप्त होकर आकाश, पृथिवी दोनों को तेज से पूर्ण कर देता है, उसी प्रकार तू भी (जायमानः) प्रकट होकर (शोशुचानः) शुद्ध पवित्र होकर (शोचिषा) अपने तेज से (रोदसी) स्त्री पुरुषों को (अपृणाः) पूर्ण कर। हे (जातवेदः) विद्यावन् ! (त्वं) तू (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (अभि-शस्तेः) अभिमुख प्रशंसा करने वाले दम्भी और सन्मुख शस्त्रादि के प्रयोक्ता घातक, मिथ्याभियोगी पुरुष से (अमुञ्चः) छुड़ा ।

जा॒तो यद॑ग्ने॒ भुव॑ना॒ व्यख्यः॑ प॒शून्न गो॒पा इर्यः॒ परि॑ज्मा ।
वैश्वा॑नर॒ ब्रह्म॑णे विन्द गा॒तुं यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३॥१६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! अग्निवत् तेजस्विन् ! संन्यासिन् ! जिस प्रकार अग्नि (जातः भुवना वि-अख्यः) उत्पन्न होकर नाना पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तू भी (जातः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होकर (भुवना) नाना ज्ञानों को (वि-अख्यः) विशेष रूप से उपदेश कर। तू (परिज्मा) सब ओर भ्रमण करने वाला होकर (गोपाः पशून् न) गौओं का पालक जिस प्रकार पशुओं को दण्ड के बल से रास्ते चलाता है उसी प्रकार अज्ञानी जनों का (गोपाः) रक्षक होकर (इर्यः) सन्मार्ग में चलाने वाला है। (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के हितैषिन् ! सत्य ज्ञान के प्रकाशक ! तू (ब्रह्मणे) प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (गातुम्) सन्मार्ग (विन्द) प्राप्त कर, उसी का उपदेश कर। हे विद्वान् लोगो ! (यूयं) आप लोग भी (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (नः पात) हमारी रक्षा करो। राज्य में राजा और विश्व में परमेश्वर त्याग वृत्ति से सबके

रक्षक और सत्पथ में चलाने से सबके द्रष्टा, पालक हैं। राजा (ब्रह्मणे) धनैश्वर्य की प्राप्ति के मार्ग को सदा जाने वा जनावे। राजा के चमकते पीले केसरिये वस्त्र और संन्यासी के गेरुए वस्त्र अग्नि के अनुकरण में होते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[१४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नये देवहूतिभिः समिधा हविर्भिः सह वयं नमस्विनः सन्तः दाशेम) अग्नि में परमेश्वर की स्तुतियों, काष्ठों और चरुओं सहित अन्नयुक्त वा नमस्कार श्रद्धा विनयादि से युक्त होकर चरु आदि त्यागते हैं उसी प्रकार (वयम्) हम लोग (जातवेदसे) ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी और उत्पन्न विद्या-व्रतस्नातकों, वा निष्ठ पुरुषों में विद्यमान, (देवाय) पूज्य, ज्ञानप्रद, जीवनप्रद (शुक्रशोचिषे) शुद्ध, तेज एवं वीर्य के तेजों से युक्त, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के सत्कार के लिये (नमस्विनः) उत्तम अन्न और विनय आदि से युक्त होकर (देव-हूतिभिः) विद्वान् और इष्ट देव के प्रति कहने योग्य वाणियों और (हविर्भिः) उत्तम अन्नों से (वयं दाशेम) सेवा शुश्रूषा करें।

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! जिस प्रकार हम (समिधा सुस्तुती घृतेन हविषा दाशेम) अग्नि की परिचर्या काष्ठ, मन्त्रस्तुति, घी, हवि, पुरोडाश आदि द्वारा करते हैं उसी प्रकार (वयम्) हम हे विद्वन्! (ते) तेरी सेवा (समिधा) अच्छी प्रकार गुणों के प्रकाशन, प्रोत्साहन से

(विधेम) करें, हे (यजत्र) ज्ञान के देने हारे! हे सत्संगयोग्य! हम (ते सुस्तुती दाशेम) तेरी उत्तम स्तुति द्वारा सत्कार करें। हे (अध्वरस्य होतः) यज्ञ के होता के समान अहिंसामय व्यवहार का उपदेश देने, अहिंसा व्रत पालने हारे! (देव) विद्वन्! तेजस्विन्! हे (भद्र-शोचे) कल्याण, सुखमय मार्ग के प्रकाशक! (वयम्) हम (घृतेन हविषा विधेम) घी, हविष्य, सात्विक अन्न से तेरा सत्कार करें।

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥३।१७

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! ज्ञानप्रकाशक! तू (नः) हमारे (वषट्-कृतिं = अवसत्कृतिं जुषाणः) सत्कार को प्रेम से स्वीकार करता हुआ (देवेभिः) उत्तम गुणों और विद्वानों सहित, किरणों सहित सूर्य के समान (नः) हमारे (देव-हूतिम्) विद्वानों की आमन्त्रित सभा को (आ उप याहि) प्राप्त हो। (देवाय तुभ्यम्) तुझ विद्वान् के उपकारार्थ हम (दाशतः) सदा आदर सहित देने और सेवा करने वाले (स्याम) हों। हे विद्वान् त्यागी पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप सब हमारी उत्तम साधनों से रक्षा कीजिये। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ७, १०, १२, १४ विराड्-गायत्री। २, ४, ५, ६, ९, १३ गायत्री। ८ निचृद्गायत्री। ११, १५ आर्च्युष्णिक्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

उ॒प॒सद्या॑य मी॒ळ्हुष॑ आ॒स्ये॑ जुहुता ह॒विः।
यो नो॒ नेदि॑ष्ठमाप्य॑म् ॥ १॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारे (नेदिष्ठम्) अति समीप (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य, बन्धुत्व, सौहार्द आदि प्राप्त करता उस (उप-सद्याय) उपासना करने योग्य (मीढुषे) सुख और शान्ति के वर्षक विद्वान् पुरुष

के (आस्ये) मुख में (हविः) अन्न का (जुहुत) त्याग करो। उसका अन्नादि से सत्कार करो।

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे।
कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (युवा) युवा, बलवान् (गृहपतिः) गृह का पालक, गृहस्थ और गृह के समान राष्ट्र का पालक राजा (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान् (दमे-दमे) गृह २ में एवं इन्द्रियों और मन के विषयों से तथा राष्ट्र में दुष्टों के दमन कार्य में (पञ्चचर्षणीः) पांचों प्रकार के प्रजाओं तथा (पञ्च चर्षणीः) पांचों विषयों के द्रष्टा पांचों इन्द्रियों पर (अभि नि-ससाद) अध्यक्षरूप से विराजता है, वह उपास्य एवं सत्संग योग्य है।

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः।
उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

भा०—(सः वेदः अग्निः) वह अग्रणी, विद्वान् पुरुष या राजा (नः) हमारी और (अमात्यं) हमारे साथी, मित्र वा पुत्र की (विश्वतः) सब प्रकार से (रक्षतु) रक्षा करे (उत) और (अस्मान्) हमें (अंहसः) पापाचरण से (पातु) रक्षा करे।

नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम्।
वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ४ ॥

भा०—जो (नः) हमें (कुवित्) बहुत अधिक (वस्वः) धन की मात्रा (वनाति) प्रदान करता है उस (दिवः) शुभ कामना और विजय के लिये (श्येनाय) बाज के समान वेग और उत्तम गति से जाने वाले (अग्नये) तेजस्वी पुरुष के लिये (नवं स्तोमं) उत्तम स्तुतिवचन (जीजनम्) कहूँ।

स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा।
अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यज्ञस्य अग्रे शोचतः अग्नेः यथा श्रियः दृशे स्पार्हाः) यज्ञ के अग्र भाग में जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि की कान्तियां देखने में

हृदयहारिणी होती हैं उसी प्रकार (यज्ञस्य) ज्ञान, धन आदि के दान-प्रतिदान और सत्संगादि योग्य व्यवहार के (अग्रे) प्रथम रूप में (शोचतः) तेजस्वी, व्यवहार को स्वच्छ, निश्चल बनाये रखने वाले (वीरवतः) वीरों, विद्वानों के स्वामी (यस्य) जिसकी (स्पार्हाः श्रियः) स्पृहा करने योग्य उत्तम सम्पदायें (दृशे) देखने योग्य हैं उसी प्रकार उसका (रयिः) ऐश्वर्य और बल भी देखने योग्य हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः ।
यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (यजिष्ठः) अतिपूज्य एवं दानशील (हव्यवाहनः) ग्राह्य, स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (सः) वह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (इमाम्) इस (नः) हमारे किये (वषट्-कृतिम्) सत्कार को (वेतु) प्राप्त करे और इसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (नः) हमारी वाणियों और सत्कार को (जुषत) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो।

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि ।
सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्पते) प्रजाओं के पालक ! हे (देव) दानशील ! तेजस्विन् ! हे (आ-हुत) आदरपूर्वक निमन्त्रित ! हे (अग्ने) अग्रणी, मुख्य पद के योग्य ! हे (नक्ष्य) प्राप्त होने योग्य ! विद्वन् ! हम (त्वा) तुझको (द्युमन्तं) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, उत्तम कामनावान्, (सुवीरम्) वीर्यवान् जानकर (धीमहि) तुझे धारण करते और ध्यान करते हैं।

क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् ।
सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (अपः उस्रः च) दिन और रात्रि को भी (दीदिहि) स्वयं प्रकाशित हो और उनको भी सूर्य, दीपकवत् प्रकाशित

कर। (त्वया) तेरे से ही (वयम्) हम लोग (सु-अग्नयः) उत्तम अग्नि-युक्त, उत्तम नेता वाले हों और (त्वम्) तू (सु-वीरः) उत्तम वीर पुरुषों का स्वामी तथा (अस्मयुः) हम लोगों को प्रिय हो।

उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः।
उपाक्षरा सहस्रिणी ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (विप्रासः नरः) विद्वान्, बुद्धिमान् मनुष्य (धीतिभिः) अंगुलियों से जैसे (अक्षरा उप यन्ति) अक्षरों को लिखते हैं और (धीतिभिः) अध्ययनादि क्रियाओं द्वारा (अक्षरा) अविनाशिनी (सहस्रिणी) सहस्रों वेद मन्त्रों से युक्त वेदवाणी को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे (धीतिभिः) उत्तम कामों और धारण, पालन की शक्तियों से वा विनय से बद्ध अंगुलियों से (सातये) सम्यक् भजन और अभीष्ट लाभ के लिये (त्वा उप यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः।
शुचिः पावक ईड्यः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी (शुक्र-शोचिः) शुद्ध तेज वाला, (शुचिः) धर्मात्मा, (पावकः) स्वयं पवित्र, अन्यों को पवित्र करने वाला (ईड्यः) स्तुति और आदर करने योग्य है। वह (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न, उनसे अधिक होकर (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (सेधति) वश करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो।
भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (सः) वह तू (ईशानः) सबका स्वामी है। तू (नः) हमें (राधांसि) नाना प्रकार के धनैश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमें (वार्यम् दातु) उत्तम धन प्रदान करे। अथवा (दातु वार्यं आ भर) देने योग्य धन प्राप्त करावे।

त्वम॑ग्ने वी॒रव॒द्यशो॑ दे॒वश्च॑ सवि॒ता भग॑: ।

दिति॑श्च दाति॒ वार्य॑म् ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू और (देवः सविता च) प्रकाशमान सूर्यवत् उत्तम दानशील, सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान्, (दितिः च) दुखों, कष्टों को नाश करने वाली नीति और हल आदि से कर्षित भूमि ये सब (वार्यम् दाति) उत्तम धन प्रदान करे ।

अग्ने॒ रक्षा॑ णो॒ अंह॑सः॒ प्रति॑ ष्म देव॒ रीष॑तः ।

तपि॑ष्ठैर॒जरो॑ दह ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (अंहसः रक्ष) पाप और पापी पुरुष से बचा । हे (देव) तेजस्विन् ! अभयदातः ! तू (रीषतः) हिंसकों को स्वयं (अजरः) उखाड़ने में समर्थ, एवं जरारहित, बलवान् होकर (तपिष्ठैः) अति सन्तापदायक उपायों से (प्रति दह स्म) एक २ करके दग्ध कर, समूल नाश कर ।

अधा॑ म॒ही न॒ आय॒स्यना॑धृष्टो॒ नृपी॑तये ।

पूर्भ॑वा श॒तभु॑जिः ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और हे राजन् और राज्ञि ! जिस प्रकार (नृ-पीतये) मनुष्यों के पालन करने के लिये तू (अनाधृष्टः) शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होता उसी प्रकार हे रानी ! तू भी (अनाधृष्टा ठ नृ-पीतये) मनुष्यों में नारियों की रक्षा करने के लिये कभी पराजित न हो और (आयसी पूः) लोह की बनी प्रकोट के समान (शत-भुजिः) सैकड़ों की पालक, पालिका, (भव) हो ।

त्वं नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ दोषा॑वस्तरघाय॒तः ।

दिवा॒ नक्त॑मदाभ्य ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (दोषावस्तः) रात्रि और दिन (नः) हमें (अंहसः पाहि) पाप से बचा । हे अहिंसनीय ! तू (नः) हमें (अघायतः)

हम पर पापाचार करना चाहने वाले पुरुष से (दिवा नक्तम्) दिन और रात (पाहि) बचा। इति विंशो वर्गः ॥

[१६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । ११ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिग्बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४, ९, १० बृहती । ६, ८, १२ निचृत्पंक्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।

प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों के (ऊर्जः नपातम्) बल से उत्पन्न, एवं अन्न, बल, वीर्य, पराक्रम का नाश न होने देने वाले, ब्रह्मचारी (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (प्रियम्) प्रिय, (चेतिष्ठम्) ज्ञान के उपदेष्टा, (अरतिम्) सुखदायक, विषयों में सशक्त (स्वध्वरम्) उत्तम हिंसा रहित कर्त्तव्यों के पालक, (विश्वस्य) सबके (दूतम्) शुभ सन्देश-हर (अमृतम्) अविनाशी दीर्घजीवी पुरुष को (एना मनसा) इस प्रकार के अन्न आदि सत्कार, विनय, आदर, शक्ति, अधिकार से (आ हुवे) आमन्त्रित करता हूँ।

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।

सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (अरुषा) तेज से युक्त अश्वों के समान (विश्व-भोजसा) समस्त विश्व के पालक, जल और अग्नि तत्व को (योजते) रथ में संयुक्त करता है (सः स्वाहुतः) वह उत्तम रीति से आदृत (दुद्रवत्) अति वेग से जाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार वह (सु-ब्रह्मा) उत्तम वेदों का विद्वान् और उत्तम धन सम्पन्न राजा, (यज्ञः) पूजनीय, (सु-शमी) सुकर्मा और उत्तम शम का साधक (वसूनां जनानां) बसी प्रजाओं में से (देवं) सुख देने वाले (राधः) ऐश्वर्य को भी (दुद्रवत्)

प्राप्त होता है। (२) इसी प्रकार जो 'विश्व', जीवात्मा के पालक, नियुक्त प्राण अपान दोनों को (योजते) योग द्वारा वश करता है वह (सु-आहुतः) उत्तम ज्ञानी, यष्टा, सुकर्मा होकर वसु, जीवों के आराध्य परम देव को प्राप्त होता है।

उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (आजुह्वानस्य मीढुषः) आहुति दिये गये, घी से सींचे गये (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) ज्वाला (उत् अस्थात्) ऊपर को उठती है और (अरुषासः धूमासः दिवि स्पृशः उत् अस्थुः) चमकते आकाश को छूने वाले धूम गण ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) अग्नि को (नरः समिन्धते) उत्तम पुरुष प्रज्वलित करते हैं उसी प्रकार (आजुह्वानस्य) किरणों से जल को ग्रहण करने वाले (मीढुषः) वृष्टि करने वाले (अस्य) इस सूर्य का (शोचिः) प्रकाश (उत् अस्थात्) सबसे ऊपर विद्यमान रहता है और उसके (दिविस्पृशः) आकाश भर में व्यापक (अरुषासः) देदीप्यमान (धूमासः) धूम के समान ज्वाला पटल (उत्) ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) तेजस्वी, अग्निमय सूर्य के (नरः) प्रकाश लाने वाले किरण (सम् इन्धते) प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार (२) (आजुह्वानस्य) सबको वेतन देने और सबसे कर लाने वाले (मीढुषः) वीर्यवान्, दानशील पुरुष का (शोचिः उत् अस्थात्) पवित्र तेज सर्वोपरि विराजता है। उसके (अरुषासः) दोषरहित, तेजस्वी, (दिवि-स्पृशः) व्यवहार, तेज, युद्ध विद्या आदि में चतुर (धूमासः) शत्रु को कंपा देने वाले वीर पुरुष (उत्) सर्वोपरि विराजते हैं और ऐसे ही (नरः) नायकगण (अग्निम्) अग्रणी नायक को (सम् इन्धते) प्रदीप्त करते हैं।

तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्त्वेमहे ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि या विद्युत्, सर्व व्यापक होने से 'यशस्तम' है, अति संताप जनक होने से 'दूत' है, बल-उत्पादक होने और बलपूर्वक रगड़ से उत्पन्न होने से 'सहसः-सूनु' है। वह मनुष्यों का (मर्त्त-भोजना) भोजन पकाता, नाना भोग्य पदार्थ प्रस्तुत करता है वह (वीतये) प्रकाश के लिये (देवान् आ वहति) किरणों को धारण करता है, उसी प्रकार हे राजन्! (तं) उस (त्वा) तुझ (यशस्तमं) वीर्यवान्, कीर्त्तिमान् पुरुष को ही हम (दूतं) दुष्टों को दण्ड द्वारा पीड़ित करने और सबको शुभ सन्देश, आदेशादि देने वाला प्रमुख रूप मे (कृण्महे) बनाते हैं, तू (वीतये) राष्ट्र रक्षा के लिये (देवान्) उत्तम व्यवहारज्ञ, विजयेच्छुक, तेजस्वी, दानशील पुरुषों को (आवह) धारण कर। हे (सहसः सूनो) बल, बिजली, सैन्य के सञ्चालक तू ही (विश्वा) समस्त (मर्त्तभोजना) मनुष्यों के भोग योग्य वृत्ति ऐश्वर्यादि पदार्थ (रास्व) प्रदान कर (यत्) जो २ हम (त्वा ईमहे) तुझसे मांगे। अर्थात् राजा प्रजा की सभी उपयुक्त मांगों को स्वीकार करे।

त्वम॑ग्ने गृ॒हप॑तिस्त्वं होता॑ नो अध्व॒रे।
त्वं पोता॑ विश्ववार॒ प्रचे॑ता॒ यक्षि॒ वेषि॑ च॒ वार्य॑म् ॥ ५ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार गार्हपत्य रूप से गृहपति, एवं रोग नाशक होने से गृह पालक, यज्ञ में हवि ग्रहण करने से 'होता', वायु जलादि को पवित्र करने से 'पोता', है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! राजन्! (त्वम्) तू (गृहपतिः) गृहपति, गृहस्थ और तू राष्ट्र को गृहवत् पालन करने वाला (अध्वरे) अहिंसक, प्रजापालक पद पर स्थित होकर (होता) सबको सुख, अन्न, वेतनादि देने और करादि लेने वाला है। (त्वं पोता) न्याय और उत्तम व्यवस्था से राज्य शासन और धर्म-व्यवहार को शोधने वाला है। हे (विश्ववार) समस्त संकटों को वारण करने हारे! तू (प्रचेताः) सबसे उन्नतचित्त और ज्ञान वाला होकर (वार्यम्) श्रेष्ठ धन का (यक्षि) प्रदान करता और प्राप्त करता है।

अथवा (वार्यम्) शत्रु आदि का कष्ट निवारण करने वाले सैन्यादि को (यक्षि) संगत कराता और (वेषि च) पालता भी है।

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि।
आ नं ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥२१॥

भा०—हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और शुभ बुद्धि वाले पुरुष! (हि) जिससे (त्वं रत्नधा असि) तू रमण योग्य, उत्तम धन्धों को धारण करता है, इससे तू (यजमानाय) परोपकारार्थ दान, यज्ञादि करने वाले पुरुष के लिये (रत्नं कृधि) उत्तम धन उत्पन्न कर और (नः) हमारे (विश्वम् ऋत्विजं) समस्त ऋतु अनुकूल यज्ञ और संगति करने वाले को (ऋते) यज्ञ, धर्म व्यवहार और धनोपार्जन के कार्य में (आ शिशीहि) सब प्रकार से तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित कर और उसको भी उत्साहित कर (यः) जो (सुशंसः) उत्तम प्रशंसा योग्य होकर (दक्षते) बढ़ता, कुशल होकर कार्य करता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (स्वाहुत) उत्तम रीति से आमन्त्रित (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (ये) जो (मघवानः) अधिक धनैश्वर्यवान्, (यन्ता) नियम व्यवस्था करने में कुशल पुरुष (जनानाम् गोपाम्) मनुष्यों, पशुओं, भूमियों और इन्द्रियों के (ऊर्वान्) पालकों की (दयन्त) रक्षा करते हैं ऐसे (सूरयः त्वे प्रियासः सन्तु) विद्वान् जन तेरे प्रिय हों।

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥

भा०—(येषां) जिन पुरुषों के (दुरोणे) घर में (इला) पूज्य देवी, आदर और शुभ कामना का पात्र होकर (घृतहस्ता) पूज्यों का सत्कार करने के निमित्त जलपात्र हाथ में लिये (प्राता) पूर्ण प्राप्त होकर (अपि

आ निषीदति) विराजती है, हे (सहस्य) बलवन्! तू (तान्) उनकी (द्रुहः) द्रोही और (निदः) निन्दकों से (त्रायस्व) रक्षा कर और तू (दीर्घश्रुत्) दीर्घ काल तक ज्ञान श्रवण करने हारा होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) सुख प्रदान करे।

स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! (सः) वह तू (वह्निः) राज्य कार्य-भार को उठाने वाला, (मन्द्रया जिह्वया) हर्ष देने वाली वाणी और (आसा) हर्षप्रद मुख से (विदुः-तरः) उत्तम विद्वान् होकर (नः मघवद्भ्यः) हमारे धनाढ्य पुरुषों को (रयिम् आ वह) ऐश्वर्य और बल प्राप्त करा और (हव्य-दातिं च) अन्न के विनाश या त्रुटि को (सूदय) दूर कर, अर्थात् हमारे यहां प्राह्य अन्न धनादि का टोटा कभी न हो।

ये राधाँसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥ १० ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अतियुवा, बलशालिन्! (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) अन्न, यश और ज्ञान की (कामेन) अभिलाषा से (राधांसि) नाना धन, (अश्व्या) अश्वों के नाना सैन्य और (मघा) नाना प्रकार के पूजा सत्कार (ददति) प्रदान करते हैं तू (तान्) उनको (पर्तृभिः) पालक और पूरक जनों से और (शतं पूर्भिः) सैकड़ों नगरियों या प्रकोटों आदि उपायों से (पिपृहि) पालन और पूर्ण कर।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ ११ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (देवः) सब सुखों का दाता ही (वः) आप लोगों को (द्रविणोदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्य देता है। वह (पूर्णाम्) पूर्ण (आसिचम्) आहुति (विवष्टि) चाहता है। आप लोग (उप सिञ्चध्वम्)

उसको बढ़ाओ (वा) और (उप पृणध्वम्) प्रसन्न और संतुष्ट करो। (आत् इत्) अनन्तर वही (देवः) दाता प्रभु (वः) आप लोगों के (ओहते) कर्मों की विवेचना करता और नाना कर्म-फल प्रदान करता है।

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥ २२ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (होतारं) विद्या ग्रहण करने और शिष्यों के प्रदान करने वाले (अध्वरस्य) अहिंसामय यज्ञ के (प्र-चेतसम्) उत्तम ज्ञाता पुरुष को (वह्निम् अकृण्वत) अग्नि के समान कार्य का बोझ उठाने वाला, आश्रय बनावें। वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (विधते) विशेष कर्म करने वाले को (रत्नं) उत्तम सुखकारी फल (दधाति) प्रदान करता और (दाशुषे) दानशील पुरुष को (सु-वीर्यम् दधाति) उत्तम वीर्य, बल देता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ आर्च्युष्णिक्। २ साम्नी त्रिष्टुप्। ५ साम्नी पंक्तिः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! आप (सु-समिधा) उत्तम काष्ठ से जैसे अग्नि चमकता है उसी प्रकार उत्तम तेज और सत्कर्म, विद्या प्रकाश से (समिद्धः भव) चमक। (उत) और (उर्विया बर्हिः) जिस प्रकार यज्ञ में बहुत कुशा बिछती हैं वा जैसे सूर्य वा यज्ञाग्नि प्रचुर जल पृथ्वी पर बरसाता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (उर्विया) बहुत (बर्हिः) वृद्धिशील ज्ञान और प्रजाजन को (वि स्तृणीताम्) विस्तृत करे।

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन्! तेजस्विन्! राजन्! (उत) और (द्वारः) वेग से जाने वाली, शत्रु का वारण करने वाली सेनाएं (उशतीः) तुझे निरन्तर

चाहती हुईं देवियों के समान (वि श्रयन्ताम्) विशेष रूप से स्वामी का आश्रय लें। (उत) और (उशतः देवान्) तुझे चाहते विद्वान् पुरुषों को तू (इह) इस स्थान में (आ वह) प्राप्त करा।

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (हविषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थ से (वीहि) विद्वानों की रक्षा कर और (देवान् यक्षि) विद्वानों का आदर कर। हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान वाले ! तू (सु-अध्वरा कृणुहि) उत्तम हिंसारहित, एवं नष्ट न होने वाले श्रेष्ठ कर्म कर।

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥

भा०—(जातवेदाः) ऐश्वर्य और ज्ञान वाला पुरुष (सु-अध्वरा करति) उत्तम २ यज्ञ करे। वह (देवान् यक्षत्) विद्वानों का सत्संग और सत्कार करे वह (अमृतान् पिप्रयत्) मरण रहित, जीवित पुरुषों को अन्न से पालन करे।

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥५॥

भा०—हे (प्रचेतः) उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त वाले पुरुष ! तू (विश्वा वार्याणि) सब प्रकार के वरण करने योग्य धन, ज्ञान आदि पदार्थ (नः वंस्व) हमें प्रदान कर और (अद्य) आज, (नः आशिषः) हमारी सब अभिलाषाएं (सत्याः भवन्तु) सत्य, उत्तम फलदायक हों।

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (ऊर्जः नपातम्) बल का नाश न होने देने वाले (हव्यवाहं) उत्तम वचनों, गुणों, पदार्थों के धारक (त्वाम् उ) तुझको (दधिरे) पुष्ट करें।

ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना।
वि दध इयानः ॥ ७ ॥ २३ ॥ १ ॥

भा०—जो तू (नः इयानः) हमें प्राप्त होकर (महः रत्ना) उत्तम २ पदार्थ (विदधे) बनाता और उत्तम २ कर्मों का विधान, अनुशासन करता

है (ते देवाय) तुझ विद्वान् के लिये हम सदा (दाशतः स्याम) सब कुछ देने वाले हों। इति त्रयोविंशो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[१८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—२१ इन्द्रः। २२—२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः—१, १७, २१ पंक्तिः। २, ४, १२, २२ भुरिक् पंक्तिः। ८, १३, १४ स्वराट् पंक्तिः। ३, ७ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ९, ११, १६, १९, २० निचृत्त्रिष्टुप्। ६, १०, १५, १८, २३, २४, २५ त्रिष्टुप्॥
पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (नः पितरः चित्) हमारे पिता माता, मान्य बन्धु (चित्) और (जरितारः) ज्ञानोपदेष्टा गुरुजन (त्वेह) तुझ पर आश्रय पाकर (विश्वा वामा) सब उत्तम २ फलों की (असन्वन्) याचना करते और पाते हैं, तू ही (वनिष्ठः) सबसे श्रेष्ठ देने हारा है। (त्वे गावः) तेरे ही अधीन गौएं (सु-दुघाः) उत्तम दूध देने हारी, (त्वे हि अश्वाः) तेरे ही अधीन अश्व हैं। (त्वं वसु देवयते) विद्वानों और शुभ गुणों के इच्छुक को तू ही ऐश्वर्य देता है।

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन्।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् २

भा०—हे विद्वन्! (जनिभिः) उत्पन्न प्रजाओं सहित तू (राजा इव) राजा के समान (क्षेषि) निवास कर और तू (विदुः) विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी, उत्तम काव्यनिर्माण में चतुर, एवं उपदेष्टा होकर (अभि अव क्षेषि) अनुशासन कर और हे (मघवन्) उत्तम विद्याधन के धनी! तू (कविः सन्) विद्वान् कवि होकर (पिशा) उत्तम रूप से (गिरः शिशीहि) वाणियों को प्रकट कर और (त्वायतः अस्मान्) तेरी सदा शुभ कामना

करते हुए हमें तू (गोभिः) गौओं, भूमियों और (अश्वैः) अश्वों से (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने, बसाने और उसकी रक्षा करने के लिये (शिशीहि) सम्पन्न, उत्साहित और तीक्ष्ण कर।

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमाः गिरः) ये वाणियां (देवयन्तीः) विद्वानों को चाहती हुईं (मन्द्राः) हर्ष देने वाली (पस्पृधानासः) एक दूसरे से बढ़कर (त्वा उ) तुझको ही (उप स्थुः) प्राप्त हों। (ते) तेरी (अर्वाची) नवीन (पथ्या) सन्मार्ग पर चलने वाली नीति (राये एतु) हमारे ऐश्वर्य वृद्धि के लिये प्राप्त हो। हम लोग (ते सुमतौ) तेरी उत्तम सम्मति और तेरी (शर्मन्) शरण में (स्याम) रहें।

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुयवसे धेनुं न दुदुक्षन्) उत्तम अन्न, चारे आदि के ऊपर गौ का पालक गौ को खूब दुहने की इच्छा करता है इसी प्रकार हे राजन्! (वसिष्ठः) राज्य में बसने वाला उत्तम प्रजाजन (सूयवसे) उत्तम अन्न सम्पदा के निमित्त (त्वा) तुझको गौ के समान (दुदुक्षन्) दोहने, तुझसे बहुत ऐश्वर्य लेने वा तुझे समृद्ध करना चाहता हुआ (ब्रह्माणि) नाना ज्ञान, बल, धन, और अन्न (उप ससृजे) उत्पन्न करता, प्राप्त करता है। अर्थात् स्वामी राजा से ऐश्वर्य प्राप्त करने और राजा को समृद्ध करने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्ग क्रम से नाना प्रकार के ज्ञानों, बलों, धनों, और अन्नों को उत्पन्न करें। हे स्वामिन्! (विश्वः) समस्त जन (त्वाम् इत्) तुझको ही (मे गोपतिम्) मेरा 'गोपति', भूमिपति (आह) कहे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमारे (सुमतिं) उत्तम सम्मति को (अच्छ गन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त करे।

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥५॥२४

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक राजा (सुदासे) उत्तम करप्रद प्रजाजन वा उत्तम देने लेने के व्यवहार के लिये (पप्रथाना अर्णांसि) दूर तक फैले जलों को सेतु, नौकादि द्वारा (गाधानि) परिमित एवं (सुपारा) सुख से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करे। वह (नव्यः) स्तुति योग्य राजा (सिन्धूनां) नदियों के समान प्रवाह से चलने वाली, एवं उत्तम प्रबन्ध से बंधी प्रजाओं में से (शर्धन्तं) बलात्कार करते हुए (शिम्युम्) कर्म करने वाले को (उचथस्य) आज्ञा वचन कहने वाले के आगे (शापं) शाप अर्थात् आक्रोश या दुर्वचन कहने योग्य, निन्दनीय करे और (अशस्तीः) निन्दित लोगों को (अकृणोत्) दण्ड दे। अर्थात् जो 'शिम्यु' कर्मकर है वह यदि 'उचथ' अर्थात् अपने ऊपर आज्ञा देने वाले के समक्ष (शर्धन्तं) बल दिखावे, आज्ञा का पालन न करके उल्लंघन करे तो वह 'शाप' अर्थात् कठोर वचनों का पात्र हो, वह डांटा जाय और दण्ड भी पावे, इसी प्रकार प्रजाओं में (अशस्तीः) निन्दित लोगों को भी राजा (अकृणोत्) दण्ड दे। कृञ् हिंसायाम् इत्यस्य रूपम् ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥ ६ ॥

भा०—(यक्षुः) दान देने और आदर सत्कार करने वाला (तुर्वशः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों का अभिलाषी, वा अन्य को शीघ्र वश करने में समर्थ पुरुष (पुरोडाः इत् आसीत्) द्रव्य के पहले या आगे कर देने वाला हो। जो चाहता है कि मैं आदर से दान करूं या कर्म-कर लोगों को अपने वश कर शीघ्र काम करा लूं उसे चाहिये वह पहले समस्त द्रव्य देना ठहरा दे, तब (राये मत्स्यासः) जिस प्रकार मत्स्य अन्नादि लेने के

लिये जल में वेग से दौड़ते हैं उसी प्रकार (राये) धनैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (मत्स्यासः) अति प्रसन्न चित्त होकर लोग (अतीव निशिताः) बहुत ही तेज हो जायेंगे और (भृगवः) वेद वाणी को धारण करने वाले विद्वान्, भूमिधारक, भूमिपति, क्षत्रिय और गवादिपालक वैश्य तथा (द्रुह्यवः च) परस्पर के द्रोही या विरोधी स्पर्धालु लोग भी (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य करने लगेंगे। (विषूचीः) आगे रक्खे धन के कारण विरुद्ध अर्थात् एक दूसरे के विपरीत जनों में से (सखा) मित्र भी (सखायम् अतरत्) अपने मित्र को पार कर जाता है, मित्र भी मित्र से बढ़ जाना चाहता है। इस प्रकार की स्पर्धा से राजा के काम बहुत शीघ्र हो जाते हैं।

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ७

भा०—(पक्थासः) परिपक्व ज्ञान और परिपक्व उमर वाले वृद्ध जन (भलानसः) उत्तम नासिका वाले सौम्य, सुमुख जन वा (भल अनसः) उत्तम रथों, शकटों पर स्थित (अलिनासः) सुन्दर नाक वाले या जो तप में बहुत निष्ठ या (अलिनासः-अलीनाः) लीन अर्थात् कार्य व्यग्र, या आसक्त न हों, (विषाणिनः) सींग के समान हाथ में सदा शस्त्र रखने वाले, वीर, (शिवासः) सबके मंगलकारी लोग (अभनन्त) जब २ उत्तम उपदेश, संदेशादि कहा करें। (यः) जो (सधमाः) एक समान स्थान या पद पर मान पाकर (आर्यस्य) उत्तम पुरुष के (गव्या) भूमि विषयक राज्य कार्यों को (अनयत्) चलाने में समर्थ है वह सेनापति होकर (तृत्सुभ्यः) हिंसक पुरुषों के विनाश के लिये (युधा) युद्ध के हेतु (नॄन् अजगन्) उत्तम नायकों को प्राप्त करे।

दुराध्यो॒ अदि॑तिं स्रे॒वय॑न्तोऽचे॒तसो॒ वि ज॑गृभ्रे॒ परु॑ष्णीम्।
म॒ह्नावि॑व्यक् पृथि॒वीं पत्य॑मानः प॒शुष्क॒विर॑शय॒च्चाय॑मानः॥ ८॥

भा०—(दुराध्यः) दुष्ट बुद्धि वाले, दुष्ट आचार वाले (अचेतसः) बिना

चित्त के या अज्ञानी (अदितिम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष वा उसकी अखण्ड, (परुष्णीम्) पालन करने वाली अति दीप्तियुक्त तेजस्विनी नीति को (स्रेवयन्तः) उल्लंघन करते हुए (वि जगृभ्रे) विग्रह, विरोध करते हैं। (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (चायमानः) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष (पृथिवीं पत्यमानः) पृथिवी का स्वामी होता हुआ (अविंव्यक्) पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त करता है और (पशुः) पशु के समान मूर्ख राजा (चायमानः) वृद्धियुक्त होकर भी (पत्यमानः) गिराया जाकर (पृथिवीम् अशयत्) भूमि पर पशु के समान सोता है, या मारा जाता है।

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (सुदासः) उत्तम भृत्य वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् राजा (मानुषे) बहुत मनुष्यों से करने योग्य संग्रामों में (वध्रिवाचः) हिंसायुक्त, परुष भाषण करने वाले (सु-तुकान्) खूब हिंसक (अमि-त्रान्) शत्रुओं को (अरन्धयत्) दण्डित करता, वश करता है और इसी प्रकार वह राजा (मानुषे) मनुष्यों से बसे राष्ट्र में (वध्रि-वाचः) निर्बल वाणियों वाले, वा वृद्धिकारक उत्तम विद्वानों और (सु-तुकान्) उत्तम बालक व पुत्रों वाले प्रजाजनों को (अरन्धयत्) वश करता है तब वह (आशुः) शीघ्रकारी होकर (अभिपित्वं) प्राप्त होने योग्य लक्ष्य वा ऐश्वर्य को (जगाम) प्राप्त करता है। तब सब लोग (अर्थं न) अपने इष्ट धन के समान (न्यर्थं) निश्चित लक्ष्य को और (परुष्णीम्) पालक नीति और दीप्तियुक्त तीक्ष्ण दण्डनीति को (ईयुः) प्राप्त होते हैं।

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ।१०।२५॥

भा०—(अगोपाः गावः न) रक्षक से रहित, बिना ग्वाले की गौएं

जिस प्रकार (यवसात्) भुस, अन्नादि के हेतु ही (ईयुः) स्वामी के गृह में आ जाती हैं उसी प्रकार (चितासः) चेतना युक्त जीवगण भी (यथा-कृतम्) किये कर्म के अनुसार ही (मित्रम् अभि ईयुः) स्नेह करने वा जीवन से बचाने वाले प्रभु को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार (पृश्नि-गावः) 'पृश्नि' अर्थात् सूर्य से उत्पन्न नाना वर्ण की किरणें (पृश्नि-निप्रेषितासः) पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष से प्रेरित होकर (श्रुष्टिं चक्रुः) वर्षा द्वारा अन्न उत्पन्न करती हैं और जिस प्रकार (पृश्नि-गावः) नाना वर्ण के बैल (पृश्नि-नि-प्रेषितासः) विद्वान् पुरुषों द्वारा खेत में चलाये गये (श्रुष्टिं चक्रुः) अन्न को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-गावः) भूमि रूप गौवें, (पृश्निनि-प्रेषितासः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित या शासित होकर (श्रुष्टिं-चक्रुः) अन्न सम्पत्ति को उत्पन्न करती हैं। इसी प्रकार (नियुतः) लक्षों नियुक्त सेनादि, अश्वारोही, पुरुष तथा (रन्तयः) रमण करने वाले सुप्रसन्न प्रजाजन भी (श्रुष्टिं चक्रुः) सम्पदा को उत्पन्न करते वा वायुवत् (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य सम्पादन करते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ११

भा०—(न्यस्तः) निश्चितरूप से स्थापित (यः) जो (राजा) तेजस्वी राजा, (वैकर्णयोः) विविध कानों वाले दोनों पक्षों के बीच (एकं च विंशति च) एक और बीस अर्थात् इक्कीस, (जनान्) विद्वान् मनुष्यों को (श्रवस्या) श्रवण योग्य राज्य-कार्यों को सुनने के लिये अपना सभासद् बनाता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एषाम्) इन इक्कीसों का (सर्गम्) एक सर्ग अर्थात् समिति या संघ (अकृणोत्) बना लेता है। वह (सद्मन्) अपने भवन में विराजता हुआ भी (दस्मः) शत्रु नाश करने में समर्थ (शूरः) शूरवीर पुरुष (बर्हिः) कुश तृण के समान बढ़ते शत्रु को (नि शिशाति) नाश करता है।

राजा २० सभासदों की अमात्यसभा बनावे आप उनमें इक्कीसवां

हो। उनके दो पक्ष (वैकर्ण) हों, उन इक्कीसों का एक 'सर्ग' (body) या एक रचना (Constitution) हो।

अध॑ श्रु॒तं क॒वषं॑ वृ॒द्धम॒प्स्वनु॑ द्रु॒ह्युं नि वृ॑ण॒ग्वज्र॑बाहुः ।
वृ॒णा॒ना अत्र॑ स॒ख्याय॑ स॒ख्यं त्वा॒यन्तो॒ ये अम॑द॒न्ननु॑ त्वा ॥१२॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र या लोक में हे राजन् ! (ये) जो (त्वायन्तः) तेरी चाहना करते हुए, (त्वा सख्यं) तुझ मित्र को (सख्याय) अपना मित्र बनाने के लिये (वृणानाः) चुनते हुए (त्वा अनु अमदन्) तेरी ही प्रसन्नता में प्रसन्न होते हैं (अध) तू भी (वज्र-बाहुः) 'वज्र' अर्थात् शस्त्रास्त्र बल और वीर्य को बाहुओं में धारण करता हुआ (अप्सु) आप्त प्रजाओं के बीच में (श्रुतं) प्रसिद्ध, बहु-श्रुत, (कवषं) उपदेष्टा, विद्वान् (वृद्धम्) विद्या वयोवृद्ध पुरुष को (अनु वृणक्) अपने अनुकूल करता, उसके हृदय को प्रसन्न करता और (द्रुह्युम् निवृणक्) द्रोह करने वाले को दूर करता है।

वि स॒द्यो विश्वा॑ दृंहि॒तान्ये॑षा॒मिन्द्र॒ः पुर॒ः सह॑सा स॒प्त द॑र्दः ।
व्यान॑वस्य॒ तृत्स॑वे॒ गयं॑ भा॒ग्जेष्म॑ पू॒रुं वि॒दथे॑ मृ॒ध्रवा॑चम् ॥ १३ ॥

भा०—जब भी (सद्यः) शीघ्र ही (विश्वा) सब (दृंहितानि) सैन्य दृढ़ हों, (इन्द्रः) आत्मा जिस प्रकार (सहसा) अपने प्राण बल से (एषां) इन जीव शरीरों के (सप्त पुरः वि दर्दः) सात इन्द्रिय, ज्ञानपूरक छिद्रों को भेदता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा भी (एषां) इन शत्रु जनों को (सप्त पुरः) सातों प्रकार के दुर्गों को (वि दर्दः) विविध प्रकार से भेदे, नष्ट करे। आत्मा जिस प्रकार 'अनु' अर्थात् प्राणी जीव के योग्य इस देह के (गयम्) प्राण को (वि भाक्) देह में विभक्त करता है उसी प्रकार राजा (आनवस्य) अनु अर्थात् मनुष्यों के रहने योग्य राष्ट्र के (गयं) प्रजाजन को (वि भाक्) विभक्त करे और (तृत्सवे) हिंसक पुरुष को राष्ट्र से हटाने के लिये हम लोग (मृध्र-वाचम्) हिंसक, दुःखदायी वाणी बोलने वाले (पूरुं) मनुष्य समूह को (जेष्म) जय करें।

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

भा०—(गव्यवः) गौ आदि पशु और भूमियों की चाहना करने वाले (अनवः) मनुष्य, युद्धार्थी लोग भी जो (षष्टिः शता, अधि षष्टिः षट्) साठ सौ और ६६ अधिक, अर्थात् ६ सहस्र ६६ संख्या में (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (नि सुषुपुः) सुख से सोते हैं, इसी प्रकार (द्रुह्यवाचः षट् सहस्रा अधि षष्टिः षट्) द्रोह करने वाले विरोधी लोग भी ६०६६ संख्या में (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (अधि सुषुपुः) भूमि पर पड़े सोते अर्थात् मारे जाते हैं, (विश्वा इत्) ये सब (इन्द्रस्य कृतानि वीर्या) ऐश्वर्य-युक्त शत्रुहन्ता राजा के करने योग्य कार्य हैं। अर्थात् दोनों ओर से ६।६ सहस्रों की सेनाओं का खड़े होना, छावनी में पड़े रहना, लड़ना, मारे जाना आदि कार्य राजाओं के ही हैं।

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन् मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे १५।२६

भा०—(एते) ये (तृत्सवः) हिंसाकारी, सैन्य के सिपाही लोग (वेविषाणा) शत्रु सैन्य में फैलते हुए, (सृष्टाः आपः न) वर्षा से उत्पन्न जलों के समान (नीचीः अधवन्त) नीचे की भूमियों में वेग से जाते हैं, वा (नीचीः) नीच गुण की दुष्ट सेनाओं को (अधवन्त) कंपाते, भयभीत करते हैं और (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्र, (मिमानाः) हिंसा करते हुए भी (प्रकल-वित्) उक्त संख्या जानने वाले (सुदासे) या उत्तम ज्ञानवान्, दानशील राजा के हितार्थ (भोजना जहुः) भोजनवत् भोग्य सुखों को भी त्यागते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वीरस्य अर्धम्) वीरों और विद्वान्

पुरुषों के बढ़ाने वाले (श्रुतपाम्) परिपक्व, दुग्धादि पदार्थों के पीने वाले पुरुष को (क्षाम् अभि) भूमि को प्राप्त करने के लिये (नुनुदे) प्रेरित करता, भोगता है और (अनिन्द्रं शर्धन्तम्) इन्द्र के विरोधी बल को बढ़ाते हुए पुरुष को भी (परा नुनुदे) दूर करने में समर्थ होता है। वह ऐश्वर्यवान् (मन्युम्यः) मन्यु करने वालों का नाशक होकर भी (मन्युम्) क्रोध (मिमाय) करता वा क्रोधयुक्त पुरुष का नाश करता है, वह (पत्यमानः) स्वयं राष्ट्र की प्रजा का पति, पालक, स्वामी होकर (वर्तनिं) व्यवहार योग्य न्यायमार्ग तथा (पथः) सन्मार्गों को (भेजे) सेवन करे।

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

भा०—वह 'इन्द्र' पद पर स्थित राजा, (आध्रेण चित्) सब प्रकार से रक्षित सैन्य बल से (तत् उ) उस समस्त राष्ट्र को (एकं चकार) एक अद्वितीय साम्राज्य बना लेता है। (पेत्वेन) अश्व सैन्य या पालक बल के सामर्थ्य से (सिंह्यं चित्) सिंह के समान शत्रु को भी (आजघान) आघात करे। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वेश्या) भीतर दुर्गादि में भी प्रवेश करने वाली, सूची व्यूहादि के आकार की तीक्ष्ण सेना से (स्रक्तीः) भालाओं के समान लम्बी और राष्ट्र को घेरने वाली शत्रु सेनाओं को (आवृश्चत्) बनों को परशु के समान काट गिरावे और (सुदासे) उत्तम, दान देने वाले, प्रजावर्ग को (विश्वा भोजना) सब प्रकार के रक्षा के साधन और भोग्य ऐश्वर्य (प्रायच्छत्) प्रदान करे।

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र १८

भा०—हे राजन्! (शश्वन्तः शत्रवः) सदा के शत्रु लोग (शर्धतः) बलवान् (भेदस्य) भेद नीति में कुशल (ते) तेरे (रारधुः) वश हों और वे (रन्धि विन्द) विनाश को प्राप्त हों, (यः) जो (स्तुवतः) प्रार्थना, स्तुति

आदि करते हुए (मर्त्तान्) मनुष्यों अथवा मनुष्यों के प्रति उत्तम उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुषों के प्रति (एनः कृणोति) पाप, हत्यादि अपराध करता है, (तस्मिन्) उस दुष्ट पुरुष पर हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! राजन् ! तू (वज्रं जहि) शस्त्र या दण्ड का प्रयोग कर ।

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥

भा०—(यमुना) प्रजाओं को नियन्त्रण करने वाली नीति और नियन्त्रण करने वाले जन और (तृत्सवः च) शत्रुओं को नाश करने में कुशल वीर सैनिक लोग और जो (अत्र) इस राष्ट्र में (सर्वताता) सर्व-हितकारी कार्य में (भेदं) परस्पर 'भेद' अर्थात् फूट को (प्र मुषायत) नष्ट करते, एकता और प्रेम को बढ़ाते हैं और (अजासः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले और (शिग्रवः) अन्यों को न पता चलने वाले संकेत शब्द या अस्पष्टी भाषा बोलने वाले, विदेशी और (यक्षवः च) राजा से संगति, या सन्धि करके रहने वाले ये सभी लोग (इन्द्रं आवत्) ऐश्वर्य-वान् राजा की रक्षा करें और वे (बलिं जभ्रुः) अर्थात् कर लावें, इसके अतिरिक्त वे (शीर्षाणि) शिरःस्थानीय, प्रमुख २ (अश्व्यानि) अश्वों के बड़े बड़े सैन्यों को भी (जभ्रुः) धारण करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

न त इन्द्र सुमतयो न रायः सञ्चक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥२०।२७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी (सुमतयः) शुभ बुद्धियां और उत्तम बुद्धिमान् पुरुष (सञ्चक्षे न) गिने और वर्णन नहीं किये जा सकते। इसी प्रकार, हे राजन् ! (ते रायः न सञ्चक्षे) तेरे ऐश्वर्य भी वर्णन और गणना नहीं किये जा सकते। (पूर्वाः उषसः न नूत्नाः) जिस प्रकार नई प्रभात वेलाएं पूर्व की प्रभात वेलाओं के समान ही होती हैं उसी प्रकार (उषसः) तुझे चाहने वाली प्रजाएं भी (पूर्वाः न नूत्नाः) पूर्व

प्रथाओं के समान नयी भी तुझे चाहें । तू (मान्यमानं) मान्य पुरुषों के सत्कार करने वाले (देवकं) विद्वान् जनों को (जघन्थ) प्राप्त हो और (मान्यमानं) अभिमान करने वाले (देवकं) क्षुद्र व्यवहारी, कामुक एवं जूआखोर लोगों को (जघन्थ) दण्डित कर और (त्मना) अपने सामर्थ्य से (बृहतः) बड़े से बड़े के (शम्बरम्) मेघ के समान सूर्यवत् शान्तिनाशक आवरण जाल को (भेत्) छिन्न भिन्न कर । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥

भा०—(ये) जो लोग (त्वाया) तेरी कामना वा नीति से (गृहात्) गृह से निकल कर भी (अममदुः) बराबर प्रसन्न रहते हैं और (पराशरः) दुष्टों का नाशक (शत-यातुः) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला वा सैकड़ों दुष्टों को दण्डित करने वाला (वसिष्ठः) सर्वश्रेष्ठ जन, अर्थात् प्रमुख प्रजाजन ये सब और (ये) जो (ते भोजस्य) तुझ पालक राष्ट्र भोक्ता के (सख्यं) मित्र को (न मृषन्त) नहीं भूलते या सहन करते और उन (सूरिभ्यः) विद्वानों के तू (सुदिना) शुभ दिन (वि उच्छान्) प्रकट कर जिससे वे अधिक हर्षित हों ।

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (होता इव सद्म) दानशील पुरुष जिस प्रकार सभाभवन को प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं भी (अर्हन्) सत्कार को प्राप्त होकर (रेभन्) उपदेश करता हुआ (पैजवनस्य) स्पर्धा करने योग्य वेग, गति, आचार व्यवहार वाले अनुकरणीय चरित्रवान् पुरुष के पुत्र (सु-दासः) उत्तम दानशील पुरुष के (दानं) दिये सात्विक दान को (सद्म पर्येमि) अपने प्रतिष्ठित गृह के समान ही प्राप्त करूं । इसी प्रकार (नप्तुः) प्रजाओं का उत्तम प्रबन्ध करने वाले

(देव-वतः) विद्वानों, वीरों और व्यवहारवान् पुरुषों के स्वामी, (सु-दासः) उत्तम दानशीलराजा के (द्वे शते) दो सौ (गोः) भूमि के (वधूमन्ता) 'वधू' अर्थात् राज्य के भार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त, (द्वा रथा) दो रथ, रथवान् नायक जनों को भी मैं प्रजाजन प्राप्त करूं। अध्यात्म में—सर्वातिशायी, सर्वप्रद प्रभु 'पैजवन' 'सुदास' है सर्व प्रबन्धक एवं बन्धु होने से 'नप्ता' है। प्रति वर्ष के दो अयन, जीवन में २०० हैं। यह शरीर और लिङ्ग शरीर दो (चित्) वधू युक्त रथ हैं। प्रभु के सब दिये दानों को मैं स्तुतिपूर्वक ग्रहण करता हूँ।

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति २३

भा०—(पैजवनस्य) उत्तम आचरणवान्, क्षमावान् प्रभु के (स्मद्दिष्टयः) उत्तम दर्शन वाले, (कृशनिनः) धनादि सम्पन्न (दानाः) दानशील (ऋज्रासः) सरल धार्मिक व्यवहारवान्, (पृथिविष्ठाः) पृथिवी पर विद्यमान (चत्वारः) चार (सुदासः) उत्तम सुख देने वाले हैं। वे (मा तोकं) पुत्रवत् पालनीय मुझको (निरेके) शङ्कारहित सन्मार्ग में (वहन्ति) यज्ञ में चार ऋत्विजों और मार्ग में रथ में नियुक्त चार अश्वों के समान ले जावें और वे (मा) मुझको (तोकाय) उत्तम सन्तान और (श्रवसे) उत्तम यश प्राप्त करने के लिये (वहन्ति) सन्मार्ग पर चलावें। ये चार प्रभु के चार वेद और राजा के राज्य में चार वेदज्ञ विद्वान् हों।

यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

भा०—(यस्य श्रवः) जिसका ज्ञान, यश वा ऐश्वर्य (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथ्वी के बीच तेज को सूर्य के समान (शीर्ष्णे-शीर्ष्णे) प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये (वि बभाज) विभक्त किया जाता है। जिसको (स्रवतः सप्त) वेग से चलने वाले, देह में प्राणों

के समान, राष्ट्र के सातों विभाग, या सर्पणशील, वेगवान् अश्वादि सैन्य (इन्द्रं न) आत्मा वा राजा के समान (गृणन्ति) बतलाते हैं वह (युधिआमधिम् अथवा युध्या-मधिं = मदिम्) युद्ध में पीड़ादायक वा युद्ध के मद वाले शत्रु को (अभीके) संग्राम में (नि आशिशात्) शासन करे, पराजित करे।

इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥२८॥

भा०—हे (नरः) नायक (मरुतः) बलवान्, वायुवत् सर्वप्रिय मनुष्यो! (दिवः दासम्) ज्ञान-प्रकाश, सत्य व्यवहार के उपदेशक पुरुष को (पितरम्) पिता के समान जान (अनुसश्चत) उसका अनुकरण, सेवा, आज्ञा पालन करो। (सु-दासः) शुभ ज्ञान और उत्तम द्रव्य देने वाले (पैजवनस्य) उत्तम आचारवान् पुरुष के (केतम्) गृह और ज्ञान को (अविष्टन) प्राप्त करो, उसकी रक्षा करो। (दुवोयु) उत्तम शुश्रूषा के अभिलाषी स्वामी वा गुरुजन के (दूनाशं) अविनाशी, (अजरं) नित्य, स्थायी, (क्षत्रं) बल-वीर्य को प्राप्त करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[१९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्। ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ७, ९, १० विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्पंक्तिः। ४ पंक्तिः। ८, ११ भुरिक् पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भा०—(यः) जो राजा (तिग्म-शृङ्गः वृषभः न) तीक्ष्ण सींगों वाले सांड वा तीक्ष्ण विद्युत् रूप हननसाधन से युक्त, वर्षणशील मेघ के समान (भीमः) भयंकर, (तिग्म-शृंगः) तीक्ष्ण शस्त्र-बल से युक्त राजा (एकः) अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः) समस्त मनुष्यों को (प्र च्यावयति) उत्तम रीति

से चलाता है और (यः) जो (शश्वतः) बहुत से (अदाशुषः) कर आदि न देने वाले शत्रु और (गयस्य) अपत्यवत् अपने प्रजाजन का (प्रयन्ता) अच्छा शासक है, वह तू (सुष्वि-तराय) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष को (वेदः प्रयन्ता असि) ज्ञान और धन को देने वाला है। अथवा—(वेदः सुष्वि-तराय) ज्ञान के प्रति उत्तम मार्ग में चलाने वाले आचार्य के निमित्त (गयस्य अदाशुषः प्रयन्तासि) अपने पुत्र को समर्पित न करने वाले को दण्ड देने हारा हो।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं ह) तू निश्चय ही (त्यत् कुत्सम्) उस शत्रु को काट गिराने वाले शस्त्र बल को (आवः) प्राप्त कर। (शुश्रूषमाणः) उत्तम ज्ञान और प्रजा की प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनता हुआ (तन्वा) विस्तृत राष्ट्रबल वा सैन्य बल से (अस्मै आर्जुनेयाय) इस पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये (दासं) प्रजा के नाशक, (शुष्णं) प्रजा को शोषण करने वाले, (कु-यवम्) निन्दित अन्न खाने वाले वा कुत्सित उपायों से मारने योग्य पुरुष को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (अरन्धयः) दण्डित और विनाश कर।

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु को पराजय करने हारे! राजन्! (त्वं) तू (धृषता) शत्रुविजयी शस्त्रबल और (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षा साधनों से (वीत-हव्यम्) अन्नादि पदार्थों के रक्षक (सु-दासम्) उत्तम दानशील वा भृत्य वर्ग के स्वामी की (प्र आवः) रक्षा कर। तू (पौरुकुत्सिम्) बहुत शस्त्रों के धारक सैन्यनायक (त्रसदस्युम्) दुष्टों को भय करने वाले, (पूरुम्) वीर पुरुष को (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं के नाश के

अवसरों और (क्षेत्र-सातौ) रणक्षेत्र को प्राप्त करने और क्षेत्र अर्थात् भूमियों के न्यायोचित विभाग के लिये भी (प्र अवः) प्रधान पद पर स्थापित कर।

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) उत्तम वेग वाले अश्वों वा हरि अर्थात् मनुष्यों के स्वामिन्! हे (नृमणः) उत्तम अधिनायकों में चित्त देने हारे! वा मनुष्यों के मनों के स्वामिन्! (त्वं) तू (देव-वीतौ) शुभगुणों, वीरों, विद्वानों को प्राप्त कराने वाले कार्य, उनकी रक्षा के लिये तथा देव, विजिगीषु जनों के आने और चमकने, विघ्नों के स्थान, युद्ध के बीच (भूरीणि) बहुत से (वृत्राणि) बाधक शत्रुओं को (हंसि) विनाश कर और (त्वं) तू (चुमुरिम्) प्रजा का अन्न, धन, सर्वस्व चुराने वाले और (धुनिम्) प्रजा को भय से कंपाने वाले को (दभीतये) शत्रु नाश करने के सद् उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये ही, (सु-हन्तु) अच्छी प्रकार दण्ड दे और (निः स्वापः) सदा के लिये सुला, उनको समूल नाश कर।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहन् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रास्त्र-बल को हाथों में धारण करने वाले, वीर्यवन्! बलवन्! (तव) तेरे (तानि) वे नाना प्रकार के (च्यौत्नानि) प्रजावर्गों वा सैन्यों को संचालित और शत्रु को पदच्युत करने वाले सामर्थ्य हों (यत्) कि तू (सद्यः) शीघ्र ही (नव नवतिं पुरः) ९९ अर्थात् अनेक शत्रु-नगरों को (अहन्) नाश कर और स्वयं (निवेशने) बसने के लिये (शततमाम्) सौवीं नगरी को (अविवेषीः) व्याप कर, अधिकार कर। (वृत्रं) बढ़ते हुए विघ्नकारी (नमुचिम्) अपनी दुष्टता को न छोड़ने वाले वा अपराध करने पर बिना दण्ड के न छोड़ने योग्य, कैद करने योग्य शत्रु को भी (अहन्) दण्ड दे। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (सना) सदा से चले आये (ता) वे २ अपूर्व (भोजनानि) नाना भोग्य ऐश्वर्य हैं वे (रात-हव्याय) समस्त ग्राह्य ऐश्वर्यों को प्रदान करने और रक्षा करने वाले (दाशुषे) दानशील, (सु-दासे) उत्तम भृत्यवत् आज्ञापालक एवं उत्तम कर देने वाले प्रजाजन के हित के लिये हों और (दाशुषे सु-दासे) सर्वप्रद, सुखदाता (वृष्णे) सुखों की वर्षा करने वाले, मेघवत् उदार पुरुष के रथ में (वृषणा) विद्या और कर्म कौशल से बलवान् पुरुषों को (युनज्मि) युक्त करता हूँ, जोड़ता हूँ, जिससे कि वे (पुरु-शाक) बहुत शक्तिशालिन् ! (ते ब्रह्माणि) तेरे नाना वेदज्ञ कुल (वाजं व्यन्तु) अन्न का भोजन करें (ते ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) ब्राह्मण कुल तेरे लिये ज्ञान प्रदीप्त करें, वा (ब्रह्माणि) वेद मन्त्र तेरे ज्ञान को प्रकाशित करें और तेरे (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यप्रद धन, (वाजं व्यन्तु) ज्ञानवान् पुरुष को प्रधान बनावें ।

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! (ते) तेरी (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से प्राप्त प्रजा में हम लोग (अघाय) पाप या हत्यादि के निमित्त (परादै मा भूम) त्यागने योग्य न हों । तू (नः) हमें (अवृकेभिः) चोर, डाकू, भेड़िये के स्वभाव से रहित (वरूथैः) शत्रुवारक सैन्यों द्वारा (त्रायस्व) रक्षा कर । हम (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच (तव प्रियासः) तेरे प्रिय (स्याम) रहें ।

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! हम (नरः) नायक

(सखायः) तेरे मित्र होकर (अभिष्टौ) अभीष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिये (ते प्रियासः इत्) तेरे प्रिय होकर ही (मदेम) आनन्दित रहें। (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होकर उनके सत्कार के लिये (तुर्वशं) निकट रहने वाले और (याद्वं) मनुष्यों को (निशिशीहि) तीक्ष्ण कर। अतिथि के सत्कार के लिये समीप के पड़ोसी भी सहयोगी हों।

स॒द्यश्चि॒न्नु ते॑ मघवन्न॒भिष्टौ॒ नरः॑ शंसन्त्युक्थ॒शास॑ उ॒क्था।
ये ते॒ हवे॑भि॒र्वि प॒णीँरदा॑शन्न॒स्मान्वृ॑णीष्व॒ युज्या॑य॒ तस्मै॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन और ज्ञान के स्वामिन्! (ते) तेरी अभिमत नीति में (सद्यः चित् नु) बहुत शीघ्र ही (नरः) उत्तम पुरुष (उक्थ-शासः) उत्तम वेद वचनों का अनुशासन और अध्ययन करने वाले (उक्था) उत्तम मन्त्रों का (शंसन्ति) उपदेश करते हैं और (ये) जो (हवेभिः) आदर सत्कारों सहित, (ते पणीन्) तुझे उत्तम व्यवहारवान्, स्तुत्य पुरुष (अदाशन्) प्रदान करते हैं। (तस्मै) उस (युज्याय) सहयोगी योग्य पद के लिये तू (अस्मान्) हमें ही (वृणीष्व) वरण कर।

ए॒ते स्तोमा॑ न॒रां नृ॑तम॒ तुभ्य॑मस्म॒द्र्य॑ञ्चो॒ दद॑तो म॒घानि॑।
तेषा॑मिन्द्र वृत्र॒हत्ये॑ शि॒वो भूः॒ सखा॑ च॒ शूरो॑ऽवि॒ता च॑ नृ॒णाम् १०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (एते अस्मद्र्यञ्चः) हमें प्राप्त (नरां स्तोमाः) उत्तम पुरुषों के वचन समूह वा स्तुत्यजन समूह हे (नृतम) नरश्रेष्ठ! (मघानि ददतः) नाना ऐश्वर्य देते रहते हैं। तू (तेषाम्) उनके (वृत्र-हत्ये) शत्रुनाशक संग्राम में (शिवः भूः) कल्याणकारी हो। तू (नृणाम्) सब मनुष्यों का (सखा शूरः च) मित्र और शूरवीर (अविता च) और रक्षक भी (भूः) हो।

नू इ॑न्द्र शूर॒ स्तव॑मान ऊ॒ती ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधस्व। उप॑ नो॒
वाजा॑न्मिमीह्यु॒प स्ती॒न्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥११॥३०॥२॥

भा०—हे (इन्द्र शूर) ऐश्वर्यवन्! हे शूरवीर! तू (स्तवमानः) अपने

सैन्यों के उत्साह की प्रशंसा करता हुआ (ब्रह्म-जूतः) बड़े धनों और बड़े राष्ट्र से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीरवत् प्रिय विस्तृत राष्ट्र से (वावृधस्व) बढ़, वृद्धि को प्राप्त हो। (नः) हमें (वाजान्) बहुत ऐश्वर्य (उप मिमीहि) प्राप्त करा और (स्तीन्) संघ बने शत्रुओं को (उप मिमीहि) उखाड़ फेंक। हे वीर पुरुषो! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी सदा शुभ, सुखदायक उपायों से रक्षा करो। इति त्रिंशो वर्गः॥

इति द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

[२०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः। ७ भुरिक् पंक्तिः। २, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६, ८, ९ त्रिष्टुप्॥

दशर्चं सूक्तम्॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित्॥ १॥

भा०—(यः) जो (उग्रः) तेजस्वी पुरुष (स्वधावान्) अन्न आदि से सम्पन्न, वा आत्मा को धारण पोषण करने के उपायों का स्वामी होकर (वीर्याय) बल सम्पादन करने में (जज्ञे) समर्थ होता है, वह (चक्रिः) कर्म करने में कुशल, (अपः करिष्यन्) सूर्य जिस प्रकार वृष्टि जलों को उत्पन्न करना चाहता हुआ तपता है उसी प्रकार उत्तम कार्य करना चाहता हुआ (नृ-सदनं जग्मिः) नायक के विराजने योग्य या उत्तम पुरुषों के सभा भवन आदि को प्राप्त होकर (युवा) बलवान् पुरुष (महः चित् एनसः) बड़े भारी पापाचरण से (नः) हमें (अवोभिः) नाना ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा (त्राता) बचाने हारा हो।

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत्॥२॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य समान तेजस्वी राजा (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वृत्रं हन्ता) मेघ के समान विघ्नकारक दुष्ट का नाश करे। वह (वीरः) वीर (ऊती) रक्षा से (जरितारम्) स्तुति, प्रार्थना करने वाले को (प्र अवीत् नु) रक्षा करे। (अह वा उ) और (सुदासे) उत्तम दानशील पुरुष के हित के लिये (लोकं) दर्शनीय, उत्तम उपकार वा उत्तम जन्म का (कर्त्ता) करने वाला हो और (दाशुषे) अपने आप को देने वाले पुरुष के पालनार्थ (मुहुः) बार २ (वसु दाता भूत्) नाना ऐश्वर्य देने वाला हो।

युध्मो अ॑न॒र्वा ख॑ज॒कृत्स॒मद्वा॒ शूर॑ः सत्रा॒षाड् ज॒नुषे॒मषा॑ळ्हः।
व्या॑स॒ इन्द्र॒ः पृत॑ना॒ः स्वोजा॒ अधा॒ विश्वं॑ शत्रू॒यन्तं॑ जघान ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (युध्मः) उत्तम योद्धा, (अनर्वा) अहिंसक वा जिसके समान दूसरा सवार न हो, (खजकृत्) संग्राम करने में कुशल, (समद्वा) मद अर्थात् उत्तेजना वा हर्ष से युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला, (सत्राषाड्) बहुत से यज्ञों का कर्त्ता वा सत्य व्यवहार से विजय करने वाला, (ईम् जनुषा अषाढः) स्वभाव से किसी से पराजित न होने वाला हो। वह (सु-ओजाः) उत्तम पराक्रमशील होकर (आसे) स्वयं मुखवत् प्रमुख स्थान पर विराजकर (पृतनाः वि जघान) सब मनुष्यों को प्राप्त करे (अध) और (पृतनाः) शत्रु सेनाओं तथा (विश्वम् शत्रूयन्तं) शत्रुता का व्यवहार करने वाले सबका (वि जघान) विविध उपायों से नाश करे।

उ॒भे चि॑दिन्द्र॒ रोद॑सी महि॒त्वा प॑प्राथ॒ तवि॑षीभिस्तुविष्मः।
नि वज्र॒मिन्द्रो॒ हरि॑वा॒न्मिमि॑क्ष॒न्त्समन्ध॑सा॒ मदे॑षु वा उ॑वोच ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! राजन्! आप (तुविष्मः) बहुत बलवान् होकर (तविषीभिः) बलशालिनी सेनाओं से (उभे रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी दोनों के समान अति विस्तृत राजवर्ग प्रजा-वर्ग, शासक और शास्य दोनों को (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (पप्राथ)

विस्तृत कर। (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी होकर (वज्रम्) अपने शस्त्रास्त्र बल को (अन्धसा) अन्न सम्पदा से (नि मिमिक्षन्) पुष्ट करता हुआ (मदेषु) युद्ध के अवसरों में (वा) भी (सम् उवोच) अच्छा समवाय बनावे।

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५॥१॥

भा०—(यः) जो (सेनानीः) सेना का नायक (गवेषणः) भूमि राज्य का अभिलाषी, (सत्वा) बलवान् (नृभ्यः इनः अस्ति) मनुष्यों का स्वामी, राजा है (सः धृष्णुः) वह शत्रुओं को पराजय करने वाला होता है। (तम् वृषणम्) उस बलवान् पुरुष को (रणाय) रणादि शूरता के कार्य के लिये (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ बलवान् पुरुष ही (जजान) उत्पन्न करता है और (चित्) उसी प्रकार (नर्यं) मनुष्यों से श्रेष्ठ उस पुरुष को (नारी) उत्तम स्त्री ही (सुसूव) कोख जनती है। स्त्री पुरुष ऐसे ही नररत्नों को उत्पन्न करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य (अस्य) इस स्वामी के (घोरं मनः) घोर, अति आर्द्र दयाशील अन्तःकरण को (आविवासात्) सेवता है, उसके अनुसार करता है (सः जनः) वह मनुष्य कभी (न भ्रेषते) च्युत नहीं होता, (न रेषत्) कभी नष्ट नहीं होता और (यः) जो (यज्ञैः) यज्ञ, उपासना आदि उपायों से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्रभु में (दुवांसि दधते) प्रार्थनादि करते हैं (सः) वह (ऋत-पाः) सत्य व्रतों का पालक और (ऋतेजाः) सत्य में निष्ठ होकर (राये क्षयत्) ऐश्वर्य के लिये यत्न करता है।

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम्।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (यत्) जो (पूर्वः) पूर्व विद्यमान, जीवन और ज्ञान के अनुभवी, (अपराय) दूसरे को (देष्णम् शिक्षन्) देने योग्य ज्ञान वा धन देता, वा (कनीयसः) छोटों से (ज्यायान्) बड़ा होकर भी (अयत्) प्राप्त करता है, वा (अमृतः) अमृत, दीर्घायु, ज्ञानी, मुमुक्षु होकर (दूरम् इत् पर्यासीत) दूर रहता है, हे (मित्र) पूज्य! तू (नः) हमें वह (चित्र्यं रायः) आश्चर्यजनक अद्भुत, (रयिम् आभर) ऐश्वर्य, ज्ञान प्रदान कर।

यस्त॑ इन्द्र प्रि॒यो जनो॒ ददा॑श॒दस॑न्नि॒रे॒के अ॑द्रिवः॒ सखा॑ ते।
व॒यं ते॑ अ॒स्यां सु॑म॒तौ चनि॑ष्ठाः स्याम॒ वरू॑थे॒ अघ्न॑तो॒ नृपी॑तौ ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, तेजस्विन्! हे (अद्रिवः) मेघ तुल्य शत्रुओं पर शस्त्रवर्षण करने हारे वीर पुरुषों के स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरा (प्रियः जनः) प्रिय प्रजाजन (ददाशद्) कर आदि देवे, वह (निरेके) निःशंक व्यवहार में (ते सखा) तेरा मित्र, (असत्) रहे। (वयम्) हम लोग (ते) तेरी (अस्यां) इस (सुमतौ) शुभ मति में (चनिष्ठाः) अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों और (अघ्नतः) न हिंसा करने वाले तुझ पालक के (नृ-पीतौ) उत्तम नायकों द्वारा पालन करने वाले (वरूथे) सैन्य या शासन में, हम घर के समान (स्याम) सुख से रहें।

ए॒ष स्तोमो॑ अचिक्रद॒द्वृषा॑ त उ॒त स्ता॒मुर्म॑घवन्नक्रपिष्ट।
रा॒यस्कामो॑ जरि॒तारं॑ त॒ आग॒न्त्वम॒ङ्ग श॑क्र॒ वस्व॒ आ श॑को नः ॥९॥

भा०—हे प्रजाजन! (एषः) यह (स्तोमः) स्तुत्य, प्रशंसायोग्य (वृषा) बलवान् राजा (ते अचिक्रदत्) तुझे आदर से बुलावे (उत) और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! बिना किसी प्रकार का कष्ट पाये (अक्रपिष्ट) सब सामर्थ्य प्राप्त करे। (ते रायः-कामः) तेरे ऐश्वर्य की कामना करने वाला पुरुष (जरितारं) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा रूप तुझको (आगन्) प्राप्त हो और (अंग शक्र त्वं) हे शक्तिशालिन्! तू (नः वस्वः) हमारे धन पर (आ

शकः) सब प्रकार से शक्ति अधिकार प्राप्त कर। अर्थात् प्रजा धनाभिलाषी होकर राजा को प्राप्त करे, राजा के ऐश्वर्य का उपभोग करे और राजा प्रजा के धन पर स्वत्व समझे।

स नं इन्द्र त्वयंताया इषे धास्त्मनां च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदां नः १०।२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (नः) हममें से (ये) जो (त्मना) अपने सामर्थ्य से (मघवानः) उत्तम धन सम्पन्न होकर (जुनन्ति) तुझे प्राप्त होते उनको भी तू (त्वयताया) तेरे से सुप्रबद्ध (इषे) उत्तम प्रेरणा के लिये (धाः) धारण कर। (जरित्रे) उत्तम विद्वान् के लिये (ते) तेरी (वस्वी) ऐश्वर्ययुक्त (शक्तिः) दान शक्ति (सु अस्तु) खूब हो। (यूयम्) तुम लोग हे विद्वानो! (नः सदा) हमें सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी उपायों से पालन करो। 'वस्वीषु' इत्येकं पदं सायणाभिमतं पदपाठेन विरुध्यते। इति द्वितीयो वर्गः॥

[२१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप्। २, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ७ भुरिक्पंक्तिः। ४, ५ स्वराट् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम्॥

असांवि देवं गोऋंजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच।
बोधांमसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधां नः स्तोममन्धंसो मदेषु॥१॥

भा०—(गो-ऋजीकं) भूमि से सरलता से, न्याय अनुसार प्राप्त होने वाला, (देवं) सुखप्रद, व्यवहार योग्य (अन्धः) अन्न आदि पदार्थ (असावि) उत्पन्न होता है। (अस्मिन्) उस पर (इन्द्रः ईम् उवोच) जिस प्रकार सूर्य या मेघ जल देता और बढ़ाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (जनुषा) स्वभावतः (अस्मिन् नि उवोच) उस अन्न के निमित्त सब उपाय प्राप्त करावे और बढ़ावे। हे (हर्यश्व) मनुष्यों में श्रेष्ठ! हम (यज्ञैः) सत्कारों से (त्वा बोधामसि) तुझे कर्त्तव्य बतलाते हैं (अन्धसः

मदेषु) अन्न आदि प्राणधारक पदार्थों के सुखों के निमित्त तू (नः) हमें (स्तोमम्) स्तुत्यवचन (बोध) बोध करा। उनके प्राप्त करने के लिये उत्तम २ उपाय उपदेश कर।

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः॥ २॥

भा०—(सोम-मादः) अन्न, ऐश्वर्य और बलवीर्य से हर्ष युक्त, प्रसन्न और (दुध्र-वाचः) दुर्धर, बड़ी कठिनता से धारण करने योग्य वाणी के स्वामी, शासक लोग (यज्ञं) आदर, सत्कार, यज्ञ, विद्वत्संग और परस्पर के दृढ़ संघ को (यन्ति) प्राप्त करते हैं, (बर्हिः विपयन्ति) उत्तम वृद्धिशील पद वा आसन को प्राप्त करते और (विदथे) यज्ञ वा संग्राम में वा ज्ञान-व्यवहार में विशेष रूप से रहते हैं। वे (यशसः गृभात्) यशोजनक घर से निकल कर (वृषणः) बलवान् पुरुष (नृषाचः) मनुष्यों का समवाय बनाकर (दूरे-उपब्दः) दूर २ देशों तक अपनी वाणी वा वक्तव्य पहुँचाते और (नि भ्रियन्ते) निरन्तर आदर प्राप्त करते हैं।

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा॥३॥

भा०—जैसे सूर्य वा विद्युत् (अहिना परिस्थिता) मेघ रूप से या सूर्य द्वारा सर्वत्र व्यापक होकर (अपः) जल परमाणुओं को (स्रवितवै अकः) नीचे बहने के लिये प्रवृत्त करता है, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन्! हे (शूर) शूरवीर! (त्वम्) तू (पूर्वीः) समृद्धि से पूर्ण (अहिना परि स्थिताः) अग्रगन्ता नायक से अधिष्ठित (अपः) आप्त प्रजाओं को (स्रवितवै अकः) सन्मार्ग पर चलने के लिये तैयार कर और अभिमुख आकर हनन करने वाले शत्रु के अधीन स्थित सेनाओं को जलों के समान बहने या भाग जाने को बाधित कर। (त्वत् धेनाः) तेरी वाणियां (रथ्यः न) रथारोही वीरों वा रथ के अश्वों के समान वेग से वा

(वावक्रे) वक्रता पूर्वक सौन्दर्य से निकलें, प्रकट हों और (विश्वा) समस्त (कृत्रिमाणि) कृत्रिम, स्वार्थों से बने मित्र और शत्रु (भीषा रेजन्ते) भय से कांपें।

भीमो विवेषा युधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्।
इन्द्रः पुरा जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥४॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (आयुधेभिः) शस्त्रों करके (भीमः) भयानक, (एषां) इन शत्रुजनों के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों से करने योग्य, हितकारी (अपांसि) कर्मों को (विद्वान्) जानता हुआ, (विवेष) शत्रुओं के भीतर व्याप जाय और उनका रहस्य पता लगावे। वह (जर्हृषाणः) हृष्ट, प्रसन्न होकर शत्रुओं की (पुरः) नगरियों को (वि दूधोत्) विविध प्रकार से कंपा डाले। (वज्र-हस्तः) हाथों में सैन्यबल लिये (महिना) महान् सामर्थ्य से (वि जघान) विविध प्रकार से शत्रुओं को दण्डित करे।

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! (यातवः) पीड़ा देने वाले, वा आक्रमणकारी लोग (नः न जूजुवुः) हम तक न पहुँचें, हमारा घात न करें। हे (शविष्ठ) बलशालिन्! (वेद्याभिः) ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं से वे पीड़क लोग (नः वन्दना) हमारे स्तुत्य उपदेश योग्य उत्तम कार्यों तक भी (न जुजुवुः) न पहुँचें, न नाश करें। (अर्यः) स्वामी, राजा (विषुणस्य जन्तोः) विस्तृत फैले प्रजाजन को (शर्धत्) उत्साहित करे और (शिश्न-देवाः) उपस्थेन्द्रिय से क्रीड़ा-विलास करने वाले, कामी, नीच पुरुष (नः) हमारे (ऋतं) सत्य व्यवहार, धर्म्म, कर्म्म, वेद ज्ञान, यज्ञ और हमारे अन्न जल को भी (मा अपि गुः) प्राप्त न हों। इति तृतीयो वर्गः ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः, राजन्! हे (इन्द्र) जीवात्मन्! (अध) और तू (क्रत्वा) उत्तम ज्ञान, कर्म के सामर्थ्य से (ज्मन्) पृथिवी पर (रजांसि) सब लोकों और राजस भावों को (अभि भूः) पराजित कर। (रजांसि) वे लोग (ते) तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (न विव्यङ्) न प्राप्त कर सकें। तू (स्वेन शवसा हि) अपने ही बल से (वृत्रं) आवरणकारी अज्ञान, विघ्नकारी शत्रु को (जघन्थ) विनाश कर। (शत्रुः) शत्रु, तेरा नाशक, (ते अन्तं) तेरा अन्त (युधा) युद्ध द्वारा (न विविदत्) न पा सके।

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! स्वामिन्! (असुर्याय क्षत्राय) मेघ में उत्पन्न जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार अन्नाभिलाषी जन नाना यत्न करते हैं उसी प्रकार (पूर्वे देवाः) वे पूर्व के, प्रथम शिक्षित, दीर्घायु वृद्ध विद्वान् मनुष्य (ते असुर्याय क्षत्राय) तेरे मेघ में उत्पन्न विद्युत् के प्रबल बलवीर्य को प्राप्त करने के लिये (सहांसि) नाना साहस और नाना बल युक्त सैन्य कर्म (अनु ममिरे) तेरी आज्ञा में करते हैं। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् तू (विषह्य) विविध प्रकार से शत्रुओं को पराजित करके (मघानि दयते) उत्तम ऐश्वर्यों का दान और रक्षा करता है। प्रजाजन (वाजस्य सातौ) ऐश्वर्य, बल और संग्राम में विजय लाभ करने के लिये (इन्द्रं) शत्रु हनन करने वाले शूरवीर, ऐश्वर्यवान् आप्त पुरुष को (जोहुवन्त) बुलाते और उसकी उपासना करते हैं।

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् स्वामिन्! प्रभो! (कीरिः) स्तोता, विद्वान्, क्रियाकुशल पुरुष (चित्) भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये

(भूरेः) बहुत बड़े, (सौभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य के (ईशानं) स्वामी (त्वाम्) तुझको ही (जुहाव) पुकारता है। हे (शतम्-ऊते) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न! तू (अस्मे) हमारा (अवः बभूथ) रक्षा करने हारा हो। (त्वावतः) तेरे जैसे (अभि-क्षत्तुः) सन्मुख आये शत्रु के हिंसक वीर पुरुष को (वरूता) स्वीकार करने और उसको युद्ध में पराजित कर भगाने वाला भी तू ही (बभूथ) हो।

सखा॑यस्त इन्द्र वि॒श्वह॑ स्याम नमो॒वृधासो॑ महि॒ना त॑रुत्र।
व॒न्वन्तु॑ स्मा॒ तेऽव॑सा सम॒ीके॑ऽ भी॑तिमर्यो॑ व॒नुषा॒ं शवा॑ंसि ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (तरुत्र) शत्रुओं को मारने और शरणागतों को संकटों से पार करने वाले राजन्! प्रभो! (ते) तेरे हम लोग (विश्वह) सदा (सखायः) मित्र और (महिना) तेरे महान् सामर्थ्य से (नमः-वृधासः) नमस्कार, विनय, अन्न और शस्त्र बल से बढ़ने बढ़ाने हारे (स्याम) हों। (समीके) रण में (ते) तेरे (शवसा) रक्षण सामर्थ्य से ही प्रजास्थ पुरुष (अभीतिम् वन्वन्तु) अभय प्राप्त करें और (अभि-इतिम् वन्वन्तु) अभिमुख प्रयाण करें और (वनुषां शवांसि) हिंसक शत्रुओं के बलों के प्रति (अभि-इतिम् वन्वन्तु) प्रयाण करें और उनके आक्रमण को नाश करें। तू उनका (अर्यः) स्वामी होकर रक्षा कर।

स न॑ इन्द्र॒ त्वय॑ताया इ॒षे धा॑स्त्म॒ना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑।
वस्वी॑ षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥१०॥४

भा०—व्याख्या देखो सू० २० (मं० १०) इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्। २, ७ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। ६, ८ विराडनुष्टुप्। ४ आर्ची पंक्तिः। ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

पिबा॒ सोम॑मिन्द्र॒ मन्द॑तु त्वा॒ यं ते॑ सु॒षाव॑ हर्य॒श्वाद्रिः॑।
सो॒तुर्बा॒हुभ्या॒ं सुय॑तो॒ नार्वा॑ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रिः) मेघ जिस अन्न को उत्पन्न करता है उसको सूर्य अपनी किरणों से पालन करता है उसी (अद्रिः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और शत्रु द्वारा छिन्न भिन्न न होने वाले, दृढ, हे (हर्यश्व) उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! उत्तम मनुष्यों को अश्वों के समान राष्ट्र-रथ में लगाने हारे ! (यं) जिस (सोमम्) अन्नवत् उपभोग्य ऐश्वर्य को (ते) तेरे लिये (अद्रिः) मेघ व मेघवत् उदार शस्त्रबल (सुषाव) उत्पन्न करता है तू उसको (सोमम्) अन्न रस और ओषधि रस के समान (पिब) उपभोग कर। वह तुझे बल दे और तेरे लिये शक्तिकारक हो। हो वह (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करे और (सोतुः बाहुभ्यां सुयतः) सञ्चालक सारथि के बाहुओं से उत्तम प्रकार से नियन्त्रित (अर्वा न) अश्व के समान तू भी (सोतुः) उत्तम मार्ग में सञ्चालन करने वाले पुरुष के (बाहुभ्यां) कुमार्ग से रोकने वाले ज्ञान और कर्मरूप बाहुओं से (सु-यतः) उत्तम रूप से नियन्त्रित होकर (सोमम् पिब) इस राष्ट्ररूप ऐश्वर्य का पुत्र वा शिष्यवत् पालन कर।

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगयुक्त अश्वों के स्वामिन् ! हे मनुष्यों को अश्वों के समान सन्मार्ग पर चलाने हारे ! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) सहयोग देने योग्य, (चारुः) उत्तम (मदः) हर्ष (अस्ति) है और (येन) जिससे तू (वृत्राणि) मेघों को सूर्यवत्, शत्रुओं को (हंसि) विनाश करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (प्रभूवसो) प्रचुर ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) अति हर्षयुक्त बनावे।

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (याम्) जिस (प्रशस्तिम्) प्रशंसा योग्य (ते) तेरी (वाचम्) वाणी का (वसिष्ठः) उत्तम वसु, विद्वान्

(सु अर्चति) आदर कर रहा है तू (इमाम्) उसको (सु बोध) अच्छी प्रकार जान। (इमा ब्रह्म) तू इन ज्ञानों, अन्नों, धनों को (सध मादे) साथ मिलकर हर्ष मनाने के अवसर में (जुषस्व) सेवन कर।

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥

भा०—(वि-पिपानस्य) विविध प्रकार के रसों को अपने में पालन करने वाले (अद्रेः) मेघ के समान नाना विद्याओं के रसों का पान या पालन करने वाले (अद्रेः) आदर योग्य (विप्रस्य) मेधावी (अर्चतः) अर्चना योग्य विद्वान् के (हवम्) उपदेश और (मनीषाम्) बुद्धि का (बोध) ज्ञान कर और (इमा) इन (सचेमा दुवांसि) नाना सेवाओं को (अन्तमा कृष्व) समीप कर।

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन्! (विद्वान्) मैं विद्वान् होकर भी (ते गिरः) तेरी वाणियों का (न अपि मृष्ये) त्याग न करूं। (तुरस्य) अति शीघ्र कार्य-कर्त्ता और शत्रुओं के हिंसक (असुर्यस्य) बलवानों में श्रेष्ठ तेरे (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति को भी (न अपि मृष्ये) त्याग न करूं। हे राजन्! मैं (ते नाम) तेरे नाम, या शत्रु को दबाने के सामर्थ्य को ही (स्व-यशः) अपनी कीर्त्ति या बल (वि वक्मि) कहूँ।

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त! (ते) तेरे (भूरि हि सवना) बहुत से ऐश्वर्य (मानुषेषु) मनुष्यों में हैं। (मनीषी) बुद्धिमान् पुरुष (त्वाम् इत् हवते) तेरी ही स्तुति करता है, तुझे ही पुकारता है। तू (अस्मत्) हमसे (ज्योक् मा कः) अपने को चिरकाल के लिये दूर मत कर।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (इमा सवना तुभ्यं इत्) ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही उपभोगार्थ वा तेरे ही अधिकार में हों । (तुभ्यं वर्धना) तुझे बढ़ाने वाले (विश्वा ब्रह्माणि) समस्त धन, अन्न और वेद वचन (कृणोमि) मैं करता हूँ । हे प्रभो ! (त्वं) तू (नृभिः) मनुष्यों से (हव्यः) स्तुति योग्य, स्वीकार योग्य और (विश्वधा असि) विश्व को धारण करने हारा है ।

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय ! शत्रुहिंसक ! हे (उग्र) शत्रुभयजनक राजन् ! (मन्यमानस्य) मानने योग्य (ते) तेरे (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (नू चित् नु) अवश्य सज्जन लोग (उद् अश्नुवन्ति) उत्तमता से प्राप्त करें । परन्तु शत्रु (ते महिमानम् न उद् अश्नुवन्तु) तेरे सामर्थ्य को न पा सकें वे (न ते वीर्यम्, न ते राधः) न तेरे बल और न तेरे ऐश्वर्य को प्राप्त करें; तुझसे अधिक बलवान्, ऐश्वर्यवान् न हों ।

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।९।६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आचार्य ! विद्वन् ! (ये च ऋषयः) जो मन्त्रार्थों, सत्य ज्ञानों के देखने वाले, (पूर्वे) पूर्व काल के, वृद्ध गुरुजन और (ये च नूत्नाः) जो नये शिष्य जन, नवशिक्षित (विप्राः) विद्वान् पुरुष हैं वे (ब्रह्माणि जनयन्त) वेद मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करें । हे विद्वन् ! राजन् ! तेरी (सख्यानि) मित्रता के कार्य (अस्मे) हमारे लिये (शिवानि) कल्याणकारक हों । (यूयम्) आप लोग हे विद्वान् ऋषिजनो ! (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो । इति षष्ठो वर्गः ॥

[२३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६ भुरिक्पंक्तिः । ४ स्वराट् पंक्तिः ।
२, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्यं महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) प्रजा को उत्तम रीति से बसाने और उनमें स्वयं भी बसने हारे उत्तम वसो ! राजन् ! प्रजाजन ! विद्वन् ! तू (श्रवस्या) धन, अन्न और यश की कामना से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (उद् ऐरत उ) उत्तम रीति से उपदेश कर । हे विद्वन् ! तू (श्रवस्या) ज्ञानोपदेश की कामना से (ब्रह्माणि उद् ऐरत) वेद मन्त्रों का उत्तम उपदेश कर । हे राजन् ! हे उत्तम प्रजावर्ग ! तू (समर्यें) संग्राम में वा मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान, सभा आदि में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर पुरुष का (महय) आदर कर । हे उत्तम शिष्यवर्ग ! (सम् अर्ये) उत्तम ज्ञानोपार्जन के निमित्त (इन्द्रं महय) आचार्य का सम्मान कर । (यः) जो राजा (उप-श्रोता) प्रजाओं के कष्टों को ध्यान से श्रवण करने वाला (शवसा) बलपूर्वक (ईवतः) समीप आने वाले (मे) मेरे उपकारार्थ (विश्वानि वचांसि) समस्त उत्तम वचन व आज्ञाएं (आ ततान) प्रदान करता है अथवा (यः शवसा विश्वानि वचांसि आततान) जो बल के साथ सब प्रकार के आज्ञा वचन विस्तारित करता है वह (ईवतः मे वचांसि उप-श्रोता) शरण में आये मेरे वचनों को श्रवण करने हारा हो । इसी प्रकार जो विद्वान् ज्ञानपूर्वक वचन कहे वह शिष्य के वचनों को भी श्रवण करे ।

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (देवजामिः घोषः) जलदाता मेघ की गर्जना होती है

और (विवाचि) विविध मध्यमा वाक् विद्युत् के गर्जते हुए (शुरुधः) शीघ्र आने वाली ओषधियां बढ़ती हैं वैसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! (यत्) जब (देव-जामिः) 'देव' व्यवहारवान् और विजयेच्छु पुरुषों में रहने वाला (घोषः) घोष या वाणी उठती है उस समय (वि वाचि) विविध या विशेष वाणी के प्रवक्ता पुरुष के अधीन (शुरुधः) शीघ्र शत्रुओं को रोकने में समर्थ वीर (इरज्यन्त) आगे बढ़ते हैं। (जनेषु) मनुष्यों में कोई भी (स्वम् आयुः) अपना जीवन सुरक्षित (नहि चिकिते) नहीं जानता, तब हे राजन्! तू ही (तानि इत् अहांसि) उन नाना पापाचारों से (अस्मान् अतितर्षि) हमें पार करता है।

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

भा०—(हरिभ्यां रथं) जैसे दो अश्वों से रथ को जोड़ा जाता है वैसे मैं (हरिभ्याम्) दो विद्वान् पुरुषों से (रथम्) सुखद राष्ट्र को (युजे) युक्त करूं। समस्त प्रजा वर्ग (ब्रह्माणि जुजुषाणम्) नाना धनों को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यवान् पुरुष का (उप अस्थुः) आश्रय लेते हैं। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को (वि बाधिष्ट) विविध प्रकार से वश करे और वह (अप्रति) बे-मुकाबला होकर (वृत्राणि जघन्वान्) शत्रुओं को नाश करे और धनों को प्राप्त करे।

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥

भा०—(स्तर्यः गावः न) जिस प्रकार गौएं गृहस्थ को (पिप्युः) बढ़ाती हैं (आपः चित्) और जिस प्रकार देह में रक्तधाराएं शरीर की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार (आपः) आप्त विद्वान् और प्रजाएं (स्तर्यः) शत्रुहिंसक और देश की रक्षा करने वाली सेनाएं तथा (गावः) गौएं वा

भूमियें भी देश को (पिप्युः) समृद्ध करती हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं की जीवन हानि करने वाले वीर (ते ऋतं रक्षन्) तेरे सत्य, न्याय, ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करें। (त्वं) तू (नः) हमारे (नियुतः) लक्षों प्रजाजनों, नियुक्त भृत्यों को तथा अश्व-सैन्यों को भी (वायुः) वायु अर्थात् प्राणवत् प्रिय, वा वायु के समान बल से शत्रु को उखाड़ने में समर्थ होकर (अच्छ याहि) प्राप्त हो और (धीभिः) अपने कर्मों और सम्मतियों से (वाजान्) ऐश्वर्यों को (वि दयसे) विविध प्रकार से दे और (वाजान् वि दयसे) वेगवान् अश्वों को पालन कर, संग्रामों को कर और ज्ञानवान् पुरुषों पर (वि दयसे) विशेष कृपा कर।

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

भा०—(हि) जिस कारण से हे (शूर) शूरवीर! तू (देवत्रा) विजयशील, विद्वान् पुरुषों के बीच वा उनका त्राता होकर (एकः) अकेला, अद्वितीय (मर्तान् दयसे) मनुष्यों को जीवन देता, उन पर विशेष कृपा करता, उनकी रक्षा करता है अतः (जरित्रे) विद्वान् विद्योपदेष्टा के लिये (तुवि-राधसं) बहुत सा धन प्रदान करने वाले (शुष्मिणं) बलशाली, (त्वा) तुझको हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! ते वे (मदाः) तृप्तिकारक नाना पदार्थ और हर्षयुक्त नाना सुभट (मादयन्तु) तृप्त और प्रसन्न करें।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।७

भा०—(वसिष्ठासः) राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजाजन (एव) निश्चय से (वृषणं) बलवान्, मेघवत् वा सूर्यवत् शत्रु पर शरों और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले (वज्र-बाहुम्) शस्त्रास्त्र बल और शक्ति को बाहुओं में, अपने वश में रखने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को (अर्कैः) नाना अर्चना योग्य उपायों से (अभि-अर्चन्ति) सत्कार करते हैं।

(सः स्तुतः) वह प्रशंसित शासक (नः) हमारे (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त सैन्य और (गोमत्) भूमियों से युक्त राष्ट्र की (पातु) रक्षा करे और हे वीर पुरुषो (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (पात) पालन करो। इति सप्तमो वर्गः ॥

[२४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सदने) विराजने योग्य उत्तम सभागृह आदि स्थान में (ते) तेरा (योनिः) गृहवत् स्थान (अकारि) बने। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! तू (तम्) उस मुख्य पद या स्थान को (नृभिः) नायकों सहित (आ याहि) प्राप्त कर और (प्र याहि) प्रयाण कर। (यथा) जिस प्रकार से भी हो उस प्रकार से तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (असः) हो। (नः वृधे च) हमारे वृद्धि के लिये तू (वसूनि आ ददः) नाना ऐश्वर्य प्रदान और ग्रहण कर। तू (सोमैः च) सौम्य पुरुषों, उत्तम ऐश्वर्यों और नाना ओषधि रसों से (ममदः) हर्ष प्राप्त कर, तृप्त हो और सुखी रह।

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

भा०—(इयम्) यह (सु-वृक्तिः) उत्तम सद्व्यवहार और उत्तम सेवा करने वाली (मनीषा) मन से प्रिय, मनोहारिणी (विसृष्ट-धेना) विविध उत्तम वाणी बोलने वाली स्त्री (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (जोहुवती) प्राप्त करती हुई (परि-सिक्ता) गर्भाशय में निषिक्त (मधूनि) वीर्यों को (भरते) धारण करे। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने हारे ! (ते मनः

गृभीतं) तेरा मन उस स्त्री द्वारा ग्रहण किया जाय । तेरा (सुतः) उत्पन्न (सोमः) पुत्र (द्वि-बर्हाः) माता पिता दोनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त और दोनों को बढ़ाने हारा हो । (२) इसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! राष्ट्र में (मधूनि परिषिक्ता) नाना जल सिंचें । (द्विबर्हाः) मेघ और पृथिवी दोनों से बढ़ने वाला (सोमः सुतः) ओषधिगण उत्पन्न हो । राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों को बढ़ाने वाला राजा अभिषेक को प्राप्त हो । (ते मनः गृभीतम्) तेरा मन राष्ट्र में लगे । (सु-वृक्तिः) उत्तम रीति से विभक्त (इयम्) यह भूमि (विसृष्ट-धेना) नाना शासनाज्ञा से युक्त होकर (मनीषा) मनभावनी होकर (इन्द्रं जोहुवती) राजा को पुकारती, अपनाती और करादि देती हुई, (भरते) समस्त प्रजाजन को धारण करती, पालती है ।

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल मार्ग में प्रजाओं को चलाने हारे ! तू (सोम-पेयाय) पुत्रवत् प्रजा पालन और ऐश्वर्यों के ओषधिरस-वत् उपभोग के लिये (दिवः पृथिव्याः) उत्तम व्यवहार, विजय-कामना और भूमि के लिये (नः) हमारे (इदं बर्हिः) इस बढ़ती प्रजा को (आ याहि) प्राप्त हो । (हरयः) प्रजास्थ पुरुष (तवसं) बलवान् (मद्र्यञ्चम्) मेरे प्रति आने वाले (त्वा) तुझको (मदाय) प्रसन्नता के लिये (आङ्गूषं अच्छ वहन्तु) उत्तम स्तुति वचन प्रदान करें ।

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ ! अश्ववत् राज्य रथ के सञ्चालक ! राजन् ! तू (नः) हमारे (ब्रह्म जुषाणः) धन, अन्न और वेद ज्ञान को प्रेम से सेवन करता हुआ (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब रक्षा साधनों से (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो । हे (सु-शिप्र) उत्तम मुकुट-

धारिन्! शोभित मुखावयव! सौम्य मुख! तू (स्थविरेभिः) विद्या और आयु में वृद्ध पुरुषों सहित, शत्रुओं और दुःखों तथा दैवी, मानुषी विपत्तियों को (वरीवृजत्) सदा दूर कर और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अस्मे) हमारे लिये (वृषणं) बलवान् (शुष्मम्) शत्रु शोषक सैन्य को (दधत्) निरन्तर धारण कर।

एष स्तोमो॑ म॒ह उ॒ग्राय॒ वाहे॑ धु॒रीः॒॑वात्यो॒ न वा॒जय॑न्नधायि।
इन्द्र॑ त्वा॒यम॒र्क ई॑ट्टे॒ वसू॑नां दि॒वी॑व॒ द्याम॑धि नः॒ श्रोम॑तं धाः॥५॥

भा०—(वाहे धुरि अत्यः न) रथ को उठाने वाले धुरा में जिस प्रकार अश्व लगाया जाता है उसी प्रकार (वाहे धुरि) राष्ट्र को धारण, पोषण, सञ्चालन के पद पर (महे उग्राय) महान्, बलवान् पुरुष के लिये (एषः स्तोमः) यह स्तुत्य व्यवहार वा अधिकार (वाजयन् इव) उसको अधिक बल और ऐश्वर्य देता हुआ (अधायि) नियत किया जाता है। (वसूनां मध्ये दिवि अर्कः) पृथिव्यादि वस्तुओं के बीच आकाश में सूर्य के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वसूनाम्) बसे प्रजाजनों, विद्वानों, प्रजापालक शासकों के बीच (अयम् अर्कः) यह अर्चना योग्य पद या अधिकार, मान आदर सत्कार (त्वाम् ईट्टे) तुझे ही ऐश्वर्य प्रदान करता है। तू (नः) हमें प्रकाशवत् (द्याम्) ज्ञान, उत्तम व्यवहार और (श्रोमतं) श्रवण योग्य यश (धाः) धारण करा।

ए॒वा न॑ इन्द्र॒ वार्य॑स्य पूर्धि॒ प्र ते॑ म॒हीं सु॑म॒तिं वे॑विदाम।
इषं॑ पिन्व म॒घव॑द्भ्यः सु॒वीरां॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥६॥८

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (नः) हमें तू (वार्यस्य) उत्तम धनैश्वर्य से (पूर्धि) पूर्ण कर। (ते) तेरी (महीं) पूज्य (सुमतिं) उत्तम ज्ञान को (वेविदाम) अच्छी प्रकार प्राप्त करें। तू (मघवद्भ्यः) धन युक्तों को (सुवीराम्) शुभ पुत्रों से युक्त (इषं) अन्न समृद्धि (पिन्व) दे। हे सम्पन्न पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम सुखदायक उपायों से हमारा सदा पालन करो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[२५]

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः २ विराट् पंक्तिः । ४ पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शत्रु नाशन में कठोर ! (यत्) जब (महते) तुझ महान् की (समन्यवः) क्रोध से युक्त वा एक समान, मन्यु, क्रोध, गर्व से पूर्ण (सेनाः) सेनाएं (ऊती) देश की रक्षा के लिये (सम्-अरन्त) आगे बढ़ें वा युद्ध करें तब (नर्यस्य) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ, सबके हितैषी (ते) तेरे (बाह्वोः) बाहुओं में (दिद्युत्) चमकता शस्त्रास्त्र (पताति) शत्रु पर वेग से पड़े और (ते मनः) तेरा चित्त (विश्वद्र्यग् मा विचारीत्) सब तरफ न जाय । अथवा—(ते बाह्वोः दिद्युत् मा पताति) तेरी बाहुओं का तेजस्वी शस्त्र नीचे न गिरे, प्रत्युत् (ते मनः विश्वद्र्यग् विचारीत्) तेरा चित्त, विवेक सब ओर जाये, सब ओर से सावधान रहे, तेरा बल तेरे हाथों से भ्रष्ट न हो ।

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर सम्भरणं वसूनाम् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मर्तासः) मनुष्य (नः) हमें (अमन्ति) रोगों के समान पीड़ा देते हैं उन (अमित्रान्) हमसे स्नेह न करने वाले शत्रुओं को (दुर्गे) दुर्ग या नगर के प्रकोट में बैठ कर (अभि श्नथिहि) मुकाबला करके मार । (निनित्सोः) निन्दा करने वाले से (आरे) दूर रह कर ही (नः) हमारी (तं शंसं कृणुहि) वह प्रशंसनीय विजय कर और (नः) हमें (वसूनाम्) ऐश्वर्यों का (सम्भरणं आ भर) समूह लादे, वा हमारे राष्ट्रवासियों और शासकों को अच्छा पालन पोषण कर ।

शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) सुन्दर मुख, नासिका, ठोढ़ी वाले! सौम्य मुख! वा उत्तम मुकुटयुक्त राजन्! (सु-दामे) उत्तम दानी पुरुष के लिये (ते) तेरी (शतं) सैकड़ों (ऊतयः) रक्षायें और (सहस्रं शंसाः) सहस्रों प्रशंसाएं हों और (सहस्रं रातिः अस्तु) हजारों दान हों। हे राजन्! तू (वनुषः मर्त्यस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष के (वधः) हिंसाकारी साधनों को (जहि) नष्ट कर और (अस्मे) हमें (द्युम्नम्) यश और (रत्नं च) उत्तम धन (अधि धेहि) अधिक दे।

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! प्रभो! (विश्वा इत् अहानि) मैं सब दिनों (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी के (क्रत्वे) कर्म करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अस्मि) रहूँ। हे (शूर) शूरवीर! शत्रुनाशक! मैं सब दिनों (त्वावतः अवितुः) तेरे जैसे रक्षक के ही (रातौ) दिये दान पर (अस्मि) वृत्ति करूं। हे (तविषीव) बलवती सेना के स्वामिन्! हे शक्तिमन्! तू सब दिनों (उग्रः) शत्रुओं के लिये भयजनक (ओकः कृणुष्व) मेरे लिये उत्तम स्थान और सेना का उत्तम समवाय बना। हे (हरिवः) अश्वों, अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन्! तू (न मर्धीः) हमें मत मार, हिंसा मत कर।

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम्॥५॥

भा०—(इन्द्रे) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन ही (हर्यश्वाय) उस नरश्रेष्ठ, वेगवान् अश्व के स्वामी के विजय लाभ के लिये (एते) ये (कुत्साः) शस्त्रास्त्र समूह, शत्रु के काटने वाले वीर पुरुष और संशयों के काटने वाले, वा नाना उत्तम स्तुतियों और नाना शिल्पों के करने वाले जन भी (देव-जूतम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों से प्रेरित वा उनके अभिलषित

(शूषम्) सुखकारी (सहः) शत्रुपराजयकारी बल को (इयानाः) प्राप्त करते रहें और ऐसे ही (वयम्) हम लोग भी (तरुत्राः) सबको दुःखों, कष्टों से तारते और बचाते हुए (वाजम् सनुयाम) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल और धन प्राप्त करें और अन्यों को भी दें। हे (शूर) शूरवीर ! तू (सत्रा) सदा, न्याय और सत्य के अनुसार (वृत्रा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (सुहना कुरु) सुख से नाश करने योग्य और धनैश्वर्य से सुप्राप्य बना। राजा ऐसा प्रबन्ध करे जिससे दुष्ट सुगमता से दण्डित हों और प्रजाजन सहज ही धन प्राप्त कर सकें।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।६।९

भा०—व्याख्या देखो (सू० २४ मं० ६) ॥ इति नवमो वर्गः ॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥१॥

भा०—(असुतः सोमः) जिस प्रकार बिना तैयार किया ओषधि रस (इन्द्रम्) इन्द्रिय युक्त जीव को (न ममाद) सुख नहीं देता और (असुतः सोमः) न उत्पन्न हुआ पुत्र वा अस्नातक शिष्य (इन्द्रं न ममाद) गृह स्वामी, सम्पन्न पुरुष वा आचार्य को हर्षित नहीं करता, उसी प्रकार (असुतः) ऐश्वर्यरहित (सोमः) राष्ट्र (इन्द्रम् न ममाद) राजा को सुखी नहीं करता। (अब्रह्माणः सुतासः) वेदज्ञान से रहित शिष्य वा पुत्र (मघवानम्) धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को हर्ष नहीं देते, उसी प्रकार (अब्रह्माणः) निर्धन, धनसम्पदा न देने वाले (सुतासः) उत्पन्न जन वा पदार्थ भी (मघवानं न ममदुः) धनाढ्य पुरुष को प्रसन्न नहीं करते।

(यत् जुजोषत्) जो प्रेम से सेवन करे मैं (तस्मै) उसी के लिये (उक्थं जनये) उत्तम वचन प्रकट करूं (यथा) जिससे वह (नः नवीयः) हमारा उत्तम वचन (नृवत्) उत्तम पुरुष के समान (शृणवत्) श्रवण करे ।

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

भा०—(उक्थे-उक्थे) प्रत्येक उत्तम, उपदेश करने योग्य व्यवहार ज्ञान में (सोमः) शिष्य (इन्द्रं ममाद) उत्तम आचार्य को हर्ष देने वाला हो, उत्तम ज्ञान के लिये शिष्य गुरु को प्रसन्न करे । (नीथे-नीथे) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले प्रत्येक मार्ग वा सत्य व्यवहार, उत्तम वचन में (सुतासः) उत्पन्न शिष्य वा पुत्र भी (मघवानं) दान योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को प्रसन्न करें । इसी प्रकार (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पुत्रवत् राजा को प्रसन्न करे । प्रत्येक न्याययुक्त व्यवहारों में वे प्रजाजन ऐश्वर्यवान् राजा को संतुष्ट रक्खें । (समानदक्षाः पुत्राः सबाधः पितरं न) समान बल से युक्त पुत्र जिस प्रकार पीड़ायुक्त पिता को (अवसे हवन्ते) उसकी रक्षार्थ प्राप्त होते हैं वा (सबाधः पुत्राः अवसे पितरं हवन्ते) पीड़ायुक्त पुत्र रक्षा के लिये पिता को पुकारते हैं उसी प्रकार (यत् ईम्) जब भी प्रजाजन (सबाधः) पीड़ा से पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही (पितरं) पालक राजा को (समान-दक्षाः) समान बल-शाली होकर (अवसे हवन्ते) रक्षा के लिये पुकारें । इसी प्रकार जब राजा (सबाधः) संकट में हो तो वे (अवसे) उसकी रक्षा करने के लिये उसे (हवन्त) अपनावें ।

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (सुतेषु) अपने उत्पन्न पुत्रों में और विद्वान् जन (सुतेषु) अभिषिक्त पुरुषों में (यानि) जिन २ नाना (अन्या)

भिन्न २ उपदेश्य वचनों का (ब्रुवन्ति) उपदेश करते हैं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (ता) उन २ उत्तम कर्मों को (नूनम्) अवश्य (चकार) करे और (कृणवत्) अन्य २ भी उत्तम कर्म किया करे। (एकः) एक (पतिः) पति जिस प्रकार (जनीः इव) पुत्रोत्पादक धर्मदाराओं को (नि मामृजे) प्रथम ही दोष रहित कर लेता है इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय, (सर्वाः समानः) उत्तम मान आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान, निष्पक्ष होकर समस्त (पुरः) समक्ष आये प्रजाओं को (सु) अच्छी प्रकार (नि मामृजे) पापाचरणों से शुद्ध पवित्र करे। जनीः—दारवद्बहुवचनं, जात्याख्यायां वा।

एवा तमा॑हुरु॒त शृ॑ण्व॒ इन्द्र॒ एको॑ विभ॒क्ता त॒रणि॑र्म॒घाना॑म्।
मि॒थ॒स्तुर॑ ऊ॒तयो॒ यस्य॑ पू॒र्वीर॒स्मे भ॒द्राणि॑ सश्चत प्रि॒याणि॑ ॥४॥

भा०—(यस्य) जिसके (पूर्वीः) सदा से विद्यमान (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर अति शीघ्र कार्य करने वाली वा मिलकर शत्रु का नाश करने वाली, (ऊतयः) रक्षाएं वा रक्षाकारणी सेनाएं, शक्तियें (अस्मे) हमें (भद्राणि) सुखजनक, (प्रियाणि) प्रिय ऐश्वर्य (सश्चत) प्राप्त कराती हैं वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा (एकः) एक अद्वितीय, (तरणिः) सबको संकटों से पार उतारने वाला, (मघानां विभक्ता) नाना ऐश्वर्यों का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला है (तम् एव आहुः) उसका ही लोग उपदेश करते हैं (उत तम् एव शृण्वे) और उसको ही मैं गुरुजनों से उपदेश कथाओं द्वारा श्रवण करूं वा उसके प्रति ही मैं कान देकर उसके ज्ञान, आज्ञा वचनादि सुनूं।

एवा वसि॑ष्ठ॒ इन्द्र॑मू॒तये॒ नॄन्कृ॑ष्टी॒नां वृ॑ष॒भं सु॒ते गृ॑णाति। स॒ह॒स्रिण॒ उप॑ नो माहि॒ वाजा॑न् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(सुते) अन्न को उत्पन्न करने के लिये जैसे (कृष्टीनां) खेतियों के वृद्ध्यर्थ (वृषभं) वर्षण करने वाले मेघ की विद्वान् जनस्तुति करते हैं

और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीनां) खेती करने हारों के बीच (वृषभं) बलवान् बैल की स्तुति की जाती है वैसे (वसिष्ठः) देश में बसने वाले उत्तम जन (सुते) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के निमित्त और (ऊतये) रक्षा के लिये भी (कृष्टीनां) मनुष्यों के बीच (वृषभं) सर्वश्रेष्ठ (इन्द्रं) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्य युक्त पुरुष की (गृणाति) स्तुति करता है और (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षार्थ राजा को उपदेश भी करे। हे विद्वन्! राजन्! तू (नः) हमें (सहस्रिणः वाजान्) सहस्रों सुखों से युक्त ऐश्वर्य (उप माहि) प्रदान कर। हे विद्वान पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम २ उपायों से रक्षा करें। इति दशमो वर्गः॥

[२७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रं नरो॑ ने॒मधि॑ता हवन्ते॒ यत्पार्या॑ यु॒नज॑ते॒ धिय॒स्ताः।
शूरो॒ नृषा॑ता॒ शव॑सश्चका॒न आ गोम॑ति व्र॒जे भ॑जा॒ त्वं नः॑॥१॥

भा०—(यत्) जो (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् को (नेमधिता) संग्राम में (नरः) मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं, (यत्) जो (पार्याः) पालन करने योग्य (धियः) और धारण पोषण योग्य प्रजाएं ऐश्वर्यवान् राजा का (युनजते) सहयोग करती हैं, हे राजन्! तू वह (शूरः) शूरवीर (नृ-साता) मनुष्यों को विभक्त करने वाला, (शवसः चकानः) बल की कामना करता हुआ (ताः) उन २ मनुष्यों, उन प्रजाओं को और (नः) हमें भी (गोमति व्रजे) उत्तम वाणियों से परम प्राप्तव्य ज्ञानमार्ग वा ब्रह्मपद भूमियों से युक्त उत्तम राज्य में (आ भज) हमें रख और हम पर अनुग्रह कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—जिसको सब स्वीकार करते (पार्याः धियः युञ्जते) जिसको परम पद को प्राप्त होने वाली बुद्धियां, योग द्वारा प्राप्त करती हैं

वह प्रभु हममें हो, उन मनुष्यों और उन बुद्धियों का (गोमतिं व्रजे) वाणियों से युक्त परम गन्तव्य ज्ञानमार्ग में (आ भज) रक्खे।

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! राजन्! विद्वन्! (यः) जो (ते) तेरा (शुष्मः अस्ति) बल है, वह तु (सखिभ्यः) मित्र (नृभ्यः) उत्तम नेता मनुष्यों को (शिक्ष) प्रदान कर। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! (त्वं हि) तू निश्चय से (वि-चेताः) विशेष ज्ञानवान् होकर (परि-वृतं राधः न) छुपे धन के समान ही (दृढा) दृढ़ दुर्गों और परम ज्ञान को (अपा वृधि) खोलकर हमें प्रदान कर।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक पुरुष (राजा) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्या विनय से प्रकाशित और (जगतः) जगत्, जंगम संसार और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का स्वामी हो। (अधि क्षमि) पृथिवी पर (यत्) जो (विषु-रूपं) विविध प्रकार का धन है वह उसी का है। (ततः) उसमें से वह (दाशुषे) दानशील पुरुष को (वसूनि ददाति) नाना धन देता है। वह (उप-स्तुतः) प्रशंसित (अर्वाक्) हमें प्राप्त होकर (राधः चोदत्) धन प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४॥

भा०—(यस्य) जिसकी (अभि-वीता) तेज से युक्त, प्रजा का रक्षण करने वाला, (दक्षिणा) दान और क्रिया सामर्थ्य, (अनूना) किसी से न्यून न होकर (सखिभ्यः नृभ्यः) मित्र जनों के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य

को (पीपाय) बढ़ाता है (नु चित्) वह पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (मघवा) धन, ज्ञान का स्वामी (दानः) दान करता हुआ (नः) हमारी (ऊती) रक्षार्थ (स-हूती) समान रूप से सबको देने की नीति से (वाजं) बल और ऐश्वर्य को (नि यमते) नियन्त्रित करता है। राजा प्रजा की रक्षा में और समान मूल्य के पदार्थों के विनियम से धन और बल दोनों को नियम में रक्खे। तब उसका अप्रतिम धन, दानशक्ति और क्रिया सामर्थ्य प्रजा को सुख दे सकते हैं।

नू इ॑न्द्र रा॒ये वरि॑वस्कृधी न॒ आ ते॒ मनो॑ ववृत्याम म॒घाय॑।
गोम॒दश्वा॑वद्र॒थव॒द्व्यन्तो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नु) शीघ्र ही (राये) ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि के लिये (नः वरिवः कृधि) हम प्रजाजनों की सेवा कर। हम भी (ते मनः) तेरे मन को (मघाय) आदर योग्य प्रशंसनीय उपाय से प्राप्त धन के लिये (आ ववृत्याम) आकर्षण करें, बार २ युक्त करें। हे विद्वान् वीर पुरुषो! (गोमत्) गौओं, भूमियों से युक्त (अश्ववत्) अश्वों से युक्त, (रथवत्) रथों से सम्पन्न ऐश्वर्य का (व्यन्तः) उपभोग, रक्षण और प्राप्ति करते हुए (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। इत्येकादशो वर्गः॥

[२८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ४ स्वराट् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

ब्रह्मा॑ ण इन्द्रोप॑ याहि वि॒द्वान॒र्वाञ्च॑स्ते॒ हर॑यः सन्तु यु॒क्ताः।
विश्वे॑ चि॒द्धि त्वा॑ वि॒हव॑न्त॒ मर्ता॑ अ॒स्माक॒मिच्छृ॑णुहि विश्वमिन्व १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य और विद्योपदेश देने हारे राजन्! आचार्य! प्रभो! तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (नः ब्रह्म उप याहि) हमारा बड़ा राष्ट्र और धन प्राप्त कर, करा। (ते) तेरे अधीन (हरयः) अश्वारोही और

। युक्त मनुष्य (अर्वाञ्चः) विनयशील और (युक्ताः) मनोयोग देने वाले हों। (विश्वे चित् मर्त्ताः हि) समस्त मनुष्य निश्चय से (त्वा वि हवन्त) तुझे विविध प्रकार से पुकारते हैं। हे (विश्वमिन्व) सबके प्रेरक, सर्वज्ञ, सर्वप्रिय! तू (अस्माकम् इत्) हमारा वचन अवश्य (शृणुहि) श्रवण कर।

हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम्।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! दुष्टनाशक! (ते महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (हवं) उत्तम वाणी के व्यवहार तथा यज्ञ और संग्राम को भी (वि आनड्) व्याप्त है। (यत्) जिससे हे (शवसिन्) बलवन्! तू (ऋषीणाम्) ऋषियों, वेदज्ञ विद्वानों के (हवं, ब्रह्म) स्तुत्य ब्रह्मज्ञान और देश के धन को भी (पासि) रक्षा करता है। हे (उग्र) तेजस्विन्! (यत्) जो (वज्रं हस्ते दधिषे) शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में धारण करता है वह तू (घोरः सन्) शत्रु को मारने में समर्थ होकर (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से (अषाढः) अन्यों के लिये असह्य हो (जनिष्ठाः) वा अजेय सेनाओं को प्रकट कर।

तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

भा०—(रोदसी न) सूर्य जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी के पदार्थों को सन्मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार (यत्) जो पुरुष (जोहुवानान्) निरन्तर आदर से बुलाने, पुकारने वाले और आदरपूर्वक नाना राज्य पदों पर बुलाये गये, (नॄन्) नायक पुरुषों को (सं निनेथ) सन्मार्ग पर चलाता है और जो (तूतुजिः) शत्रुओं का नाशक और प्रजा पालक होकर (अतूतुजिं) अहिंसक प्रजा और कर न देने वाले शत्रु का (अशिश्नत्) शासन करता है वह तू (हि) निश्चय से (महे क्षत्राय) बड़े क्षात्र बल और

धन प्राप्त करने और (महे शवसे) बड़े सैन्य बल का सञ्चालन करने के लिये (जज्ञे) समर्थ होता है ।

एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) सत्य न्याय के देखने हारे राजन् ! (नः) हमारे (दुः-मित्रासः) दुष्ट मित्र और (क्षितयः) हमारे साथ रहने वाले लोग (हि) भी (पवन्ते) तुझे प्राप्त होते हैं । तू (एभिः अहभिः) इन कुछ दिनों में, शीघ्र (दशस्य) न्याय को प्रदान कर । (यः) जो तू (अनृतम्) असत्य को (प्रतिचष्टे) प्रत्याख्यान करता है वह तू (अनेनाः) पाप रहित, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (मायी) बुद्धिमान् होकर (द्विता) सत्य और असत्य इन दोनों के बीच (नः अव सात्) हमारा निर्णय कर ।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।५।१२

भा०—(यत्) जो (महः रायः) बड़े २ ऐश्वर्य (नः ददत्) हमें प्रदान करता है (एनं मघवानम्) उस ऐश्वर्यों के स्वामी को हम (इन्द्रम् इत् वोचेम) ऐश्वर्यवान्, 'इन्द्र' नाम से ही पुकारें और (यः) जो (अर्चतः) अपने सत्कार करने वालों को (ब्रह्म-कृतिम्) धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के प्रयत्न वा साधन देता वही (अविष्ठः) सबसे उत्तम रक्षक है । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से पालन करो । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट्पंक्तिः । ३ पंक्तिः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१ स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (सुन्वे) उत्पन्न किया जाता है। हे (हरिवः) उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (तदोकाः) तू उस श्रेष्ठ गृह में निवास करता हुआ (तु) भी (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (प्र याहि) प्रयाण कर। (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम रीति से उत्पन्न राष्ट्र के ऐश्वर्य तथा प्रजाजन को (तु) भी (पिब) उपभोग और पालन कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (इयानः) प्राप्त होता हुआ तू हमें (मघानि) ऐश्वर्य (ददः) प्रदान कर।

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! वेदों के जानने हारे ! हे (वीर) विविध विद्याओं का उपदेश करने हारे शूरवीर राजन् ! तू (ब्रह्मकृतिं) परमेश्वर के बनाये जगत् को, बड़े राष्ट्र के कार्य को (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हरिभिः) उत्तम पुरुषों सहित (अर्वाचीनः) अब भी (तूयम् याहि) शीघ्र प्राप्त हो। (अस्मिन् सवने) इस ऐश्वर्यमय यज्ञ, वा राष्ट्र शासन के कार्य में (नु सु मादयस्व) शीघ्र तू प्रसन्न होकर अन्यों को भी सुखी कर और (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेद-वचनों को (उप शृणवः) श्रवण कर।

का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम और दातव्य ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (ते) तेरी (सूक्तैः) उत्तम वचनों और वेदविद्या के प्रवचनों से (का अरंकृतिः अस्ति) क्या ही, कैसी उत्तम, शोभा है। वे उत्तम वचन और विद्या के गुप्त रहस्य तुझे आभूषण के समान सुशोभित करते हैं। हे एश्वर्यवन् ! हम शिष्यगण (ते) तेरे लिये (नूनं) सत्य कहो, आज्ञा करो (कदा दाशेम) कब २ उपहार गुरु दक्षिणादि प्रदान करें ? (त्वाया) तुझसे

ही हमारी (विश्वाः मतीः) सब बुद्धियां (आ ततने) विस्तृत ज्ञान वाली होती हैं। (अध) और हे (इन्द्र) अखिल ज्ञानप्रद! (मे इमा हवा) मेरे ग्राह्य पदार्थ और प्रार्थना के वचन (श्रृणवः) श्रवण करो और (हवा) ग्राह्य ज्ञानोपदेश (मे श्रृणवः) मुझे श्रवण कराओ।

उतो घा ते पुरुष्या इदासन्येषां पूर्वेषामश्रृणोर्ऋषीणाम्।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्या, ऐश्वर्य दान करने हारे! (उतो घ) और (येषाम्) जिन (पूर्वेषां ऋषीणाम्) पूर्व के, सत्य ज्ञान के द्रष्टा जनों के ज्ञान को तू (अश्रृणोः) श्रवण करता है (ते इत्) वे निश्चय से (पुरुष्याः आसन्) पुरुषों में उत्तम, मनुष्यों के हितकारी रहे हैं। हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनवन्! (अध) और (अहं) मैं (त्वा) तुझे (जोहवीमि) गुरु स्वीकार करता हूँ, (त्वं) तू (प्रमतिः) उत्तम ज्ञान बुद्धि वाला होकर (नः पिता इव असि) हमारे पिता के समान है।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः। यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८। मं० ५। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ निचृत्पंक्तिः। ४, ५ स्वराट् पंक्तिः ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! राजन्! प्रभो! तू (शवसा) बल और ज्ञान सहित या उसके द्वारा (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो। हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्य) इस (रायः) धनैश्वर्य का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो। वा (अस्य वृधः रायः भव) इस बढ़ाने,

बढ़ने वाले ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (सुवज्र) उत्तम वीर्यवन्! हे (शूर) शत्रुनाशन! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक! तू (महे नृम्णाय) बड़े धनैश्वर्य और (महि क्षत्राय) बड़े शत्रुनाशक राष्ट्र और (पौंस्याय भव) पौरुष, बल के प्राप्त करने के लिये उद्यत हो।

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! (शूरः) शूरवीर पुरुष (वि वाचि) विविध वाणियों के प्रयोग करने के अवसर अर्थात् संग्राम और स्तुतिकाल में (हव्यं) पुकारने और स्तुति करने योग्य (त्वा उ) तुझको ही (हवन्ते) पुकारते हैं। (तनूषु) शरीरों में (सूर्यस्य सातौ) सूर्य नाम दक्षिण नासागत प्राण के प्राप्त होने पर, आवेश में अथवा (तनूषु) अंगों में सूर्य के समान तेज के प्राप्त करने के निमित्त (त्वा उ हवन्ते) तेरी ही स्तुति करते हैं। (त्वं विश्वेषु जनेषु) तू सब मनुष्यों में (सेन्यः) सेना नायक होने योग्य है और (त्वं) तू (वृत्राणि) बढ़ते शत्रु सैन्यों को (सु हन्तु) अच्छी प्रकार दण्डित कर और (रन्धय) वश कर अथवा (सुहन्तु रन्धय) उत्तम हनन साधनों से शत्रुओं का नाश कर।

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु।
न्यश्ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (सुदिना) शुभ दिनों को (वि उच्छान्) खूब प्रकाशित कर (दधे) धारण करता है (केतुम् दधे) ज्ञान प्रकाशक को धारण करता है, वह (सुभगाय देवान् हुवानः होता न) सुख, कल्याण के लिये किरणों को देता हुआ, यज्ञ में देवताओं को हवि देते या आह्वान करते हुए होता या अग्नि के समान प्रदीप्त होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते! तू भी (सुदिना अहा) शुभ दिनों को प्राप्त कर (व्युच्छान् देवान् दधः) खूब तेजस्वी उज्ज्वल वीर पुरुषों और शुभ गुणों

को धारण कर और (समत्सु) संग्रामों में (उपमं) आदर्श रूप (केतुम्) ध्वजा वा ज्ञापक चिह्न को (दधः) धारण कर। तू (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और (असुरः न) प्राणवत् सबको जीवन देने वाला, वा वायुवत् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, (होता) सबको वृत्ति देने वाला होकर (देवान्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों को (सु-भगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (हुवानः) बुलाता, उनको स्वीकार करता तथा युद्धाग्नि में होता के तुल्य मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ (नि सीदत्) विराजे। (२) विद्वान् (उपमं केतुम् दधत्) सर्वोपमायोग्य ज्ञान धारे। (देवान् हुवानः) ज्ञानेच्छुकों को ज्ञान दे (अग्निः असुरः न निसीदत्) अग्निवत् प्रकाशक और वायुवत् सर्वप्रिय हो।

व॒यं ते त॑ इन्द्र॒ ये च॑ देव॒ स्तव॑न्त शूर॒ दद॑तो म॒घानि॑।
यच्छा॑ सू॒रिभ्य॑ उप॒मं वरू॑थं स्वा॒भुवो॑ जर॒णाम॑श्नवन्त ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! हे (देव) दानशील! (मघानि) नाना ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (ते) तेरी (ये च स्तवन्त) जो लोग स्तुति करते हैं (ते) वे और (वयम्) हम (स्वाभुवः) उत्तम रीति से समृद्ध और सामर्थ्यवान् होकर (जरणाम्) उत्तम स्तुति और दीर्घ आयु को (अश्नवन्त) प्राप्त हों। तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (उपमं वरूथं) उत्तम गृह और कष्टवारक सैन्य (यच्छ) प्रदान कर।

वोचे॒मेदिन्द्रं॑ म॒घवा॑नमेनं म॒हो रा॒यो राध॑सो॒ यद्दद॑न्नः।
योऽर्च॑तो ब्रह्म॑कृति॒मवि॑ष्ठो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८। मं० ५। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[३१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री। २, ८ गायत्री। ६, ७, ९ निचृद्गायत्री। ३, ४, ५ आर्च्युष्णिक्। १०, ११ भुरिगनुष्टुप्। १२ अनुष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (सोमपाव्ने) सोम पान करने वाले यजमान, 'सोम' अर्थात् वीर्य का पालन वा रक्षण करने वाले ब्रह्मचारी, पुत्र और शिष्य के पालन करने वाले गृहपति और आचार्य तथा ऐश्वर्य और अन्न के पालक, राजन्य और वैश्य तथा योग द्वारा ब्रह्मज्ञान के पान करने वाले मुमुक्षु और उत्पन्न जगत् के पालक परमेश्वर, (हर्यश्वाय) मनुष्यों में श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, वेगवान् अश्वों बलों के स्वामी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अन्नदाता, भूमिपालक, आत्मा, परमात्मा आदि के लिये (मादनं) अतिहर्षजनक सुखदायी (प्र गायत) वचन का उपदेश वा उसके गुणों का वर्णन करो ।

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

भा०—(सु-दानवे) उत्तम दाता (सत्य राधसे) सत्य ज्ञान और न्याय के धनी पुरुष के लिये मैं (उक्थं) उत्तम वचन (शंसे) कहूँ । (यथा) जैसे (नरः) लोग उसके लिये (द्युक्षं) उत्तम अन्न आदि से सत्कार करते हैं वैसे ही हम लोग उसका (द्युक्षं चकृम) सत्कार करें ।

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे लिये (वाज-युः) अन्न, ज्ञान, बल, वेग आदि की कामना वाला, (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय, सामर्थ्य, वाणी आदि चाहने वाला हो । हे (शतक्रतो) असंख्यों बुद्धियों के स्वामिन् ! हे (वसो) सब में बसने और बसाने हारे ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) ऐश्वर्य एवं हित, रमणीय कार्य को चाहने वाला हो।

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जितेन्द्रिय! हे (वृषन्) बलवन्! सुखों के देने वाले! हे (वसो) बसने बसाने वाले! (वयम्) हम (त्वायवः) तेरी कामना करते हुए, (अभि प्र नोनुमः) खूब स्तुति, विनय करते हैं (अस्य तु नः विद्धि) तू हमारी इस अभिलाषा को जान।

मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ऽर्यो र॑न्धी॒ररा॑व्णे।
त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन्! ऐश्वर्यवन्! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हमें (निदे) निन्दक (वक्तवे) गर्हित, (अराव्णे) अदानशील, अराति, शत्रु के हित के लिये (मा रन्धीः) मत दण्डित कर और (मम त्वे अपि क्रतुः) मेरी जो तेरे में सद् बुद्धि है उसे तू नष्ट मत होने दे।

त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरोयो॒धश्च॑ वृत्रहन्।
त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे! (त्वं) तू (सप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (वर्म असि) कवच के समान रक्षक और (पुरः योधः च) आगे बढ़कर युद्ध करने हारा है। (त्वया युजा) तुझ सहायक से मैं (प्रति ब्रुवे) शत्रु का उत्तर दूं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

म॒हाँ उ॒तासि॒ यस्य॒ तेऽनु॑ स्व॒धाव॑री॒ सहः॑।
म॒म्नाते॑ इन्द्र॒ रोद॑सी ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुदलविदारक! जिस प्रकार सूर्य के अधीन (स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते) जल, अन्न से युक्त आकाश, पृथिवी दोनों परस्पर स्थिर हैं उसी प्रकार (यस्य ते सहः) जिस तेरे बल के (अनु) अनुकूल रहकर (स्वधावरी रोदसी) अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त स्त्री पुरुष, वा राजा प्रजा वा राष्ट्र और सेनावर्ग दोनों (मम्नाते) मिलकर रहते हैं वह तू (महान् असि) गुणों, बलों में महान् हो।

तं त्वा॑ म॒रुत्व॑ती॒ परि॒ भुव॒द्वाणी॑ स॒याव॑री।
नक्ष॑माणा स॒ह द्युभिः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्, विद्वन् ! (मरुत्वती) बलवान् मनुष्यों वाली, (स-यावरी) साथ प्रयाण करने वाली (द्युभिः सह) तेजों, धनों के साथ बढ़ती हुई (वाणी) शत्रुहिंशक बाण आदि शस्त्रों से सम्पन्न सेना (तं त्वा परि भुवत्) उस तुझको घेरे रहे, वह तेरी आज्ञाकारिणी हो, तुझको (मरुत्वती वाणी) मनुष्यों की स्तुति, उत्तम गुणों सहित वाणी प्राप्त हो और विद्वान् को (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजों, गुणों और काम्य फलों से युक्त (स-यावरी) सदा साथ विद्यमान (मरुत्वती) उत्तम विद्वानों से प्राप्त (वाणी) वेदविद्या, (परि भुवत्) सुशोभित करे।

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि।
सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (ऊर्ध्वासः) जो उत्तम कोटि के (इन्दवः) समस्त ऐश्वर्य, एवं ऐश्वर्ययुक्त आनन्दित जन हैं वे (द्यवि) इस पृथिवी पर (त्वा दस्मम्) शत्रुनाशक तुझको ही (उपभुवन्) प्राप्त हों और (त्वा अनु भुवन्) तेरे अनुकूल हों। (कृष्टयः) सब प्रजाजन (ते सं नमन्त) तेरे लिये विनय से झुकें।

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने में से (महि वृधे) बड़ों के बढ़ाने वाले, बड़ों का सत्कार करने वाले, (महे) गुणों में महान् के आदरार्थ (प्र भरध्वम्) उत्तम २ पदार्थ प्रस्तुत करो और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त वाले शिष्य और उत्तम ज्ञान वाले विद्वान् के लिये (सुमतिं) शुभ मति और उत्तम ज्ञान (प्र कृणुध्वम्) अच्छी प्रकार सम्पादन करो। उसको ज्ञान प्राप्त करने के उत्तम से उत्तम साधन प्रदान करो। हे राजन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों का धन, विद्या, बल से पूर्ण करने वाला होकर (पूर्वीः विशः) पिता पितामहादि से प्राप्त प्रजाओं

को (प्र चर) प्राप्त कर। उसमें अपना अधिकार फैला और हे विद्वन्! तू उनमें परिव्राजक होकर ज्ञान प्रसार कर।

उ॒रु॒व्यच॑से म॒हिने॑ सुवृ॒क्तिमिन्द्रा॑य॒ ब्रह्म॑ जनयन्त॒ विप्राः॑।
तस्य॑ व्र॒तानि॒ न मि॑नन्ति॒ धीराः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(उरु व्यचसे) बड़े विश्व में व्यापक (महिने) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुति और (ब्रह्म जनयन्त) वेदमन्त्र प्रकट करते हैं। (धीराः) वे उसी के ध्यान में मग्न होकर (तस्य व्रतानि) उसके निमित्त करने योग्य धर्म कार्यों का (न मिनन्ति) लोप नहीं करते। (२) इसी प्रकार राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्य वाले महान् राजा के लिये विद्वान् लोग (सु-वृक्तिम्) उत्तम शत्रु और पाप के निवारक साधन और (ब्रह्म) ऐश्वर्य को उत्पन्न करें, उसके बनाये (व्रतानि) कर्त्तव्य, नियमों का नाश न करें।

इन्द्रं॒ वाणी॒रनु॑त्तमन्युमे॒व स॒त्रा राजा॑नं दधिरे॒ सह॑ध्यै।
हर्य॑श्वाय बर्हया॒ समा॒पीन् ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—(वाणीः) वाणीवत् शत्रुनाशक सेनाएं (अनुत्त-मन्युम्) मन्यु, शत्रु के उच्छेदन के संकल्प से युक्त (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (राजानं) राजा को (सत्रा) अपने साथ (सहध्यै) शत्रु पराजय के लिये (दधिरे) धारण कर। हे प्रजाजन! (हर्यश्वाय) मनुष्यों में अश्ववत् बलवान्, वेगवान्, श्रेष्ठ पुरुष की वृद्धि के लिये (आपीन्) आप्त बन्धु जनों को भी (सं बर्हय) अच्छी प्रकार बढ़ा, उत्साहित कर। (२) (वाणीः) उत्तम स्तुतियां, वा याचना प्रार्थना करने वाली प्रजाएं भी, (अनुत्त-मन्युम्) क्रोध रहित, प्रसन्न राजा वा प्रभु को, अन्तः और बाह्य शत्रु के विजय के लिये धारण करें। उसके ही जनों को बढ़ावें। इति षोडशो वर्गः ॥

[३२]

वसिष्ठः । २६ वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, २४ विराड् बृहती । ६, ८, १२, १६, १८, २६ निचृद्बृहती । ११, २७ बृहती । १७, २५ भुरिग्बृहती । २१ स्वराड्बृहती । २, ६ पंक्तिः । ५ १३, १५, १६, २३ निचृत्पंक्तिः । ३ साम्नी पंक्तिः । ७ विराट् पंक्तिः । १०, १४ भुरिगनुष्टुप् । २०, २२ स्वराडनुष्टुप् ॥ सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! (वाघतः) विद्वान् लोग भी (अस्मत् आरे) हम से दूर (त्वा मो सु निरीरमन्) तुझे आनन्द विनोद में न रमने दें । (आरात्तात् चित्) दूर रहता हुआ भी तू (नः सधमादं आ गहि) हमारे साथ आनन्द हर्ष करने के निमित्त प्राप्त हो । (इह वा) और इस राष्ट्र वा जगत् में (सन्) रहकर (नः उप श्रुधि) हमारे वचन श्रवण कर ।

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (इमे ब्रह्म-कृतः) ये अन्न, धन और वेद द्वारा स्तुति करने वाले लोग (मधौ मक्षः न) मधु वा मधुर पदार्थ पर मधुमक्खी के समान (ते सुते) तेरे ऐश्वर्य या शासन में (आसते) विराजते हैं और (जरितारः) उपदेष्टा, स्तुतिशील (वसूयवः) धन, प्राण और नाना लोकों की कामना वाले लोग (रथे न पादम्) रथ में पैर के समान (इन्द्रे कामम् आदधुः) ऐश्वर्यप्रद, परमैश्वर्ययुक्त तुझ प्रभु में ही अपनी समस्त कामना वा अभिलाषा को स्थिर करते हैं ।

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (रायस्कामः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ, (पितरं पुत्रः न) पिता को पुत्र के समान (सु-दक्षिणं) उत्तम दानशील, उत्तम

क्रिया-सामर्थ्यवान्, (वज्रहस्तं) बलवीर्य सम्पन्न, बल से शत्रु को मारने वाले राजा को अपना (पितरं) पालक (हुवे) स्वीकार करता हूँ।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघुवंश ॥

इमे इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥

भा०—(इमे) ये (दध्याशिरः) राष्ट्र को धारण, उसका उपभोग करने वाले (सोमासः) ऐश्वर्य युक्त शासक (सुन्विरे) प्रजाओं का शासन करें। हे (वज्रहस्त) बलवीर्य को हाथों में धारण करने हारे राजन्! (पीतये) राष्ट्र पालन के लिये (तान् आ याहि) उनको प्राप्त कर और (हरिभ्याम्) उत्तम अश्वों से तू (ओकः आयाहि) अपने पद वा भवन को आ। (२) इसी प्रकार ध्यान धारणा वाले जन प्रभु की आराधना करते हैं। वह उनके आनन्द और रक्षार्थ प्राप्त हैं।

श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५॥१७॥

भा०—(वसूनां) बसे हुए प्रजाजनों की (गिरः) वाणियों को जो राजा (श्रुत्कर्णः) श्रवण करने वाले सावधान कानों से (श्रवत्) सुने, वही (ईयते) आदरपूर्वक प्रार्थना किया जाता है। वह (नः गिरः चित् नु) हमारी वाणियों को (मर्धिषत्) चाहे, (सद्यः चित्) अति शीघ्र (यः) जो (शता सहस्राणि) सैकड़ों और सहस्रों को (ददत्) प्रदान करे। (दित्सन्तम्) दान देना चाहने वाले को (न किः आ मिनत्) कोई भी पीड़ित या दुखी न करे। इति सप्तदशो वर्गः ॥

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे!

और धनों के प्राप्त करने हारे राजन्! (यः) जो (ते) तेरे (गभीरा) गम्भीर (सवना) शासनों, आदेशों को (सुनोति) करता और (आ-धावति च) आगे वेग से बढ़ता है (सः) वह (वीरः) विविध विद्या और बल से युक्त पुरुष (इन्द्रेण) ऐश्वर्य और (नृभिः) उत्तम नायकों सहित (अप्रतिष्कुतः) सबसे बढ़कर (शुशुवे) हो जाता है।

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्सुमजासि शर्धतः।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शर्धतः) बलवान् शत्रुओं को (सम् अजासि) एक साथ उखाड़ने में समर्थ हो और (शर्धतः सम् अजासि) बल-उत्साहवान् पुरुषों को एक साथ सेनावत् सञ्चालित करता है, वह तू (मघोनां) उत्तम धन धान्य वाले पुरुषों के (वरूथं) गृह के समान शरण योग्य, रक्षक (भव) हो। हम (त्वाहतस्य) तेरे से मारे गये (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (वेदनं) धन सम्पद् को (वि भजेमहि) विविध प्रकार से बांट लें और सेवन करें। (दुः-नाशः) तू कठिनता से नाश होने योग्य, सुदृढ़ होकर हमारे (गयम् आ भर) गृह को प्राप्त करा और हमारे गृह को पूर्ण कर।

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (सोमपाव्ने) 'सोम' ओषधिरस का पान करने वाले के लिये (सोमम् सुनोत) उत्तम ओषधिरस उत्पन्न करो। इसी प्रकार (सोमपाव्ने) ऐश्वर्य को पालन करने में समर्थ (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणे) बलवान् पुरुष के लिये (सोमं) ऐश्वर्य (सुनोत) उत्पन्न करो और उक्त वीर्यवान् 'इन्द्र' पद के लिये 'सोम' वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक करो। (अवसे) तृप्ति के लिये (पक्तीः) नाना पकने योग्य अन्नों को (पचत इत्) पकाओ। (पृणन् इत्) सबको पालन और पूर्ण करने वाला ही (मयः पृणते) सबको सुख प्रदान करता है।

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोमिनः) 'सोम' धनैश्वर्य, वीर्य, अन्नादि के पालक जनो ! आप लोग (मा स्रेधत) परस्पर नाश मत करो। (महे राये) बड़ी धनैश्वर्य प्राप्ति और (आ-तुजे) सब प्रकार के बल प्राप्त करने, कराने और सर्वतः पालक ऐश्वर्य के लिये (दक्षत) सदा यत्न करो। (तरणिः इत्) संकटों को पार करने वाला पुरुषार्थी पुरुष ही (जयति क्षेति) विजय करता और (पुष्यति) समृद्ध हो जाता है। (देवासः) विद्वान् पुरुष और उत्तम गुण भी (कवत्नये) कुत्सित आचार वाले पुरुष के हित के लिये (न) नहीं होते।

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१०॥१८॥

भा०—(यस्य) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, तत्वदर्शी, वीर, विद्वान्, प्रभु (अविता) रक्षक है, यस्य (मरुतः) जिसके रक्षक, शिक्षक, प्राणवत् प्रिय, वायुवद् बलवान् विद्वान् हैं (सः) वह विद्वान् पुरुष (गोमति व्रजे) वाणियों से युक्त प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग में वह नाना भूमियों और गवादि पशुओं से सम्पन्न प्राप्तव्य पद को (गमत्) प्राप्त करता है। (सु-दासः) उत्तम दान देने वाले के (रथं) रथ को (नकिः परि आस) कोई पलट नहीं सकता और (न रीरमत्) न अन्य उसको दुःख दे सकता है।

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यस्य भुवः) जिसकी भूमि वा प्राणों की (त्वम् अविता) तू रक्षा करता, (वाजयन्) ऐश्वर्य, ज्ञान, अन्न आदि की कामना करता है वह (मर्त्यः) मनुष्य (वाजं गमत्) ऐश्वर्य, बल, ज्ञान अन्नादि (गमत्) प्राप्त करता है। हे (शूर) शत्रुनाशक ! वीर स्वामिन् ! तू (अस्माकम्) हमारा और हमारे (नृणाम्) मनुष्यों

और (रथानाम्) रथों का, हमारी इन्द्रियों और रमण योग्य देहों का भी (अविता) रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे और हमारा विचार रख।

उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥

भा०—(यः) जो पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, सूर्य के समान तेजस्वी (हरिवान्) मनुष्यों और अश्व सैन्यों का स्वामी होकर (सोमिनि) बल, वीर्य और ऐश्वर्यवान् पुरुष में (दक्षं दधाति) ज्ञान, कर्म, बल, धारण कराता है (जिग्युषः न) विजेता के समान (अस्य इत् नु) उसका (अंशः धनं न) भाग वा धन (उद्रिच्यते) सबसे अधिक होता है।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यज्ञियेषु) सत्कार योग्य जनों और यज्ञ दान, सत्संग, प्रजापालन आदि व्यवहारों में (अखर्वं) बहुत अधिक (सु-धितम्) उत्तम रीति से रक्षित, विहित, हितकारी, (सुपेशसं) उत्तम रूप से युक्त, भव्य, (मन्त्रं) मन्त्र को (आ दधात) सब ओर से धारण करो। (पूर्वीः चन) पूर्व के भी (प्र-सितयः) उत्तम प्रेम-बन्धन (तं तरन्ति) उसको प्राप्त होते हैं (यः) जो पुरुष (कर्मणा) सत्कर्म से (इन्द्रे भुवत्) ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु परमेश्वर में दत्तचित्त रहता है।

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! (त्वा वसुम्) तुझसे ऐश्वर्य पाने और तुझमें ही बसने वा रमने और तेरे अधीन रहने वाले (तं) उस पुरुष को (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (आ दधर्षति) तिरस्कार कर सकता है? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे (पार्ये दिवि) पालन

योग्य व्यवहार और संसार से पार उतारने, संकटों से बचाने वाले ज्ञान-प्रकाश में (श्रद्धा इत्) सत्य धारण ही है जिससे प्रेरित होकर (वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष (वाजं सिषासति) अन्न, ज्ञान व ऐश्वर्य का भोग करता है ।

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—(ये) जो लोग (प्रिया वसु) प्रिय धन (ददति) दान करते हैं उन (मघोनः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं का नाश करने के संग्राम आदि कार्यों वा धनों को प्राप्त करने के उद्योगों में (चोदय स्म) नित्य प्रेरित कर । हे (हरि-अश्व) हे उत्तम बलवान् मनुष्यों के स्वामिन्! (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति और न्यायशासन में (सूरिभिः) विद्वानों की सहायता से (विश्वा दुरिता) सब दुःखजनक कारणों और दुष्टाचारों को (तरेम) पार कर जावें ।

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (अवमं वसु) निकृष्ट, तुच्छ वा प्रजा का पालक धन, गौ, अन्न, भूमि, वस्त्रादि और (मध्यमं वसु) मध्यम कोटि का धन, चान्दी, सोना आदि सिक्के जो अन्य पदार्थों के विनिमय का माध्यम बन सके, जिससे (तां पुष्यसि) उस प्रजा को पुष्ट करता है वह सब (तव इत्) तेरा ही है और (परमस्य) सर्वोत्कृष्ट (विश्वस्य) समस्त ऐश्वर्य के द्वारा (सत्रा) तू अपने सत्य और न्याय के बल से (राजसि) राजा के समान है । (गोषु) भूमियों पर शासन करने के लिये (त्वा) तुझे (नकिः वृण्वते) भला कौन स्वीकार न करे, सभी तुझे सर्वेश्वर स्वीकार करते हैं। अथवा—तुझे भूमियों पर कोई नहीं रोक सकता।

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥

भा०—(ये) जो (ईम्) सब ओर (आजयः भवन्ति) संग्राम होते हैं उनमें (त्वं) तू (विश्वस्य धनदाः श्रुतः असि) सबका धन देने हारा प्रसिद्ध है। हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित! (अयं) यह (विश्वः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवीवासी राजवर्ग और प्रजावर्ग (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ (तव नाम) दुष्टों को नमाने वाले तेरे ही शासन और तेरे अधीन आजीविका, (भिक्षते) चाहता है।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जिस प्रकार और (यावतः) जितने भी धनैश्वर्य का (त्वम्) तू स्वामी है (एतावत्) उतना ही (अहम्) मैं भी (ईशीय) स्वामी हो जाऊं। हे (रदावसो) शत्रु कर्षण करने वाली बसी प्रजा के स्वामिन्! मैं उस धन से (स्तोतारम् इत्) स्तुति करने वाले को ही (दिधिषेय) पालन करूं। मैं अपना धन (पाप-त्वाय) पाप कर्म की वृद्धि के लिये (न रासीय) कभी न दूं।

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥

भा०—मैं ऐश्वर्यवान् होकर (दिवे दिवे) प्रति दिन (कुह चिद्विदे) कहीं भी विद्यमान, (महयते) बड़े, पूज्य पुरुष के आदरार्थ (रायः) नाना धन (शिक्षेयम् इत्) दिया ही करूं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (त्वत् अन्यत्) तुझसे दूसरा (नः) हमारा (वसीयः) श्रेष्ठ (आप्यं) बन्धु और (पिता चन) पालक भी (नहि अस्ति) नहीं है।

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥२०॥२०॥

भा०—(तरणिः इत्) संकट से तारने वा शीघ्रता से कार्य करने में कुशल पुरुष ही (युजा पुरन्ध्या) नगर को धारण करने वाली नीति वा

नगररक्षक (युजा) सहायक वर्ग से (वाजं सिशासति) ऐश्वर्य और बल को न्याय से विभक्त करता है। हे प्रजाजनो ! मैं (वः) आप में से (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त (पुरुहूतं) बहुतों में प्रशंसित (सुद्रुवं) उत्तम, स्थिर पुरुष को (गिरा) वाणी से (तष्टा इव सुद्रुवं नेमिम्) शिल्पी से बनाई काष्ठमय चक्र की धार के तुल्य (नमे) नमाऊं। उसको विनयशील करूं।

न दुःष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (दुःस्तुती) दुष्ट पुरुष की स्तुति, वा बुरी स्तुति अर्थात् निन्दा से (वसु न विन्दते) धन प्राप्त नहीं करता। (स्रेधन्तं) हिंसक पुरुष को (रयिः) ऐश्वर्य (न नशत्) कभी नहीं मिलता और उसको (सुशक्तिः इत् न नशत्) उत्तम प्रशंसनीय शक्ति भी प्राप्त नहीं होती। हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! (यत्) जो (पार्ये दिवि) पालने और पूर्ण करने योग्य कामनायोग्य व्यवहार में (मावते) मेरे जैसे याचक को (देष्णं) देने योग्य धन देने की (सुशक्ति इत् तुभ्यम्) उत्तम शक्ति भी तेरी ही है।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! (अदुग्धाः धेनवः इव) न दुही गौओं के समान हम लोग (अस्य जगतः) इस जंगम और (तस्थुषः) स्थावर चल और अचल संसार के (ईशानम्) स्वामी, सञ्चालक और निर्माता (स्वर्दृशं त्वाम्) सर्वद्रष्टा तुझको, वा सुख आनन्द दर्शन के लिये तेरे प्रति (अभि नोनुमः) हम झुकते हैं, तेरी प्रेम से स्तुति करते हैं। जिस प्रकार न दुही गौएं प्रेम से दुग्ध देने के लिये गवाले के प्रति नमती हैं उसी प्रकार हम प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण के लिये झुकें।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अन्न जल, धनादि के देने हारे राजन्! प्रभो! (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! (त्वावान्) तेरे जैसा, (अन्यः) दूसरा, (न दिव्यः) न ज्ञानवान्, तेजस्वी, शुद्ध (न पार्थिवः) न दूसरा कोई इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। ऐसा (न जातः) अभी तक न उत्पन्न हुआ (न जनिष्यते) न पैदा होगा। हम (वाजिनः) ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि से युक्त, (अश्वायन्तः) उत्तम विद्वानों और अश्व, राष्ट्र, अश्वसैन्य के इच्छुक और (गव्यन्तः) गौ, वाणियों और भूमियों के इच्छुक होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति प्रार्थना करते हैं।

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः॥ २४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त! हे (मघवन्) धन के स्वामिन्! तू (पुरू-वसुः) बहुतों को बसाने वाला, बहुत ऐश्वर्यों का स्वामी और (सनात्) सनातन से (भरे भरे च हव्यः) प्रत्येक पालन योग्य कार्य, यज्ञ, संग्रामादि में पुकारने, स्तुति करने योग्य (असि) है। तू (सतः) सत्स्वरूप और (कनीयसः) अति दीप्तियुक्त, अति सूक्ष्म, उस परम तत्व का (ज्यायः) महान् ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा।

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम्॥ २५॥

भा०—हे (मघवन्) परम पूजित धन के स्वामिन्! तू (नः अमित्रान्) हमारे शत्रुओं को (परा नुदस्व) दूर कर और (नः) हमें (वसू) नाना ऐश्वर्य (सुवेदा कृधि) सुख से प्राप्त करने योग्य कर। अथवा हे (सु-वेदाः नः वसू कृधि) उत्तम धनाध्यक्ष! तू हमें धन प्रदान कर। (महा-धने) संग्राम के अवसर में वा भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, तू (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक हो (बोधि) हमें चेताता रह और (अस्माकं सखीनाम्) हमारे मित्रों का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो। 'सुवेदाः' 'सुवेदा' उभावपि पदपाठौ।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥

भा०—(पिता) पालक, गुरु, आचार्य (पुत्रेभ्यः) पुत्रों, शिष्यों को (यथा) जिस प्रकार (क्रतुं) ज्ञान का उपदेश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें भी (क्रतुम् आ भर) धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि प्रदान कर। (अस्मिन् यामनि) इस समय में, यज्ञ और संसारमार्ग में हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! एवं प्रजाद्वारा स्वीकृत ! तू (नः शिक्ष) हमें ज्ञान दे जिससे (जीवाः) हम सब जीव (ज्योतिः अशीमहि) परम (ज्योतिः अशीमहि) परम प्रकाशरूप, ज्ञानमय तुझे प्राप्त हों।

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७॥२१॥

भा०—(नः) हमें (अज्ञाताः) अज्ञात (वृजनाः) वर्जने योग्य, हिंसक, (दुराध्यः) दुख से ध्याने योग्य, दुःखदायी, चिन्ताजनक (अशिवासः) कल्याणकारी बुरे लोग (मा अव क्रमुः) मत रौंदें। हे (शूर) दुष्टों के नाशक (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (प्रवतः) अति विनीत होकर (शश्वती अपः) अनादि काल से प्राप्त वा बहुत कर्मबन्धनों को नदियों के समान (अति तरामसि) पार करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३३]

संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः ॥ १—९ वसिष्ठपुत्राः। १०–१४ वसिष्ठ ऋषिः ॥ त एव देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १२, १३ त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ७, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप्। १० भुरिक् पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियञ्जिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

भा०—(श्वित्यञ्चः) वृद्धि को प्राप्त, उन्नत (दक्षिणतः-कपर्दाः) दायें भाग में जटा जूट रखने वाले (धियं-जिन्वासः) ज्ञान और उत्तम मति को

प्राप्त और उत्तम काम करने वाले (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी, विद्वान् वसुगण (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे आनन्दित करें और वे (अवितवे) रक्षा और ज्ञान देने के लिये (दूरात्) दूर देश से भी प्राप्त हों। उन (नॄन्) उत्तम मार्गों में ले जाने उत्तम पुरुषों को मैं (बर्हिषः) वृद्धियुक्त आसन से अथवा (बर्हिषः) वृद्धिशील अन्यों को बढ़ाने वाले विद्वानों का (उत् तिष्ठन्) उठ कर (परि वोचे) आदर युक्त वचन से सत्कार करूं।

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम्।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् २

भा०—विद्वान् लोग (वैशन्तम्) राष्ट्र में प्रविष्ट, प्रजा के हितकारी (उग्रम्) बलवान् (पान्तम्) पालन करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (सुतेन) धर्म से उत्पन्न ऐश्वर्य के बल से (दूरात्) दूर देश से भी (तिरः अनयन्) अपने समीप ले आते हैं, उन (वसिष्ठान्) राष्ट्र में बसे उत्तम पुरुषों को (पाश-द्युम्नस्य) धन के पास में फंसे वैश्यवर्ग और (वायतस्य) विज्ञानवान् पुरुषों और तेज और रक्षा से युक्त क्षात्रवर्ग के (सुतात् सोमात्) उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अवृणीत) वरण करे, उनका सत्कार करे।

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजाजनो ! वा बाहुबल से प्रजा को सुखपूर्वक उत्तम रीति से बसाने वाले वीर पुरुषो ! वा आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर विद्याभ्यास करने हारे जनो ! (वः एभिः) आप लोगों में से ही इन जनों की सहायता से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सिन्धुं नु कं ततार इत्) बड़े समुद्र को भी पार करे (एभिः) इन विशेष जनों सहित (भेदं नु कं ततार एव इत्) फूट डालने वाले वा मेघवत् शत्रु को भी पार करे। (वः ब्रह्मणा) आप लोगों के बल, धन, ज्ञान से

ही वह (दाशराज्ञे) सुख देने वाले राजा के लिये (एव नु कं) भी (सुदासं) उत्तम दानशील प्रजा की (प्रावत्) रक्षा करे ।

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितृणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) उत्तम जनो ! आप लोग (वः) अपने (पितृणाम्) पालक जनों के (अव्ययं) नाश न होने वाले (अक्षम्) व्यापक, सत्यदर्शक ज्ञान-ऐश्वर्य को (ब्रह्मणा) महान् बल से (न किल रिषाथ) नाश न करो, प्रत्युत (जुष्टी) प्रेमपूर्वक (अदधात) धारण करो (यत्) जिस (शुष्मं) बल को हे (वसिष्ठाः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन रहने वाले और राष्ट्र में बसने वाले जनो ! आप लोग (बृहतः रवेण) बड़े भारी आघोष के साथ (शक्वरीषु) शक्ति युक्त सेनाओं और (इन्द्रे) ऐश्वर्य युक्त राजा में, या उसके अधीन रहकर (अदधात) धारण करते रहो ।

उद् द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ५।२२

भा०—(वृतासः) वरण किये गये (तृष्णजः) तृष्णा अर्थात् फल वा धन आदि की कामना से युक्त (नाथितासः) धनादि की याचना करने वाले लोग (दाशराज्ञे) दानशीलों में तेजस्वी राजा के लिये (द्याम् इव) सूर्य के समान तेज या उसकी कामना या भूमि को (उद् अदीधयुः) उत्तम रीति से धारण करें । (स्तुवतः) स्तुति करने वाले (वसिष्ठस्य) बसे उत्तम प्रजाजन की (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् तेजस्वी राजा (अश्रोत्) श्रवण करे और वह (तृत्सुभ्यः) शत्रु नाश करने वाले सैनिकों के लिये (उरुम् लोकम्) बड़ा स्थान (अकृणोत्) प्रदान करे ।

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥

भा०—(दण्डा इव परिच्छिन्ना गो-अजनासः) दण्ड जिस प्रकार

शाखा से कट कर भी पशु आदि को हांकने के लिये उत्तम होते हैं वैसे (परि-छिन्नाः) सब प्रकार से कटे छटे, सुभूषित, कुशल, (भरताः) प्रजा-पालक (अर्भकासः) बालकों के समान निर्द्वेष, निर्मोह, स्वच्छ हृदय वा (अर्भकाः = ऋभवः) सत्य न्याय से प्रकाशित जन, दण्डों के समान ही (दण्डाः) दुष्टों के दमन करने वाले (गो-अजनासः) भूमियों को शासन करने वाले (आसन्) हों। (वसिष्ठः) प्रजा को बसाने वाला राजा, इनका (पुरः-एता) अग्रयायी नायक (अभवत्) हो और (आत् इत्) अनन्तर (तृत्सूनां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों की ही यह (विशः) समस्त प्रजाएं (अप्रथन्त) प्रसिद्ध होती हैं। (२) अथवा—जो (अर्भकासः) बालकवत् वा अल्प बुद्धि वाले (भरताः) भरण पोषण योग्य मनुष्य (परिच्छिन्नाः) सब ओर से घिरे हुए, सुरक्षित (दण्डाः इव) दण्डों के समान (गो-अजनासः) वाणी के अभ्यास में अप्रगल्भ हों, (तृत्सूनां) अनादर योग्य अल्पमान वाले जनों का (पुरः एता वसिष्ठः अभवत्) अग्रयायी नायक उत्तम विद्वान् हो, वे (विशः) उसके अधीन उसकी प्रजा रूप से होते हैं।

त्रयः॑ कृण्वन्ति॒ भुव॑नेषु॒ रेत॑स्ति॒स्रः प्र॒जा आर्या॒ ज्योति॑रग्राः।
त्रयो॑ घ॒र्मास॑ उ॒षसं॑ सचन्ते॒ सर्वाँ॒ इत्ताँ अनु॑ विदु॒र्वसि॑ष्ठाः ॥७॥

भा०—(त्रयः) तीन (भुवनेषु) उत्पन्न हुए लोकों में उनके निमित्त (रेतः) जल, तेज, वीर्य को (कृण्वन्ति) उत्पन्न करते हैं और (तिस्रः) तीन प्रकार की (आर्याः प्रजाः) श्रेष्ठ प्रजाएं (ज्योतिः अग्राः) प्रकाश को मुख्य रूप से प्राप्त होने वाली होती हैं, (त्रयः) तीनों (घर्मासः) तेजस्वी, वीर्य-वान् ही (उषसं) उषा को सूर्यवत्, कामना योग्य भूमि वा शक्ति को (सचन्ते) प्राप्त करते हैं (तान् सर्वान् इत्) उन सबको ही (वसिष्ठाः अनु विदुः) विद्वान् ब्रह्मचारी अच्छी प्रकार जानते और प्राप्त करते हैं। (२) लोक में सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों (रेतः) प्रजोत्पादक तेज को उत्पन्न करते और सूर्य वायु और भूमि तीनों प्रजोत्पादक प्रकाश, प्राणा-धार जल और अन्न को उत्पन्न करते हैं, तीनों प्रकार की श्रेष्ठ प्रजाएं,

जेरज, अण्डज, उद्भिज (ज्योतिरग्राः) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली हैं (त्रयः घर्मासः) तीनों तेजोयुक्त सूर्य, अग्नि, विद्युत् वा सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष (उषसं) दाहक तापशक्ति और उषाकाल व कान्ति तथा कामना योग्य स्त्री को प्राप्त करते हैं। उन सब पदों को (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी ही (अनु विदुः) प्राप्त करें।

सूर्यस्येव वृक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गंभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) विद्वान् ब्रह्मचारी लोगो! हे राष्ट्र में बसे जनों में श्रेष्ठ जनो! (एषां) इन (वः) आप लोगों का (वक्षथः) रोष, तेज और वचन (सूर्यस्य ज्योतिः इव) सूर्य के तेज के समान असह्य और यथार्थ तत्व का प्रकाशक हो। (महिमा) महान् सामर्थ्य (समुद्रस्य इव गभीरः) समुद्र के समान गंभीर हो। (प्र-जवः) उत्तम वेग (वातस्य इव) वायु के समान अदम्य हो और (वः) आप लोगों का (स्तोमः) बलवीर्य, अधिकार स्तुत्य चरित ऐसा हो जो (अन्येन) दूसरे असमर्थ पुरुष से (अन्वेतवे न) अनुकरण न किया जा सके।

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

भा०—(ते इत् वसिष्ठाः) वे ही पूर्ण ब्रह्मचारी, गुरु के अधीन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार कर्म करने हारे विद्वान् जन (यमेन) नियन्त्रण करने वाले आचार्य वा परमेश्वर द्वारा (ततं) विस्तारित (परिधिं) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञान, व्रत और दीक्षादि को (वयन्तः) प्राप्त होते और उसका पालन करते हुए (अप्सरसः उपसेदुः) गृहाश्रम में स्त्रियों को प्राप्त करें। अथवा—वे विद्वान् जन ही (अप्सरसः) प्राप्त प्रजा जनों में और उत्तम कर्म मार्गों पर विचरते हुए (अप्सरसः) आकाश में विचरते हुए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु और मेघादि के तुल्य ही उपकारक

होकर हमें प्राप्त हों। (त इत्) वे ही (हृदयस्य) हृदय के (प्रकेतैः) उत्तम ज्ञानों से सहस्रों अंकुरों, शास्त्र ज्ञानों से युक्त (निण्यं) निश्चित ज्ञान को (अभि सञ्चरन्ति) प्राप्त कर विचरें। (२) इसी प्रकार राज्य में बसे उत्तम वीर पुरुष भी (यमेन ततं) नियन्ता राजा की बनाई (परिधिं) नगर के दीवार की (वयन्तः) रक्षा करते हुए, (प्रकेतैः) उत्तम संकेतों से (सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखाओं वाले (निण्यं) सुगुप्त दुर्ग वा राष्ट्र में (अभि सञ्चरन्ति) सर्वत्र विचरें। वे ही (अप्सरसः उप सेदुः) प्रजाओं में विचरते हुए सदा अपने कर्त्तव्यों में उपस्थित हों। (३) इसी प्रकार ये सब 'वसिष्ठ' जन वसुओं, प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा, जीव गण हैं जो नियन्ता प्रभु के बनाये 'परिधि' मर्यादा को पालन करते हुए (अप्सरसः) आकाश में या प्राप्त शरीरों, कर्मों और प्रकृति के घटक परमाणुओं या लिंग शरीरों में विचरते हुए (उपसेदुः) इन शरीरों में प्राप्त होते हैं। वे ही हृदय, अन्तःकरण स्थित प्रज्ञानों से अप्रकट सहस्र शाखा वाले संसार के मार्गों पर विचरते हैं।

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥२३॥

भा०—जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य। हे (वसिष्ठ) देह में बसे प्राणों में से सबसे श्रेष्ठ जीव! (विद्युतः ज्योतिः) विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्ति को (परि संजिहानं) सब प्रकार से धारण करने वाले (त्वा) तुझको (यत्) जब (मित्रावरुणौ) सूर्य चन्द्रवत्, प्राण अपान वा माता पिता दोनों, (अपश्यताम्) देखते हैं (तत्) तब, वह (ते) तेरा (जन्म) जन्म होता है (उत) और (एकं) एक जन्म तब होता है (यत्) जब (अगस्त्यः) सूर्य (त्वा) तुझको (विशः) प्रवेश योग्य देहों में, वा आचार्य प्रजाओं में राजा के समान (आजभार) प्राप्त कराता है। विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप—"तस्यैव आदेश यदेतत् विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीतिन्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मं तदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः"। केनोपनिषत्। आत्मा के नाना

जन्मों का रहस्य देखो ऐतरेयोपनिषत् अ० २ । खं० १ ॥ जैसे सूक्ष्म जीव के दो जन्म हैं एक पुरुष देह से स्त्री देह में दूसरा स्त्री देह से संसार में प्रकट होना, इस मनुष्य के भी दो जन्म हैं, एक मनुष्य योनि में, दूसरा आचार्य गृह में विद्या माता में जन्म लेना ।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥

भा०—हे (वसिष्ठ) देह में बसे प्राणों में सर्वश्रेष्ठ जीव ! (उत) और तू (मैत्रावरुणः) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों का स्वामी (असि) है । हे (ब्रह्मन्) वृद्धिशील जीव ! तू (उर्वश्याः) अति कान्ति-मती, तैजस, सात्विक विचार से युक्त वा 'उरु' अति विस्तृत, व्यापक प्रकृति के ऊपर (मनसः) मननशक्ति द्वारा (अधि-जातः) भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है । (दैव्येन) समस्त किरणों के समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी (ब्रह्मणा) महान्, परम ब्रह्म परमेश्वर से (स्कन्नं) प्रदत्त (द्रप्सं) वीर्य के समान (त्वा) तुझको (देवाः) समस्त दिव्य शक्तियां (पुष्करे) पुष्टिकारक तत्व में (अददन्त) धारण करती हैं । श्वेताश्वतर में त्रिविध ब्रह्म का वर्णन है वह यहां उर्वशी, वसिष्ठ और ब्रह्म तीनों रूप हैं । उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव और ब्रह्म परमेश्वर । (२) इसी प्रकार यह जीव प्राणी भी परस्पर प्रेमी और एक दूसरे को वरण करने वाले वर वधू, माता पिता से उत्पन्न होने से 'मैत्रावरुण' है । वह माता पिता से उत्पन्न होकर (उर्वश्या) बड़ी वेदविद्या के अभ्यास से (ब्रह्मन्) वेदज्ञान (मनसः) मननशील ज्ञानवान् आचार्य से (जातः) उत्पन्न होता है । फिर वह (दैव्येन ब्रह्मणा) देव, विद्येच्छु शिष्यों के हितैषी चतुर्वेदवित् आचार्य से (स्कन्नः) विसर्जित (द्रप्सः) कान्तियुक्त, तेजस्वी पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (पुष्करे) पुष्टिकारक, सर्वाश्रमपोषक गृहस्थाश्रम में (अद-दन्त) नियुक्त करते हैं ।

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

भा०—माता और आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना। जिस प्रकार (यमेन) सर्वनियन्ता परमेश्वर से (ततं) फैलाये या बनाये (परिधिं) धारक रक्षक देह सांसारिक जीवन को (वयिष्यन्) पट के समान स्वयं अपने कर्मों द्वारा बिनता या बनाता और उसको प्राप्त होना चाहता हुआ (वसिष्ठः) उत्तम वसु, जीव (अप्सरसः परि जज्ञे) स्त्री के शरीर से परिपुष्ट होकर प्रकट होता है, उसी प्रकार (वसिष्ठः) गुरु के अधीन वास करने वाला वसु ब्रह्मचारी (यमेन) नियन्ता आचार्य से (ततं) विस्तारित, प्रकाशित (परिधिं) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञानमय शास्त्रपट को (वयिष्यन्) प्राप्त, रक्षण और विस्तृत करना चाहता हुआ (अप्सरसः) अन्तरिक्षचारी वायु के समान ज्ञानवान् पुरुष वा आप्त जनों की व्याप्त विद्या से (परि जज्ञे) उत्पन्न होता है। (सः) वह (प्र-केतः) उत्तम ज्ञानी और (उभयस्य) पाप और पुण्य, इह लोक और परलोक दोनों को (प्र-विद्वान्) भली प्रकार जानता हुआ, (सहस्र-दानः) सहस्रों का दान देने वाला, परमैश्वर्य का स्वामी हो। (उत वा) अथवा (स-दानः) दानशील पुरुषों के दिये दान से अलंकृत भिक्षु, ब्राह्मण हो। अर्थात् विद्वान् होने के अनन्तर धनी और त्यागी होकर यथेच्छ रहे।

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥

भा०—(सत्रे) दीर्घ वेदाध्ययन रूप यज्ञ वा गुरु के सदन, आश्रम, गृह में (जातौ) उत्पन्न हुए कुमार और कुमारी दोनों (इषिता) एक दूसरे की इच्छा करने वाले होकर (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (कुम्भे रेतः) कलश में रक्खे जल से (समानं) मानसहित, वा एक समान (सिषिचतुः) अभिषेक वा स्नान करें, अथवा वे दोनों (समानं) एक दूसरे

के समान, परिपक्व (रेतः) वीर्य को (कुम्भे) घट में जल के समान गर्भ में वीर्य का (सिषिचतुः) सेचन करें। (ततः मध्यात्) उन दोनों के बीच से (मानः) उत्तम परिमाणयुक्त बालक (उत् इयाय) उत्पन्न होता है (ततः) अनन्तर उस (ऋषिम्) प्राप्त जीव को (वसिष्ठम् आहुः) 'वसिष्ठ' कहते हैं। (२) ठीक इसी प्रकार सत्र में स्थित गुरु आचार्य, घर में जलवत् पात्र में ज्ञान-जल का प्रदान करते हैं। (ततः) तब (मानः) ज्ञानवान् पुरुष उत्पन्न होता है। उसको विद्वान् जन 'वसिष्ठ ऋषि' उत्तम विद्वान्, ब्रह्मचारी कहते हैं।

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे। उपैन-माध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ।१४।२४।२॥

भा०—जो विद्वान् (अग्रे) सबसे पूर्व, (बिभ्रत्) स्वयं ज्ञान को धारण करता हुआ (प्र वदाति) उत्तम प्रवचन करता है वह (ग्रावाणं) मेघ के समान ज्ञान-जल को धारण करने वाले (उक्थ-भृतं) ऋग्वेद के धारण करने और (साम-भृतं) सामवेद के धारण करने वाले विद्वान् शिष्य को भी (बिभर्ति) धारण करता है। वही (वसिष्ठः) वसु ब्रह्म-चारियों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है। हे (प्र-तृ-दः) तीनों आश्रमों को अन्नादि देने वाले गृहस्थो! वा हे (प्रतृदः) खण्ड कर वेद का अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियो! जब वह (वः आगच्छति) तुम्हें प्राप्त हो तब आप लोग (एनं) उसकी (सुमनस्यमानाः) शुभ संकल्पयुक्त होकर (उप आध्वम्) उपासना करो, उसके समीप बैठकर ज्ञान ग्रहण करो। अथवा—वह वसिष्ठ ही अध्याय, वा पद, प्रकृति, प्रत्ययादि विच्छिन्न कर २ के पढ़ाने हारा, वा संशयों का छेत्ता, ज्ञानी पुरुष 'प्रतृद' है वह जब आवे तब सब उसकी उपासना कर ज्ञान-लाभ करें। (२) इसी प्रकार सबमें बसा महान् आत्मा प्रभु 'वसिष्ठ' है। वही सबसे (अग्रे प्र वदाति) प्रथम उपदेश करता है। उक्थ, साम आदि के धारक, उपदेष्टा वेद को स्वयं

धारण करता है। हे जनो! आप उसकी उपासना करें। इति चतुर्विंशो वर्गः। द्वितीयोऽनुवाकः॥

[३४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—१५, १८—२५ विश्वे देवाः। १६ अहिः। १७ अहिर्बुध्न्यो देवता॥ छन्दः—१, २, ५, १२, १३, १४, १६, २० भुरिगार्ची गायत्री। ३, ४, १७ आर्ची गायत्री। ६, ७, ८, ९, १०, ११, १५, १८, २१ निचृत्त्रिपाद्गायत्री। २२, २४ निचृदार्षी त्रिष्टुप्। २३ आर्षी त्रिष्टुप्। २५ विराडार्षी त्रिष्टुप् च॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी॥ १॥

भा०—(वाजी) वेगवान् (रथः) रथ (सु-तष्टः) उत्तम रीति से शिल्पी द्वारा निर्मित होकर जिस प्रकार (मनीषाः एति) मनोऽनुकूल गतियें करता है उसी प्रकार (सु-तष्टः) उत्तम रीति से अध्यापित, (वाजी) ज्ञानी पुरुष और (शुक्रा) शुद्ध अन्तःकरणवाली, शुद्धाचार युक्त (देवी) उत्तम विदुषी स्त्री भी (अस्मत्) हमसे (मनीषाः) उत्तम बुद्धियों को (एतु) प्राप्त करे।

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अधः क्षरन्तीः॥२॥

भा०—(अधः क्षरन्तीः आपः) मेघ से नीचे गिरती जलधाराएं जिस प्रकार (दिवः) आकाश से (जनित्रं) अपनी उत्पत्ति और (पृथिव्याः जनित्रं) पृथिवी, अन्न की उत्पत्ति का कारण होती हैं उसी प्रकार (अधः क्षरन्तीः) नीचे के अंगों से स्रवित वा ऋतु से होने वाली नवयुवती (अपः) आप्त स्त्रियें (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और (पृथिव्याः) पृथिवी के समान बीजों को अंकुरित करने वाली उत्तम माता से ही (जनित्रं) उत्तम सन्तान के जन्म को जानें और (शृण्वन्ति) वैसा ही उपदेश गुरुजनों से श्रवण करें। नवयौवन में उत्तम सन्तान उत्पत्ति की विद्या को वे भली प्रकार जानें और उसकी शिक्षा प्राप्त करें।

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥

भा०—(वृत्रेषु) मेघों में (आपः चित्) जलधाराएं जैसे (अस्मै) इस सूर्य के बल से (पृथ्वीः) भूमियों को (पिन्वन्त) सींचती हैं और (वृत्रेषु) मेघों के उपर (उग्रः) उग्र बल की प्रचण्ड वायुएं (मंसन्ते) प्रहार करते हैं (चित्) वैसे (अस्मै) इस राजा के निमित्त (आपः) नहरें या आप्त प्रजाजन (पृथ्वीः पिन्वन्त) भूमियों को सींचें, उस पर कृषि आदि करें और (शूराः) शूरवीर पुरुष (वृत्रेषु) विघ्नकारी पुरुषों पर और नाना धनों के निमित्त (मंसन्ते) उद्योग करें।

आ धुर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (अस्मै) इस नायक के लिये (धूर्षु) धुराओं में (अश्वान्) अश्वों को (दधात) लगाओ। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वज्री) वज्र, बल, वीर्य, शस्त्रास्त्र सैन्य का धारक और (हिरण्य-बाहुः) सुवर्णादि धन को अपने बाहुबल से रखने वाला है।

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (अह इव) और आप लोग (यज्ञं अभि) पूजनीय प्रभु, सत्संग, यज्ञ आदि को लक्ष्य कर (प्र स्थात) आगे बढ़ो। (याता इव) यात्री या जाने वाले पुरुष के समान (त्मना) आत्म सामर्थ्य से (पत्मन्) सन्मार्ग पर (हिनोत) आगे बढ़ो।

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! आप लोग (समत्सु) संग्राम के अवसरों में (त्मना) अपने सामर्थ्य से (यज्ञं) पूज्य नायक को (हिनोत) बढ़ाओ। (जनाय) साधारण प्रजाजन के हितार्थ (केतुं) ध्वजा के समान सबके आज्ञापक (वीरम्) वीर और नाना विद्योपदेष्टा पुरुष को (दधात) स्थापित करो। उसको पुष्ट करो। (२) हे स्त्रीजनो! (समत्सु) हर्षयुक्त अवसरों में (त्मना) अपनी देह से (यज्ञं) संगतियोग्य गृह्य कार्य वा पति को (हिनोत) बढ़ाओ और (जनाय) पुत्रोत्पादन के लिये (केतुं वीरं दधात)

विद्वान्, रोगरहित, वीर्यवान् पुरुष को धारण करो, अथवा (जनाय) अपने पति के लिये (वीरं केतुं दधात) ज्ञानवान् पुत्र को धारण करो।

उर्दस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥

भा०—(भानुः न) जैसे सूर्य के बल से कान्ति ऊपर उठती है वैसे (अस्य शुष्मात्) इस नायक के बल से (भानुः) कान्ति या तेजवत् उसके आश्रित प्रजा (उत् आर्त्त) उन्नति को प्राप्त होती है। (पृथिवी न) पृथिवी के समान विदुषी स्त्री भी (भूम भारं) बहुत भारी भार, प्रजाओं के पालन पोषण का भार (बिभर्त्ति) धारण करती है।

ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! मैं (अयातुः) अन्यत्र कहीं न जाकर, वा किसी को भी पीड़ा न देता हुआ, अहिंसाव्रती होकर (देवान्) विद्या, धनादि की कामना करने वाले शिष्यों को (ह्वयामि) प्रेम से बुलाता हूँ। मैं (ऋतेन) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार द्वारा (साधन्) साधना करता हुआ (धियं दधामि) ज्ञान प्रदान करूं और कर्म करूं।

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥ ९ ॥

भा०—हे जनो! आप लोग (वः) अपनी (देवीं धियं) दिव्य मति को (अभि दधिध्वं) धारण करो और (वः) अपनी वाणी को भी (देवत्रा वाचम्) विद्वानों में विद्यमान उत्तम वाणी के समान बनाओ।

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१०।२५॥

भा०—(उग्रः) प्रचण्ड (वरुणः) सूर्य जैसे (नदीनां पाथः आ चष्टे) नदियों के जल को खींच लेता है वैसे ही (सहस्रचक्षाः) सहस्रों आज्ञा-वचन कहने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (उग्रः) बलवान् होकर (नदीनां) समृद्ध (आसां) इन प्रजाओं के (पाथः) पालनकारक राज्य व्यवहार को (आ चष्टे) स्वयं देखता है। इसी प्रकार सूर्यवत् सहस्रचक्षु प्रभु जीव प्रजाओं के सब व्यवहारों को देखता है। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥११॥

भा०—वरुण अर्थात् जल जैसे (नदीनां पेशः) नदियों के रूप को बनाता है, जैसे यह (राजा) राजा (राष्ट्रानां) राष्ट्रों और समृद्ध प्रजाओं का (पेशः) समृद्धि रूप बनाता और (अस्मै) उसका (विश्वायु) सर्वगामी, (अनुत्तम्) अबाधित, (क्षत्रं) बल होता है।

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् जनो! आप लोग (अस्मान्) हमें (विश्वासु-विक्षु) समस्त प्रजाओं में (अविष्ट) रक्षा करो और (शंसं कृणोत) उत्तम उपदेश करो। (निनित्सोः अद्युं कृणोत) निन्दा करने वाले सब काम को अन्धकार युक्त करो।

व्येतु दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (दिद्युत्) खूब चमकता हुआ प्रकाश (वि एतु) विविध दिशाओं में फैले। (द्विषाम् अशेवा) शत्रुओं को नाना दुःख प्राप्त हों। (तनूनाम्) देह धारियों के (रपः) दुःख अपराधों को आप लोग (विश्वक्) सब प्रकार (युयोत) पृथक् करो।

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान्, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से तथा शस्त्रों से (नः) हमारी रक्षा करे। वह (हव्यात्) ग्राह्य, भक्ष्य पदार्थों को खाने वाला, (प्रेष्ठः) सर्व प्रिय हो। (अस्मै) उसके लिये (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) किया जावे और वह भी राष्ट्रवासी प्रजा के लिये उत्तम व्यवहार करे।

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (देवेभिः सजूः) किरणों पृथिव्यादि तत्वों के सहित वर्त्तमान अग्नि वा सूर्य के समान (अपां नपातं) जलों को न गिरने देने वाले, मेघवत् उपकारक प्रजाओं को वा प्राणों को नाश न होने देने वाले पुरुष को अपना (सखायं कृध्वम्) मित्र बनाओ। वह (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारक (अस्तु) हो।

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥

भा०—जैसे (बुध्ने) अन्तरिक्ष में (अब्जाम्) जलों के उत्पादक (अहिम्) सूर्य को कहा जाता है वही (नदीनां रजःसु सीदन्) नदियों के जलों या कण २ में भी स्थित है। जैसे (उक्थैः) उत्तम वचनों से (अब्जाम्) आप्त जनों के बीच प्रसिद्ध, (अहिम्) शत्रुओं के नाशक पुरुष के (बुध्ने) प्रजा के ऊपर आकाशवत् सर्वप्रबन्धक पद पर (गृणीषे) प्रस्तुत करूं। वह (नदीनां) समृद्ध प्रजाओं के बीच (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त लोगों और वैभवों में (सीदन्) विराजे।

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥ १७ ॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) आकाशस्थ मेघ के समान (बुध्न्यः) उदार, विद्वान् पुरुषों द्वारा सञ्चालित, वा आकाशस्थ, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (नः) हमें (रिषे) हिंसा, पीड़ा वा हिंसक के लाभ के लिये (मा धात्) न रखे। (अस्य ऋतायोः) इस सत्य व्यहार, अन्न और धनाभिलाषी राजा का (यज्ञः) दान, संगति आदि (मा स्रिधत्) नष्ट न हो।

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥

भा०—विद्वान् लोग, (नः) हमारे (एषु नृषु) इन नेता पुरुषों में (श्रवः) यश, बल, अन्न आदि (धुः) धारण करें और वे लोग (शर्धन्तः) उत्साह करते हुए (राये) धन प्राप्त करने के लिये (अर्यः = अरीन्) शत्रुओं को लक्ष्य कर, उन पर (प्र यन्तु) चढ़ाई करें।

तपन्ति शत्रुं स्व१र्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥

भा०—(एषाम्) इन नायकों के (अमैः) सहायक सैन्य बलों से युक्त होकर (महा-सेनासः) बड़ी सेनाओं के स्वामी लोग (भूमा स्वः न) भुवनों को सूर्य के समान प्रचण्ड होकर (शत्रुं तपन्ति) शत्रु को तपावें।

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२०।२६॥

भा०—(यत्) जब (पत्नीः) स्त्रियें (नः) हमें (अच्छ आ गमन्ति) भली प्रकार प्राप्त हों तब (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (सु-पाणिः) उत्तम

व्यवहारज्ञ होकर (वीरान्) वीर पुरुषों तथा हमारे पुत्रों की भी (दधातु) रक्षा करे। उनको राष्ट्र-रक्षा पर नियुक्त करे। इति षड्विंशो वर्गः ॥

प्रति॑ नः॒ स्तोमं॒ त्वष्टा॑ जुषेत॒ स्याद॒स्मे अ॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥ २१ ॥

भा०—(अरमतिः) अति बुद्धिमान् (वसूयुः) प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी, (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुति वचन और स्तुत्य कार्य के (प्रति) प्रति (जुषेत) प्रेम करे और वह (अस्मे स्यात्) हमारे हितार्थ प्रीतिमान् हो।

ता नो॑ रासन्रातिषाचो॒ वसू॒न्या रोद॑सी वरुणा॒नी शृ॑णोतु।
वरू॑त्रीभिः सुश॒रणो॑ नो अस्तु॒ त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ रायः॑ २२

भा०—(राति-षाचः) दानयोग्य वृत्ति या भृति को लक्ष्य कर, वा उसके द्वारा सहस्रों जनों को अपने साथ बांधने वाले धनाढ्य राजा लोग (नः) हमें (ता) वे नाना प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्य (रासन्) प्रदान करें। (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली न्यायसभा तथा पुलिस और (वरुणानी) स्वयं वृत श्रेष्ठ राजा की पालक शासनसभा भी (नः आ शृणोतु) हमारी सब बातें सुने। (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (वरूत्रीभिः) उत्तम, दुःखवारक सेनाओं और नीतियों से (नः) हमारा (सु-शरणः) उत्तम शरण (अस्तु) हो। वह (सु-दत्रः) उत्तम दानशील पुरुष (रायः वि दधातु) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे।

तन्नो॑ रा॒यः पर्व॑ता॒स्तन्न॒ आप॒स्तद्रा॑ति॒षाच॒ ओष॑धीरु॒त द्यौः।
वन॒स्पति॑भिः पृथि॒वी स॒जोषा॑ उ॒भे रोद॑सी॒ परि॑ पासतो नः ॥२३॥

भा०—(तत् रायः) वे नाना ऐश्वर्य और (पर्वताः) पर्वत, मेघ और पालनकारी साधनों से सम्पन्न जन (नः) हमारी रक्षा करें। (तत् आपः) वे जल, प्राणगण और (तत् रातिषाचः) वे भृति या दान ग्रहण करने वाले और (ओषधीः उत द्यौः) ओषधियां और सूर्य (वनस्पतिभिः सजोषाः पृथिवी) वनस्पतियों से युक्त पृथिवी और (उभे रोदसी) दोनों आकाश और भूमि ये सब (नः परि पासतः उ) हमारी रक्षा करें।

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४॥

भा०—(तत् उर्वी रोदसी) वे दोनों विशाल दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, सेनानायक और सूर्य भूमि के समान स्त्री पुरुष भी (अनु जिहाताम्) एक दूसरे के अनुकूल होकर प्राप्त हों। (द्यु-क्षाः) प्रकाशों का धारक सूर्यवत् तेजस्वी और (इन्द्र-सखा) ऐश्वर्यवान् का मित्र (वरुणः) दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा (अनु) अनुकूल रहे। (ये सहासः मरुतः) जो शत्रुविजयी, तपस्वी, वीर विद्वान् पुरुष हैं वे (विश्वे) सब भी (अनु) अनुकूल हों। हम लोग (रायः धियध्यै) ऐश्वर्य को धारण करने के लिये (धरुणं) सुरक्षित पात्रवत् (स्याम) हों।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५।२७

भा०—(वनिनः) किरणों और भोग्य ऐश्वर्यों के स्वामी तेजस्वी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) प्रजा का वृत राजा, (मित्रः) स्नेही, (अग्निः) विद्वान् और अग्नि (आपः) जल और आप्तजन (ओषधीः) ओषधियें ये (नः) हमें (तत्) वह अलौकिक सुख (जुषन्त) प्राप्त करावें, जिससे हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वानों के समीप (शर्मन् स्याम) सुख में रहें। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[३५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५, ११, १२ त्रिष्टुप्। ६, ८, १०, १५ निचृत्त्रिष्टुप्। ७, ९ विराट्त्रिष्टुप्। १३, १४ भुरिक्पंक्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

भा०—(वाजसातौ) ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि, इन्द्र राजा और ऐश्वर्यवान् तेजस्वी नायक (अवोभिः) अन्नों, रक्षा साधनों और ज्ञानों से (नः शं भवताम्) हमें शान्तिदायक हों। (रात-हव्या) ग्रहण करने और देने योग्य जल अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने वाले (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् और जल तथा सेनापति और राजा दोनों (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रासोमा शम्) इन्द्र आचार्य, सोम शिष्य गण और विद्युत् ओषधिगण, (शम्) हमें शान्तिदायक हों। वे दोनों ही (सुविताय) सुखमय जीवन और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये शान्तिदायक, दुःख दूर करने वाले हों। (इन्द्रा-पूषणा) विद्युत् और वायु दोनों भी (नः शं) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो॒ भग॒ः शमु॑ न॒ः शंसो॑ अस्तु॒ शं न॒ः पुर॑न्धि॒ः शमु॑ सन्तु॒ राय॑ः।
शं नः॑ स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंस॒ः शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥२॥

भा०—(भगः नः शम्) ऐश्वर्य हमें सुखकारी हो। (शंसः नः शम् उ) उपदेश, अनुशासन, स्तुति और उपदेष्टा हमें शान्ति दें। (पुरन्धिः) बहुत पदार्थों का धारक आकाश, देहधारक बुद्धि, पुरधारक राजा (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (रायः शम् उ सन्तु) नाना ऐश्वर्य हमें शान्ति दें। (सु-यमस्य) उत्तम नियन्ता, शासक और (सत्यस्य शंसः) सत्य का उपदेष्टा (नः शम्) हमें सुखकर हो। (पुरु-जातः) बहुतों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शं अस्तु) हमें शान्ति दे।

शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभि॑ः।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रि॒ः शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥३॥

भा०—(धाता नः शम्) पोषक वर्ग हमें शांति दे। (धर्त्ता नः शम् उ) धारण करने वाला हमें शान्ति दे। (उरूची) बहुत पदार्थ प्राप्त कराने वाली भूमि, (नः) हमें (स्वधाभिः) अन्नों, जलों से (शं भवतु) शान्तिदायक हो। (बृहती रोदसी शं) बड़े, वृद्धिशील, सूर्य और अन्तरिक्ष (शं)

शान्तिदायक हों। (अद्रिः नः शम्) मेघ और पर्वत शान्ति दें। (देवानां) देव, विद्वानों के (सु हवानि) उत्तम २ उपदेश वा वचन (नः शं सन्तु) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम्।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥४॥

भा०—(ज्योतिः अनीकः अग्निः) तेज को सैन्य के समान धारण करने वाला आग और उसके समान तेजस्वी सैन्य, वा मुख वाला राजा और विद्वान् (नः शम्) हमें सुखकारी हो। (मित्रा वरुणौ नः शं) प्राण और उदान तथा एक दूसरे के स्नेही और वरण करने वाले (अश्विना) रथी सारथी वा उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (सुकृतां) पुण्यात्माओं के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः शं) हमें शान्ति दें। (इषिरः वातः) सदा गमनशील वायु और वायुवत् बलवान् पुरुष (नः शं अभि वातु) हमें शान्तिदायक होकर सब ओर जावें।

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥२८

भा०—(पूर्वहूतौ) पूर्व के विद्वानों के उत्तम स्तुति या प्रशंसा योग्य कार्य में संलग्न (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि वा विद्युत् और भूमिवत् स्त्री पुरुष दोनों (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (नः) हमें (दृशये) उत्तम रीति से देखने के लिये (शम् अस्तु) शान्तिदायक हो, (वनिनः ओषधीः) वन की ओषधियें (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (रजसः पतिः) समस्त लोकों का पालक (जिष्णुः) विजयशील पुरुष भी (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥६॥

भा०—(वसुभिः) प्राणियों को बसने के स्थान रूप पृथिवी आदि ग्रहों सहित (देवः) तेजस्वी सर्वप्रकाशक (इन्द्रः) अन्धकारनाशक, मेघोत्पादक, जलदायक सूर्य और प्रजा सहित राजा, ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (नः शं) हमें सुख दे। (आदित्येभिः) वर्ष के मासों सहित (वरुणः) जल संघ, समुद्रादि और आदित्यसम तेजस्वी पुरुषों सहित श्रेष्ठ राजा (सु-शंसः) उत्तम शासक, आज्ञापक और स्तुत्य होकर (शम्) सबको सुखकारी हो। (रुद्रेभिः) प्राणों सहित (रुद्रः) जीव, दुष्टों के रुलाने वाले सैन्यों सहित सेनापति (जलाषः) सन्ताप का नाशक, जलवत् सुखों का दाता होकर (नः शम्) हमें शान्ति दे। (ग्नाभिः त्वष्टा) वाणियों सहित विद्वान् और उत्तम गृहपतियों सहित गृहस्थी जन भी (नः) हमारे (शं) शान्तिदायक (शृणोतु) वचन श्रवण करें।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—(सोमः) चन्द्र, पुत्र, शिष्य, प्रजाजन और ओषधि वर्ग (नः शं भवतु) हमें शान्तिदायक हो। (ब्रह्म) वेद, धन, ज्ञान, बल, अन्न, (नः शं) हमें शान्तिजनक हो। (ग्रावाणः) मेघगण, उदार विद्वान्, उपदेष्टा जन (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (यज्ञाः शम् उ सन्तु) यज्ञ, देव-पूजन, विद्वत्सत्कार, सत्संग हमें शान्तिदायक हों। (स्वरूणां मितयः) अर्थप्रकाशक शब्दों के ज्ञान वा छन्द (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (प्र-स्वः) उत्पन्न होने वाली ओषधियां, उत्तम सन्तानजनक स्त्रियां (नः शं) हमें शान्तिदायक हों (वेदिः शम् उ अस्तु) वेदि, यज्ञकुण्डादि, भूमि, स्त्री आदि हमें शान्तिदायक हों।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—(उरुचक्षाः) बहुत सम्यग-ज्ञान-दर्शनों का कर्त्ता तेजस्वी

(सूर्यः) सूर्यवत् प्रकाशक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शं उदेतु) शान्तिदायक होकर उदय हो। (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाएं (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (ध्रुवयः पर्वताः) स्थिर पर्वत (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (सिन्धवः नः शम्) नदियों के प्रवाह हमें सुखकारी हों और (आपः शम् उ सन्तु) जल हमें सुखकारी हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ९

भा०—(अदितिः) अखण्ड व्रत पालन करने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और माता पिता पुत्रादि (व्रतेभिः) सत्कर्मों से (नः शम्) हमें सुख शान्तिदायक हों। (स्वर्काः मरुतः) उत्तम विचारवान् विद्वान् पुरुष प्राणवत् प्रिय होकर (नः) हमें (शं भवन्तु) शान्तिदायक हों। (विष्णुः नः शम्) व्यापक परमेश्वर हमें शान्ति दे। (पूषा नः शम् उ अस्तु) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार, सर्वपोषक प्रभु वा राजा भी हमें सुखकारी हो। (भवित्रं नः शम्) भवितव्य, जो आगे होने को है, वह भी हमें सुख दे। (वायुः सम् उ अस्तु) वायु हमें शान्तिदायक हो।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः १०।२९

भा०—(त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता) सर्वप्रेरक, सर्वउत्पादक, (देवः) सुखों का देने वाला प्रभु (नः शं) हमें शान्ति दे। (विभातीः) विशेष चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलाएं (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (पर्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ राजा और प्रजाओं को तृप्त करने वाला, एवं जलों का दाता मेघ (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शं भवतु) शान्ति दाता हो। (क्षेत्रस्य पतिः) निवास योग्य क्षेत्र, देश और देह का पालक राजा वा प्रभु, परमेश्वर (शंभुः) सदा शान्ति सुख का देने वाला, (नः शम्) हमें शान्ति दे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (देवाः) ज्ञान, ऐश्वर्य के देने वाले होकर (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (सरस्वती) विद्या, सुशिक्षा-युक्त वाणी, उत्तम २ (धीभिः) प्रज्ञाओं (सह) सहित (शं अस्तु) शान्तिदायक हो। (अभिषाचः शम्) आभ्यन्तर से सम्बन्ध रखने वाले हमें शान्ति दें। (रातिषाचः सम् उ) बाह्य पदार्थों के लेने से सम्बन्ध रखने वाले जन भी हमें शान्ति दें। (दिव्याः) दिव्य (पार्थिवाः) और पृथिवीस्थ पदार्थ (नः शम्) हमें सुख दें। (अप्याः) जल में उत्पन्न, मुक्ता और नौका आदि पदार्थ (नः शं) हमें सुख दें।

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१२॥

भा०—(सत्यस्य पतयः नः शम् भवन्तु) सत्य व्यवहार, सत्य धर्म के पालक हमें शान्ति दें। (अर्वन्तः) अश्व (नः शं) हमें सुख दें। (गावः शम् उ सन्तु) गौएं हमें शान्तिदायक हों। (सुकृतः) उत्तम कार्य करने वाले धर्मात्मा (सु-हस्ताः) कार्य, शिल्पादि साधने में सिद्धहस्त, प्रशस्त (ऋभवः) शिल्पी और तेजस्वी सत्यज्ञानी पुरुष (नः शं) हमें सुख दें। (हवेषु) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों में (पितरः) माता पिता, पालक आचार्य, राजादि जन (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्यः॒ शं स॑मु॒द्रः ।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पाः ॥ १३ ॥

भा०—(एक-पाद्) सब जगत् को एक पाद या चरण में धारण करने वाला, (अजः) कभी उत्पन्न न होने वाला, नित्य (देवः) सर्व सुख-दाता, सर्वप्रकाशक प्रभु (नः शम् अस्तु) हमें शान्ति दे। (अहिः बुध्न्यः

नः शम्) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ हमें शान्ति दे। (समुद्रः शम्) सागर और आकाश शान्ति दे। (अपां) जलों में (नपात्) चरण रहित नौका (पेरुः) पार उतारने वाला होकर (नः शं) हमें शान्तिदायक हो। (देव-गोपाः) इन्द्रियों, शुभ गुणों और मनुष्यों का रक्षक (पृश्निः) आकाशवत् महान्, सुखों का वर्षक ज्ञानी (नः) हमें शान्ति दे।

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्ते॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः ॥१४॥

भा०—(आदित्याः) ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी (रुद्राः) ३६ वर्ष के ब्रह्मचर्यवान् और (वसवः) २४ वर्ष के ब्रह्मचारी (इदं) इस (नवीयः) उत्तम (क्रियमाणं ब्रह्म) उपदेश किये जाते, धन अन्न और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करें। (दिव्याः) उत्तम, गुणों में प्रसिद्ध, (पार्थिवासः) पृथिवी में प्रसिद्ध (गो-जाताः) वाणी से सुशिक्षित, विद्वान् जन (उत) और (ये) जो (यज्ञियासः) यज्ञकर्त्ता, सेवा सत्संगादि योग्य पुरुष हैं वे (नः शृण्वन्तु) हमारे वचन श्रवण करें।

ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः। ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥१५।३०।३॥

भा०—(ये) जो (यज्ञियानां देवानां) यज्ञ करने हारे, उत्तम विद्वानों में भी (यज्ञियाः) दान, मान सत्कार योग्य और (मनोः) मननशील विद्वान् का (यजत्राः) सत्संग करने वाले (अमृताः) दीर्घायु, जीवन युक्त (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने वाले हैं (ते) वे (नः अद्य) आज (उरु-गायम्) बहुत से उपदिष्ट और कीर्तित ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें। हे विद्वान् जनो ! (यूयं न स्वस्तिभिः सदा पात) तुम लोग हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो। इति त्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् । ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः । १, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य सदनात्) सत्य ज्ञान प्राप्त करने के स्थान, गुरु गृह से हमें (ब्रह्म प्र एतु) उत्तम वेदज्ञान प्राप्त हो । (सूर्यः) सूर्य अपनी (रश्मिभिः) रश्मियों से (गाः) भूमियों को (वि ससृजे) विशेष गुण से युक्त बनावे । (पृथिवी) पृथ्वी, (ऊर्वी) विशाल होकर भी (सानुना) उन्नत प्रदेश से (वि सस्रे) विशेष जानी जाती है । जैसे (अग्निः) अग्नि (पृथु) बहुत अधिक विस्तृत (प्रतीकं) प्रतीति कराने वाला प्रकाश (अधि एधे) चमकाता है, उसी प्रकार विद्वान् वाणियां प्रकट करे, माता पुत्र से विशेष ख्याति लाभ करे, अग्निवत् विद्वान् ज्ञान प्रकाशित करे ।

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण, स्नेह युक्त और दुःखवारक, शरीर में प्राण उदान और गृह में माता पितावत्, सभा सेनाध्यक्ष जनो ! हे (असुरा) बलवान् जनो ! मैं (वां) आप दोनों की (नवीयः) अति नवीन, स्तुत्य (सुवृक्तिम्) दुःख अज्ञान के निवारक (इषम्) इच्छा वा अन्न को प्राप्त करूं । (वाम्) आप दोनों में से (अन्यः) एक तो (इनः) स्वामी (पदवीः) पद को प्राप्त (अदब्धः) अविनाशी है, (मित्रः) सर्वस्नेही (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (जनं च यतति) प्रत्येक जन को उद्यम कराता है । इसी प्रकार मित्र परमेश्वर और वरुण जीव है । परमेश्वर

जगत् का स्वामी, परम पद ज्ञानी, अविनाशी, सर्वोपदेष्टा है। जीव प्राणों का स्वामी होने से 'इन', ज्ञान प्राप्त करने से 'पदवी', देह को चलाता है।

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥३॥

भा०—(वृषभः) श्रेष्ठ, बलवान् पुरुष (सस्मिन् ऊधन्) अन्तरिक्ष में मेघ के समान, उषाकाल में सूर्य के समान तेजस्वी होकर (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (महः दिवः) बड़े भारी प्रकाश, ज्ञान या लोक व्यवहार के (सदने) स्थान, राजसभा, लोकसभा और गुरु-गृह में (अचिक्रदत्) प्राप्त हो, अन्यों को उपदेश करे। (वातस्य ध्रजतः इत्याः सूदाः न रन्ते) वेग से जाते हुए वायु की गतियों में जैसे वर्षाशील मेघ विहरते हैं वैसे (वातस्य) वायु के समान बलवान् (ध्रजतः) वेग से जाते हुए उस सेनापति के (इत्याः) गमनों को प्राप्त (सूदाः) उत्तम करप्रद प्रजाएं (धेनवः) गौओं के समान (रन्ते) सुखी होती हैं और (अपीपयन्त) आप बढ़तीं और राजा को भी समृद्ध करती हैं।

गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरे (एता) इन दोनों (धायू) धारक पोषक (सु-रथाः) उत्तम रथ वाले (प्रिया) प्रिय (हरी) अश्वों के समान बलवान् मुख्य नायक वा स्त्री पुरुषों को (गिरा) वेद वाणी से (युनजत्) सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और (यः) जो (रिरिक्षतः) हिंसक जनों को (प्र मिनाति) दण्डित करता है उस (मन्युम्) मननशील (सु-क्रतुम्) उत्तम ज्ञानवान्, कर्मवान् (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुनियामक पुरुष को मैं (आ ववृत्याम्) प्राप्त करूं। अध्यात्म में—हे इन्द्र! आत्मन्! प्रभो! जो योगी तेरे प्रति देह स्थित, प्राण अपान रूप घोड़ों को योग द्वारा युक्त करता है, जो मारने वाले के

प्रति अपने मन्यु, क्रोध को मारता, अक्रोधी, क्षमावान् रहता है उस कामादि अन्तः-शत्रु विजयी को मैं प्राप्त करूं।

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन्।
वि पृक्षो बाबधे नृभि स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम्॥ ५॥ १॥

भा०—(ऋतस्य धामन्) सत्य, न्याय के भवन में (स्वे) उसके अपने जन (नमस्विनः) नमस्कार युक्त, विनीत होकर (अस्य) इस रुद्र के (सख्यं) मित्रभाव और (वयः च) जीवन वृत्ति को भी (यजन्ते) प्राप्त करते हैं; वह (नृभिः स्तवानः) मनुष्यों से स्तुति किया जाता हुआ (पृक्षः) अन्नादि की (वि बाबधे) विविध प्रकार से व्यवस्था करता है। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले उसको (इदं) इस प्रकार (प्रेष्ठं) अतिप्रिय (नमः) नमस्कार या अधिकार प्राप्त हो। इति प्रथमो वर्गः॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः॥६॥

भा०—जिस प्रकार (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जल से परिपूर्ण होकर (सु-धाराः) उत्तम जलधाराएं (सु-स्वयन्त) खूब वेग से गमन करती हैं और उनमें (सरस्वती) अति वेग से चलने वाली (सप्तथी) आगे बढ़ने वाली (सिन्धु-माता) प्रवाह के बहते जलों को अपने भीतर लेने वाली सबकी माता के समान होती है। वे सब (साकं वावशानाः) एक साथ गर्जती हुई जाती हैं। (२) उसी प्रकार (सरस्वती) वाणी, (सप्तथी) छः मन सहित ज्ञानेन्द्रियों के बीच सातवीं (सिन्धुमाता) प्राण स्रोतों की माता के समान है और शेष सब भी (सु-दुघाः) उत्तम ज्ञान से आत्मा को पूर्ण करने वाली (सु-धाराः) उत्तम धारण वा वाणी से युक्त होकर (स्वेन पयसा) अपने ज्ञान से आत्मा को (पीप्यानाः) पुष्ट करती हुईं (सुस्वयन्त) सुखपूर्वक कार्य करती हैं वे (यशसः) बलयुक्त आत्मा के अधीन (साकं) एक साथ (वावशानाः) विषयों की कामना करती हुईं

(आ) प्राप्त होती हैं। (३) उसी प्रकार (सु-धाराः) उत्तम वाणी से युक्त विदुषी स्त्रियें भी (स्वेन पयसा) अपने बल से बढ़ती हुईं सन्मार्ग से जावें। (यशसः वावशानाः आ) बलवीर्य को चाहती हुईं एक साथ उद्योग करें। उनमें प्रशस्त ज्ञान वाली माता के समान वर्त्तें।

उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (त्ये मरुतः) वे विद्वान् (वाजिनः) ज्ञान और बल ऐश्वर्य से सम्पन्न मनुष्य (मन्दसानाः) अति प्रसन्न रहते हुए (नः) हमारे (धियं तोकं च) बुद्धियों, कर्मों और सन्तानों की (अवन्तु) रक्षा करें। (ते) वे (नः) हमारे (युज्यं रयिं अवीवृधन्) नियुक्त ऐश्वर्य को बढ़ावें और (अक्षरा) न नाश होने वाली वाणी (चरन्ती) प्राप्त होती हुई (मा नः) हमें न (परि ख्यत्) त्यागे।

प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम्।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरन्धिम् ॥८

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (वः) अपनी (महीम्) पूज्य वाणी को (अरमतिं) अति अधिक बुद्धि को (प्र कृणुध्वम्) खूब बढ़ाओ और (विदथ्यं) संग्राम में कुशल (वीरं न) वीर पुरुष के समान (पूषणं) पोषक पुरुष को (प्र कृणुध्वम्) मान सत्कार से बढ़ाओ। (भगं) ऐश्वर्यवान् और (धियः) ज्ञान और कर्म के (अवितारं) रक्षा करने वाले पुरुष की (प्र कृणध्वम्) प्रतिष्ठा करो। (अस्याः सातौ) इस वाणी को प्राप्त करने के लिये, वा इसके प्राप्त हो जाने पर (वाजम्) ज्ञान, (रातिषाचं) परस्पर दान-प्रतिदान से सम्बद्ध (पुरन्धिम्) नाना ज्ञानों के धारक विद्वान् का भी (प्र कृणुध्वम्) आदर करो।

अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो! (अयं) यह (नः)

आप लोगों की (श्लोकः) उत्तम शिक्षा और वाणी (श्रवोभिः) रक्षा साधनों, सैन्यादि से (निषिक्त-पाम्) अभिषिक्त माण्डलिकों तथा निषिक्त गर्भों के पालन करने वाले, दयालु (विष्णुम्) सर्वव्यापक शक्तिमान् को लक्ष्य करके (अच्छ एतु) प्राप्त हो और यह स्तुति उनको भी (अच्छ-एतु) प्राप्त हो जो (प्रजायै गृणते) प्रजा को उपदेश दें और (वयः धुः) जो लोग बल और दीर्घ जीवन धारण करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा किया करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ४ निचृत्पंक्तिः । ६ स्वराट्पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वाजाः) विज्ञान ऐश्वर्य और बलशाली जनो ! हे (ऋभुक्षणः) महान् तेज, प्रकाश से चमकने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषो ! (वः) तुम लोगों को (रथः) अति रमणीय, रसस्वरूप (अमृक्तः) अविनाशी (वाहिष्ठः) रथ के समान सबको उद्देश्य तक उठाकर पहुँचा देने में सर्वश्रेष्ठ ही (आ वहतु) सब प्रकार से रथ के समान धारण करे; वही (स्तवध्यै) स्तुति योग्य है। हे (सु-शिप्राः) सौम्य मुख जनो ! (सवनेषु) उत्तम यज्ञादि कर्मों के अवसरों में आप लोग (महभिः) महत्व युक्त (त्रिपृष्ठैः सोमैः) तीन २ रूपों वाले ऐश्वर्यों, अन्नों और ज्ञानों से (मदे) आनन्द में (अभि पृणध्वम्) सबको पूर्ण करो।

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥२॥

भा०—हे (स्वर्दृशः) सुख, आनन्द का साक्षात् करने वाले (ऋभुक्षणः) सत्य प्रकाश से चमकने वाले विद्वानो ! (यूयं) आप लोग (मघवत्सु) उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों में (अमृक्तं) कभी नाश न होने योग्य (रत्नम्) अति सुन्दर विद्यामय धन (ह) अवश्य (धत्थ) धारण कराया करो । आप लोग (स्वधावन्तः) उत्तम अन्न के स्वामी होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (सं पिबध्वम्) सब मिलकर उत्तम रस का पान करो और (मतिभिः) उत्तम ज्ञानों से (नः) हमारे (राधांसि) नाना धनों को (विदयध्वम्) विशेष रूप से रक्षित करो और दान दो ।

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (महः) बड़े, बहुत और (अर्भस्य) थोड़े से भी (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग करने में तू (देष्णं) देने वा उपदेश करने योग्य ज्ञान का (उवोचिथ हि) अवश्य उपदेश कर । (वसुना पूर्णा ते गभस्ती) धन से भरे पूरे तेरे बाहुओं को (वसव्या) धन के उचित विभाग का उपदेश करने वाली (सूनृता) उत्तम वाणी (न नियमते) दान करने से नहीं रोकती । वह तो स्वल्प, अधिक धन देने और विभक्त करने के लिये पात्रापात्र का उपदेश करती है ।

त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (ऋभुक्षाः) सत्य ज्ञान से दीप्तियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने, स्वयं न्याय से धन का भोग करने वाला (वाजः न) ज्ञानवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (साधुः) सत्कर्मनिष्ठ, साधक, (ऋक्वा) वेद मन्त्रों का ज्ञाता, उत्तम जनों का सत्कार करने हारा होकर (अस्तम् एषि) गृह को प्राप्त होता है । हे (हरिवः) जितेन्द्रिय ! हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (वयम्)

हम लोग (नु) शीघ्र ही (ब्रह्म दाश्वांसः) ज्ञान, अन्न, धन देने वाले जन (ते) तेरे लिये (कृण्वन्तः) सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी (स्याम) हों।

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥५।३॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान्, हरणशील अश्वों वाले ! एवं हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (येभिः) जिन (धीभिः) ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से (विवेषः) सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (प्रवतः) उत्तम गुण युक्त (रायः) ऐश्वर्य (सनितासि) प्रदान करने हारा है। (ते) तेरी (युज्याभिः) नियुक्त, आज्ञाकारी (ऊती) सेनाओं तथा रक्षण नीति से प्रवाहित होकर (ते नु ववन्म) तेरी याचना करते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (रायः) वे नाना ऐश्वर्य (कदा दशस्येः) कब दान करेगा ? इति तृतीयो वर्गः ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हम (वेधसः) विद्वान् पुरुषों को (वासयसि इव) राष्ट्र में बसा सा रहा है। तू (नः) हमारे (वचसः) वचनों को (कदा) कब (बुबोधः) समझेगा ? (वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष (तात्या धिया) व्यापक परमेश्वर में निष्ठ बुद्धि और त्याग युक्त कर्म से प्रेरित होकर (नः अस्तं) हमारे घर में (सुवीरं रयिं) उत्तम पुत्रों, वीरों से युक्त धन और (पृक्षः) शान्तिकारक अन्न (नि उहीत) प्राप्त करावे।

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृण्वन्त मर्ताः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) उत्तम स्त्री (चित्) जैसे (निर्ऋतिः) नित्य रमण

करने वाली, सदा सुप्रसन्न रहकर स्वामी को प्राप्त होकर (ईशे) स्वामिनी हो जाती है वैसे (देवी) दिव्य गुण से युक्त (निर्ऋतिः) भूमि (यम् अभि) जिसको प्राप्त कर (ईशे) ऐश्वर्यवती हो जाती है (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् को (शरदः सुपृक्षः) उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष (नक्षन्तः) प्राप्त होते हैं और (मर्त्ताः) मनुष्य (यं) जिसको (अस्ववेशं) अपने गृहादि से रहित, परिव्राजक (कृण्वन्त) करते हैं वह (त्रिबन्धुः) तीनों आश्रमों का बन्धु, परम मित्र होकर (जरद्-अष्टिम्) वृद्धावस्था को (उपेति) प्राप्त होता है। इसी प्रकार राजा को भी सब प्रजाजन 'अस्ववेश' कहते हैं। राजा का न अपना कोई जन, न अपना कोई गृह है। राष्ट्र ही उसका गृह और प्रत्येक व्यक्ति उसका 'स्व' है।

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।४

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ईश्वर ! (नः) हमें (स्तवध्यै) स्तुति करने और स्तुति प्राप्त करने के लिये (राधांसि आ यन्तु) नाना धन प्राप्त हों और (पर्वतस्य) मेघवत् दानशील पुरुष के (रायः) ऐश्वर्य (रातौ) दान के निमित्त (नः आयन्तु) हमें प्राप्त हों। (दिव्यः) शुद्ध, (पायुः) रक्षक (नः) हमें सदा (सिषक्तु) सुखों से युक्त करे। हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप लोग (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—५,६,१ सविता। ६,२ सविता भगो वा। ७,८ वाजिनो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६ स्वराट् पंक्तिः। ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ इत्यष्टर्चं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरू वसुर्दधाति ॥ १ ॥

भा०—(स्यः देवः सवितः) वह सुखों, ऐश्वर्यों का दाता, जगत् का उत्पादक परमेश्वर (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) हितकारी और रमणीय, सुखप्रद, तेजोमय (अमतिम्) उत्तम रूपयुक्त लक्ष्मी को (अशिश्रेत्) धारण करता है उसको हम (उत् ययाम) उद्यम करके प्राप्त करें। (यः) जो (वसुः) २४ वर्ष का ब्रह्मचारी होकर (पुरु रत्ना दधाति) बहुत से उत्तम गुणों, बलों और ज्ञानों को धारण करता है (नूनं) निश्चय से वही (हव्यः) स्तुति योग्य और (भगः) सेवनीय, ऐश्वर्यवान् है।

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥२॥

भा०—हे (सवितः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे! सब ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (उत् तिष्ठ) सबसे ऊपर के पद पर विराजमान हो। तू (अस्य) इस जीव, प्रजाजन के दुःखों को (श्रुधि) श्रवण कर। हे (हिरण्य-पाणे) हित, रमणीय व्यवहार वाले! और समस्त तेज और ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, सत् कारण और अन्न, धन, जीवनादि को (प्र-भृतौ) उत्तम रीति से धारण करने के निमित्त (उर्वीम्) विशाल, (अमतिम्) उत्तम रूप वाली सुन्दर (पृथ्वीम्) भूमि को (वि सृजानः) विविध प्रकार का रचता हुआ और (मर्त्तभोजनं) मरणशील प्राणियों के लिये भोजन और रक्षा साधन को (आसुवानः) सर्वत्र, सब ओर पैदा करता हुआ सबसे ऊपर विराजमान है।

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ३

भा०—(यम्) जिसको (विश्वे वसवः) सब बसने योग्य पृथ्वी आदि लोक और प्राणी (आ गृणन्ति) आदर से स्तुति करते हैं वह (देवः) सब सुखों का दाता और (सविता) सबका उत्पादक (अपि-स्तुवः अस्तु) स्तुति करने योग्य है। (सः) वह (नमस्यः) नमस्कारकर ने योग्य (नः)

हमें (स्तोमान्) स्तुति योग्य वेद मन्त्रों और (चनः) अन्न का भी (आधात्) उपदेश और प्रदान करता है। वह (विश्वेभिः पायुभिः) समस्त पालन साधनों से (सूरीन्) पुरुषों की (नि पातु) रक्षा करे।

अ॒भि यं दे॒व्यदि॑तिर्गृ॒णाति॑ स॒वं दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्जु॑षा॒णा।
अ॒भि स॒म्राजो॒ वरु॑णो गृणन्त्य॒भि मि॒त्रासो॑ अर्य॒मा स॒जोषाः॑ ॥४॥

भा०—(देवस्य) सर्व प्रकाशक, सर्व सुखदाता (सवितुः) जगदुत्पादक प्रभु के (सवं) शासन, ऐश्वर्य को (जुषाणा) सेवन करती हुई (देवी) अन्नादि की देने वाली (अदितिः) पृथिवी और प्रकृति उत्तम देवी, पत्नी के समान (यम् अभि गृणाति) जिसका गुणानुवाद करती है और (यम् अभि सम्राजः वरुणः) जिसकी स्तुति श्रेष्ठ पुरुष सम्राट् चक्रवर्ती राजे और (मित्रासः) मित्रगण तथा (सजोषाः अर्यमा) न्यायकारी न्यायाधीश ये सब प्रीतियुक्त होकर करते हैं, हे पुरुषो! (सः नः चनः धात्) वह हमें अन्न दे और (पायुभिः नि पातु) नाना रक्षा साधनों से रक्षा करे।

अ॒भि ये मि॒थो व॒नुषः॒ सप॑न्ते रा॒तिं दि॒वो रा॑ति॒षाचः॑ पृथि॒व्याः।
अहि॑र्बु॒ध्न्य॑ उ॒त नः॑ शृणोतु वरू॒त्र्येक॑धेनुभि॒र्नि पा॑तु ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो हम लोग (मिथः) परस्पर मिलकर (वनुषः) ज्ञानैश्वर्य के दाता (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी, प्रकाशस्वरूप (पृथिव्याः) भूमि के समान विशाल (राति-षाचः) दानदाता प्रभु के (रातिम्) दान को (सपन्ते) प्राप्त करते हैं वे (उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न या स्थित मेघ के समान उदार प्रभु (नः शृणोतु) हमारी विनय सुने और वह (वरूत्री) श्रेष्ठ माता के समान (एक-धेनुभिः) एक वाणी से बद्ध सहायकों द्वारा (नः नि पातु) हमारी रक्षा करे।

अनु॒ तन्नो॑ जास्पति॑र्मंसीष्ट॒ रत्नं॑ दे॒वस्य॑ सवि॒तुरि॑या॒नः।
भग॑मु॒ग्रोऽव॑से॒ जोह॑वीति॒ भग॒मनु॑ग्रो॒ अध॑ याति॒ रत्न॑म् ॥ ६ ॥

भा०—(देवस्य) सर्वैश्वर्य के दाता (सवितुः) सर्व शासक, सर्व

जगत् के उत्पादक परमेश्वर के (रत्नम्) रमणीय, उत्तम (भगम्) ऐश्वर्य को (इयानः) प्राप्त करता हुआ (उग्रः) बलवान् (जास्पतिः) प्रजा का पालक (तत्) उसे (नः अनु मंसीष्ट) हमें शक्ति प्रदान करे । (अध) इस प्रकार (अनुग्रः) निर्बल पुरुष भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये जिस (रत्नं) उत्तम (भगं) ऐश्वर्य की (जोहवीति) याचना करता है वह भी उसे (याति) प्राप्त कर लेता है ।

शं नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः ।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृकं॒ रक्षां॑सि सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥ ७ ॥

भा०—(देवताता) विद्वानों और विजयेच्छुक वीरों से करने योग्य (हवेषु) यज्ञों और युद्धों में (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् (मितद्रवः) परिमित गति से आगे बढ़ने वाले (स्वर्काः) उत्तम अन्न, प्रार्थना और तेज से युक्त पुरुष (नः शं भवन्तु) हमें सुख देने वाले हों । वे (अहिं) सर्प के समान कुटिल (वृकं) चोर स्वभाव के पुरुष और (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को भी (जम्भयन्तः) मारते और दबाते हुए (सनेमि) सदा (अस्मत्) हम से (अमीवाः) रोगों और दुःखदायी शत्रुओं को (युयवन्) दूर करें ।

वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒ धने॑षु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अ॒स्य मध्वः॑ पिबत मा॒दय॑ध्वं तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥८॥५॥

भा०—हे (वाजिनः विप्राः) बलवान्, वीर्यवान्, ज्ञानवान् विविध विद्याओं में पूर्ण, बुद्धिमान् जनो ! (अमृताः) दीर्घायु, ब्रह्मज्ञो ! हे (ऋत-ज्ञाः) सत्य, वेद और ऐश्वर्य तत्व के ज्ञाता जनो ! आप लोग (वाजे-वाजे) प्रत्येक संग्राम में (नः अवत) हमारी रक्षा करो । (नः धनेषु) हमारे धनों के आश्रय पर (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सुख और अन्न का उपभोग और पालन करो । (मादयध्वं) सदा प्रसन्न रहो और (तृप्ताः) तृप्त होकर (देव-यानैः) विद्वानों और उत्तम जनों से जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाया करो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ स्वराट्त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व अर्थात् उदात्त मार्ग से जाने वाला (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी (वस्वः) अधीन बसाने वाले आचार्य वा प्रभु की (सुमतिम्) शुभ मति, ज्ञान का (अश्रेत्) सेवन करे। (प्रतीची) प्रत्यक्ष में प्राप्त (जूर्णिः) वृद्धावस्था (देवतातिम्) मनुष्यों के हितकारी कार्य में (एति) लगे। (अद्री) अनिन्दित स्त्री पुरुष (रथ्या इव) रथ में जुड़े अश्वों के समान (ऋतम्) सत्यमय सन्मार्ग का (भेजाते) सेवन करें। (इषितः) इच्छावान् पुरुष (होता न) दाता वा गृहीता के समान (यजाति) दान तथा सत्संग करे, धन दे और ज्ञान ले।

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव वीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥

भा०—(एषाम्) इन प्रजाजनों के बीच (सु-प्रयाः) उत्तम अन्नादि सम्पन्न, उत्तम रीति से प्रसन्न तृप्त करने वाला (बर्हिः) उनको बढ़ाने और स्वयं बढ़ने वाला पुरुष ही उनको (प्र वावृजे) उत्तम मार्ग से गमन करावे। (एषाम्) इनके बीच स्त्री पुरुष दोनों (वीरिटे) अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्र के समान (विश्पती इव) प्रजापालक राजा रानी के तुल्य (इयाते) व्यवहार करें। (अक्तोः उषसः पूर्वहूतौ) रात्रि और दिन दोनों के पूर्वा-गमन-काल में (वायुः) वायु के समान प्राण प्रिय और (पूषा) पृथ्वी के समान पोषक स्त्री और पुरुष (नियुत्वान्) नियुक्त भृत्यादि के स्वामी होकर (विशाम् स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये कार्य करें।

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥३॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में बसे जनो ! (अत्र) इस राष्ट्र में आप लोग (उमयाः) भूमि के बीच में (रमन्त) आनन्द प्रसन्न रहो। हे (शुभ्राः) सुशोभित (देवाः) स्त्री पुरुषो ! आप (उरौ) विशाल (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में नक्षत्रों या वायुओं के तुल्य (मर्जयन्त) सब व्यवहारों को स्वच्छ शुद्ध करो। हे (उरु-ज्रयः) बड़े २ मार्गों के ऊपर चलने हारे आप लोग (अर्वाक्) हमारी ओर (पथः) अपने गन्तव्य (मार्गं कृणुध्वं) मार्ग बनावें। (जग्मुषः) जाने वाले आप लोगों के प्रति (नः) हमारे (अस्य दूतस्य) इस दूत के वचनों को (श्रोत) श्रवण करो।

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् ॥ ४ ॥

भा०—(ते) वे (ऊमाः) रक्षक (देवाः) विद्वान् पुरुष (विश्वे) समस्त (यज्ञियासः) यज्ञ करने वाले (यज्ञेषु) यज्ञों में (हि) अवश्य (सधस्थं अभि सन्ति) साथ विराजने योग्य सभा स्थान में प्राप्त हों। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (तान् उशतः) उन चाहने वाले पुरुषों और (भगं) ऐश्वर्यवान्, (नासत्या) कभी असत्य भाषण न करने वाले, सत्याचारी पुरुषों और (पुरन्धिम्) बहुत सुखों के धारक, वा पुर के रक्षक को (श्रुष्टी) शीघ्र ही (यक्षि) आदर सत्कार कर।

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम्।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दिवः) विद्युत् सूर्य आदि और (पृथिव्याः) पृथिवी के सम्बन्ध की (गिरः) ज्ञान वाणियों को (आ वह) धारण कर। तू (मित्रं) मित्र, प्राण वायु (वरुणं) उदान वायु (इन्द्रं) आत्मा और (अग्निम्) जाठर अग्नि और (अर्यमणम्) स्वामिवत् नियन्ता मन और (अदितिं) अविनाशी (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर को (आ वह) धारण कर। (एषां सरस्वती) इन सबके सम्बन्ध की वेदवाणी से हे (मरुतः)

विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मादयन्ताम्) प्रसन्न होवो, अन्यों को प्रसन्न करो ।

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (यज्ञियानाम्) यज्ञ, पूजा, सत्कारोचित जनों के योग्य (हव्यं) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (मतिभिः) सद् बुद्धियों और ज्ञानवान् पुरुषों से प्रेरित होकर (ररे) दिया करूं । (यज्ञियानां मर्त्यानाम्) आदर योग्य मनुष्यों की भी (कामं) अभिलाषा को (नक्षत्) प्राप्त होओ । जो विद्वान् लोग (असिन्वन्) हमें प्रेमादि से बांधते हैं उन (युज्येभिः) सहयोगी (देवैः) विद्वानों के साथ (सक्षीमहि) मिलकर रहें और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (सदासां) सदा सेवन करने योग्य (अविदस्यं) अविनाशी (रयिम्) ऐश्वर्य को (धात) धारण करो ।

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।६

भा०—(वसिष्ठैः) उत्तम विद्वान् पुरुषों द्वारा (रोदसी) सूर्य भूमि के तुल्य व्यवहारयुक्त स्त्री पुरुषों की (अभि-स्तुते) अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और (ऋतावानः) सत्यधारण, न्याय, ऐश्वर्य के स्वामी (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान् और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, सभी (चन्द्राः) आह्लादकारी होकर (नः) हमें (उपमं) ज्ञान और (अर्कं) उत्तम सत्कार (यच्छन्तु) प्रदान करें । हे विद्वान् जनो ! (यूयं) आप सब लोग (नः) हमारी (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[४०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ३ भुरिक्पंक्तिः । ६ विराट्पंक्तिः । २, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

भा०—(ओ) हे विद्वानो ! (विदथ्या) यज्ञों और संग्रामों में होने योग्य (श्रुष्टिः) शीघ्रकारिता (तुराणां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (स्तोमं) समूह को (प्रति समेतु) प्रति पुरुष प्राप्त हो, ऐसे (स्तोमं) जन समूह या सैन्य को हम (दधीमहि) धारण करें। (यद् देवाः) जो दानशील, तेजस्वी (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अद्य सुवाति) आज शासन और ऐश्वर्य प्रदान करता है (अस्य) उसके (विभागे) विशेष व्यवहार में हम (रत्निनः स्याम) उत्तम धन सम्पन्न हों।

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही, मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (रोदसी च) आकाश और पृथिवी के तुल्य स्त्री और पुरुष और (इन्द्रः अर्यमा) सूर्य और मेघ के तुल्य राजा और न्यायाधीश (नः) हमें (तत्) वह नाना प्रकार का (द्यु-भक्तम्) बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य ऐश्वर्य (ददातु) प्रदान करे। (अदितिः देवी) अन्नदात्री भूमि के तुल्य विदुषी, अखण्ड व्रतचारिणी स्त्री, (भगः च वायुः च) ऐश्वर्यवान् और बलवान् सूर्य और वायु के तुल्य तेजस्वी बलवान् पुरुष (यत् रेक्णः) जो धन और बल वीर्य (नि-युवैते) अच्छी प्रकार परस्पर मिलकर उत्पन्न करते हैं उसका हमें भी (दिदेष्टु) विद्वान् पुरुष उपदेश करे।

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु तुल्य बलवान्, शत्रुओं को मारने हारे वीरो ! हे (पृषदश्वाः) सिञ्चन किये जल अग्नि से वेग पूर्वक जाने हारे वा हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले सैन्य जनो ! आप लोग (यं मर्त्यं अवाथ)

जिस मनुष्य की रक्षा करते हो (सः इत् उग्रः अस्तु) वह ही बलवान्, शत्रुओं को भयभीत करने में समर्थ हो। (उत) और (ईम्) सब ओर (तस्य सरस्वती) उसकी उत्तम वाणी और वेगवती सेना (अग्निः) अग्नि के समान अर्थ की प्रकाशक, शत्रु को दग्ध करने वाली हो। जिसको (जुनन्ति) विद्वान् लोग सन्मार्ग पर चलाते हैं (तस्य रायः) उसके ऐश्वर्यों को कोई (पर्येता न अस्ति) छीन लेने वाला नहीं होता।

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (हि) ही (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ पुरुष (नेता) सबका नायक होता है। (मित्रः) सर्वस्नेही (अर्यमा) शत्रुनियन्ता और (राजानः) अन्य राजागण उसके अधीन (अपः धुः) नाना काम अपने पर लेते हैं। (सुहवा) उत्तम ज्ञान से युक्त (देवी) उत्तम अन्नादि देने वाली, विदुषी (अदितिः) अखण्ड चरित्र वाली, भूमिवत् माता और (अनर्वा) अश्वादि से रहित, यन्त्रमय रथ पर जाने वाला अथवा अहिंसक पुरुष (ते) वे सब (अंहः) पाप और कष्ट से (अरिष्टान्) बिना पीड़ित हुए (नः) हमें (अति पर्षन्) पार करें।

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) तेजोमय, सुखप्रदाता (मीढुषः) वीर्य-सेक्ता, बलवान् पिता के तुल्य, (विष्णोः) व्यापक बलशाली, (एषस्य) सबके चाहने योग्य, सर्वप्रिय (हविर्भिः प्रभृथे) ग्राह्य अन्नों या आज्ञा-वचनों द्वारा उत्तम रीति से परिपोषित इस जगत् वा राष्ट्र में सब (वयाः) शाखा के समान हैं। (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला वह ही (रुद्रियं महित्वं विदे) रुद्र होने योग्य महान् सामर्थ्य को प्राप्त करता है। हे (अश्विनौ) स्त्रीपुरुषो! सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी जनो! (इरावत् वर्त्तिः) अन्नादि से समृद्ध गृह को तुम लोग (यासिष्टं) प्राप्त करो।

मात्र॑ पूषन्नाघृण इरस्यो॒ वरू॑त्री य॒द्रा॑ति॒षाच॑श्च रा॒स॑न् ।
म॒यो॒भुवो॑ नो॒ अर्व॑न्तो॒ नि पा॑न्तु वृ॒ष्टिं परि॑ज्मा॒ वातो॑ ददातु ॥६॥

भा०—हे (आघृणे) सब ओर दीप्ति वाले तेजस्विन्! (पूषन्) सर्वपोषक! तू (अत्र) इस राष्ट्र में (मा इरस्य) विनाश मत कर। (यत्) जो (वरूत्री) वरण योग्य विदुषी स्त्री और जो (रातिषाचः च) दानशील पुरुष (रासन्) प्रदान करते हैं वे (मयः-भुवः) सुख शान्ति के दाता (नः अर्वन्तः) हमें प्राप्त होकर (नि पान्तु) रक्षा करें और (परि-ज्मा) पृथ्वी पर शासक (वातः) वायु के समान बलवान् होकर मेघवत् (वृष्टिं ददातु) प्रजा पर सुखों की वृष्टि करें।

नू रोद॑सी अ॒भिष्टु॑ते वसि॒ष्ठैर्ऋ॒तावा॑नो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निः ।
यच्छ॑न्तु च॒न्द्रा उ॑प॒मं नो॑ अ॒र्कं यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ७।७

भा०—व्याख्या देखो सू० ३९। ७॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[४१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १ लिङ्गोक्ताः। २—६ भगः। ७ उषा देवता॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। ४ पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्रा॒तर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्रं॑ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ ।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रं हु॑वेम ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (प्रातः) प्रभात समय में (अग्निम्) अग्नि के समान तेजःस्वरूप प्रभु की (हवामहे) स्तुति करें। हम (प्रातः इन्द्रम् हवामहे) प्रातःकाल विद्युत् वा सूर्य के समान प्रकाशक परमेश्वर वा आत्मा की उपासना करें। (मित्रा वरुणा) प्राण और उदान दोनों को (प्रातः) प्रातःकाल हम प्राणायाम द्वारा वश करें। (अश्विना प्रातः) वैद्य, अध्यापक और देह में सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्रातः सेवन करें। (भगं) ऐश्वर्यमय, भजने योग्य (पूषणं) सर्वपोषक वायु का (प्रातः) प्रभात में सेवन करें। (ब्रह्मणः पतिम्) वेद, ब्रह्माण्ड और समस्त ऐश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर

और वेदोपदिष्टा विद्वान् की शिष्य, (सोमम्) ओषधि की रोगी, आचार्य की शिष्य, और (रुद्रं) पापियों को रुलाने वाले प्रभु की भक्तजन (प्रातः हुवेम) प्रातः ही सेवा शुश्रूषा करें।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।

आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥ २॥

भा०—(प्रातः-जितम्) प्रभात में ही सबसे अधिक उत्कर्ष पाने और (भगं) सेवन योग्य (उग्रं) दुष्टों को भयकारी, (पुत्रं) बहुतों के रक्षक प्रभु की (वयं) हम (हुवेम) स्तुति करें, (यः) जो (अदितेः) अखण्ड प्रकृति सूर्य और (विधर्त्ता) विविध लोकों को धारण करता है और (यं मन्यमानः) जिसका मनन करता हुआ (यं) जिस (भगं) ऐश्वर्यवान् सेव्य प्रभु को (आध्रः चित्) अन्यों से धारण पोषण योग्य, दरिद्र और (तुरः चित्) शीघ्रकारी (राजा चित्) राजा भी (भक्षि) मैं भजन करता हूँ (इति आह) ऐसा ही कहता है। अर्थात् जिसकी उपासना गरीब अमीर सब करते हैं।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥ ३॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन्! हे (प्रणेतः) उत्तम मार्ग में ले जाने हारे! हे (भग) सेवन योग्य, हे (सत्य-राधः) सत् पदार्थों में विद्यमान कारणरूप प्रकृति और सत्यज्ञान वेद के धनी हे (भग) ऐश्वर्य-सुखदातः! आप (नः) हमारी (इमां) इस (धियम्) बुद्धि को (उत् अव) ऊपर की ओर ले चलो, उन्नत करो। (नः ददत्) हमें दान करते हुए हे (भग) ऐश्वर्यवन्! हमें (गोभिः अश्वैः) गौओं, वाणियों, इन्द्रियों और अश्वों से (प्र जनय) उत्तम बनाइये। जिससे हे (भग) ऐश्वर्य के स्वामिन्! हम (नृभिः) उत्तम पुरुषों के साथ मिलकर (नृवन्तः) उत्तम मनुष्यों के सहयोगी होकर (प्र स्याम) उत्तम बनें।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(उत इदानीं) और इस समय, (उत प्र-पित्वे) और ऐश्वर्य प्राप्त होने पर, सूर्य के आगमन काल में और (अह्नाम् मध्ये) दिनों के बीच में (उत) और (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय-काल में या (उद्-इता) अस्तकाल में भी हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् हम (भगवन्तः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्याम) हों और सदा हम (देवानां) विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषों की (सु-मतौ) शुभ मति के अधीन (स्याम) रहें ।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥

भा०—(भगः एव) भजन करने योग्य सर्व कल्याणकारक प्रभु ही (भगवान् अस्तु) ऐश्वर्यों का स्वामी हो । हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (तेन) उससे ही (वयं) हम सब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों । हे (भग) सेवा योग्य ! (सर्वः इत्) सब ही (त्वां तं) उस तुझको (जोहवीती) पुकारता है, (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तू ही (इह) इस लोक में यहां (नः पुरः-एता भव) हमारा अग्रगामी हो ।

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

भा०—(उषसः) प्रातःकाल के अवसरों में आप लोग (अध्वराय) हिंसारहित, कभी नाश या निष्फल न होने वाले यज्ञ, उपासनादि कर्म के लिये और (शुचये) शुद्ध, पवित्र, (पदाय) प्राप्तव्य परम प्रभु को प्राप्त करने के लिये (दधिक्रावा इव) बोझ लेकर चलने वाले अश्व के समान उद्देश्य, व्रत को धारण करके आगे पैर बढ़ाते हुए (सं नमन्त) अच्छी प्रकार झुको । (अश्वाः रथं न) अश्व जिस प्रकार रथ को ले जाते हैं उसी प्रकार (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् लोग (अर्वाचीनं) साक्षात्

करणीय (वसु-विदं) नाना ऐश्वर्यों, लोकों, जीवों को प्राप्त और उनसे पालने योग्य (भगं) ऐश्वर्यमय प्रभु तक (नः आवहन्तु) हमें पहुँचावें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥८

भा०—(उषासः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः) जिस प्रकार प्रभात वेलाएं सूर्य किरणों और उत्तम वायु से युक्त होकर भद्र अर्थात् कल्याण और सुख देती हैं उसी प्रकार (उषासः) कान्ति वा कामना-युक्त, प्रिय स्त्रियें भी (अश्वावतीः) उत्तम भोक्ता पुरुष से सनाथ, (गोमतीः) उत्तम वाणियों को धारण करने वाली, (वीर-वतीः) उत्तम पुत्र युक्त होकर (नः सदम्) हमारे घर को (उच्छन्तु) प्रभात वेलाओं के समान प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) गृह में दीप्तिवत्, जल और ज्ञानप्रकाश से पूर्ण करती हुईं (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार हृष्ट पुष्ट, तृप्त रहें। हे विदुषी स्त्रियो! (यूयं) आप सब (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा कल्याण उपायों से रक्षा करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[४२]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ६ निचृत्पंक्तिः ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

प्र ब्र॒ह्माणो॒ अङ्गि॑रसो नक्षन्त॒ प्र क्र॑न्द॒नुर्न॑भ॒न्य॑स्य वेतु।
प्र धे॒नव॑ उद॒प्रुतो॑ नवन्त यु॒ज्याता॒मद्री॑ अध्व॒रस्य॒ पेशः॑ ॥ १ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) देह में प्राणवत्, तेजस्वी (ब्रह्माणः) वेद के जानने हारे पुरुष (प्र नक्षन्त) आया करें। (क्रन्दनुः नभन्यस्य) जिस प्रकार मेघ वायु के वेग को प्राप्त करता है या विद्युत् अन्तरिक्षस्थ मेघ को व्यापती है उसी प्रकार (क्रन्दनुः) उपदेष्टा पुरुष (नभन्यस्य वेतु) स्तुति योग्य प्रभु के ज्ञान का प्रकाश करे। (क्रन्दनुः) रोदनशील, कोमल प्रकृति स्त्री (नभन्यस्य वेतु) सम्बन्ध योग्य पुरुष का आश्रय करे। (उदप्रुतः)

जल से भरी नदियों के समान (धेनवः) वाणियां और गौएं (प्र नवन्त) प्रभु की स्तुति करें और (अद्री) मेघ वा पर्वतवत् स्थिर स्त्री पुरुष (अध्वरस्य वेशः) अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को (प्र युज्याताम्) सम्पन्न करें।

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युंक्ष्व सुते हरितो रोहितश्च।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते) तेरा (सनवित्तः) सनातन से वेद द्वारा जाना गया (अध्वा) मार्ग (सुगः) सुख से गमन योग्य है। तू भी (सुते) उत्पन्न जगत् में वा ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये रथ में (हरितः रोहितः च) लाल अश्वों को (युंक्ष्व) नियुक्त कर। (ये वा अरुषाः वीरवाहः) जो अरुण वर्ण या क्रोध रहित वीरों को ले चलने वाले हों (देवानां जनिमानि) उन विद्वानों और वीरों के जन्मों की मैं (सत्तः) स्थिर होकर प्रशंसा करूं। (२) गृहस्थ पक्ष में—(सुते) पुत्र के निमित्त (रोहितः च हरितः) तेजस्विनी, लतावत् वृद्धिशील, काम्य स्त्रियों को (युंक्ष्व) विवाह धर्म में नियुक्त कर। जो स्त्री पुरुष (अरुषाः) रोष रहित (वीरवाहः) पुत्रों के लालन पालन का भार उठा सकें, उन कामवान् पुरुषों के उत्पन्न सन्तानों को मैं (सत्तः) स्थिर गृहपति सदा (हुवे) प्रशंसा करूं या उपदेश करूं।

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! (वः) आप लोगों में (मन्द्रः) अति स्तुत्य (होता) विद्वान् उपदेष्टा (नमोभिः) हव्यों और नमस्कार योग्य मन्त्रों से (यज्ञं) उपास्य, यज्ञमय परमेश्वर की (महयन्) पूजा करता हुआ (उपाके) हमारे समीप रहकर (प्र रिरिचे) पापों से पृथक् रहता है। हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों, बलों के स्वामिन् ! तू (देवान् सु यजस्व) विद्वान् पुरुषों का आदर सहित सत्संग कर, उनको दान दे और (यज्ञियानाम्)

यज्ञ, प्रभु की ध्यानोपासना और सत्संगोचित्त (अरमतिं) उत्तम बुद्धि को (आ ववृत्याः) सब प्रकार स्वीकार और प्रयोग कर।

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत्।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥४॥

भा०—अतिथि यज्ञ। (यदा) जब (वीरस्य) वीर क्षत्रिय और (रेवतः) धनाढ्य वैश्य के (दुरोणे) गृह में (अतिथिः) पूज्य अतिथि, भ्रमणशील विद्वान्, परिव्राजक, ब्राह्मण (स्योनशीः) सुख से रहे और प्राप्त हो, वह (दमे) गृह में (सु धितः) सुखपूर्वक धारित (अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (सुप्रीतः) सुप्रसन्न होकर (इयत्यै) सुख चाहने वाली (विशे) प्रजा के लिये (वार्यं आदाति) उत्तम ज्ञान प्रदान करता और उसके हित के लिये ही स्वयं भी (वार्यम् आ दाति) वरणीय हविष्यवत् धनादि ग्रहण करता है।

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! (नः इमं अध्वरं) तू हमारे इस यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर। (मरुत्सु) मनुष्यों और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में भी (नः) हमारे (अध्वरं यशसं कृधि) यज्ञ को कीर्त्तियुक्त कर। (नक्ता उषासः) रात और दिन, सदा, (उशन्ता) परस्पर चाहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही, परस्पर को वरण करने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (इह यज) इस स्थान पर धर्मोपदेश दे, सत्संग कर। तू (बर्हिः सदताम्) उत्तमासन पर विराज।

एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१॥

भा०—(वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् (रायः कामः) ऐश्वर्यों की इच्छा वाला होकर (विश्वप्स्न्यस्य) समस्त रूपों में वर्तमान, सर्वत्र विद्यमान

अग्नि आदि तत्व के (सहस्यं) बलोत्पादक (अग्निं) अग्नि या विद्युत् तत्व का (स्तौत्) उपदेश करे। (अस्मे) हमारे (इषं रयिम् वाजम् पप्रथद्) अन्न, धन, बल का विस्तार करे। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमें कल्याणकारी उपायों से सदा सुरक्षित रखिये। मनुष्य ऐश्वर्य का इच्छुक विश्वरूप भगवान् के तेजोमय रूप की उपासना करे; इच्छा, बल, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करे। इति नवमो वर्गः ॥

[४३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ५ भुरिक्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ य॒ज्ञेषु॑ देव॒यन्तो॑ अर्च॒न्द्यावा॒ नमो॑भिः पृथि॒वी इ॒षध्यै॑ ।
येषां॒ ब्रह्मा॒ण्यस॑मानि॒ विप्रा॒ विष्व॑ग्वि॒यन्ति॑ व॒निनो॒ न शाखाः॑ ॥१॥

भा०—(यज्ञेषु) सत्संगों, देवपूजा, दान आदि कार्यों में (वः) आप लोगों के बीच (द्यावा पृथिवी) आकाश या सूर्य और भूमि दोनों को (इषध्यै) चाहने और जानने के लिये (देवयन्तः) विद्वानों और परमेश्वर की (नमोभिः) विनयों और अन्नादि से (प्र अर्चन्) अच्छी प्रकार अर्चना करते हैं (येषां) जिनके (ब्रह्माणि) ज्ञान, वेद-वचन और धनैश्वर्य (असमानि) सबसे अधिक हैं वे (विप्राः) विद्वान् पुरुष (वनिनः शाखाः न) सूर्य की आकाश में फैली किरणों वा वृक्ष की शाखाओं के समान (विष्वग् वियन्ति) सब ओर जाते हैं।

प्र य॒ज्ञ ए॑तु॒ हेत्वो॒ न सप्ति॒रुद्य॑च्छध्वं॒ सम॑नसो घृ॒ताचीः॑ ।
स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिर॑ध्व॒राय॑ सा॒धूर्ध्वा शो॒चींषि॑ देव॒यून्य॑स्थुः ॥२॥

भा०—(हेत्वः सप्तिः न) वेगवान् अश्व के समान (यज्ञः प्र एतु) यज्ञ प्राप्त हो, वह उत्तम रीति से चले। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (समनसः) एकचित्त होकर (घृताचीः उद्यच्छध्वम्) घृत से युक्त स्रुवे उठाओ, अथवा एक चित्त होकर उद्यम करो और आप लोग (घृताचीः)

जलों से युक्त मेघमालाओं को (बर्हिः) आकाश में (स्तृणीत) अच्छादित करो। (साधु) अच्छी प्रकार (अध्वराय) यज्ञ की (देवयूनि) दीप्तियुक्त (शोचींषि) ज्वालाएं (ऊर्ध्वा अस्थुः) ऊंचे उठें। (२) (यज्ञः) पूज्य राजा अश्व के समान बलवान् होकर प्राप्त हो, आप लोग एकचित्त (घृताचीः) तेजस्विनी सेनाओं को उठाओ। (बर्हिः स्तृणीत) राष्ट्र, प्रजाजन का विस्तार करो (देवयूनि शोचींषि) विजयेच्छु पुरुषों की ज्वालाएं (अध्वराय) राष्ट्र के पालनरूप यज्ञ वा शत्रु से न हिंसित होने के लिये खूब उठें।

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३॥

भा०—(विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) भरण-पोषण योग्य पुत्र जिस प्रकार माता को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (विभृत्राः) विशेष रूप से भृति द्वारा रक्षित राजपुरुष (पुत्रासः न) राजा के पुत्रों के समान प्रिय होकर (मातरं) उत्पादक मातृभूमि को प्राप्त होकर (देवासः) विजयेच्छु जन (बर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र तथा प्रजाजन के (सानौ) समुन्नत पदों पर (सदन्तु) विराजें। (विश्वाची) समस्त जनों की बनी सभा (विदथ्याम्) संग्राम सम्बन्धिनी नीति को (आ अनक्तु) स्पष्ट प्रकट करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! (देवताता) यज्ञ और युद्ध में (नः मृधः) हमारे हिंसकों को (मा कः) मत उत्पन्न कर।

ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥४॥

भा०—(ते) वे (यजत्राः) एकत्र संगत, वा राजा के भृति, दान, के पात्र जन (ऋतस्य) सत्य वचन और धन की (सुदुघाः धाराः दुहानाः) उत्तम रीति से सुख से पूर्ण करने वाली वाणियों का प्रयोग करते हुए (जोषम्) प्रीतिपूर्वक (आ सीषपन्त) मिलकर रहें और (वः वसूनां) बसने वाले आप लोगों में से (महे) पूज्य (ज्येष्ठं) सबसे बड़े को (अद्य) आज

आप (समनसः) समान चित्त होकर (आ गन्तन) प्राप्त होओ और (यति स्थ) यत्न में लगे रहो।

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।१०

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! नायक! तेजस्विन्! तू (एव) अवश्य (विक्षु) प्रजाओं में (आ दशस्य) सब ओर दान कर, उदार हो। (त्वया युजा वयं) तुझ सहयोगी से मिलकर हम (आस्क्राः) सब प्रकार से मानो खरीदे भृत्यवत् हों और (अरिष्टाः सधमादः) अहिंसित, अपीड़ित और (राया) एक साथ (सध-मादः) प्रसन्न रहें। हे विद्वान् वीर पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो। इति दशमो वर्गः॥

[४४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ लिङ्गोक्ता देवताः॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३ निचृत्-त्रिष्टुप्। ४, ५ पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मैं (वः) आप लोगों में से (दधिक्राम्) शिष्यों को धारण कर उनको उपदेश देने वाले (प्रथमम्) सबसे प्रथम, (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाशक (उषसम्) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त (समिद्धं अग्निम्) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान और सुख प्राप्ति के लिये (हवे) स्वीकार करूं। मैं (इन्द्रम्) विद्युत्, (विष्णुं) व्यापक शक्ति वाले, (पूषणं) पोषक ओषधिवर्ग, (ब्रह्मणः पतिम्) अन्न धनादि के पालक और (आदित्यान्) १२ मासों (द्यावा पृथिवी) सूर्य, पृथिवी और (अपः) जलों और (स्वः) सूर्य प्रकाश और सुख को भी (हुवे) प्राप्त करूं।

दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (दधिक्राम्) राज्य के कार्य भार को अपने पर लेने वालों को सन्मार्ग पर चलाने वाले सारथिवत् राजा को (नमसा बोधयन्तः) विनय से निवेदन करते (उद्-ईराणाः) उत्तम ज्ञान वा उत्तम २ उपदेश देते हुए, (यज्ञम् उप प्रयन्तः) सत्संगति और यज्ञ वा पूज्य पुरुष के समीप जाते हुए, (बर्हिषि) वृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र में बसे प्रजाजन में (देवीं) उत्तम गुण युक्त (इळां) वाणी की (सादयन्तः) व्यवस्था करते हुए हम लोग (सु-हवा) उत्तम वचन बोलने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् (अश्विना) रथी सारथिवत् सहयोगी स्त्री पुरुषों को हम (हुवेम) प्राप्त करें, उनकी प्रशंसा करें ।

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥३॥

भा०—(बुबुधानः) निरन्तर ज्ञानवान् मैं (दधि-क्रावाणं) धारण करने वाले रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगन्ता, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (उषसं) प्रभात के समान कान्तियुक्त, (गाम्) पृथिवी के समान गतिमान् (मंश्चतः वरुणस्य) अभिमान करने वाले के नाशकारी वा विद्वानों से ज्ञानादि के याचक श्रेष्ठ राजा के (बभ्रुं) भरण पोषण करने वाले (ब्रध्नं) महान्, आकाश वा सूर्य के समान अन्यों को अपने में बांधने वाले ऐसे २ पुरुषों से मैं (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ कि (ते) वे (अस्मत्) हमसे (विश्वा दुरिता यावयन्तु) सब प्रकार की बुराइयां दूर करें ।

दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥ ४ ॥

भा०—दधिक्रावा का स्वरूप । (रथानाम् अग्रे वाजी) रथों के आगे जैसे वेगवान् अश्व मुख्य होता है वह (दधिक्रावा) रथी सारथी, तथा

अन्यों को धारण करने वाले रथ को लेकर चलने से 'दधिक्रावा' है वैसे (प्र-जानन्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष भी (रथानां) समस्त रमणीय, व्यवहारों के (अग्रे) अग्र या मुख्य पद पर (प्रथमः) सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ (भवति) होता है वह भी (दधिक्रावा) कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाले जिम्मेवार पुरुषों को उपदेश देकर ठीक राह पर ले चलने से 'दधि-क्रावा' कहाता है। वह (उषसा) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त, दुष्टों के दाहक, शक्तिमान्, (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी राजा (आदित्येभिः) १२ मासों के समान नाना प्रकृति के विद्वान् अमात्यों, (वसुभिः) वा प्रजा में बसे, ब्रह्मचारी आठ विद्वानों और (अंगिरेभिः) अंगारों के समान तेजस्वी, वा अंग अर्थात् देह में रमने वाले, बलस्वरूप प्राणोंवत् देश के प्रिय पुरुषों से (संविदानः) ज्ञान की वृद्धि करता रहे।

आ नो॑ दधि॒क्राः प॒थ्या॑मनक्त्वृ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑तवा उ॑ ।
शृ॒णोतु॑ नो॒ दैव्यं॒ शर्धो॑ अ॒ग्निः शृ॒ण्वन्तु॒ विश्वे॑ महि॒षा अमू॑राः ॥५॥११

भा०—जिस प्रकार (दधिक्राः) रथं वा मनुष्यों को लेकर चलने में समर्थ अश्व मार्ग चलते हुए अच्छी चाल प्रकट करता है उसी प्रकार (नः) हममें से (दधि-क्राः) सब सहयोगी जनों को अपने जिम्मे लेकर आगे बढ़ने वाला पुरुष (ऋतस्य पन्थाम् अन्वेतव) सत्य, न्याय के मार्ग को स्वयं चलने और औरों को चलाने के लिये (नः) हमारे लिये (पथ्याम्) धर्मयुक्त, हितकारिणी नीति को (अनक्तु) प्रकट करे। वह सन्मार्ग प्रकट करने से (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशक (नः) हमारे (दैव्यं) मनुष्यों के हितकारी (शर्धः) बल को (श्रृणोतु) श्रवण करे, जाने और (विश्वे) समस्त (अमूराः) मोह रहित, ज्ञानी (महिषाः) बड़े लोग भी (श्रृण्वन्तु) हमारे कार्यों को सुनें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[४५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १ ॥

भा०—(सविता देवः) प्रकाशक सूर्य के समान (सविता) सबका प्रेरक तेजस्वी पुरुष (अन्तरिक्ष प्राः) आकाश को व्यापने वाला, (सु-रत्नः) उत्तम रत्नों के समान रमणीय गुणों का धारण करने वाला, (अश्वैः वहमानः) अश्वों के समान विद्वानों की सहायता से कार्य-भार उठाता हुआ (आ यातु) आवे । वह (हस्ते) हाथ में (पुरूणि) बहुत से (नर्या) मनुष्यों के हितार्थ नाना पदार्थों को (दधानाः) धारण करता हुआ (नि वेशयन् च) सबको बसाता और (प्र-सुवन् च) उत्तम रीति से शासन और बहुत से ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ प्राप्त हो ।

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२॥

भा०—(अस्य) इसकी (शिथिरा) शिथिल, दृढ़ (बृहन्ता) बड़ी २ (हिरण्यया) सुवर्ण से मण्डित (बाहू) बाहुएं (दिवः अन्तान्) समस्त कामना और विजय योग्य व्यवहारों के पार तक (उत् अनष्टाम्) उत्तम रीति से पहुँचती हैं । (नूनं) निश्चय से (अस्य) इसका (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य (पनिष्ट) स्तुति योग्य है कि (सूरः चित्) विद्वान् पुरुष (अस्मै) इसकी (अपस्याम्) कर्माभिलाषा में (अनु दात्) सहयोग देता है । (२) परमेश्वर, सर्वोत्पादक, सविता की बाहुओं के समान निग्रहानुग्रह की शक्तियां समस्त आकाश के दूर २ तक फैली हैं । उसकी महिमा गाई जाती है, सूर्य उसी की कर्मशक्ति से चलता है ।

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

भा०—(सः देवः सविता) वह सर्वसुखदाता शासक, ऐश्वर्यवान् राजा (सहावा) बलवान् (वसु-पतिः) धनों का स्वामी होकर (वसूनि)

नाना धनों को (साविषत्) उत्पन्न करे। (उरूचीं) बहुत पदार्थों को प्राप्त करने वाली (अमतिम्) उत्तम नीति को (वि-श्रयमाणः) विशेष रूप से आश्रय लेता हुआ (नः) हमें (मर्त्त-भोजनं) मनुष्यों से भोगने योग्य ऐश्वर्य, मनुष्यों का पालन, शासन, न्याय (रासते) प्रदान करे।

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम्।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४।१२

भा०—(इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियां (सु-जिह्वं) उत्तम वाणी बोलने वाले (पूर्ण-गभस्तिम्) पूर्ण रश्मियों से युक्त सूर्य के समान पूरे परिमाण की बाहुओं वाले, तेजस्वी, (सुपाणिम्) उत्तम हाथों वाले, वा उत्तम व्यवहारवान्, (सवितारं) शासक, आज्ञापक, ऐश्वर्यवान् पुरुष की (ईडते) प्रशंसा करती हैं, अर्थात् उत्तम वाणियें ही उत्तम विद्वान्, व्यवहारज्ञ पुरुष की प्रशंसा का कारण होती हैं। वह विद्वान् पुरुष (अस्मे) हमें (चित्रं) अद्भुत (वयः) ज्ञान और बल (दधातु) प्रदान करे। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनों से पालन करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[४६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्जगती। २ निचृत्त्रिष्टुप्।
३ निचृज्जगती। ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियें, (स्थिर धन्वने) स्थिर धनुष वाले, दृढ लक्ष्यभेदी (क्षिप्रेषवे) तीव्र वेग से बाण चलाने में चतुर, (देवाय) विजय की कामना वाले, (स्वधाव्ने) राष्ट्र, जन और देह तन आदि की रक्षा करने में कुशल, (अषाढाय) शत्रुओं से अपराजित (सहमानाय) शत्रुओं को पराजित करने वाले, (वेधसे) कार्यों

के विधान करने वाले, (तिग्मायुधाय) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों के स्वामी, (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, राजा के प्रति (भरत) कहो और वह (नः) हमारे निवेदन (श्रृणोतु) सुने।

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह राजा या सेनापति (क्षम्यस्य) क्षमा योग्य, या भूमि में रहने योग्य (जन्मनः) प्राणी या जनों के (क्षयेण) निवास, ऐश्वर्य और (दिव्यस्य) आकाश से होने वाले (क्षयेण) वृष्टि आदि ऐश्वर्य तथा (साम्राज्येन) बड़े साम्राज्य से (हि) निश्चय से (चेतति) जाना जाय। वा वह ऐश्वर्य और साम्राज्य के नाते ही सबको जाने। हे राजन्! तू (अवन्तीः अवन्) रक्षा करने वाली सेनाओं और प्रजाओं की रक्षा करता हुआ (नः) हमारे (दुरः) बनाये द्वारों के (उपचर) समीप आ। हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और रोगों को दूर करने हारे विद्वन्! (नः) हमारे (जासु) सन्तानों के बीच तू (अनमीवः) रोगरहित और अन्यों के रोगों से मुक्त करने वाला (भव) हो। (२) अथवा—वैद्य (क्षम्यस्य जन्मनः) भूमि पर उत्पन्न पदार्थों को (क्षयेण चेतति) व्यवहार या उनके रोगनाशक सामर्थ्य से जाने और (दिव्यस्य जन्मनः) आकाश में उत्पन्न मेघ, जल, नक्षत्र, वायु आदि का ज्ञान (साम्राज्येन) सूर्यादि के आकाशविज्ञान से करे। (अवन्तीः) रोगों से बचाने वाली ओषधियों को (उप चर) प्राप्त करे (नः दुरः) हमें दुख देने वाले रोगों का उपचार करे। जिससे (नः) हमारा (जासु) पीड़ा देने वाला रोग (अनमीवः) पीड़ादायक न हो।

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥

भा०—हे (सु-अपिवात) उत्तम रीति से शत्रुओं को प्रचण्ड वायु के सदृश प्रबल आक्रमण से दूर करने हारे (या) जो (ते) तेरी (दिद्युत्)

चमचमाती, तीक्ष्ण सेना (दिवः परि) विजय कामना से सब ओर (अव-सृष्टा) छोड़ी हुई (क्ष्मया) भूमि के साथ (परि चरति) जाती है (सा नः) वह हमें (परि वृणक्तु) कष्ट न दे। हे विद्वन्! (ते) तेरी (सहस्रं भेषजा) सहस्रों ओषधियां हैं। तू (नः तोकेषु) हमारे बच्चों और (तनयेषु) पुत्रों पर (मा रीरिषः) हिंसा का प्रयोग मत कर।

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१३

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने, दुःखों को दूर करने वाले! तू (नः मा वधीः) हमें मत मार, मत दण्डित कर। (मा परा दाः) हमें त्याग मत कर, परे मत कर। हम (हीडितस्य) क्रुद्ध हुए (ते) तेरे (प्रसितौ) बन्धनागार में (मा भूम) न हों। तू (जीव-शंसे) जीवित जनों से प्रशंस-नीय (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र में (नः) हमें (आ भज) प्राप्त हो। हे विद्वान् जनो! (यूयं) आप सब (नः) हमें (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम साधनों से सदा पालन करो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[४७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ आपो देवताः॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। २ विराट्त्रिष्टुप्। ४ स्वराट्पंक्तिः॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम॥ १॥

भा०—जिस प्रकार (देवयन्तः) सूर्यवत् रश्मियें (इडः) अन्न या भूमि के (उर्मिम्) ऊपर उठने वाले जलों के अंश को (इन्द्रपानम् अकृ-ण्वत) सूर्य द्वारा पान करने योग्य करते हैं उसी प्रकार हे (आपः) विद्वान् प्रजाओ! (देवयन्तः) देव, राजा के समान आचरण करते हुए राजपुरुष (वः) आप लोगों में से (यं) जिस (प्रथमं) अग्रगण्य (ऊर्मिम्) तरंग के समान उन्नत पुरुष को (इडः) भूमि और वाणी के ऊपर (इन्द्र-पानं)

राजावत् पालक रूप से (अकृण्वत) नियत करते हैं (वयं) हम लोग (तं) उस (शुचिम्) शुद्ध, धार्मिक (अरि-प्रम्) निष्पाप (घृत-प्रुषं) जल से अभिषिक्त (मधुमन्तं) मधुर स्वभाव वाले पुरुष को (अद्य) आज (वनेम) सेवन करें, प्राप्त हों।

तमूर्मिमा॑पो मधु॑मत्तमं वो॒ऽपां नपा॑दवत्वाशु॒हेमा॑ ।
यस्मि॒न्निन्द्रो॒ वसु॑भिर्मा॒दया॑ते॒ तम॑श्याम दे॒वयन्तो॑ वो अ॒द्य ॥२॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आश्रय पर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा, सेनापति, (वसुभिः) बसे प्रजाजनों के साथ (मादयाते) सबको प्रसन्न करता वा होता है, हे (आपः) आप्त जनो ! (तं वः ऊर्मिम्) आप लोगों के उस उत्तम उन्नत (मधुमत्तमं) अति मधुर गुणों से युक्त, अति बलवान् अंश, ऐश्वर्य वा पुरुष वर्ग को (आशु-हेमा) सेना, रथों वा अश्वों को शीघ्र प्रेरक (अपां नपात्) जलों में नाव के समान तारक, प्रजाओं को नीचे न गिरने देने और प्रबन्ध में बांधने हारा पुरुष (अवतु) बचावे । हे विद्वानो ! (वः) आप लोगों के ज्ञानमय, ऐश्वर्यमय अंश को हम (देवयन्तः) कामना करते हुए (अश्याम) प्राप्त करें।

श॒तप॑वित्राः स्व॒धया॒ मद॑न्तीर्दे॒वीर्दे॒वाना॒मपि॑ यन्ति॒ पाथः॑ ।
ता इन्द्र॑स्य॒ न मि॑नन्ति व्र॒तानि॒ सिन्धु॑भ्यो ह॒व्यं घृ॒तव॑ज्जुहोत ॥३॥

भा०—(शत-पवित्राः) सैकड़ों रश्मियों से पवित्र (देवीः) दिव्य गुण-युक्त जलांश (स्वधया) अन्नांश से (मदन्तीः) प्रजाओं को तृप्त करते हुए (देवानां) सूर्य-रश्मियों के (पाथः अपियन्ति) मार्ग को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार (शत-पवित्राः) सैकड़ों उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली (देवीः) विदुषी, उत्तम स्त्रियां (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तीः) आनन्द लाभ करती हुईं (देवानां) उत्तम विद्वान् पुरुषों के (पाथः) पालन योग्य ऐश्वर्य को (अपियन्ति) प्राप्त करती हैं। (ताः) वे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त पति के (व्रतानि) कर्मों को (न मिनन्ति) नाश नहीं करतीं । (सिन्धुभ्यः)

पुरुषों को सम्बन्धों से बांधने वाली उन स्त्रियों के भी (घृतवत्) घृत से युक्त (हव्यं) जलों या खाद्य अन्नों का उत्पादक अंश 'इन्द्रपान' अर्थात् जीवों के उपभोग योग्य इस अंश को रश्मियें उत्पन्न करती हैं। (२) विद्वान् लोग प्रजाओं और भूमि के श्रेष्ठ अंश को 'इन्द्रपान' अर्थात् राजोपभोग्य करते हैं। (३) शिष्यवत् विद्या की कामनायुक्त पुरुष आप्त जनों की (इडः ऊर्मिम्) वाणी के उत्तम अंश को (इन्द्र-पानम् अकृण्वत) रसवत् इन्द्र आचार्य द्वारा पान करने योग्य ज्ञान का अभ्यास करें।

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१४

भा०—(सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से जिस प्रकार जलों को (आततान) फैला कर आकाश में व्यापक कर देता है और (याभ्यः) जिन जलों के लिये (इन्द्रः) विद्युत् (ऊर्मिम्) गमन योग्य (गातुम्) मार्ग को (अरदद्) बनाता है, उसी प्रकार (सूर्यः) तेजस्वी पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों के समान अधीन शासकों से (याः आततान) जिन आप्त प्रजाओं को विस्तृत करता है और (याभ्यः) जिन प्रजाओं के हित के लिये (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऊर्मिम्) उन्नत भूमि को (अरदत्) कृषि द्वारा सम्पन्न करता है। अथवा—(याभ्यः) जिन जल-धाराओं के लिये राजा भूमि खुदवा कर नहरें बनवाता है (ते) वे (सिन्धवः) नदियां वा जलधाराएं (वः) हमें (वरिवः धातन) उत्तम धन प्रदान करें। हे उत्तम प्रजाजनो (ते) वे (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम उपायों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ ऋभवः । ४ ऋभवो विश्वेदेवा वा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक्पंक्तिः । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) सत्य ज्ञान वा महान् ऐश्वर्य का सेवन और पालन करने वाले पुरुषो! हे (वाजाः) ज्ञानी पुरुषो! हे (मघवानः) प्रशस्त धनों के स्वामी जनो! हे (नरः) उत्तम नायको! आप लोग (सुतस्य) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य से (अस्मे) हमें (मादयध्वम्) सुखी करो। (वः) आप लोगों में से (अर्वाचः) नये नये (क्रतवः न विभ्वः) बुद्धिमान एवं विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष (यातां) यात्री जनों के लिये (नर्यं रथं) मनुष्यों को सुखदायी रथ (वर्त्तयन्तु) चलाया करें।

ऋ॒भुर्ऋ॒भुभि॑र॒भि वः॑ स्याम॒ विभ्वो॑ वि॒भुभिः॒ शव॑सा॒ शवां॑सि।
वाजो॑ अ॒स्माँ अ॑वतु॒ वाज॑साता॒विन्द्रे॑ण यु॒जा त॑रुषेम वृ॒त्रम् ॥ २ ॥

भा०—(वः) आप लोगों में से (ऋभुः) सत्य व्यवहार, यज्ञ, धन बल से चमकने वाला, सामर्थ्यवान् पुरुष (ऋभुभिः) उसी प्रकार सत्य धनादि से समृद्ध, सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर और (वाजः) बलवान् पुरुष भी (वाज-सातौ) युद्ध काल में (अस्मान् अवतु) हमारी रक्षा करे। हम लोग (विभ्वः) विशेष बलशाली होकर (विभुभिः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर (शवसा) बल से (शवांसि) शत्रु सैन्यों को (अभि स्याम) पराजित करें और (युजा) सहयोगी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा के साथ मिलकर (वृत्रं तरुषेम) बढ़ते हुए शत्रु को नाश करें।

ते चि॒द्धि पू॒र्वीर॒भि सन्ति॑ शा॒सा विश्वाँ॑ अ॒र्य उ॑प॒रता॑ति व॒न्वन्।
इन्द्रो॒ विभ्वाँ॑ ऋभु॒क्षा वाजो॑ अ॒र्यः शत्रो॑र्मिथ॒त्या कृ॑ण॒वन्वि नृ॒म्णम् ३

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (ऋभु-क्षाः) तेजस्वी पुरुषों को अधीन बसाने हारा (वाजः) संग्राम-कुशल (अर्यः) स्वामी, (शत्रोः मिथत्या) शत्रु के मारने के लिये (विभ्वान्) बड़े २ सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त करे। वे सब मिलकर (नृम्णम्) धनैश्वर्य को (वि कृण्वन्) विविध प्रकारों से उत्पन्न करें। (उपर-ताति) मेघादि के समान शरवर्षी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध में (ते चित् हि) वे ही (विश्वान् अर्यः) सब

बढ़ते शत्रुओं को मारे और (शासा) शासन और शस्त्र-बल से (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान सेनाओं को भी (अभि सन्ति) मात करें।

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः।
यूयमस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥१५॥

भा०—(देवासः) विद्वान्, दानशील पुरुष (नः) हमारी (वरिवः) ऐश्वर्य वृद्धि (कर्तन) करें। (विश्वे देवासः) सब वीर पुरुष (स-जोषाः) प्रीतियुक्त होकर (नः अवसे भूत) हमारी रक्षा के लिये तैयार रहें। (वसवः) वसु, बसे प्रजाजन, बसाने वाले शासक और पृथिवी वायु, सूर्यादि (अस्मे) हमें (इषं ददीरन्) अन्न और इच्छानुकूल ऐश्वर्य प्रदान करें। हे विद्वानो! (यूयं) आप सब लोग (नः सदा स्वतिभिः पात) हमारा सदा कल्याणकारी उपायों द्वारा पालन करें। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[४९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ आपो देवताः॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

भा०—(समुद्र-ज्येष्ठाः) एक साथ ऊपर उठने वाले, उत्तम मेघों में स्थित, (देवीः आपः) उत्तम जल (अनिविशमानाः) कहीं भी स्थिर न रहते हुए, (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः) अन्तरिक्ष के बीच में से पवित्र करते हुए (यन्ति) आते हैं। (याः) जिनको (वज्री इन्द्रः) तीव्र बल से युक्त विद्युत् वा सूर्य (वृषभः) और वर्षणशील मेघ या वायु (ररद) छिन्न भिन्न करता है। (ताः आपः) वे जल (इह) इस पृथिवी पर (माम्) मुझ बसे प्रजाजनों को (अवन्तु) रक्षा करते हैं। (२) इसी प्रकार (देवीः आपः) उत्तम आप्त प्रजाएं और सेनाएं (समुद्र-ज्येष्ठाः) समुद्र के समान अपार धन-बलशाली पुरुष को बड़ा मानने वाली (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः)

अभिषेक योग्य जल के बीच स्वयं पवित्र हुई या सेनापति को पवित्र करती हुई कहीं भी स्थिर स्थान न पाकर प्राप्त होती हैं। उनको बलशाली राजा (रराद) वश करे, वे राष्ट्र की रक्षा करें।

या आपो॑ दि॒व्या उ॒त वा॒ स्रव॑न्ति ख॒नित्रि॑मा उ॒त वा॒ याः स्व॑य॒ञ्जाः।
स॒मु॒द्रार्थाः॒ याः शुच॑यः पाव॒कास्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥२॥

भा०—(याः) जो (आपः) जल धाराएं (दिव्याः) आकाश में उत्पन्न या सूर्य विद्युतादि से उत्पन्न (उत वा) और जो (स्रवन्ति) बहती हैं जो (खनित्रिमाः) खोदकर प्राप्त की जायें (उत वा) और (याः स्वयं-जाः) जो स्वयं आप से आप भूमि से उत्पन्न हुई हों, (याः) जो (समुद्रार्थाः) समुद्र, आकाश से आने वाली या समुद्र को जाने वाली (शुचयः) शुद्ध (पावकाः) पवित्र करने वाली (आपः) जलधाराएं हैं वे (देवीः) उत्तम गुणों से युक्त होकर (इह माम् अवन्तु) इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें। (२) इसी प्रकार आप्त प्रजाएं लोक-व्यवहारों, विद्याविज्ञान में कुशल 'दिव्य' हैं। 'खनि' खान आदि रक्षक या कृषि, कूप, खननादि से जीने वाले 'खनित्रिम' हैं। अपने व्यवसाय या धन से बढ़ने वाले 'स्वयंजा', समुद्रवत् गम्भीर पुरुष के लिये अपने को सौंपने वाले भृत्यजन, ईमानदार और 'पावकाः' अग्निवत् अन्यों को उपदेश ज्ञानादि से पवित्र करने वाले गुरु आदि सभी मुझ प्रजा वा राजा की इस राष्ट्र, वा राष्ट्रपति पद पर रक्षा करें।

यासां॒ राजा॒ वरु॑णो॒ याति॒ मध्ये॑ सत्यानृ॒ते अ॑व॒पश्य॒ञ्जना॑नाम्।
म॒धु॒श्चुतः॒ शुच॑यो॒ याः पा॑व॒कास्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥३॥

भा०—(यासां मध्ये) जिन जलों या प्रजाजनों के बीच में अभिषिक्त होकर (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा द्वारा स्वयंवृत राजा (जनानाम्) सब मनुष्यों के (सत्यानृते) सत्य और झूठ दोनों का (अवपश्यन्) विवेक करता हुआ (याति) प्राप्त होता है। वे (मधुश्चुतः) मधुर गुणों से युक्त, (शुचयः) शुद्ध और (याः) जो (पावकाः) पवित्र करने वाली हैं (ताः

देवीः आपः) वे उत्तम गुणयुक्त जलधाराएं और विद्वान् प्रजाएं (माम् अवन्तु) मुझ राजा वा प्रजाजन का पालन करें।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥१६॥

भा०—(यासु) जिन जलों वा प्रजाओं के बीच (वरुणः) वरण किया गया पुरुष (राजा) राजा बनता है, (यासु सोमः) जिनके बीच में नाना ओषधि तथा सौम्य स्वभाव के विद्वान् हैं, (यासु) जिनके बल पर (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (ऊर्जम् मदन्ति) अन्न से तृप्ति और बल प्राप्त करते हैं (यासु) जिनके बीच (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों का हितकारी (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी नेता (प्रविष्टः) प्रविष्ट है (ताः आपः देवीः) वे आप्त दिव्य गुण युक्त जल और प्रजाजन (माम् इह अवन्तु) मुझे इस लोक में रक्षा करें। इति षोडशो वर्गः ॥

[५०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ मित्रावरुणौ । २ अग्निः । ३ विश्वेदेवाः । ४ नद्यो देवताः ॥
छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । २ निचृज्जगती । ४ भुरिग्जगती ॥
चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन्।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् और कष्टों के निवारण करने वाले जनो! (इह) इस लोक में आप दोनों माता पिता के समान (माम् रक्षतम्) मेरी रक्षा करें। (कुलाययत्) घर या स्थान घेर कर संघ बना कर रहने वा कुत्सित रूप प्राप्त कराने वाला और (वि-श्वयत्) विविध रूपों में फैलने और शोथ प्रगट करने वाला रोग, विषादि पदार्थ (नः मा आगन्) हमें प्राप्त न हो। (अजकावं) 'अजक' अर्थात् भेड़ बकरियों के समान छोटे जन्तुओं को खा जाने वाले, अजगरादिवत् (दुर्दृशीकं) कठिनता से दीखने वाले नाशकारी जन्तु को मैं (तिरः दधे) दूर करूं। (त्सरुः)

कुटिलचारी सर्प आदि (पद्येन रपसा) पैर से होने वाले दोष द्वारा (मां मा विदत्) मुझे प्राप्त न हो। कुटिलाचारी सर्पादि मेरे पैर में न काट खावें।

इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा का प्रयोग विष दूर करने में पूर्वाचार्यों ने लिखा है। इस दृष्टि से इस मन्त्र में आये 'मित्र' शब्द से स्नेहयुक्त घृत और 'वरुण' शब्द से 'जीरे' का ग्रहण होता है। दोनों के गुण राजनिघण्टु में—गोघृतं—"वातपित्त विषापहम्"। 'जीरक शुक्लं'—'कृमिघ्नी विषहन्त्री च'॥ अथवा—जो पदार्थ विषादि का योग हो जाने पर भी जीव को मरण से बचा सकें वे 'मित्र' तथा जो पदार्थ कष्टों का पहले ही वारण कर सकें, जिनकी उपस्थिति में रोगकारी जन्तु वा सर्प, वृश्चिक, दंश, मशकादि दूर भाग जायं वे पदार्थ 'वरुण' वर्ग में रखने योग्य हैं। विष भी दो प्रकार के हैं। एक 'कुलाययत्' जो देह में कुत्सित रूप लावे, दूसरा 'वि-श्वयत्' जो विविध शोथ उत्पन्न करें। इसी प्रकार रोगकारी जन्तु दो प्रकार के हैं एक बड़ी सर्प जाति अजगरादि और 'अजकाव', दूसरे दुर्दशीक जो कठिनता से दृष्टिगोचर हों। ये सब वर्ग कुटिल या छद्मगति से जाने से 'त्सरु' हैं। वे प्रायः (पद्येन रपसा) पैर के अपराध से मनुष्यों पर आघात करते हैं। सांप बिच्छू आदि पैर आ जाने से काट खाते हैं।

यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः॥२॥

भा०—(यत्) जो (वन्दनं) देह को जकड़ने वाला विष (विजामन्) विविध पीड़ा के उत्पत्ति स्थान रूप पेट या (परुषि) पोरु या सन्धि स्थान पर (भुवत्) उत्पन्न होता है और जो (अष्ठीवन्तौ) स्थूल अस्थि से युक्त गोडों और (कुल्फौ) पैर के टखनों को (परि देहत्) सुजा दे, (तत्) उस विषमय रोग को (अग्निः) अग्नि तत्व (शोचत्) सन्तप्त करता हुआ (इतः बाधताम्) इस देह से दूर करे। (त्सरुः) छद्म गति से छुए देह में फैलने वाला रोग (पद्येन रपसा) पैर में विद्यमान दुखदायी

रोग रूप से (मा मां विदत्) मुझे प्राप्त न हो। अर्थात् सन्धिवात, गठिया आदि मुझे न हो। 'अग्नि' शब्द से अग्नि तत्व, सूर्यताप, अग्नि बीज, रसटोक्स, ब्रायोनिया आदि आग्नेय पदार्थ लिये जाते हैं।

अग्निकः चित्रकः। अग्निको भल्लातकः। अग्निजः अग्निजारः। अग्निगर्भा तेजस्विनी। अग्निगर्भः सूर्यकान्तः। अग्निजिह्वा कलिहारी। अग्निज्वाला धातकी महाराष्ट्री च। अग्निदमनी। अग्नि धमनो निम्बः। अग्निभासा ज्योतिष्मती। अग्निमन्थः। अग्निवल्लभः राला सर्वकश्च। अग्नि वीर्यम् सुवर्णम्। अग्निसंभवः कसुम्भम्। अग्नि सहायः परावतः। अग्निसारो रसाञ्जनम्। अग्निकालः चित्रकः भल्लातकः सुवर्णं च। इत्येते सर्वे पदार्था वातदोषशमनाः भवन्ति। एतेषां गुणाः आयुर्वेद वैद्यक ग्रन्थेषु द्रष्टव्याः।

यच्छ॒ल्म॒लौ भव॑ति॒ यन्न॒दीषु॒ यदोष॑धीभ्य॒ः परि॒ जाय॑ते वि॒षम्।
विश्वे॑ दे॒वा निरि॒तस्तत्सु॑वन्तु॒ मा मां पद्ये॑न॒ रप॑सा विद॒त्त्सरुः॑ ॥३॥

भा०—(यत् विषम्) जो विष या रस (शल्मलौ भवति) शाल्मलि वर्ग के वृक्षों में होता है (यत् विषम् नदीषु) जो विष या रस नदियों में होता है, (यत् विषम्) जो विष या रस (ओषधिभ्यः परि जायते) ओषधियों से उत्पन्न होता है, (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् जन (तत्) उस नाना विषों या रसों को (इतः) इन २ स्थानों से (निः सुवन्तु) ले लिया करें चिकित्सा करें। जिससे (त्सरुः) छुपी चाल का रोग (मां) मुझे (पद्येन रपसा) आने वाले पापाचरण से वा चरणादि के अपराध से (मा विदत्) न प्राप्त हो। बड़, पीपल, गूलर आदि का दुग्ध, रस आदि भी वातनाशक, सुजाक, सिफ़लिसादि रोगों के विषों का नाश करते हैं। इसी प्रकार नाना नदियों और ओषधियों के रसों से सब प्रकार के कष्ट, ज्वर, कुष्ठ, पामा आदि रोग नष्ट होते हैं।

याः प्र॒वतो॑ नि॒वत॑ उ॒द्वत॑ उद॒न्वती॑रनुद॒काश्च॒ याः।
ता अ॒स्मभ्यं॒ पय॑सा॒ पिन्व॑मानाः शि॒वा दे॒वीर॑शिप॒दा भ॑वन्तु॒
सर्वा॑ न॒द्यो॑ अशिमि॒दा भ॑वन्तु ॥ ४ ॥ १७ ॥

भा०—(याः) जो नदियां (प्रवतः) दूर २ देशों तक जाने वाली, (याः निवतः) जो नीचे की ओर बहने वाली, (याः उद्वतः) जो ऊंचे की ओर जाने वाली, (उदन्वतीः) जो प्रचुर जल वाली, (याः च अनुदकाः) और जो जलरहित या अल्प जल की नदियां हैं (ताः) वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पयसा) उत्तम जल से देश को सींचती हुईं (शिवाः भवन्तु) कल्याणकारी हों (देवीः) सुखप्रद, अन्नादि देने वाली हों और (अशिपदाः) भोजनार्थ सब प्रकार के अन्नोत्पादक हों और (सर्वाः नद्यः) सब नदियें (अशिमिदाः भवन्तु) अहिंसाकारिणी हों। अध्यात्म में—(१) (कुलाय-यत्) कुलाय अर्थात् अहंकारादि कृति को उत्पन्न करने वाला और (विश्वयत्) विश्व को बनाने वाला प्रधान प्रकृतितत्व (नः मा आगन्) हमें प्राप्त न हो। 'मित्र' और 'वरुण' प्राण और उदान गुरुजन मेरी रक्षा करें। (अजकावं) 'अजक' आत्माओं के समूह का रक्षक परब्रह्म (दुर्दृशीकं) बड़ी कठिनता से देखे जाने योग्य है। तो भी मैं उसे (तिरः) सदा विद्यमान के समान वा सबसे पृथक् रूप में (दधे) धारण करूं। जिससे (त्सरुः) कुटिल काम क्रोधादि (पद्येन रपसा मा विदत्) आचार सम्बन्धी पाप से हमें प्राप्त न हो। (२) जो आप (विजामन्) विविध जन्म लेने में और पर्व पर बाधक होता है, जो (अष्ठीवन्ती परिकुल्फौ च) अस्थि वाले (कुल्फौ = कुलपौ) प्राणगणों के पालक स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के देहों में (परि रेहत्) व्यापता है 'अग्निः' ज्ञानी पुरुष प्रभु उस अज्ञान दोष को इसी जन्म में नाश करे। (३) जो (विषम्) विविध बन्धनों को काटने में समर्थ ज्ञान-शान्तिप्रद (नदीषु) उपदेष्टा गुरुओं में हो या प्रभु में हो और जो बल वा ज्ञान (ओषधीभ्यः) पापदाहक तेज को धारण करने वाली प्रजाओं में है सब विद्वान् उस ज्ञान को ओषधि रसवत् मेरे लिये प्राप्त करावें। (४) उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, ज्ञानवान् अज्ञानवान् सभी मनुष्य प्रजाएं सुख कल्याणकारिणी हों, ज्ञान अन्नादि दें, सब (अशि-पदाः) अन्न देने वाली और (अशिमिदाः) अहिंसक हों। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[५१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
तृचं सूक्तम् ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ १ ॥

भा०—(आदित्यानाम्) 'अदिति' अखण्ड और अदीन परमेश्वर के उपासक प्रजाओं को अपनी शरण में लेने वाले उत्तम पुरुषों के (नूतनेन अवसा) अति उत्तम ज्ञान से और (शन्तमेन शर्मणा) अति शान्तिदायक गृहवत् देह से हम (सक्षीमहि) अपने आपको सम्बद्ध करें । वे (तुरासः) अति शीघ्रकारी, (श्रोषमाणाः) हमारे दुःख-सुख, विनयादि को सुनते हुए (इमं यज्ञं) इस उत्तम सत्संग ज्ञान दान आदि सम्बन्ध को (अनागास्त्वे) हमें पाप रहित करने और (अदितित्वे) अखण्ड बनाये रखने के लिये (दधतु) सदा स्थिर रक्खे ।

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२॥

भा०—(आदित्यासः) पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान्, 'अदिति' प्रभु परमेश्वर के उपासक स्वयं (अदितिः) यह भूमि या माता पितादि, (मित्रः) स्नेही जन, (अर्यमा) न्यायकारी दुष्टों का नियन्ता (वरुणः) श्रेष्ठ जन, (रजिष्ठाः) अति धर्मात्मा, वे सब (अस्माकं) हमारे (भुवनस्य) समस्त लोक के (गोपाः) रक्षक (सन्तु) हों । वे (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (अद्य) आज (सोमम् पिबन्तु) ओषधि रस के समान अपने को स्वस्थ रखने के लिये अल्प मात्रा में ही ऐश्वर्य का भोग करें ।

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१८

भा०—(विश्वे आदित्याः) समस्त बारह मासों के समान नाना

सुखप्रद विद्वान् (विश्वे मरुतः) समस्त वायुगण, समस्त मनुष्य, (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् पुरुष और पृथिवी आदि लोक, (विश्वे ऋभवः च) समस्त सत्य, तेज से प्रकाशित जन (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी, (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, ये सब (तुष्टुवानाः) स्तुति किये जायं। हे स्वजनो! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब लोग हमें उत्तम साधनों से सदा पालन करें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्यो देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट्पंक्तिः । २ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ १ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ब्रह्मचारी, निष्ठ पुरुषो! हम लोग (अदितयः) अखण्ड बलशाली (स्याम) हों। हे (वसवः) गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् पुरुषो आप लोग, (देवत्रा) विद्वानों और (मर्त्यत्रा) मनुष्यों के बीच (पूः) नगरी के समान सबके रक्षक होओ। हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और श्रेष्ठ जनो! हम लोग (सनन्तः) ऐश्वर्य को प्राप्त करते हुए (सनेम) दान किया करें। हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् माता पिता जनो! हम (भवन्तः) सामर्थ्यवान् होकर (भवेम्) सदा रहें।

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही और (वरुणः) दुःखों और पापों के वारक श्रेष्ठजन और (गोपाः) रक्षक जन (नः) हमें (तत् शर्म मामहन्त) वह नाना सुख प्रदान करें (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रों को सुख दें। (वः) आप लोगों में रहते हुए हम (अन्य-जातम् एनः) औरों से उत्पन्न पाप

का (मा भुजेम) भोग न करें। हे (वसवः) विद्वान् जनो ! (यत् चयध्वे) जिसको आप नाश करो (मा तत् कर्म) वह काम हम न करें।

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥३।१९॥

भा०—(तुरण्यवः) शीघ्र कर्म करने में कुशल, अप्रमादी (अंगिरसः) देह में प्राणवत् राष्ट्र में तेजस्वी पुरुष (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्व-सुखदाता प्रभु को (इयानाः) स्मरण करते हुए उसके (रत्नं नक्षन्त) परमैश्वर्यमय राज्य-रूप रत्न को प्राप्त करें। (तत्) वह ही (नः) हमारा (यजत्रः) अति पूज्य, सर्व सुखदाता (महान्) बड़ा (पिता च) पालक पिता है। (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (समनसः) एक समान चित्त होकर (जुषन्त) प्रेम से वर्त्ताव करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥

भा०—(द्यावा पृथिवी) भूमि और सूर्य के समान (बृहती) बड़ी, (यजत्रे) सत्संग करने योग्य, पूज्य (देव-पुत्रे) विद्वान् पुत्रों के माता पिताओं को मैं (यज्ञैः) दान, मान, सत्कारों से और (नमोभिः) नमस्कारों से (सबाधः) जब २ बाधा या पीड़ा युक्त होऊं (ईडे) उनकी पूजा करूं। (त्ये चित् मही) उन दोनों पूज्यों को (पूर्वे) पूर्व के (गृणन्तः) उपदेश देने वाले (कवयः) विद्वान् पुरुष (पुरः दधिरे) सदा अपने सन्मुख, पूज्य पद पर स्थापित करते रहे हैं।

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पूर्वजे पितरौ) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित होकर विद्वान् हुए (ऋतस्य सदने) सत्य व्यवहार के आश्रय रूप (पितरा) माता पिताओं को (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिस्तुत्य वाणियों से (प्र कृणुध्वम्) विशेष आदरयुक्त करो। हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि के समान अन्न, जल, तेज और आश्रय से प्रजा का पालन करने वाले माता पिताओ ! आप लोग (नः) हमें (दैव्येन जनेन) विद्वान् पुरुषों से शिक्षित जनों के साथ (वाः महि वरूथं) अपने बड़े भारी घर को (आ यातं) प्राप्त होओ !

उ॒तो हि वां॑ र॒त्नधे॑यानि॒ सन्ति॑ पु॒रूणि॑ द्यावापृथिवी सु॒दासे॑ ।
अ॒स्मे ध॑त्तं॒ यदस॒दस्कृ॑धोयु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३।२०

भा०—हे (द्यावा पृथिवी) भूमि सूर्य वा भूमि विद्युत् के तुल्य माता पिताओ ! (सु-दासे) आप दोनों उत्तम भृत्यों और दानशीलतादि गुणों से युक्त होओ। अथवा उत्तम दानशील पुरुष के लिये (वां) आप दोनों के (पुरूणि रत्न-धेयानि) बहुत से सुन्दर ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (यत्) जो भी (अस्कृधोयुः) बहुत अधिक जीवनप्रद (असत्) हो वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो। (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। 'अस्कृधोयुः'—अस्कृधोयुरकृध्वायुः । कृध्विति ह्रस्व नाम । निरुक्तं भवति । इति त्रिंशो वर्गः ॥

[५४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वास्तोष्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

वास्तो॑ष्पते॒ प्रति॑ जानीह्य॒स्मान्त्स्वा॑वे॒शो अ॑नमी॒वो भ॑वा नः ।
यत्त्वेम॑हे॒ प्रति॒ तन्नो॑ जुषस्व॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥१॥

भा०—हे (वास्तोः पते) वास करने योग्य गृह और राष्ट्र के पालक ! गृहपते ! राजन् ! तू (अस्मान् प्रति जानीहि) हमें, प्रत्येक को जान वा प्रतिज्ञा पूर्वक हमारे प्रति व्यवहार कर। (नः) हमारे प्रति (सु आवेशः

स्व-आवेशः) उत्तम भावों और वर्त्ताओं वाला तथा अपने गृह के समान प्रेम से वर्त्तने वाला और (अनमीवः) रोगादि से पीड़ा न होने देने वाला (भव) हो। (यत् त्वा ईमहे) जो हम तेरे समीप आते और याचना करते हैं (नः तत् प्रति जुषस्व) वह तू हमें मान दर्शा और प्रदान कर। (नः द्विपदे शम्, चतुष्पदे शम्) हमारे दोपाये भृत्य, पुत्रादि और चौपाये गाय, भैंस आदि का भी कल्याणकारी हो।

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥

भा०—हे (वस्तोः पते) निवास करने के योग्य देह, गृह, राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! राजन्! तू (नः) हमारा (प्र-तरणः) नाव के समान संकट से पार उतारने वाला और (गय-स्फानः) गृह, प्राण और धन का बढ़ाने वाला (एधि) हो। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! चन्द्रवत् आह्लादक! तू (नः) हमें (गोभिः अश्वेभिः) गौओं, अश्वों सहित प्राप्त हो। (ते सख्ये) तेरे मित्र-भाव में हम (अजरासः) वृद्धावस्था से रहित, उत्साह और बल से युक्त रहें। (नः) हम से तू (पिता इव पुत्रान्) पुत्रों को पिता के समान (जुषस्व) प्रेम कर।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।२१

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक! (ते) तेरी (रण्वा) अति रमणीय (शग्मया) सुखदायक (गातु-मत्या) उत्तम वाणी और उत्तम भूमि से युक्त (सं सदा) सहवास और सभा से हम लोग (सक्षीमहि) सदा सम्बन्ध बनाये रक्खें। (क्षेमे) रक्षा-कार्य और (योगे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने में (नः) हमारी (वरं) अच्छी प्रकार (पाहि) रक्षा करो, वा (नः वरं पाहि) हमारे धन की रक्षा करो। हे विद्वान् जनो! (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ वास्तोष्पतिः । २—८ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २,३,४ बृहती । ५, ७ अनुष्टुप् । ६, ८ निचृदनुष्टुप् । अष्टर्चं सूक्तम् ।

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥

भा०—हे (वास्तोः-पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक प्रभो ! गृह-पते ! राजन् ! तेरे अधीन (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के नाना रूप अर्थात् जीव बसते हैं । तू (अमीव-हाः) सब प्रकार के रोगों, कष्टों का नाशक और (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (नः) हमारा (सखा एधि) मित्र हो ।

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥

भा०—हे (अर्जुन) धनादि को उत्तम रीति से उपार्जन करने वाले ! हे अतियत्नशील ! हे शुभ्र ! विद्वन् ! हे (सारमेय) सारवान्, बलवान् एवं बहुमूल्य पदार्थों का मान-प्रतिमान करने, उनसे जाने योग्य ! हे (पिशङ्ग) तेजस्विन् ! तू (दतः) दांतों और अन्यों को खण्डित करने वाले शस्त्रों को (यच्छसे) नियम में रख । (बप्सतः) खाते हुए मनुष्यों के दांत जैसे (स्रक्वेषु उप) ओठों के पास चमकते हैं वैसे (स्रक्वेषु) बने नगरों के पास (बप्सतः) राष्ट्र का भोग करते हुए तेरे (ऋष्टयः) शस्त्र-अस्त्रादि, (वि इव भ्राजन्त) विशेष रूप से चमकें । (नि सु स्वप) बलवान् राजा के हे प्रजाजन ! तू अच्छी प्रकार सुख की निद्रा ले ।

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर ।
स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥

भा०—हे (सारमेय) उत्तम बल धारण करने वाली सेना के जन ! तू (स्तेनं) चोर और (तस्करं) निन्द्य कार्य करने वाले डाकू के पास (राय) पहुँच, उसे पकड़ । (पुनः सर) तू उस पर वार २ आक्रमण

कर। तू (इन्द्रस्य स्तोतॄन्) राजा के प्रति उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों को (किं रायसि) क्यों पकड़ता है ? (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें दुष्ट कुत्ते के समान क्यों कष्ट देता है ? तू (नि सु स्वप) नियमपूर्वक सुख से निद्रा ले, अन्यों को भी सुख से सोने दे।

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (सू-करस्य) उत्तम कार्य करने वाले को (दर्दृहि) खूब बढ़ा। (सूकरस्य = सु-करस्य) उत्तम रीति से वश करने योग्य, सुसाध्य शत्रु को (दर्दृहि) विदीर्ण कर। उसमें भेद नीति का प्रयोग कर और (सूकरः) उत्तम युद्धकर्त्ता शत्रुजन (तव दर्दृहि) तेरे राष्ट्र में भी भेदन करने में समर्थ है। तू (स्तोतॄन्) उत्तम विद्वानों के प्रति (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रायसि) दान कर। (अस्मान् किम् दुच्छुनायसे) हमारे प्रति क्यों दुष्ट कुत्ते के समान दुर्व्यवहार करता है, (नि सु स्वप) तू सावधान रहकर सुख की निद्रा ले।

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः।
स॒सन्तु सर्वे ज्ञातयः स स्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥

भा०—राष्ट्र और गृह के उत्तम प्रबन्ध रहने पर (माता सस्तु) माता सुख की नींद सोवे, (पिता सस्तु) पिता सुख की नींद सोवे। (श्वा सस्तु) कुत्ता आदि रखवारे भी सुख से सोवें। (विश्पतिः सस्तु) प्रजाओं का स्वामी राजा सुख से सोवे। (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब सम्बन्धी जन सुख से सोवें। (अयम्) यह (अभितः जनः) चारों ओर बसा प्रजाजन (सस्तु) सुख से सोवे।

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

भा०—(यः आस्ते) जो बैठा हो (यः च चरति) जो चलता है, (यः

जनः) जो मनुष्य (नः) हमें (पश्यति) देखता है (तेषां) उनके (अक्षाणि) आंखों को हम (संहन्मः) अच्छी प्रकार निमीलित करें जिससे बाहर के भीतर, भीतर के बाहर वालों को न देखें। (यथा) जैसा (इदं हर्म्यं) यह उत्तम भवन है (तथा) उसी प्रकार हम घर बनावें।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रात् सहस्रः-शृङ्गः) समुद्र से सहस्रों किरणों वाले सूर्य के समान (यः) जो तेजस्वी पुरुष (वृषभः) बलवान्, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला (उत् आचरत्) उत्तम पद पर विराज कर न्याय से वर्त्तता है, (तेन सहस्येन) उस बलवान् पुरुष के सहयोग से (वयं) हम (जनान्) सब प्रजा को (नि स्वापयामसि) सुख की निद्रा सोने दें।

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥८॥२२॥३॥

भा०—(याः नारीः) जो स्त्रियां (प्रोष्ठे-शयाः) आंगन या उत्तम भवन पर सोती हैं, (या वह्ये-शयाः) जो रथ आदि में सोती हैं, (याः तल्प-शीवरीः) जो उत्तम सेजों में सोती हैं और (याः पुण्यगन्धाः स्त्रियः) जो पुण्य, उत्तम गन्ध वाली, शुभ-लक्षणा स्त्रियां हैं (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापयामसि) सुख की नींद सोने दें। ऐसा उत्तम राज्य और गृह का प्रबन्ध करें। अनुक्रमणिका में इस सूक्त को 'उपनिषत्' लिखा है। अतः अध्यात्म योजना देखो अथर्ववेद आलोक-भाष्य कां० ४। सू० ५। मं० १, ३, ६ ॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची गायत्री। २, ६, ७, ९ भुरिगार्ची गायत्री। ३, ४, ५ प्राजापत्या बृहती। ८, १० आर्च्युष्णिक्। ११ निचृदार्च्युष्णिक् १२, १३, १५, १८, १९, २१ निचृत्त्रिष्टुप्। १७,

२० त्रिष्टुप्। २२, २३, २५ विराट् त्रिष्टुप्। २४ पंक्तिः। १४, १६ स्वराट्पंक्तिः ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥

भा०—(ईम्) सब प्रकार से (वि-अक्ताः) विशेष तेजस्वी, कान्तियुक्त, गुणों से सम्पन्न, (सनीडाः) समान स्थान में रहने वाले, (रुद्रस्य) दुःखों को दूर करने वाले, दुष्टों के रुलाने वाले, प्रभु, परमेश्वर, विद्योपदेष्टा आचार्य के (के मर्याः) कौन विशेष मनुष्य (नरः) उत्तम नायक और (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों वाले वा जितेन्द्रिय हैं ? (२) रुद्र, सेनापति के नायक विशेष कान्तियुक्त, (स नीडाः) नीले तुर्रे वाले, (मर्याः) शत्रु को मारने में समर्थ, उत्तम घुड़सवार सब ओर रहें। (३) रुद्र परमेश्वर के (नरः) जीव (स-नीडाः) देह सहित, मरणधर्मा, उत्तम इन्द्रियों से सम्पन्न हैं।

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन जीवों के (जनूंषि) जन्मों को (नकिः वेद हि) निश्चय से कोई नहीं जानता। (अङ्ग) हे विद्वन्! (ते) वे सब (मिथः) स्त्री पुरुष, नर मादा परस्पर मिलकर (जनित्रम्) जन्म (विद्रे) प्राप्त कर लेते हैं। (२) इसी प्रकार सेनापति सैन्य भटों की जन्म जाति कौन जाने ? वे परस्पर मिलकर अपना सैन्य रूप प्रकट करते हैं।

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥३॥

भा०—वे जीव (मिथः) परस्पर (स्वपूभिः) अपने साथ सोने वाली अथवा (=स्व-पूभिः) अपनी उत्पन्न होने योग्य भूमियों से (मिथः) परस्पर मिलकर (अभि वपन्त) सम्मुख हो बीज वपन करते हैं। वे (वातस्वनसः) वायुवत् प्राण के बल पर ध्वनि करने वाले (श्येनाः) बाजपक्षी के समान एक देह से दूसरे देह में जाने वाले होकर भी (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करते हैं, वा भोग्य पदार्थों में ममता करते हैं। (२) वीर सैनिक (मिथः) परस्पर मिलकर (स्वपूभिः) अपने शस्त्रों से (अभि वपन्त) सन्मुख शत्रुओं का छेदन करते और (वातस्वनसः) वायुवत् गर्जते हुए (श्येनाः)

बाज के समान आक्रमण कर (अस्पृध्रन्) शत्रु से स्पर्द्धा करते, उससे बल में बढ़ने का यत्न करते हैं।

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥

भा०—(पृश्निः) सेचन करने वाला सूर्य और (मही) भूमि (यत्) जैसे (ऊधः) जलधारक मेघ को (जभार) धारण करता है वैसे (पृश्निः) वीर्यसेक्ता पुरुष और (मही) पूज्य माता (यत्) जो मिलकर बालक और उसके पान के लिये (ऊधः) स्तनादि धरती है (एतानि निण्या) इन सत्य सिद्धान्तों को (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष (चिकेत) जाने।

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५॥

भा०—(सा) वह (विट्) प्रजावर्ग (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् विद्वान् पुरुषों से ही (सु-वीरा) उत्तम वीरों वाली (अस्तु) हो। वह (सनात्) सदा (सहन्ती) शत्रु को पराजित करती हुई और (नृम्णं पुष्यन्ती) धनैश्वर्य को समृद्ध करती रहे। (२) इसी प्रकार स्त्री में पुत्र रूप से पति प्रवेश करता है इससे वह 'विट्' है। वह भी गृहस्थ का भार सहती हुई, धन की वृद्धि करती हुई उत्तम पुत्रवती हो।

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

भा०—राजा की प्रजाएं, गृहस्थ में स्त्रियें और सेनापति की सेनाएं भी (येष्ठाः) लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम (शुभ्राः) कान्तियुक्त, कल्याणकारिणी (शोभिष्ठाः) उत्तम शोभायुक्त (श्रिया) उत्तम लक्ष्मी से (सं-मिश्लाः) संयुक्त वा (श्रिया) आश्रय करने योग्य सहचर, सहचरी से युक्त (ओजोभिः) बल पराक्रमों से (उग्राः) सदा बलवान् हों। वे (यामं येष्ठाः) उत्तम नियम, प्रबन्ध, विवाहादि प्रबन्धों को प्राप्त हों।

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वानो, वीरो, प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों का (ओजः) बल, पराक्रम (उग्रं) उन्नत कोटि का, शत्रुओं को भयप्रद, गम्भीर और

(वः शवांसि स्थिरा) बल स्थिर और (मरुद्भिः सह गणः) बलवान् वीरों, प्राणों तथा विद्वानों सहित गण (तुविष्मान्) बलवान् हो।

शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥८॥

भा०—हे वीर प्रजाजनो! विद्वानो! जीवो! (वः) आप लोगों का (शुष्मः) बल, बलवान् देह (शुभ्रः) शोभायुक्त, प्रशंसनीय हो। आप लोगों के (मनांसि) मन (क्रुध्मी) दुष्टों के प्रति क्रोधयुक्त हों और (शर्धस्य) आप लोगों के बलवान् और (धृष्णोः) शत्रुपराजयकारी सैन्य का (धुनिः) सञ्चालक नायक शत्रुओं को कंपाने हारा, प्रभाववान् (मुनिः इव) मनन-शील विद्वान् के समान गम्भीर विचारशील हो।

सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥९॥

भा०—हे विद्वान् वीर जनो! (अस्मत्) हमसे अपने (सनेमि) चक्रधारा से युक्त (दिद्युम्) चमचमाते तेजस्वी शस्त्र बल को (युयोत) सदा पृथक् रक्खो और (वः) आप लोगों की (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (नः) हमें और (नः दुर्मतिः वः) हमारी दुष्टमति आपको (मा प्रणक्) कभी प्राप्त न हो, एक दूसरे का हम विनाश न करें।

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०।२३॥

भा०—(यत् नाम) जो उत्तम नाम, कीर्त्ति वा अन्न (वः मरुतः) प्राणवत् प्रिय आप लोगों को (तृपत्) तृप्त सुखी, प्रसन्न करे हे (वाव-शानाः) उत्तम अन्न, यशादि की कामना करने वाले सज्जनो! मैं (तुराणां) अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, शत्रुहिंसक (वः) आप लोगों के लिये वही (प्रिया नाम) प्रिय नाम वा अन्नादि पदार्थ (आ हुवे) आदर पूर्वक कहूँ और प्रदान करूं। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ११

भा०—हे वीर! विद्वान् पुरुषो! आप लोग (स्वायुधासः) उत्तम शस्त्रास्त्र सम्पन्न, (इष्मिणः) उत्तम अन्न के स्वामी, (सु-निष्काः) उत्तम

सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने और उनको शोभार्थ धारण करने वाले (उत) और (स्वयं) स्वयं (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करने वाले होओ। (२) अध्यात्म में—हे उत्तम जीवो ! आप लोग (स्वायुधासः = स्व-आयुधासः) उत्तम हथियारों वाले वा अपने काम, क्रोध आदि भीतरी शत्रुओं से लड़ने हारे, (इष्मिणः) इच्छा शक्ति से युक्त (सु-निष्काः) सुखपूर्वक देह से निष्क्रमण करने में समर्थ हो।

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥१२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (हव्या) खाने और लेने देने के पदार्थ (शुची) पवित्र हों। मैं (शुचिभ्यः) पवित्र हदार्थों और स्वच्छ हृदय के पुरुषों से उनकी वृद्धि के लिये (शुचिं अध्वरं) शुद्ध, पवित्र अहिंसक यज्ञ की (हिनोमि) वृद्धि करता हूँ। (ऋत-सापः) सत्य के आधार पर प्रतिज्ञाबद्ध होने वाले (शुचिजन्मानः) शुद्ध पवित्र जन्म धारण करने वाले (शुचयः) कर्म, वाणी में शुद्ध, (पावकाः) पवित्र, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (ऋतेन) सत्य ज्ञान से ही (सत्यम् आयन्) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार को प्राप्त होते हैं।

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः १३

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! विद्वान् पुरुषो ! (वः) आपके (अंसेषु) कन्धों पर (खादयः) शस्त्र और (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) कान्तियुक्त आभूषण (उप शिश्रियाणाः) शोभा दें। आप लोग (वृष्टिभिः विद्युतः न) वर्षाओं से बिजुलियों के समान (आयुधैः) हथियारों से (रुचानाः) चमकते हुए (स्वधाम्) जलवत् अन्न और राष्ट्र भूमि के (अनु यच्छमानाः) अनुसार उसको वश करते हुए विजय करो। 'वक्षःसुरुक्माः' इति सायणाभिमतः पदपाठः ॥

प्र बुध्न्या॑ व ईरते॒ महाँ॑सि॒ प्र नामा॑नि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
स॒ह॒स्रियं॑ दम्यं॑ भा॒गमे॒तं गृ॑हमे॒धीयं॑ मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥

भा०—(बुध्न्याः) आकाश में मेघ जिस प्रकार (महांसि नामानि प्र ईरते) तेज और जलों को प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (बुध्न्याः) उच्च पद के योग्य, सर्वाश्रय योग्य (प्रयज्यवः) उत्तम यज्ञ दानशील पुरुषो ! आप लोग भी (महांसि) देने योग्य (नामानि) अन्नों को (प्र तिरध्वम्) उत्तम रीति से बढ़ाओ और दान करो । हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (एतम्) इस (गृहमेधीयं) गृहस्थों से प्राप्त वा गृह के निर्वाह योग्य (सहस्रियं दम्यं भागम्) सहस्रों ग्रामों वा गृहों से प्राप्त करादि अंश को (जुषध्वम्) प्रेम से स्वीकार करो ।

यदि॑ स्तु॒तस्य॑ मरुतो अधी॒थेत्था विप्र॑स्य वा॒जिनो॒ हवी॑मन् ।
म॒क्षू रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य दात॒ नू चि॒द्यम॒न्य आ॒दभ॒दरा॑वा ॥१५॥२४॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान्, प्राणों के समान प्रिय वीरो और विद्याप्रेमी, आलस्य रहित शिष्यो ! आप लोग (यदि) यदि (वाजिनः) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और (विप्रस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (हवीमन्) देने योग्य उत्तम ज्ञान और धन के लेने देने के व्यवहार में (इत्था) सत्य २ (स्तुतस्य) उपदिष्ट शास्त्र का (अधीथ) स्मरण रक्खो । (यम्) जिस धनादि को (अन्यः) दूसरा (अरावा) शत्रु वा वचनादि से रहित मूकजन (नू चित् आदभत्) अवश्य विनाश कर देवे ऐसे (रायः) प्रदेय धन ज्ञानादि को आप लोग (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्यवान् सुदृढ़, ब्रह्मचारी के हाथ (दात) प्रदान करो । विद्वान गुरूपदिष्ट शास्त्र को अच्छी प्रकार याद रक्खें और विद्योपदेश के योग्य पात्र में ही ज्ञान प्रदान करें । क्योंकि ज्ञान का (अरावा) अन्यों को प्रवचन द्वारा न देने वाला अवश्य नाश कर देता है । इसी प्रकार धन के लेन देन में अपना २ इकरार स्मरण रक्खें। अपना धन बलवान् की रक्षा में रक्खें, जिससे शत्रु नष्ट न कर दे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः १६

भा०—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य, वायु के तुल्य बलवान्, प्राणों के समान प्रिय (अत्यासः न) निरन्तर गति करने वाले अश्वों के समान (सु-अञ्चः) उत्तम आचरण वाले, उत्तम आदर योग्य हों (मर्याः) मनुष्य (यक्षदृशः न) पूज्य जनों को दर्शन करने वालों के समान (शुभयन्त) सदा उत्तम वस्त्रालंकार धारण करें और (ते) वे (हर्म्येष्ठाः) बड़े २ महलों में रहकर (शिशवः न शुभ्राः) बालकों के समान स्वच्छ, निष्पाप, (वत्सासः न) गाय के बछड़ों के समान, (प्र-क्रीडिनः) खेल, विनोद के स्वभाव वाले और (पयः-धाः) दूध, अन्नादि के पीने खाने वाले हों ।

दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् १७

भा०—(मरुतः) विद्वान्, वीर पुरुष (दशस्यन्तः) दान देते हुए और (सुमेके) उत्तम पूज्य (रोदसी) माता पिताओं की (वरिवस्यन्तः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (नः मृडन्तु) हमें सुखी करें । (गोहा) गौ आदि पशुओं का मारने वाला, गोहत्यारा और (नृहा) मनुष्यों को मारने वाला (वः) आप से (आरे) दूर हो और वह (वधः अस्तु) वध वा दण्ड योग्य हो । (सुम्नेभिः अस्मे वसवो नमध्वम्) श्रेष्ठ पुरुष शुभ वचनों से प्रभु की स्तुति करें ।

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥१८॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! (होता) उत्तम दाता, (गृणानः) उपदेश करने हारा (सत्तः) उत्तमासन पर विराज कर (सत्राचीं) सत्य से युक्त वा एक साथ प्राप्त करने योग्य (रातिं) दान, ज्ञान वा ऐश्वर्य को (जोहवीति) प्रदान करता है और जो (ईवतः) जल से युक्त (वृषणः गोपाः) मेघ के समान रक्षक (ईवतः) धनशाली, (वृषणः) बल-

वान् (गोपाः) रक्षक है (सः) यह (अद्वयावी) भीतर बाहर दो-भाव न करता हुआ, निष्कपट होकर (उक्थैः) उत्तम वचनों से (वः) आप को (हवते) ज्ञान प्रदान करे, वा आदर से बुलावे ।

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ १९ ॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर और प्राणवत् प्रिय विद्वान् लोग (तुरं) कार्य कुशल, शीघ्र ही शत्रुओं को मारने वाले राजा को (रमयन्ति) सदा प्रसन्न रखते हैं और (इमे) ये (सहः) बल से (सहसः) बलवान् शत्रुओं को भी (आ नमन्ति) झुका लेते हैं। वा (सहसः सहः आ नमन्ति) बलवान् राजा के बल के आगे झुकते हैं। वा (सहसः सहः आ नमन्ति) बलवान् शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य वा धनुष को अपने अधीन नमाते हैं। (इमे) ये (वनुष्यतः) हिंसक वा क्रोधी से (शंसं नि पान्ति) प्रशंसनीय जन को बचा लेते हैं। (अररुषे) अदानी और अतिक्रोधी जन के विशेष दमन के लिये वे (गुरु द्वेषः) बड़ा भारी द्वेष, अप्रीतिकर व्यवहार (दधन्ति) करते हैं।

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ।२०।२५॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुगण जिसप्र कार (रध्रं चित् जुनन्ति) दृढ़ वृक्ष को भी हिला देते हैं। उसी प्रकार आप लोग भी (रध्रं) वश करने योग्य प्रबल, समृद्धिमान् पुरुष को भी सन्मार्ग पर चलाओ और (वसवः) पृथिवी आदि लोक जिस प्रकार (भृमिं) धारक सूर्य के प्रकाश का सेवन करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भृमिं) भरण पोषण करने वाले स्वामी तथा (भृमिं) भ्रमणशील, विद्वान् परिव्राजक का भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करें। आप लोग (तमांसि) सूर्य की किरणों

के समान अन्धकारों को (अप बाधध्वं) शत्रुओं और खेदजनक मोह आदि को भी दूर करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

मा वो दात्रान्मरुतो निररा॑म मा पश्चाद्द॑ध्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये॒३॒ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति २१

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर पुरुषो! हम (वः) आपको (दात्रात्) दान करने से (मा निर् अराम) न रोकें और (वः दात्रात् मा निर् अराम) आप लोगों के प्रति देने से हम स्वयं न रुकें। हे (रथ्यः) उत्तम रथारोही जनो! (विभागे) धन के विभाग से (नः पश्चात् मा दध्म) आप लोगों को हम पीछे न रक्खें। हे (वृषणः) बलवान्, सुखवर्षक उदार जनो! (वः यत् ईम् सुजातम् अस्ति) आप लोगों का जो उत्तम द्रव्य है उसे (वसव्ये) धन सम्बन्धी (स्पार्हे) अभिलाषा योग्य पदार्थ के निमित्त (नः आ भजतन) हमें प्राप्त करो।

सं यद्धन॑न्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोष॑धीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृत॑नास्वर्यः ॥२२॥

भा०—(यत्) जो (जनासः) मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं के बीच (शूराः) शूरवीर होकर (यह्वीषु ओषधीषु) बड़ी और बहुत सी ओषधियों में से (मन्युभिः) नाना ज्ञानों द्वारा (संहनन्त) नाना ओषधियों को मिलाते हैं हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! वे आप लोग (रुद्रियासः) रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन (पृतनासु अर्यः) सेनाओं में स्वामी के समान (नः त्रातारः भूत) हमारे रक्षक होओ। (२) वीरों के पक्ष में—प्रजाओं में जो (संयत्) युद्ध क्षेत्र में (शूराः) शूरवीर (जनासः) जन (मन्युभिः हनन्त) क्रोधों से प्रेरित होकर आघात करते हैं वे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुष के जन और (अर्यः) स्वामी स्वयं भी (पृतनासु नः त्रातारः भूत स्म) संग्रामों में हमारे रक्षक होवें।

भूरि॑ चक्र मरुतः पित्र्या॒ण्यु॒क्थानि॒ या वः॑ शस्यन्ते॑ पु॒रा चि॑त् ।
म॒रुद्भि॑रु॒ग्रः पृत॑नासु साळ्हा॑ म॒रुद्भि॒रित्सनि॑ता॒ वाज॒मर्वा॑ ॥२३॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, बलवान् पुरुषो ! (या) जिन कर्मों का (वः) आप लोगों के हितार्थ (पुरा चित्) पहले ही (शस्यन्ते) उपदेश किया जाता है उन (पित्र्याणि) माता पिता की सेवा और पालक जनोचित (उक्थानि) प्रशंसनीय कर्मों को आप (भूरि) खूब (चक्र) करो । (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् पुरुषों से ही (साढा) शत्रु को पराजय करने वाला और (अर्वा मरुद्भिः यथा वाजं सनिता) जैसे अश्व प्राण के बल से वेग को प्राप्त करता है उसी प्रकार (अर्वा) शत्रुहिंसक पुरुष (मरुद्भिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से ही (वाजं सनिता) संग्राम करने में समर्थ होता है ।

अ॒स्मे वी॒रो म॑रुतः शु॒ष्म्य॑स्तु॒ जना॑नां॒ यो असु॑रो विध॒र्ता ।
अ॒पो येन॑ सुक्षि॒तये॑ तरे॒माध॒ स्वमोको॑ अ॒भि वः॑ स्याम ॥ २४ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! हे प्राणवत् प्रियजनो ! (वीरः) शूरवीर और विविध विद्याओं का प्रवक्ता पुरुष और हमारा पुत्र (अस्मे) हमारे उपकारार्थ (शुष्मी अस्तु) बलवान् हो । (यः) जो (असुरः) प्राणों के बल पर रमण करता हुआ (असुरः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर (जनानां) मनुष्यों का (विधर्त्ता) विशेष रूप से धारण, पालन में समर्थ हो, (येन) और जिसके द्वारा हम (सु-क्षितये) उत्तम भूमि की प्राप्ति के लिये (अपः) जलों के समान शत्रु और कर्मबन्धनों को (तरेम) तरें, मनुष्य जीवन को सफल करें । (अध) और (स्वम् ओकः) अपने गृह को प्राप्त कर (वः अभि स्याम) आप लोगों के कृतज्ञ होकर रहें । समुद्रों में उत्तम भूमि प्राप्त करने के लिये विशेष दिशा में जहाज़ को ले जाने वाला विशेष वेगवान् प्रबल वायु 'वीर' है जिसके बल पर हम

(अपः तरेम) समुद्री जलों को पार करें और (स्वम् ओकः अभि स्याम) पुनः विदेशादि से अपने गृह को कुशल से प्राप्त करें।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५।२६

भा०—(तत्) वह (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् आदि (वरुणः) जल का स्वामी, (मित्रः) मित्र, (अग्निः) अग्नि, (आपः) जल और (ओषधीः, वनिनः) औषधियें और वन के वृक्ष (नः जुषन्त) हमें सुख दें। हम (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् पुरुषों के समीप (शर्मन् स्याम) सुख से रहें। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—२, ४ त्रिष्टुप्। १ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) प्रबल वायुगण (उर्वी रोदसी रेजयन्ति) विशाल भूमि और अन्तरिक्ष दोनों को कंपाते हैं और (यत् अयासुः) जब चलते हैं तब (उत्सं पिन्वन्ति) मेघ को बरसाते हैं उसी प्रकार (उग्राः) बलवान् पुरुष (यत् अयासुः) जब चलते वा प्राप्त होते हैं (उर्वी) बड़ी (रोदसी) सेनापतियों के अधीन स्थित उभयपक्ष की सेनाओं को (रेजयन्ति) कंपाते, भयभीत करते हैं और (उत्सं) ऊपर उठने वाले विजेता को (पिन्वन्ति) जलों से अभिषिक्त करते हैं। हे (यजत्राः) दानशील, पूज्य सत्संगति युक्त जनो ! हे (मध्वः) मनन शील, हर्षकारी जनो ! (वः) आप लोगों का (मारुतं नाम) मनुष्यों का सा नाम, सामर्थ्य है, आप लोग (यज्ञेषु) यज्ञों और युद्धों में (शवसा) बल और ज्ञान से (प्र मदन्ति) हर्षित होते और उत्तम उपदेश करते हो।

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् जनो! आप लोग (निचेतारः हि) उत्तम धनों, ज्ञानों के संग्रहशील और (यजमानस्य) दानशील के (मन्म) अभिमत वस्तु (गृणन्त) उपदेश देने वाले को (पिप्रियाणाः) प्रसन्न करते हुए (प्रणेतारः) उत्तम कर्म कुशल होकर (अस्माकं विदथेषु) हमारे यज्ञों में (वीतये) रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (बर्हिः) उत्तमासन पर (आसदत) विराजो। इसी प्रकार उत्तम नायक और संग्रही जन संग्रामों, धनादि लाभों के लिये (बर्हिः) प्रजाजन पर अध्यक्ष हों।

नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥३॥

भा०—(यथा इमे) जिस प्रकार ये (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर मनुष्य (रुक्मैः) कान्तियुक्त (आयुधैः) हथियारों और (तनूभिः) शरीरों से (भ्राजन्ते) चमकते हैं (एतावत्) उतने (अन्ये मरुतः न भ्राजन्ते) और दूसरे मनुष्य नहीं चमकते। ये (विश्व-पिशः) सर्वाङ्ग सुन्दर जन (रोदसी पिशानाः) आकाश और भूमि दोनों को सुशोभित करते हुए सूर्य किरणों के समान (समानम् अञ्जि) एक समान दीप्तियुक्त चिह्न को (शुभे कम्) शोभा के लिये (अञ्जते) प्रकट करते हैं।

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! (वः) आप लोगों की (सा विद्युत्) वह चमकती हुई उज्ज्वल नीति (ऋधक् अस्तु) सदा सच्ची हो (यत्) यदि चाहे हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता) पुरुष होने से (आगः कराम) अपराध भी करें। हे (यजत्राः) पूज्य जनो! (तस्याम्) उस नीति में रहकर (वः मा अपि भूम) आप लोगों के प्रति हम अपराधी

न हों। (वः चनिष्ठा) आप लोगों की अन्न ऐश्वर्यादि युक्त (सुमतिः अस्मे अस्तु) उत्तम मति हमारे लिये हो।

कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥५॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो! (कृते चित् अत्र) इस संसार में अपने किये कर्म और करने योग्य कर्त्तव्य में ही (रणन्त) सुख लाभ करो। आप लोग (अनवद्यासः) अनिन्दित उत्तम कर्म करने वाले, उत्तम कीर्त्तियुक्त (शुचयः) शुद्ध, पवित्र आचारवान्, ईमानदार (पावकाः) अन्यों को पवित्र करने वाले होओ। हे (यजत्राः) उत्तम संगति योग्य ज्ञान, मान देने वाले सज्जनो! आप लोग (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों, ज्ञानों से (नः अवत) हमारी रक्षा करो। आप लोग (वाजेभिः) अन्नों से (पुष्यसे) हमें पुष्ट करने के लिये (प्र तिरत) बढ़ाओ।

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः नरः) उत्तम नायक जनो! आप लोग (विश्वेभिः नामभिः) सब प्रकार के उत्तम नामों से (स्तुतासः) प्रशंसित और शिक्षित होकर (हवींषि) उत्तम ज्ञान और नाना ऐश्वर्य (उप व्यन्तु) प्राप्त करें। (नः) हमारी प्रजाओं को (अमृतस्य ददात) अमृत, अन्न, दीर्घ जीवन प्रदान करो। (उत) और (रायः) उत्तम ऐश्वर्य (सूनृता) शुभ वचन और (मघानि) उत्तम धन (जिगृत) प्रदान करो।

आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२७

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो! आप (विश्वे) सब (सर्वताता) सबके सुखकारक कार्य में (स्तुतासः) प्रशंसित होकर (ऊती) उत्तम रक्षा सहित (सूरीन्) विद्वानों की (आ जिगात) प्रशंसा करो। (ये) जो (शतिनः)

सैकड़ों बलों या ग्रामों के स्वामी होकर (त्मना) स्वयं (नः) हमें (वर्ध-यन्ति) बढ़ाते हैं वे (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[५८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६ भुरिक्पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! (यः) जो (दैव्यस्य) देव, विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, विजिगीषु पद के योग्य (धाम्नः) नाम, स्थान और जन्म के कारण (तुविष्मान्) सबसे अधिक बलशाली हैं, (साकमुक्षे) उन एक साथ अभिषिक्त होने वाले वा राजा का स्वयं एक साथ मिलकर अभिषेक करने वाले (गणाय) वीर प्रमुख जन का (प्र अर्चत) अच्छी प्रकार आदर करो। जिस प्रकार वायुगण (महित्वा) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों में (क्षोदन्ति) जल ही जल करके शान्ति सुख बरसाते हैं उसी प्रकार (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से (रोदसी) राजा और प्रजा वर्ग में (क्षोदन्ति) जल के समान आचरण करते, सबको शान्ति सुख से तृप्त करते हैं वा (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से जो प्रजाजन (रोदसी क्षोदन्ति) दुष्टों को रुलाने वाले, रुद्र सेनापति की सेनाओं का अवयव बनते हैं, स्वयं सेनाओं के अंग प्रत्यंग के घटक हैं वा जो (रोदसी क्षोदन्ति) भूमि को अन्नोत्पत्ति के लिये तोड़ते हैं और (निः-ऋतेः) सर्व दुःखमय संसार कष्ट और (अवंशात्) सन्तानरहित होने आदि दुःखों से दूर होकर खूब सुखी, सुसन्तान होकर (न नक्षन्ते) दुःखरहित सुखमय लोक को प्राप्त होते हैं, उनका भी आप लोग (अर्चत) आदर सत्कार करो।

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२॥

भा०—जैसे वायु गण की उत्पत्ति (त्वेष्येण) प्रखर तेज से है और वे ताप पाकर बड़े वेग से चलते हैं कि सब कोई कांप जाते हैं वैसे हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो ! (ये) जो आप लोग (त्वेष्येण) अति तीक्ष्ण तेज, (महोभिः) बड़े २ गुणों और (ओजसा) बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर (भीमासः) अति भयंकर और (तुवि-मन्यवः) अति क्रोधयुक्त और बहुज्ञानयुक्त (अयासः) आगे बढ़ने वाले हो। (वः जनूः चित्) आप लोगों की उत्पादक माताएं, वा प्रकृतियें भी (प्र सन्ति) उत्तम कोटि की हैं। (यामन्) अपने २ मार्ग में चलते हुए भी (विश्वः) सभी (स्वर्दृक्) सुख से देखने वाले, कुशल के इच्छुक लोग (वः भयते) आप लोगों से अधर्म करने से भय करते हैं।

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥

भा०—जो (मरुतः) वीर, विद्वान् जन (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् लोगों के हितार्थ (बृहत् वयः) बहुत बड़ा जीवन, अन्न और बल (दधात) धारण करते हैं और जो (नः) हमारी (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को (जुजोषन् इत्) प्रेम से सेवन करते हैं और जो (गतः) प्राप्त होकर (अध्वा) मार्ग के समान (जन्तुं न वितराति) प्राणी को नाश नहीं करते प्रत्युत बढ़ाते हैं, वह (स्पार्हाभिः ऊतिभिः) स्पृहणीय, उत्तम उपायों से (नः प्र तिरेत) हमें भी बढ़ावें। हम उनका सत्कार करें।

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

भा०—हे (धूतयः) भोग-वासनाओं और कर्मबंधनों को कंपा कर शिथिल कर देने वाले विद्वान् जनो ! और शत्रुओं को कंपा देने वाले वीर

पुरुषो ! (युष्मा-ऊतः विप्रः) तुम लोगों से सुरक्षित विद्वान् पुरुष जिससे (शतस्वी) सैकड़ों धनों का स्वामी और सैकड़ों को अपना बन्धु बना लेने हारा हो और जिससे (युष्मा-ऊतः अर्वा) आप लोगों से सुरक्षित अश्वारोही वीर पुरुष (सहुरिः) शत्रु-पराजयकारी, सहनशील और (सहस्री) सहस्रों ऐश्वर्यों और सहस्रों पुरुषों का स्वामी, सहस्रपति होता है और जिससे (युष्मा-ऊतः सम्राड्) आप लोगों से सुरक्षित महाराजा होकर (वृत्रम् उत हन्ति) बढ़ते शत्रु को भी नाश करता और (वृत्रं हन्ति) धन को प्राप्त करता है, हे विद्वानो और वीरो ! (वः) आप लोगों का (तत्) ऐसा ही (देष्णम्) दान हो।

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सुस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥

भा०—मैं (मीढुषः) वर्षणशील, सुखों के दाता, (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुष के अधीन (तान्) उन नाना वीर जनों को (आ विवासे) बड़े आदर से राष्ट्र में बसाऊं, उनका सत्कार करूं। वे (मरुतः) शत्रुहन्ता लोग (नः) हमें (पुनः) वार २ (नंसन्ते) प्राप्त हों। (यत्) जिस कारण (सस्वर्ता) उपतापजनक शब्द से, या अप्रकट रूप से (यद् आविः) वा जिस कारण प्रकट रूप से वे (जिहीडिरे) क्रोधित हों, वा हमारा अनादर करें (तुराणाम्) अति शीघ्रकारी वा अपराधियों के दण्डकर्त्ता जनों के (तद् एनं) उस क्रोध को हम (अव ईमहे) दूर करें।

प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।२८

भा०—(मघोनां) उत्तम आदर योग्य धन, ऐश्वर्य के स्वामी जनों की (सा सु-स्तुतिः) वह उत्तम स्तुति (प्र-वाचि) अच्छी प्रकार कही जाती है। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इदं) इस प्रकार के (सूक्तम्) उत्तम वचन (जुषन्त) सेवन किया करें। हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो !

आप लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं और द्वेष भावों को भी (आरात् वि युयोत) दूर ही पृथक् करो और (स्वस्तिभिः) उत्तम सुखकारी साधनों से (सदा नः यूयं पात) सदा हमें आप लोग रक्षा करो। इति अष्टाविंशो वर्गः॥

[५९]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ १–११ मरुतः । १२ मृत्युञ्जयो रुद्रो देवता । छन्दः—१ निचृद् बृहती । ३ बृहती । ६ स्वराड् बृहती । २ पंक्तिः । ४ निचृत्पंक्तिः । ५, १२ अनुष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ९, १० गायत्री । ११ निचृद्गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् जनो ! आप लोग (यं त्रायध्वे) जिसकी रक्षा करते हो और (यं च) जिसको (इदम् इदम्) यह सन्मार्ग है, यह सत् कृत्य है, इस प्रकार बतला कर (नयथ च) सन्मार्ग और सत्कर्म में प्रवृत्त कराते हो, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे (मित्र) स्नेहवन् ! हे (अर्यमन्) शत्रुओं और दुष्टों के नियन्तः ! हे (मरुतः) विद्वान् प्रजाजनो ! आप उसको अवश्य (शर्म यच्छत) शान्ति प्रदान करो।

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय इजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (प्रिये अहनि) प्रिय, मनोहर किसी दिन (ईजानः) यज्ञ वा आप लोगों का सत्संग करता हुआ पुरुष (वः) आप लोगों को (वराय) स्वीकार करने के लिये (महीः इषः दाशति) उत्तम २ इच्छाएं प्रकट करता और अन्नादि समृद्धियों वा सैन्य का प्रदान करता है, वह (युष्माकं अवसा) आप लोगों के ज्ञान और बल से (द्विषः) अप्रीतिकर भावों और शत्रुओं को (तरति) पार कर जाता है। (सः) वह (क्षयं) ऐश्वर्य को (प्र तिरते) खूब बढ़ा लेता है।

नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (कामिनः) उत्तम संकल्प और शुभ इच्छा से युक्त होकर (विश्वे) सब (सचा) साथ मिलकर (अस्माकं सुते) हमारे ऐश्वर्य के बल पर (पिबत) ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करो। (वः चरमं चन) आप लोगों में से अन्तिम को भी (वसिष्ठः) श्रेष्ठ वसु राजा (न परिमंसते) त्याज्य नहीं समझता। प्रत्युत सबको आदर और प्रेम से देखता है।

नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) नेता मनुष्यो! आप लोग (यस्मै अराध्वम्) जिसको सुखादि प्रदान करते हो (वः ऊतिः) आपकी रक्षाकारिणी सेनादि (पृतनासु) मनुष्यों और संग्रामों के बीच (नहि मर्धति) उसको नाश नहीं करती। (वः नवीयसी सुमतिः) आप लोगों की उत्तम से उत्तम शुभमति (अभि आवत्) प्राप्त हो। आप लोग (पिपीषवः) प्रजा पालन की इच्छा से (तूयं) शीघ्र ही (यात) प्रयाण करो और (आयात) आओ, जाओ।

ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥

भा०—(ओ) हे (मरुतः) वीरो, विद्वान् पुरुषो! हे (घृष्विराधसः) एक दूसरे से बढ़ने वाले, सम्बद्ध धनैश्वर्य से सम्पन्न, आप लोग (पीतये) उपभोग के लिये (अन्धांसि) नाना अन्नों को (सु यातन) सुख से प्राप्त करो। मैं (इमा) ये (हव्या) खाने और लेने देने योग्य द्रव्यादि (ररे) प्रदान करता हूँ। (हि कं) आप लोग (अन्यत्र) और अन्य स्थान में (मो सु गन्तन) मत जाइये। मेरे राष्ट्र में सुख से रहिये।

आ च॑ नो ब॒र्हिः सद॑ताऽवि॒ता च॑ नः स्पा॒र्हाणि॒ दात॑वे॒ वसु॑ ।
अस्रे॑धन्तो मरुतः सो॒म्ये मधौ॒ स्वाहे॒ह मा॑दयाध्वै ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर, प्रजाजनो ! (नः बर्हिः आसदत च) आप लोग हमारे वृद्धियुक्त गृह, आसन, यज्ञ आदि को प्राप्त होओ (नः) हमें (स्पर्हाणि) चाहने योग्य, उत्तम, (वसु) धनों को (दातवे) देने के लिये (नः) हमें (अविता च) प्राप्त हों हमारी रक्षा करें। आप लोग (अस्रेधन्तः) प्रजा का नाश न करते हुए, अहिंसक रहकर (सोम्ये मधौ) सोम आदि ओषधिरस से युक्त मधु के समान विद्वानों के योग्य आनन्द-दायक इस राष्ट्र में और उत्तम बलदायक अन्नादि के ऊपर (इह) इस गृहादि में (स्वाहा) उत्तम सत्कार, सुवचन और सुखपूर्वक अभ्यवहार एवं न्यायोचित उपार्जित धन द्वारा (मादयाध्वै) आनन्द लाभ करिये।

स॒स्वश्चि॒द्धि त॒न्व१॒ः शुम्भ॑माना॒ आ ह॒ंसासो॒ नील॑पृष्ठा अपप्तन् ।
विश्व॒ं शर्धो॑ अ॒भितो॑ मा॒ नि षे॑द॒ नरो॒ न र॒ण्वाः सव॑ने॒ मद॑न्तः ७

भा०—(सस्वः) गुप्त भाव से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि गुप्त रखने वाले वा (सस्वः) एक समान तेज, एक समान शब्द और एक समान ऐश्वर्यादि रखने वाले, (तन्वः शुम्भमानाः) देहों, आत्माओं को उत्तम गुणों और आभरणों से अलंकृत करने वाले (नीलपृष्ठाः) श्यामवर्ण की पीठ वाले (हंसासः चित्) हंसों के समान (नीलपृष्ठाः) नील, श्याम, काले वर्ण की या सुन्दर पोशाकों वाले, वा कृष्ण मृगछाला पहने (हंसासः) हंसवत् विवेकी, अन्तःशत्रु और बाहरी शत्रुओं को मारने वाले वा ध्येय तक पहुँचाने हारे, (अपप्तन्) आवें। वे (रण्वाः नरः न) रणकुशल नायकों के समान (सवने) ऐश्वर्य-मय राष्ट्र या सेनापति के उत्तम शासन में (मदन्तः) आनन्दपूर्वक रहते हुए (अभितः) सब ओर (विश्वशर्धः) समस्त बल को (मा अभितः) मेरे चारों ओर (नि षेद) बनाये रक्खो ॥ 'नीलपृष्ठाः'—काली, नीली पोशाकें जैसे ग्रेजुएटों, वकीलों के गौन हों।

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो और वीर जनो ! (यः) जो (नः) हमारे बीच में (दुर्हृणायुः) दुःखदायी, क्रोध करने वाला, दुष्ट हृदय का पुरुष, हमारे (चित्तानि) अन्तःकरणों को (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (अभि जिघांसति) आघात या हृदयों को चोट पहुँचाना चाहता है (सः) वह (द्रुहः पाशान्) द्रोही के योग्य फांसों या बन्धनों को (प्रति मुचीष्ट) त्याग दे और (तम्) उसको (तपिष्ठेन हन्मना) अति तापदायक हथियार से (हन्तन) दण्डित करो ।

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

भा०—हे (मरुतः) उत्तम मनुष्यो ! हे (सान्तपनाः) उत्तम तप करने वाले जनो ! आप लोग (इदं हविः) यह उत्तम अन्न (जुजुष्टन) सेवन करो । हे (रिशादसः = रिशात्-असः, रिश—अदसः) हिंसकों को नाश करने वाले जनो ! (युष्माक-ऊती) तुम लोगों की उत्तम रक्षा से ही हम लोग उत्तम अन्नादि लाभ करें ।

एष ह वै सान्तपनोऽग्निर्यद् ब्राह्मणः । यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनप्लावनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति ससान्तपनः ॥ गो० पू० २ । २३ ॥ जिस ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन, समावर्त्तनादि तक संस्कार हो चुके हों और अग्निहोत्र, व्रतचर्यादि ठीक पालन हों वह 'सान्तपन' कहाता है ।

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः १०

भा०—हे (गृहमेधासः) गृह में उत्तम बुद्धि रखने वाले, वा गृह में यज्ञ करने हारे उत्तम गृहस्थ जनो ! हे (मरुतः) मनुष्यो ! आप लोग

(आ गत) आइये। (मा अपभूतन) हमसे दूर मत होइये। हे (सु-दानवः) उत्तम दानयुक्त, एवं दानशील पुरुषो! (युष्माक-ऊती) आप लोगों की रक्षा, ज्ञान और सत्कार से ही हम भी प्रसन्न हों।

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः। यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

भा०—हे (स्वतवसः) स्वयं अपने शरीर आत्मा और धनैश्वर्य से बलशाली पुरुषो! हे (कवयः) क्रान्तदर्शी जनो! हे (सूर्य-त्वचः) सूर्य के समान देह की कान्ति वाले तेजस्वी, उज्ज्वल पुरुषो! हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो! मैं (नः) आप लोगों को (इह इह) इस २ कार्य और पद के निमित्त (आवृणे) वरण करता हूँ। आप लोग (यज्ञं) यज्ञ को (आ गत) आकर प्राप्त हों और (मा अप भूतन) हमसे दूर न होवें।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥ ३० ॥ ४ ॥

भा०—(त्र्यम्बकं) तीनों शब्दमय वेदों का उपदेश करने वाले, वा तीनों लोकों, तीनों वेदों, तीनों वर्णों के उपदेष्टा, रक्षक, द्विपात् चतुष्पात् और सरीसृप तीनों के माता के समान पालक, (सु-गन्धि) उत्तम गन्ध से युक्त, उत्तम कुलोत्पन्न, वा शत्रुओं के उत्तम नाशक वा शुभ पुण्य गन्ध वाले, सत्कर्मा, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि, समृद्धि को बढ़ाने वाले पूज्य पुरुष वा प्रभु की हम (यजामहे) उपासना पूजा करते हैं। मैं (मृत्योः) मृत्यु के (बन्धनात्) बन्धन से (उर्वारुकम् इव) खरबूजे के फल के समान (मुक्षीय) मुक्त होऊं और (अमृतात्) अमृतमय मोक्ष सुख वा दीर्घ जीवन से (मा मुक्षीय) पृथक् न होऊं। इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

'त्र्यम्बकं'—अत्र शब्दार्थः। अम्बति शब्दायते इत्यम्बः, अम्बकः। त्रयाणां अम्बकः 'त्र्यम्बकः'। 'सुगन्धिः'—गन्ध हिंसने। शोभनः शरीरगंधः पुण्यगन्धो वा यस्यासौ सुगन्धिः। यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गंधो वाति एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वातीति श्रुतेः। सायणः।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[६०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ सूर्यः । २—१२ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ९ विराट् पंक्तिः । १० स्वराट् पंक्तिः । २, ३, ४, ६, ७, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ८, ११ त्रिष्टुप् ॥

यदुद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (अदिते) अविनाशिन् ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! तू (अनागाः) अपराधों और छल कपटादि पापों से रहित होकर (मित्राय) स्नेहवान् और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के प्रति (अद्य) आज के समान सदा ही (उत् यन्) उत्तम पद को प्राप्त होता हुआ (सत्यं ब्रवः) सत्य का उपदेश करता है, (देवत्रा) विद्वान् मनुष्यों के बीच (वयं) हम लोग (तव) तेरे ही दिये (सत्यं) सत्य ज्ञान का (गृणन्तः) उपदेश करते हुए, एवं तेरे शासन में सत्य भाषण करते हुए (तव प्रियासः स्याम) तेरे प्रिय होकर रहें ।

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) परस्पर के स्नेही और एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ज्मन् सूर्यः) भूमि पर या अन्तरिक्ष में सूर्य के समान (एषः स्यः) वह यह, प्रसिद्ध तेजस्वी (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा, (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः च) स्थावर और जंगम का (गोपाः) रक्षक (मर्तेषु) मनुष्यों में (ऋजु) सरल धार्मिक कार्यों और (वृजिना) पापों को भी (पश्यन्) न्यायपूर्वक देखता हुआ (उभे अभि) स्त्री और पुरुष, वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति (उद् एति) उदय को प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है ।

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥३॥

भा०—(सधस्थात्) अन्तरिक्ष में जैसे सूर्य (सप्त हरितः) सातों जलाहरण करने वाली किरणों को (अयुक्त) नियुक्त करता है और जैसे (घृताचीः हरितः) तेज वा जल से युक्त किरणें वा रात्रियां वा दिशाएं (ईं वहन्ति) उस सूर्य को धारण करती हैं वैसे वह राजा (सप्त हरितः) राष्ट्र के सात प्रकार के राज काज चलाने वाले अमात्यों का (सधस्थात्) साथ बैठने के सभास्थान से आसन करता हुआ, (अयुक्त) उचित २ कार्यों में नियुक्त करे (याः) जो (घृताचीः) तेज और स्नेह से युक्त होकर (सूर्यं वहन्ति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को धारण करते हैं। (यः) जो राजा (युवाकुः) तुम दोनों की शुभ कामना करता हुआ, हे (मित्रावरुणौ) प्राण उदान के समान राष्ट्र के आधार रूप स्त्री पुरुषो ! (यूथा इव) गौओं के यूथों को ग्वाले के समान समस्त (धामानि) स्थानों और पदों तथा (जनिमानि) सब प्राणियों, जनों और कार्यों को भी (सं चष्टे) अच्छी प्रकार देखता है।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥४

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप लोगों के लाभार्थ ही (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) जल से युक्त मेघ ऊपर आकाश में उठते हैं, उसी प्रकार (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) मधुर गुणयुक्त अन्न भूमि पर उत्पन्न होते हैं। सूर्य जिस प्रकार (शुक्रम् अर्णः अरुहत्) शुद्ध जल को ऊपर उठाता है उसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा शुद्ध निष्पाप धन वा प्राप्तव्य पद को प्राप्त करे। (यस्मै) जिसके हितार्थ (आदित्याः) १२ मासों तक के सदृश नाना रूप से सर्वोपकारक तेजस्वी १२ सचिव (अध्वनः) राज-कार्यों के नाना मार्ग (रदन्ति) बनाते हैं वही (स-जोषाः)

समान रूप से सबको प्रिय, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरने योग्य हो।

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥

भा०—(इमे) ये विद्वान् और (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ राजा ये सब (भूरेः) बहुत बड़े (अनृतस्य) असत्य को भी (चेतारः) विवेक द्वारा छानबीन करने वाले (हि सन्ति) अवश्य हों। (दुरोणे) गृह में पुत्र जैसे धन की वृद्धि करते हैं वैसे (दुरोणे) दुष्प्राप्य पद पर स्थित होकर, वा (इह) इस राष्ट्र में भी (अदितेः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के अधीन उसके (पुत्राः) पुत्रों के समान आज्ञाकारी (शग्मासः) सुखकारक और (अदब्धाः) प्रजाओं को हिंसा न करने और शत्रुओं से स्वयं भी पीड़ित न होने वाले होकर (ऋतस्य वावृधुः) सत्य न्याय और धन की वृद्धि करें।

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥६॥१॥

भा०—(इमे) ये (मित्रः) सर्वस्नेही, (वरुणः) राजा और (दूडभासः) दूर २ तक चमकने वाले प्रसिद्ध, कीर्तिमान् और प्रतापी पुरुष (दक्षैः) अपने कर्मों और ज्ञानों से (अचेतसं चित्) ज्ञान रहित को भी (चितयन्ति) ज्ञानवान् करते हैं। (अपि) और (स-चेतसं) उत्तम चित्त वा ज्ञान वाली (क्रतुं) बुद्धि वा कर्म का (वतन्तः) सेवन करते हुए (सु-पथा) उत्तम मार्ग से (अंहः तिरः चित्) पाप को दूर करते और अन्यों को सन्मार्ग से (नयन्ति) ले जाते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७॥

भा०—(इमे) ये (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि के समस्त

पदार्थों को (चिकित्वांसः) जानने वाले, विद्वान् लोग (अनिमिषाः) कभी आंखें न झपकते हुए, सदा सचेत, आलस्य रहित होकर (अचेतसम्) अज्ञानी पुरुष को भी (प्र-व्राजे चित्) उत्तम गन्तव्य मार्ग में (नयन्ति) ले जाते हैं। (प्र-व्राजे) मार्ग में भी जैसे (नद्यः गाधम्) नदी का गहरा जल (अस्ति) हुआ करता है, वे विद्वान् लोग (अद्य) इस (विष्पितस्य) दूर २ तक फैले हुए विघ्न रूप अथाह जल से भी (नः पारं पर्षन्) हमें प्राप्त करें।

यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (अदितिः) विद्वान्, माता पिता के तुल्य अखण्ड शासक राजा, (मित्रः) मित्र, स्नेही, (वरुणः) सर्वोपरि उत्तम पुरुष, ये सब (सुदासे) उत्तम करादि के दाता प्रजाजन के हितार्थ वा वृत्ति आदि देने वाले मुख्य राजा के लिये (भद्रं) कल्याणकारी सुख (यच्छन्ति) प्रदान करते हैं। (तस्मिन्) उसके अधीन हम अपने (तोकं तनयं आ दधानाः) पुत्र पौत्रादि का पालन करते हुए (तुरासः) अति शीघ्रकारी होकर (देव-हेडनं) विद्वानों के अनादर और क्रोधजनक काम (मा कर्म) न करें।

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥ ९ ॥

भा०—जो व्यक्ति (होत्राभिः) उत्तम वाणियों से (वेदिम्) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली यज्ञ वेदी, विदुषी स्त्री और भूमि को (अव-यजेत) प्राप्त नहीं करता, उसका उत्तम आदर नहीं करता (सः) वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ जनों से विनाशित, दण्डित होकर (कः चित् रिपः अव यजेत) कई प्रकार के कष्ट प्राप्त करता है। अर्थात् जो (होत्राभिः) दान आदान क्रिया और सत्कार युक्त वाणियों से (वेदि) सुखप्रद स्त्री, यज्ञ वेदी, भूमि आदि का सत्संग करता है वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ पुरुषों से

धारित होकर (का: चित् रिष: अत्र) कई प्रकार के नाना दु:खों से मुक्त होकर रहता है। (अर्यमा) न्यायकारी, दुष्टों का नियन्ता, हे (वृषणा:) बलवान् स्त्री पुरुषो ! (द्वेषोभि: परि वृणक्तु) द्वेषकारी दुष्ट जनों से हमें दूर रक्खे और (सु-दासे) सुखप्रद, उत्तम दानशील पुरुष को (उरुं लोकं) विशाल स्थान प्रदान करे।

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥

भा०—(एषां) इन उक्त बलवान् राष्ट्रसञ्चालक प्रधान पुरुषों की (सम् ऋति:) एक साथ संगति, सम्मति आदि सदा (सस्व: चित्) गुप्त और (त्वेषी) तीक्ष्ण, तेजस्विनी हो। वे लोग (अपीच्येन) सुन्दर, सुगुप्त, सुदृढ़ (सहसा) बल से (सहन्ते) शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ होते हैं। हे (वृषण:) बलवान् पुरुषो ! (युष्मद्भिया) आप लोगों के भय से (रेजमाना:) शत्रुजन कांपते हों और (दक्षस्य महिना चित्) बल के महान् सामर्थ्य से आप लोग (न: मृडत) हमें सुखी करें।

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११॥

भा०—(य:) जो मनुष्य (ब्रह्मणे) विद्वान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हितार्थ, वा ज्ञान, धन के प्राप्त्यर्थ (सुमतिम्) शुभ कल्याणकारी ज्ञान और बुद्धि (आ यजाते) प्राप्त करता है और जो (वाजस्य) बल, ज्ञान और (परमस्य राय: सातौ) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य लाभ के लिये (सुमतिम् आ यजाते) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष का सत्संग करता है (मघवान: अर्य:) उत्तम पूज्य ज्ञान, धनादि सम्पन्न पुरुष उसको (मन्युं सीक्षन्त) ज्ञान प्रदान करते और (क्षयाय) रहने और उसकी ऐश्वर्य के लिये (उरु) बहुत (सु-धातु) उत्तम भरण पोषण, उत्तम गृह, उत्तम सोना चान्दी आभूषण, वेतन, भृत्ति आदि (चक्रिरे) प्रदान करते हैं।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।१२।२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त, श्रेष्ठ, उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे माता पिता के तुल्य सभापति सेनापति जनो ! हे (देव) विद्वानो ! (यज्ञेषु) सत्संगों, यज्ञों में, (इयं) यह (युवभ्यां) आप दोनों के लिये (पुरः-हितः अकारि) आदर पूर्वक उत्तम भेंट की जाती है । आप लोग (विश्वानि) समस्त (दुर्गा) दुर्गम, कष्टों को भी (तिरः) दूर करके हमें (पिपृतं) पालन करो और (यूयं) आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी उत्तम साधनों से सदा रक्षा करो । इति द्वितीयो वर्गः ॥